आधुनिक संस्कृत-नाटक

(नए तथ्य : नया इतिहास)

सोलहवीं से बीसवीं शती तक

भाग १

लेखक

रामजी उपाध्याय, एम ए, डी. फिल डी. लिट्.

सीनियर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृतविभाग,

सागर-विश्वविद्यालय, सागर

प्रकाशक

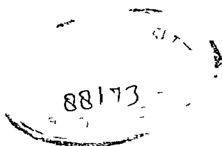
संस्कृत-परिषद्, सागर-विश्वविद्यालय, सागर

प्रथम संस्करण
भारत सरकार के शिक्षा-विभाग से प्राप्त आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

मूल्य ११०) - (दो रुपये).

R

मुद्रक विद्याविलास प्रेस,
चौखम्भा, वाराणसी।



समर्पणम्

सुरसरस्वतीशेखरेभ्यः

पुण्यपत्तनस्थेभ्यः

डॉ० श्रीपरशुरामलक्ष्मणवैद्यमहोदयेभ्यः

अपनी बात

संस्कृत नाटक के इतिहास का तीसरा और अन्तिम भाग प्रस्तुत है। इतिहास के तीन भागों में २००० पृष्ठों में पहली शती से लेकर बीसवीं शती तक के लिखे हुए नाटक मेरी आलोचना-परिधि में आये हैं। निस्सन्देह लगभग दसवीं शती तक के नाटकों को लेकर संस्कृत साहित्य के देशी और विदेशी इतिहासकारों ने अच्छे ग्रन्थों की रचना की है, किन्तु उन्होंने परवर्ती युग की संस्कृत-रचनाओं को उपेक्षा-भाव से देखा है। उनका अभिमत है कि दसवीं शती के पश्चात् संस्कृत में कोई अच्छी रचना यदि हुई भी तो वह अपवाद स्वरूप ही हुई। इस मनस्त उद्घोष से न विचलित होने वाले महातपस्वी स्वर्गीय एम० कृष्णमाचार्य ने History of Classical Sanskrit literature नामक इतिहास अंगरेजी में १९३७ ई० में लगभग ११०० पृष्ठों में प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने आदिकाल से लेकर अपने समय तक लिखी हुई सभी संस्कृत रचनाओं का परिचय देने का अनुपम प्रयास किया है। इस मनस्वी को पदे-पदे स्मरण करते हुए तथा उनसे उत्साह और प्रेरणा ग्रहण करते हुए यह महाग्रन्थ सम्पन्न हो सका है।

प्रस्तुत इतिहास में संस्कृत नाटकों के विषय में अपनी दृष्टि से मैंने उन सभी बातों का समावेश किया है, जिनसे उनके सम्बन्ध में पाठकों की नीचे लिखी भ्रान्तियाँ अथवा पूर्वाग्रह दूर हो जायें—

(१) दसवीं शती के बाद संस्कृत-रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से हीन-कोटिक और निष्प्राण हैं।

(२) परवर्ती रचनाओं में भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से पहले के महाकवियों का थोथा अनुकरण मात्र है।

(३) आधुनिक युग में संस्कृत में कुछ लिखा ही नहीं गया।

इस प्रसंग में निवेदन है कि केवल संस्कृत-भाषा और साहित्य ही नहीं, अपितु जो कुछ प्राचीन भारतीय परम्परा में आज जीवित है, उसके प्रति विदेशियों की दृष्टि से देखते हुए भारतवासियों ने नेय बुद्धि से उपेक्षा भाव बनाये रखा है। सभी भारतीय विद्याओं के साथ भारतीय संस्कृति को समाप्त करने के लिए गत २०० वर्षों में इनके

विरुद्ध इतना विष-वमन किया गया है कि उनकी सात्त्विकता को परखने की दृष्टि ही प्रायशः अभिजात भारतवासी भी खो बैठे।

सबसे बड़ी विषमता तो यह है कि संस्कृत के कतिपय प्राचीन नाटकों को छोड़ कर अन्य नाटकों को कोई न तो स्वयं पढ़ना चाहता है और न पाठ्यक्रम में उनको कहीं स्थान मिलता है। इतिहासकार यदि अपने ग्रन्थों में उनकी चर्चा भी करते हैं तो उनके सम्बन्ध में सुनी-सुनाई, घिसी-पिटी बातें कह कर सन्तोष कर लेते हैं। विरल ही इतिहासकार ऐसे हैं, जो परवर्ती ग्रन्थों को पढ़कर उनकी निष्पक्ष आलोचना करते हों।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रति संस्कृत के विद्वानों की अज्ञता और तदनुसार उपेक्षा के कतिपय प्रामाणिक उल्लेख देना असमीचीन नहीं होगा। १९१२ ई० में श्रीराम वेलणकर ने कालिदासचरितम् नामक अपना नाटक भारत के राष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् को समर्पित किया। उन्होंने अपना मत भेजा।

It is good to know that people are still writing original composition in Sanskrit, राष्ट्रपति ने १९६६ ई० में भी अपने इस मत को बदला नहीं कि संस्कृत में रचनायें विरल हैं। विश्वेश्वर ने उन्हें अपना चाणक्य विजय अर्पित किया। उस पर राष्ट्रपति की सम्मति है—

I appreciate that creative work is being done now in Sanskrit language.

इस पुस्तक में आप देखेंगे कि जिस समय राधाकृष्णन् यह मत दे रहे थे, उस समय तक बीसवीं शती में लिखे लगभग ३०० संस्कृत नाटक प्रकाशित हो चुके थे। राष्ट्रपति का छोड़ दें। जीवन भर प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाने वाले महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्० प्रान्त में दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उस समय १९६२ ई० में श्रीरामवेलणकर ने अपना संस्कृत नाटक कालिदासचरित उन्हें अर्पित किया। डा० मिश्र की सम्मति है—

अस्मिन् युगे भवद्भिरीदृशीं रचनां सम्पाद्य संस्कृत-साहित्यस्य सेवा कृतेति महान् मे प्रहर्षः।

अब आप क्या कहेंगे? जब संस्कृत विद्या के महान् पुंगव ही शुतुर्मुर्ग की भाँति अपनी आँख को अतीत के गर्त में लगाये हुए वर्तमान को नहीं देख पाते तो अन्य संस्कृतज्ञों को क्या कहा जाय?

आधुनिक संस्कृत-रचनाओं का कोई इतिहास न होने से, उनके प्रकाशन, क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था न होने से और उनका कोई नामलेवा न होने से आधुनिक युग में संस्कृत-नाटक लिखने वालों को भी यह ज्ञात नहीं था कि उनके समान मौन और अज्ञात संस्कृत-नाटककार आज भी सैकड़ों हैं, जिनकी रचनाओं से भारत-भारती का कोश जगमगा रहा है। पाण्डुरंग शास्त्री ने १६६० ई० में हर्षदर्शन नामक नाटक लिखा। उसकी प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—

संस्कृतनवनाटक-निर्मितिरत्यल्पप्रमाणा किंबहुना, उदुम्बरकुसुमप्रायैव।

संस्कृत के भारतीय और अभारतीय विपश्चित महापण्डितों से निवेदन है कि आप लोगों में से अनेक ने अब तक परवर्ती संस्कृत-साहित्य की तुच्छता का ढोल पीटा है। भारत की सांस्कृतिक निधि को उपेक्षित रखने का श्रेय आपको मिला है। अब इस कदर्थना के समय लद गये। बहुसंख्यक संस्कृतज्ञ आपके द्वारा प्रपंचित क्षति को समझ चुके हैं और अनवरत प्रयास से वे परवर्ती संस्कृत-साहित्य को यथोचित सम्मान के योग्य प्रतिष्ठित करते हुए आधुनिक संस्कृतज्ञों की शाश्वत उच्च मनीषिता को आदर्श रूप में अपना रहे हैं।

महान् देशों का साहित्य महासागर होता है। उसमें रत्न भी होते हैं और शंख भी। शंखों की संख्या नगण्य भी नहीं होती। उन्हीं के बीच से रत्नों को ढूंढ़ निकालना सफल आलोचक का कृतित्व है। कतिपय शंखों में कहीं कुछ विशेष गुण होता है। वे कितने चित्र-विचित्र होते हैं? पारखी उनसे भी शंखनाद करता है या अपने बैठके की सजावट करता है।

परवर्ती संस्कृत नाटकों की कतिपय विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना साम्प्रतिक होगा। सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण है उनके रचयिताओं का अपने युग का अनन्य विद्वान् होना। उन्होंने केवल साहित्य क्षेत्र को ही अपने कृतित्व से नहीं जगमगाया, अपितु समाज को सम्प्रतिष्ठित करने के लिए बहुविध योग-दान दिया। अनेक नाटककार राजा, राजमन्त्री, सेनापति दार्शनिक और सांस्कृतिक आचार्य हुए हैं। उनकी प्रतिभा से तत्कालीन समाज आलोकित था। इन उच्चकोटिक महामहिम विद्वानों ने स्वान्तःसुखाय रचना की और नागरक संस्कृति के उन्नायक राजा-महाराजाओं के रसास्वादन के लिए बहुश: लिखा, पर विशेष महत्त्वपूर्ण है उनका अपने हृदय-मन्दिर में मूर्तिमान् अधिष्ठाता देवाधिदेव के प्रीत्यर्थ नाटक रचना। लग-भग ७५% नाटकों का अभिनय मन्दिरों के मण्डप में देवताओं के समक्ष किया गया। कवियों का विश्वास था कि मन्दिर में प्रतिष्ठित देव हमारे नाटकों के अभिनय से

सुप्रसन्न होगा। यहाँ यह कहना अनावश्यक है कि भारतीय कला का सर्वोच्च विलास देवताओं को अर्पित सर्जनाओं में ही होता आया है।

संस्कृत के नाटक केवल पढ़ने के लिए ही नहीं लिखे गये। आज तक के नाटकों की प्रस्तावना से विदित होता है कि उनका अनेकश अभिनय होता आया है और इनके प्रयोग का रसास्वादन समय-समय पर भारत के राष्ट्रपति, राजा महाराज, मन्त्री-महामन्त्री, विद्वान्, आचार्य, साधु-सन्त आदि ने किया है।

और भी, भारत के प्रत्येक भूभाग में संस्कृत नाटकों की रचना और उनके अभिनय अनवरत होते रहे हैं। शायद ही कोई जनपद हो, जो किसी संस्कृत-नाटककार के द्वारा समलंकृत न हुआ हो। इन आधुनिक संस्कृत नाटकों में भारत के प्राय अतीत ५०० वर्षों की आधिभौतिक, आध्यात्मिक, कलात्मक और लोकसेवात्मक सभी प्रवृत्तियों का सर्वाङ्गीण रमणीय परिचय जिस पर्याप्त मात्रा में मिलता है, उतना अन्यत्र किसी भी भाषा की किसी साहित्यिक विधा में नहीं है।

मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ के पाठक मुझसे सहमत होंगे कि जो संस्कृत साहित्य सैकड़ों वर्षों तक समग्र भारत के लिए मनोरंजन के साथ ही जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता आ रहा है, उसे एकपदे हीन-कोटिक बताकर उसका त्याग कर देना प्रमादवश ही सम्भव हुआ है।

नाट्यशास्त्र को सर्वाङ्गसम्पन्न बनाने के लिए आधुनिक संस्कृत नाटकों में नई सामग्री मिलती है। नाट्याचार्य भरत और उनके अनुयायियों ने रूपकों के परिशीलन के लिए वस्तु, नेता और रस-सम्बन्धी, जिस विधान को अपनाया, उसका सर्वश परिपालन न तो प्रारम्भिक और न मध्ययुगीन नाटकों में दिखलाई पड़ता है। बहुसंख्यक आधुनिक नाटककारों ने तो उस धूमिल पुराने पड़े नाट्यविधान की परतन्त्रता से अपने को आवश्यकतानुसार उन्मुक्त रखा है। इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर आधुनिक नाटकों में प्रवर्तित प्राचीन शास्त्रीय परिपाटी से भिन्नता का निर्देश किया गया है। इस प्रकार की सामग्री के आधार पर संस्कृत के अद्यावधि विरचित नाटकों की साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय आलोचना करने के लिए भारतीय नाट्यशास्त्र में संशोधन और परिवर्धन की आवश्यकता निर्विवाद है। भरत द्वारा निर्दिष्ट दस प्रकार के रूपकों और परवर्ती नाट्याचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट नृत्य और उपरूपकों में से अनेक के उदाहरण प्राचीन काल के प्राप्य नाट्य साहित्य में नहीं मिलते, अथवा विरल हैं। मध्ययुग और आधुनिक युग में उपयुक्त कोटियों की प्रतिनिधि रचनायें कुछ अधिक मिलती हैं। इस दृष्टि से भी इन परवर्ती रचनाओं का महत्त्व है।

आधुनिक संस्कृत-नाटक के इतिहास में नाटककारों की जीवनी, उनके व्यक्तित्व का विकास, नाटकों की कथावस्तु और उनकी नाट्यशास्त्रीय सचित्त समीक्षा दी गई है। ऐसा करते हुए प्रायः ध्यान रखा गया है कि नाटककार का पाठक से साक्षात् सम्बन्ध हो और इस उद्देश्य से नाटकों से पर्याप्त उद्धरण यत्र-तत्र पिरोये गये हैं, जिसमें उनके रचयिताओं का शाब्द शरीर अमर रहे। नाटककारों की अन्य विधाओं की रचनाओं की नामावली भी दी गई है, जिससे उस युग की साहित्यिक धारा के पूर्ण स्वरूप की झाँकी पाठक को मिले।

यदि काव्य के नवरसों के साथ ही आप दशम रस चाहते हैं, जो आपके नेत्र के लिए अञ्जन बन कर जीवन के प्रति सात्त्विक दृष्टि प्रदान करे तो यतीन्द्र का भारत-विवेकम् विश्वविवेकम् या हृदयारविन्दम् पढ़ें, 'प्राचीन या मध्ययुगीन भाण और प्रहसनों से उच्चतर स्तर पर इस विधा की आदर्श कृतियाँ जीव न्यायतीर्थ ने प्रस्तुत की हैं।

वर्तमान नाटककारों पर कलम उठाना दुस्साहस का काम है। उनकी टीका-टिप्पणी खतरे से खाली नहीं, किन्तु 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करने के पक्ष में मैं कभी नहीं रहा,हूँ। वर्तमान नाटककारों में जो त्रुटियाँ दिखीं, उन्हें भी स्पष्ट लिखा है। यदि मेरी आलोचना उन्हें विषम लगे तो यह मान कर तो वे मुझे क्षमा करें कि जो कुछ मैंने किया है, वह संस्कृत कविमार्ग को प्रशस्त बनाने के लिए किया है, परनिन्दा से आत्मतोष के लिए नहीं।

समग्र भारत ने जिस एक भाषा के द्वारा समग्र भारत को अगणित और करणशः विभूतियों को समग्र भारत के प्रीत्यर्थ अद्यावधि पुञ्जीभूत किया है, उसके औदार्य और औदात्त्य से परम प्रभावित है लेखक। अन्त में आज के संस्कृत लेखकों से प्रेरणाप्रद निवेदन है कि आप अकेले नहीं हैं। सैकड़ों और सहस्रों की परम्परा में आप सुबद्ध हैं। आप का संस्कृत-कविमार्ग अनादि काल से चलता आ रहा है और अनन्त काल तक चले, इस कामना के साथ

वाराणसी
१३।१२।[illegible]

भवदीय
रामजी उपाध्याय

विषयानुक्रमणिका

———

सोलहवीं शती के नाटक

अध्याय १

रूपगोस्वामी का नाट्य-साहित्य

सोलहवीं शती के कवियों में रूपगोस्वामी अद्वितीय कहे जा सकते हैं। रूपगोस्वामी की चारुचरितावली का युग १५ वीं और १६ वीं ई० शती है। इनका आनुवंशिक परिचय जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी द्वारा प्रणीत लघु भागवत की लघुतोषिणी व्याख्या में इस प्रकार दिया है—कर्नाटक के राजा सर्वज्ञ जगद्गुरु भारद्वाज गोत्र के थे। इनके पुत्र राजा अनिरुद्ध की दो पत्नियों से रूपेश्वर और हरिहर राजकुमार हुए। हरिहर दुष्ट स्वभाव का था। उसने रूपेश्वर को राज्य से भगा दिया। रूपेश्वर का पुत्र पद्मनाभ गङ्गा के तटपर नवहट्ट ग्राम में सुप्रतिष्ठित हुआ। उसके पाँच पुत्रों में सबसे छोटा मुकुन्द नवहट्ट ग्राम छोडकर फतेहाबाद में जा बसा। मुकुन्द के पुत्र श्रीकुमार थे, जिनके तीन पुत्रों—अमर, सन्तोष और वल्लभ को चैतन्य ने सनातन, रूप और अनुपम नाम से दीक्षित किया। अमर और सन्तोष गौडराज हुसेनशाह के द्वारा उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त थे और रामकेलि नामक ग्राम में प्रतिष्ठित थे। दीक्षा के पश्चात् रूप प्रायः गोकुल में रहे।

रूपगोस्वामी महान् लेखक थे। उनके लिखे हुए १७ ग्रन्थों के नाम जीवगोस्वामी अनुसार है—(१) हंस-सन्देश (२) उद्धव-सन्देश, (३) अष्टादश लीला छन्द (४) उत्कलिका वल्लरी (५) गोविन्द-विरुदावली (६) प्रेमेन्दुसागर (७) विदग्धमाधव (८) दानकेलि-कौमुदी (९) ललितमाधव (१०) भक्तिरसामृत सिन्धु (११) उज्ज्वल-नीलमणि (१२) मथुरामहिमा (१३) नाटकचन्द्रिका (१४) पद्यावली (१५) संक्षिप्त भागवतामृत (१६) आनन्द-महोदधि (१७) मुकुन्द मुक्तावली।

उपर्युक्त ग्रन्थों में से दो विदग्धमाधव और ललितमाधव रूपक और दानकेलिकौमुदी भाणिका कोटि का उपरूपक है।[1] कवि का अन्तिम ग्रन्थ उत्कलिकामञ्जरी मिलता है जिसकी रचना १५५० ई० में हुई।[2] रूपगोस्वामी के रूपक और उपरूपक १६वीं शती के पूर्वार्ध में प्रणीत हुए।

विदग्धमाधव

विदग्धमाधव नाटक की रचना गोकुल में वि० सं० १५८९ अर्थात् १५३२ ई० में हुई, जैसा इस ग्रन्थ की अधोलिखित पुष्पिका से प्रमाणित होता है—

---

१ गते मनुशते शाके चन्द्रस्वर समन्विते।
नन्दीश्वरे निवसता भाणिवेयं विनिर्मिता॥ भाणिका की पुष्पिका से

२ चन्द्राश्वभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना।
इयमुत्कलिकापूर्व-वल्लरी निर्मिता मया॥ ग्रन्थकी पुष्पिका से।

नन्द-सिन्धुरबाणेन्दु-सख्ये संवत्सरे गते।
विदग्धमाधव नाम नाटकं गोकुले कृतम् ॥

इसका प्रथम प्रयोग केशितीर्थ में सम्भवत खुले आकाश वाले रङ्गमच पर वृन्दावन दर्शनार्थियों के मनोरंजन, प्रशान्ति और प्रज्ञान के लिए हुआ था। विदग्ध राधा है और माधव के साथ उसकी प्रणय-क्रीडा वर्ण्य विषय है[1]। इसके प्रथम प्रयोग का सूत्रधार स्वयं कवि था, जैसा प्रस्तावना में कहा गया है। इस नाटक में सात अंकों में प्रमुखत राधाविलास की चर्चा है।

कथासार

कृष्ण की बाल लीला-भूमि गोकुल की अपूर्व सुन्दरी राधा का सौन्दर्य-विलास कंस के कानों तक पहुचा।[2] उसके कूटपाश से राधा को बचाने के लिये उसे पहले भानुतीर्थ में छिपाया गया। फिर गोकुल में लाकर योगमाया की तदनुकूल योजना के अन्तर्गत जटिला के पुत्र अभिमन्यु से उसका दिखावटी विवाह कर दिया गया। राधा को तो कृष्ण का होना था। पर इधर अभिमन्यु राधा पर अधिकार बतलाने लगा और कृष्ण के सान्निध्य से हटाकर वह राधा को कहीं दूर ले जाना चाहता था।

गोकुल की उपर्युक्त विपत्तियों को देखकर महामुनि नारद के निर्देश से उज्जयिनी के महर्षि सान्दीपनि की जागतिक प्रेम प्रपञ्चा में नदीष्ण माता पौर्णमासी और उसकी सेविका नान्दीमुखी गोकुल आ गई कि कृष्ण और राधा को मिलान में सहायक हों। साथ ही अपने पुत्र मधुमंगल को सान्दीपनि ने कृष्ण का सहचर बन कर गोकुल में रहने के लिये भेज दिया। पहला काम पौर्णमासी ने यह किया कि उसने अभिमन्यु को भुलावे में रखा कि मैं राधा के लिये प्रतिभू होती हू कि वह तुम्हारे अधिकार से बाहर नहीं हो। पौर्णमासी ने नान्दीमुखी को भी इस काम के लिए नियुक्त किया कि वह राधा और कृष्ण के पारस्परिक अनुराग में वृद्धि के उपायों को कार्यान्वित करने में योगदान करे।

इधर ललिता और विशाखा नामक अपनी सखियों की सहायता से राधा कृष्ण-मिलन के लिए भाँति-भाँति के उपक्रम करती थी, जिनमें से एक था सूर्य की आराधना करने के लिए वन में जाना। पौर्णमासी ने विशाखा से कृष्ण का एक चित्र बनवाया, जिसे देखकर राधा वियोग के क्षणों में धैर्य धारण करे।

कृष्ण एक दिन गौओं के साथ वन जा रहे थे। उनके मित्र बलराम, मधुमंगल, श्रीदाम आदि भी साथ थे। उनके माता-पिता यशोदा और नन्द उन्हें मार्ग पर कुछ दूर तक छोड़ने के लिए जा रहे थे। उनको घर लौटाकर वन में पहुच कर कृष्ण ने

---

१ वृन्दा ने राधा के विषय में कहा है—विदग्धमधुना मुग्धयासि।

२ इस कथा के अनुसार राधा यशोदा की धाई मुखरा की नतिनी थी। उसकी प्रतिनायिका चन्द्रावली कराला की नतिनी थी।

वंशी बजाई। चराचर आनन्द विभोर हो गया। उसे सुनने के लिए आकाश-मार्ग से ब्रह्मा, महेश तथा इन्द्रादि देवता आ पहुँचे। जगल मे मगल मनाया जा रहा था। इस अवसर पौर्णमासी लड्डू लिये आ पहुँची। उसने बताया कि मुखरा ने अपनी नतिनी राधा का विवाह अभिमन्यु से ठहरा लिया है। इसी उत्सव में लड्डू बाँट जा रहे हैं। कृष्ण राधा का नाम सुनते ही विलक्ष हुए। उन्होंने वार्ता का विषय परिवर्तन करने के लिये कहा कि आप भी इस वासन्तिक श्री में महोत्सव का आयोजन करें। पौर्णमासी ने कहा कि आज तो आप हरि के लिए महोत्सव है, जब गोपियाँ पुष्पावचय के लिए यहाँ एकत्र होंगी।

दोपहर के समय केवल श्रीदामा और सुबल को साथ लेकर कृष्ण यमुनातटीय कुञ्ज मे वंशीवादन करने लगे। मुरलीरव सुनते ही राधा की विचित्र ही दशा हो गई। उसने समीक्षा की

अजडकम्पसम्पादी सरस्वादन्यो निकृन्तन।
तापनोऽनुष्णनाधार कोऽयं वा मुरलीरव॥ १ ३५

दूसरे अङ्क के अनुसार पौर्णमासी ने कृष्ण का जो चित्र बनवाया था, उसे राधा ने देखा और उन्मत्त हो गई। उसने सखियों से अपनी मनोदशा का वर्णन किया—

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मर्ति कृष्णेति नामाक्षर
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकल।
एप स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्न सकृद्वीक्षणात्
कष्ट धिक् पुरुषत्रये रतिरभन्मन्ये मृति श्रेयसी[1]॥ १ २९

राधा की मातामही मुखरा और पौर्णमासी उसकी शोचनीय स्थिति सँभालने के लिये बुलाई गई। मुखरा ने कहा कि इसे कोई ग्रह लगा है। पौर्णमासी ने कहा कि कंस इसके फेर में है। अतएव कोई अङ्गना-ग्रह राधा मे आविष्ट है। इसे बचाने के लिए कंस के शत्रु कृष्ण की दृष्टि इस पर पड़नी चाहिए। राधा ने निःसकोच बताया कि कभी कृष्ण की प्रेम क्रीडाओं से मैं परितृप्त होकर अब वियुक्त हूँ। पौर्णमासी के कहने पर राधा ने प्रेमपत्र कृष्ण को लिखा।

इधर कृष्ण राधा के वियोग में सन्तप्त हैं, जैसा मधुमगल बताता है—

फुल्ल-प्रसून-पटलैस्तपनीयवर्णा—
मालोक्य चम्पकलता किल कम्पतेऽसौ।
शङ्के निरङ्कुनवकुङ्कुमरुकगौरी
राधाम्य चित्रफलके तिलकीबभूव॥ २ २५

कृष्ण की दृष्टि में राधा क्या है—

---

१ यह स्थिति रूप ने कुलशेखर-विरचित सुभद्राधनञ्जय के सदृश चित्रित की है।

तस्या कान्तिद्युतिनि वदने मंजुले चाक्षियुग्मे
तत्रास्माकं यदवधि सखे दृष्टिरेषा निविष्टा।
सत्यं ब्रूमस्तदवधि भवेदिन्दुमिन्दीवरं वा
स्मारं स्मारं मुखकुटिलता-कारिणीयं हृणीया ॥ २.३२

उन्हें राधा की सखियों ने प्रेमपत्र दिया, जिसमें राधा ने लिखा था कि हे कृष्ण, तुम चित्ररूप में मेरे मन्दिर में बसते हो। जितना ही तुम मुझे खींचते हो, उतनी ही मैं पतंग की भाँति दूर भगती जाती हूँ।

कृष्ण राधा के प्रति अपने प्रेम को छिपा रहे थे। उन्होंने उसकी सखी ललिता से स्पष्ट कह दिया कि राधा से प्रेम का कोई कारण नहीं है। विशाखा यह सब सुन कर चकरा गई। उसने राधा की गुञ्जावली कृष्ण के गले में पहना दी। कृष्ण ने कपटपूर्वक कहा कि मुझे गुञ्जाहार नहीं चाहिए और उसे उतारने की भ्रांति से अपनी रत्नमालिका उतार कर उन्हें दे दी। सखियों का काम बना[1]।

कृष्ण को पश्चात्ताप हुआ कि राधा की उपेक्षा का भयावह परिणाम हो सकता है। उन्होंने उसके पत्र का उत्तर राधा के पास भेजा, जिससे स्थिति बिगड़े नहीं।

इधर राधा को लगा कि कृष्ण मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। उसने कालिय-ह्रद में डूब मरने के लिए द्वादशादित्य तीर्थ में सूर्योपस्थान की अनुमति वृद्धों से ली। वह सखी के साथ यमुना में डूबने चली। मार्ग में कृष्ण और मधुमंगल ने उन्हें देखा तो चुपचाप उनकी बातें छिपकर सुनने लगे। राधा ने कृष्ण की भरपूर निन्दा की—

वयं नेतुं युक्ता कथमशरणां कामपि दशां
कथं वा न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीन-पदवीम् ॥ २.४६

कृष्ण ने राधा के प्रेम की पराकाष्ठा अपने कानों से ही सुनकर जान ली। जब राधा ने कृष्ण का ध्यान लगाया तो वे साक्षात् उसके समक्ष प्रकट हो गये। राधा का आनन्द असीम था। पर कुछ ही क्षणों के पश्चात् वहाँ राधा की सास जटिला आ पहुँची।

राधा और कृष्ण परस्पर मिलन के लिए व्याकुल थे। ऐसे समय पौर्णमासी ने कृष्ण को कर्तव्य सुझाया कि इस मार्ग से राधा से शीघ्र मिलन सम्भव है।

पौर्णमासी इधर राधा से मिली और बोली कि कृष्ण का पाना कठिन प्रतीत होता है। तुम ना कोई और उपाय करो।[2] इसे सुनकर राधा की आँखें उत्तानित हो गईं। वह मरणासन्न हो गई। पौर्णमासी को दैन्य के देन पड़े। उसने राधा को तत्त्वार्थ बताया—

---

[1] इस नाटक में यह कूटघटना छाया तत्त्वानुसारी है।

[2] पौर्णमासी के द्वारा प्रस्तुत यह कूट घटना है, जैसा उसने स्वयं राधा से कहा है—मायामिथ्यत्तयैं प्रोत्थापितास्मि।

अमितविभवा यस्य प्रेक्षालवाय भवादयो
भुवन-गुरवोऽप्युत्कण्ठाभिस्तपांसि वितन्वते।

अहह गहनाद्दृष्टाना ते फल किमभिष्टुवे
सुतनु स तनुर्जज्ञे कृष्णामृतवेक्षणतृष्णाया ॥ ३ १७

पौणमासी ने समझ लिया कि अब तो यथाशीघ्र राधा और कृष्ण को मिलाना ही होगा। वह कृष्ण को लाने गई। इधर रात्रि की चन्द्रिका से वनभूमि आलोकित हो गई। कृष्ण राधा की दूती के चक्कर मे थे कि वह क्यो नही आई। तभी दूती विशाखा ने आकर उनसे परिहास किया कि तुम्हारी राधा को तो अभिमन्यु मथुरा ले गया। यह कह कर वह रोन लगी। कृष्ण इसे सुनकर मूर्च्छित हो गये। विशाखा ने परिहास-पद्धति छोडकर उनसे कहा कि मैं झूठ बोल रही थी।[1] तुम्हारे वियोग मे तो राधा मर गयी होती, यदि तुम्हारी रङ्गणमालिका उसकी रक्षा के लिए न होती। कृष्ण राधा से मिलन चल देते हैं। ललिता ने राधिका को बलात् खीचकर कृष्ण के पास पहुचाया। पर्याप्त परिहास कृष्ण के प्रेम को लेकर उसकी सखियो ने राधा से किया। कृष्ण चोर हैं, यह परीक्षा होने वाली है। पर इसकी आवश्यकता ललिता की दृष्टि मे नही रही, क्योकि

प्रारब्धे पुरत परीक्षणविधौ त्रासानुविद्धस्य ते
खिन्नोऽय करपल्लवस्तरलता कम्पोद्गमं पुष्यति।
रोमाञ्च शिखिपिञ्छचूडनिविड मूर्तिश्च धत्ते ततो
ज्ञातस्त्व ननु पश्यतोहरपुरीसाम्राज्य-धौरेयक ॥ ३ ३३

अर्थात् कृष्ण पक्के चोर ही नही, चोरो के साम्राज्य के सम्राट् हैं। कृष्ण ने कहा कि चोर तो बना दिया गया। अब इस अपराध से मुक्ति का उपाय क्या है? ललिता ने बताया--

गताना राधाया स्तन-गिरितटे योगमभित
विविक्ते मुक्ताना त्वमिह तरलीभूय तरसा।
विशुद्धाना मध्ये प्रविश शरणार्थी सहृदया
भजन्ते साद्गुण्यादपि पृथुलदोष हि पुरुषम् ॥ ३ ३४

कृष्ण ने राधा को पकडा तो हाथ छुडाकर वह पेडो मे छिप गई। उसने सखियो से कहा कि कृष्ण को कही प्रस्थान कराओ, नही तो कोई देख लेगा। कृष्ण ने कहा कि ऐसा नाच नाचने से रहा। अब तो राधा को छोडकर जाना सम्भव नही है। सखियो ने कृष्ण का आग्रह देखा तो राधा से कहा कि प्रणयी की बात मानना उचित है। देर न करो।

१ यह विशाखा-वृत्त कूटघटना छाया-तत्त्वानुसारी है।

सखियो के कहने पर कृष्ण ने राधा की चापलूसी की—

अयमत्रनिसर्गशीतलं सखि राधाकुचयोरवस्थितिम् ।
नवकाञ्चनकुम्भयोरहं स्फुरदिन्दीवरदामवद् भजे ।। ३४१

सखियो के सुझाव से राधा की सेवा द्वारा उसे प्रसन्न करने का प्रस्ताव कृष्ण ने रखा—

किं चंदनेन कुचयो रचयामि चित्र—
मुत्तंसयामि कबरीं तव किं प्रसूनं ।
अंगानि लगिमतरागि करेण किं वा
संवाहयाम्यतनुखेदकरम्बितानि ।। ३ ४४

कृष्ण और राधा का ऐकान्तिक समागम सम्भव न हो सका, क्योंकि तभी मुखरा आ गई । कृष्ण के द्वारा कुशल समाचार पूछने पर मुखरा बोली कि जब तक तुम्हारी वंशी बजेगी, तब तक हम लोगों को सुख कहाँ ? ज्योंही तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनती हैं, सभी गोकुल-बालिकायें वनाभिमुख दौड़ पड़ती हैं । कृष्ण को वह हटाना चाहती है । कृष्ण भी जान के मिस थोड़ा दूर हटकर वृक्ष के बीच छिप जाते हैं । वे थोड़ी देर में राधा के निकट आकर उसका पटाञ्चल खींचते हैं । रात्रि का समय होने से रतौंधी से ग्रस्त बुढ़िया कुछ कुछ देखती है कि क्या हो रहा है । उसे ललिता ने समझा दिया—

मुधा शङ्कामन्धे जरति कुरुषे यामुनतटे
तमालोऽयं चामीकरकलित-मूलो निवसति ।
समीरप्रेंखोलादतिचटुल — शाखाभुजतया
वयस्याया येन स्तनवसनमास्फालितमभूत् ।।३ ४५

मुखरा का सिर घूम रहा था । वह चलती बनी ।

कृष्ण ने फिर तो यथावसर राधा को अपने गले का गुन्जाहार पहनाया । राधा के बनावटी क्रोध को समाप्त करने के लिए ललिता ने उससे कहा—

हृदये समर्प्य तनु कृपणासि वयं दरावलोके।
दत्ते चिन्तारत्ने न सम्पुटे आग्रहो युक्तः ।।३ ३८

ललिता और विशाखा क्यारी सींचने के मिस चलती बनीं । राधा और कृष्ण चन्द्रिका-चर्चित चन्द्रशाला में जा विराजे ।

चतुर्थ अङ्क के आरम्भ के अनुसार एक दिन कृष्ण सन्ध्या के समय गोवर्धन की ओर चले गये । वहाँ वंशी बजाई । चन्द्रावली नामक उनकी एक प्रेयसी वहीं निकट ही रहती थी । उससे ही मिलने कृष्ण वहाँ गये थे । रंगमञ्च पर एक ओर चन्द्रावली और उसकी सखी पद्मा तथा दूसरी ओर कृष्ण और उनके सहायक सुबल हैं । चन्द्रावली ने कृष्ण की वंशी से ईर्ष्या प्रकट की—

सखि मुरलि विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा
लघुरतिकठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि ।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दमान्द्र
हरिकरपरिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ ४७

कृष्ण ने उसे देखा और कहा—

तदद्य निर्वापय विरहोत्ताप परिष्वंगरसेन ।

कुछ काम बना नहीं । चन्द्रावली कृष्ण की मनुहार से प्रसन्न न हो सकी और अन्त में भद्रकाली का दर्शन करने चल पड़ी ।

कृष्ण को चन्द्रावली से मिलन का उपाय करना पड़ा, पर उसी समय राधा की स्मृति भी उन्हें हो आई । उन्होंने सुबल से कहा कि ललिता से कहो कि राधा इस स्थान पर चली आये ।

मधुमंगल और पद्मा के प्रयास से चन्द्रावली कृष्ण के समीप आ गई । उसने कृष्ण के गले में वैजयन्ती डाल दी । कृष्ण चन्द्रावली को लेकर दूसरी ओर चले गये । पश्चात् आई ललिता के साथ राधा । उसने संकेतित कुञ्ज में कृष्ण को न पाया तो समझा कि परिहास के लिए किसी कुञ्ज में कृष्ण जा छिपे हैं । जब कृष्ण मिले नहीं तो राधा चलती बनी । रात बीत गई । सबेरे कृष्ण उस स्थान पर पहुंचे, जहाँ राधा उनकी प्रतीक्षा में रात बिता रही थीं । राधा वहाँ लौटकर फिर आई तो कृष्ण ने झूठ ही कहा कि आज रात यहाँ राधा के वियोग में काटनी पड़ी । राधा ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि चन्द्रावली के परिमल से तुम सुवासित हो । राधा को प्रसन्न करने के लिए अपने उत्तरीयाञ्चल में रखे पुष्पों के साथ हड़बड़ी में वंशी भी कृष्ण ने उसे दे दी । फिर भी राधा ने मान न छोड़ा, यद्यपि कृष्ण ने अनेक बहाने बनाये । अन्त में कृष्ण ने उससे कटाक्ष-माधुरी की भिक्षा माँगी—

धृनिधृतरतिचन्द्रकाचलश्चन्द्रकान्तमुखि वल्लभो जनः ।
अर्पयन् मुहुरयं नमस्क्रिया भिक्षते तव कटाक्षमाधुरीम् ॥ ४४६

पर यह भी सम्भव न हो सका, क्योंकि मुखरा आ गयी ।

कृष्ण ने जाना चाहा । पर वंशी कहाँ गयी ? कृष्ण ने जान लिया कि राधा ने ली है । राधा और उसकी सखियों ने कहा कि आपकी वंशी का कोई ठीका हम लोगों ने थोड़े ही लिया है । राधा ने अपनी मातामही मुखरा से कहा कि यह कृष्ण हम लोगों पर वंशी चुराने का आरोप लगा रहे हैं । मुखरा कृष्ण की राधा-विषयक चपलता से व्यथित थी । उसने कृष्ण को डराया कि अब तो मथुरा जाकर कंस से प्रतिवेदन करना है कि तुमको दण्ड दे ।

पंचम अङ्क के अनुसार राधा का पति अभिमन्यु यह देख चुका है कि राधा प्रेमवश कृष्ण की ही हो गई है । वह गोकुल छोड़कर कंस की नगरी मथुरा में राधा

को ले जाकर बसना चाहता है। पौर्णमासी का निश्चय है कि ऐसा न होने दूगी। इस योजना के अन्तर्गत राधा को आज कृष्ण से मिलाना है। उसने कृष्ण को समाचार भिजवाया कि अभिसारोत्सव के लिए उद्यत रहे। वह ललिता के साथ राधा से मिली। उस अवसर पर नान्दीमुखी ने राधा के वियोग मे कृष्ण की दशा बताई—

क्षणमपि न सुहृद्भिर्नर्मगोष्ठी विधत्ते
रचयति न च चूडा चम्पकाना चयेन।
परमिह मुरवैरी योगविन्मुक्तभोग-
स्तव सखि मुखचन्द्र चिन्तयन्निर्वृणोति ॥ ५.१४

राधा के पास कृष्ण की जो वशी थी, वह एक दिन अकस्मात् वायु के प्रवेश से बज उठी। जटिला ने सुना तो वस्तु-स्थिति समझ ली और बलात् मुरली ले ली। वृन्दा और पौणमासी ने गम्भीर स्थिति को समझ लिया। वृदा ने कहा कि मुरली को शीघ्र ही चुरवा लाती हू। सुवल ने आकर जटिला से कहा—दधिचोर बनरिया तुम्हारे घर मे घुसी है। जटिला ने मक्खी को भगाने के लिए वशी फेंक कर उसे मारा। बन्दरिया वशी लेकर कदम्ब वृक्ष पर जा बैठी। वशी फिर राधा के पास पहुच गई।

राधा की मातामही मुखरा ने अभिमन्यु का सदेश राधा के लिए दिया कि उसे पूजा-सामग्री लेकर चैत्यवृक्ष के नीचे पहुँचना है, जहाँ अभिमन्यु गामङ्गला नामक चण्डी की पूजा करेगा।

कृष्ण राधा के अभिसार की प्रतीक्षा म राधामय हो चुके हैं। उनका कहना है—

राधा पुर स्फुरति पश्चिमतश्च राधा
राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा।
राधा खलु क्षितितले गगने च राधा
राधामयी मम बभव कुतस्त्रिलोकी ॥ ५.१८

कृष्ण के परिहासात्मक मनोरञ्जन के लिए सुबल ने राधा का वेश बनाया और वृन्दा ने ललिता का। इस वेश म वे दोनों कृष्ण के पास पहुचे। कृत्रिम राधा की साडी के भीतर कृष्ण की मुरली झलक रही थी।[1] कृष्ण ने अञ्चल से वशी खीच कर मधुमगल को दे दी। इसी बीच जटिला आ गई। उसने ललिता और राधा को पकड़ लिया और चलती बनी। कृष्ण ने मधुमगल को भेजा कि देखो राधा का क्या

---

[1] यह छायानाट्य की प्रवृत्ति है। शास्त्रीय परिभाषानुसार यह गर्भसन्धि का अमृताहरण नामक अङ्ग है। अमृताहरण छद्म। साथ ही यह पताका स्थानक है। नायक सोच रहा है कि राधा का आलिगन कर रहा हू और वह वस्तुत उसका मित्र सुबल है।

हुआ ? मधुमगल ने कहा कि राधिका अवगुण्ठन हटा देने पर सुवल बन गई। जो ललिता थी, वह भी राधा के द्वारा पढ़े गये किसी मन्त्र के प्रभाव से वृन्दा बन गई।

कृष्ण ने वशी बजाई। ललिता के सग राधा आई। कृष्ण ने समझा कि यह सुवल ही है। कृष्ण को राधा-मिलन की इतनी तीव्र इच्छा थी कि उन्होंने कहा कि राधा-रूप मे सुवल ही का आलिंगन करूँ। तभी वृन्दा आ पहुची और भण्डाफोड हुआ कि कैसे किसने रूप-परिवर्तन किया था।

कृष्ण ने राधा से कहा—

तवानुकारात् सुबल दिदृक्षुणा मया त्वमाप्ता पुरत सुदुर्लभा।
सादृश्यत• काचमिवाभिलष्यता प्रेमाग्रभूमिर्वणिजा हरिन्मणि ॥५ २७

राधा ने कहा—मुग्ध लोगो के प्रति भी कुटिल व्यवहार करते हुये आपको लज्जा नही आती। अन्त मे राधा ने मान छोडा। राधा के सग कृष्ण के वनविहार की सज्जा होती है। कृष्ण वृदा के दिये हुए कोकनद से राधा को अवतसित करते है। वनभूमि की उद्दीपन प्रवृत्तियो को सभी प्रशसापूर्वक निहारते है। तभी वहाँ जटिला आ पहुचती है और सारा गुड गोबर हुआ। ललिता, वृन्दा और राधा दूर भाग जाती हैं। कृष्ण का राधा के सग वनविहारोत्सव जहाँ का तहाँ धरा रह जाता है। छठे अङ्क के अनुसार कृष्ण और राधा का शरद्विहार होता है। पौणमासी के निर्देश से गोपियो का देवतायतन मे रात्रि-जागरण हो रहा है। रात्रि के समय राधा भी बाहर रही है। दीपावली के महोत्सव मे आबालवृद्ध गोकुल उन्मादित हो रहा है। गोपियाँ यमुना-तट पर उन्मत्त सी होकर क्या-क्या नही कर रही हैं। राधा कृष्ण के साथ रह कर स्वय पीताम्बरा हो गई है। उसकी सास जटिला विशाखा से प्रार्थना कर रही है कि मेरी पुत्रवधू को कृष्ण के हाथ से बचा लो। इधर कृष्ण ने ललिता को गूढपत्र भेजा कि राधा को मेरे हाथो मे करो। ललिता ने इस दिशा मे सोचा और उपाय उसके हाथ मे ही था कि उसने कृष्ण का पीताम्बर चुरा रखा था।

कृष्ण की वशी बजती है। वशी की धुन से राधिका के बुलाने का प्रयास सफल होता है[1]। राधा के मनोभाव स्वगत से व्यक्त होते है—

मदयति मम मेधा माधुरी माधवस्य ॥६ १६

सखियो के साथ कृष्ण का परिहास चलता है। ललिता ने कहा कि राधा को छू तक नही सकते। उसके उत्कोच माँगने पर कृष्ण ने कहा कि सन्ध्या को राधा को भी छोडकर तुम्हारा ही बनकर रहूगा।

---

१ वशी की धुन से नीचे लिखा पद्य गाया जाता है—

अयि सुधाकरमण्डलि मण्डय त्वमटवी मृदुपादविसर्पणै।

उदयशैलतटी-निहितेक्षणो ननु चकोर-युवा परितप्यते ॥ ६ ६

कृष्ण शारद श्री के अनुरूप राधा को अलङ्कृत करने के लिए सामग्री सचय करने गये। इस बीच राधा कदेली-कुञ्ज मे छिप गई। ललिता ने पूछने पर कृष्ण से बताया कि वह घर चली गयी। कृष्ण को तब तो स्थल-नलिनी और वृंदाटवी राधामय दिखाई देने लगी। विदूषक मधुमगल ने कहा कि आपको राधा देता हूं। मुझे पारितोषिक प्रदान करें। उसने पत्ते पर राधा लिखकर कृष्ण को पकडा दिया। इधर-उधर झांकने पर छिपी राधा दिखाई पडी। राधा से अदृश्य हुए कृष्ण तमाल-षण्ड मे है। राधा और सखियाँ उन्हे ढूढती हैं। जिस काले वातावरण मे कृष्ण छिपे है, उसके रक्षक होने के कारण वे स्तुति करते हैं—

> रे ध्वान्तमण्डल सखे शरणागतोऽस्मि
> विस्तारयस्व तरसा निजवैभवानि।
> अभ्याशमभ्युपगतानि मुहुर्यथा सा
> नावैति मा नवकुरगतरंगिनेत्रा ॥६ ३१

अन्त मे राधा को कृष्ण मिले और सप्तपर्ण कुञ्ज मे थकावट मिटाने के लिये पहुंचे। वहीं कुछ देर मे सखियाँ भी पहुंची, और अन्त मे वहाँ रग मे भग करने वाली राधा की सास जटिला पहुंची। पर तब तक तो राधा कृष्ण का शरद्विहार निष्पन्न हो चुका था।

सातवें अङ्क की कथा के अनुसार वर्षा ऋतु के समारम्भ मे एक दिन प्रातःकाल अभिमन्यु पौर्णमासी से अनुमति ले गया कि अपनी पत्नी राधा को कृष्ण के हाथ से बचाने के लिए अब मैं दूर मथुरा जाना चाहता हूं। पौर्णमासी ने समझाया कि तुम वास्तविकता को समझो। वहाँ मथुरा मे कस राधा को तुमसे छीन लेगा। अभिमन्यु ने मथुरा जाने का कार्यक्रम छोड दिया। उसने अपनी माता की आज्ञा के अनुसार राधा को चन्द्रावली-चण्डिका के स्थान पर दीक्षा करने का कार्यक्रम पौर्णमासी को बताया। पौर्णमासी ने कहा—यह ठीक है।

वृन्दा ने पौर्णमासी से कहा कि कृष्ण ने मुझे आदेश दिया है कि आज सौभाग्य पूर्णिमा के दिन गौरीतीर्थ पर पद्मावलम्बित-कर प्रियतमा को लाओ। इस सदेश का अर्थ पद्मा ने किया कि चन्द्रावली के साथ कृष्ण सौभाग्य-पूर्णिमा का विहार करेंगे और ललिता ने समझा कि राधा के साथ। इस सम्बन्ध मे परिजनो मे बडा ऊहापोह हो रहा था।

इधर सौभाग्य-पूर्णिमा के दिन कराला ने अपनी पुत्रवधू चन्द्रावली को उसके पति गोवर्धनमल्ल के पास भेजकर सौभाग्यशालिनी बनाने का उपक्रम किया। पौर्णमासी ने राधा को गौरीतीर्थ पर पहुंचाने की योजना बना ली। वृन्दा, ललिता और विशाखा सभी इस योजना को सफल बनाने मे लग गईं।

चन्द्रावली को करालो गोवर्धन मल्ल के पास जिस गोवर्धन गिरि पर भेजना

चाहती थी, वह गौरीतीर्थ के समीप ही था, जहाँ कृष्ण नायिकाओं से मिलने वाले थे। पद्मा की योजना थी—

सौभाग्य-पूर्णिमाहे गौरीतीर्थे फुल्लिते मधुना।
अद्य रममाणा हरिणा मुखेन चन्द्रावली पश्य ॥ ७७

योजना पूरी हुई। सरपण तीर्थ के समीप सखियों के साथ चन्द्रावली और कृष्ण मिले। पद्मा ने प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण से कहा कि आप का मनोरथ पद्मावलम्बिकरण्या इत्यादि सुनकर मैंने छलपूर्वक चन्द्रावली से आपको मिला दिया। गौरीतीर्थ पर इससे मिलें। कृष्ण ने समझ लिया कि ऐसी परिस्थिति में राधा से मिलना सम्भव न होगा तो चन्द्रावली के संग ही विहार हो। तभी राधा के समीप होने के लक्षण प्रतीत हुए। पहले तो ललिता और वृन्दा आईं और उन्होंने देखा कि कृष्ण चन्द्रावली-प्रसक्त हैं। वस्तुस्थिति को वे प्रतिनायिका की सखियों से बातें करके जान ही रही थीं कि चन्द्रावली की सास कराला आ गई। उसने कृष्ण और चन्द्रावली को अपशब्दात्मक सम्बोधनों की झड़ी से अभिषिक्त किया। चन्द्रावली को लेकर वह चलती बनी। उसकी सखियाँ भी तितर-बितर हुईं।

कृष्ण गौरीतीर्थ पर जाकर राधा-संगम के लिए सर्वथा उन्मुक्त हुए। राधा का उपहार चम्पककुसुम उन्हें वृन्दा ने दिया।

कृष्ण राधा के पास पहुँचे। सखियों ने देखा—

पश्चादुपेत्य नयने स्मित राधिकाया।
कम्प्रेण पाणियुगलेन हरिर्दधार ॥७३७॥

राधा ने लीलाकमल से हरि पर प्रहार किया। सखियों ने राधा और कृष्ण की केलिमाध्वीक का पान किया—

राधामाधवयोर्मध्या केलिमाध्वीकमाधुरीम्।
धयन्नयनभृङ्गेण तृप्तिमभिगच्छति ॥ ७८१

केलि के पश्चात् कृष्ण ने राधा का अवनमन किया। उनकी प्रणय लीला चरमोत्कृष्ट रही। कृष्ण के मुँह से 'चन्द्रानने' का चन्द्रामात्र निकला कि राधा ने समझा कि चन्द्रावली पर वे आसक्त हैं। उसने मान किया। स्पष्ट वक्तव्य राधा का है कि कृष्ण के प्रेम में निष्कपटता का सर्वथा अभाव है। वह वहाँ से चलती बनी। कृष्ण ने कहा कि गौरी का वेष धारण करके राधा को प्रसन्न करूँगा। मधुमंगल ने कहा कि एतदर्थ वेष-सामग्री पद्मा ने मुझ से रखवाई है। कृष्ण ने वृन्दा को साथा कि वहाँ गौरीतीर्थ के गौरी मन्दिर के गर्भगृह में गौरी के रूप में रहूँगा। वहाँ अपनी भगिनी के रूप में आप मुझे बतायें। इधर राधा भी सखियों के कहने से वृन्दा के पास आई कि आप ही शरण हैं। सभी वहाँ पहुँचीं। वहाँ उन्हें जटिला मिली। जटिला को चन्द्रावली की सखी पद्मा से समाचार मिल चुका था

कि आज राधा गौरी की अराधना करने के लिए पहुच रही है। वह जानती थी कि राधा की यह पूजा उपचारमात्र है कृष्ण-सगम के लिए। राधा बनावटी गौरी (वास्तविक कृष्ण) की आराधना कर रही है। उससे राधा का प्रेमभाव सवृद्ध हुआ। बनावटी गौरी न पुरुषोचित प्रणयारम्भ किया। तभी जटिला आ पहुची। उसने समझ तो लिया कि कही राधा-कृष्ण विलास कर रहे है। उसने गौरी-मन्दिर के द्वार के पास कान लगाकर सुना कि राधा देवी से प्रार्थना कर रही है कि आप मेरी प्रार्थना मान लें। देवी ने कहा कि मेरी पादसेविका के लिए क्या अप्राप्य है? जटिला को वृन्दा न बताया कि राधा अभिमन्यु के प्राणो की भीख देवी से माँग रही हैं। परसो उसे कस भैरव को बलि चढाने वाला है। अब तो राधा के साथ जटिला भी देवी से भीख मांगने लगी। अन्त मे देवी (कृष्ण) ने वरदान दिया—

वशीकृतास्मि वशीन्द्रदुष्करैं—
स्तवाद्य राधे नवभक्तिदामभि।
नदिष्टसिद्धिं कृतगोकुलस्थिति
सदा मदाराधनतस्त्वमाप्स्यसि॥ ७ ५७

अभिमन्यु ने प्रण किया कि राधा को अब मथुरा की ओर नही ले जाना है। जटिला ने राधा का आलिंगन करके कहा—

'रक्षितास्मि।'

देवी ने अभिमन्यु को डाँट लगाई कि अब राधा पर अविश्वास न करना[1]। राधा के लिए कृष्णमिलन-पथ निर्बाध और प्रशस्त हो गया।

नाट्यशिल्प

विदग्धमाधव मे प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक कतिपय पात्रो का सामाजिको को परिचय देने के लिए और नाटक के कार्य-कलाप मे उनके विशेष उद्देश्यो और विधेयो का ज्ञान कराने के लिए भी है

सवादो मे नाटकीयता और आनुषगिक अभिनय लाने का भरपूर प्रयास वाक्क्रीडा द्वारा किया गया है। यथा यशोदा कृष्ण से पूछती हैं कि प्रतिदिन अपराह्न में तुम्हारे खाने के लिए जो मिठाइयाँ बनाती हूँ, वे ढढी हो जाती हैं। उत्तर कृष्ण का सहचर मधुमगल देता है—

गोम्य शपे किमपि दूषणमस्य नास्ति
(इति वागुपक्रमे कृष्ण सस्नेहमेन पश्यति)
ताभिर्यदेष रभसादाकृष्यमाणा
कुञ्ज विशत्यधिककेलिकलोलुपाभि
(इति वागसमाप्तौ)

---

१ यह कूटघटना है।

कृष्ण मन मे सोचते है कि गोपियें से मेरे गोपनीय प्रसग को छेड रहा है। उसे सकेत से रोकते है और सिर धुनते हैं।

मधुमगल कहता है कि रोकते क्यो है? आज तो आप की माँ के सामने सारी पोलपट्टी खोल ही दूँ। कृष्ण यह सुनकर मन मे सोचते है कि आज तो इसने मुझे लज्जाजाल मे गिराया ही। अन्त मे मधुमगल न कहा--

पीताम्वरस्त्वरितमम्ब सुहृद्घटाभि ॥१ २०

उसन मन मे रखा था कि गोपियाँ इन्हे केलि के लिए कुञ्ज में ले जाकर विलम्ब कराती हैं, पर गोपियों के स्थान पर कहा सुहृद्वर्ग।

इसी प्रकार जब पौर्णमासी ने कृष्ण से कहा कि पुष्पावचय के लिए गोपियाँ इकट्ठी होंगी तो आपका महोत्सव होगा। कृष्ण को शृगारित वृत्ति की गन्ध इससे अवश्य मिली। दूसरे ही क्षण पौणमासी न अपने अभिप्राय की दिशा दूसरी करती हुई कहा—

एवमभिप्रायास्मि। तत तासा शून्येषु सद्मसु सखिभिस्ते सुखमपपहर्तव्यानि गव्यानि[1]।

भावी कथा की प्रवृत्ति को कवि बतलाते चलता है। वह प्रथम अक मे पौणमासी से कृष्ण को सूचित कराता है--

सा विष्णुपदवीथी सचारिणी राधा नृलोके केन लभ्यताम्।

अर्थात् अभिमन्यु स विवाह भले ही हो, प्रेयसी तो राधा आपकी ही होगी।

रगमञ्च पर स्त्रियो का हनन। प्रगल्भ व्यापार अन्यत्र कदाचित् ही मिले। कराला, मुखरा और जटिला तो मारपीट के लिए उतारू रहती हैं और दण्ड-प्रयोग मे निष्णात है।

नाटक म स्त्रियो और विदूषकादि के सवाद मे पद्यभाग सस्कृत मे हैं। नियमानुसार उन्हे प्राकृत मे होना चाहिए था। स्त्रियो के सवाद के गद्यभाग यथानियम प्राकृत मे है। गीतोचित पद्यो को स्त्रियाँ कभी-कभी प्राकृत मे बोलती है।

सवाद में शाब्दिक कौशल का प्रासगिक विन्यास चमत्कारपूण है। मधुमगल के पूछने पर जब कृष्ण कहते है कि माला बिना शून्य हृदय हू, तो मधुमगल तत्काल कहता है 'बाल ति भण' अर्थात् माला के स्थान पर बाला (राधा) कहे।

नाटकीय परिस्थियो मे वैपरीत्य का सदर्शन कवि ने कौशल पूवक किया है। यथा,

रसोक्त्यस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दित हि तत्॥

इनको उदाहरण नामक भूषण मे भी रख सकते हैं।

वाक्य यद् गूढतुल्यार्थ तदुदाहरण मतम्॥
शशी वृत्तो वह्नि परमहह वह्निर्मम शशी॥ २·३

---

१ उपर्युक्त दोनो उदाहरण अवस्यन्दित नामक वीथ्यङ्ग हैं।

अर्थात् चन्द्र आग का काम करता है और आग चन्द्र की भाँति शीतल है। यह वियोग मग्न राधा की दशा है।

छायानाट्य

चित्र की छायानाट्य का माध्यम द्वितीय अंक में बनाया गया है। राधा कृष्ण के चित्र को देखकर कहती है—

हन्त हृदय यस्य प्रतिच्छन्ददर्शनमात्रेण ईदृशी दुरूहमगमा उपस्थिता तेऽवस्था तत्रापि पुना राग वहसि।

इस चित्र को विशाखा ने बनाया था और राधा ने इसे वणिकाकुञ्ज में बैठ कर देखा था। उसे देखकर वह उन्मत्त सी हो गई। पंचम अंक में सुबल राधा बनता है और वृन्दा बनती है ललिता और वे दोनों केवल जटिला को ही नहीं छलते, कृष्ण को भी चक्कर में डालते हैं।

नर्म

कवि ने अपनी कला द्वारा कथापुरुषों के समीचीन स्तर के अनुरूप नर्म प्रस्तुत किया है। पौर्णमासी कृष्ण से कहती है—

गोपेन्द्रवस्य तनयोऽसि नयोपपन्न
स्तातस्तथा व्रजकुले भुजयोर्बलेन।
लीलाशतैस्तदपि निःकुलयोपितस्त्व-
मुन्मादमुद्वहसि मानव राधिकाया॥ ३५

यह बुढ़िया कृष्ण और राधा का मेल-मिलाप कराने के लिए नियुक्त है। उसका यह कहना है। यह परिहास कूटघटना है। रूपगोस्वामी कूटघटना-विधान में नदीष्ण थे। उन्होंने बारबार इसका प्रवर्तन किया है।

एकोक्ति

विदग्धमाधव में कतिपय विशुद्ध एकोक्तियाँ हैं। चतुर्थ अंक में पन्द्रहवाँ और सोलहवाँ पद्य एकोक्ति हैं। यथा

कृष्ण—(राधा स्मरन् सानन्दम्)

भ्रमरति यद्भ्रूचापे शरयुग्ममकरोत् स्मरो धनुः पौष्पम्।
मधुरिममरिमभरमूपा भूषायै मे प्रिया सास्तु॥ ४ १५
(पुनः सौत्सुक्यम्।)

सा मुग्धमुषमा निर्जितराकाचन्द्रा वलीलसन्मध्या।
मुहुरपरास्यति राधा मदुरसि रसिता निमान्मानम्॥ ४ १६

एकोक्ति के द्वारा प्रेक्षकों को कुछ आवश्यक सूचना दी गई है और साथ ही मनोरंजन की सामग्री भी। यथा,

भ्रमरेऽपि गुञ्जति निकुञ्जकोटरे
मनुते मनस्तु मणिनूपुरध्वनिम् ।
अनिलेन चञ्चति तृणाञ्चलेऽपि ता
पुरतः प्रियामुपगता विशङ्कते ॥ ४ १७

इसी अंक में आगे चलकर अभिसार-भूमि में कृष्ण अकेले रह गये हैं। प्रभात होने वाला है। राधा को मिलने का अवसर उन्होंने नहीं दिया था, फिर भी राधा के लिए चिन्ता उन्हें थी। इस एकोक्ति में प्रातःवर्णन के पश्चात् वे राधा की विप्रलम्भावस्था का वर्णन करते हैं। यथा,

कपटी स लता कुटीमिमां सखि नागादधुनापि माधव ।
इति जल्पपरीतया तया कतमदीर्घा गमिता कथं तमी ॥४ २७

उन्होंने लक्षणों से जान लिया था कि राधा आई थी। अन्त में वे राधा की सूर्याराधन-वेदिका पर जा बैठे।

विदग्धमाधव के पञ्चम अंक में मानवती राधा की एकोक्ति विशेष उल्लेखनीय है। कृष्ण की मनुहार ठुकराने का अनुताप उसे है। वह रसाल-मूल में काँपती हुई गुनगुना रही हैं—

कर्णान्ते न कृता प्रियोक्तिरचना क्षिप्ता मया दूरतो
मल्लीदामनिकामपथ्यवचसे सख्यै रुषा कल्पिता ।
क्षोणीलग्न-शिखण्डशेखरमसौ नाभ्यर्थयन्नीक्षित
स्वान्तं हन्त ममाद्य तेन मदिरागरेण दन्दह्यते ॥ ५ ५

धन्यास्ता हरिणीदृशः स रमते याभिर्नवीनो युवा
स्वैरं चापलमाकलय्य ललिता मां हन्त निन्दिष्यति ।
गोविन्द परिरब्धुमिन्दुवदनं हा चित्तमुत्कण्ठते
धिग्वामं विधिमस्तु येन गरलं मानाभिधं निर्ममे ॥ ५ ७

(भृङ्गीमवेक्ष्य)

कृमिरपि नमितात्मा हन्त वृन्दावनेऽस्मिन्
वलयति निजमौली बर्हमौलेर्निदेशम् ।
अनुनयति मुहुर्मा नेतुरामालिनीय
यदमलमधुरोक्तिस्तस्य हन्ति शठस्य ॥ ५ ८

कध एसो म मोहिन परिरद्ध, उवसण्णो कण्हो। हन्त भो वल्लत्ताशालिन् -चन्दा अलीकोऽचिरागमगुरुकुरग, अवेहि। एसो तुम परिभविस्ससि मए।

यमुनातीरकदम्बाः सम्प्रति मम हन्त साक्षिणो यूयम् ।
एष बलान्मामबला गोकुलधूर्तं कदर्थयति ॥५ ६

राधिका की उत्कण्ठा की यह पराकाष्ठा एकोक्ति के द्वारा ही व्यक्त हो सकती थी, अन्यथा नहीं। यही एकोक्ति की उपयोगिता है।

पात्रप्रवेश

पात्रों को रंगमंच पर लाने के लिए नाटककार को पूर्वसूचना सोद्देश्य देनी चाहिए कि अमुक पात्र के रंगमंच पर आने की सम्भावना है। रूप ने श्लेषालंकार के द्वारा दूसरे अर्थ में पूर्वप्रयुक्त पदों को पात्र नाम सज्ञित करके कहीं कहीं पात्रों का प्रवेश कराने में कौशल दिखाया है। यथा सप्तम अंक में—

चन्द्रावली—अम्महे ललिता वृन्दावनलक्ष्मी ।
(ततः प्रविशति ललिता वृन्दा च।[1])

अन्यत्र

चन्द्रावली मामनुरुध्यमाना रुणद्धि पद्मे भवती बलेन।
मल्ली तमालाभिमुख मिलन्ती हिंस्लेव वल्ली पुरतः कराला ॥७ २८

कृष्ण के इतना कहते ही कराला आ धमकती है।

चरित्रचित्रण

रूप की चरित्र-चित्रण कला दुर्बोध है। तृतीय अंक के आरम्भ में उनकी पौर्णमासी कृष्ण को आशीर्वाद देती है—

'गोपस्तननटीष्वलम्पटी भव।'

यह पौर्णमासी उज्जयिनी के सान्दीपनि की माता, काषायाम्बरधारिणी श्वेतकेशा और नारद की शिष्या है। कृष्ण भी पौर्णमासी को द्वितीय अंक में धूर्त विशेषण से सम्बोधित करते हैं।

रूप ने मधुमंगल नामक कथापुरुष का सृजन किया है, जो सान्दीपनि का पुत्र होने पर भी अर्धविदूषक बन गया है। यह कृष्ण की पोलपट्टी खोलकर मनोरंजन प्रस्तुत करता है। राधा के चक्कर में पडे हुए कृष्ण को वह ब्रह्मचारी शिरोमणि कहता है। जब कृष्ण कहते हैं कि हम गोपियों से क्या लेना देना तो वह समीक्षा करता है—

अम्महे प्रियवयस्यस्य हृदयस्याद्यापि रागो युष्मद्गोपिकानामगेषु न मया दृष्टोऽस्ति। प्रत्युत नासामगरागः एवास्य हृदये दृश्यते।

कभी-कभी कवि एक ही विशेषण पद से पूरा चरित्र-चित्रण कर देता है। मुखरा के लिए वह विशेषण देता है—गड्डुर-विषाणकठोरे

१ यह अदृष्टाहृति का उदाहरण है। चन्द्रावली ने वृन्दावन की शोभा के सान्निध्य की चर्चा की और आ गई वहाँ राधा के आगमन को बताने वाली दो सखियाँ ललिता और वृन्दा, जिनसे चन्द्रावली को चिढ़ थी।

कृष्ण माध्वीकपान करते थे—कवि की यह कल्पना यदि किसी पुराणवचन पर आधारित भी हो तो भी ऐसे भक्तिरसात्मक नाटक में ग्रहणीय नहीं होनी चाहिए थी।[1]

अन्यत्र वनलताओं का मानवीकरण है—

स्मित वितनु माधवि प्रथय मल्लि हासोद्गमं
मुदा विकसपाटले पुरटयूथि निद्रां त्यज।
प्रसीद शतपत्रिके भज लवंगवल्लिश्रियं
दधार सह राधया हरिरयं विहारस्पृहाम्॥५ ६४

यह वृन्दा नामक वनदेवी का आह्वाद है। यह वनदेवी पात्र बनकर रंगमंच पर आती है।

कवि ने कीर और सारिका को भी पात्ररूप में प्रस्तुत किया है, यद्यपि ये रंगमञ्च पर नहीं आते और नपथ्य से ही बोलते हैं। सारिका कहती है—

चञ्चलसन्ध्याघन इव मुहुरनुरागं तनोति ते स्वामी।
वहति स्नेहं राधा केवलं नवनीतपुत्रीव॥ ५ ३७

बीसवीं शती में वर्तमान आधुनिकाओं का स्वरूप कवि की इस सोलहवीं शती की रचना में भी मिलता है। ऐसा लगता है कि आज की कामशास्त्रीय उद्दामता-विशिष्ट आधुनिकायें कुछ आगे नहीं बढ़ पाई हैं। सोलहवीं शती की राधा अपनी सास के विषय में कहती है—

एषा कालरात्रिरिव दारुणा वृद्धा मां दृष्टवती।[2]

यह सर्वथा अशोभनीय है।

नायिकाओं के स्वर्गालु सखी-मैत्र की व्यङ्ग्योक्तियों में चोखापन कहीं-कहीं देखते बनता है। राधा की सखी ललिता चन्द्रावली की सखी पद्मा से सोल्लुण्ठ कहती है—

रोलम्बीनिकुरम्बं चुम्बति गण्डं पिपासया तस्य।
मरति तृषार्तं सरसीं स करीन्द्रस्तं पुनर्नहि सा॥ ७ २१

पद्मा का उत्तर है—

विद्योतमाना राधा प्रेक्ष्यते तावत्तारकालीभिः।
गगने तमालश्यामे न यावच्चन्द्रावलि स्फुरति॥ ७ २५

---

१ कृष्ण-मिलन की प्रतीक्षा करते समय राधिका ललिता से कहती है—
उपनय शयनान्तं साधु माध्वीकपात्रीम्॥ ४ २८

२ ऐसी ही उक्ति चन्द्रावली की भी अपनी सास के विषय में है—
अकाण्डे कथनाया नतिनव्य चाण्डाल्या चण्डिम्ना।
२

शैली

रूपगोस्वामी को श्लेषात्मक शब्दों के प्रयोग का चाव था। किसी वाक्य को वक्ता के अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ में श्रोता ग्रहण करे—यह प्रेक्षकों के विशेष मनोरञ्जन के लिये होता है। जब कृष्ण 'अपराधिकामु वल्लवीषु' कहते हैं तो पौर्णमासी प्रतिवाद करती है कि अपराधिका कैसे हैं? गोपियों के साथ तो राधा है। कहीं-कहीं श्लिष्ट पदावली में अक्षरप्रधान नामक भूषण की सृष्टि की गई है।[1] 'भवनेव नमूल्लासिनो कुसुमेषुरागो वल्लवीनाम्' में कुसुमेषु का अर्थ काम और पुष्प दोनों है।

कहीं-कहीं अन्योक्तियों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति की गई है। यथा,

एषा कोमलाङ्गी कुरङ्गी प्रथम जाले निपतिता।

यहाँ अन्योक्ति-द्वार से कुरङ्गी राधा है। ऐसा ही सन्दर्भ दूसरे अङ्क में है—

मृग्यमाणे वागुराभाधने कुरङ्गी स्वयं हस्त गता।

अर्थात् 'अभी हरिणी को पकड़ने के लिए जाल ढूँढा जा रहा था, तब तक वह अपने-आप हाथ में आ गयी। इसमें भी हरिणी राधा अन्योक्ति-द्वार से है। इसी प्रकार का एक अनन्य पद्य है—

चन्द्रिका चन्द्रलेखायाश्चकोरे पातुमुद्यते।
पिधानं विदधे हन्त शरदम्भोधरावली ॥२.५२

अधोलिखित अन्योक्तियाँ तृतीय अङ्क के अन्त में चमत्कारपूर्ण हैं—

१. एष सतृष्णोऽपि कीरयुवा इमां मधुरां दाडिमीं न प्रतिपद्यते।
२. हृदि ताडितोऽपि दाडिमि सुमनोरागेण ते रुचिं वहता।
पक्विमरसासि किं वा नेति शुकः शङ्कयोदास्ते ॥२.५५
३. कौमुदीयं पौर्णमासीमनुवर्तते।
४. रोलम्बी-निकुरम्ब चुम्बति गण्ड पिपासया तस्य।
५. मरति नृपाणं सरसीं स करीन्द्रस्त पुनर्न हि सा ॥७.२१

रूप की रूपक-परम्परा श्रेणीबद्ध है। उदाहरण है—

हित्वा दूरे पथि यवनरोरन्तिकं धर्मसेतो-
र्मगोदग्रा गुरुशिखरिणं रहसा लङ्घयन्ती।
लेभे कृष्णार्णवनवरसा राधिकावाहिनी त्वा
वाग्वीचिभिः किमिव विमुखीभावमस्या करोषि ॥३.६

उपमानों को कवि प्रकृति की सुन्दरतम विभूतियों से चुनकर प्रस्तुत करता है। यथा, राधा कृष्ण के मुख से उपमेय है—

वदनदीप्तिविधूतविधूदया कुमुदधामधुरामधुरस्मिता।
नखजितोडुरियं हरिरेक्षणा तृणयति क्षणदामुखमाधुरीम् ॥३.२५

---

१ वाक्यमक्षरमपातो भिन्नार्थं श्लिष्टमक्षरम्।

नाटक मे अभिनय की सफलता यदि अभीष्ट हो तो यमकालङ्कार की गुत्थी मे प्रेक्षक को नही डालना चाहिए। वागाडम्बर के विलासी रूप को यह नियम मान्य नही था। उनका नायक स्वय नायिका को यमक की पहेली बूझाता है। यथा,

चन्द्रावलीवदनपुष्करसगिगण्ड-
चन्दावलीकतरनर्ककलकितागौ।
शकाकुलोऽत्र कलयन् कमलायताक्षि
श काकुलोलहृदय प्रविशामि नाहम् ॥४१२

कही-कही पदो का समविन्यास सवादो को चोखापन प्रदान करता है। यथा सप्तम अङ्क मे—

एष पलाशी न खलु तव विलासी।

समीक्षा

भक्ति की आड मे मर्यादापूर्ण शृङ्गार का चरम प्रकर्ष इस नाटक मे दिखाई पडता है।[1] सम्भवत यह कृति राधाकृष्ण की चैतन्य प्रवर्तित भक्तिधारा को सर्वजन-ग्राह्य अथवा लोकप्रिय बनाने के लिये रची गई थी। एक भक्त कवि को ऐसी रचना करनी चाहिए कि नही? यह प्रश्न तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि मे ही समाधेय है। ऐसा लगता है कि भागवत, गीतगोविन्द आदि की परम्परा मे प्रवर्तित शृङ्गारित भक्तिकाव्य उस युग मे कवियो ने आवश्यक माना था।

विदग्धमाधव अधिकाशत कपट-नाटक है। इसके चरितनायक कृष्ण के विषय मे नायिका राधा का कहना है कि वे कपट-परिपाटी-नाटक सूत्रधार हैं। ऐसा लगता है कि गर्भसन्धि का छद्ममय अङ्क अभूताहरण कालान्तर मे इतना लोकप्रिय होता गया कि नाट्यकारो ने शनै शनै इस कपट-तत्त्व को अपनी कृतियो मे सविशेष स्थान दिया।

सूक्तिसौरभ

रूप का सूक्ति-सौरभ रसिक सज्जनो के मुख को सदैव सुवासित करता रहेगा। उसका आदर्श है—

अप्रेक्ष्य वलममात्मनो विदधति प्रीत्या परेषा प्रिय
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि।
विद्यावित्तकुलादिभिश्च यदमी यान्ति त्रभान्नम्रता
रम्या कापि सतामिय विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया॥

---

१ नाटक का चातुर्दिक् निक्षेप नीचे के पद्यो से स्पष्ट है—
सर्वस्व प्रथमरसस्य य प्रथीयान् कसारेरदयति राधया विलास।
वक्तु को विरमतु त जन समन्तादानन्दस्तिरयति चेद्गिरा न वृत्तिम् ॥७२
हरिरेष न चेदवातरिष्यन्मथुराया मधुराक्षि राधिका च।
अभविष्यदिय विसष्टिर्मकराङ्कस्तु विशेषतस्तदात्र ॥ ७३

अथवा-सनिकृष्टस्य सुरभे सौरम्यमनुभूयताम् ।

सूक्तियों में कामशास्त्र की शिक्षा भी दी गई है। यथा,

प्रणयिषु मिलितेषु प्रेमभाजामुपेक्षा
घटयति कटुपाकान्युच्चकैर्दूषणानि ।
दिनमणिरनुरागी प्रोज्भय सन्ध्या हि रक्ता
तमसि निखिलमुग्रे मज्जयत्येष लोकम् ॥१३॥

अन्यत्र—चपलप्रेमाणो बाला रमण्य ।

लोकोक्तियों के द्वारा सवाद में प्रचुर प्रामाणिकता निर्भर है।

यथा,

कृष्ण—(सस्मितम्) ललिते, कृतमत्र वचनचातुरी प्रपञ्चेन। नहि लूतया प्रसारिततन्तवो गन्धसिन्धुरस्य बन्धाय प्रभवन्ति ।

ललितमाधव

ललितमाधव रूपगोस्वामी का दूसरा नाटक है। इसकी रचना १५३७ ई० में हुई।[1] विदग्धमाधव की भाँति इसमे भी कृष्ण का चन्द्रावली, राधा आदि नायिकाओ से प्रणयात्मक क्रीडाओ की कथा है। वैष्णव के मनोरजन के लिए इसका प्रथम अभिनय राधाकुण्ड के तट पर माधव मन्दिर के सामने हुआ था। सम्भवत खुले आकाश मे अस्थायी रगमच की व्यवस्था थी।

कथासार

सन्ध्या के समय कृष्ण गायों के साथ वनभूमि से घर की ओर लौट रहे थे। चन्द्रोदय हो रहा था। भारुण्डा और जटिला आदि वृद्धाओं ने चन्द्रावली नामक नायिका को गर्भगृह में डाल कर उस पर रोक लगा दी थी कि वह कृष्ण से न मिले, क्योंकि चन्द्रावली का विवाह भारुण्डा के पुत्र गोवर्धन से हुआ था। जटिला के पुत्र अभिमन्यु से राधा का विवाह हुआ था। कुन्दलता ने चन्द्रावली को अपने बुद्धिकौशल से मुक्त करके उसे कृष्ण से सगमित करा दिया। उनकी प्रेमवार्ता का समारम्भ होना ही था कि भारुण्डा आ पहुँची। चन्द्रावली पद्मा नामक सखी के साथ भाग खडी हुई। कुन्दलता यशोदा से मिलने के लिए निकल गई। कृष्ण रोहिणी के पास आ गये। अपनी माँ की गोद में सिर रख कर वे बोले—'देहि मे मणि-मण्डनम्'। इसी बीच उन्हें कुन्दलता से समाचार मिला कि अशोककुञ्ज में विराजमान राधा को सनाथ करें। राधा से कृष्ण की भेंट उसकी सखियों और दूतियों के द्वारा कराया जाता था। कृष्ण और राधा एक दूसरे के लिए अनुपम अमृतानन्द निस्यन्द हैं। कृष्ण और राधा क्षणभर के लिए मिले ही थे कि राधा की सास जटिला उसे लेने के लिए कृष्ण का बुरा भला कहने आ पहुँची।

राधा का कृष्ण के बिना समय काटना कठिन हो गया। उसकी सास जटिला

[1] नन्देषु वेदेन्दुमिते शाकाब्दे (१४५६ शा० म०) समापय भद्रवन प्रबन्धम् ।

यह सब जान कर उसे छोड़नी ही नहीं थी। एक दिन उसे सूर्य की पूजा करनी थी। इसके लिए कृष्ण को विप्रवेश में पूजा करने के लिए बुला दिया गया। साथ मे थे मधुमंगल आदि उनके मित्र। इस प्रकार राधा-कृष्ण का मिलन है, जिसमे कृष्ण का आह्लाद वाक्य है—

विहार-सुरदीर्घिका मम मन करीन्द्रस्य या
विलोचनचकोरयो शरदमन्दचन्द्रप्रभा।
उरोऽम्बरतटस्य चाभरणचारु तारावली
मयोन्नतमनोरथैरियमलम्भि सा राधिका ॥२ १०

जटिला न कृष्ण को पहचाना नही। उसने कहा कि यही वटु (कृष्ण) राधा से सूर्य की पूजा कराये। राधा ने उन्हे पहचान लिया। कृष्ण ने मन्त्र पढा—

निभृतमरतिपुञ्जभाजि राधे
त्वदधरवर्धितचापले चलाक्षि।
चटुलय कुटिला दृगन्तलक्ष्मी
मयि कृपणे क्षणमोऽन्नम सवित्रे ॥२ १३

अन्त मे कृष्ण की इच्छानुसार राधा को रत्नसिंहासन पर सन्ध्या समय पहुचाया जाता है। उनकी प्रेमानुवृत्ति में बाधा बन कर कंस का भेजा शंखचूड नामक दैत्य सिंहासन सहित उड जाता है। कृष्ण न उसे मार डाला। सब की रक्षा हुई।

कंस ने अक्रूर के द्वारा कृष्ण और बलराम को मथुरा आने का निमन्त्रण दिया। उनके साथ पौर्णमासी भी मथुरा गई। सारे गोकुल मे विषादच्छाया आ पडी। राधा की स्थिति विशेष शोचनीय थी। वह कृष्ण-वियोग में मुक्तकण्ठ से रोती रही। चक्रवाकी, वायस, शारिका, हरिणी, गुन्जावली, चन्द्रावली, जलधर, गिरिवर गोवधन, कदम्ब आदि को सम्बोधित करती हुई अर्धोन्मत्त राधा साभिप्राय बातें कहती है। प्रगाढ उन्माद होन पर वह सुधबुध खो बैठी। मूर्च्छित राधा के नासा-शिखर पर वनमाली कृष्ण की निर्माल्यमाला रखने पर पुन चेतना प्राप्त हुई। वह कृष्ण से मिलने के स्थान पर यमुना के केलातीर्थ पर जा पहुची। विशाखा और राधा दोनो वहाँ जल मे अवतीर्ण हुई। गम्भीर प्रवाह में निमग्न वे दोनो फिर नही उपराई। उस समय आकाशवाणी हुई—

प्रभुर्भवति क कृती महिमपूरमस्या पर
निरूपयितुमुज्ज्वल जगति गोपवामभ्रुव।
मुनीन्द्रकुलदुर्लभा नवतडिद्विलासाद्यया
भिदा नह वयस्यया मिहिरमण्डलस्याकरोत् ॥३ ५५

यह सिद्धो ने सुनाया था।

ललिता से राधादि की यह जलगति नही देखी गई। वह गिरिशिखर से कूद पडी।

मथुरा मे बलराम और कृष्ण ने कंस वध किया।[1] इसके पश्चात् उनका व्रतबन्ध हुआ, जिसमे सम्मिलित होने के लिए यशोदा के साथ गार्गी आई। कृष्ण के अभिषेक के अवसर पर रोहिणी आ चुकी थी। गोपियों सहित चन्द्रावली को मथुरा लाने के लिए उद्धव गये। किन्तु उसे लेकर पहले ही रुक्मी कुण्डिन नगर चला गया था। उसे शिशुपाल से ज्ञात हो चुका था कि वह वस्तुत रुक्मिणी है। नरकासुर १६१०८ गोपकुमारियों को हर ले गया। जब वे कृष्ण के वियोग म एकत्र होकर यमुना तट पर स्तवपाठ कर रही थी। इन सब वृत्तो मे व्यग्र कृष्ण के मनोविनोद के लिए एक रूपक रचा गया, जिसका अभिनय गन्धर्वों न किया। गर्भाङ्क म रगपीठ पर अभिनता और प्रेक्षक दोनो के रूप मे थे—कृष्ण, मधुमगल मुखरा, पौणमासी और उद्धव। कारे अभिनेता के रूप मे थे राधा, ललिता, जटिला, वृन्दा, अभिमन्यु, माधव। माधव ने वेणुगीत के द्वारा सूचना देकर ललिता को बुलाने का उपक्रम किया। तदनन्तर निकट ही राधा ललिता के साथ प्रकट हुई। माधव माधवीमण्डप मे छिप गये। ललिता ने उस रम्य वातावरण मे राधिका को शीघ्र ही माधव स मिलन का सन्देश दिया। उस गर्भाङ्क के पात्र राधिका से मिलने के लिए कृष्ण उठ खडे हुए तो उद्धव ने उनसे कहा—देव! नाट्यप्रणीतोऽयमर्थ। मुखरा तो राधिका की ओर दौड पडी। उसे पौणमासी न बताया कि यह गान्धर्व है, वास्तविक नहीं। उसके उद्गार को सुनकर मधुमगल ने कहा कि मुझे राधा से कुछ दूर ही होन पर तुम तो कुक्कुरी की भाँति भूँकती थी।

गर्भाङ्क की अभिनत्री राधिका को शका हुई कि हमे मुखरा न देख लिया। इधर जटिला उसके पीछे लगी हुई थी। ललिता के निर्देशानुसार यमुना-तटीय सँकरे मार्ग से राधा चलती बनी। राधा को वही वृन्दा के साथ माधव दिखाई पडे। राधा-माधव को देखकर सातिशय हर्षित थी, किन्तु वह कृत्रिम रोदन करने लगी। माधव ने राधा को देखकर उसके यौवन की भूरि भूरि प्रशसा की। ललिता राधा को माधव-मिलन के लिए प्रोत्साहन कर रही थी कि जटिला ने उसे पुकारा कि तुम मेरी वधू राधा को कहाँ लिये जा रही हो? ललिता ने बहाना बनाया कि गार्गी ने कहा था कि आज सूर्य की पूजा माधवी पुष्प से करने पर करोडो गायें प्राप्त होती है। जटिला ने कहा कि मेरी वधू तो कहती है कि तुम इधर-उधर के बहान बनाकर मेरा अभिसार कराती हो। जटिला ने देखा कि मेरी उपस्थिति मे भी माधव राधा से प्रेमाचार प्रकट कर रहा है। उसने माधव को डाँटा कि किसको डँसने के लिए यहाँ आए हो? माधव न कहा कि तुम्ही।

जटिला को अपहस्तित करने के लिए उसे झूठे समाचार देकर अपन पुत्र अभिमन्यु को ही वेष बदल कर कृष्ण-रूप मे आया हुआ समझ कर चक्कर म डाला गया।

---

१ वरवेमरमान्यास्विनश्चलचाणूरचमूरमदन।
हनुवोल्वलघीरदीदरघदुर्सिह खलुभाजकुञ्जरम्॥ ४५

अभिमन्यु को गौवो का क्रय करना था। ऐसी स्थिति मे पडी माता को छोडकर उसे बिना बनाये ही वह पेटी से सोना लेकर चलता बना।

थोडी देर के पश्चात् जब माधव अभिमन्यु का वेष धारण करके आये तो जटिला ने उन्हें अभिमन्यु समझा और उनकी इच्छानुसार राधा को आज्ञा दी कि इनके साथ चैत्य-वृक्ष के नीचे होने वाले उत्सव मे भाग लो।

कृष्ण इस नाटक को देख कर राधा के वियोगजनित मानसिक उद्विग्नता से अभिभूत होकर पौणमासी से अपनी विषादमयी स्थिति बताते हैं। पौर्णमासी राधा के अभाव मे चन्द्रावली मे सम्प्रति उनका मिलन कराने के लिए उद्यत हो जाती है। चन्द्रावली विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँच चुकी थी।

विदर्भ देश मे कृष्ण क्रथकैशिका के आमन्त्रण पर आये और वहीं सर्वोच्च देवताओं ने उनका राज्याभिषेक किया। उनकी स्तुति करते हुए उनसे कहा गया कि आप रुक्मिणी को सनाथ करें। मौक्तिकचूड नामक मथुरा के वन्दी ने कृष्ण की स्तुति मे राधिका का नाम लिया तो वे भावावेश मे मूर्छित होने लगे। उसी समय उन्हे समाचार मिला कि पार्वती-पूजा के लिए रुक्मिणी दुर्गा मन्दिर मे जा रही हैं। नट का वेश धारण करके कृष्ण वहाँ जा पहुचे। वहाँ रुक्मिणी जब अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही थी तो कृष्ण और सुपर्ण निकट आ गये। कृष्ण पहचान नही रहे थे कि यह रुक्मिणी मेरी पूर्वप्रेयसी चन्द्रावली है। पर उस वातावरण मे उन्हे चन्द्रावली की स्मृति हो आई, जब सुपर्ण ने अपनी वातचीत के बीच 'चन्द्रावली' का दर्शन किया और कहा—

सेय चन्दनपकशीतलकरा लब्वाद्य चन्द्रावली ॥ ५ ३३

कृष्ण के न मिलने पर चन्द्रावली जब अग्निकुण्ड मे गिरकर अपने प्राणों का होम करना चाहती थी, तभी कृष्ण ने उसे पकड़ लिया। जब चन्द्रावली को हस्तस्पर्श के प्रेमिल कारुण्य से ज्ञात हुआ कि यह प्रियतम का आलिंगन है तो वह आनन्द से मूर्छित हो गई। पौर्णमासी भी वहाँ आ गई। उन्होने रुक्मिणी को उठाया। पिता ने चन्द्रावली कृष्ण को अर्पित कर दी। कुछ राजाओ को बुरा लगा कि कृष्ण ने चन्द्रावली से परिणय किया। उन सब को कृष्ण और बलराम ने अपने शौटीय से ध्वस्त किया।

छठें अक मे राधा की प्रिय सखी ललिता के कृष्ण से पुनर्मिलन की कथा है। कृष्ण स्यमन्तकमणि का अन्वेषण करने के लिए अरण्य प्रदेश मे प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्हे सत्राजित् की कन्या सत्यभामा और स्यमन्तकमणि मिलती थी। सत्राजित् ने कृष्ण की माँग को ठुकराया था। सूर्य ने स्यमन्तक मणि और सत्यभामा नामक कुमारी को सत्राजित् को अर्पित करते हुए कहा था—

प्रणेष्यति यशःपर जगति नारदानुज्ञया
वराय वरकोर्तये सुतनुरर्पितेय तव।
स्यमन्तकमणिश्च ते महिनमूर्तिरष्टौ महान्
प्रसोष्यति दिन दिन ननु हिरण्यभारानयम् ॥६ ६

मणि के हस्तान्तरण की कथा है—

मणीन्द्रं पारीन्द्रः प्रवरमहरन्निघ्नतनयं
विनिघ्नन्नेतञ्च प्रबलमथ भल्लकनृपतिः ।
पराभूय स्वैरी तमपि मुरवैरी तव घन
तदाहर्ता पापस्त्वमसि पतितस्तापजलधौ ॥ ६ १६

अर्थात् सत्राजित् के पुत्र प्रसेन को मारकर सिंह मणि को लेगा। उसे मारकर जाम्बवान् उसका स्वामी बनेगा। जाम्बवान् को पराभूत करके कृष्ण उसे ग्रहण करेंगे।

नारद ने सत्राजित् को बताया था कि तुम तो यथाशीघ्र सत्यभामा को कृष्ण के लिए अर्पित करके कल्याण प्राप्त करो। नारद की सूचना के अनुसार जब कृष्ण गोकुल छोड़कर चले गये तो कामाख्या देवी ने नरकासुर से १६१०८ गोप-कुमारियों को अपनी शरण मे मँगवा लिया था।

राधा (सत्यभामा) कृष्ण के वियोग मे आत्मोपेक्षा कर रही है। उन्हे लेकर सत्राजित् की माता नारद की आज्ञानुसार कृष्ण के अन्त पुर के पास आई है। वहीं चन्द्रावली आ गई। इधर राधा को सूय ने बताया था कि जब तक स्यमन्तकमणि कृष्ण तुम्हारे हाथ मे नही बाँध देते, तब तक तुम अपना पहला नाम राधा प्रकट न करना।

सत्राजित् की माता ने सत्यभामा को चन्द्रावली के हाथ सौप दिया कि यह कृष्ण को भेंट है। चन्द्रावली ने उसे ग्रहण तो किया, किन्तु उसके सौन्दर्य से उसका हृदय आन्दोलित हो उठा कि कृष्ण पर कही यह सर्वाधिकार न करले। कृष्ण की अनुपस्थिति मे नववृन्दावन मे सत्यभामा के रहने की व्यवस्था चन्द्रावली ने कर दी।

कृष्ण लौटकर द्वारिका आये। उन्हे राधा की स्मृति उद्विग्न कर रही थी। उनके पास वह स्यमन्तक मणि थी, जो कभी राधा के शरीर पर विराजमान होकर उन्हें आकृष्ट करती थी। कृष्ण ने बताया कि किस प्रकार जाम्बवान् के आवास पर राधा-कृष्ण की मूर्ति बनाकर उनकी आराधना करती हुई ललिता उन्हे मिली, जिसे जाम्बवान् ने पर्वतशिखर से गिरते हुए बचा लिया था। भीष्मक ने कृष्ण से प्रतिज्ञा कराई थी कि मैं किसी अन्य स्त्री का पाणिग्रहण नही करूँगा। अतएव ललिता को कृष्ण रैवतक की किसी कन्दरा म सुरक्षित छोड़ आये थे।

सातवें अङ्क मे नववृन्दा सङ्गम की कथा है। नववृन्दा ने सत्यभामा से बताया कि विश्वास रखो कि तुम्हे प्राणेश माधव मिलेंगे। सत्यभामा ने कहा कि मुझे भी सूय ने बताया है कि नववृन्दावन मे तुम्हे श्याम मिलेंगे। नववृन्दा ने राधा की उत्कण्ठा देखकर उसके लिए यमुनातट पर कदम्ब-मूल के निकट नलिनी दलों की शय्या बनवा दी। राधा शय्या पर जा विराजी। फिर तो उसने मनोविनोद के लिए वनमाली की मूर्तिपूजा का उपक्रम किया। नववृन्दा के पास विश्वकर्मा-विरचित नीलमणि की मुकुन्द-मूर्ति थी। उसे राधा ने दिव्य माल्याम्बर पहनाया और यह गाया—

सोऽयं जीवितबन्धुरिन्दुवदनो भूय समासादित ।।७ १८

राधा ने मूर्ति को साक्षात् कृष्ण मानकर कहा—

सखि पश्य, अयुक्तमयुक्त यन्नीलोत्पलकोमलोऽपि वनमाली कर्कशां वशिकामेव चुम्बति । तस्मादित एनामाकृष्य ग्रहीष्यामि ।

नववृन्दा ने उसे रोका। फिर राधा ने उसका माल्याम्बर, विलेपन आदि से अलंकार किया। तभी चन्द्रावली के द्वारा नियुक्त माधवी के आ जाने से सत्यभामा को अन्यत्र जाना पड़ा।

इधर कृष्ण भी मनोविनोद के लिए नववृन्दावन मे उसी प्रदेश मे आ पहुंचे। वे राधा के वियोग मे नितरां विपन्न थे। घूमते-फिरते वे उस मूर्ति के पास आ पहुंचे, जिसका राधा ने अलंकार किया था। उधर कुछ सखियो की बातें सुनाई पड़ी तो कृष्ण ने मूर्ति को दूर हटवाकर वही वेदिका पर अपने विराजमान हो गये। राधा ने उन्हें देखा तो कहा कि यह मूर्ति तो

सत्यमेव माधवदर्शनचमत्कारमुत्पादयति ।

कृष्ण ने राधा को पहचान लिया। इधर राधा स्तब्ध थी—

यत् गोविन्दस्य प्रतिमामेव गोविन्द मन्ये ।[1]

मूर्तिरूपी कृष्ण से रहा नहीं गया। वे बोल उठे—

अयि मायायन्त्रमयि राधिके, सत्यमिदानीमेव कृष्णः क्षेमी, यदिह सर्वमुद्रा त लोकोत्तरमनुकुर्वती त्वमस्य क्षेमं पृच्छसि ।

राधा ने नववृन्दा से चिल्लाकर कहा कि अरे, यह मूर्ति तो बोलती भी है—

अहो गोविन्दस्य प्रकृतिमुपलब्धा प्रतिकृति ।।७ ३५

स्वाभाविक धर्म गता प्रतिमा ।

इसी अवसर पर चन्द्रावली के वृन्दावन मे आने का समाचार मिला। सत्यभामा को वहाँ से हटना पड़ा। चन्द्रावली वहाँ सपरिवार आयी। चन्द्रावली ने कृष्ण का वृन्दावनविहारी-रूप देखा तो समझ गयी कि मेरी उपस्थिति इस वातावरण मे अभीष्ट नहीं है। वे चलती बनी यह कहकर कि आप अपनी हृदयेश्वरी के साथ स्वच्छन्द विहार करें।

नवम अंक मे राधा और कृष्ण का विहार है। प्रेमधारा मे सत्यभामा अवगाहन कर रही है। कृष्ण के आने पर सौगंधिक-माला चन्द्रावली ने उन्हें दी। कृष्ण ने उनसे अनुमति ली कि सत्यभामा को सनाथ करें। वे नववृन्दावन मे जा पहुंचे, जिसे षड्ऋतु समलंकृत कर रहे थे। बातचीत मे कृष्ण ने राधा की प्रिय सखी विशाखा की चर्चा की। कृष्ण ने बताया कि खाण्डववन मे तपस्विनी बन कर विशाखा राधाभीष्ट-साधन नामक वन्य व्रत कर रही थी। उससे मैं मिला। वह तभी मिलेगी, जब स्यमन्तक मणि की प्राप्ति राधा को हो जाये। राधा और कृष्ण ने मूलकालीन

१ इसमे छायातत्त्व सविशेष है।

वृन्दावन-विहार की सभी स्थलियों को देखा। फिर वे यमुना-तट की ओर चले।

राधा के परिष्वङ्ग के कारण सौगन्धिक-माला टूट गयी, जिसे चन्द्रावली की हंसिनी चोंच में दबाकर ले उड़ी और चन्द्रावली को दिया। कृष्ण दूर जाकर राधा के लिए दूसरी माला बनाने के उद्देश्य से फूल चुनने लगे। चन्द्रावली सत्यभामा की वेश-भूषा में सज्जित हुई और चल पड़ी वृन्दावन में। कृष्ण ने दूर से उसे देखा तो उन्हें भ्रान्ति हुई कि यह राधा हैं और कहा कि तुम तो मेरे प्राणावलम्बन के लिये परमौषधि हो। नववृन्दा ने देखा कि कृष्ण बुरे फँसे। उसने केतकी पत्र पर लिखा कि जिन्हें आप राधा समझते हैं, वे चन्द्रावली हैं। पत्र को कृष्ण के हाथ में दिया पालतू हारीत ने। कृष्ण ने पढ़कर वस्तुस्थिति जानकर कहा, चन्द्रावलि, मुझे प्रीति प्रदान करें। चन्द्रावलि ने कृष्ण को सौगन्धिक माला दिखाई। कृष्ण ने कहा कि यमुना के निचर प्रवाह में मेरी माला कहीं गिर गयी। आप अन्यथा न सोचें। यह कहकर वे दूर चलते बने। वहाँ से चन्द्रावली सत्यभामा की ओर चली और उससे मिलते ही कहा कि अब तो कृष्ण की संगति से तुम्हारी विकलता मिटी। चन्द्रावली ने यह कहने का प्रौढोचित साहस किया—

तस्मिन् सुदृढे बलात्कारेण भुजदण्डपीडने स खलु सुवृत्त कौस्तुभो युवयोर्मध्यस्थ आसीन्नवेति।

उलाहना सटीक था। राधा ने कहा कि आपको तो मेरी रक्षा करनी थी। फिर अपने को दोष क्यों नहीं देतीं। चन्द्रावली ने समझ लिया कि कृष्ण जैसे नायक और सत्यभामा जैसी सुन्दरी से कुछ दूसरा सम्भव नहीं है। वे राधा को क्षमा करके चलती बनीं।

नवम अङ्क में कृष्ण और राधा नववृन्दावन में विहार कर रहे हैं। तभी मधु-मङ्गल के कीर ने नेपथ्य से सुनाया—

वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी मुमनस्विनी॥ ९.१५

और राधा कन्दरा में जा छिपी। वहाँ मुकण्ठी ने उसे माधवी का भेजा प्रसाधन दिया, जिसे धारण करने के लिए वह अन्यत्र चली गयी। इधर कृष्ण को राधा की पड़ी। उन्होंने मारन, दाडिमी, शुक, आदि से पूछा। अन्त में मुकण्ठी नामक चन्द्रावली की परिचारिका ने कृष्ण से कहा कि आप तो मेरी आराधनीय विद्याधरी को इस कन्दरे में चलकर कौस्तुभमणि के प्रकाश में चित्रावली दिखा दें। कृष्ण गुफा में घुसे तो कौस्तुभ के प्रकाश से वहाँ दिन जैसा प्रकाश हो गया। राधा ने उस प्रकाश में देखा कि मैंने तो रुक्मिणी जैसी दिखाई देने के लिए अभिप्रेत प्रसाधन किया है। कृष्ण और मधुमङ्गल ने उन्हें देखा तो देवी रुक्मिणी समझा। मुकण्ठी ने उनको समझाया कि यह राधा ही हैं। उन्होंने रुक्मिणी का नेपथ्य धारण कर रखा है। अन्त में कृष्ण ने राधा को पहचाना। फिर चित्रदर्शन आरम्भ हुआ। चित्रावली में नन्द-महोत्सव, पूतना का स्वर्गवास, शकटभंजन, तृणावर्तासुर का प्रणाश, यशोदा का दधि-

मन्थन, अर्जुन-भजन, कृष्ण का ओखल में बाँधा जाना, अघासुर, ब्रह्मा का कृष्ण की स्तुति करना, तालासुर-वध, प्रलम्बासुर-वध, कालियदमन-लीला, वासोहरण तीर्थ, गोवर्धनोद्धरण, राधाकृष्ण शयन, वृन्दारण्य, रासोत्सव, अम्बिकावन, शंखचूड-वध अरिष्टासुर-वध अक्रूर, मथुरा-प्रयाण, कुवलयापीड-वध कंसवध आदि दृश्य आचित्रित थे।

चित्रदर्शन के पश्चात् राधाकृष्ण रात्रि के दूसरे याम में कालिन्दी-तट पर पहुचे। वहाँ चन्द्रावली आ पहुची। राधा आम्रवृक्ष के झुरमुट मे जा छिपी। चन्द्रावली ने देखा कि कृष्ण अन्यमनस्क हैं और राधा की चिन्ता कर रहे है। वे चलती बनी। कृष्ण चल पडे राधा की खोज मे।

दसवें अङ्क मे पौर्णमासी व्रज से नन्द को सकुटुम्ब लेकर द्वारका पहुची। इधर राधा और कृष्ण का प्रणय-सम्बन्ध देखकर रुक्मिणी ने राधा को नववृन्दावन के स्वतन्त्र वातावरण से हटा कर अन्त पुर में छिपाया। पर कृष्ण को उनके बिना रहा न गया। इस बीच रुक्मिणी ने मधुमंगल के कीर को नववृन्दा के हाथो मँगवा लिया। नववृन्दा ने कृष्ण से बताया कि अब तो प्रेम के बहाने रुक्मिणी राधा को एक क्षण के लिए भी नही छोडती। उस दिन स्यमन्तकमणि को लेकर पिंगला नामक राधा की सखी कृष्ण के पास आई और बोली कि सत्राजित् ने अपनी कन्या सत्यभामा के लिए यह स्यमन्तकमणि भेजी है। उसने मणि कृष्ण को दे दी। कृष्ण ने कहा कि अब तो सत्यभामा को भी मिलना ही है। यह कैसे—

पिंगलानुसृन मणिसर्गी सगतो युवतिवेषकलाभि।
आदरादनुमतो निशि देव्या तामहं रमयितास्मि मृगाक्षीम् ॥१०५

कृष्ण ने सध्या के समय नवयुवती का वेष धारण किया। नववृन्दा को काम दिया गया कि अन्त पुर मे जा विराजो। वहाँ रुक्मिणी राधा से परिहास कर रही थी कि तुम तो कृष्ण के सहवास के स्मरण-मात्र से उद्विग्न हो। तभी नववृन्दा ने उसे कीर दिया। उस समय प्रमदावेषधारी कृष्ण पिंगला के आगे-आगे मधुमंगल के साथ वहाँ पहुचे। मधुमंगल ने रुक्मिणी से कहा कि सत्राजित् ने सत्यभामा को देने के लिए यह स्यमन्तकमणि इन दो स्त्रियो के साथ भेजा है।

माधवी और रुक्मिणी चक्कर मे आ गई। नववृन्दा ने कहा कि यह श्यामला आप से भी लजाती है। सत्यभामा से बात करने के लिए इसे उनके साथ स्वर्णनिकेतन म एकान्त म भेज दें।

सखि सत्ये सुवर्णमन्दिरं गत्वालिंग्यता रथांगी।

उसी समय नववृन्दा के द्वारा लाये हुए कीर ने सुनाया कि रुक्मिणी के द्वारा रोकी हुई राधा मेरा विनोद नही कर पा रही है। इसे सुनकर रुक्मिणी ने कहा कि इसे अपने पिता के पास भेजती हूँ कि वे जान लें कि कृष्ण किस प्रकार दूसरी नायिकायें बनाये हुए हैं। चलकर देखा जाय कि स्वर्णनिकेतन मे क्या हो रहा है?

वहाँ पहुँच कर उसने सत्यभामा से कहा कि तुम्हारे पिता सत्राजित् की भेजी हुई मणि को देखने आ गई हूँ। नववृन्दा ने स्त्रीरूपधारिणी कृष्ण के हाथ से उतार कर उसे रुक्मिणी को दिया। रुक्मिणी ने पहचान लिया था कि श्यामला स्त्री वस्तुत श्याम कृष्ण हैं। उसने उनसे कहा—मुझे आपके विलास मे बाधा डालने से पाप लग रहा है। मुझे तो आज्ञा दें तो गोकुल मे पल्लीवासिनी बन कर रहूँ, जिससे आपका नवाभिरामिक प्रणय-पथ प्रशस्त हो।

इस बीच व्रज से यशोदा, रोहिणी, मुखरा, पौर्णमासी आदि द्वारका आ पहुँचे। कृष्ण ने यशोदा से अपने पालित पशु-पक्षियो का समाचार पूछा तो यशोदा ने कहा कि जिस माता-विहीन मृगशावक को गाय के दूध से आपने पाला था, वह चारो दिशाओ मे रोता हुआ व्रजवासियो के हृदय विदीर्ण कर रहा है। पौर्णमासी ने बताया कि कुछ मयूर तो काले बादलो को कृष्ण मानकर अब भी ताण्डव करते रहते हैं। तुम्हारे सभी मित्र भी नन्द के साथ आये है। चन्द्रावली सभी यशोदादि व्रजवनिताओं से मिली। तभी मुखरा राधा का नाम लेकर मुक्तकण्ठ से रोदन करने लगी। चन्द्रावली भी राधा के लिए रोने लगी।

सब के मिलन का समय आ गया। कचुकी के साथ ललिता और पद्मा आ पहुँची। वे सब से मिली। सभी राधा की चिन्ता म निमग्न थे। तभी वकुला घबड़ाई हुई आई। उसने बताया कि सत्यभामा कालियदह मे प्रवेश कर रही हैं। कृष्ण भी पीछे पीछे गये। सभी कालियह्रद पहुँचे। वहाँ वकुला के मनाने पर राधा उसे कह रही थी कि अब तो मरूँगी ही, क्योकि मातृवियोग दुःख सहा नही जाता। तभी उसका वामाक्षिस्पन्दन होता है। पर वह रुकी नही। कृष्ण और नववृन्दा वहाँ आ गये। कृष्ण भी उस ह्रद म जा कूदे। वहाँ राधा को आश्चर्य हुआ कि कोई साँप क्यो काट नहीं रहा है। पीछे से कृष्ण ने उन्हे जा पकड़ा। उसने समझा कि किसी साँप ने पीछे से पकड़ा है। पर यह काट क्यो नहीं रहा है? फिर उसने पीछे देखा तो कृष्ण मिले। कृष्ण ने उसे स्यमन्तकमणि पहनाई और दाना माधवी-मण्डप की ओर चल पडे। थोडी देर मे सभी व्रजवासी मिले और पहचान हुई कि यह सत्यभामा ही राधा है। सभी की आँखो से आनन्दाश्रु का प्रवाह निर्झरित हो रहा था। अन्त मे विशाखा भी आ गई। राधा और कृष्ण के विवाह का घण्टा बजा। चन्द्रावली ने स्वय राधा का हाथ कृष्ण के हाथ मे पकडा दिया। रैवतक, गोवर्धन और विन्ध्य भी द्वारका म आ गये। वसुदेव और उनके साथ वृष्णिवीर आ पहुँचे। रेवती और देवकी भी। नन्द ने कृष्ण का आलिंगन किया राधा और चन्द्रावली न नन्द को प्रणाम किया। सभी प्रधान देव और देवियाँ आ पहुँची।

नाट्यशिल्प

ललितमाधव का कवि ने अपनी नाटकचन्द्रिका मे अनुरूप रूपक के सन्धि, सन्ध्यङ्ग, सन्ध्यन्तर, नाटकलक्षण आदि का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए रचा है। इसम प्रस्तावना के पश्चात् अवमुख है। नाटक के आरम्भ मे अवमुख की योजना विरल है।

संस्कृत नाटकों का अंकमुख दो प्रकार का होता है। एक तो वह जिसमें अंक के अन्त में आने वाले पात्र के द्वारा अगले अंक के कथांश की सूचना दी जाय।[1] दूसरे प्रकार के अंकमुख में प्रथम अंक के पूर्व ही सभी अंकों में आने वाली पूरे नाटक की कथा का सार दे देते हैं।[2] इसी दूसरे प्रकार का अंकमुख ललितमाधव में प्रयुक्त है।

रूप ने प्राचीन नाट्याचार्यों की दो मान्यताओं को नहीं स्वीकार किया है। पहले तो नाटक का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। इस नियम के विपरीत इसका नायक धीरललित है। दूसरे नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होनी चाहिए। इसके विपरीत इसकी कथा मिश्र है। नारायण ने अपनी टीका में लिखा है--

ललितनायकगुणास्यैवात्र ग्रन्थे प्रकटनाल्ललितमाधवाख्य मिश्रेतिवृत्तयुतनाटक चिकीर्षु इत्यादि।

गौवें कृष्ण के प्रति अपने बछड़ों से बढ़कर प्रेम कर रही हैं। नायिकायें अपने पति की उपेक्षा करके नाना व्याज, माया, छल और कपट से अपने उपपति कृष्ण को ही प्राणपति बनाई हुई हैं और प्रकृति का सारा शृङ्गार-सम्भार कृष्णोपचित है।

पताकास्थानक का सुन्दर विधान है—

तिण्णाउला चओरी पजरिआ सगदा चिर जलइ।
पाअ वजुलकुजे ताराहीसप्पधारेहि॥ १४६

नायक प्रारम्भ में किशोर वय का है। अपनी मातादि के लिए तो वह बालक है, किन्तु गोपियों के साथ उसका ऐन्द्रियक विलास प्रवर्तित है। ऐसे नायक वाले नाटक संस्कृत में विरल ही हैं।

रंगमञ्च पर नायक आता-जाता रहता है। विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से नायक यदि एक बार रंगपीठ पर आया तो अङ्कान्त के पहले उसे निष्क्रान्त नहीं होना चाहिए। पर इसके प्रथम अंक में कृष्ण अपने पिता से मिलने के लिए रंगपीठ से चल देते हैं और फिर राधा से मिलन के लिए रंगपीठ पर आ जाते हैं। दूसरे अङ्क में भी कृष्ण आते-जाते हैं। अष्टम अंक में यही प्रवृत्ति है।

विष्कम्भक के अन्त में नियमानुसार सभी पात्रों को निष्क्रान्त होना चाहिए, किन्तु इस नाटक में पहले और दूसरे अङ्क के बीच में जो विष्कम्भक आया है, उसके अन्त में कुन्दलता को छोड़कर केवल अन्य पात्र ही रंगपीठ से निष्क्रान्त होते हैं।

ललितमाधव में अदृष्टाहति है जटिला का कृष्ण से कहना—

एकया मम वधूट्या एव रक्षिता गोकुलस्य कीर्तिः।

अर्थात् अकेली मेरी बहू राधा कृष्ण के प्रेमपाश में गिरने से बची होने के कारण गोकुल की कीर्ति की रक्षा कर रही है। प्रेक्षक जानते हैं कि जटिला भोलेपन के

१ अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्य छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्। दशरूपक १.६२
२ यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाखिला।

कारण राधा की प्रवृत्तियों को नहीं जान पा रही है। पंचम अङ्क में माधवी का कृष्ण को न पहचानते हुए यह कहना—

'रे महासाहसिक धृष्टनर्तकयुवराज, मुञ्चेमां महाराजपुत्रिकाम्'

अदृष्टाहति है। वह नहीं जानती थी कि राधा इसी नटवर के लिए प्राण दे रही थी।

प्रेक्षक नाटक के अनेक दृश्यों में हँसते हँसते लोट-पोट हो जायेगा। यथा, द्वितीय अङ्क में जटिला राधा को कृष्ण से बचाना चाहती है, किन्तु उसे भ्रम में डालकर विप्रवेशधारी कृष्ण से राधा को सूर्योपस्थान के नाम पर प्रेममन्त्र दिया जा रहा है। स्वयं जटिला इस कार्यक्रम की अध्यक्षा है।

द्वितीय और तृतीय अङ्क के मध्यस्थ विष्कम्भक में वर्तमान की आँखों देखी परिस्थिति का वर्णन है। यथा राधा का नेपथ्य से वचन है—

व्रजनरपतिनन्दनं सबन्धु रथप्रवरे परिप्रेक्ष्य स्फुरन्नम्।
स्खलति मम वपुः कथं धरित्री भ्रमति कुतः किममी नटन्ति नीपाः॥

यह एक प्रकार से दूसरे कथापुरुषों की बातचीत है, जो उनकी भूमिका में न आने वाले पात्रों के द्वारा विष्कम्भक में वर्णित है। नेपथ्य से दूसरों के प्रासंगिक मनोभावों का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यथा—

कुत्र रुक्मिणी सुरूपा कुत्र दमघोषनन्दनो मन्दः॥ ५.२१

इसमें विदर्भललनाओं का रुक्मिणी की भावी पति विषयक चिन्ता है। इसे परिभाषानुसार विशुद्ध अर्थोपक्षेपक नहीं कहा जा सकता।

भाषा की दृष्टि से कवि का एक अभिनव प्रयोग है राधा का गद्य भाग प्राकृत में और पद्यभाग संस्कृत में बोलना। भावावेश के निरतिशय होने पर एक ही पद्य के कुछ चरण प्राकृत में और शेष संस्कृत में बोले जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क में एक रूपक समाविष्ट है, जिसका नाम प्रबन्ध भी दिया गया है।[1] इसमें कृष्ण को रंगपीठ के एक भाग में नट और प्रेक्षक बना कर दूसरे भाग में माधव को पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। गर्भाङ्क वाले चतुर्थ अङ्क में दो स्थलों पर बराबर महत्त्व के अभिनय अलग-अलग हो रहे हैं, जिनमें से एक पूर्वकथा के पात्रों के द्वारा गन्धर्वों द्वारा प्रस्तुत दृश्य की प्रतिक्रिया-रूप अनुभावादि को लेकर प्रवर्तित है।

नाट्यभूषणों का सर्वांश समावेश इस नाटक में मिलता है। यथा, मनोरथ का उदाहरण है—

भो हंसि, हंसपते पक्षपातेन उद्धुरा एषा।
श्यामाकर्षति उर्म्याली तद्विश्रब्धा कान्तमनुसर॥ ४.२३

---

१ किञ्चिदपूर्वं रूपकं कारितम्।

केनापि पारसन्धिना प्रबन्धेन जगद्बन्धोरस्य समाराधनाय कुलाचार्येण स्वगतं प्रेषितोऽस्मि।

इसमे व्याज से विवक्षित का निवेदन है।

यथा स्थान सन्ध्यन्तरो का समावेश किया गया है। यथा, देव, वाडमातपत्र फणापटली लघीयस किंकरस्यास्य गरुत्मत सकृत्पक्षविक्षेपकेलयेऽपि न, पर्याप्निमेष्यति। दूरे विश्राम्यतु सखा मे सुदर्शन कल्पान्तकृशानु, यह ओज नामक सन्ध्यन्तर है।

नाट्य-निर्देशो की विविधता और नवीनता स्थान-स्थान पर मिलती है। यथा चतुर्थ अङ्क मे एक *नाट्य-निर्देश है*—

'इति नासया थू थू कुर्वती सलील रोदिति।'

लोकानुरञ्जन की सामग्री रूपगोस्वामी ने व्यावहारिक परिहासो के द्वारा भी दी है। यथा, चतुर्थ अङ्क मे शारिका और शुक के सवाद द्वारा जटिला को यह सूचना देना कि माधव अभिमन्यु का वेश धारण करके मेरे घर के पास आयेगा। जब वास्तविक अभिमन्यु अपने घर के पास आया तो जटिला ने उसे भ्रान्तिवश माधव समझ कर भारुण्डा, कुन्दलता आदि के सामने उसका भण्डाफोड किया। वास्तविक अभिमन्यु अचकचा गया कि मेरी मा क्योकर मुझे डाट रही है। माता जटिला ने पुत्र का हाथ पकडा और उससे कहा कि गोपियो के साथ लम्पटता करते हो, दूसरो के घर लूटते हो। वास्तविक अभिमन्यु लज्जा से गड गया और भाग खडा हुआ। उसने तारस्वर से चिल्ला कर कहा कि मेरी माँ भूतग्रस्त है। तब सबने पहचाना कि जिसे जटिला माधव समझ रही है, वह वस्तुत उसका पुत्र अभिमन्यु है।[1] पर थोडी देर के बाद स्वय माधव अभिमन्यु का वेष बना कर आये तो जटिला ने उन्हे अभिमन्यु समझकर उनका स्वागत किया। जटिला ने देखा कि मेरी वधू उनसे प्रेम कर रही है, यद्यपि वह वस्तुत माधव था। जटिला ने उससे कहा कि सन्ध्या के समय हमे धुधला दिखाई पडता है। कृत्रिम अभिमन्यु-रूपधारी माधव ने बताया कि तुम्हे ऐसा अजन दूँगा कि सब ठीक हो जायगा। फिर उसने कहा कि आज तुम्हारी वधू चैत्यवृक्ष के नीचे मेरे साथ नही जाना चाहती। जटिला ने राधा से कहा कि इनके साथ चली जाओ। इस प्रकार नायक-नायिका का परिहासात्मक छद्म द्वारा मिलन होता है।

छद्म कवि का अतिप्रिय सविधान है। काम के प्रभाव से बचने के लिए कृष्ण शिव के रूप मे प्रतीयमान होना चाहते हैं। वे मधुमगल से कहते है—

ललाटे काश्मीरै कुरु मम दृश पावकमयी
दधीथा भोगीन्द्रद्युतिमुरसि मुक्तामणिसरम।
तनौ कण्ठ मुक्त्वा जनय घनसारैर्धवलता
हरभ्रान्त्याभीतस्तुदति न यथा मा मनसिज ॥ ६ ४५

इस मानसिक स्थिति मे वे विनोद के लिए नववृन्दावन में जा पहुचे, जहाँ सत्यभामा बनी राधा रहती थी।

१ यह अमृताहरण नामक सन्ध्यङ्ग का उदाहरण है।

आवश्यकता पड़ने पर नायकादि से भी असत्य भाषण करा देने की प्रवृत्ति भी छद्मपरायणता को ही प्रकट करता है। प्रेमानुवृत्ति में ऐसी परिस्थितियाँ आ ही जाती हैं कि आत्मरक्षा के लिए श्वेत झूठ बोलना पड़ता है। अष्टम अङ्क में कृष्ण राधा से अपना सम्पर्क छिपाने के लिए चन्द्रावली को बहका देते हैं कि मौक्तिकमाला यमुना के निर्झरापात से विशीर्ण हो गई। वास्तव में राधा के परिष्वङ्ग से माला टूट कर गिरी थी।

छद्म का एक अन्य रूप श्लेषात्मक अर्थ लेकर निर्मित है। जब माधवी चन्द्रावली के विषय में कहती है—'यदेषा न सत्यभामा' तो कृष्ण भाम का श्लिष्ट अर्थ कोप लेकर समर्थन सा करते हैं—यदेषा न सत्यकोपा देवी।

अनेक कार्यव्यापार शब्दों के भ्रान्तिमय अर्थ के कारण नायकादि के द्वारा किये जाते हैं। प्रेमियों के हृदय में धुकधुकी होती है। सापत्न्य के कारण वस्तुस्थिति को समझने के पहले ही वे भीत होकर या नायक के दाक्षिण्य की कल्पना से कुछ ऐसा कर बैठते हैं, जिससे प्रेक्षक हास्य की अनुभूति किये बिना नहीं रहता। मधुमंगल के शुक ने कहा—

वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी सुमनस्विनी॥ ६.१५

बस इतना सुनना था कि राधा ने समझा कि चन्द्रावली की सखी माधवी आ रही है। वह छिप कर कन्दरा में ओझल होती है। उसे इतना सुनने का भी अवकाश नहीं था कि

भवति स्तबको यस्या जगद्भूषण-भूषणम्।

वस्तुतः माधवी-लता की बात कीर ने कही थी।

छद्म केवल शाब्दिक ही नहीं, आर्थिक भी है। दशम अङ्क में कृष्ण राधा को पीछे से अपनी दोनों बाहों से पकड़ते हैं जब वह कालियह्रद में प्रवेश कर रही है, पर राधा समझती है कि यह कोई साँप मेरे गले में लिपटा है।

प्रकृति-परिशीलन

नाटक के नायक कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। उनकी मानवोचित लीला में साथ देने वाले परोक्ष में सूर्य, ब्रह्मा, शिव आदि सर्वोच्च देव हैं और प्रत्यक्ष रूप से सुपर्ण (गरुड), नारद और विश्वकर्मा हैं। इनके अतिरिक्त हैं प्रकृति रूप में शरद् जो ऋतु की देवी है, हंसिनी, कीर, हारीत आदि पक्षी। मानवोचित कार्यकलाप में ये सभी व्यापृत दिखाये गये हैं। कौस्तुभ से कृष्ण कहते हैं।

'सखे कौस्तुभ सोऽयं विलासिनी विश्लेषणलब्धशोक-
विस्मारय मयमलीलाम्।

और वह ऐसा करता है।

प्रकृति की सम्पा बृहत्तम लम्बायमान कथा की पूर्ति के लिए अतिशय बड़ी हो कही जा सकती है। इतनी अधिक घटनायें और इतनी अधिक कथा-प्रवृत्ति अपवाद

स्वरूप ही देखी जाती है। फिर भी प्रत्येक नायक अपने-अपने कार्यव्यापार की प्रातिस्विकता से सुलक्षित है।

इसमें मल्लूक-मल्ल प्रकृति-रूप में विराजमान हैं। उन्होंने विन्ध्य को समाचार दिया कि कृष्ण का राधामिलन देखने चलें। इस दृश्य को गोवर्धन, रैवतक आदि पर्वत भी देखते हैं।

रस

ललितमाधव में शृङ्गार रस की सरिता प्रवाहित की गई है, जैसा कृष्ण ने स्वयं बताया है—

द्रवन्नवविधूपलप्रकरदत्तपाद्य शशी
सरत्नतरलोच्चलज्जलधिकल्पितार्घक्रिय।
हरित्परिजनेरित-स्फुटतरोडुपुष्पाञ्जलि
स्फुरत्तनुरुदञ्चित-स्मर-रसोर्मिभिरुन्मीलति॥ १ ३१

शृङ्गार के उपचय में सारी विश्वात्मक विभूतियाँ तत्पर हैं।

रूपगोस्वामी ने कहीं कहीं शृङ्गार को शुभ्र मर्यादा के भीतर विनिवेशित भी रखा है। राधा और कृष्ण के नववृन्दावन-सङ्गम-प्रसंग में भी वे नायक-नायिका का शृङ्गारोचित रभस प्रकट नहीं करते और अपने वक्तव्य की मानो व्यंजना से ही सूचनामात्र देते हैं। यथा अष्टम अंक में—

नववृन्दा—हला, तव हारसघर्षेण मुकुन्दवक्षस स्खलिता सुरसौगन्धिकस्रज मराली चञ्चुपुटेनादाय पश्योड्डीना।

पुरुष के प्रति पुरुष का रतिभाव-वर्णन कवि की नई सूझ का द्योतक है। अपना ही प्रतिबिम्ब मणिकुड्य में देखकर कृष्ण कहते हैं—

अपरिकलितपूर्व कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूर।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य य लुब्धचेता
सरभसमुपभोक्तु कामये राधिकेव॥८ ३४

परिहास का बाहुल्य ललितमाधव में विशेष रोचक है। सत्य कह कर बात क्यों बिगाड़ी जाय? असत्य को ही इस प्रकार कहना कि सत्य की व्यंजना होती चले—कवि की बड़ी विशेषता है। उदाहरण है रुक्मिणी का सत्यभामा से यह कहना—

स्तने कीरंमन्ये तव निबिडया दाडिमधिया
तथा बिम्बभ्रान्त्या क्षतमधरमध्ये कृतमिदम्
मयूरंमन्ये व्यदलि फणिबुद्धया मणिमयी
वनान्तर्वामस्ते, भगिनि हृदयं मे व्यथयति॥१० १

इसमें सारी बातें उलटी कही गई हैं। यही हास्य का स्रोत है।

शैली

रूपगोस्वामी को पूर्णरूप से शब्दाधिकार प्राप्त था। सिंह के लिए पारीन्द्र नवदल के लिए सर्वतिका, गूलर के लिए माण्डीर, उपासना के लिए वरिवसित, श्रुतम् के लिए कणयो प्राङ्गणमधिरूढम्, कृष्ण के लिए दर्वीकरारिकेतु, श्रेष्ठ गौ के लिए नैचिकी शब्द का प्रयोग वे करते हैं।

श्लेष के प्रयोग द्वारा अर्थालंकारों की समञ्जसता पदे-पदे सुप्रतीत होती है। यथा,

भूयो भूय स्वयमनुपमा कलानिमासादयन्ती।
मन्दाक्रान्ता भवति जगत क्लेशदात्री हि चित्रा ॥२६

इसमे मन्द है शनि और कस तथा चित्रा है नक्षत्र और राधा। यह पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द मे है।

अन्यत्र उपमेय सर्वथा निगीर्ण है। राधा के परिचय म—

यस्या शैवलमञ्जरी विरचितासग रथागद्वय
फुल्ल पकजपचक च विसयो युग्म च मूले नतम्।
उन्मीलत्यनिचचल सशफरीद्वन्द्व व्रजे भ्राजते
सेय शुद्धनरानुरागपयसा पूर्णा पुरो दीर्घिका॥ १५४

शब्दालकारो का अनुराग रूपगोस्वामी मे अधिक है। यथा,

नून चन्द्रावली चरण-चातुरीचमत्कारोऽयम्।

प्रथम अक से।

स च राजानजीवी राजीवक्त्रनी पूर्वगर्वमधिरूढे सर्वज पर्वदेवारि पुर नेष्यति।

तृतीय अक से।

दरीद्वार दूराद् द्रुतमिह दरोद्धाट्य दयया।
दुरन्त दैन्योर्मि मम दमय दामोदर दृशा ॥३४१
अतिमुक्तोऽपि विमोक्तु वृन्दावनवासवासनानन्दम्।
क्षणमपि न खलु क्षमन्ते क्षुद्राणा कथान्येषाम् ॥८३३

शृङ्गारित प्रसगो म कवि न माधुर्यगुणोचित शब्दावली प्रायश सार्वदम्य प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की है। यथा,

प्रचण्ड-किरण-धुतिद्रुतमृगाक-कान्ताचल-
स्खलत्तरलमारणी गलविकीर्ण-पुष्पोत्सवा।
विरस्वर-सरोजिनी-परिमलान्धभृ गावली
सतील विदरिवाद्यति नव्यवृन्दाटवी ॥

इस पद्य मे शृङ्गार का उद्दीपन विभाव वर्णित है।

चन्द्रविषयक कल्पनाओ की उद्भावना मे रूपगोस्वामी श्रीहर्ष की पद्धति पर चलते

हुए प्रतीत होते हैं। राधा की मुखश्री की तुलना प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा बेचारा तपस्वी बना दिया गया है। यथा,

समीक्ष्य तव राधिके वदनबिम्बमुद्रासुर
त्रपाभरपरीतधी श्रयितुमस्य तुल्यश्रियम्।
शशी किल कृशीभवन् सुरधुनीतरंगोक्षिता
तपस्यति कपर्दिन स्फुटघटाटवीमाश्रित ।। १ ५५

तप स्थली है शिव की जटाटवी।

कृष्ण की छाती पर विराजमान गुन्जावली से ईर्ष्या करती हुई राधा की उद्भावना है—

कठोरागी काम जगति विदिता नीरसतया
निगूढान्तश्छिद्रा त्वमतिमलिना चासि वदने।
तथाप्युच्चैर्गुञ्जावलि विहरसे वक्षसि हरे
जनाना दोष वा न हि कमनुराग स्थगयति ।। २ २१

नारद ने कृष्ण का यशोगान किया तो सब कुछ शुभ्र हो गया। यथा,

भीता रुद्र त्यजति गिरिजा श्याममप्रेक्ष्य कण्ठ
शुभ्र दृष्ट्वा क्षिपति वसन विस्मितो नीलवासा ।
क्षीर मत्वा श्रपयति यमीनीरमाभीरिकौका
गीते दामोदर यशसि ते वीणया नारदेन ।। ५ १८

रूपगोस्वामी की वाणी मे शक्ति है, जिसके द्वारा वह जटिला से कृष्ण के विषय मे कहला सकते थे—

'अस्य काजकुण्डलिन तीक्ष्णया वक्रदंष्ट्रया स्पृष्टा व्रजप्रामापि जर्जरी भवति'। चतुर्थाङ्क से।

रूपगोस्वामी ने अनुकरण-काव्य का उदाहरण अपने नाटक मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

शिशुपाल ने रुक्मिणी को पत्र भेजा—

प्रणयो दमघोषनन्दने शिशुपाले यौवनाञ्चिते।
नरदेववरे शृणुश्रवो हृदयानन्दिगुणे विजृम्भताम् ।। ५ ५

रुक्मिणी ने इसका उत्तर दिया—

प्रणयो मम घोषनन्दने पशुपाले तव यौवनाञ्चिते।
परदेवदारेऽद्भुतश्रवो हृदयानन्दिगुणे विजृम्भते ।। ५ ६

पद्यो मे पदानुक्रम का सफल निदर्शन अनेक स्थानो पर है, जिससे प्रश्न और उत्तर एक ही वाक्य मे सन्निवेशित हैं। परीक्षणीय है—

कान्ति पीता शुक-स्फीता बिभ्रती वीक्षिता वने।
मयाद्य मृग्यमाणा मा त्वया मृगविलोचना ।। ६ १८

प्रश्न है—हे शुक पीता कान्ति बिभ्रती मृगविलोचना मया मृग्यमाणा सा त्वया दृष्टा ?

उत्तर है—हे पीताशुक त्वया मृग्यमाणा सा मया दृष्टा।

यह पृच्छा नामक नाटक-भूषण है।[1]

अन्यत्र एक ही पद्य द्वारा दो नायिकाओ की चर्चा समुपस्थित की गई है। यथा, राधा और चन्द्रावली की

उचिता हृदयार्पणाय गौरी तरलालोकमयी गुणोज्ज्वलात्मा।
नवहारलतेव रुक्मिणी मे किमिय कण्ठतटे न सन्निधत्ते॥ ६.५६

राधा के लिए अर्थ करने मे रुक्मिणी उसका विशेषण है—रुक्म धारण करने वाली।

सवाद

सवादो मे पर्याप्त चटपटापन है।[2] भाव केवल बुद्धिगत ही नही होते, अपितु पर्याप्त चोखेपन से वे हृद्गत होते हैं। इस उद्देश्य से कवि की एक योजना है नायक को शाब्दिक मृगमरीचिका मे डाल देना। यथा,

मधुमगल —

स्फुटच्चटुलचम्पकप्रकररोचिरुल्लासिनी
मदोत्तरलकोकिलावलिकलस्वरालापिनी।
मरालगतिशालिनी कलय कृष्णसाराधिका

इत्यर्धोक्ते

कृष्ण —(ससम्भ्रमौत्सुक्यम्) सखे, क्वासौ क्वासौ

मधुमगल —(अगुल्या दर्शयन्)

पुर स्फुरति वल्लभा तव

कृष्ण —(सवैय ग्र्यम्) वयस्य, नाह पश्यामि। तदाशु दर्शय क्व सा मे राधिका।

मधुमगल — मुकुन्द वृन्दाटवी॥७.२७

फिर तो कृष्ण को नि श्वासपूर्वक कहना पडा—कथ नामधेयवर्णानामाकर्णनादेव सर्वानुसन्धानविधुरोऽस्मि।

नायिका चन्द्रावली को भी कृष्ण की शाब्दिक मृगमरीचिका अवास्तविक प्रणय की ओर उन्मुख करती है। यथा,

१ प्रश्न एवोत्तर यत्र सा पृच्छा परिकीर्तिता।

२ एक उदाहरण है आठवें अक मे कृष्ण का माधवी को 'कलिकण्ठलतुण्डमात्रसर्वस्वे तमोमयि' कहना, जब उसने सत्यभामा के विषय म कहा था—त्वासारे प्रसारितनिजप्रना वकी स्मृत्वा हसामि।

अत्र भावि निरातङ्कमारामे रमणं मम।
स्फुरत्यन्ते कुशस्थल्या यद्विदर्भाङ्कभूरियम् ॥६ ५८

उचिता हृदयार्पणाय गौरी तरलालोकमयी गुणोज्ज्वलात्मा।
नवहारलतेव रुक्मिणी मे किमियं कठनटे न सन्निधत्ते ॥ ६ ५९

इनमें कृष्ण वस्तुत राधा के लिए उत्सुक हैं, पर चन्द्रावली सोचती है कि वे मुझे चाहते हैं।

कीर ने जब सुनाया नवम अंक में 'वृन्दावने स्फुरत्येषा माधवी सुमनस्विनी', बस इसे सुनते ही राधादि जा छिपी, यद्यपि माधवी से उसका तात्पर्य लता था, रुक्मिणी की सखी नहीं।

कहीं-कहीं सवाद के भीतर सवाद प्ररोचित हैं। यथा, अष्टम अङ्क मे कृष्ण और राधा के सवाद के भीतर शुक और मराल का सवाद।

छायातत्त्व

कृष्ण का विप्रवेश धारण करके जटिला के आदेशानुसार सूर्योपस्थान-पूजा कराना छायानाट्य प्रवृत्ति है। तृतीय अङ्क में राधा स्फटिकशिलातल मे अपनी प्रतिच्छाया देखकर उसे चन्द्रावली समझती है। वह प्रतिच्छाया से कहती है—

कर्णोत्तमसुगन्धिना निजभुजद्वन्द्वेन सन्युक्षय ॥३ ३९

इसी प्रकार इन्द्रधनुष चित्रित जलधर को वह मुकुटितशिखण्डावलि समझती है।

ललितमाधव के छायातत्त्व के बाहुल्य का निर्देश इसी के चतुर्थ अङ्क मे इस प्रकार मिलता है—

श्रुत मया तानमुखतो यच्चन्द्रभानुप्रभृतीना कन्यका भीष्मकप्रभृतीना कन्यकानां एकतत्त्वापि विग्रहादिभिर्भिन्ना एवेति। तस्माद्वाढमेकविग्रहता-सविधान माययैव प्रपञ्चितम्।

सप्तम अङ्क मे कृष्ण की मूर्ति देखकर राधा—

'प्रेमावेशेन साक्षादिव कृष्णं सम्भावयन्ती' कथमेषा सत्यमेव नीलमणि-प्रतिमा। हा धिक्, हा धिक्, गाढोत्कण्ठया सर्वमेव विस्मृत्य प्रतिमामेव प्रत्यक्ष माधव मन्ये। मान्त्रकम्प कृष्णाकृतिं मण्डयति।

आठवें अङ्क मे कृष्ण अपनी छाया मणिकुड्य मे देखकर कहते हैं—

अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेता
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥ ८ ३४

नवमाङ्क मे ललितमाधव का कृष्ण की बालनीला का चित्रदर्शन छायातत्त्व-निर्भर है। इसमें गोकुलेश्वरी का चित्र देखकर राधा कहती है-'अम्ब गोकुलेश्वरि वन्दसे' यह कहने के पश्चात् उसकी आखो से अश्रुपात होने लगा। कृष्ण ने अपने उलूखलबंध का चित्र देखा और रोते हुए कहने लगे—

वात्सल्यमण्डनमयेन ममोरुदाम्ना
य कोऽपि बन्धगरिमा निरमायि मात्रा।
तन्मुक्तये परमबन्धविमोक्षणेऽपि
नाहं क्षमे सखि परस्य तु का कथात्र ॥६ २८

वासोहरण तीर्थ के चित्र मे राधा छिपी हुई खडी थी। कृष्ण ने कहा—यह कौन है, जो पहचानी नही जा रही है। राधा तो पानी-पानी हो गई।

चित्र-दर्शन प्रकरण अभिनय के समान ही प्रभावशाली लग रहा था, जैसा नीचे लिखे सवाद से स्पष्ट है—

नववृन्दा—सखि, चित्रगतोऽपि रासोत्सवस्तव सत्यो बभूव।
राधा—हा धिक्, हा धिक्। कथ खलु चित्रमेवेदम्।
शखचूड का चित्र देखकर
राधा—(सभयम्) परित्रायस्व, परित्रायस्व।
(इति कृष्णमालिंगति)

कृष्ण—(परिरम्भ सुखमभिनीय) साधु रे भ्रात शखचूड, सरम्भादुन्मथितोऽपि मे त्वमलब्धपूर्व प्रमोदमेव कृतवान्।

अक्रूर का चित्र देखकर राधा कहती है—
हा, हा किं करिष्ये।
कृष्ण को कहना पडा—कोमले मा कातरी भू। इद खलु चित्रम्।
अक्रूर का चित्र देखकर राधा मूर्च्छित हो गई।
चित्रदर्शन इस युग मे गर्भाङ्क जैसा ही महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

लोकोक्ति तथा अन्योक्ति

ललितमाधव की भाषा चटपटी है। शृङ्गार की भाषा का प्रवाह ऋजु नही होता। उसमे व्यञ्जना की वक्रिमा और भङ्गियो का मिश्रण होना ही चाहिए। इस उद्देश्य से लोकोक्तियो का प्रयोग विशेष प्रभावशाली होता है। कुछ लोकोक्तियाँ अधोलिखित हैं—

१ अकाले प्रफुल्ल वञ्जुल कस्मात् श्लाघयसि।
२ लोकोत्तरस्य वस्तुनो निसर्ग यत् खलु सर्वदोपभुज्यमानमप्यभुक्तमेव भवति।
३ पारे वारिधिगरुडो दिदृक्षव पार्श्वेनोभुजगा ॥५ ६
४ न घटते गर्दभकण्ठे विमला नवमालिकामाला॥ ५ २१
५ विमलहृदय स्यानो लोके सतामुपदेशत
गुणयति गुणश्रेणी नापो मलीमसमानम।
मुकुलपटली सारगाक्षीमुखार्पित शीधुभि-
र्बकुल इव किं धत्ते मूर्ध्ना हठाददरूपक ॥ ६ ५

६ न हि कौस्तुभमणीन्द्रमरीचिमण्डली पुण्डरीकाक्षवक्षस्तटीमन्तरेणान्यतस्तिष्ठति । षष्ठाङ्क से
७ शरन्मुखे पश्य सरस्तटीषु खेलन्त्यकस्मात् खलु खजरीटा ॥ ७ ५
८ धीर प्रकृत्यापि जन कदाचिद् धत्ते विकार ममयोनुरोधात् ।
क्षान्ति हि मुक्त्वा बलवच्चलन्ती सर्वं सहाभरपिभृरि दृष्टा ॥ ६ २०
६ कालभुजगदष्टे कुलिश-प्रहार एष ।
१० स्थाने समये उपकारी सर्व प्रिय भवति ।

लोकोक्तियो के साथ अयोक्तियों का अनूठा प्रयोग प्रभावशाली है ।

यथा,

तीव्रतृष्णार्तानि मरजागले पानकृत्या स्वयमेवोन्मीलिता । दशमाङ्क से ।
द्रवति मनागभ्युदिताद्विधुदान्ते शिशिरभानुजालोकात् ।
पर्वणि पिधानमकरोदहह स्वर्भानुभीषणा जगती ॥ ४ ३२
करोदि यस्या नवकर्णिकारमालाभ्रम हन्त मधुव्रतेन्द्र
प्रतीहि ता कुकुमकर्दमेन लिप्तच्छिदा कैरवकोरिकालिम् ॥ ८ ३७
अजलिमात्र सलिल शफर्याभिलपन्त्य
उपरि स्वय नवजलदो धारावर्षी समुल्लसति ॥ ६ १६

ग्रामदृश्य

ललितमाधव की कार्यस्थली अशत व्रजभूमि है । कृष्ण का गोचारण भागवतादि प्राचीन काव्यों मे सुप्रसिद्ध है । उसी का क्रमिक विकास ललितमाधव मे है । यथा गायो की सायकालीन वनयात्रा है—

गत्वा पुरस्त्रिचतुराणि जवात् पदानि
पश्चाद्विलोकयति हन्त तिरश्शिरोधि ।
वत्सोत्कगादपि वकीमथने गरिष्ठ—
प्रेमानुबन्धविधुर पथि धेनुवृन्दम् ॥ १ २८

बलराम के शब्दो मे व्रज है—

विपुलोत्पालिकर्वटगिरिकूटविडम्बिभिर्निविडम् ।
वयमभजाम करीषाक्षोदपरीत व्रजारण्यम् ॥ १ ३०

उस व्रज मे प्रात काल दही मथने का निनाद सुनें—

रजनिविपरिणामे गर्गरीणा गरीयान्
दधिमथनविनोदादुद्भवन्नेष नाद ।२ २

माल्ती का दही मथना आदर्श रूप मे प्रस्तुत है—

करोति दधिमन्थन स्फुटविसर्पिफेनच्छटा—
विचित्रितगृहाङ्गण गहनगर्गरीगर्जितम् ।

मुहुर्गुणविकर्षप्रवणतानमाकुञ्चित—
प्रसारितकरद्वयी क्वणितकङ्कणं मालती ॥ २३

वनभूमि में षड् ऋतुओं का समागम अष्टम अङ्क में वर्णित है। इसी प्रसंग में गोवर्धन पर मयूर-विलास दर्शनीय है—

विलसति किल सोऽयं पश्य मत्तो मयूरः
शिखरभुवि निविष्टस्तन्वि गोवर्धनस्य।
मुहुरमलशिखण्ड ताण्डवव्याजतस्ते
व्यकिरदुपहरन् यः कर्णपूरोत्सवाय ॥ ८.२८

इसमें उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क के सीतापोषित मयूर की गन्ध है।[1] वृन्दावन की रासस्थली का वर्णन है—

भूमौ भारतमुत्तमं मधुपुरी तत्रापि तत्राप्यलं
वृन्दारण्यमिहापि हन्त पुलिनं तत्रापि रासस्थली।
गोपीकान्तपदद्वयीपरिचयप्राचुर्यपर्याचिता
धन्या नन्दति महामुनेरपि मनोराज्यार्चिता रेणवः ॥ ६.४४

ललितमाधव अनेक दृष्टियों से एक नवीन नाट्य परम्परा का उद्भावक है। इसमें कवि को असंख्य बातें प्रेक्षकों और पाठकों को बतानी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने इस सारे वक्तव्य को वह रसमयता से ओतप्रोत रखता है। भूमिका की महामहिमशालिता और वैविध्य, कार्यक्षेत्र की भूमा और सबसे बढ़ कर घटनाओं का अद्भुत सङ्क्रम इस नाटक के विरल वैशिष्ट्य हैं।

इस एक नाटक में पूर्ववर्ती असंख्य ग्रन्थों का सौरभ स्थान-स्थान पर संजोया हुआ मिलता है। दशकुमारचरित की भाँति इसकी नायकादि प्रकृति इतस्ततः भटकती और मरती या मरती-जीती अन्त में दशम अङ्क में अपनी चित्र-विचित्र गाथायें के प्रसंग में आ मिलती है। उत्तररामचरित की भाँति इसमें नवम अङ्क में चित्रदर्शन प्रकरण चित्ताकर्षक है। महावीरचरित और बालरामायण की भाँति इसमें छायातत्त्व और गर्भाङ्क-नाटक की विशेषता है। इसमें प्रियतम के वियोग में प्रेयसी पशुपक्षियों से उनके विषय में पूछती हुई विक्रमोर्वशीय की स्मृति दिलाती है। अविमारक, नागानन्द और रत्नावली की भाँति नायिका नायक के वियोग में अपने प्राणों की बलि देने के लिए समुद्यत है।

अपनी बहुविध प्रौढ़ता और सम्पन्नता के कारण ललितमाधव महानाटक प्रतीत होता है।

---

[1] उत्तर राम० ३.१६। दोनों पद्य मालिनी छन्द में विरचित हैं।

दानकेलि कौमुदी

रूपगोस्वामी ने १४७१ शक संवत्सर तदनुसार १५४६ ई० मे दानकेलि-कौमुदी नामक भाणिका का प्रणयन किया।[1] यह भाणिका कोटि की रचना है। सूत्रधार ने इसको भाणिका कहा है। भाणिका नामक उपरूपक की परिभाषा करते हुए शारदातनय और रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने बताया है कि भाणिका का उपजीव्य् हरिचरित होता है। इसमे प्रयोग की सुकुमारता होनी चाहिए।

कतिपय नाट्यशास्त्राचार्यों ने 'भाणोऽपि च भाणिका भवति' यह कह कर भाणिका को भाण के समान बताया है, जो सर्वथा निराधार है। भाण और भाणिका मे तत्त्वत कोई समानता नही होती।

साहित्य-दर्पण के अनुसार भाणिका नामक उपरूपक मे मुख और निर्वहण दो सन्धियाँ होती हैं। उसमे एक ही अङ्क होना है। इसकी नायिका उदात्त होती है और उपन्यास, विन्यास, विबोध, साध्वस, समपण, निवृत्ति और सहार नामक सात अङ्ग होने हैं। ये सभी अङ्ग दानकेलिकौमुदी मे मिलते हैं। परिभाषा के अनुसार इसमे कैशिकी और भारती वृत्तियो का प्रयोग हुआ है। हरिचरित का गान होने से इसकी कथावस्तु भी शास्त्रीय दृष्टि से समीचीन है। इसमे विष्कम्भक का होना अशास्त्रीय है।

इसकी रचना कवि ने नन्दीश्वर मे रहते हुए की थी। नन्दीश्वर-गिरि की उपत्यका मे यह वसति थी। इसी उपत्यका मे इसका प्रथम अभिनय हुआ था।

कथावस्तु

मधुपुर को छोड़कर आनकदुन्दुभि ने गोविन्दकुण्ड के तट पर मखमण्डप मे यज्ञ का समारम्भ किया था। वहाँ मथुरा मे कस के आतक से कोई यज्ञ नही कर सकता था। इस यज्ञ के द्वारा कृष्ण और बलराम नामक पुत्रो के निखिल अनिष्ट की शान्ति समीहित थी। यज्ञ का विधान था कि गोपियाँ जो मक्खन उपहार रूप मे दे जायँ, उससे यज्ञ सम्पन्न हो। राधा स्वय मक्खन लेकर आई। राधा का वर्णन है—

शोणे मण्डितमूर्ध्नि कुण्डलतया क्लृप्ते दुकूलोत्तमे
न्यस्ता स्वर्णघटी वहन्त्यचटुला हैयगवीनोज्ज्वलाम्।
दूरे पश्य तथाविधाभिरभित· स्मेरा सखीभिर्वृता
राधामाधवजाह्नवी तटभुव स्वैरं परिक्रामति॥

राधा से मिलान के लिए कृष्ण के शुभचिन्तक उस ओर गये, जहाँ कृष्ण थे। मक्खन लाने वालियो का मार्ग कृष्ण रोकने वाले थे। यह दृश्य बड़े-बूढो के लिए भी स्पृहणीय था। कृष्ण की बाँसुरी का वर्णन है —

१ इस नाटिका का बगाक्षर मे प्रकाशन १८४१ ई० मे ढाका से तथा १९१२ ई० म मुर्शिदाबाद से हो चुका है। देवनागराक्षर मे इसका प्रकाशन १९६७ ई० मे बाबूलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित मन्दसौर से हो चुका है।

श्लाघ्यते कलितकेलिकाकली
व्याकुलीकृत-समस्तगोकुला ।
श्रोहरेरधरशीधुमाधुरी—
मादिना मुरलिरेव नेतरा ॥ १५

राधा का कृष्ण के प्रति आकर्षण प्रगाढ हो चुका था। उसने दो-तीन बार कृष्ण को देख भी लिया था। वह बन-ठन कर निकली थी। वृन्दा, ललिता आदि सखियाँ साथ में थीं।

कृष्ण, मधुमंगल और सुबल उधर से निकले तो उन्होंने राधा के रूप माधुर्य का अवलोकन किया। फिर कृष्ण ने वंशी बजाई तो सभी मुग्ध हो गये। कृष्ण राधा के रूप पर मुग्ध थे। राधा कृष्ण पर मुग्ध थी।

ललिता ने राधा से कहा कि कृष्ण इधर से ही आ रहे हैं। उनसे थोडा बच कर हम लोग निकल चलें। उनको जाते देख सुबल ने कहा कि घट्टपालनाथ से बिना मिले, उसे बिना प्रणाम किये आप सब क्यों जा रही हैं? विशाखा ने उत्तर दिया—भगवती ने कहा है कि ब्राह्मणेतर की वन्दना न करना, क्योंकि लोकोत्तर यज्ञ के लिए मक्खन ले जा रही हो। अर्जुन ने कहा कि घट्टपाल भी व्रती हैं। इन्हें प्रणाम करके शुल्क देना ही चाहिए। चित्रा ने कहा कि शुल्क देने से यज्ञ के लिए मक्खन अशुद्ध हो जाता है। हम पाँच पैसे देने में सकोच नहीं करती। इस प्रकार हास-परिहास का रस सभी लेने लगे।

देर लगती जा रही थी। सभी ने मक्खन के घडे उतार दिये। कृष्ण ने उन सभी गोपियों को पान का बीडा देने की आज्ञा दी। सुबल पर्याप्त छेड़खानी शुल्क प्राप्ति के लिए कर रहा था। कृष्ण ने उसके परितोष के लिए आलिंगन-दान दिया, जिसे देखकर राधा को रोमाञ्च हो आया। उसने कहा—

क्व सुबल पुरा सिद्धक्षेत्रे चकर्थ कियत्तप,

उसने ललिता से कहा कि क्या देखती नही हो इस निकुञ्जराज कृष्ण की पतिव्रताओं के सम्बन्ध में विदूषकता? चम्पकलता ने स्पष्ट कहा कि यह तो कोई लुटेरा है। राधा ने कहा कि त्रिलोक म किसकी साहस है कि गोकुल की बालिकाओं से दान लेने के लिए मुख से शब्द निकाले? फिर हम सब तो सूर्योपासिका हैं। कृष्ण ने कहा कि आज आप सब बच कर नही जा सकतीं। राधा ने ललिता से कहा कि इस ढीट घट्टपाल से अच्छा पाला पडा। कृष्ण ने राधा से कहा—

त्व राधे शिवमतिरित्युरसि मा भोगीन्द्रमगीकुरु।

कृष्ण ने अपना शृङ्गार-व्रत बताया—

अग्निमद्री धनि न हि मया हन्त हारादिवित्त।
हार हार हरिणनयना ग्राहिता जैनदीक्षाम् ॥

वृन्दा ने कहा कि एक कानी कौडी भी आपको नही दी जायेगी। यथा,

कपर्दमपि काण तवात्र दुरवापम्।
यदुग्रतरकर्मा कुमारललितासौ ॥ ४५

कृष्ण ने राधा की बात सुन कर उससे प्रार्थना की—

घट्टशुल्कप्रदानाय गुह्यनिध्यग्रहाय च।
स्पृहा ते हेम गौरागी गिरस्ता गोचरीकुरु ॥ ४६
अरविन्ददृशामपश्चिमा
त्वमपूर्वा बहुरूपलीलया।
कपटोद्घटनाददक्षिणा
न कथं वा भविनास्यनुत्तरा ॥ ४७

तभी नान्दीमुखी भगवती का सन्देश लेकर आई कि राधादि हमारी बालिकायें मक्खन लेकर यज्ञ मे जा रही हैं। इनसे घाट या शुल्क लेने मे कोमलता का ही व्यवहार करें। यह सुनकर कृष्ण ने कहा—चार लाख स्वर्ण-टक शुल्क हुआ। चित्रा ने कहा कि पाच गगरी तो मक्खन है। इस पर इतना शुल्क कहाँ से ?

नान्दीमुखी ने कृष्ण से कहा कि ये कहाँ से इतना शुल्क देंगी ? कोई सरल समाधान निकालो। कृष्ण ने बताया कि उपाय एक ही है कि इनमे से शुल्क-रूप मे किसी एक को ले लें। ललिता ने टका सा उत्तर दिया—

एतत्खलु मनोरथमात्रेण, द्राक्षाभक्षणमदक्षस्य लोलुपकीरयून।

वृदा ने कहा कि इस ललिता को ही रख लें। यह आभूषण-भूषित है। राधा के पास अलकार नही। तब तो कृष्ण ने राधा के अलकार गिनाये—

सेय मुग्धे शिखरदशना पद्मरागाधरोष्ठी
राजन्मुक्ता स्मितमधुरिमा चन्द्रकान्तस्य बिम्बा।
उद्दीप्तेन्द्रोपलरुचिरुचि पश्य ही राधिकेति
त्यक्तु युक्ता न किल तरुणीरत्नमाना महिष्ठा ॥ ४८

यह कहकर वे राधा को ग्रहण करने चले तो राधा साध्वसातिरेक से चिल्ला पडी—विशाखे, बचाओ, बचाओ। पर शीघ्र ही वह कृष्णाभिमुखी होकर परिहास करने लगी। उसने कहा कि आपको मेरी क्या आवश्यकता है ? आप तो

गह्वर गत्वा मुरलिकानागिनी चुम्बस्व।

कृष्ण ने कहा कि तत्त्व की बात तो यह है—

गव्यभारभरभुग्नकन्धरा त्वद्विधा विधुरगात्रि मद्विध।
स्प्रष्टुमप्यहह लज्जते पदा दैन्यमाचर न हासदम्भत ॥ ४९

राधा ने कहा कि मैं तो आगे बढी, देखें कैसे आप शुल्क लेते हैं ? तब तो कृष्ण

ने उसे पकड़ना चाहा। राधा ने कहा—अरे यह क्या है ? मैं पतिव्रता हूँ। मुझे स्पर्श करते आपको डर नहीं लगता।

राधा को शुल्क देने के लिए उद्यत देखकर कृष्ण ने कहा—

अयि मुकलेवरमधुना शुल्कं त्वा दातुमुद्यता प्रेक्ष्य।
परमोत्सवचटुलेयं नृत्यते भ्रूनर्तकी नृत्यम्॥ ५२

कृष्ण राधा को पकड़ने चले तो राधा ने कहा—अपेहि, अपेहि। नान्दीमुखी ने उसे समझाया—

सखि, राधिके अलमेतेन सुष्ठुवृट्टमितेन। कियत् पलायिष्यसे।

इस बीच कृष्ण को उद्यान चक्रवर्तिसिंह का पत्र मिला कि सुन्दरियाँ वन में घूम रही हैं। उन छलनाओं से सौगुना शुल्क लिया जाय।

विशाखा ने कहा कि शुल्करूप में विशाखा आपको दी जाती है। सुबल ने उत्तर दिया—

वृन्द—पचतये युक्तमेकवृन्दार्पणं कथम्।
मय्याविदा न न शक्य गोमस्याना प्रतारणम्॥ ६२

कृष्ण ने मधुमंगल से कहा—

तदेषा राधिकाख्या गता भ्रमरी शुल्कार्थमादेया।

कृष्ण ने राधा से कहा—

दातुमिच्छसि न काचनानि चेत् नातुरी मनसि काचनाश्रिता
गौरि गैरिकविचित्रतोदरी त्व तनो प्रविश भ्रमनोदरीम्॥ ७२

नान्दीमुखी ने बताया कि राधा का अभिषेक वृन्दावनराज्याधिश्वरी पद पर हो चुका है। यमुना की भगिनी राधा को सौगन्धिका माला अर्पित की गई। राधा की जन्मान्तर की कथाओं को नान्दीमुखी ने बताया। अब तो राधा का उच्चपद प्रतीत हुआ। उसने सुबल से कहा—काननराज उपनीयताम्

कृष्ण का परिहास राधा ने किया—

वक्रश्रिया त्वमादौ मध्ये चान्ते च वशिकारमिव।
त्यक्तजगत प्रलयो वक्रेश्वर एव देवोऽसि॥ ८५

कृष्ण ने हँस कर उत्तर दिया—

वाचि कचे भुवि दृष्टौ स्मिते प्रयाणेऽवगुण्ठने हृदि च।
स्वामि यस्त्वक्रमामध्यावश्रयिना वन्दे॥ ८६

चम्पकलता ने कहा कि वक्र के साथ वक्र की क्रीडा हो, हम लोग अन्यत्र जायें।

कृष्ण के शुल्क माँगने पर ललिता ने कहा कि सन्ध्या के समय हमारे द्वार पर आ जाओ, वहीं शुल्क ग्रहण करो। वहाँ—पुष्ट घन घोल दास्याम। अर्थात्

तुम्हारी दुर्गति करेंगे। ललिता ने कहा कि मैं अनुशासन-प्रिय हूँ। तुम राधा का स्पर्श करना चाहते हो तो मुझसे बुरा कोई न होगा। अन्त मे उसने कहा कि लो, यह राधा के गले का हार। राधा से कहा कि अभिसार के लिए तैयार हो जाओ। कृष्ण ने हार पहन लिया। राधिका ने कहा—इस मौक्तिकावली का भाग्य देखो। ललिता ने कहा—

तव निषेव्य पुना राधिके स्तनस्रस्ता मौक्तिकावली शुद्धा।
हरेर्विहरति हृदये तव कथनीय कथ महिमा ॥९०

अन्त मे पौर्णमासी आई। ललिता ने उनसे कहा कि शुल्क रूप मे राधा का हार कृष्ण को दे दिया गया है। तब भी छुटकारा नही मिला। पौर्णमासी ने कृष्णोचित समाधान किया—

या पचसु सरोजाक्षि परमाराधिका भवेत्।
धरा सैवास्य विज्ञेया धुरीणाराधने भवेत् ॥ ९४

राधा ने कहा कि मुझ कातर को इस कठोर घट्टपाल के हाथ मे न सौंपे। यह तो—

भ्राम्यत्येप गिरे कुरगकुहरे कृष्णो भुजगाग्रणी
स्पृष्टा येन जन प्रयाति विपमा कामप्रसाध्या दशाम्।
नाभद्र न च भद्रया कलयितु शक्तास्मि दृष्टिच्छटा—
मात्रेणास्य हृताहमिच्छसि कुत प्रक्षेप्तुमत्रापि माम् ॥ ९५

यह कह कर वह नकली रोदन करने लगी। पैर पर गिर पड़ी। पौर्णमासी ने कहा कि सब कुछ सुखावह होगा।

उसने कृष्ण से कहा कि सन्ध्या को राधा तुमको मिल जायेगी। अभी इसे यज्ञ मे जाने दो। पौर्णमासी ने कृष्ण से आशसा की—

सहचरीकुलसकुलया गुणैः—
रधिकया सह राधिकयानया।
तमिह नर्मसु हृन्मिलित सदा
घटय माधव घट्टविलासिताम् ॥ ९७

भाणिका मे प्रस्तावना के आठ पद्यो को छोड़कर ९० पद्य हैं। पात्र किसी भाषा मे गद्यात्मक सवाद करते हो, पर पद्य सस्कृत मे ही बोलते हैं।

रूप की शैली श्लेष-निर्भर है। परिहासात्मक प्रकरणो मे श्लेष उच्च स्तरीय हैं। सवादो मे प्रायश स्वाभाविकता है। लोकोक्तियो का प्रचुर प्रयोग नाट्योचित है। बगीय शब्दो के सस्कृत रूपो का यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है।

अध्याय २

वल्लीपरिणय

वल्लीपरिणय के रचयिता भास्कर यज्वा डिण्डिम द्वितीय के जामाता शिवसूर्य नामक महाकवि के पुत्र थे।[1] शिवसूर्य अपनी विद्वत्ता के लिए प्रख्यात थे। शिवसूर्य ने काञ्चीपुर के कामाक्षी-दयित देव की स्तुति में कहा था—

मूले माकन्दतरो शैलेन्द्रसुतातप फलं जयति।
यत्परिणामपरीक्षणतत्परगौरीस्तनाङ्कित मग्न॥

वीरराघवमखी ने शिवसूर्य की विशेष प्रशंसा करके उन्हें सेवाञ्जलि अर्पित की है। चेर-चोल और पाण्डय देशों में उनका अतिशय सम्मान था। वे पाण्डय के राजा हालघट्टि के कुलगुरु थे। वे परम शैव और श्रोत्रियों में अग्रगण्य थे। भास्कर यज्वा का रचना काल १६ वीं शती के प्रथम चरण से आरम्भ हुआ।

भास्कर का चरित्र समुज्ज्वल था और वे विनय की मूर्ति थे, जैसा उनकी नाटकान्त में अपने विषय में दी हुई उक्ति से प्रतीत होता है—

स्वल्पोऽपि वाग्विभव एष तनोतु मोदं
भूयासमेव विदुषां हृदये मदीये।
बालोक्तिरादरभरात् सवनेन किं वा
कुर्यान्मुदं शिथिलवर्णपदापि पित्रोः।

अनेक नाट्यमण्डलियाँ उस युग में उत्सवों के अवसर पर एकत्र होकर स्पर्धापूर्वक नाटकों का अभिनय करती थीं। वल्लीपरिणय के प्रस्तावना-लेखक[2] सूत्रधार ने इस परिस्थिति में अपनी मानसिक वृत्ति का उद्घाटन करते हुए कहा है—

इदानीमार्यमिश्राणां समस्तमन्मत्सरिपन्थिनो विजयशूरस्य मन्त्रके निहितोऽयं मया सव्य पादः।

इस नाटक का प्रथम अभिनय मकरतरारम्भमें श्रीजम्बुनाथ के फाल्गुनोत्सव में आये हुए सामाजिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

विष्णु का तेज किसी मृगी में समाहित हुआ और उसने एक रमणीय कन्या रत्न को जन्म दिया। उधर से कोई नवरराज निकला और उसने उसे अपनी पुत्री बना

---

१ इस नाटक की हस्तलिखित प्रति D/2773 ओरियण्टल हस्तलिखित ग्रन्थागार, मद्रास में है।

२ सूत्रधार ने कहा है—लेखक के विषय में,
वल्लीपरिणयसंज्ञं नाटकमस्मासु निदधे तत्

लिया। बड़ी होने पर उस कन्या को शूरपद्मनामक दानव अपनी पत्नी बनाना चाहता था। उसे शिव के पुत्र कुमार भी चाहते थे।

नायक कुमार विदूषक के साथ किसी उद्यान मे पहुँचे। वहाँ मालती-मण्डप-माला म वे विराजमान हुए। वही निकट ही सखियो के साथ नायिका वल्ली आ गई। उनकी बातें नायक छिपकर सुनने लगा। नायक ने सखी से सुना कि उसके वर की चर्चा हो रही है तो मन मे सोचा—

अव्याजशोभनस्यास्या रूपस्य सदृशो वर।
लोकेषु दुर्लभ नन कुतो वा वेधसा कृत ॥

नायक वल्ली के पास पहुँचा और वह उसे देखकर मोहित हो गई। सखी ने नायक को व्यजना से बताया कि मेरी वल्ली को अपहरण करके प्राप्त करें। नायक ने अपनी व्यजना भरी उक्ति मे बताया कि रात्रि के समय यह कार्य सम्पन्न होगा। नायक ने नायिका का सामुद्रिक परीक्षण करने के लिए उसका हाथ देखा—

वल्ली—(सलज्ज हस्त प्रसारयति)

नायक ने उसका हाथ पकड कर स्वगत कहा—

सन्तप्त प्रसभमिद मनो ममाय
स्पर्शोऽस्या करकमलस्य पक्ष्मलाक्ष्या।
ससिचन्नमृतरसैरिवानिमात्र
किन्त्वेतन्मदयति विस्मृतान्यभावम् ॥

और स्पष्ट कहा कि इस हाथ का परिग्रह किसी महाभाग के द्वारा होगा। तभी पिता के बुलाने पर वल्ली चलती बनी।

नायक ने विदूषक से कहा कि यह शबरकन्या मेरे मानस की चोरी करके चली गई है।

द्वितीय अक के पहले के प्रवेशक मे नायिका मदनातङ्क से पीडित है। नायक भी विदूषक के साथ उद्यान मे आकर बातचीत मे अपनी उत्कण्ठा नायिका के लिए प्रकट करता है। नायक को प्रकृति मे रमणीयता मातिशय दृष्टिगोचर होता है। यथा,

स्मेरमुग्ध सरसीरुहानना नीलकजकमनीयलोचना।
भाति कोकयुगलीघनस्तनी प्रेयसीव सरसी मनोहरा ॥

यह उसी वल्ली का अनुकरण करती हुई सी मनोरजनकारिणी है। तभी वल्ली सखियो के साथ आ गई। सखियो ने उससे पूछना आरम्भ किया कि तुम्हारी ऐसी स्थिति कैसे होती जा रही है? शाकुनिक (नायक) न हाथ पकडा था, फिर चला गया। तभी से यह सब है।

यह सुनकर विदूषक ने कहा—

श्रुत श्रोतव्यम्

सखियों ने निर्णय लिया कि मदनलेख नायिका तैयार करे। उसे नायक के पास भेजा जाय। नायिका ने सिन्दूर से भूर्जपत्र पर लिख कर कलकण्ठिका को दिया कि इसे नायक को दो। कलकण्ठी ने उसे पढ़ा—

तुलकिदमणोरहोअ जणो विणिद्दय वम्महकुमाल।
वाहिज्जइ वलिअन्त सुमरन्तेणोव्व तेण किल वेर॥

नायिका को सन्देह था कि नायक मुझे स्वीकार करेगा कि नहीं। तभी नायक ने उसके पास आकर कहा—

त्वामपि मनोज्ञवपुष प्रत्याचष्टे हि द्विपादपशु।
स सुधामयत्नलब्धा धीरस्महसा निराकर्तुम्॥

प्रेम की बातें चल रही थी। तभी वल्ली के संरक्षक शबर के वहाँ आने की खबर मिली। विदूषक ने अपने को वृक्षरूप धारण करके अन्तर्हित कर लिया। शबर ने वल्ली को गोद में लिया और प्यार किया। दिवस सन्ताप से बचने के लिए नायिका आदि सभी अभ्यन्तरशाल में चले गये।

तृतीय अङ्क में मदनातङ्कित नायक विदूषक के साथ नायिका से मिलने के लिए यन्त्रधारा गृह में चला गया। वहाँ नायक ने देखा कि नायिका का शरीर विरहताप से इतना उष्ण है कि

कर्पूरयुग्चन्दनवारिशीघ्र
शुष्क च तापाद् भवति प्रदीप्तम्॥

नायक ने कहा कि मैं भी तुमसे मिलने की आशा में जीवित हूँ। थोड़ी ही देर में नायक और नायिका को अकेले छोड़कर उनके संगी-साथी चलते बने। नायिका ने जाना चाहा तो नायक ने समझाया—

जिनकाचने तवास्मिन् कुचयुगले चारुदाडिमफलाभे
रचयन्तु तरुणि नखराश्मुक्मूपलीला ममाद्य ललिताङ्गि

नायक आलिंगन पाने के लिए नायिका से प्रार्थना कर ही रहा था कि उधर से एक हाथी निकला। तब तो डर कर नायिका ने नायक का आलिंगन कर ही लिया। तभी विदूषक भी कहीं से आ टपका। सखियाँ भी आयीं और नायिका को लेकर चलती बनीं।

चतुर्थ अङ्क के पहले चूलिका द्वारा बताया गया है कि विष्णु की कन्या वल्ली शिव के पुत्र कुमार का वरण करना चाहती है, किन्तु शूरपद्म नामक दानव उसको बलपूर्वक अपनाना चाहता है। उसे तिरस्करिणी द्वारा शची के समीप पहुँचा दिया गया है। वे दोनों युद्ध को दूर से देखती हैं। कुमार समझते हैं कि दानवराज प्रेयसी को ले गया। फिर तो नारद को प्रिय लगने वाला युद्ध होने लगा।

आकाशयान से नारद, इन्द्र, चित्ररथ, वल्ली और शची युद्धस्थल की ओर चली। मार्ग में कैलास, विन्ध्याचल, हरिहरविलासस्थान, हालास्य क्षेत्र, रामसेतु आदि की यात्रा वर्णनपूर्वक समाप्त हुई।[1] वहीं कुमार का सैन्य सागर था।

युद्ध में सर्वप्रथम शूर का पुत्र आगे आया। युद्ध का वर्णन नारद और चित्ररथ आदि के द्वारा प्रस्तुत है।

समुद्र के उस पार से वीरबाहु ने गरुड की भाँति आकर दैत्यों की राजधानी पर चढ़ाई की—

तव चण्डभुजदण्डपिण्डीकृतकलेवरः।
एष शूरसुतो युद्धे कृत प्राथमिकोबलिः॥

नारद की सूक्ष्मेक्षिका है—

जातः कयोरपि महाभटयोर्विवादः
स्सग्रामसीमनि परस्परमप्रबुद्धः।
नूनं ममायमेव पतिर्ममेति
दिव्यांगना-वदन-मर्कमितो व्यरमीत्॥

मारुतकोप ने दानवनगरी में आग लगा दी। तब तो दानवाङ्गनायें विलाप करने लगी—

हा तात हा तनय हा दयिते क्व भ्रातः
कल्पक्षयः किमथवा विधिदुर्विपाकः।
इत्थं सुरारिनगरे बहुधा प्रलापो
दग्धे समीरणसखेन विजृम्भतेऽयम्॥

गणेश ने अपनी शुण्डा से शत्रुओं के आने के मार्ग का अवरोध कर दिया।

शूरपद्म आत्मरक्षा के लिए कुक्कुट और मयूर का रूप धारण करके षडानन की शरण में आ गया। देव पक्ष की विजय से सर्वत्र आनन्द छा गया। देवताओं को अपनी पत्नियों के साथ साहचर्य का पूर्ववत अवसर मिला। सभी शिव के पास वल्ली को लेकर चले।

पञ्चम अङ्क में नारद के साथ देवराज, वीरबाहु के साथ कुमार आदि अपनी सुखमयी अनुभूतियों का वर्णन करते हैं। तभी शिव पार्वती-सहित वहाँ आ पहुँचे। देवराज ने शिव को स्तुति-पूर्वक प्रणाम किया।

कुमार शिव और पार्वती के प्रेम भाजन हुए। इन्द्र ने शिव की अनुमति ली कि उपेन्द्रकन्या वल्ली को कुमार को देना चाहता हूँ। उनकी अनुमति के पश्चात् शची

१ इस परम्परागत योजना के द्वारा समग्र भारत की एकता प्रस्फुटित हुई है।

ने अपने हाथों से मण्डित वल्ली को प्रस्तुत किया। सबने उसे सौभाग्यभाजन होने का आशीर्वाद दिया। शची ने उसे सुब्रह्मण्य के पास बैठा दिया।

शिल्प

परवर्ती युग के किरतनिया नाटकों में प्रवेश करने वाले पात्रों की रूप-रेखा प्रावेशिकी गीति के द्वारा सूचित की जाती थी।[1] उसका पूर्वरूप इस नाटक में मिलता है। प्रथम अङ्क के पूर्व आये विष्कम्भक में नारद कुमार का वर्णन करते हैं—

कौसुम्भ सूक्ष्माम्बरबद्धकोश—
भारोऽवतंसप्रचलाकिबर्हि ।
वेनोल्लसत्पाणिरसौ विधत्ते
मुद मयाद्दणीश्वरेन्द्रसूनुः ॥

नायिका का सामुद्रिक ज्ञान के लिए हाथ पकड़वा देना और इस प्रकार उनके अनुभावों के वर्णन द्वारा इस नाटक में रस की सृष्टि करना एक विरल सविधान है।

अङ्क और प्रवेशकादि के नाम उनके अन्त में ही दिये गये हैं, आरम्भ में नहीं। इस प्रकार अङ्क के भीतर प्रवेशकादि को दिखाने की त्रुटि इसके प्रणेता ने नहीं की है और न उसकी प्रतिलिपि बनाने वाले ने यह भूल की है।

स्त्रीपात्र और विदूषक भी द्वितीय अङ्क में महत्त्वपूर्ण बातें प्राकृत में न कह कर संस्कृत में कहते हैं।

रंगमंच पर आकाशयान से विद्याधर के उतरने का यान्त्रिक अभिनय तृतीय अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक में है।

शूरपद्म का मयूर बनकर कुमार का शरणागत होना छायातत्त्वानुसारी प्रवृत्ति है।

वल्लीपरिणय में एकोक्तियाँ अनेक हैं, पर हैं छोटी-छोटी। तृतीय अङ्क के आरम्भ में नायक अकेले ही रंगमंच पर है। उसकी एकोक्ति है—

सा मे पुरतः पश्चात् पार्श्वे चान्तश्च सकलचन्द्रमुखी।
विलसति निमेषसमये क्षणमुन्मेषे तिरोधत्ते ॥

फिर विदूषक के आ जाने पर भी एकोक्ति चलती है—

नेत्रे नीलसरोजसुन्दरतरे मावन्दगुच्छद्युति-
र्गण्डस्सुन्दरि भाति दन्तवसनं चाशोकसूनोपमम्।
गात्रं ते नवमल्लिका मृदुलसत्पाथोजकोशस्तनौ
प्रायो मानगजस्य जन्ममधुना शस्त्रं त्वमेव प्रिये ॥

---

१ तृतीय अङ्क के पूर्व आने वाले विष्कम्भक में अन्त में प्रवेश करने वाले नायक का वर्णन है —

'अलसतरगति प्रकोष्ठपञ्चत्' इत्यादि।

उत्तररामचरित से उधार लेकर नायक तृतीय अंक मे प्रेयसी के विषय मे कहता है—

'इयं गेहे लक्ष्मीर्मम हृदयमित्र च विपुला' इत्यादि।

अन्यत्र कालिदास के नाटको की बहुत छाया है।

शृङ्गाररस-निमग्नता के लिए नायक द्वारा नायिका का आलिंगन लेने की इच्छा करना और नायिका द्वारा इच्छा होते हुए भी परिहार करना दिखाया गया है। पर तभी उधर आने वाले हाथी के भय से डरकर नायिका का आलिंगन करना दिखाया गया है।

भास्कर ने नायक को कवि का व्यक्तित्व दिया है। वह सूर्य (भास्कर) का वर्णन अनेक स्थलो पर निपुणता से करता है। अन्यत्र भी प्रकृति-वर्णन की चारुता से नाटक पर्याप्त मण्डित है।

चतुर्थ अङ्क मे नायक रंगमंच पर आकर युद्ध के लिए समुचित भूमि पर लडने के लिए चला जाता है—यह ठीक नही। रंगमंच पर आकर उसी अङ्क मे नायक का रंगमंच छोडना अशास्त्रीय है।

भास्कर ने शृङ्गार और वीर दोनो रसो का सामंजस्य सफलतापूर्वक निभाया है।



धर्मविजय-नाटक

धमविजय-नाटक के लेखक भूदेव शुक्ल हैं।[१] भूदेव के रसविलास नामक ग्रन्थ के अन्त में लेखक का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

जम्बुसर स्थितिजुष शुक्लदेवसूरे
भूदेवपण्डितकवि प्रथमस्तनूज ।
तन्निर्मितो रसविलासपदाभिधेय
सन्दर्भ एष कविनां मुदमादधातु ॥

इसकी बड़ौदा में प्राप्त प्रति में १७६३ वि० स० लेखन का समय दिया गया है। इससे इतना तो सिद्ध होता है कि रसविलास की रचना १७६३ वि० स० के पहले हुई। इसकी पुष्पिका में श्रीकण्ठ दीक्षित को भूदेव का गुरु बताया गया है।

धमविजय-नाटक की प्रस्तावना के अनुसार दिल्ली-दयितवेतनदानामात्य केशवदास के आदेशानुसार इसका अभिनय आयोजित हुआ। उस युग म अभिनय का एक नाम सङ्गीतक भी था, जैसा सूत्रधार ने कहा है।

'तत्सदनमुपेत्य कान्तामाहूय सगीतकमनुतिष्ठामि'

केशवदास सम्भवत अकबर के समकालीन १६ वी शताब्दी मे रखे जा सकते हैं।[२] डा० डे०, डा० पी० के० गोडे आदि ने इसका रचनाकाल १६ वी शती में माना है।[३] कवि हरि और हर दोनो का उपासक था।[४]

धर्मविजय-नाटक की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि इसका लेखक सूत्रधार है। इसके अधोलिखित सवादांशो से यह प्रमाणित होता है—

नटी—को नु खलु तुष्टेऽस्माक लाभ ।

सूत्रधार —दारिद्र्यभग

सूत्रधार ने प्रस्तावना के आरम्भ मे कहा है—

१ इस नाटक का प्रकाशन काशी से सरस्वती भवन टक्स्ट ३८ म १६३० ई० मे हुआ।

२ केशवदास को इसम राजर्षि कहा गया है। राजर्षि तो क्षत्रिय होना चाहिए। अकबर से सम्बद्ध सुकवि केशवदास ब्राह्मण थे।

३ हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर पृ० ४८६ तथा जनल आव बी० ओ० आर० आई० भाग ८, पृ० १८३ । स्टेन कोनो ने A Hist of Skt Drama में इसे १६ वी शती का बताया है।

४ कवि ने ५ ६१ म विष्णु और शिव के प्रति समान आस्था प्रकट की है।

'अद्य तावदाहूय समादिष्टोऽस्मि श्रीमद्दिल्ली-दयित-वेननदानामात्येन महनीयनरितश्रीमहता केशवदासेन' इत्यादि ।

उपर्युक्त अंश का रचयिता भला नाटककार कवि कैसे हो सकता है ।

नाटक की रचना और भावप्रवणता उत्तर भारत की है, जैसा प्रस्तावना के नीचे लिखे पद्य से प्रतीत होता है—

नम्पाप्तोऽनुशय मदोविपयद साकेतमात्र नयन्
यान केशवदास भावमधुना रामोऽनुगृह्णातिन ।

धर्मविजय की रचना 'मोहराज पराजय' के आदर्श पर मानी जा सकती है।[1] मोहराजपराजय की रचना १२ वी शती के अन्तिम चरण में यशपाल ने गुजरात में की थी। सम्भवत भूदेव भी गुजरात के थे। गुजरात में एक जम्बूसर है, जहाँ इनकी जन्मभूमि हो सकती है।[2] कवि का मध्यदेश पर गर्व है। तभी तो इस नाटक की प्रस्तावना में वह कथासार देते हुए कहता है—

अधर्म इव धर्मेण भूभारक्षमबाहुना।
मध्यदेशक्षितिभुजा जितो दक्षिणभूपति ॥

इस नाटक का प्रथम अभिनय गुर्जर में हुआ।[3]

कथानक

धर्म ने अधर्म का सत्ययुग में धर्षण किया था। यथा,

ज्ञान तपो यज्ञविधि प्रदानमेते कृतादौ सुकृतावतारा
एतं नमाकृष्य जगन्ति धर्म सन्तापयामास बलादधर्मम् ॥

त्रेता में ज्ञान भर मिटा द्वापर में तप का विनाश हुआ, कलियुग में विष्णुनाम का सहारा बचा है।

धर्मराज ने पुराण-श्रवण आदि को तीर्थ, आयतन, पुर, पत्तन, अरण्य, पर्वत आदि क्षेत्रों में विजय करने के उद्देश्य से भेज दिया।

व्यभिचार परस्पर-प्रीति से बात करते हुए बूढ़े धनपाल की युवती वनिता का समाचार पूछते हैं। फिर अनाचार नामक पछाई ब्राह्मण तीर्थयात्रा करके लौटने

१ वस्तुत सभी प्रतीक नाटक ११ वी शती के कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय का प्रायश अनुहरण करते हैं।

२ भूदेव ने इस नाटक के पृष्ठ ३३ पर—परप्रिय गुर्जरमण्डलमावाभ्यामाश्रितम् से भी गुजरात में कवि की जन्मभूमि होने का संकेत मिलता है।

३ पृष्ठ ३३ पर पौराणिक कहता है—'गुर्जरमण्डलमावाभ्यामाश्रितम्' इसमे अभिनय-स्थान की व्यञ्जना होती है। पृष्ठ २४ पर 'गुर्जरा पीनशेष पय सोमकल्प कल्पयन्ति' से भी यही व्यञ्जना होती है।

पर अपनी नामगाथा बताता है। वस्तुत वह मध्यदेशीय स्नातक है। उसे परस्पर-प्रीति ने मुँह लगाकर पीए हुए जल का आधा पैर धोने के लिए दिया। अनाचार बताता है—

खादन्तीज्यामन्तरेणापि मास
विन्ध्यस्यादूरत्तारस्या द्विजेन्द्रा ।
आवृद्ध चावालमास्वादयन्ति
प्राय प्रीत्या दाक्षिणात्या पलाण्डुम् ॥ २ २३

अनाचार परस्पर-प्रीतिका देवर निकला। देवर तो स्त्रियों के आनन्द का साधन होता है—यह उसका मत है। उसने उसे सुरापान कराया।

द्वितीय अङ्क मे पौराणिक और अधम बात करते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि किस प्रकार चारित्रिक ह्रास परिव्याप्त है।

तृतीय अङ्क म पण्डित-सगति फासी लगा रही है। उसे परीक्षा ने बताया कि विद्या का अभाव मुझे इस काम के लिए प्रेरित कर रहा है। यथा

अन्विष्ट तदपि सदो नराधिपाना
विद्यार्थी प्रतिमठमादरेण पृष्ट ।
भट्टानामुदवसनि विविच्य दृष्ट
विद्याया पदमधुनापि नोपलब्धम् ॥ ३ ४

फिर दोना घर घर घूम कर विद्या को ढूढते हुए वैद्य के पास पहुची। परीक्षा ने वैद्यराज से कहा कि मेरी सखी को ताप लगा है। वैद्य ने उपचार बताया—

चूर्णं कषायो गुटिकावलेह पाकञ्च सन्दिग्धचिकित्सितानि।
आरोग्यकारि ज्वरितस्य शीघ्र तप्तायसेनाङ्कनमेकमेव ॥ ३ ६

अर्थात् दहकते लोहे से दागना ही उपचार है।

परीक्षा और पण्डित-सगति को गणक मिले जिनका आत्म-परिचय एकोक्ति-द्वार से है—

आजन्मसिद्धप्रमादपरवशतया मुहूर्तमपि न जानीम ।

गणक और वैद्य स्मार्त शुक्ल के पास पहुचे कि धर्मशास्त्र विषयक चर्चा हो। स्मार्त ने आत्मपरिचय दिया—

विक्षेपव्यासगसेविना मया न कोऽपि दृष्टो निबन्ध ।

उन्होंने गणक को बताया कि गर्भाधान से छठें या आठवें मास मे सीमन्तोन्नयन सस्कार होता है।

स्मार्त ने गणक से पूछा कि ये दोनो कृत्यायें कहाँ से तुम्हारे पीछे पडी हैं ?

परीक्षा और पण्डित-सगति रोते हुए वैदिक के घर पहुचे, जिनके विषय मे स्मार्त ने कहा—

पत्न्या नितम्बमभिमृश्य शिरोभ्रमेण
किं केशपाशविकला मृतभर्तृकेयम् ।
इत्थ विषण्णहृदय शयने निषण्णो
हा पुत्र मातररिति रोदिति वैदिकोऽयम् ॥ ३ २६

चतुर्थ अङ्क मे महापातक का न्याय व्यवहार के द्वारा किया जाता है। वह अपनी पापप्रवृत्ति का कारण बताता है। व्यवहार न कोष्टपाल से कहा कि यह दुष्ट अनुशय नही करता और प्रायश्चित्त नही करता। इसका वध करो—

प्रथमनश्छिन्नशिश्नमेन तप्तमुरा पाययित्वा स्वर्णमुसलेन शिरसि कृतक्षतमश्वत्थकाष्ठे प्रज्वालयन्तु।

प्रयाग मे धर्म और अधर्म का युद्ध ससैन्य हुआ। हिंसा ने अहिंसा को, दया ने क्रोध को, शौचने अशौच को जीत लिया और उन्हे मार डाला। फिर धर्म महाविद्या को देखने के लिए दशाश्वमेध पर आया।

पाँचवें अङ्क मे राजा, कविता और परिवार रगपीठ पर उपस्थित हैं। कविता ने राजा को बताया कि प्रजा समुन्नत है। कोई चारित्रिक दुर्व्यवस्था नही रह गई। यथा,

हिंसा यज्ञे सस्कृताना पशूना
स्पर्धा विद्याकामुकाना वटूनाम् ।
क्रोध क्रीडद्बालकाना गुरूणा
शिष्याणा चाध्यात्ममार्गे विवाद ॥५ २१

सभी दुष्प्रवृत्तियो का स्थान परिसीमित हैं। राजा ने विविध विद्याओ का सादर अभिनन्दन किया। वहीं शिव आ गये—

अर्धा गे कुवलयलोचना दधान
प्रालेयस्फटिक-धराधरोद्भटाभ ।
उद्दामद्युति-शशिखण्ड-मण्डनश्री-
श्चित्तान्तर्विलसति य पुमान् पुराण ॥५ ५२

राजा धर्म ने उनकी पूजा की और मानसोपचार किया।

नाट्य शिल्प

द्वितीय अक मे व्यभिचार और परस्पर प्रीति रगपीठ पर आलिगन करते हैं। आलिगन करते समय व्यभिचार स्वगत कहता जाता है—

त्रुट्यन्कूर्पासहार विदलितवलय विश्लथ नीविगाढ
प्रौढप्रेमानितिर्यग्विचलितनयन गाढमालिगिताया ।
उच्छ्वासोत्तालवक्षोभवदढघटनादेति नव्या महीया-
नगप्रत्यग-सगादनुभवपदवी कोऽपि शर्मातिरेक ॥२ ४

(प्रकाश दृढ परिष्वज्य.) इत्यादि ।

उपर्युक्त स्वगत मे आंगिक अभिनय का निर्देशन किया गया है ।

प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य का विष्कम्भक दृश्यसामग्री से युक्त होने के कारण लघु दृश्य के रूप मे प्रस्तुत है । इस विष्कम्भ मे ११ पृष्ठ हैं और द्वितीय अङ्क मे केवल ९ पृष्ठ । अङ्क से बडा विष्कम्भक होना विरल ही है ।

चरितनायक

इस नाटक मे भावात्मक नायको के साथ ही पुरुष पात्र भी हैं । उनमे से पौराणिक, वैद्य, गणक, स्मार्त, प्राड्विवाक, सदस्य, सभ्य, नोडपाल आदि प्रमुख हैं । भावात्मक नायक नाम मात्र के भावात्मक हैं । वस्तुत वे आचार-व्यवहारादि से पुरुष ही प्रतीत होते हैं । अपन एक साथ ही रगपीठ पर ११ पात्र आकर उपस्थित होते हैं ।

कार्याभाव

रगपीठ पर सवादमात्र प्रचुर हैं । वे चरित नायको के कार्य से युक्त नही हैं । कवि को सम्भवत यह मान्य नही था कि कार्य-रहित कोरे सवादो से और व्याख्यानो से रूपक नही बनता ।

एकोक्ति

पण्डित-सगति की एकोक्ति तृतीय अङ्क के आरम्भ मे अतिशय मार्मिक है । यथा

कथमिह भवनीनामाननाम्भोरुहाणि
प्रसरदमृतवाणीवासनागर्भितानि ।
विविधजनसमाजेऽप्यापि नालोकयन्ती
हत विधिकलिताह जीवित धारयिष्ये ॥३ १

शैली

भूदेव को अख्यात शब्दो के प्रयोग म रुचि थी । वे मध्याह्न के लिये घस्रमध्य लिखकर सन्तोष का अनुभव करते हैं । साधारणत तो कवि सरल शब्दो का प्रयोग करता है, किन्तु अपवाद रूप से अज्ञात शब्दो के प्रति उसका झुकाव है ।

अनुप्रास की शुभ्रता गद्य भाग मे कही कही चमत्कार उत्पन्न करती है । यथा,

तरुणतरतरणिकरजनितक्लेशेव तनुतामुपैति छाया जनानाम् । त्वरिततरमुदयगिरिशिखरशिखरपरिसरादम्बरसरणिसमारोहणपरिश्रमादिव मिहिर-रथतुरगा स्थिरतामुपयान्ति गगनमध्ये ।

पद्यो में भी अनुप्रास भरपूर है । यथा,

पलितदलितवाल शुष्ककजालजाल-
स्खलितगलितदंष्ट्रादन्तमालाकराल ।

लपनन ग्ललालाश्वासहिक्काजटालो
न भवनि सुमुखीना भोग-योग्यश्चिताश ।।२१०

कही-कही श्लेष के द्वारा रूपक का नियोजन सफल है। यथा,

वेदमूर्तिरपि रागमाश्रितस्तेजसा निधिरपि स्पृशस्तम
अम्बर परिहरस्खलत्कर काश्यप पतति वारुणी भजन् ।।

छोटे-छोटे पादो वाले सरल सुबोध पद्यो के द्वारा मनोभावो की अभिव्यक्ति की गई है।

लोकोक्ति

धर्मविजय नाटक मे लोकव्यवहार और सदाचार-प्रवण सूक्तियो की राशि सवलित है। तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियो के परिज्ञान के लिए इन लोकोक्तियो का विशेष महत्त्व है।

परिहास

प्रेक्षको को परिहास के साथ कुछ सूझबूझ की बातें बता देना भूदेव की देन है। युधिष्ठिर को धर्मावतार कहना कैसी विडम्बना है, जब

भीष्म गुरु सूर्यसुत निहत्य
वृद्ध पितृव्य तनयैर्वियोज्य।
युधिष्ठिर स्वानपि घातयित्वा
धर्मावतार प्रथित पृथिव्याम् ।। १२२

भविष्य की कल्पना

तुलसीदास की भाँति वाराणसी की जो दशा कवि ने लगभग ४०० वर्ष पहले कल्पित की थी, वह आज प्रत्यक्ष है। यथा,

व्यभिचार—अज्ञाह्मोऽस्मियधर्मेण-वत्स व्यभिचारप्रथमे तीर्थे पार्वतीप्राग-
नाथपुरे दृष्टिरागवनितया परस्परप्रीत्या सह गार्हस्थ्यमुप
भुज्यताम्। चरित च भवतो विलोक्य कुलीनतरुणीतरुणैरपि
स्वेच्छाविहारिभिर्भवितव्यम्।

आज काशी की सडको पर ऐसे स्वेच्छाविहारी छैलानियो की सख्या अविरल है। कवि के भविष्य दर्शन मे स्पष्टता है—

काचित् कान्त परमभिसरत्यात्मना वित्तकामा
दूती काञ्चनयति विविधैश्छद्मभि सम्प्रलोभ्य।
काचित् वक्तुं व्रजति सफल जारसगाद्भय स्व
काचिद्वन्ध्या प्रतिमठमटत्याकुला पुत्रहेतो ।। २·१

एकत्रैके निवासादविदितचरिता सश्रयन्त्यन्यकान्ता
भूत्वा मित्राणि भर्तुर्विलसितमपरे तस्य दारैर्भजन्ति ।
केचिद्वाणिज्यदम्भात् परिचरणमिषात् केऽपि धर्मोपदेश-
व्याजात् केचित् परेषा शरणमुपगता कामिनीं कामयन्ते ॥ २२

वाटीविभूषणमनर्घ्यमुदार-शाटी
पाटीरकुकुमविलेपनमन्यदारा ।
तीव्रा सुरा कुसुमपल्लविनी च शय्या
स्वर्गोऽयमेव नरक क्व नु केन दृष्ट ॥ २३

समीक्षा

धर्मविजय अपनी कोटि का एक निराला ही नाटक है। इसके पाँचो अङ्क स्वतन्त्र दृश्य रूप मे हैं। प्रत्येक मे प्रायश स्वतन्त्र कथ्य है। इसके विष्कम्भक प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ अङ्क के पहले प्रायश स्वतन्त्र दृश्य के रूप में प्रयुक्त हैं। इसमे कार्य की पचावस्थायें दूरत साध्य हैं।

धर्मविजय नाटक प्रहसन-प्रधान है, यद्यपि इसमे विदूषक नही है। वैद्य, गणक, स्मार्त आदि नायको मे अपने व्यवसाय का औदात्य नही है। पाखण्ड का भण्डाफोड करने की दिशा मे जो प्रवृत्ति प्रहसनो मे दिखाई देती है, वही इसम भी है। भाण मे समाज की विकृति का निदर्शन स्थान-स्थान पर मिलता है। यह प्रवृत्ति भी धर्मविजय मे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है।

धर्मविजय अपनी इन विशेषताओ के कारण महत्त्वपूर्ण है।

०

अध्याय ४

भावना-पुरुषोत्तम

भावना-पुरुषोत्तम की रचना सोलहवीं शती के मध्य में श्रीनिवास दीक्षित ने की। तञ्जौर विद्वन्मण्डल के अद्वितीय रत्नों में इनकी गणना की जाती है। श्रीनिवास का जन्म विद्वत्कुल में हुआ था जिसकी नामावली परम्परा से अधोलिखित है —

श्रीभवस्वामी (भाष्यकार)
श्रीकृष्णार्य (आह्निकप्रणेता)
कुमार भवस्वामी (अद्वैतचिन्तामणिकार)
श्रीकृष्णार्य
श्रीभवस्वामी भट्ट
श्रीनिवास।

श्रीनिवास का सर्वप्रथम नाटक भावनापुरुषोत्तम है।[1] इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार ने इनका परिचय दिया है कि राजा सूरप नायक के द्वारा प्रतिष्ठापित सूर-समुद्र-अग्रहार में श्रीनिवास निवास करते थे।

सूत्रधार—अस्ति खलु कश्चित्तोण्डीरेषु[2] श्रीसूरसमुद्राभिधानो महाग्रहारः

तत्रास्ति कश्चिदरुणाग्निहोत्री
षड्दर्शनी सागरपारदृश्वा।
शतावधानीत्यपराभिधानः
श्रीश्रीनिवासाध्वरिसार्वभौमः ॥

सूत्रधार ने आगे बताया है कि श्रीनिवास प्रतिदिन-प्रबन्धकर्ता हैं, इन्हें चोलराज का प्रशस्तिपत्र प्राप्त है, ये षड्भाषा सार्वभौम हैं, ये अभिनव भवभूति हैं, रत्नखेट हैं, अतिरात्रयज्वा हैं।

भावना-पुरुषोत्तम का अभिनय वेङ्कटनाथ के वासन्तिक महोत्सव के अवसर पर हुआ था। अभिनय की अभ्यर्थना स्वयं नायक-वंशोत्तंस महाराज सूरप ने की थी।[3] इसकी रचना सूरभूपति की इच्छानुसार हुई थी, जैसा अन्तिम अङ्क की इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है—

१ भावना-पुरुषोत्तम की हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। इसकी मूल प्रति तञ्जौर सरस्वती महल-पैलेस लाइब्रेरी में है।

२ मदुरा और तञ्जौर के मध्य का प्रदेश।

३ सूरप के तीन दानपत्र शक १४७२, १४८४ और १४६८ सवत्सर के मिलते हैं, जो १४६२ ई० से १५५० ई० तक पड़ते हैं।

इति श्री निवासातिरात्रयाजिन कृतौ श्रीपोतभूपालतनय-श्रीसूरनृपनिकारिते भावनापुरुषोत्तमाभिधाने ।

श्रीनिवास के आश्रयदाता सूरप जिंजी (सेन्जीपुर) के नायकवंशी राजा थे। कुछ समय के पश्चात् वे अपने पुत्र के साथ तंजोर में चेवप्प के आश्रय में रहने लगे थे।

सूत्रधार ने प्रस्तावना में कवि का आत्मपरिचय उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है—

भुवि कतिपयं प्रस्तूयन्ते पदार्थचमत्क्रिया
प्रचुरितपदाटोप पन्था परैर्बहुमन्यते।
परिचितपरानन्दास्वादप्रमोदपचेलिमै
शिवशिवरसोऽस्मासि श्लाघापरं परिचीयते ॥

आगे चलकर कहा है—

मदीये वाग्गुम्फे यदि कविचमत्कारकरिणी।
न वाणी का हानिर्मम हरिकथाधौतवचस ॥

बालयज्ञवेदेश्वर ने श्रीनिवास की रचना-सामग्री का परिचय इस प्रकार दिया है—

अद्वैतास्त्रवकौस्तुभं व्यरचयद्यो वादतारावलीं
मध्वध्वंसनवीद्धनन्त्रमथने वेदान्तवादावलीम्।
प्रत्यक्तत्त्व मणिदर्पण समयसर्वस्व विधेर्निर्णयं
तत्त्वानां परिशुद्धिबोधविमलं रत्नप्रदीपं स्मृते ॥

यो भावनापुरुषकय मुखान्यकार्षी-
दष्टादशापि च दशादमृतारूपकाणि।
भावोत्तराणि शितिकण्ठजयादिमानि
काव्यानि षष्टिमननोदमृतायितानि॥

ध्वन्यध्वध्वंसनोविनोदनिपुणा साहित्यसंजीवनी-
भावोद्भेदरसाब्धिवादिहृदय पारेशन सत्कृता ।
अन्ये क्षौद्ररसार्द्रसुन्दरगिर क्षुद्रप्रबन्धा शत
छन्दोग्यौनिपमन्त्रतन्त्रविषया भाषाप्रबन्धास्तथा ॥

अन्याश्च यस्य कृतयो निखिलागमान्त-
सिद्धान्तिनान्तरनिरन्तरसूक्तिगुम्फा ।
षड्दर्शनीमर्मनमर्मविवेकवर्म
कर्मक्षमा कुशलिना मुदमावहन्ति ॥

कालनिर्णय

भावनापुरुषोत्तम के अंत में नीचे लिखा पद्य मिलता है—

सवयारिसमे मीनमासे राकातिथाविदम्।
उत्तरार्धे रविदिने समाप्तं नाटकं परम्।

अर्थात् इस नाटक की समाप्ति १५८८ ई० में हुई। यह नाटक की प्रतिलिपि के समाप्त होने की तिथि है न कि कवि द्वारा उसके प्रणयन की, क्योंकि कवि के आश्रयदाता सूरप के दानपत्र १४९७ ई० से १५५० ई० तक के हैं। कुप्पू स्वामी शास्त्री ने सूरप नायक का शासन काल १५४६-१५७२ ई० बतलाया है।[1] ऐसी स्थिति में श्रीनिवास को १६ वीं शती के मध्य काल में रखा जा सकता है।[2] ऐसा लगता है कि भावनापुरुषोत्तम की रचना १५५५ ई० के लगभग हुई।

कथावस्तु

भावनापुरुषोत्तम नाटक में योगविद्या नामक परिव्राजिका भावना और पुरुषोत्तम का संयोग कराती है। भावना जीवदेव की कुमारी है। उसे पुरुषोत्तम से प्रेम हो गया। इधर पुरुषोत्तम भी भावना के प्रति अनुरागाविष्ट होकर उससे मिलने के लिए मृगयाविनोद के बहाने गरुड पर बैठकर निकल पड़े। वे रमणीय हरिण को पकड़ने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़े। हरिण पकड़ा गया और वह अन्तःपुर में भेज दिया गया। आगे बढ़ने पर पुरुषोत्तम सिद्धाश्रम पहुँचे। वहाँ मृग वीणागान सुन रहे थे। वहीं नायिका सखी के साथ जा पहुँची। मंदिर में भावना का गीत तुलसी की स्तुति विषयक सुनाई पड़ा—

समारजलहिनरणे तुलसि महाविण्णुवल्लहे देवि।
मिज्झउ मह वच्छिअ तुज्झपसाएण मम कप्पलये।।

नायक बिना जाने ही अपनी नायिका के पास पहुँचा, क्योंकि उसके सौन्दर्य से मोहित हो चुका था। उसने नायिका को यह कहते सुना कि तुलसी देवी ने कहा है कि शीघ्र ही तुम्हें अपने प्रियतम मिलेंगे। नायक को छिपकर नायिका की सखी से उसकी बातें सुनते हुए ज्ञात हो गया कि उसके प्रियतम पुरुषोत्तम हैं। वे विदूषक के साथ देवता-दर्शन के लिए गये। नायिका ने उन्हें देखा तो उसे लगा कि पुरुषोत्तम ही हैं। उसकी सखी ने कहा कि ये तो मानव हैं। क्षणभर के लिए नायक ने सखी के बनाए पुरुषोत्तम रूप का धारण किया—कालमेघ श्याम, चतुर्भुज, शङ्खचक्रगदा-पद्मधारी, कौस्तुभमाली, पीताम्बरधारी, फिर मानव हो गये। यह जादू है कि भगवान् की लीला है? यह विचार करती हुई भी भावना ने कहा कि इनमें मेरी दृष्टि अनुरागमयी है, पुरुषोत्तम को छोड़कर अन्य में मेरा अनुराग कहाँ?

1 A Short History of Tanjore Princes

2 T R Chintamani, Life and Works of Rajacudamani Dikshita appended to Rukmini Kalyana Mahakavya

नायक और नायिका का अनुराग प्रथम दर्शन में बढ़ ही रहा था कि दूर से विदूषक का 'त्राहि माम्' सुनाई पड़ा। दो पहर का समय हो चुका था। नायक उसे बचाने चला। नायक ने विदूषक से मिलने पर नायिकागत अपनी मानस विक्रिया का वर्णन किया—

तन्मुखं मे च दशचलनम
मा च वाक्यरचना चमत्क्रिया।
तानि तानि हसितानि सुभ्रुव
मन्नत मनसि सचरन्ति मे।

उसके नयनबाण से नायक का हृदय विंध गया था। वह अपनी स्थिति का वर्णन करता है—

तदपाङ्गबाणकृतरन्ध्रवर्त्मना
तरसा प्रविश्य विषमायुधो मन।
विविधैर्भिनत्ति विशिखैर्विशृङ्खलै
विधिचानुरीयमिति मन्महे वयम्॥

और भी—

मत्तमन्दा खलु मन कलभो मदीय
काञ्ची-कलाप-सलश्रृङ्खलया निबद्ध॥

नायिका के विषय में नायक कामना करता है—

उत्तानित तन्मरग्रहणेन तस्या-
स्त्विद्यत्कपोल विलसत् पुलकप्ररोहम्।
ह्रियार्धकुड्मलित-दृष्टिमुख कदा नु
स्मेर निम्टकिलविचितमापिबेयम्॥

नायिका के विषय में नायक की गहरी शृङ्गारित प्रवृत्ति देखकर विदूषक ने उसे बताया कि आज इस सिद्धाश्रम में यह बातचीत चल रही थी कि निकट आये हुए पुरुषोत्तम को यहाँ एक पखवारा रहने का निमन्त्रण दिया जाय, जिससे समाधि में बाधा डालने वालों से छुटकारा मिले।

योगविद्या ने उस आश्रम के सज्जनमानसोद्यान नामक पार्वतनी प्रदेश में मालती और पुरुषोत्तम के साहचर्य के लिए रमणीय उपादान प्रस्तुत कर दिये थे। वहाँ मदनातङ्कित नायिका आ जाती है। जितना ही उसका शीतोपचार हो रहा है, उतनी ही उसकी मदन बाधा बढ़ रही है। नायिका ने ध्यान सुनाय नायक का चित्र बनाया, जिसे वानर का रूप धारण करके विदूषक ने झपट्टा मार कर हथिया लिया और नायक की इच्छानुसार उसे दिया। नायक उसी चित्रपट पर अङ्कन का नायिका के चरणों में प्रणत चित्रित करके उस स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ नायिका थी, पर अदृश्य। नायक ने चन्द्रकान्त शिलातल में उसकी छाया देखी और उसे

ढूँढने लगा। उसने मनोव्यथा कही—

इयमिह विरहार्ता दृश्यते चन्द्रकान्ते
शमयितुमभिताप सर्वथान्तर्विलीना।

उसका आलिंगन के लिए हाथ फैलाया तो कुछ भी हाथ नहीं लगा। वह उसे स्तम्भ में ढूँढने चला। नायिका को चन्द्रकान्त-शिला में देखते हुए नायक उसके विषय में अपने भाव प्रकट करने लगा और अदृश्य नायिका उत्तर देने लगी। नायक बिचारा उद्विग्न हो गया। अन्त में उसने चतुर्भुज रूप धारण किया और नायिका उसके समक्ष प्रकट हुई। नायक नायिका का पाणिग्रहण करना चाहता था, किन्तु नियमानुसार इसके पिता कन्यादान करेंगे, जब स्वयंवर सभा में सभी प्रतिपक्षी पाषण्डों का खण्डन करके विजयी होंगे।

काञ्चीपुरी में स्वयंवर सभा का आयोजन हुआ। चार्वाक सिद्धान्त सबसे पहले पहुँचे। साथ में इसका शिष्य नास्तिक था। उसने अपने शिष्य से ऐन्द्रियक भोगों के अतिशय को अपवर्ग बताया। वेद धूर्तवाद हैं, स्मृति अपस्मृति है, इतिहास परिहास है। सभी दिशाओं में चार्वाक के शिष्य दुराचार, दुर्गुण, दुर्बुद्धि, कलि आदि विजयी हो रहे हैं। वेदानुयायी भी वस्तुतः इन्हीं के वश में हैं। ये पुरोहित दम्भी हैं। उनका आशापाश वर्णनातीत है। कई तो वेशवाट का सेवन करते हैं। याजक वंचक-शिरोमणि हैं।

फले सम्पाद्याशा ववचन शशशृङ्गप्रतिभटे
प्रवृत्तान् कुर्वन्त कथमपि धनाढ्यान् क्रतुविधौ।
तस्मात् प्रायश्चित्तव्यतिकरमिषेण प्रतिपद
हरन्त सर्वस्वं न च जहति पट वा परिहितम्॥

चार्वाक ने क्षपणक-सिद्धान्त को देखा और बरस पड़ा कि तुम्हारे मत में देह और आत्मा भिन्न हैं, प्रत्यक्ष के अतिरिक्त भी प्रमाण हैं, परलोक भी है, वस्त्र नहीं धारण करने, केशलुंचन कराने की रीति है और ब्रह्मचर्य भी है। तो फिर क्या गड़बड़ी नहीं है? और भी—शून्यागार में रहते हुए तुम सभी स्मरकला में निष्णात हो। मैं भी कामाग्नि प्रशान्त करने के लिए तुम्हारा शिष्य बनना चाहता हूँ। जब उसका केशलुंचन होने लगा तो वह कष्ट से भाग खड़ा हुआ। उसे बुद्ध सिद्धान्त मिला। चार्वाक की दृष्टि में—

भवान् योगाभ्यास-स्तिमित इव निध्यायसि दिवा।
निशा भुक्तान्नास्ता रहसि मठवासी मृगदृशः॥

इस ज्ञान के लिए वह बुद्ध-दीक्षा की याचना करने लगा। उसने बौद्धदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को सुना। घबड़ा कर दूर हटा तो कापालिक सिद्धान्त से मुठभेड़ हुई। वह गोरख का नाम जप रहा था। उसने अपनी चर्या बताई—

पातव्यं मधु मत्तचन्द्र-वदना-गण्डूषितं सर्वदा
कर्तव्या सरसामिषाशनकला यस्मिन् मते देहिनाम् ।

उसने राजयोग, हठयोग, कायसिद्धि आदि का वर्णन किया[१]।

आगे मिला वीर-सिद्धान्त—

जंघामुखरित-घण्टा जर्जरकन्था जटागलल्लिङ्गा ।
हस्तान्दोलितशूला हरहर केचिद्वलन्ति भिक्षाकाः ॥

आगे शक्तिसिद्धान्त मिला । वह त्रिपुरसुन्दरी का उपासक है—

'मद्यं पेयं मांसमासेवनीयम्'

उसकी व्रतचर्या थी ।

फिर सामयिक सिद्धान्त, सुदर्शनाचार्य-सिद्धान्त, नीलकण्ठ-सिद्धान्त, सश्वर-सांख्य-सिद्धान्त, प्राभाकर सिद्धान्त, निरीश्वर-सांख्य-सिद्धान्त, आर्मव सिद्धान्त, वैशेषिक सिद्धान्त नैयायिक सिद्धान्त तथा यवन (इस्लाम मत) की भी मान्यतायें बताई गई हैं ।

तृतीय अङ्क के अन्त में रंगमञ्च पर तत्त्व-जिज्ञासा नामक योगविद्या की शिष्या आती है । सबने निर्णय लिया कि योगविद्या को दासी बनाया जाय । कापालिक ने कहा कि इसे दुर्गा या भैरव की बलि दे दी जाय । उनकी पकड़ में आने पर तत्त्वजिज्ञासा रोने लगी । तभी तत्त्वविचारणा आ पहुँची । उन्होंने बताया कि योग-विद्या तो बौद्ध, जैन, कापालिक आदि के पास भी है, किन्तु वह मायात्मक है ।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक में परिव्राजिका और तत्त्वविचारणा रंगमंच पर आती हैं । वे प्रातःकाल का वर्णन करती हैं । परिव्राजिका का कहना है—

हरिद्रां क्षोदन्ति द्रविडवनितानां कुचतटे
रुचे कर्णाटीनां दधति विकसच्चम्पकरुचिम् ।
नितम्बे लाटीनां कपिशपरिधानं नु न चिरं
वरा केचिद् व्योमद्विप-कनककक्ष्या दिनमणेः ॥

वे भावना के स्वयंवर के लिए आये हुए देवों की चर्चा करती हैं । उन्होंने चरों को भेजा है कि पता लगाओ कि जीवदेव और भावना का क्या मन्तव्य है । फिर वे दोनों काञ्चीपुरी का वर्णन करती हैं ।

द्वारे द्वारे भ्रमरकदलीपक्तयः पर्णकुम्भैः
वेद्यां वेद्यां ललितललिता रागवल्लीमतल्य ।
सौधे सौधे गगनतटिनीपानधौता पताका
वीथ्यां वीथ्यामपि च मधुरः श्रूयते वाद्यनादः ॥

चतुर्थ अङ्क में भावना के पिता जीवदेव की गुरुभागी स्वयंवर में आये हुए प्रत्याशियों का वर्णन सुनाती है । सर्वप्रथम शिवपुराण-पुरुष ने स्वयं और फिर

उनके अनुयायियों ने शिवतत्त्व बताया, जिसे सुनकर गुरुवाणी ने कहा—

स खलु भगवता पुरुषोत्तमेन त्रिजगदेकनाथेन काम्यकर्मफलप्रदाने नियुक्त परमभागवत एव ननु त्रिजगदीशनामवलम्बते।

फिर नारद सामने आये। उनके साथ ये ब्रह्मपुराण-पुरुषद्वय। नारद ने कहा कि पितामह ब्रह्मा के लिए भावना का वरण करने आया हूँ। उनकी स्तुति सुनकर गुरुवाणी ने कहा कि ये भी तो नारायण की नाभिकमल के भौरे हैं।

इन्द्र की प्रशसा स्वय बृहस्पति ने की। उनकी बातो से अप्रभावित गुरुवाणी ने इन्द्र की दुर्बलताओ की पोलपट्टी खोलकर जीवदेव को उनके प्रति भी विरक्त कर दिया।

यज्ञपुरुष ने स्वय आत्मचर्चा की। गुरुवाणी ने जीवदेव को समझाया कि पुरुषोत्तम की आज्ञा से ही ये यज्ञपुरुष बने हैं।

जीवदेव ने कहा कि अभी विचार करेंगे। आप सभी विश्राम करें। यह सुनकर वे सभी निराश होकर चलते बने।

चित्रगुप्त ने यम के लिए भावना की याचना की। फिर दिगीश्वर वरुणादि भी अस्वीकृत हुए। पाषण्डसिद्धान्तो को तो किसी ने स्वयवर मे आने के योग्य ही नही माना।

जीवदेव ने गुरुवाणी से कहा कि वस्तुत पुरुषोत्तम ही सकल जगदीश्वर हैं। वे गम्भीर हैं। उन्होने किसी को भावना की याचना के लिए नही भेजा।

सभी राजा और देवता तो स्वयवर मे आये, किन्तु पुरुषोत्तम नही आये। गुरुवाणी के साथ भावना स्वयवर की ओर चली। उसका अलङ्करण है—

कचे श्वेत पुष्प नयनयुगले मगलमपी
करे मालाक्षौम परिलिखितहस कटितटे।
पदाम्भोजे लाक्षारसविरचना सत्यमधुना-
वश्य भविनव्य कुसुमधनुपा विश्वजयिना॥[1]

भावना ने नाममात्र से सभी भूपतियो को अस्वीकार किया। देवताओ मे सबसे पहले देवराज को अस्वीकार किया, फिर अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा चन्द्रशेखर आदि को अस्वीकार किया। अन्त मे आये हुए पुरुषोत्तम को उसने स्वीकार किया। उनके कण्ठ मे जयमाल डालने का समय आया तो सभी देवताओ ने उन्ही जैसा रूप बना लिया। तुलसी की कृपा से माला पुरुषोत्तम के कण्ठ म डाली गई। पर सभी देवताओं के गले मे वह विराजमान हो गई। फिर तो

१ इस प्रकार के वर्णन कितनिया और अङ्किया नाट्य मे प्रचुर मात्रा मे दृष्टि गोचर होते हैं। वहीं से यह तत्त्व इन नाटको मे आया है।

उसके ध्यान करने से भगवती तुलसी आकाशयान से आ पहुंची। उसने भगवान् के पाद पर अर्पित कतिपय दलों को लेकर उनमें भाविना के नयनों को मल दिया। उसने पुरुषोत्तम को पहचान लिया। अन्त में भावना का पुरुषोत्तम से परिणय हो गया। ब्रह्मा पुरोहित बने। लक्ष्मी ने परिणयमंगल सम्पन्न किये। जीवदेव ने वर को मधुपर्क दिया। सुरयुवतियों ने तिरस्करिणी धारण की। ब्रह्मा ने मंगलाष्टक पढ़ा।

छायातत्त्व

नाटक के नायक पुरुषोत्तम जगदीश्वर भगवान हैं। इनमें नाटक की महिमा बढ़ी है। वैचित्र्य की दृष्टि से गरुड का नाटकीय अभिनय रंगमंच पर अनोखा है। पुरुषोत्तम उसकी पीठ पर हैं। वह मनुष्य की भाषा बोलता है और साथ ही रथ की भाँति "वेग नाटयति", जिससे हरिण को पकड़वा सके। वह हरिण के समीप जाकर पुरुषोत्तम से कहता है—

स्वामिन्नतिसमीपवर्तितया करग्रहणयोग्य एवायमधुना हरिण।

यही वैनतेय सिद्धाश्रम पहुँचने पर विदूषक बन गया। वहाँ पुरुषोत्तम ने मानुष रूप धारण कर लिया।[1] इन प्रसङ्गों से नाटक में छाया-तत्त्व की सृष्टि हुई है। विदूषक प्रथम अङ्क में देवतायतन के पीछे जा कर उपश्रुति का सम्पादन करता है, जिसे सुनकर नायिका समझती है कि देवता ने मुझे प्रियतम से शीघ्र मिलने की सूचना दे दी है। यह घटना भी छाया-तत्त्व से निष्पन्न है। द्वितीय अङ्क के अन्तिम भाग में नायिका नायक का चित्र बनाती है और विदूषक के वानर बन कर उसे चुरा लेने पर कहती है—"हा धिक् कुत्र गम्यते। किमिति न दीयते परीरम्भः। आगच्छ मे मर्मीयम्'। चित्र के प्रसंग में यह सब कहना छाया-तत्त्व है।

भूमिका के नाम रमणीय है—नायिका और नायक के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के नामों से सांस्कृतिक अभिरुचि व्यक्त होती है। परिव्राजिका योगविद्या है। उसकी शिष्या सत्त्वशुद्धि, और तत्त्वजिज्ञासा हैं। नायिका के पिता जीवदेव और माता तत्त्ववासना हैं। वेदपुरुष नायक का प्रमुख पारिषद है। भावना की चेटी का नाम मनीषा है, और दूसरी चेटी है धारणा। कुछ अन्य भूमिकायें हैं क्षपणक सिद्धान्त, बुद्धसिद्धान्त, चार्वाकसिद्धान्त आदि।

रस

श्रीनिवास की श्री शृङ्गार के उद्दाम प्रवर्तन में विशेष सफल है। नायक-नायिका-व्यापार में स्वभावतः शृङ्गार की धारा इस नाटक में पर्याप्त गम्भीर तथा अटूट

---

१ पुरुषोत्तम—इह वैनतेय विदूषकवेषमवलम्ब्यतां भवान्। अहमपि चतुर्भुजादिलाञ्छनमप्राकृतमाकारं निरोधाय मानुषनायकाकार-मवलम्बे।

है।[1] बीच-बीच में अन्य रसों का समावेश रुचिकर है। हास्य का प्रवर्तन रंगमंच पर विदूषक की बातों से एक नये ढंग से किया गया है। द्वितीय अङ्क में वह मृगया के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है कि मुझे तो हिंसा से बचना है। इसके लिए तो मैंने सन्ध्या-वन्दन अघदान आदि पहले से ही छोड़ रखा है कि कहीं इनसे राक्षसों की हिंसा न हो जाय। यह तो महापातक है।

नये विधान

रंगमंच पर वैनतेय का विदूषक वेष बनाना और पुरुषोत्तम का मानुषवेष धारण करना भारतीय परम्परा के विरुद्ध हैं। रंगमंच पर परिधान धारण करने का निषेध था।

प्रतीक-तत्त्व

पूरा नाटक ही प्रतीकात्मक है। इसमें भावात्मक तत्त्वों का मानवीकरण न करके मानवों को भावात्मक रूप प्रदान किया गया है। यथा, यक्ष और राक्षस समाधि में बाधा डालते हैं। पर ये यक्ष और राक्षस हैं—अशान्ति पैदा करने वाली मानसी वृत्तियाँ—

ते समाधिविद्यान्तका त्रिष्वपि भुवनेष्वालस्य-नीरन्ध्राधि-प्रमादार्था-नुसम्भ्रमानवस्थि ा-चित्तभावाविश्वासाशान्ति-दु खभाव-दौर्मनस्य-विषयलोल-भावाभिधाना दशमहाराक्षसा ।

पूर्वानुसरण

भावनापुरुषोत्तम में श्रीनिवास ने प्राचीन युग के महान् नाटककारों की कृतियों से नव्य प्रकरण अपनाये हैं। देवनायक मे नायक का देवताप्रीत्यर्थ वीणावादन करते समय नायिका से मिलना श्रीहर्ष के नागानन्द के आदर्श पर है। चित्रप्रकरण रत्नावली के आदर्श पर निर्मित है। कुन्दमाला के आदर्श पर भावनापुरुषोत्तम में नायिका के प्रच्छन्न रहने का उपक्रम है। यथा,

'कुलपतिनाश्रमवासिनीभिस्त्रीभि प्रार्थितेन श्रयिणेव भणितम्—अत्र पंचपदिनमात्र मानुषशरीरधारिण आत्मनो मा नयनगोचरो भवतु स्त्री-जन । ततो निर्भरं स्नानप्रमुखो नियमो निर्वर्त्यताम्' ।

नायक मन्त्रशक्ति से प्रच्छन्न नायिका की छाया शिलातल में द्वितीय अंक में देखता है—भावनापुरुषोत्तम का यह प्रकरण कुन्दमाला और विद्धशालभंजिका के अनुरूप पड़ता है।

---

१ 'भावना पुरुषोत्तम' नाम से ऐसा लगता है, कि इसमें शृङ्गार रसमात्र ही हो सकता है। किन्तु वस्तुस्थिति विपरीत है। इसमें पुरुषोत्तम उच्चकोटि के मँजे हुए नागरक शृङ्गारित वृत्तियों से ओत-प्रोत हैं।

अपनी अदृश्य नायिका को ढूंढते समय पुरुषोत्तम ने देखा कि तमालवृक्ष पर लता आसक्त है। उन्होंने सोचा कि यह तो कोई राक्षस मेरी पत्नी को ही लिये जा रहा है, जैसे रावण सीता को हर ले गया था। यह प्रकरण विक्रमोर्वशीय पर आधारित है।

अङ्का के भीतर प्रवेशक और विष्कम्भक को इस नाटक में न लिखकर, जहाँ अङ्कान्त होता है, वहाँ अङ्क के अन्त की सूचना और जहाँ प्रवेशक और विष्कम्भक का अन्त होता है उनके अन्त होने की सूचना हस्तलिखित प्रति में है। अङ्कारम्भ या अर्थोपक्षेपक का प्रारम्भ नहीं लिखा गया है।

दोष

भावना-पुरुषोत्तम के नाम बड़े, दर्शन छोटे हैं। इसमें तो द्वितीय अङ्क मानो कामशास्त्र का परिपक्व अध्याय है, जिसमें नायक की नायिका विषयक काल्पनिक सगमनी का बेजोड़ उजृम्भण प्रकट करने में ही कवि ने अपनी सफलता मानी है। यह सब विदूषक के समक्ष नायक का आत्मवर्णन है जो व्यर्थ की ठूंसी हुई सामग्री लगती है। विदूषक के शब्दों में नायक का यह सब नायिका सम्भोग-चिन्तन—'आगानदी-परिवाह' है।

प्रश्न है—क्या नाटक में ऐसी लम्बी-चौड़ी वर्णना कथातन्तु का विच्छेद करती हुई भी उचित मानी जा सकती है? अथवा लम्बे-चौड़े दर्शनानुबन्धावली का संवाद रूप में तृतीय और चतुर्थ अङ्क में प्रस्तुतीकरण क्या नाट्योचित है? कदापि नहीं। यदि साम्प्रदायिक शास्त्रार्थों से विरहित नाटक श्रीनिवास लिख सकते तो उनकी कल्पना-शक्ति और रचनानैपुणी उन्हें अपने युग के श्रेष्ठ नाटककारों में प्रतिष्ठित करा पाती।

अध्याय ५

मनोनुरञ्जन

मनोनुरञ्जन अथवा हरिभक्ति नामक पाँच अंकों के नाटक के प्रणेता अनन्तदेव का प्रादुर्भाव सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ।[1] इनके गुरु रामतीर्थ मधुसूदनसरस्वती के समकालीन थे। मधुसूदन ने तुलसीदास के सम्बन्ध में लिखा था—

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥

इनका समय अन्य आधारों पर भी १६ वीं शती प्रमाणित होता है। मधुसूदन, रामतीर्थ और तुलसीदास के आसपास अनन्तदेव का रचनाकाल सोलहवीं शती का अन्तिम चरण सम्भाव्य है। अनन्तदेव उच्चकोटि के विद्वान् थे। प्रस्तावना में उनका परिचय है—

यः पूर्वोत्तरमीमांसापरिशीलनशीलवान् ।
तदीयाध्यापनेनैव समयं खलु नीतवान् ॥ ८ ॥

नाटक के अन्त में कवि ने पुनः अपना परिचय देते हुए कहा है—"शास्त्राणां परिशीलनैर्गमयतो शिष्येषु चाध्यापनैः" इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अनन्तदेव विष्णुभक्त थे। फिर भी उनके मानस में शृङ्गारित तत्त्व पर्याप्त मात्रा में था, जिसकी उपज सूर्य-वर्णन में नीचे लिखी पंक्ति है —

नक्षत्राणि च तेजसा विकलयन् कान्ताट्टहासैरपरः
मूनासेप शनैः शनैः शिथिलयन् मूर्ध्नि समुन्मीलति ॥२.२१

सामाजिक अनुबन्ध

सोलहवीं शती के प्रेक्षकों को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता था—सभ्य तथा इतरजन। इनमें से सभ्य उच्च कोटि के नाट्यालोचक थे, जिन्हें प्रेक्षक रूप में पा लेना सूत्रधार सौभाग्य मानता था।[2] इस नाटक की प्रस्तावना में प्रमाणित होता है कि नाट्य केवल राजाओं और नागरिकों के प्रीत्यर्थ नहीं रह गया था। इस का प्रथम अभिनय सूत्रधार के प्रास्ताविक वक्तव्य के अनुसार 'श्रीनारायणेनान्तर्यामिणा प्रेरितोऽस्मि—यदुत हरिभक्तिरसप्रधानं कमपि निबन्धं मदनुबन्धिनं साधु विशदमभिनीय प्रदर्शयेति।'

---

१ इसका प्रकाशन काशी में सरस्वती भवन टेक्स्ट में सं० ३६ में हुआ है। इनका दूसरा नाटक कृष्णभक्ति-चन्द्रिका है। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रभास के गायनाथ झा केन्द्रीय संस्कृत-विद्यापीठ के पुस्तकालय में है। इसकी प्रतिलिपि सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

२ यत्नशतैरप्यलभ्या समागता एव सभ्याः । प्रस्तावना में ।

कथा

इन्द्र ने देवदूत से कहा कि नन्द के घर जाकर मेरी आज्ञा सुनाओ कि मेरे निमित्त यज्ञ करें तो उनसे फल की प्राप्ति होगी। तदनुसार नन्द ने कार्यक्रम बना लिया। वे ब्राह्मणों और गोपालों के साथ यमुनातट पर स्थित गोवर्धन पर आ पहुँचे। गोपालों ने नाचना-गाना आरम्भ किया तो यज्ञ का आयोजन रुक गया। यह देखकर नन्द ने कहा—

स्वस्वव्यापृतिविरतिं दधाति गीताय पूनाराते ।
न चलन्ति न वदन्ति किमपि स्मरन्ति च नैवापि कर्तव्यम् ॥ १ ७०

उन्होंने कृष्ण से कहा कि यहाँ लोकपालक इन्द्र के लिए हमें यज्ञ करना है। विवाद उठ खड़ा हुआ कि नन्दराज क्योंकर देवराज की सेवा करें? तर्क था—

वृन्दावनं नन्दननोऽपि रम्यं गोष्ठं च न स्वर्गपदाद्धरिष्टम् ।
किं देवराजाय च नन्दराज त्वयार्पिता स्वात्मनि कल्पितासौ ॥ १ ८२

एक वृद्ध ने कहा कि शङ्का है कि इन्द्र यज्ञ न करने पर हमारे गोष्ठ का विध्वंस कर डालेगा। श्रीदामा ने उत्तर दिया कि तब तो वह वकीवकधेनुक के पथ पर पहुँच जायेगा। कृष्ण ने कहा कि इन्द्र की अर्चा का कोई उपयोग नहीं—

कर्मानुसारेण च सौख्यभोक्ता किं तत्र शक्रेण समर्चितेन ॥ १ ८७

नन्द ने कहा फिर इस याज्ञिक सामग्री का क्या होगा? कृष्ण ने बताया कि इससे ब्राह्मण की पूजा हो। ब्राह्मण, गौ और गोवर्धन—ये तीन हमारे पोषक हैं। इन्हीं की पूजा की जाय।

नन्द ने भी इसका समर्थन किया। पूजा के लिए सैकड़ों ब्राह्मण उपस्थित हुए। उनकी पूजा के पश्चात् गायों का पूजन हुआ। कृष्ण के मुरली बजाते ही गायें आ पहुँचीं। नन्द ने देखा—

ककुद्ग्रीवा स्तब्धकर्णा मुकुलश्रृङ्गाः समुत्सुकाः ।
उद्बाष्पा उल्लसत्पुच्छा गावो धावन्ति माधवम् ॥ १ ९५

अन्त में गोवर्धन गिरि की पूजा हुई।

कुङ्कुमकेसरपङ्कैः सिक्तः सर्वत्र सानुषु श्रीमान् ।
विलसति पुष्कलपरिमलकुसुमसमूहैः समर्चितः शैलः ॥ १ १०९

इस अवसर पर कृष्ण स्वयं गोवर्धन रूप हो गये। उन्होंने कहा—

शैलः स्वयं प्रसन्नोऽस्मि वरदोऽस्मीति भाषते ।
नूनं गोवर्धनगिरिर्भगवान् सविता स्वयम् ॥ १ ११२

इन्द्र-यज्ञ के स्थान पर नन्दराज के द्वारा गौ और कृष्ण की पूजा का समारम्भ सम्पन्न हुआ। यह इन्द्र को सूचित किया गया। मातलि ने उसे सुझाया कि वज्रप्रहार

से गोपों का ध्वंस करें। इन्द्र ने बताया कि गोप कृष्ण के बल पर कूद रहे हैं और गिना दिया कृष्ण के वर्तमान जीवन और भूतकालीन अवतारों के पराक्रमों को। मातलि ने पूछा कि अपमान आपका हुआ। अब क्या चुप बैठेंगे? इन्द्र ने कहा—नहीं, सत्वृत्ति से कृष्ण का पराभव करना है। यहीं से बैठे-बैठे मेघों को भेज दिया जाय कि गोकुल को वर्षा में बहा दे। मैं भी मेघों में छिपकर यह सारा दृश्य देखूँगा।

मेघों ने धुआधार वर्षा करके गोकुल को असह्य पीडा पहुँचाई। कृष्ण ने कानी अंगुली से गोवर्धन धारण करके उन सबकी सुरक्षा कर ली। भयभीत होकर इन्द्र कृष्ण की शरण में आया। उसे गोकुल में कृष्ण-दर्शनार्थी कामधेनु मिली, जिसे आगे-आगे करके वह कृष्ण के समीप पहुँचा। कामधेनु ने कृष्ण की स्तुति की और कृष्ण के अपने योग्य काम पूछने पर कहा—

शरणागताय पुरुहूतायाभय दीयताम्।
शतमप्यपराधाना सहस्रमपि वा कृतम्
शरणागतलोकस्य नालोचयति केशव ॥४.५६

इन्द्र ने क्षमा माँगते हुए कहा—

इय तव कृपालुता यदपराधिना मादृशा—
महो शुभदृशा मुहु सुखमतीव सतन्यते॥ ४.५५

कामधेनु ने कृष्ण के पुन आज्ञा पूछने पर कहा कि मेरी कामना है कि आपका अभिषेक देखूँ। कृष्ण ने कहा—यथा मनसि वर्तते।

कामधेनु की आज्ञानुसार सिद्धियों ने कृष्ण का अभ्यञ्जन किया। इस अवसर पर नारद और तुम्बरु आ गये। उन्होंने कृष्ण-स्तुतिपूर्वक सेवा की। फिर गङ्गादि नदियों ने आकर स्नान की सामग्री प्रस्तुत की। उन्होंने अभिषेक कराया। गोपी वेष में आकर लक्ष्मी ने उन्हें परिधानों से अलंकृत किया। कामधेनु ने उन्हें माँ की भाँति अपना दूध पिलाया।

सरस्वती आई और उन्होंने कृष्ण की स्तुति की। ब्रह्मा ने दण्डवत् की। शिव के आगमन के अवसर पर सरस्वती ने बताया—

हरिरिति हर इति भेद गमिता स्वरूपचिन्मूर्ति ॥४.१११

वेदों ने कहा—

अटन्तु तीर्थानि पठन्तु चास्मान् कुर्वन्तु यागान् कलयन्तु योगान्।
तमालनीले त्वयि वा सलीले रतिं विना नैव गतिं प्रतीम ॥४.११७

पाँचवें अङ्क का समारम्भ यमुनापुलिन प्रदेश में होता है। गोपियों को स्नान करके गौरी पूजन करना था। वहीं थोडी दूर पर श्रीदामा-सहित कृष्ण आ पहुँचे और छिप कर गोपियों की रसमयी प्रवृत्तियों का आनन्द लेने लगे। जलक्रीडा में सलग्न गोपियों

ने तट पर अपने वस्त्र रखे थे, जिसे इकट्ठा लेकर कृष्ण अपने मित्र के साथ पेड़ पर चढ़ गये।

गोपियों ने जलक्रीडा के अन्त में गीत गाये। अन्त में पानी में खड़े खड़े देखा कि उनके वस्त्र नहीं हैं। उन्होंने परस्पर चर्चा की कि इस दुष्टचोर को यह नहीं विदित है कि हम लोगों को कृष्ण का संरक्षण प्राप्त है, जो इस चोर को अच्छी शिक्षा देंगे और हमारे वस्त्र प्राप्त करायेंगे। इसे सुनकर कृष्ण ने पेड़ से ही कहा कि तुम लोगों का वृत्तान्त जानकर मैं आ गया हूँ। बोलो चोर कहाँ है, जिसे दण्ड देकर तुम्हारे वस्त्र लाऊँ। गोपियों ने ऊपर देखा तो कृष्ण और उसके साथ एक आदमी था। कृष्ण को उन्होंने चोर समझा। कृष्ण के पूछने पर कि चोर कहाँ है? गोपियों ने कहा—

चौरस्तस्माद् भवानेव तमन्वेषयतु ॥ ५६

कृष्ण ने श्रीदामा को चोर ढूँढने के लिए भेज दिया और गोपियों से कहा कि विवसना होकर यमुना में स्नान करने के कारण यह दुःख तुम पर पड़ा। सारी विषमताओं से मुक्त होने के लिए एक उपाय है—हाथ जोड़कर मेरे पैर पड़ो। गोपियों ने इसे अनुचित माँग समझी, पर कोई चारा नहीं था। विवश होकर उन्होंने कृष्ण से कहा—तुम तो पेड़ पर हो, तुम्हारे पैर कैसे पड़ें? वे उतरे और फिर उन्हें वस्त्रों की प्राप्ति हुई। उन्होंने सिर पर हाथ जोड़ कर पादप्रणति की। श्रीदामा के आने पर कृष्ण ने जब गोकुल लौटने की तैयारी की तो गोपियों ने उनका वसनाचल पकड़ लिया कि चोर को ढूँढ कर लाओ। कृष्ण ने उनका प्रेम देखकर रासलीला की योजना उनको बताई—

वेणुध्वनिं निशि निशम्य मनोऽभिरम्य
वृन्दावने समभियातु ममान्तिकं तु।

उस समय तो गोपियाँ चलती बनीं। पुनः सन्ध्या की चन्द्रिका से वातावरण में चारु चन्द्रमा का प्रसार होने पर सुनन्द के सहित विराजमान कृष्ण ने वन में मुरली बजाई तो सारी गोपियाँ भाग-भाग कर वहाँ आ पहुँचीं। सुनन्द को गोपियों का वह समूह पद्मिनी-वन की भाँति लगा। जैसे—

उल्लसन्मुखसरोजराजितं कुन्तलभ्रमरपुञ्जरञ्जितम्।
भाति चारुकुचकोशशोभितं कामिनीकनकपद्मिनीवनम् ॥५४०

यह सब देखकर सुनन्द ने समझ लिया कि इन प्रेमियों के बीच मुझे नहीं रहना चाहिए और कृष्ण की अनुमति लेकर वहाँ से चलता बना।

सुनन्द के जाने पर वहाँ नारद और तुम्बरु कृष्ण की वंशी का निनाद सुनकर आ गये। तुम्बरु के पूछने पर नारद ने बताया कि न केवल व्रजवनितायें, अपितु स्वर्गलोक की ललनायें भी वंशी-वशीकृत सी यहाँ परमानन्द प्राप्त कर रही हैं। तुम्बरु ने देखा—

गोपाङ्गनानां च सुराङ्गनानामसङ्ख्यचक्षुर्भ्रमरावलीयम् ।
आनन्दमाविन्दति मावक्त्रामेकत्र गोविन्दमुखारविन्दे ॥ ५४८

गोपिकावृन्द के पीछे राधा जा रही थी। कृष्ण को चारों ओर से गोपियों ने घेर रखा था। राधा को ईर्ष्या हुई कि कृष्ण की इतनी प्रेमिकायें हैं। मैं लौट जाऊँ पर ऐसा करना भी सम्भव नहीं था।

कृष्ण ने योग दृष्टि से राधा के मन की बातें जान लीं। तभी कृष्ण राधा के समीप पहुँचे, जिससे उनकी खिन्नता जाती रही। पर उन्होंने मान किया। कृष्ण ने उन्हें समझाया—

वह्वीषु गोपकन्यासु वल्लभासि त्वमेव मे ।
सर्वास्वपि च तारासु शशाङ्कस्येव रोहिणी ॥ ५६०

फिर रासक्रीडा का समायोजन हुआ जिसके लिए इन्द्र ने समीचीन उद्दीपन विभाव मलयानिल, नन्दन वन का पौष्पिक सम्भार आदि प्रस्तुत कर दिया था। कृष्ण ने देखा—

कोटिकन्दर्पलावण्यो मनोनयनरञ्जनः ।
पञ्चपञ्चनिमुखो मत्वा कृत्स्ना युगपदङ्गनाः ॥ ५६६

रासलीला हुई जिसका वर्णन तुम्बरु के मुख से है—

गायन्ति गायति तथा हसिते हसन्ति
नृत्यन्ति नृत्यति हरौ सरसीरुहाक्षाः ।
जानाम्यनेन सरसीरुहलोचनेन
तादात्म्यमेव गमिता दयिता स्वकीयम् ॥ ५७३

गोपियों न असिक्षित होने पर भी यह अपूर्व गायन और नृत्य कैसे किया ? नारद का कहना—

अनुपासितगुरुचरणा असदाचरणा अपीह गोपीशाः ।
सकृदपि चित्ते धृत्वा भवन्ति भव्या गुणग्रामे ॥ ५७

वहीं लक्ष्मी भी आ गईं थीं, जो कृष्ण के किसी गोपी के चुम्बन को देख कर उन्हें आँखों से तरेर रही थी। किसी गोपी का केशपाश नाचते समय खुल गया। कृष्ण ने यत्न पूर्वक उसे बाँधा। नाचते समय किसी गोपी का कृष्ण ने पीछे से आलिंगन किया। नारद के शब्दों में अकेले कृष्ण ने सभी गोपियों के साथ यह हृदय-नर्तन कैसे किया—

सर्वाभिमुख्यमवलम्ब्य स एष मध्ये
भाति स्वयं विकचपङ्कजकर्णिकावत् ।
गोपीषु पद्मदलवत् परितः स्थितासु
प्रत्येकशोऽपि च परिस्फुरति प्रियासु ॥ ५८६

रास में रात बीती। प्रात हुआ। गोपियाँ अपनी राह चली गईं। कृष्ण के

पास रह गईं देवाङ्गनायें, नारद और तुम्बरु। कृष्ण ने नारद से कहा—अस्मद्गुण-कर्मनामसंकीर्तनसम्प्रदाय प्रवर्तयताम्।

नाट्यशिल्प

कवि ने केवल पात्रों को ही अभिनय में प्रवृत्ति नहीं किया हैं, अपितु सभ्यों का भी पात्रीकरण किया है। प्रस्तावना में सभ्यों की स्वगतोक्ति है—

अहो परमार्थगर्भा एवानयोर्वाच। यद्वय संसृति-निवृत्तिकामा सम्प्रति सर्व यदुपत्यनुबन्धि निबन्धन श्रोष्याम।

प्रस्तावना और प्रथम अङ्क के बीच में कवि ने विष्कम्भक रखा है। इसे विष्कम्भक कहना ठीक नहीं प्रतीत होता। विष्कम्भक में अतीत और भावी वृत्त की सूचना होनी चाहिए, जो नाटक की आधिकारिक कथा से साक्षात् सम्बद्ध हो। ऐसा इस विष्कम्भक में नहीं है। इसमें अधिकतर असम्बद्ध कृष्ण की महिमा और ब्रजलीला तथा नन्दनवन आदि का वर्णन है। विष्कम्भक में बातें संक्षेप से बताई जानी चाहिए, किन्तु इसमें तो ३० पद्य और आनुषंगिक गद्य है। स्वभावत गद्य की प्रचुरता भी विष्कम्भक में नहीं होनी चाहिए।

नाटक के अभिनय में कतिपय दृश्य आधुनिक चलचित्रों के आदर्शभूत प्रतीत होते हैं। यथा रङ्गमञ्च पर ब्रजाङ्गनायें है—

करकलित कनक भाजनावस्थितदीपावलिनिर्मीराजनाविधि नन्दराजस्य विधाय तत्र तत्र व्याप्रियन्ते। प्रथम अङ्क म।

ऐसा ही दृश्य चतुर्थ अङ्क में एक बार और परिचेय है, जिसमे

निखिलजलधिपाथ पूर्णसौवर्णकुम्भान्
शिरसि परिवहन्त्य सिद्धय प्रस्फुरन्ति॥ ५६४

ऐसी सिद्धियां रंगमंच पर उतरती हैं। गोपकुमारों के द्वारा नृत्य, गीत और करताल का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है।

श्रीदामप्रभृतयो नृत्यन्तो गायन्तश्च करतालिकाभि मिथ।

प्रथम अङ्क में

नर्तनगीत है—

इह हि नन्दनन्दनेन तनुविलुप्तचन्दनेन
मुक्तमर्वबन्धनेन जितममर्त्यवन्दनेन॥ १६६

विष्कम्भक के केवल अंतिम भाग में मनोविलास और वाग्विलास के संवाद में सूचना दी गई है कि इन्द्र की आज्ञानुसार नन्दराज उसके प्रीत्यर्थ यज्ञ करने वाले हैं।

सकलचित्तरञ्जनेन निखिलदुःखभञ्जनेन।
कालियस्यगञ्जनेन वस्तुनो निरञ्जनेन॥ १६७

पूतना विशोषणेन दानवेषु रोषणेन
गोकुलैकभूषणेन जितमपाम्नदूषणेन ॥ १।६६

कवि ने आगे चलकर भी गीत का रंगमंच पर आयोजन प्रस्तुत किया है। इसकी दृष्टि में 'गीतप्रियो हि भगवान्'। कृष्ण को गीत सुनाने के लिए वीणा की संगति में नारद और तुम्बरु गाते हैं—

श्रिया सेवित सर्वदा गोपराज तनो कोटिकन्दर्पलावण्यभाजम्।
कृपासागरं चारुपङ्केरुहाक्षं मनोवाञ्छितार्थप्रदं कल्पवृक्षम् ॥ ८।१११

जगद्बीजमनस्फुरद्ब्रह्मनिलाम चिदानन्दसन्दोहमुद्रावभासम्
घनश्यामलं कोमलाङ्गं भजामः श्रुतिन्यायनं संस्मृतं सत्यजामः ॥ ८।११२

चतुर्थ अङ्क में रंगमंच पर आये हुए पात्रों की संख्या सौ तक जा पहुँचती है। यह अभिनयोचित नहीं है।

पंचम अङ्क का आरम्भ अरुणोदय में होता है। अठारहवें पद्य तक पर्याप्त दिन निकल आता है, जब कृष्ण और गोपकुमारियों का यमुनापहरण-विहार समाप्त होता है। सभी पात्र रंगमंच से निष्क्रान्त होते हैं। यहीं पर अङ्क समाप्त हो जाना चाहिए था, किन्तु कवि ने यहाँ अङ्क समाप्त न करके लिखा है—ततः सायं प्रविशति श्रीकृष्ण सुनन्दश्च—यह नाट्योचित नहीं। किसी अङ्क में एक दिन का कार्य लगातार चलना चाहिए। यहाँ लगभग १० घंटे की त्रुटि रह जाती है। यदि इसके अनन्तर छठाँ अङ्क कर दिया जाता तो यह त्रुटि नहीं रहती।

इस नाटक में कृष्ण का गोवर्धन रूप में प्रकट होना—छायानाट्य तत्त्व है, जो नीचे के पद्य में प्रस्फुटित होता है—

यद्येष गोवर्धन एव साक्षात् कृष्णेन सादृश्यममुष्य कस्मात् ॥ १।११३

और भी—

पुत्रो भूत्वा रिपून् हत्वा रक्षित्वा गोधनानि च।
गोवर्धनगिरिर्भूत्वा नन्दमानन्दयत्यसौ ॥ १।११७

कामधेनु का पात्र बनकर चतुर्थ अङ्क में आना भी छाया-तत्त्व का सन्निवेश है।

कामधेनु का स्वरूप भी मूर्तिमान् होकर चतुर्थ अङ्क में रंगमंच पर आता है। यह छायात्मक है। इसके विषय में इन्द्र कहते हैं—

अहो विदितं कामधेनोरपि स्वरूपो मूर्तिमान्।

प्रथम अङ्क में वाग्विलास और मनोविलास एक ओर खड़े होकर अन्य पात्रों का अभिनय देखते हैं और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते चलते हैं। गर्भाङ्क तत्त्व के प्रायः समान ही यह आयोजन है।

द्वितीय अङ्क का विभाजन कई दृश्यों में हुआ है। स्वर्ग में पहला दृश्य समाप्त

होता है मातलि और इन्द्र के जाने के पश्चात्। दूसरे दृश्य में यमुनातट पर इसके अनन्तर नन्दराज विद्याविनोद और वन्दी आते हैं। यह दृश्य व्यर्थ ही है। इसमें कोई ऐसी कथा नहीं है, जो इतिवृत्त की मुख्य धारा से समञ्जसित हो।

तृतीय अङ्क में आद्यन्त सूच्य सामग्री है, जो सारी की सारी अर्थोपक्षेपक द्वारा सूचनीय है। अङ्क में नायक, उपनायक, नायिका या प्रतिनायक में से किसी का पात्र रूप में होना आवश्यक है। यह भी इस अङ्क में नहीं दिखाई पड़ता। इस अङ्क को विष्कम्भक का स्थानीय कहा जा सकता है। इसकी सामग्री भक्त के रसास्वादन के लिए भले ही उपयुक्त है।

भारतीय नियमों के अनुसार जिन पात्रों को इस नाटक में प्राकृत बोलना चाहिए, वे भी संस्कृत में ही बोलते हैं। पूरे नाटक में एक भी वाक्य प्राकृत में नहीं है।

अभिनेय दृश्य की दृष्टि से तत्सम्बन्धी निर्देशन क्वचित् पर्याप्त विस्तार से दिये गये हैं। यथा चतुर्थ अङ्क में कृष्ण के दुग्धपान के पश्चात्—

स्वादूदकेनाम्बुधिजलेनाचमनं प्रदाय, अतिमृदुलक्रमुकफलसकलनिचय-सहित प्रविलसदेलाफललवङ्गकर्पूरादिपरिमलद्रव्ययुत केनकुसुमवासना-समन्वितखदिरसारसमेत सौवर्णवर्णनाम्बूलवल्लीदलकदम्बकं भगवते प्रदाय, आदि।

पाँचवें अङ्क का एक ऐसा ही सफल नाट्य निर्देश है—

शनैः शनैः धरणितलविनिहितचरण-कमलप्रचारमनभिव्यक्त-कनक-किङ्किणीप्रमुखभूषणरणत्कार वञ्चितकुमारिका-नयनदृष्टिसंचारं च समेत्य तत्कालमेवासां परिधानवासांस्यपहृत्य ससखिनिकटवर्तितरुवरशाखामवरुह्य, आदि।

तिरस्करिणी का रंगमंच पर उपयोग होता था। तिरस्करिणी में दूसरी ओर कुछ पात्र रहते थे, जैसा चतुर्थ अङ्क में १०२ पद्य के अनन्तर कहा गया है कि कामधेनु ने तिरस्करिणीमपसार्य कहा—'कः कोऽत्र भोः?'

कथावस्तु के संविधान में कार्यावस्थाओं का क्रमिक विकास प्रथम तीन अंकों तक ही दिखाई पड़ता है। चौथे और पाँचवें अङ्कों की कथा को प्रथम तीन अङ्कों से अनुबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रश्न है कि यह नाटक सफल है कि नहीं? इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसकी रस निर्भरता के लिए उद्दीपन विभाव और अनुभावादि की जो वर्णना अपेक्षित है, वह इस नाटक में पूर्णतया सम्प्रथित है। आदि से अन्त तक पाठक और दर्शक रस की निर्झरिणी में निमग्न रहते हैं—यही कवि की कला का चूडान्त है।

समीक्षा

हरिभक्ति के इस नाटक में थोड़ा प्रयास करके भी अथवा अलङ्कार-द्वार से ही

शृङ्गार का समावेश कवि न किया है। यथा

अतिशयललिना क्वनिरिह विलसति नवयौवनेव स्त्री ॥१ ५७

यथा रतिसमारम्भे कान्तावदन चुम्बनम् ॥ १ ६

अतिशय कठिनत्व दूपणायैव काव्ये
भवति तु वनिताना भपणाय स्तने नत् ॥ १ ३०

ऐसा लगता है कि दर्शकों को भक्तिरस म अधिक चाव शृङ्गार रस के लिए था और उन्हें आकृष्ट करने के लिए शृङ्गारित चुटकुले सन्निवेशित करने के लिए एक सफल योजना थी। इसका एक अनुपम उदाहरण नीचे का पद्य है जिसमें कवि की अनूठी सूझ द्वारा दर्शकों को कुचकाम की वदननीलिमा दिखाई गई है—

हृदयकमलरक्तिर्व्यक्तकामा भवन्त बहिरिह कुचकाणच्छद्मना निर्गतैपा।
तव तु गनिमलभ्यामिव विज्ञाय शौरे वहति वदननैन्य खेदागनेव मन्ये ॥५ ५

यत्स्पर्शमात्रेण मुरारिगात्रे मजायते वज्रगनाभिघान।
गोपीजनस्य कठिनस्तनाभ्या न गाढमालिंगति शकित सन् ॥ ४ २१

पात्रों के औदात्य के कारण इस नाटक की गरिमा परमोच्च है। इसम कामधेनु, इन्द्र, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव, वरुण, सनकादि, नारद, लक्ष्मी आदि की भूमिका मे अभिनेता आते हैं। ब्रह्मा का कहना है श्रीकृष्ण से—

आज्ञा तवैषा न विलघनीया शक्नुम स्थातुमत कथञ्चित्।
त्वत्पादसान्निध्यमुखप्रसक्ता शक्ताश्च न स्वानि पदानि गन्तुम् ॥४ १४२

कृष्ण के प्रति भक्ति उज्जागरित करने के लिए कवि ने उनकी महिमा का वर्णन सर्वोपरि माना है, भले ही ऐसा करने मे नाटकीयता से उसे हाथ धाना पड़ा है। चतुर्थ अङ्क म इन्द्र और कामधेनु का सवाद इसका प्रथम निदर्शन है।

कवि ने भक्तिरसामृत-पान करने के साथ ही कौटुम्बिक सौष्ठव की सर्जना के लिए उपदेश व्यजना से दिया है। लक्ष्मी कृष्ण से कहती है—

स्त्रीणा हि भर्तुर्गृह पितृगृह वा ४ १५१

शैली

कवि की शैली सगीतमयी है। कहीं-कहीं स्वर और व्यञ्जनों का सामञ्जस्य अनुप्रास प्ररोचक है। यथा

माधुचित्त कुमुदैकरजिका दोषचक्र-परिभोगभजिका।
सर्वमृतिनमोऽतिवर्निका भाति माधवचरित्रचन्द्रिका ॥

पादान्त मे इसमें 'इका' की अनुवृत्ति सगीतमयी है।

कवि की प्रातिभ कल्पना वर्णनों मे निखरी है। यथा,

गाढान्धकारमदशारणपुङ्गवेन ज्योतिर्जलं सकलमेव निपीतमेतत्।
तल्लीकरा बहुतरा करपुष्करेण प्रोत्सारितास्तु परितः प्रसरन्ति तारा ॥२ २२

हरिभक्ति नाटक में प्रसादगुण-मण्डित वैदर्भी रीति का स्वारस्य है। प्रायश इसमें पद्यों में वार्तिक गति के साथ गद्यात्मक बोधगम्यता है, जो अभिनयोचित सरणि प्रतीत होती है। यथा,

ललितैरतिकूटभाषितैश्चपलैश्चापि कटाक्षवीक्षितैः ।
सहसा कथमेष माधवो युवतीभिर्वशमेव नीयते ॥ ५ १४

अनन्त कवि कोरे पद्यात्मक नाटक की ओर बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए देखिये उनकी कामधेनु का कहना—

अद्भुता त्वद्गता शक्तिरस्मत्सु प्रतिभासते।
प्रकाशशक्तिरग्निस्था दीपादिष्वपि दृश्यते ॥ ४ ६१

कहीं-कहीं गद्योचित संवाद छन्दोमण्डित हैं। यथा श्रीकृष्ण कामधेनु से कहते हैं—

देवि प्रसिद्धमेतद्धि यद्वृद्धानां मनस्विनाम्।
येषु केष्वपि तोकेषु लोके प्रेम प्रजायते ॥४ ४३

कवि को पद्यात्मक रचना का चाव था।[1] जहाँ इतिवृत्त के आख्यान में गद्योचित सरणि होनी चाहिए, वहाँ भी पद्य का माध्यम अपनाया गया है। यथा

एते गोरसकुम्भा एते रम्भा सपल्लवा स्तम्भाः ।
विलसतु यज्ञारम्भः सम्प्रति सम्भारसञ्चये मिलिते ॥१ ५८

विलस् धातु कवि को प्रिय है। यह १ ५५,५७,५८,२ २८,४ ८६,४ ८८ में है।

अनन्तदेव की प्रतिभा का विलास रूपकालङ्कार में सविशेष है। यथा—

एतावन्ति दिनानि कञ्जनयना क्लेशेन संवर्धितो
युष्माभिर्यमुनातटे सुविपुलः पुण्याह्वयः पादपः ।
मत्सेवेनवच प्रफुल्लकुसुमैः सम्पूजितः साम्प्रतं
सोऽद्य स्व फलितो भविष्यति कथं तत्रापि सन्दिह्यते ॥ ५ १८

सूक्तिसौरभ

मनोनुरञ्जन नाटक में सूक्ति-निचय अतिशय प्रभविष्णु है। यथा,

लघुकर्मसमारम्भे नयुरेव समाश्रयः । १ ३५

रविना लक्षणमहिना यदुपतिरहिता न शोभते वाणी। १ २०

---

[1] प्रथम अङ्क में ११६, चतुर्थ में १४६ और पञ्चम में १०१ पद्य हैं। इसमें पद्यों का बाहुल्य प्रतीत होता है, जो नाट्योचित नहीं है। कवि ने इस नाटक को विविध पद्यचरित्र बनाया है। ४ १५६

मुरासन्नतये च सन्तत प्रयतन्ते कृपणेपु साधव । १३

मता मर्व समुद्योग फनेनैवावधार्यते । १५३

म्वमानसारेण सदैव दुष्टो जगद्विजानाति हि दुष्टमेव ॥ २१७

मध्याह्नवर्तिनि महौजसि सूर्यविम्बे
प्रादुर्भवेत् किम् तम कलुष कदापि ॥ ४५२

अन्यत्र कतिपय स्थलो पर लोकोक्तियो की प्रभविष्णुता और सटीकता देखते ही बनती है । यथा, गोपियाँ कृष्ण के विषय मे कहती है—

अयमुपदेशचतुर । कथ हालाहल गिलाम । अमृत च कुर्वन् कथ करुण दशाति ।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका

अनन्तदेव की यह पहली कृति प्रतीत होती है।[1] पण्डितो की सभा मे इसका प्रथम अभिनय हुआ था। कवि ने इस नाटयकृति को निबन्ध अनेक बार कहा है और नाटक तो कहा ही है। इसके नाम की सार्थकता प्रकट करते हुए सूत्रधार का कहना है –

श्रीकृष्णभक्तिरिह भूरि विवर्धमाना
स्पष्ट परिस्फुरति चन्द्रिकया समाना ॥

नट और सूत्रधार म कृष्णभक्ति के उत्कर्ष के विषय मे विवाद प्रस्तावना मे होता है। सूत्रधार को वैदिक यज्ञो की निन्दा करनी पडती है। यथा—

यज्ञे पश्य विशम्यमानपशुभिस्पर्ष्टैव बीभत्सता
ग्लानिर्देहगता व्रतेन महता हानिर्धनस्यापि च ॥

सूत्रधार के तर्क प्रबल हैं। भक्ति प्रचार पथ म जो विरोध का सामना करना पडता है, उसका स्वाभाविक होना सूत्रधार के मुख से परिचेय है—

नेत्रोत्सवो भवति सर्वजनस्य येन सूर्योदयेन हतसततमसोच्चयेन ।

तेनैव दैवनिहतस्य विहगमस्य नक्त चरस्य नयनान्ध्यमुदेति गाढम् ॥

भेददर्शी शैव शिष्य के साथ सर्वप्रथम रगमच पर आता है। दोनो मिल-जुलकर शिव की प्रशसा करते है। साथ ही गगा की प्रशसा करते हैं कि वह तो शिव का सायुज्य प्राप्त करा देती है।

शिव की महिमा है—

यत् कुत्रचन वस्तु निश्चित यापि कापि ननु शक्तिरुच्चकै ।
कथापिन खलु पिनाकिनस्तु सा सनिधानवशतो विजृम्भते ॥

---

१ इसकी हस्तलिखित प्रति सागर वि० वि० के पुस्तकालय मे है।

विष्णु की निन्दा करने वाले शैव से वैष्णव की ठन गई। उसने शिव की भूरि-भूरि निंदा की।

शैव ने जो कुछ शिव की प्रशंसा में कहा, उसने एक भी न सुनी। वह विष्णु की प्रशंसा करता रहा। कुछ देर तक यह विवाद चला कि शिव तत्पुरुष है या कर्मधारय है। वैष्णव ने कहा कि हमारे विष्णु तो पुरुषोत्तम हैं। उनके बीच तभी एक अभेद-दर्शी महावैष्णव आ टपका। उसने शैव को फटकारा कि यदि तुम्हारा शिव जगदीश्वर है तो वह कमलापति क्यों नहीं हैं।[1] उसने वैष्णव को फटकारा कि तुम्हारा ईश्वर क्यों कर गिरिजापति नहीं हो सकता ?

फिर तो शैव और वैष्णव दोनों मिल गये और अभेद-दर्शी को भेद बताने लगे। शिव कर्पूर के समान है, विष्णु मेघ के समान काला है। शिव के सिर पर गंगा है। विष्णु के पैर पर गंगा है। फिर तो प्रत्यक्ष ही दोनों में भेद ठहरा। महावैष्णव ने न कहा कि यह सब तो लीलाविग्रह की बातें हैं।

शैव और वैष्णव दोनों महावैष्णव की युक्तियों से प्रभावित तो हुए। पर विवाद बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि क्या पुराण झूठे पड़ेंगे कि शिव केशव से बढ़कर हैं और विष्णुपुराण कहते हैं कि विष्णु शिव से बढ़कर हैं।

महावैष्णव ने कहा कि उस शक्तिनिधि ने अनेक मूर्तियाँ धारण की। बुढ़िया सरस्वती ने किसी मूर्ति को कभी बड़ा छोटा कर दिया तो क्या हो गया ? सच तो यह है कि विष्णु सदाशिव के चरणों का ध्यान करते हैं और शिव सिरपर विष्णु का पादोदक धारण करते हैं।

अंत में शैव और वैष्णव ने महावैष्णव का उपदेश मान लिया और कहा—भवदनुग्रहान्मम दुराग्रहो विच्युतः। सभी चलते बने।

इसके पश्चात् द्वितीय अङ्क माना जा सकता।[1] इसमें शाब्दिक और तार्किक रंग-मंच पर आ जाते हैं। शाब्दिक ने कहा—

विना चन्द्रं यथा रात्रिर्विना सूर्यं यथा वियत्।
सकला विकला विद्या विना व्याकरणं तथा॥

तार्किक ने प्रतिवाद किया कि तर्क विद्या के बिना पदार्थ साधन कैसे होगा ? उनका विवाद देखकर वहाँ मीमांसक आ खड़े हुए और बोले—

शाब्दिक पद निरूपण करता है, तार्किक पदार्थ निरूपण करता है। दोनों का प्रयोजन वाक्यार्थ निरूपण है जो हम करते हैं। हम श्रेष्ठ हैं। तुम दोनों के तुच्छ शास्त्र की प्रतिष्ठा यदि हम नहीं करते तो तुम लोग कहीं के न रहते।

तार्किक ने शाब्दिक से कहा कि यह तो बहुत बकबक करता है। इसे मुक्का मारमार कर ही ठीक कर दिया जाय। शाब्दिक ने कहा कि वाणी की मार ही बड़ी

१ हस्तलिखित प्रति में अङ्कनिर्देश नहीं है।

होती है। तीनों लडने के लिए उद्यत थे। तभी श्रीकृष्ण-भक्त बीच में आ कूदा। उससे सभी प्रभावित हुए। निवेदन करने पर उसने बताया—

श्रीकृष्ण भक्तिरेव परम पुरुषार्थ।
यस्मादेव चराचर सम्भवद्यस्यैव लीलोद्धशी।
यस्मिन्नेव विलीयते च सकल तद्ब्रह्म कृष्णाभिधम्॥

शाब्दिक और तार्किक उससे प्रभावित होकर भगवदाराधना करने के लिए चलते बने।

रगमच पर वेदान्ती आ पहुँचे। मीमासक ने उससे कहा कि ये तो श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म बना रहे हैं। वेदान्ती न समझाया—

यत्र न धर्माधर्मौ स्वर्गो नरकश्च दूरतोऽप्यास्तौ।
तत्रात्मान लभता कुत्र श्रीकृष्णगोचरा भक्ति॥

मीमासक ने कहा कि ये तो नास्तिक की बाते हैं। तुम तो भक्त की बात सुनकर शान्ति प्राप्त करो। फिर तो कृष्णभक्त ने मीमासक को गजोद्धार की कथा विस्तारपूर्वक सुनाई। वह भक्त बन कर चलता बना। वेदान्ती की समझ मे भी बात आ गई कि—

घन्यास्त एव कृतिनस्पद एव विष्णो
ससेवनेन सकल कलयन्ति कालम्।
भक्तप्रियस्य करुणावरुणालयस्य
यच्छ्रीपतेरमृतदृष्टिपथे पतन्ति॥

श्रीकृष्णभक्त ने वेदान्ती के पूछने पर उनके विवरण दिये, जो भगवान् के द्वेषी थे, किन्तु भगवान् ने उन्हें मुक्ति दी। पूतना, शिशुपाल आदि ऐसे प्रमुख भगवद्द्वेषी हैं। भक्त ने गोवर्धन-धारण का रहस्य बताया। अन्य अवतारो मे भगवान् का रौद्र रूप भी होना है। कृष्ण तो वीरावलम्बी हैं। इसमें बाललीला की अद्भुत विशेषता सर्वातिशायिनी है। भक्त ने बाललीला का मर्म बताया। रासलीला के द्वारा विश्वात्मकता बताई। कृष्ण का पूर्णावतार है। भक्त न अभक्तो की गति बताई—

अद्य श्वो वा मरिष्यन्ति विचरिष्यन्ति रौरवे।
हरिं यदि स्मरिष्यन्ति तरिष्यन्ति भवार्णवम्॥

वेदान्ती और भक्त मथुरा मे भगवान् की आराधना करने के लिए चल्ते बने।

सूक्तियो और लोकोक्तियो का प्रयोग इस कृति म अनेकश मिलता है। यथा,

१ उत्तमाङ्गनसप्राप्तौ न युक्त वक्त्रसीवनम्।
२ किं तावता ज्वरवतामरुचेर्न जातु दुग्धस्य शुद्धमधुरस्य विदूषण स्यात्॥
३ मण्डूकेषु रटत्स्वपि मधुप सरसिजरस न सत्यजति।

४ मुखमस्तीति प्रलपसि यत्किञ्चन मृढ नास्ति ते शान्ता।

५ कथमावयोर्मस्तकमारोहति ?

६ एतमुत्पतितं व्यसनं परिहर्तुं मुद्यतस्य ममापरं व्यसनमापतति।

७ सत्यपि पोते सुदृढे न कर्णधारं विनैति वनं पारम्।

समीक्षा

सोलहवीं शताब्दी धार्मिक अभिनिवेश से पूर्ण थी। इस शती में धार्मिक उच्चावचता के सम्बन्ध में गम्भीर ऊहापोह चल रही थी। इसी के परिणाम-स्वरूप भावना-पुरुषोत्तम और श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका जैसे नाटक लिखे गये, जिनमें शास्त्रार्थ के द्वारा समाज को अनुरंजन और साथ ही उपदेश देने की योजना कार्यान्वित की गई है। श्रीकृष्णपूजा का प्राधान्य भी सोलहवीं शती की विशेषता है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका को लेखक ने नाटक कहा है। इसमें नाटक की पंच सन्धियाँ, पंचावस्थायें और कम से कम पंच अंक आदि के नियमों का पालन सर्वथा ही नहीं हुआ है। आरम्भ में सूत्रधार आदि की लम्बी प्रस्तावना के पश्चात् शिव और वैष्णव का कृष्णभक्ति की सर्वोत्कृष्टता-विषयक संवाद आदि से अन्त तक चलता है। यह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अङ्कहीन नाटक है। नाटक के अन्त में भरतवाक्य भी नहीं है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका की सम्यक् आलोचना करने में वे ही पाठक सफल हो सकते हैं, जिन्हें योरपीय नाट्य शैली के विकास का इतिहास ज्ञात है और जो जानते हैं नाट्यप्रवृत्ति नियमों के बन्धन में जकड़ी नहीं जा सकती।

०

अध्याय ६

चैतन्यचन्द्रोदय

चैतन्य-चन्द्रोदय के रचयिता कर्णपूर का प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी में महाप्रभु चैतन्य के आश्रय में हुआ।[1] कर्णपूर के पिता शिवानन्दसेन बंगाल में कांचनपाड़ा के निवासी थे। वे स्वयं महाप्रभु के शिष्य थे। उन्होंने महाप्रभु की आज्ञा से अपने पुत्र का नाम आरम्भ में परमानन्द दास रखा। फिर महाप्रभु ने इनके नाम को लोकप्रिय बनाने के लिए संक्षेप में पुरीदास कर दिया। पुरीदास ने सात वर्ष की अवस्था में महाप्रभु को नीचे लिखा पद्य सुनाया—

श्रवसो कुवलयमक्ष्णोरंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥

इसमें श्रवसो कुवलयम् प्रथम दो पदों की प्रमुखता को ध्यान में रखकर महाप्रभु ने *इनका नाम उन्हीं का पर्याय कर्णपूर रख दिया।* उन्होंने कर्णपूर को कवि होने का आशीर्वाद दिया।

कर्णपूर का जन्म १५१७ ई० में हुआ। उन्होंने ५५ वर्ष की अवस्था में १५७२ ई० में चैतन्य चन्द्रोदय की रचना की[2]। कर्णपूर ने अपनी रचनाओं से संस्कृत-साहित्य की अनेक कोटियों को समलङ्कृत किया है, जिनमें कुछ नीचे लिखे हैं—

(१) चैतन्य चन्द्रोदय (२) आर्याशतक अप्राप्त (३) चैतन्य चरितामृत महाकाव्य (४) आनन्दवृन्दावन चम्पू (५) चमत्कारचन्द्रिका अप्राप्त (६) अलंकार कौस्तुभ (७) कृष्णलीलोद्देशदीपिका (८) गौरगणोद्देश दीपिका (९) वर्णप्रकाशकोष।

कर्णपूर के इस नाटक के प्रथम अभिनय की प्रेरणा उड़ीसा के महाराज गजपति प्रतापरुद्र से मिली। उन्होंने कहा कि चैतन्य अब नहीं रहे। गुण्डिचायात्रा में सब कुछ होते हुए भी उनका अभाव खटकता है। उसकी पूर्ति मेरे आनन्द के लिए किसी नाटक के अभिनय के द्वारा होना चाहिये।

चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक दस अंकों में पूर्ण हुआ है। इसमें चैतन्य की आद्यन्त चरित-गाथा है। चैतन्य के दिवंगत होने पर भी भक्तों के समक्ष चैतन्य प्रत्यक्ष हो सकें—इसका सफल प्रयास इस नाटक में है।

कथासार

कलि इस युग का अधिष्ठाता अपने उपासक अधर्म से कहता है कि नवद्वीप में जगन्नाथ मिश्र और शची देवी का पुत्र मेरा अस्तित्व ही मिटाना चाहता है। वह

१ चैतन्यचन्द्रोदय का प्रकाशन १९६६ ई० में हो चुका है।

२ यह तिथि निर्विवाद नहीं। अन्यथा इसका रचनाकाल १५३० ई० के लगभग प्रमाणित है।

भगवान् का अवतार है। उसके साथी अद्वैताचार्य, नित्यानन्द, श्रीकान्त, श्रीपति, श्रीवास आदि पूर्वावतारों के पार्षद हैं। चैतन्य ने पुरी में ईश्वरपुरी से मन्त्रदीक्षा ली। उन्होंने क्रोध को जीत लिया था। उन्होंने जगन्नाथ और माधव नामक दुर्वृत्त ब्राह्मणों से उनके पापों का दान लिया और देदीप्यमान होकर वे परम भागवत बन गये। श्रीवास ने चैतन्य का महाभिषेकोत्सव कराया। भगवान् ने मरते हुए श्रीवास को अपनी दिव्य शक्ति से बचाया था, जिसका पूरा वृत्तान्त श्रीवास ने सुनाया। मुरारि और मुकुन्द भक्तिरसामृत का पान न कर इधर-उधर भटकने वाले साधक थे। चैतन्य ने उन्हें अध्यात्म ज्ञान के चक्र से निकाल कर भक्त बना दिया।

चैतन्य की माता समझती थी कि मेरा पुत्र प्रशसकों के द्वारा तथाकथित भगवान् बना दिया गया है। एक बार भक्तों ने उनको सत्यान्वेषण के उद्देश्य से चैतन्य के समक्ष ला दिया। अपनी माता को भी चैतन्य ने अपनी दिव्य विभूति समझने वाली बना दिया। इस अवसर पर माता बोली—

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भजोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं महत्॥१.५६

चैतन्य के विषय में शची देवी का मातृभाव समाप्त हो गया।

निर्वेद सांसारिक वैषम्य और दम्भाधिक्य देखकर निर्विण्ण है। अपने को अशरण पाता है। तभी उसे अपनी भगिनी भक्ति देवी मिलती है, जो उसे बताती है कि अन्य सात्त्विक प्रवृत्तियों के मिट जाने पर चैतन्यमहाप्रभु का सरक्षण प्राप्त होने से मैं जीवित हूँ। भक्ति ने बताया कि महाप्रभु अलौकिक व्यापार भी करते हैं। महाप्रभु सबको आत्मसात् करते हैं—

न जातिशीलाश्रमधर्मविद्याकुलाद्यपेक्षी हरेः प्रसादः।
यादृच्छिकोऽसौ बत नास्य पात्रापात्रव्यवस्थाप्रतिपत्तिरास्ते॥२.१६

एक दिन महाप्रभु बलराम के रूप में हो गये। तदनन्तर सभी अवतारों के रूप में भक्तों के समक्ष वे प्रकट हुए। कभी किसी सर्वाङ्ग-गलित ब्राह्मण का रोग दूर कर दिया, जिसके लिए उसे अद्वैताचार्य का चरणोदक पीना पड़ा। कभी अद्वैताचार्य को महाप्रभु का विष्णु-रूप दिखाई पड़ा।

अवतार-रूप में प्रकट होने के अनन्तर दानलीला के अभिनय के लिए महाप्रभु ने अपने को वृन्दावनेश्वरी (राधा) भाव में प्रकट किया।[1] स्त्रीरूप में उन्होंने नृत्य किया। इस आयोजन के लिए भाण का समावेश करके गर्भाङ्क निर्मित है, जिसके पात्र है—अद्वैत ईश की, महाप्रभु राधा की, हरिदास सूत्रधार की, मुकुन्द पारिपार्श्वक की, नित्यानन्द योगमाया की और श्रीवास नारद की भूमिका में।

१. गृहीत्वा जरतीभावं या देव्या योगमायया।
सम्पद्यते दानलीला सैव राधामुकुन्दयोः॥३.२३

वृन्दावन मे योगमाया की अध्यक्षता मे राधा और अन्य गोपियाँ कृष्ण से मिलने आ रही हैं। राधा को देखकर कृष्ण कहते हैं—

उत्कीर्णा किमु चारुकारुपनिना कामेन किं चित्रिता
प्रेम्णा चित्रकरेण कि लवणिमा त्वष्ट्रैव कुन्दे घृता।
सौन्दर्याम्बुविमन्थनात् क्मिुदिता माधुर्यलक्ष्मीरिय
वैचित्र्य जनयत्यहो अहरहर्दृष्टाप्यदृष्टेव मे ॥ ३४६

गोपीश्वर की पूजा करने के लिए राधा, ललिता आदि ने पुष्पावचय करना प्रारम्भ किया। उधर से कहीं से आकर कृष्ण ने ललिता को डाँटा कि हमारे वृन्दावन के कुसुम क्यो तोडती हो? योगमाया ने कहा कि बहुत झगडने की आवश्यकता नही। तुमको पुष्प मिलेगा। राधा कृष्ण को देखकर प्रलुब्ध हो गई।

जब योगमाया ने राधा से कहा कि चलो, गोपीश्वर (शिव) की पूजा करने चलें तो कृष्ण के मित्र ने कहा कि जाने के पहले मेरे मित्र को दान देना पड़ेगा। कृष्ण ने देखा कि राधा बिना पूजा किये लौट जाना चाहती हैं। उन्होने कहा कि—

अयि चतुरमन्ये क्व यासि?

राधा—मूलमेव दत्त किं तस्य दान मार्गसि।

कृष्ण ने कहा—

एतत् स्वर्णसरोरुह तदुपरिश्रीनीलरत्नोपले
तत्पश्चात् कुरुविन्दकन्दलपुटे तत्रापि मुक्तावली।
सर्व दृश्यत एव किन्तु निभृता या हेमकुम्भद्वयी
किं वान्यन्नयसेऽनयेनि तदिद बाले विचार्य मम ॥३५४

इन सब कलहो से बचाने के लिए योगमाया ने राधा को अन्तर्हित कर दिया और स्वय भी अन्तर्हित हो गई, जब कृष्ण राधा का वस्त्र पकडने का प्रयास कर रहे थे।

चतुर्थ अक मे श्रीवास के प्राङ्गण मे भगवत्सकीर्तनमङ्गल का आयोजन हुआ। इसमे चैतन्य के साथ सभी नाच रहे हैं। रात भर सभी दर्शको और भक्तो को परमानन्द हुआ। निशावसान की अन्तिम वेला मे अकस्मात् अविदितगति चैतन्य अदृश्य हो गये और अपने गाँव मे ढूँढे जाने पर भी न मिले। उनके साथ आचार्य और नित्यानन्द गये थे। तीन दिनो के पश्चात् अद्वैत लौट आये। उन्होने चैतन्य का समाचार दिया कि वे सन्यासी हो गये—

सन्यासेन नव प्रभो विरचितन सर्वस्वनाशो हि न ॥४३६

सन्यास के अनन्तर उन्होंने अपना नाम कृष्णचैतन्य रख लिया।

सन्यास लेकर चैतन्यकृष्ण वृन्दावन जाना चाहते थे किन्तु उनके साथी नित्यानन्द ने उन्हें हठ बोल कर अद्वैत के घर पहुँचा दिया। मार्ग मे गगा नदी पड़ी।

उसे यमुना कहकर उसकी स्तुति महाप्रभु से कराई—

चिदानन्दभानो सदानन्द सूनो परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री।
अघाना लवित्री जगत्क्षेमधात्री पवित्रीक्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री ॥५.१०

निकट ही अद्वैताचार्य का आश्रम था। वहाँ से नित्यानन्द ने उन्हें बुलवा लिया नित्यानन्द की प्रार्थना मानकर भगवान् उनके घर प्रथम भिक्षा ग्रहण करने पहुँचे। भोजन के अनन्तर अद्वैत ने उन्हें उपकारिका (मचान) के ऊपर आसीन कराया, जिससे सभी दर्शनार्थी उन्हें देख लें। तभी नवद्वीप के सभी लोग वहाँ आ गये। उनकी माता आगे थी। माँ ने उन्हें देखकर कहा—

वैराग्यमेव भव कि किमु वानुभूति—
र्भक्तिर्नु वा किमु रस परमस्तनूभृत्।
तातस्तनधयतयैव भवन्तमीक्षे
लब्धो ऽधुनापि न कदापि पुनस्त्यजामि ॥५.२७

यह कह कर सन्यासी पुत्र को माता ने आलिङ्गन कर लिया। माता को पुत्र चैतन्यकृष्ण ने आश्वस्त किया—

भगवति जगन्मातर्मा न पर फलमुत्तम
किमपि फलितु वात्सल्याख्या लता भवनि क्षमा।
भवति भवती विश्वस्यैवानुपाविसुवत्सले-
त्यय भगवना नून चक्रे क्षमापि शरीरिणी ॥५.२८

लोगों ने चैतन्यकृष्ण को मथुरा जाने से रोक दिया। सबसे अधिक निषेध माता के द्वारा हुआ। वे इस बात पर मान गईं कि महाप्रभु जगन्नाथपुरी में रहें, जहाँ से आने-जाने वालों के द्वारा उनका समाचार मिलता रहेगा। चैतन्यकृष्ण को जगन्नाथपुरी पहुँचने के लिए वन से होकर भी जाना पड़ा। उन्होंने राजमार्ग से चलते हुए रेमुणा में कृष्ण की मूर्ति का दर्शन किया। कटक राजधानी में साक्षिगोपाल का उन्होंने दर्शन किया।

जगन्नाथपुरी में चैतन्य ने भगवान् की शयनोत्थान लीला देखी और उस समय प्राप्त प्रसाद को लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे। उन्होंने भट्टाचार्य को सोये से जगाकर वह प्रसाद खिलाया। तब तो वह

गिलित्वा उन्मत्त इव कण्टकितसर्वाङ्गो नयनजलस्तिमितवसनो घर्घर-कण्ठशब्दोऽपस्माररोगविवश इव भूत्वा महीतले लुठति।

तभी से सार्वभौम कट्टर वेदान्ती से परिवर्तित होकर रसमयी भक्ति के साधक हो गये।

सातवें अङ्क में चैतन्य के दक्षिण भारत में तीर्थाटन का वर्णन है। ब्राह्मणों को साथ लेकर वे पहले कूर्मक्षेत्र पहुँचे। वहाँ गलत्कुष्ठ वासुदेव नामक ब्राह्मण को गले

लगाया और ऐसा करते ही उसका शरीर सुन्दर हो गया। कूर्मक्षेत्र से आगे बढ़ने पर वे नृसिंह-क्षेत्र पहुँचे। वहाँ से गोदावरी तट पर जा पहुँचे। वहाँ रामानन्दराय उनसे मिले। रामानन्द परमवैष्णव थे। चैतन्य से मिलकर उन्हें प्रतिभास हुआ—

महारसिकशेखर सरमनाट्य-नीलागुरु
स एव हृदयेश्वरस्त्वमसि मे किमु त्वा स्तुम ।
तवैतदपि साहज विविधभूमिका स्वीकृति-
र्न तेन यनिभृमिका भवनि नोऽनिविस्मापनी ॥७ १७

वहाँ से दक्षिण की ओर चैतन्यकृष्ण चले। एक स्थान पर पाखण्डियों ने उन्हें अपवित्र भोजन भगवत्प्रसाद के नाम पर खिलाना चाहा। चैतन्य को उसकी अपवित्रता का ज्ञान था। फिर उन्होंने ही हाथ में लेकर हाथ उपर उठाया तो कोई पक्षी उसे ले उड़ा।

चैतन्य कृष्ण जगन्नाथपुरी लौट आये। उन्होंने भक्तों के सन्देहों को समय-समय पर दूर किया। एक दिन सार्वभौम ने उनसे कहा कि राजा आप से मिलना चाहते हैं। चैतन्य ने निषेध करते हुए कहा कि विषयी पुरुष और स्त्रियों से मिलने से अच्छा है विष खा लेना। पर राजा सत्याग्रही था। उसने कहा—

अभून्न चेष्टा मम राज्यचेष्टा सुखस्य भोगश्च बभूव रोग ।
अन परं चेत् स न वीक्षते मा न धारयिष्ये बत जीवन च ॥८ २०

प्राणास्त्यजामि किमु वा किमु वा करोमि
तत्पादपङ्कजयुग नयनाध्वनीनम् ॥८ २६

सार्वभौम के परामर्श से निर्णय हुआ कि राजा रथयात्रोत्सव के नृत्यश्रम से श्रान्त चैतन्य को निर्जन उद्यान में देख लें। रथयात्रा के अनन्तर यथासमय जब चैतन्य स्वानन्दावेश में आँख मूँदे पड़े थे, तभी राजा ने उनके चरण पकड़ लिये। राजा का आलिंगन चैतन्य ने भी बिना देखे ही किया।

चैतन्य ने मथुरा के लिए पैदल प्रस्थान किया। मार्ग में भयङ्कर परिस्थितियाँ थीं। चैतन्य के पास आया हुआ एक यवन उस अवसर पर उनका परम भक्त बन कर सहायक सिद्ध हुआ। पानीहाट तक नौका से जाने का उसने सुप्रबन्ध कर दिया। वहाँ से वे गङ्गा में नाव से यात्रा करते हुए कुमारहाट में श्रीवास के घर पहुँचे। वहाँ से नाव द्वारा चैतन्य नवद्वीप पहुँचे। मार्ग में दर्शनार्थियों की घोर भीड़ यत्र-तत्र होती थी। इससे बचने के लिए वनमार्ग से छिपकर वे मथुरा पहुँच गये। मथुरा देखने के पश्चात् चैतन्य ने वृन्दावन की शोभा का दर्शन किया। वहाँ के कुञ्ज, गोवर्धन पर्वत के वन आदि में उनका मन रमा रहा। कहीं-कहीं वे वृक्ष और लताओं का आलिंगन करते थे। अलौकिक थी चैतन्यलीला।

यथा,

कुञ्जसीमनि कदापि यदृच्छामूर्च्छया निपतितस्य धरण्याम् ।
आलिहन्ति हरिणा मुखफेनानापिबन्ति शकुना नयनाम्भ ॥ ६.२४

वृन्दावन मे अनुराग-विह्वल चैतन्य का अधिक दिन ठहरना निरापद नही था। यह देखकर उनके निकटतम भक्तो ने उनको वृन्दावन से हटाने मे सफलता पाई। लौटते समय प्रयाग मे उन्हे रूपगोस्वामी और अनुपम मिले। वाराणसी मे सावजनिक अभिनन्दन हुआ। वहाँ उन्हे रूप के बडे भाई सनातन से भेंट हुई। रूप और सनातन का प्रभु चैतन्य ने अपनी कृपा से अभिषेक किया। अन्त मे चैतन्य कृष्ण पुन जगन्नाथपुरी पहुँचे।

दसवें अङ्क मे जगन्नाथ-यात्रा महोत्सव और उसके चार दिन पश्चात् होने वाली भगवती श्री की प्रयाण-यात्रा की कथा दृश्य है। प्रयाण यात्रा मे लक्ष्मी का कोप-प्रयाण दिखाया जाता है।

नाट्य-शिल्प

इस नाटक का नाम चैतन्य चन्द्रोदय इसलिए पडा कि इसके नायक चैतन्य स्वय चन्द्र की भाँति प्रकाश करते है।[1]

सस्कृत म नाटको की दो विधायें बहुत प्राचीन काल से विकसित हुई हैं। प्रथम कोटि मे वे नाटक आते हैं, जिनमे नायक का पूरा जीवन चरित होता है। इनमे किसी एक घटना के लिए बीज और कार्य आदि अर्थ प्रकृतियाँ, आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम अवस्थायें और मुख, प्रतिमुख आदि सन्धियाँ नही होती। शेक्सपीयर के हेनरी चतुर्थ आदि अनेक नाटक इस कोटि मे आते हैं। बर्नार्डशा का बैक्टु मेथुसला नाटक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इनके विपरीत द्वितीय कोटि के नाटको मे अर्थप्रकृतियाँ, अवस्थायें और सन्धियाँ सुविन्यस्त रहती हैं। यद्यपि ये दो कोटियाँ प्रत्यक्षत एक दूसरे से भिन्न हैं, तथापि ऐसे नाटको का अभाव नही, जिनमे इन दोनो कोटियो का थोडा-बहुत मिश्रण न हो। चैतन्यचन्द्रोदय इनमे से प्रथम कोटि मे सम्यक्तया आता है। इसमे चैतन्य का समग्र यथासम्भव अधिकाधिक विवरण सागोपाङ्ग बनाकर दिखाया गया है।[2]

नाटक मे प्रतीकात्मकता स्थान-स्थान पर मिलती है, जिनके लिए कलि, अधम प्रेमभक्ति, मैत्री आदि पात्र मनुष्य रूप मे रङ्गमञ्च पर आते हैं। गङ्गा और रत्नाकर छठें अङ्क के प्रवेशक म पात्र हैं। इनके द्वारा यह छायानाट्य-प्रबन्ध कोटि मे आता है।

१ आह्लादयन्नक्षि जगज्जनाना प्रेमामृतस्यन्दसुपीमपाद ।
उल्लासयन् कौमुदमुज्जिहीते चन्द्रश्च विश्वम्भरचन्द्रमाश्च ॥ ४५

२ कर्णपूर ने पुष्पिका के पद्य १ में कहा है कि मैंने चैतन्य के चरित का वर्णन किया है।

अभिनय को विशेष मनोरञ्जन से सम्पृक्त करने के लिए सगीत-ध्वनि का नेपथ्य से और रगमच पर भी विधान किया गया है। प्रथम अङ्क मे उलुलु ध्वनि और विविध वादित्र—शख घटा आदि की ध्वनि सुनाई जाती है। तृतीय अङ्क मे नारद भागवत के एक पद्य को गाकर वीणा बजाते हैं। इसी अङ्क मे नेपथ्य मे मुरली बजती है और नारद उसके अनुरूप नृत्य करते हैं। चतुर्थ अङ्क मे चैतन्य और वक्रेश्वर के सगीत का आयोजन नेपथ्य से किया गया है।

अर्थोपक्षेपक को सक्षिप्त होना चाहिए—इस भारतीय विधान को इस नाटक मे नही माना गया है। प्रथम अङ्क के पूर्व जो विष्कम्भक है, उसमें गद्याश के अतिरिक्त ८६ पद्य हैं। यह अतिदोष है।

नाट्यनिर्देश रगमच पर कार्य व्यापार बताने के लिए प्रयुक्त हैं। यथा,

श्रीकृष्णोऽन्तर्वर्तिनी भूत्वा राधा पृष्ठत कृत्वा स्थितवती जरती करेण निक्षिप्य बलाद् राधापटान्तग्रहणमभिनयति। जरती बलान्मोचयित्वा राधामन्तर्वापयन्ती स्वयमप्यन्तर्दधाति। नित्यानन्द स्वरूपेण स्थितो नृत्यति।

ऐसे नाट्यनिर्देशो के द्वारा सवाद से अतिरिक्त भी कायबाहुल्य अभिनय को रोचक बना देता है।

आधुनिक चलचित्र की भाँति रगमच पर सैकडो लोगो की भीड दिखलाना कर्णपूर न अनुचित नही माना है। यथा,

तदिहैवते सपद्येव परसहस्रा सन्ति। कियता विलम्बेन लक्षसख्या भविष्यन्ति। (तत प्रविशन्ति भगवद्दर्शनोत्कण्ठिता पुरुषा।)

आगे चल कर पाँचवें अङ्क में—तत प्रविशन्ति सर्वे नवद्वीपवासिन।

इससे भी असख्य लोगों के रगमच पर आने का ज्ञान होता है।

विदेशी नाटको में भी कभी-कभी गणनातीत व्यक्ति रगमच पर आते थे।[1]

रगमञ्च पर पचम अङ्क में चैतन्य राधा बने और नित्यानन्द योगमाया की भूमिका म उतरे। यह रूपानुरूपा प्रकृति का प्रयोग था।[2]

कणपूर के नाटक मे किसी फलागम की ओर नायक को प्रवृत्त करते रहना आवश्यक नही था। वे तो प्रेक्षक को सास्कृतिक शिक्षा देते चलने मे अपनी सफलता मानते हैं। यह है एक पौराणिक आख्यान का सार—

१ उदाहरण के लिए अमरीकी नाटक विलियम यग-प्रणीत बेन हुर मे रगमच पर ८० व्यक्ति कोरस गाते हैं और १८१ पुरुष अतिरिक्त हैं। सब मिलाकर २६१ पुरुष रगमच पर हैं।

२ नाट्यशास्त्र २६ १५

माक्षिस्त्वेन वृतो द्विजेन स चलस्तत्रैव पश्चाच्छलैं
श्रीमत्कोमलपादपद्मयुगलेनारान्नदन्नूपुरम् ।
दृष्टस्तेन निवृत्तकन्धरमहो माहेन्द्रदेशावधि
प्राप्यैव प्रतिमात्वमत्वरमनास्तत्रैव तस्थौ प्रभु ॥ ६ १२

ततश्चिरेण गजपतिमहाराजेन पुरुषोत्तमदेवेनायमानीय स्वराजधान्या स्थापित ।

कुछ मनोरञ्जक निर्देश, जो केवल विवरण मात्र हो सकते हैं, कवि ने नाट्य कथा की पूर्णता के लिए दे देने का उपक्रम किया है । उदाहरण के लिए, जब चैतन्य-कृष्ण कमलपुर ग्राम के देवकुल के मार्ग मे थे तो नित्यानन्द ने उनके दण्ड को अकाण्डोपप्लव-खण्ड कह कर तोडकर नदी मे बहा दिया ।

चैतन्यचन्द्रोदय मे इस भारतीय विधान को नही माना गया है कि किसी अङ्क म केवल एक दिन का काम दिखाया जाना चाहिए । चतुर्थ अङ्क मे पूर्वाह्ण के समय के काम से लेकर पूरी रात और पूरे दूसरे दिन का काम तो रगमच पर दिखाया ही गया है । इकतीसवें पद्य के अनन्तर उसी अङ्क मे आचार्यरत्न द्वारा चूलिका से ज्ञात होता है कि तीन दिन के पश्चात् की कार्यावली अब रगमच पर चल रही है । इस प्रकार चतुर्थ अङ्क मे चार दिनो की घटनाओ का अभिनय किया गया है । सातवे अङ्क मे तो कई मास की कथा कह दी गई है । आठवे अङ्क मे कम से कम तीन दिन मे घटित कथा है । दशम अङ्क मे भी एक सप्ताह की कथा है ।[1]

अक मे दृश्य कथाश होना चाहिए, सूच्य नही—इस नियम का परिपालन कवि को अभिप्रेत नही प्रतीत होता । प्राय सभी अकों मे नायक के अलौकिक चमत्कारो के आख्यान भरे पडे हैं । प्रवेशक और विष्कम्भक द्वारा भी कहानी गूँथने का काम किया गया है । कवि का उद्देश्य है कि इस नाटक के द्वारा प्रेक्षक और पाठक चरित-नायक को अधिकाधिक जान ले ।

चरित्र-चित्रणकला

नायक का औदात्य प्रकट करने के लिए प्रतिनायक को भी उसके सद्भाव से प्रभावित बताया गया है । चैतन्य के महानुभाव को देखकर उनके सम्पर्क मे आनेवाली मृगनयनियों के विषय मे अयत्र कलि कहता है—

भावेनोपहृता येनो द्वेषेण क्षोभकारकम् ।
निर्माणाणा पुनस्तेषामाकारो नापराध्यति ॥ १ ३६

चैतन्यकृष्ण की विशेषता कवि ने अनेक स्थलो पर चर्चित की है । उनके महानुभाव म उपशमन की शक्ति का आख्यान है—

[1] इस अक म यात्रारथोत्सव की कथा दृश्य है और उनके चार दिन पश्चात् होने वाली भगवती श्री की प्रयाण-यात्रा की भी कथा दृश्य है ।

विनोपदेशेनापि 'कर्ह्येव स्याम' इनि तत्कालसमुदितवरवासनाविशेषेण जातपुलकाश्च सर्व एव स्वस्वमनप्रच्यावेन तत्पथप्रविष्टा बभूवु। सप्तम अङ्क से

चरितनायक का प्रकृति से सहानुभाव प्रकट करके उसके उदात्त महानुभाव को कवि प्रतिष्ठित करता है। यथा,

विलपनि करुणस्वरेण देवे जलधरधीरगभीरनि स्वनेऽपि।
चिरमनुविलपन्ति वाष्पकण्ठा क्वचन च लास्यमपास्य नीलकण्ठा ॥६ २७

अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न बताकर चैतन्य को दिव्य व्यक्तित्व से समुदित बताया गया है। उनके सम्पर्क से आन मात्र से गर्वित भी सर्वगुण-प्रपन्न हो जाता था। सारा ब्रह्माण्ड उनके कीर्तन से प्रभावित है। यथा,

क्षोभ क्षोणीमृगाक्ष्या स्थगनमिहरवे कम्पमाशावधूना
स्तम्भ वातस्य कुर्वन्नमरपरिवृढस्यान्त्रमक्ष्णा सहस्रे।
स्वेद सप्तर्षिगोष्ठ्या परमरसमयोल्लासमौत्तानपादे—
र्ध्यानध्वस विरिञ्चे स जयति भगवत्कीर्तनानन्दनाद ॥१० ३८

चैतन्य का पथ सबके लिए प्रशस्त था। यवन भी उनकी हरिबोल-धुनि को आत्मसात करके मोक्षमार्ग पर चलने लगे थे। चाण्डाल तक उनके वैसे ही निकट हो सकते थे, जैसे कोई महाब्राह्मण।[1] एक कुत्ते की वार्ता दसवें अक के आरम्भ मे है, जो चैतन्य का प्रसाद पाकर कृष्ण-कृष्ण कहता था।

शैली

चैतन्यचन्द्रोदय की शैली यथानाम सुचन्द्रित है। इसमे भावो का लावण्य मधुर भाषा म कोमलतापूर्वक सुपुञ्जित है। कहीं-कहीं श्लेषालकार के द्वारा हास्यात्मक वर्णना सर्जन करने मे कवि को अतुलित सफलता मिली है। यथा, ललिता और कृष्ण का पादाघगत प्रश्नोत्तरश्लिष्ट भाषा मे है—

कस्त्व भो, ननु माधव कथमहो वैशाख आकारवान्
मुग्धे विद्धि जनार्दनोऽस्मि, तदिद ब्रूते वनावस्थिति।
मा गोवर्धनधारिणं न धरणौ, को वेत्ति हु वर्धन
हिंसा हे वृषहन् बिभर्षि तदघद्वारैव गोवर्धनम् ॥ ३ ५५

यमक की छटा भी वक्रोक्ति-कुशल लेखक की विशेषता है। नित्यानन्द की ऐसी एक उक्ति है—

१ चैतन्य के शिष्य शिवानन्द चाण्डालो को भी गुण्डिचा यात्रा म महाप्रभु का दर्शन कराने के लिए ले जाते थे। अन्यत्र है—
कुक्कुरोऽपि तेन प्रतिपाल्य नीतोऽस्ति। किं पुनर्मानुष।

अस्य दण्डग्रहणावधि ममैव दण्डो जातः ।

अर्थात् जबसे चैतन्य ने सन्यास का दण्ड ग्रहण किया, तब से मुझे उपवास का दण्ड भोगना पड़ रहा है ।

इसी वक्रोक्ति के सहारे कविवर ने श्रीपाद का अर्थ बताया है—भगवान् को पकड़ने वाला—श्रियं पातीति श्रीपः कृष्णः तमाददातीति ।

कर्णपूर ने चैतन्य को वागीश्वर कहा है ।[1] वास्तव में चैतन्य की कृपा से वह स्वयं वागीश्वर बन चुका था ।

कवि के रूपक कहीं-कहीं अन्योक्ति द्वार से व्यग्य हैं । यथा,

तीर्थेष्वमीषु सकलेषु नया न तृप्ति—
र्जातास्य सत्वरमतः पुरुषोत्तमे सः ।
प्रत्याययौ कलय जगमरत्नसान्
रत्नाकरस्य सविधे सुमुखो विधिर्न ॥७.२४

कवि के उदाहरण कहीं-कहीं अर्थान्तरन्यास के वेष्टन में प्रेक्षकों के घर से लाये हुए प्रतीत होते हैं । यथा,

तीक्ष्णो हि गौडस्य रसस्य पाक—
स्तिक्तत्वमायाति न चैति वद्वम् ॥ ८.२

कहीं-कहीं विशेषणों की विपुल राशि कवि की प्रगुणमयी दृष्टि का संकेत करती है । यथा,

हेलोद्धूलितखेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया ।
शश्वद्भक्तिविनोदया समदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे तव दया भूयादमन्दोदया ॥८.१०

पूरा पद्य दया निर्भर होकर दया की निर्झरिणी ध्वनित करता है ।

कर्णपूर को चाव था कि नाटक अधिकांशतः पद्य में लिखा जाय । गद्योचित अंशों को भी छन्दोबद्ध करने की उनकी प्रवृत्ति अनेक स्थलों पर प्रकट होती है । यथा,

आयातः पुरुषोत्तमस्य गमने कालः शुभोऽस्य वयं
यामः सत्वरमेव सम्प्रति शिवानन्दस्त्वया भण्यताम् ।
प्रस्थानस्य दिनं विधाय लिखतु क्वैकत्र सर्वे वयं
गच्छन्तः सहसा भवेम मिलिताः पश्चात्पुरोभावतः ॥ १०.१

सन्देश की भाषा कितनी प्राञ्जल है ।

---

१ नाटक में पद्य ५.२१ के नीचे ।

कवि ने चरितनायक को देखा था। उसने चैतन्य के संवादों को सुना था। इस ग्रन्थ में जो संवाद उसने प्रस्तुत किये हैं, वे साक्षात् श्रीमुख से निकले प्रतीत होते हैं। इन संवादों में अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है, मानो इनके द्वारा दो हृदय मिल रहे हैं।

कर्णपूर की उत्प्रेक्षाओं से उसकी उदात्त कल्पना का परिचय मिलता है। यथा,

अस्ताचलोदयमहीधरयोस्तटान्त
शीतांशुचण्डकिरणावुपसेदिवांसौ।
तुल्यत्विषौ मृदुतया वहत प्रशस्य
वर्षीयस क्षणमिवोपरि लोचनत्वम् ॥१० २०

इसमें सूर्य और चन्द्र महाकाल के नेत्र बन गये हैं। कहीं कहीं उपमा द्वार से भी कवि ने चरित्र निर्माण की योजना कार्यान्वित की है। यथा,

स्वचरितमिव निरवद्यकर स्वहृदयमिव स्निग्ध च सवनश्चत्वरतलं कृत्वा।

रस

चैतन्यचन्द्रोदय में भक्तिरस अङ्गी है। भक्तिरस के साथ ही इसमें शृङ्गार का परिपोष इस उद्देश्य से विशेष रूप से किया गया है कि सामाजिकों को शृङ्गार के प्रति सर्वाधिक चाव होता है। इसमें अद्वैत प्रतीची का शृङ्गारित वर्णन करते हैं—

सायाह्नसगसुखलिप्तधियं प्रतीच्या
शोणाभ्रवाससि समुच्छ्वसिते नितम्बान्।
काञ्चीकलापकुरुविन्दमणीन्द्ररूपी
कालक्रमाह्निपनि पतयालुरासीत् ॥ ४४

दसवें अङ्क में लक्ष्मी को रौद्ररस का आश्रय बनाया गया है।[1] यह उचित नहीं प्रतीत होता। रौद्ररस का आश्रय बनने के लिए लक्ष्मी जैसी उत्तम व्यक्ति नहीं होना चाहिए।

लोकोक्तियाँ

चैतन्यचन्द्रोदय में लोकोक्तियों का सम्भार है। इनके प्रयोग द्वारा कवि प्रायश अपने वक्तव्य को सुप्रमाणित बनाता है। यथा,

(१) प्रभुत्वं परमपि घनिन करोति
(२) घट्टपाला हि विना धृष्टताप्रकटनेन स्वार्थकुशला न भवन्ति।
(३) महामत्तावन्यकु जगे मन्त्रेणैव वशीकृत।
(४) दिष्टे हीष्टे भवति सहसा हन्त वामोऽप्यवाम ॥ ५ ११
(५) अनाहार्यं वस्तु प्रकृतिविकृतिभ्यां समरसम् ॥ ५ १८

---

१ व्यक्त रौद्ररसोऽयमम्बुधिभुव । १० ६०

(६) ज्ञातु शक्नोत्यहह न पुमान् दर्शनात् स्पर्शरत्न
यावत् स्पर्शाज्जनयति नरा लोहमात्र न हेम ॥ ६ ३२

(७) सदैव तुग किलकाञ्चनाचल
सदैव गम्भीरतमा पयोधरा ।
सदैव धीरा विनयैकभूषणा
लक्ष्मी प्रकृत्यैव जनै समीयते ॥ ७ १९

(८) सर्वथा हि प्रकृतिमधुरो हन्त तुल्येन योग ॥ १० ५

(९) वस्तूना गुणदोषयोरपि गुणे दृष्टिर्न दोषग्रह ॥ १० ६

(१०) प्रणयिनीना प्रकृतिरेवेय यत्स्वायोग्यता नेक्षन्ते।

(११) विना वारी बद्धो वनमद-करीन्द्रो भगवता ॥ ६ ३१

शिक्षा

स्वभावत ऐसे नाटक मे लेखक का एक उद्देश्य है कथा के माध्यम से शिक्षा देना। कवि का मत है कि

रामनामत कृष्णनाम श्रेय ।

विषयी पुरुष और स्त्री को देखना विष खाने से भी बढ कर हानिप्रद है, उस व्यक्ति के लिए, जो मोक्षार्थी हो—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पार पर जिगमिषोर्भवसागरस्य ।
सन्दर्शन विषयिणामथ योषिता च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥ ८ २३

आकारादपि भेतव्य स्त्रीणा विषयिणामपि
यथाहेर्मनस क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि ॥ ८ २४

पूर्ण का ग्रहण करो और अपूर्ण को छोडो—

पूर्णापूर्ण-परिग्रहत्यजनयो शिक्षा व्यतानीज्जन ॥ १० ३५

सामाजिक वैषम्य

कणपूर दम्भियो की पोलपट्टी खोलने का मानो बीडा लेकर यह नाटक लिखने चले थे। उनका प्रतीक पात्र वैराग्य ससार को खुली आँख से देखता है तो पाता है कि कलि ने सभी सात्त्विक प्रवृत्तियो का ध्वस कर दिया है। चारो वर्णो के लोग अपने शास्त्रविहित कर्म को छोडकर ढोग कर रहे हैं। विवाह यदि नही हुए तो ब्रह्मचारी बन गए। तर्क मे दूसरो को पराजित करना पाण्डित्य का परम लक्षण है। कही मायावादी अपने को ब्रह्म मानते हुए भगवान् की मूर्ति का खण्डन करते हैं। वैदिक और वैशेषिक दर्शन वाले भगवत्तत्त्वशून्य हैं। हठयोगी भी कही समाधि

टूट रही है, जब वह पानी लाने के लिए आई हुई रमणी की चूडियो की ध्वनि सुनाता है। यह तो मात्र दम्भी है। भारत के सारे तीर्थों का पर्यटन करके लौटा हुआ यात्री कामनाभिभत है कि मेरे पास लोग आयें। तपस्वी दम्भी और गर्वोन्नत है। इन सभी मे भक्ति का अभाव है, अतएव ये निकम्मे है। जैसे-तैसे अपना पेट भर रहे हैं।

उत्कोच का प्रचलन उस युग मे भी था। लोगो को द्वारपाल अद्वैत के घर मे नही प्रवेश करने देते थे। उस समय लोगो को उपाय सूझा—दातव्य किञ्चिदेम्य ।

इस युग मे यात्रियो पर लुटेरे और ठगो के कारण सङ्कट था। यथा,

ग्रामे ग्रामे पटुकपटिनो घट्टपाला[1] य एते
येऽरण्यानीचरगिरिचरा वाटपाटच्चराश्च।
शङ्काकारा पथि विचलता ता विलोक्यैव साक्षा-
दुद्यद्वाष्पा स्खलितवपुष क्षोणिपृष्ठे लुठन्ति ॥ ६ ६

जगन्नाथपुरी मे नीलाचलचन्द्र भगवान् का दर्शन राजपुरुषो की सहायता बिना सुलभ नही था। चैतन्यकृष्ण को देवदर्शन की सुविधा प्रस्तुत की गई। उन्होने शयनोत्थान लीला देखी।

सामाजिक वैषम्य मिटाने का प्रयास कर्णपूर की इस रचना मे कही-कही दिखाई पडता है। उनके चैतन्यकृष्ण कहते हैं—

हरे स्वतन्त्रस्य कृपापि तद्वद् धत्ते न सा जातिकुलाद्यपेक्षाम्।
सुयोधनस्यान्नमपोह्य हर्षाज्जग्राह देवो विदुरान्नमेव ॥ ८ १४

चर्माम्बर ढोग है—यह ब्रह्मानन्द के मुँह से वक्तव्य है—

दम्भैकमात्रप्रथनाय केवल चर्माम्बरत्वादि न वस्तुसाधनम्।
चलद्भिरुर्वीमृजुनैव वर्त्मना सुखेन गम्यस्य समाप्यतेऽवधि ॥ ८ १७

कुलजाति का दम्भ भी महाप्रभु के प्रयास से मिट रहा था। उनके एक अनुयायी थे हरिदास, जिनको सार्वभौम भट्टाचार्य सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

कुलजात्यनपेक्षाय हरिदासाय नम । दशम अङ्क से

आर्थिक तथा राजनीतिक समता भले सम्प्रतिष्ठित न हो, किन्तु चैतन्य-समता तो सब को प्राप्त ही है। कैसे ?

श्रीहस्तेन विलिप्य चन्दनरसं प्रत्येकमेषा वपु—
र्निक्षिप्याप्यधिकन्धर भगवतो निर्माल्यमाल्यानि च।
उल्लासद्रुमसञ्जरीरिव कर सग्राहयन्शोधनी—
र्मोद्यत्तुगमनगजालसगतिगौरो विनिष्क्रामति ॥ १० ३०

१ घट्टपालो के विषय मे दसवें अक मे कहा गया है—पथि गच्छतामेषा वर्त्मकार-कभूना घट्टपाला कीदृश व्यवहरन्ति।

और इन्हे देखकर राजा कहता है—

धिग् मपत्वम् । तदाहमेवा मध्ये य कश्चिद् भवन् भगवन्तमनुव्रजामि ।

पाणौ कृत्वा मधुरमृदुले शोधनीमर्ध्वमर्ध्व
सर्वं सार्धं स्वयमयमसौ गुण्डिचामण्डपान्त ।
लूतानन्नून् मलिनरजस सारयन्नेव तैस्तै—
र्यत्नै गौर. शशधर इव व्यक्तलक्ष्मा बभूव ॥ १०३२

अनन्तरम्

हस्ताप्राप्ये कमपि समुपारोप्य कस्यापि वामे
मा भैषीरित्यहह निगदन् मेघगम्भीरयोक्त्या ।
अम्युन्नेन सरजमतनुर्मार्जयित्वोर्ध्वमूर्ध्वं
भित्ती सिंहासनमथ तल शोधयामास देव ॥ १०३३

अपि च

वह्निर्वामोऽश्वत्थामवकरचय शोधनिकया
समाहृत्यापूर्य स्वयमथ वहि सारयति स ।
क्वचिद् हस्तप्राप्यावधि सरभस मार्ष्टि स्म कल
सुहृद्वर्गैर्गायत्यपि स कुतुक गापयति च ॥ १०३४

योरप मे सोलहवी से १८ वी शताब्दी तक सोसाइटी आफ जेमस के स्कूलो मे इस प्रकार के धार्मिक नाटको का अभिनय प्रवर्तित हुआ, जो चैतन्यचन्द्रोदय के समान है। इस प्रकार का सबसे पहला नाटक १५५१ ई० मे प्रयुक्त हुआ था। स्पेन, फ्रान्स, इटली आदि देशो मे इसका प्रचार था। क्राइस्ट के आरम्भिक जीवन की प्रमुख घटनाओ का नेटिविटी प्ले मे समाविष्ट किया गया था।[1] योरपीय नाटक के लिए तीन यूनिटी वाले नियम के अपवाद-स्वरूप जो रचनायें हुई, उनके विषय मे जान ड्राइडन का कहना है[2]—

If by these rules we should judge our modern plays, it is probable that few of them would endure the trial, that which should be the business of a day, takes up in some of them an age, instead of one action, they are the epitomes of a man's life, and for one spot of ground, we are sometimes in more countries than the map can show us

1 The services of Christmas gave scope for a drama of the Nativity, centring on the crib with Mary Joseph, the ox and ass, shepherds and angels Epiphany play began with the journey of Magi, their visit to Jerusalem and interview with Herod The Oxford Companion to the Theatre P 214

2 European Theories of the Drama Page 179

जगन्नाथ-वल्लभ नाटक (संगीत-नाटक)

जगन्नाथ-वल्लभ के प्रणेता रामानन्द राय का प्रतिभाविलास सोलहवीं शती के उत्कल-नरेश गजपति प्रतापरुद्र के समाश्रय में हुआ था।[1] नान्दी के अन्तिम अंश में कहा गया है—

लघुतरलितकन्दर हसितनवसुन्दर गजपति-प्रतापरुद्रहृदयानुगतमनुदिन नरम रचयति रामानन्दराय इति चारु।

सूत्रधार ने प्रस्तावना में आश्रयदाता राजा प्रतापरुद्र के विषय में लिखा है—

यन्नामापि निशम्य मतिविगते सेन्दरं कन्दरं
सुवर्गेतदमिमिति तत्क मात्र समुद्वीक्षते।
मेने गुज्जरभूपतिर्जरदिवारण्यं निजं पत्तनं
यात्यब्धिप्रतिरोधिपोतगमिव स्व वेद गौडेश्वरः॥

महाराज प्रतापरुद्र ने सूत्रधार से कहा था कि कृष्णचन्द्र के विषय में किसी प्रबन्ध का अभिनय प्रस्तुत करे—

मधुरिपुपदभाजामादि तत्तद्गुणाढ्य
सहृदय-हृदयाना काममामोदहेतुम्।
अभिनवकृतिमन्तच्छायया नो निबद्ध
ममभिनयनटाना वर्ज किंचित् प्रबन्धम्॥ १४

रामानन्द के पिता का नाम भवानन्द राय था। वे राजमन्त्री थे। रामानन्द का यह नाटक गजपति प्रतापरुद्र को प्रिय था।

सूत्रधार ने इसे संगीतनाटक कहा है। यथा

रामानन्द-संगीतनाटकं निर्माय समर्पितमभिनेष्यामि।[2]

रामानन्द स्वभावतः विनयी वैष्णव भक्त थे, जैसा उनके अधोलिखित वक्तव्य से प्रतीत होता है —

---

1 जगन्नाथ-वल्लभ का प्रकाशन अनेक बार हो चुका है। बंगाल में इसके प्रकाशन से परितुष्ट न होकर श्री निजानन्द ब्रह्मचारी ने इसका सम्पादन करके १९०४ ई० में बनारसी ने वृन्दावन के देवकीनन्दन प्रेस से छपवाया। इसकी प्रति काशी में विश्वनाथ-पुस्तकालय में प्राप्य है।

2 प्रस्तावना के इस वचन से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है।

स्वदिति कमलकोषे निस्वनाः प्रदोषे॥ २०

न भवतु गुणगन्धोऽप्यत्र नामप्रबन्धे
मधुरिपु पदपद्मोत्कीर्तनं नस्तथापि।
सहृदयहृदयस्यानन्दसन्दोहहेतु—
र्नियतमिदमतोऽयं निष्फलो न प्रयासः॥

इसमें पात्रों के नेपथ्य-विधान का पर्याय वर्णिका-परिग्रह प्रयुक्त है।

जगन्नाथ-वल्लभ का प्रथम अभिनय प्रदोष-वेला में आरम्भ हुआ, जिसका वर्णन नटी ने संस्कृत में इस प्रकार किया है—

'मृदुलमलयवाताचान्तवीचि-प्रचारे
सरसि नवपरागैं पिंजरोऽयं क्रमेण।
प्रतिकमलमधूना पानमत्तो द्विरेफ'

कथासार

विदूषक के साथ कृष्ण वृन्दावन के विहारकुञ्ज में आनन्दोत्सव के लिए जा पहुँचे। वहाँ गोपियों ने अशोक-पल्लवों को निर्दयता से तोड़ रखा था। विदूषक ने स्पष्ट कह दिया कि ये ही वे गोपियाँ हैं, जिनमें आपका मन अटका है और आप यहाँ से प्रस्थान नहीं कर रहे हैं। तभी राधा ने प्रवेश किया—

कलयति नयन दिशि वलितम्
पकजमिव मृदुमारुतचलितम्।
केलिविपिन प्रविशति राधा।
प्रतिपदसमुदितमनसिजबाधा॥
विनिदधती मृदुमन्थरपादम्।
रचयति कुञ्जरगतिमनुवादम्॥

राधा ने कृष्ण का वेणु बजाते सुनकर उन्हें देखने का उपक्रम किया था। कृष्ण ने राधा के निरुपम रूपमाधुर्य को देखा।

दुपहरी हो गई। प्रथम अंक के अन्त तक नायक-नायिका का दूरदर्शन मात्र हुआ और वे चलते बने।

द्वितीय अंक में राधा कृष्ण के प्रेम में निष्णात होकर उनके विरह की अग्नि को पद्मदल शय्या पर शान्त करने के लिए समुद्यत है। कृष्ण को राधा का प्रेमपत्र मिला, जिससे कृष्ण को प्रतीत हुआ कि राधा मदन-सन्तप्त हैं। कृष्ण ने सोचा कि उसके हृदय की स्थिरता की परीक्षा करनी है। उन्होंने दूती से कहा—

अर्चन भुजयुग्ममायशरण सम्मर्च्य बालामिमामव्यग्रा रचयामि। किं मयि सति त्रासो व्रजस्त्रीजने।

कृष्ण ने दूसरों को सुनाने के लिए कहा कि यह राधा मेरे पीछे क्यों पड़ी है? मैं ऐसे उच्चतर प्रेम के कुचक्र में नहीं पड़ता। कृष्ण ने राधा की दूती से बनावटी बात

कही कि तुम राधा को इस अयोग्य प्रवृत्ति से विरत करो। वे सदाचार का ध्यान भले न रखें, हम सदाचार नहीं छोड़ सकते।

तृतीय अंक में मदनिका, वनदेवता और शशिमुखी के साथ राधा की रहस्यात्मक बात चल रही है। राधा को कृष्ण का सन्देश मिला है, जिसके अनुसार राधा की प्रणय-याचना का कृष्ण ने तिरस्कार किया है। तब तो राधा संस्कृत बोलती हुई प्रणयोद्गार प्रकट करती है—

श्राव श्राव सुनामश्रुनिसमितपरब्रह्मवशीप्रसूतम्।
दर्श दर्श त्रिलोकीवरतरुणकलाकेलिलावण्यसारम्।
ध्याय ध्याय समुद्यद्युमणिकुमुदिनीबन्धुरोचि सरोचि-
श्चाय श्रीकान्तसंग दहति मम मनो मा कुकूलाग्निदाहम्॥

शशिमुखी ने समझाया कि कृष्ण को छोड़ो। और भी

हीनं पतिमपि भजते रमणी
केशरिणं किं मुकुलयति हरिणी।
राधिके परिहर माधव-रागमये
क्षीणे शशिनि च कुमुदवनीयं।
भजति न भाव किमु रमणीयम्॥

राधा ने कहा—प्रणय-पथ में लौटना नहीं होता। शशिमुखी ने कहा कि भ्रमरी केतकी प्रसून को रसहीन देखकर छोड़ देती है। राधा ने कहा—अच्छा कृष्ण को छोड़ दिया। उसी समय कृष्ण का चित्र लिए हुए माधवी राधा के पास आई। उस चित्र के नीचे लिखा था कि मैंने वाणी से तुम्हारा प्रत्याख्यान किया है, किन्तु मन तुम में ही रम रहा है। सन्ध्या के समय सभी चलते बने।

चतुर्थ अङ्क में बकुलवृक्ष के नीचे बैठे कृष्ण और विदूषक की बातचीत छिप कर मदनिका सुन रही है। कृष्ण राधा के तिरस्कार से दुःखी हो रहे हैं। वह सामने आ गई। विदूषक ने उससे कहा कि काम सन्तप्त मेरे मित्र की रक्षा के लिए गोपियों को ले आना। कृष्ण ने अपनी वियोगस्थिति का परिचय दिया—

नवान्यादे।स्या वदनरुचमाकर्ण्य शशिन
कृतावज्ञा यस्मादयमपि रुजं तद्वितनुताम्।
तदङ्गेनासंग भजत इति यो मे बहुमत
कथं सोऽपि प्राणैर्मम मलयजानो विहरति॥ ४.२२

मदनिका ने राधा की स्थिति बताई—

शिलापट्टे हैमे तुहिनकिरणे चन्दनरसैं—
रियं तन्वी पिष्टा तनुमनु विलेप मृगयते।

क्षणं स्थित्वा हा हा तरस विसनोपवशयने
समुत्तस्थौ यावज्ज्वलति न चिरान्नर्मरमिदम् ॥ ४२४

हरि हरि कथमपि जीवति राधा

मदनिका कृष्ण की इच्छानुसार केसर-कुञ्ज में राधिका को अभिसारिणी बना कर ले आई यह कह कर कि

तत् कुञ्जोदरतल्पकल्पनपरं राधे तमाराधय।

इधर कृष्ण मनाने लगे कि चन्द्रमा शीघ्र ऊँचा हो जाय, जिससे मेरी प्रेयसी का निर्बाध आगमन हो सके। तभी उन्हें राधा के आने की नूपुर की रनझुन सुनाई पड़ी। दोनों को मिलाकर साथी चलते बने।

पञ्चम अङ्क में मदनिका शशिमुखी से बताती है कि रात्रि में राधा-माधव की निकुञ्ज में प्रणयक्रीडा हुई। आरम्भ में राधा ने मान किया। कृष्ण ने उसका हाथ पकड़कर उसे मना लिया। फिर सम्भोग-विहार का आनन्द दम्पती ने प्राप्त किया।

इस अङ्क में वृषासुर के मदमर्दन की घटना है। नेपथ्य से अरिष्ट नामक वृष के वध का वर्णन है—

यत्रोन्मीलति मौलिनि त्रिभुवनं यत्रोन्नमत्यानन
यस्मिन् भ्राम्यति न भ्रमन्ति वियति प्रायेण वाता अपि
क्षिप्त्वा कन्दुकलीलया तमधुना वृन्दावनाद्दूरतो
हत्वा रिष्टमरिष्टमेतदकरोत् श्रीमान् मुकुन्दो जगत् ॥ ५४७

राधा ने इस पराक्रम के पश्चात् कृष्ण को वस्त्राञ्चल से पवन किया।

समीक्षा

मिथिला के कीर्तनिया नाटों में जिस प्रकार मैथिल गीतों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है, वैसे ही इस सगीत-नाटक में विविध रागों में प्रायः समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिये गीतों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। पात्रों के रंगमंच पर आने के पूर्व उनके रूप और वेषभूषादि के साथ अनुभावों की भी चर्चा ऐसे गीतों में कभी-कभी नेपथ्य से और कभी-कभी किसी अन्य पात्र के द्वारा की गई है। यथा, कृष्ण के प्रवेश के पूर्व—

मृदुतरमारुतवेल्लितपल्लववल्लीवलितशिखण्डम्
तिलकविडम्बित-मरकतमणितल-बिम्बितशशधरखण्डम्
युवतिमनोहर वेशम्।
कलयकलानिधिमिव धरणीमनु परिणतरूपविशेषम्।

राधा के प्रवेश के पूर्व भी उसके रूप और अनुभावों का वर्णन करते हुए कवि ने गौड़ किरी राग में नेपथ्य में गीत प्रस्तुत किया है। इन्हें प्रावेशिकी कहा जा सकता है।

ऐसे गीतो मे पुन पुन आश्रयदाता राजा गजपति का नाम किसी न किसी प्रकार प्रायश कवि के नाम के साथ लिया गया है। यथा,

गजपतिरुद्रनराधिप-चेतसि जनयति मुदमनुवारम्।
रामानन्दराय-कविभणित मधुरिपुरूपमुदारम्॥ २२

नेपथ्य से यह पाठ करन वाला सूत्रधार का भाई है।

पात्रो के मुख से इन गीतो मे कवि और उनके आश्रयदाता की चर्चा विडम्बना है। यथा, प्रथम अङ्क मे कृष्ण कहते हैं--

सुखयतु गजपतिरुद्र-मनोहरमनुदिनभिदमभिधानम्।
रामानन्दरायकविरनिन रसिकजन सुविधानम्॥ २८

सुसस्कृत शृगार-रस की अनुपम खान है यह नाटक। साथ ही विदूषक के हास्य उत्पन्न करने का एक विरल विधान इस नाटक मे मिलता है। वह कृष्ण के वशी-वादन के पश्चात् उनकी स्पर्धा मे अपन कण्ठरव के द्वारा परुष नाद करता है। वह अपन रव की प्रशसा म कहता है कि तुम्हारे वशीनाद के समय कोकिल चुप थे, पर मेरे कण्ठरव के आरम्भ होने ही सब भाग खडे हुए। अतएव मैं जीता। वह अन्यत्र कृष्ण की खिल्ली उडाते हुए दूती से कहता है--

अस्माक प्रियवयस्यो धर्मशरण। तदपसरतु भवती॥

जगन्नाथ-वल्लभ मे विष्कम्भको मे केवल सूचना ही नही हैं। उनमे रमणीक गीतो के सन्निवेश होन से उन्हें छोटा अङ्क ही कहा जा सकता है।

कवि ने आकाश-भाषित को शुकभाषित का रूप दे रखा है। द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे मदनिका शुको से आकाशभाषित करती है—

मदनिका—(*परिक्रम्य अवकाशे लक्ष्य बद्ध्वा*) भो शुका *जानीत कुत्राय* द्रष्टव्यो मुकुन्द। किं नु वनभाण्डीरतरुमूले शशिमुखी द्वितीय प्रतिवसति। इत्यादि।

दृश्य को कलात्मक विधि से सँजोया गया है। माधवी को कृष्ण का चित्र राधा को दिखाना है। वह—

मनाग्दर्शयित्वाञ्चलेनाच्छादयति।

तब तो शशिमुखी ने बलात् उसे ले लिया।

चतुर्थ अङ्क मे रगमच दो भागो मे बँटा है। इसमे एक भाग मे कृष्ण और विदूषक बातें करते हैं और दूसरे मे किसी दूर स्थान पर वर्तमान राधा और मदनिका की बातें हो रही हैं। दोनो स्थानो मे पर्याप्त दूरी है। कृष्ण ने कहा है—

विदूरे कुञ्जोऽयम्।

पुण्यात्मक प्रवृत्ति

रामानन्दराय ने भरतवाक्य मे अपनी रचना के पुण्यात्मक तत्त्वका प्ररोचन इस प्रकार किया है—

श्रद्धाबद्धमतिर्मम प्रतिदिन गोपाललीनस्य य
ससेवेन रहस्यभेदमतुल लीतामृत लोलधी।
तस्मिन् मदनमानसे किल कृपादृष्ट्या भवत्या सदा
भाव्य येन निजेप्सता व्रजवने सिद्धि समाप्नोति स ॥५ ६३

शैली

रामानन्द की शैली सर्वथा सुबोध अतएव अभिनयोचित है। इनके गीतो मे सवत्र जयदेव के गीतगोविन्द का रस, समान-पद-योजना ललित और कोमलकान्त-विन्यास के द्वारा छलकता सा है।

जगन्नाथ-वल्लभ नाटक मे सगीतानुसारी केदार, वसन्त, गोडकिरी, गान्धार, तोडीवराडी, सामगुज्जरी, मल्लार, सुहृयी, देश, कर्णाट, मालव, दुखीवडारी साम-तोडी, मालवश्री, सुसिन्धुडा, आहिर, मगलगुज्जरी आदि रागो का विविध गीतों मे प्रयोग हुआ है।

लोकोक्ति

तदेव त्रपावर्म बालाना हृदये स्थिरम्।
यावद्विषमबाणस्य न पतन्ति शिलीमुखा ॥ २ १५

द्वित्राण्येव दिनानि यौवनमिद
हा हा विधे का गति ॥ ३'६

अनुमितमम्बुपयोदे तनुपरि लिना दावानलज्वाला।
वपुरतिललित बाला शिव शिव भविता कथ हरिणी ॥

शुक्तिधिया महामणिरभृत् त्यक्त।

कसवध

कसवध के रचयिता महाकवि शेषकृष्ण भारत के उस विद्वत्कुल मे हुए जिसने काशी को अपने ज्ञान के प्रकाश से अनेक शताब्दियो तक समुज्ज्वल रखा है।[1] शेषकृष्ण के पिता नरसिंह गोदावरी तट छोड कर सोलहवी शती के पूर्वार्ध मे काशी मे आ बसे थे। वहाँ उन्ह तण्डनवशी राजा गोविन्दचन्द्र का आश्रय प्राप्त हुआ, जिसके नाम पर उन्होने गोविन्दार्णव नामक धर्मशास्त्र का ग्रथ लिखा। नरसिंह व्याकरण के असाधारण विद्वान् थे। उन्होने काशी म जिस वैयाकरण-परम्परा की स्थापना की, उसमे आगे चल कर भट्टोजी और नागोजी आदि विद्वान् हुए।

नरसिंह के बडे पुत्र चिन्तामणि ने रुक्मिणीहरण नामक रूपक का प्रणयन किया।[2] इनका दूसरा ग्रथ रसमञ्जरी-परिमल है। शेषकृष्ण नरसिंह के दूसरे पुत्र थे। शेषकृष्ण के पुत्र वीरेश्वर ने पण्डितराज जगन्नाथ, भट्टोजी तथा अन्नभट्ट को शास्त्रीय ज्ञान मे दीक्षा दी थी

शेषकृष्ण ने तत्कालीन काशिराज[3] गोवर्धनधारी के आश्रय मे अनेक ग्रथो का प्रणयन किया। गोवर्धनधारी का वर्णन करते हुए कवि ने कसवध मे लिखा है—

> अस्ति क्ष्मापालमौलिज्वलदमलमणिश्रेणिनि श्रेणिरोह-
> द्रोचिर्वीचिप्रपञ्चच्छुरितपदनखप्रेङ्खदुद्यन्मयूखं ।
> येनाकालेऽपि बालारुणकरनिकरो जागरोजृम्भमाण—
> ज्योत्स्नाजालर्जटाल स्फुटमजनि हरिच्चक्रवालान्तरालम् ॥ १ ११

गोवर्धनधारी की साहित्यिक अभिरुचि की चर्चा करते हुए शेषकृष्ण न कसवध मे कहा है—

> नानाकलाकुलगृह म विदग्धगोष्ठी—
> मेकोऽधिनिष्ठनि गुरुर्गिरिधारिनामा ॥१ १३

गिरिधारी की एक विद्वद्गोष्ठी थी, जिसके अयतम सदस्य शेषकृष्ण थे। कवि ने अपन यौवन के दिनो मे यशस्काम होकर यह ग्रथ लिखा था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से कल्पना होती है—

> त्वरयति नृपगोष्ठीसंस्तव-ख्यातिलिप्सा
> जडयति च विदग्धाराधना-साहसिक्यम् ॥१ १५

---

१ कसवध का प्रकाशन काव्यमाला ६ मे हुआ है।

२ रुक्मिणीहरण का उल्लेख कैटलागस कैटलोगोरम भाग १ मे ५२७ सख्या पर है।

३ गोवर्धनधारी १५८६ ई० मे टोडर की मृत्यु होने पर राजा हुआ। विलसन के अनुसार कसवध की रचना १७ वी शती के आरम्भ मे हुई। हिंदू थियेटर पृष्ठ १८७।

उस युग मे कवि नाटक लिखकर सूत्रधार को प्रयोग करने के लिए सौंप देते थे, जैसा सूत्रधार के नीचे लिखे वक्तव्य से प्रतीत होता है[1]—

पृथ्वीमण्डलमौलिमण्डनमणि श्रीमन्नृसिंहात्मज
कृत्वा कृष्णकवि कुतूहलवशादस्मासु यन्यक्षिपत् ।
नाट्य कसवधाभिधानमधुना तस्य प्रयोगोद्यम
विद्वद्राजसमाजमानममहानन्दाय विन्दामहे ॥१ १८

इस नाटक का प्रथम अभिनय प्रात काल के समय हुआ था ।

शेषकृष्ण कोरे कवि ही नही थे[2] । उनका परिचय इस नाटक म इस प्रकार है—

चतुर्दशसु विद्यासु परिकर्मितचेतस

वे मूलत वैयाकरण थे । उनका कहना था—

भूषणमेतन्न दूषण कवीना व्याकरणकोविदता ।

उन्होने मुरारिविजय, मुक्ताचरित, सत्यभामा-परिणय आदि रूपक, पारिजात हरण, उषापरिणय तथा सत्यभामा-विलास नामक चम्पू तथा क्रियागोपन रामायण की रचना की है । इनके कसवध की रचना १६ वी शती के प्राय अन्त मे हुई ।

शेषकृष्ण ने आलोचकों की असाधु कोटि का परिचय इस प्रकार दिया है—

अमृत किरति हिमाशुर्विषमेव फणी समुद्गिरति ।
गुणमेव वक्ति साधुर्दोषमसाधु प्रकाशयति ॥१ २५

इस नाटक का प्रावेशिक मगीतक नटी ने गाया है—

पणमह जलहरममग्र विज्जुज्जलसोम्मसामसुहमसिरिं
ज दट्ठूण दिमाण कदम्बमउलेहिं होन्ति पुलआइ ॥१ २७

कसवध का प्रथम प्रयोग विश्वनाथ (शिव) की अध्यक्षता मे प्रात उनके मन्दिर मे हुआ था, जैसा सूत्रधार ने बताया है जब नटी उससे पूछती है—

नटी—को उण एदाण सामाजिआण मज्झे णिग्गहाणुग्गहसमत्थो अज्झक्खो जस्स पुरदो णच्चामो ।

सूत्रधार—आर्ये, अयमेव तावदखिल-ब्रह्माण्डमण्डपमहानट सृष्टि-स्थितिप्रलयनाटिकासूत्रधार सूत्रात्मा विश्वसाक्षी, भगवानिन्दुशेखर ।

कसवध की कथा का आरम्भ कस को नीचे लिखी आकाशवाणी सुनने से होता है—

यस्ते मद दमयिता दनुजेन्द्रकालो
बाल स कोऽपि भगवान् क्वचिदप्रमेय ।

---

१ इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भूमिका लेखक सूत्रधार है, कवि नही ।

२ शेषकृष्ण उच्चकोटि के दैवज्ञ थे—यह कसवध के ४ ७ पद्य से सुप्रमाणित है ।

सवर्धते गिरिगभीरगुहाविहार—
तन्द्रान्नु केसरिकिशोर इवाविभाव्य ॥१ ३३

उसे पीडित देवताओं का स्मरण हो आता है कि वे विष्णु का पुन अवतार करायेंगे और साथ ही स्मरण हो आता है कि वसुदेव के विवाह के अवसर पर पहले भी आकाशवाणी हुई थी कि उसकी पत्नी देवकी के गर्भ मे उत्पन्न अष्टम सन्तान मेरा नाश करेगी।[1] उसन महामात्य से अभिनव आकाशवाणी की बात बताई। महामात्य ने कहा कि इतनी निपुण और बलिष्ठ सेना तथा मेरे रहते हुए भय का कारण कुछ हो ही नही सकता। फिर भी शत्रु की उपेक्षा क्या की जाय? शत्रु हैं देवता। उनको नष्ट करने का उपाय है—

यज्ञायत्त जीवित देवनाना यज्ञा सागा ब्राह्मणेष्वायत्ते।
ते चाप्येते धर्मकर्मकमूला मूले छिन्नेऽस्मिन्व वार्तामिराणाम् ॥१ ४६

कस न आज्ञा प्रचारित की—

हन्यन्ता द्विजदेवमेवनपरा सर्वेऽपि वर्णाश्रमा
ध्वस्यन्ता दमदानसत्यनियमस्वाध्याययज्ञादय।
पीड्यन्ता च तपोवनानि परितस्तीर्थानि पुण्याश्रमा
वध्यन्तामचिरात् सुरा हरिहरब्रह्मादय सानुगा ॥१ ४८

दूसरे अङ्क के आरम्भ म एकोक्ति द्वारा तालजङ्घ नामक कस का चर बताता हू कि मैं विष्णु के अवतार का समाचार प्राप्त करन के लिए नियुक्त हू। किंवदन्ती है कि—

यशोदया लाल्यमानो नन्दगोपस्य गोकुले
विडम्बयन् बाललीला वासुदेवोऽभिवर्धते ॥२ ३

वह एकोक्ति म ही बताता है कि वासुदेव ने शकट, धेनुक और पूतना को मार डाला है। उसे गोकुल के परिसर मे घूमते हुए गोपो के पुरोहित गर्ग से भेंट होती है। गर्ग न बताया कि किस प्रकार कृष्ण ने पूतना, शकटासुर आदि का ध्वस किया है और अपने मामा कस के धनुर्यज्ञोत्सव को देखने के लिए अक्रूर उन्हें निमत्रण देने आये हैं। गर्ग से अनुमति लेकर तालजघ वृन्दावन को देखने लगा, जहाँ केशी नामक राक्षस घोडे का मायात्मक वेश बनाकर उत्पात करने पहुँचा। उसका वर्णन है—

कोपाटोपानिवल्गद्विकटखुरपुट-प्रस्फुटद्भूमिपृष्ठा-
दुत्तिष्ठद्भिर्गरिष्ठैर्व्रजजननयनान्यन्धयन्धूलिजालै।

---

१ बाइबिल की एक कहानी के अनुसार फ्रासीसी भाषा मे १६९१ ई० मे जीन रेसीन न पाँच अको का एक नाटक एथलिए लिखा, जिसमे रानी एथालिया ने एक स्वप्न देखा कि मुझे अमुक बालक मार डालेगा। जोआश नाम के उस बालक को अपने मार्ग से दूर करने के लिए उसने प्रयत्न किया।

कुर्वन् ग्रामेष ह्लेपारवगतबधिरा वालधिप्रोद्धनान-
श्चूडावालान्तरालप्रणिहित-कपिलक्रूरतारस्तुरग ॥२१६

तालजघ सोचता था कि केशी कृष्ण को मारेगा। यथा,
कमस्य भृत्यनिवहैरिह यद्विपक्ष—
पक्षक्षय-क्षम त्याद्य विभावितोऽसि ॥

किन्तु वह कृष्ण के द्वारा मारा गया। तालजघ देखता है[1]—
वमति रुधिरधारा नासिकानालरन्ध्रा-
ल्लुठति धरणिपीठे क्षमा खुराग्रै क्षुणति
घुरति किमपि घोर केसराण्युद्धुनोते
नदगमपि विलम्ब न क्षमन्तेऽस्वबोऽस्य ॥२२४

तीसरे अङ्क मे रथ पर सूत के साथ अक्रूर आता है। वह सूत से कस की दुर्नीति की चर्चा करता है कि वह हम सबको लडा कर मार डालना चाहता है। गोकुल आने पर उसे कृष्ण की मुरली का सगीत सुनाई पडता है। अक्रूर भावविभोर हो जाता है।

चतुर्थ अङ्क मे कृष्ण और बलराम कस के पास जाने के लिए प्रातःकाल मे यशोदा और नन्द की पादप्रणतिपूर्वक अनुमति प्राप्त करने के लिए आते हैं। वे रोते हुए माता पिता से प्रतिज्ञा करते हैं कि कस की आज्ञा पूरी करके हम शीघ्र आप का दर्शन करेंगे। वे प्रस्थान करते हैं। नन्द उनके जाने पर मूर्छित हो जाते हैं। उनके वियोग मे घोषप्रदेश की स्थिति है—
नार्यो रुदन्ति न स्वन्ति पतगसघा
गावस्तृणानि न चरन्ति न वान्ति वाता ।
भृङ्गा पिबन्ति न मधूनि हरौ प्रयाते
निर्जीविता इव दिश प्रतिभान्ति शून्या ॥४२०

यात्रापथ मे यमुना का वर्णन है—
पश्यन्नेना चपलशफरी-लोचना पद्मजास्या
कोकद्वन्द्वस्तनभरनता वालशैवालकेशीम् ।
भृङ्गश्रेणीमधुरवचना राजहसप्रचारा
व्यासक्तोऽपि क्षणमिह पुन प्रेयसी स्मारितोऽस्मि ॥४३०

दोपहर हो गया। कृष्ण सुदामा के साथ विश्रम्भालाप के द्वारा मनोरजन कर रहे हैं। दूती वहाँ आकर राधा की बात कहती है—
अनन्यशरणामेना त्वदेकायत्तजीविताम् ।
विरहार्तिविलवद्बाधा राधा नयमुपेक्षसे ॥४३६

1 यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपक के प्रयोजन सिद्ध करती है। अर्थोपक्षेपक की भाँति एकोक्ति द्वारा घटनाओं की सूचना देने की रीति पहले से ही रही है।

वियोगिनी राधा मरणासन्न है। कृष्ण को राधा के प्रणयासंग की तीव्रतम स्मृति हो आती है। सुदामा के सुझाव से वहीं निकटवर्ती वृन्दावन में रासमहोत्सव का आयोजन रात में होता है। सभी वृन्दावन पहुँचते हैं। अक्रूर उनके आने का समाचार पहले से ही सूचित करने के लिए मथुरा चले जाते हैं।

पंचम अंक में सूचना मिलती है कि नन्द गोप अपने मित्रों के साथ बड़ा सम्भार गोरस, गोप, गोपी आदि लेकर वृन्दावन और मथुरा के बीच में शिविर में पड़े हुए हैं। वे स्वयं राजकर देने के लिए नगर में पहुँच चुके हैं। वे उद्यत हैं कि यदि सामादि उपायों से कंस नहीं मानता तो हमें उससे युद्ध करना है। नन्द गोप ने दूत द्वारा बलराम और कृष्ण को सन्देश भेजा था कि आप राजधानी मथुरा में प्रवेश न करें। सन्देश मिलने के पहले ही वे दोनों यमुना-तट का मार्ग पकड़कर मथुरा की ओर मित्रों के साथ चले गये थे।

मार्ग में उन्हें कंस का धोबी मिला, जिसे बलराम के भृत्य के द्वारा अपने स्वामी के लिए वस्त्र माँगने पर क्रोध हो आया था। उसने बताया कि मेरे स्वामी कंस ने किस प्रकार कृष्ण के सम्बन्धियों को विनष्ट-प्राय कर दिया है और अब उन्होंने बलराम और कृष्ण को क्षेत्रपाल बलि के लिए बुलाया है। कृष्ण ने उस धोबी से कहा कि हम लोग मामा के घर जा रहे हैं। धोबी ने टका सा उत्तर दिया—

ईदृश्येव वनेचरा निवसते वासांसि वा पूर्वजा—
स्त्वद्योग्यानि तु दुर्लभान्यविकुलेष्वन्विष्यमाणान्यपि।
येन प्राघुर्णिकीकृतौ नरपति सोऽद्यैव वा दास्यति
त्यक्त्वा बालिशता नितीय निभृत किंचित्क्षण जीवतम॥ ५२०

धोबी कृष्ण के आदेश से मार डाला गया। किसी पुरुष ने आकर उनके लिए विश्वकर्मा का बनाया हुआ सुयोग्य वस्त्र दिया, जिसे उन्होंने पहन लिया। पश्चात् प्रसाधन सामग्री की आवश्यकता पड़ी। उस समय कंस का अनुचर सुदामा नामक मालाकार वहाँ आया। वह सुविदित कृष्ण-भक्त था। उसकी प्रार्थना सुनकर उसके घर बलराम और कृष्ण जा पहुँचे। उसने राजोचित प्रसाधन सामग्री देते हुए रहस्योद्घाटन किया—

भूमेर्भारावताराय चरन्तौ बाललीलया।
अनादिनिधनौ पूर्णौ मूर्तिभेदमुपाश्रितौ॥ ५२७

उनके समक्ष एक कुबड़ी, किन्तु अन्यथा सुन्दरी रमणी आई। वह कुब्जा कंस की सैर्न्ध्री उसके लिए दिव्याङ्ग रागादि ले जा रही थी जिसे उसने बलराम और कृष्ण को अर्पित कर दिया और उन दोनों का अपने हाथों से अङ्गरागानुलेपन किया। तत्काल कृष्णानुग्रह से उसका कूबड़ अदृश्य हो गया। कृष्ण ने जैसे-तैसे प्रेमाचारपूर्वक उससे छुट्टी ली।

राजभवन के निकट नगर-सेठो ने बहुमूल्य उपायनो से उन बलराम और कृष्ण का स्वागत किया। रथ्या की रमणीयता का दर्शन करते हुए उन दोनो ने राजकुल में प्रवेश किया।

छठें अक के पहले प्रवेशक मे कस का विज्ञापन सुनाया जाता है कि सभी सामन्त जान लें कि अब तक अपना सम्बन्धी और बालक समझकर कृष्ण को उपेक्षा के कारण छोड दिया गया, यद्यपि वह असुर-कुल घातक बन रहा है। वह मथुरापुरी को ही ध्वस्त कर रहा है। तभी सूचना मिलती है कि कुवलयापीड मारा जा रहा है।

छठें अक मे कृष्ण और बलराम के रगवाट देखने के मार्ग मे चाणूर और मुष्टिक आते हैं। वे लडने के लिए उतावले थे। कृष्ण ने कहा—

वालौ च वालिशौ चावा न विद्यो युद्धकौशलम्।
किन्तु भवच्चेष्टानुकरणं करिष्याम कियच्चिरम् ॥ ६ २०

द्वन्द्व युद्ध हुआ। वे दोनो युद्ध मे मारे गये। इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण रङ्गशाला मे जा पहुँचे। वहाँ कस सप्तभूमि प्रासाद मे बलराम को दिखा। दोनो भाई सीढी से चढकर मामा कस से मिलने जा रहे थे। कस उन्हे दूर से देखकर चिल्लाने लगा—

निस्सार्यतामिमौ पापौ कुलागारौ मदोद्धतौ
मच्चक्षु सन्निपाताग्नौ यावन्न शलभायितौ ॥ ६ ३२

सभ्यो ने उन्हे देखा—

राका सुधाकरसुधाकरचारुवक्त्र—
मिन्दीवरोदरसहोदरमेदुराङ्गम्।
कृष्ण बल च घनसारपरागगौर
दृष्ट्वा सुधाम्बुधिनिमज्जनमेति चेत ॥ ६ ३४

उनका मत था कि कस कूट युद्ध द्वारा इन बालको को मारने का जो उपक्रम कर रहा है, उसके दर्शक होने के नाते सभी सभ्य भी पाप के भागी हैं। इधर कस ने आज्ञा दी—

वध्यन्ता व्रजवासिन सतनया नन्दादय सत्वर
हन्तव्य प्रतिपक्षतामनुसरन् किं चोग्रसेन पिता।
बन्धव्यौ निगडैर्दृढैश्च भगिनीभामौ निकारोचितौ
निग्राह्यौ निनरा चिराय विविधैर्दण्डाभिघातोद्यमै ॥ ६ ३६

कस स्वय उनसे भिडने के लिए उठ पडा। कृष्ण मामा को मारना नही चाहते थे। पर बलराम ने आदेश दिया—

विश्वद्रुह किल खलानखिलान्निहन्तु
विश्वाश्रयस्य भवतो भवतोऽवतार ॥ ६ ४२

तब तो कृष्ण ने उसे भूतल पर पटक कर मार डाला।

कृष्ण ने कंस को मार कर अपने माता-पिता को कारागार से मुक्त किया। कृष्ण ने अपनी माता देवकी को बताया कि मैंने आपके भाई कंस को मार डाला है। उन्होंने उन दोनों से अनुमति ली कि मातामह उग्रसेन को राजा बना दिया जाय। उनकी अनुमति लेकर कृष्ण ने उग्रसेन को राजा अभिषिक्त किया। अन्त में रंगमंच पर उग्रसेन और बलराम-कृष्ण आते हैं। वसुदेव देवकी भी वहीं आ जाते हैं।

समीक्षा

प्रथम अंक में सूच्यांशों का बाहुल्य है। आरम्भ में ही कंस वह पूरी कथा कह डालता है कि कैसे आकाशवाणी के द्वारा उत्पन्न भय के कारण उसने वसुदेव को कारागार में डाल रखा है। योगमाया ने कंस से वही पहले की आकाशवाणी दुहराई और नारद ने उससे बताया है कि वसुधाभार को दूर करने के लिए विष्णु मानवरूप धारण करके गोकुल में विहार कर रहे हैं।

द्वितीय अंक में गर्ग और तालजंघ के संलाप में गर्ग कृष्ण के पराक्रमों की सूचना दे रहे हैं। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार अङ्क में नायक होना ही चाहिए था। यहाँ इस नियम का पालन नहीं किया गया है।

कवि ने कथावस्तु में सदुपदेशों को कुशलता-पूर्वक पिरोया है। यथा,

> असारे संसारे विषविषमपाके नृपसुखे
> कृतान्तेनाक्रान्ते प्रकृतिचपले जीवितबले।
> ध्रुवापाये काये विषयमृगतृष्णा हतहृद
> परप्राणे प्राणानहह परिपुष्णन्ति कुधियः ॥ ३१

इसमें ब्रह्मसार का परिचय है—

> कुवलयदलदामश्यामकान्तिः कलावा-
> न्नयनचुलुकनीयः कोऽपि पीयूषराशिः।
> व्रजपरिसरधूलीकेलिलोलः किशोरा-
> कृतिकृतिपरिचेयो द्रक्ष्यते ब्रह्मसारः ॥ ३७

कहीं-कहीं ग्रामवर्णन से नाटक में प्राकृतिक वातावरण समुपस्थित है। यथा,

> अधितरणितनूजा तीरखानीरपाला—
> परिसरमतिकान्ती भाति तालीवनाली।
> विलसति तददूरेऽतुच्छनापिच्छगुच्छा-
> वलिवलयितवल्लीवेल्लिता नन्दपल्ली ॥ ३ १४

ऐसा ही है गायों का हुंकार-वर्णन—

> स्नेहप्रस्नुतपीवरस्तनभरप्राग्भारभूरिक्षरत्
> क्षीरक्षालनपिच्छिलं प्रतिपदं मार्गं निपिद्धत्वरा।

हर्षोत्पुच्छयमाननर्णकरवोत्कर्णा प्रजायोत्सुका
गोसधा प्रनिहुङ्कृतैरिह मुहु श्रोत्रोत्सव कुर्वते ॥ ३ २०

यहाँ प्रकृति मानव का अनुभूत है—

विहगविहृतवेगव्यग्रशाखाकराग्रै-
स्त्वरयति परिरभ्यु नन्दघोष निमस्मान् ॥ ३ १५

वृद्धावस्था न वाल्य की छटा ला दी है—यह दर्शन कवि के शब्दों मे है—

गलति वदने लाला वाच स्खलन्त्यपरिस्फुटा
स्रवति सतत चक्षुर्नासि न सचरत पदे।
मुखमदशन दृष्टि शून्या वृथा च विचेष्टित
शिव शिव जरा वात्य भूय प्रसौति नव नवम् ॥ ४ ५

उपर्युक्त वर्णन एकोक्ति द्वारा कचुकी के मुख से प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम मे वह पहले ही प्रभात का दो पद्यों में वर्णन कर चुका है। नेपथ्य को वर्णनो का चाव था। रमणीयतम वस्तुओं के चमत्कारिक वर्णन से उन्होंने अपने नाटक को समृद्ध किया है।

नाटक की चारुता के लिए कवि केवल कथावस्तु को ही सर्वस्व नहीं मानता। कथासधि मे वह प्रेक्षकों को जीवन के सत्यों के प्रति जागरूक बना देने मे तत्पर है। इसके लिए वह कथासूत्र से ईषत् अनाबद्ध होकर पात्रों से अपनी मानसी वृत्ति का परिचय कराता चलता है। रत्नापीड नामक अन्त पुर-प्रतिहार दैवज्ञ मे अपने काम की चर्चा पीछे करता है। पहले वह बता देता है कि परसेवा दारुण है। यथा,

श्रान्तोऽपि हन्त रजनीगुरुजागरेण
कार्यानिपातचकितो न शये क्षणार्धम्।
भ्रूभग-वीक्षणविर्तास्ति-चित्तवृत्ति-
र्नित्यानुवृत्तिनिरत प्रभुवृत्तिमीक्षे ॥ ४ ८

अयत्र भी

क्षमा सत्य दया धर्म घृणा लोकभय दमम्।
विस्मृत्य केवल राजन् जन पर्युपासते ॥ ४ १०

चतुर्थ अक म नायक कृष्ण एक बार निष्क्रान्त होता है और कुछ समय के पश्चात् माता पिता के निष्क्रान्त हो जाने पर पुन रगमच पर प्रवेश करता है—यह शास्त्रीय दृष्टि मे त्रुटि है। नायक को अक के बीच म निष्क्रान्त नहीं होना चाहिए।

प्रात स साय तक बलराम और कृष्ण की यात्रा रगमच पर दिखाना अभारतीय है।[1] ऐसा ही अभारतीय है अक्रूर का गोकुल की ओर यात्रा का लम्बा दृश्य। इसी

१ दूराध्वयान , पुरोध राज्यदेशादिविप्लव।
रत मृत्यु समीकादि वर्ज्यं विष्कम्भकादिभि ॥ ना० द० १ २२

रामचन्द्र के अनुसार अधिक से अधिक ४ मुहूर्त या तीन घटे तक की यात्रा अक म दिखाई जा सकती है।

अंक में रहस्यविश्रम्भालाप द्वारा दुपहरी बिताना या स्वजनकथालापलीला करना अंकोचित सामग्री नहीं है।

शेषकृष्ण कहीं कहीं भूल जाते हैं कि नाटक की भाषा नाट्योचित होनी चाहिये। वे चतुर्थ अंक में सुदामा के मुँह से वृन्दावन का गौडी रीति में १४ पंक्तियों के एक वाक्य में वर्णन करते हैं और फिर दूसरी सांस में रास-महोत्सव का लम्बा वर्णन द्वारा सुझाव देते हैं।

नाटक की दृष्टि से यह भी अनुचित लगता है कि कृष्ण रंगमंच पर अनुपस्थित अक्रूर को कुछ समाचार सुदामा से भेजें और दूसरे ही क्षण अक्रूर वहाँ आकर कृष्ण से बात करें।

उस युग में नाटक में अनपेक्षित प्रासंगिक इतिवृत्त भी जोड़ने का प्रचलन विशेष था। ऐसे इतिवृत्तों से मनोरञ्जन की विशेष सम्भावना होती थी। इस नाटक में धोबी, मालाकार और सैरन्ध्री कुब्जा के प्रसंग कुछ ऐसे ही हैं। भावी कथा की सूचना कवि कराते चलता है। पंचम अंक में कृष्ण बताते हैं—

हत्वा कंसं निहत्याखिलदिनिजकुलं तद्भटानुद्भटांश्च
प्रोन्मथ्याथोग्रसेनं निगडनियमितं नरपदे चाभिषिच्य।
कारागारे निबद्धौ चिरतरमचिरान्मोचयित्वा स्वतातौ
प्रत्यावृत्तः कृतार्थः किल नव भवनग्यानिथित्व विधास्ये॥५.३८

शेषकृष्ण की प्राकृत भाषा की गीतात्मकता में निगूढ आस्था थी।[1] वे कृष्ण से प्राकृत गान कराते हैं, जो किरतनिया नाटक का पूर्वरूप है। यथा,

सो वि कखणो हुविस्सदि जस्सिं तादस्स पाअकमलम्मि।
भम्मतभमरविब्भमपडिलम्भो भोदि मह मत्थस्स॥

प्रवेशक के द्वारा केवल वृत्त और वर्तिष्यमाण की ही नहीं, अपितु वर्तमान घटना की भी सूचना कवि देता है। यह अभारतीय है। अंक के पहले वेत्रहस्त और काष्ठपालक द्वारा प्रस्तुत प्रवेशक में उनकी आँखों देखा कुवलयापीड के साथ युद्ध का आख्यान है। यथा—

हन्तुं दन्तैरभीष्टं प्रविशति पदयोः शुण्डयाकृष्यमाणः
पश्चार्धान्निष्प्रपद्य भ्रमयति वलयन् पुच्छमेनं कराभ्याम्।
उत्प्लुत्यारात् कुम्भं दलयति सृणिना वंचयित्वास्य दृष्टिं
मुष्टिभ्यां सम्पिनष्टि द्रुतमभिचलतोऽस्थीनि सव्यापसव्यम्॥६.१०

इस प्रवेशक को कवि ने लघु दृश्य की भाँति अङ्कोचित सामग्री से निर्भर किया है।

---

१ अन्यत्र ऐसे अधम पात्रों से भी वे संस्कृत में संवाद प्रस्तुत कराते हैं, जिन्हें प्राकृत बोलना चाहिये। पंचम अंक के पश्चात् के प्रवेशक में वेत्रहस्त और कोष्टपाल संस्कृत में बोलते हैं, यद्यपि उन्हें प्राकृत में बोलना चाहिये।

कवि का संकेत है कि एक बडी शक्ति युवकों, बालकों और गाँव के लोगों में भी होती है। भले ही उनके पास तोप न हो, किन्तु राजकीय दुराचार और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए उनकी लाठी पर्याप्त हो सकती है। यथा,

वृद्धस्तात समजवसतिर्गोपबाला सहाया
यष्टिः शस्त्रं शयनमवनिः पाशुपाल्यं च वृत्तिः ।
सत्येनस्मिंस्त्रिभुवनमिलद्वीरवशावतंसे
कस्ते राजन्ययमविनयश्चेत्तयोर्हा प्रमादः ॥६८

इन्हीं गाय चराने वालों के विद्रोह ने कंस का ध्वंस कर डाला।

रंगमंच पर कृष्ण और बलराम का चाणूर और मुष्टिक से छठें अंक में युद्ध, करा देना यद्यपि अभारतीय है, किन्तु प्रेक्षकों को ऐसे युद्धों का साक्षात् दर्शन अभिप्रेत होने से इस युग में शास्त्रीय नियम की उपेक्षा सी की गई।

कवि ने जाने-अनजाने हनुमन्नाटक की सरणि पर निवेदक का कार्य भी नाटक में रखा है। नीचे का पद्य कहने वाला निवेदक को छोडकर और कोई हो ही नहीं सकता—

असेनासं मुष्टिना मुष्टिमूरू ऊरुभ्यां वक्षसा चापि वक्षः ।
शीर्षं शीर्ष्णा चाथ पादौ पदाभ्यां दोर्भ्यां दोषौ जघ्नतुस्तौ यथेष्टम् ॥

कभी कभी दो पात्र रंगमंच पर साथ ही एक बात कहते हैं या श्लोक पाठ करते हैं। बलराम और कृष्ण तथा वसुदेव और देवकी के ऐसे युग्म प्रायश आये हैं।[1]

कंसवध छठें अंक तक नाट्यशिल्प की दृष्टि से समाप्त हो जाना चाहिए। सातवें अंक में इतिवृत्त-रहित कोरा संवाद मात्र है।

केशी असुर का अश्व बनकर आना इस नाटक में छायातत्त्व का समावेश प्रकट करता है। अनेक पात्र अपने मन्तव्य और मनोवृत्ति को अन्यथा प्रकट करते हुए छायातत्त्व परायण हैं।

मनोरम सूक्तिराशि प्रभावशालिनी और औदात्योचित है। यथा,

१ प्रायः परोपकृतये कृतिनोऽनपेक्ष्य
स्वार्थं विपत्कवलिता अपि संघटन्ते ॥ ३ १०

२ न खलु रसिकानामाकृतिष्वादरः, अपितु गुणेषु।

३ अनतिलङ्घनीयः खलु खलानां दुर्वृत्तदुर्विपाको न चिरादेव परिपच्यते।

४ किं सम्प्रति प्रनिविधेयमिह प्रतीपे
दैवे प्रयुक्तमखिलं सिकता प्रयाति ॥ १ ३६

५ जनपरगसिन प्रकोपहेतुर्भवति हि वृहिनशङ्कया मृगारेः ॥ १ ३८

[1] सप्तम अंक में विशेषतः ये युग्म मिलते हैं।

शेषकृष्ण की सगीतमयी शैली सानुप्रासिक ध्वनियो के अनुरजन से रमणीय प्रतीत होती है। यथा,

चम्पे चन्दनि चन्द्रिके चमरिके चन्द्रावलि श्यामले
गगे गोमति, गौरि गीतरसिके गायत्रि गोदावरि।
धीरे धीवरि घूसरे धवलिके कालाक्षि कालीति च
व्याहाग परितो हरति हृदय हम्वारवाश्राविणः ॥ ३ २२

कवि के क्रिया-सम्बन्धी व्याकरणिक औचित्य की छटा है—

त्व क्षीराम्बुनिधि ममन्थिथ जगत्त्रातु जगन्नाथासुरा-
न्द्रष्ट्राग्रेण समुज्जहर्थ धरणि मुष्वप्थ शेषे सदा।
दूरे तस्थिथ किं च वाड्मनमयो किं त्वेप न प्राक्तनै
पुण्यैरद्य पचेलिमै किल बलात् पुभावमालम्बसे ॥ ३.३१

यमकालकृत काव्यच्छटा का उदाहरण है—

न वारणो यस्य निवारणाय न वारणो दोर्मदवारणाय।
अल बभूवास्य निरोधनाय कथ भवेमाद्य विरोधनाय ॥ ६ ३८

कृष्णकवि की रससाधना अभावग्रस्त प्रतीत होती है। कृष्ण के द्वारा मारे हुए कस को पैर से रौदवाना यह रौद्ररसोचित है, जिसकी कल्पना कृष्ण जैसे उत्तम प्रकृति के नायक के लिए असारतीय है।[1]

१ व्यसुमपि गुरवगाद् हन्त मृद्नाति पद्भ्याम्। ६ ४८

अध्याय ६

राजचूडामणि के रूपक

सोलहवीं शती में विख्यात श्रीनिवास दीक्षित रत्नखेट की द्वितीय पत्नी कामाक्षी से यज्ञनारायण दीक्षित का जन्म हुआ। यज्ञनारायण के अग्रगण्य प्रतिभाविलास से प्रभावित होकर इनको राजचूडामणि की उपाधि दी गई। कमलिनी-कलहंस के प्रणेता राजचूडामणि ने समकालीन आचार्य वेंकटेश मखी और अपने बड़े भाई अर्धनारीश्वर की गुरुगरिमा से मण्डित होकर सोलहवीं शती के अन्तिम चरण में काव्य रचना आरम्भ की थी।

राजचूडामणि ने कम से कम २७ ग्रन्थ लिखे, जिनकी नामावली उन्होंने काव्य-दर्पण में दी है। इनमें से कमलिनी-कलहंसनाटिका, आनन्दराघवनाटक, युद्धकाण्डचम्पू, रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य, शङ्कराभ्युदय, राघवकृष्णपाण्डवीय, रत्नखेट-विजय, भारत-चम्पू, कंसध्वंस शंकराचार्यतारावली, कान्तिमती-परिणय, रघुनाथ-भूप विजय, राम-कथा आदि काव्य-रस निर्भर हैं। उनकी उपनिषदों की टीका मौलिक दार्शनिक व्याख्या है। कवि की अन्य रचनायें शास्त्रीय हैं। राजचूडामणि का शृङ्गारसर्वस्व भाण नहीं मिला है।

इन रचनाओं से राजचूडामणि का असाधारण कृतित्व तथा बहुक्षेत्रीयशक्ति प्रमाणित होती है। कमलिनी-कलहंस की प्रस्तावना के अनुसार वे षड्-भाषा विदग्ध थे।

कमलिनी-कलहंस

कमलिनी-कलहंस नाटिका[1] के सभी नेता प्रकृतिपरक हैं, किन्तु उनकी वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ मानवोचित हैं। इसका प्रथम अभिनय चोल के शासक महाराज रघुनाथ के शासन-काल में हुआ था। नाटिका की भूमिका में सूत्रधार ने लिखा है कि पुराने नाटक तो देखे ही जा चुके हैं। अब तो कोई नया रूपक ही अभिनेय है। इससे प्रतीत होता है कि नये रूपकों के प्रति लोगों की अभिरुचि थी।

राजचूडामणि ने इस नाटिका की रचना सूत्रधार के अभीलेखानुसार छः वर्ष की अवस्था में की—

'ते हि गर्भसप्तम एव हायने विरचय्य मबहुमानमस्माकं हस्ते दत्ता।

क्या छः या सात वर्ष का बालक इतनी काम-शास्त्रोचित शृंगार की बात कहेगा? उपर्युक्त प्रस्तावनांश से सूत्रधार का प्रस्तावना लिखना और साथ ही कवि के द्वारा अपनी कृति को अभिनय के लिए नाट्यमंडली को अर्पित करना स्पष्ट है। ऐसे बहुत से रूपकों का सम्भार सूत्रधार के पास संगृहीत रहता था, जिनमें से वह समय-समय पर चुनकर अभिनय के लिए रखता था। सूत्रधार ने लेखक की वाणी की प्रशंसा करते हुए कहा है—

१ इसका प्रकाशन श्रीवाणीविलास प्रेस श्रीरंग में १९१७ में हुआ है।

वाणी तस्य दरीधरीति च मुधा-लज्जाकरी माधुरीम् ॥

नाटिका का प्रणयन यद्यपि १६ वी शती मे हुआ, पर इसका उपर्युक्त प्रयोग रघुनाथ नायक की अध्यक्षता मे १६१४ ई० के पश्चात् हुआ। राजचूडामणि १६वी के अन्तिम भाग से १७वी शती के पूर्वार्ध तक लिखते रहे।

कथावस्तु

नायक कलहस के मामा कमलाकर को परास्त करके उसकी कन्या कमलिनी और धात्रेयी को ककोट उठा ले गया। नायक ने ककोट को दण्ड देने के लिए अपने अन्तपाल को नियुक्त किया।

कलहस का कमलजा से नया प्रेम खिलने लगा। कमलजा देशान्तर से कारण्डव द्वारा लाये हुए पुण्डरीक-मुकुल से निकली थी। एक दूसरे मुकुल से उसकी सखी मृणालिका निकली थी। पुण्डरीक-युगल को कारण्डविका ने देवी सारसिका को दिया था। सारसिका ने कमलजा को भरतनाट्य सीखने के लिए लगा दिया।

कारण्डव विदेश से किसी मनोरमा कुमारी का चित्र लाया था। विदूषक चित्र को नायक को दिखाने के लिए ले गया

कलहस ने एक रात सपना देखा—एक अतीव सुन्दरी है, जिसे मैं अपनी शय्या पर ले गया। वह तब—

आश्रितापि शयन कथचन व्रीडया विवलिताननाजनि
सम्मुख-स्थितिमपीक्षिता मया साहस परममन्यताबला ॥

उसने उसी स्वप्नभोगातुरजिना को दूसरे दिन सगीतशाला मे देखा—

अभून् निनूनोल्लासो हासोऽधरे परभागना—
मपि च कुचयो श्वासो वासो व्यथत्त परिश्लथम्।
अजनि च दृशोऽनुङ्गा शृ गारभगिरभगुरा
क्रिमपरमभूच्चि लीवल्ली तरगितविभ्रमा ॥

अर्थात् वह नायिका मेरे प्रति आसक्त थी। उसने नायक को प्रणाम किया। तब तो नायक को सारा जगत् नायिकामय प्रतीत होने लगा। विदूषक ने कारण्डव के दिये चित्र को नायक को दिया। राजा ने पहचान लिया कि यह वही है। वह चित्रगत नायिका को सशरीर मान कर कहने लगा—

अयि सुन्दरि मामनगवाणप्रसभापानचिरप्रवृद्धतापम्।
अवलोक-सुधारसाभिषेकै सकृदानन्दय सन्दिनोऽञ्जलिस्ते ॥

यह कह कर उसके पैर पर गिरने लगा। तब तो विदूषक को बताना पडा कि यह तो चित्रमात्र है। नायक को विदूषक से ज्ञात हुआ कि अच्छोद सर मे किसी पुण्डरीक मे अपनी सखी के साथ यह रहती है। सन्ध्या के समय पुण्डरीक मे बन्द

उनको कारण्डव ने आपकी महारानी को दिया। राजा नायक ने अपने प्रणय को श्लोक में सम्पुटित करके विदूषक को दिया, साथ ही नायिका का चित्र दिया।

बकोट की दुष्प्रवृत्तियो का समाचार महारानी को मिला था कि वह हमारे मौसा और राजा के मामा कमलाकर को ध्वस्त कर रहा है। राजा ने इस सम्बन्ध में एक पत्र अपने साले सारस को भेजा था। सारस ने शीघ्र बकोट को मार कर कमलाकर को पुन प्रतिष्ठापित किया। बकोट ने कमलाकर की कन्या कमलिनी को वहीं छिपा दिया है। उसको प्रणयियो से ढुढवाया जा रहा है। राजा को विश्वास हो गया कि कमलिनी ही मेरे घर आई हुई कमलजा है।

द्वितीय अङ्क मे विदूषक ने कमलजा का मदनलेख राजा को दिया। राजा पत्र के स्पर्श से विवश हो गया। वह पत्र न पढ सका और विदूषक को पढना पडा—

सदृशी तवेति गर्वस्त्वयि मन इत्यसाक्षिक वचनम्।
किमिह बहुनेत्युपेक्षा त्वमेव जानासि करणीयम्॥ २७

पत्र से राजा की उससे मिलने की उत्कण्ठा बढी। वह विदूषक के साथ नायिका से मिलने के लिए मन्मथोद्यान मे जा पहुँचा, जहाँ प्रतिदिन नायिका नाट्यशिक्षाभ्यासजनित श्रम को दूर करने के लिए मृणालिका के साथ अकेले अपराह्ण बिताती थी। उसे सारी प्रकृति दाम्पत्य-प्रणय मे लवलीन प्रतीत हुई। यथा,

उद्दामस्तबकस्तनामलिरवव्याजेन सलापिनी
निश्च्योतन्मकरन्दबिन्दुनिवहस्वेदाम्बुसिक्ताङ्गकाम्।
रज्यत्कोमलपल्लवाधरदलामालिङ्ग्य वल्लीवधू—
माधत्ते मुकुलच्छलेन पुलक माकन्दनाम्नो युवा॥ २१७

राजा विक्रमोर्वशीय के नायक की भाँति उन्मत्त होकर प्रलाप करने लगा। नायिका की कोरी कल्पना करते हुए वह कहता है—

आपादचूडमसितागुरुपल्लवेन
हन्तावकुण्ठ्य परिशोषयितु मनो मे।
गौरम्यसम्पदनुमेयलनु पुरस्तात्—
सजीवनौषधिरिय मम सनिधत्ते॥ २१८

विदूषक ने पूछा कि यहाँ कहाँ तुम्हारी प्रियतमा है?

उधर नायिका की भी कुछ ऐसी ही दशा थी। राजा ने उसे दूर से देखा। उसे देखते ही लगा—

सानिध्य समुर्वति सम्प्रति दृगोरस्मात्मचोरम।

नायिका मृणालिका के साथ लतागृह में आ बैठी। मृणालिका ने उसके मदनताप को न्यून करने के लिए राजा का चित्र दिखाया। नायिका ने देखा कि चित्र में

राजा मेरे चरण में प्रणिपात कर रहा है। फिर तो नायिका का और लतान्तरित राजा का भावविनिमय हुआ—

कमलजा—(चित्रफलके निजचरणपतित राजानमालोक्य) महाभाग्र, उच्चिट्ट, उच्चिट्ट। अगुइद एद।

राजा—अयि मुग्धे किमनानौचित्यम्। इदमेव हि जन्मसाफल्यम्।

विदूषक—वअस्स, एसा चित्तगअ भवन्त सच्चं मण्णइ।

कमलजा—हला, ण सुणोदि एसो मह वअणम्। ता तुम एव्व णं उट्ठावेहि।

मृणालिका—सहि चित्तफलअ क्खु एद।

कमलजा—(स्वगतम्) हन्त मुद्धम्हि (पुनर्निरूप्य प्रकाशम्) अह अ एत्थ अक्खराइं।

इति चित्राक्षराणि वाचयति

अयि सदिशानि न किमपि नोऽह्न त्वयि वर्तते हि मे चेत।

पृच्छतु तदेव भवती वाचा मे त्वत्कृते स्मरेण कृताम्॥ २२६

नायिका ने मृणालिका से कह दिया कि यह सब कपट-नाटक तुम कर रही हो और मुझे लज्जित कर रही हो। यह सुनकर नायक प्रत्यक्ष हुआ और, बोला कि यह कपट-नाटक नहीं, सत्य है।

पश्चात् क्षणिक योग के पश्चात् वियोग का समय आया। रानी ने नायिका को सीता और राम के विवाह का नाटकाभिनय करने के लिए बुला लिया। चित्र को लेकर मृणालिका चलती बनी।

राजा के वियोग सन्ताप को दूर करने के लिए विदूषक ने कारण्डव से एक मायामय कमलजा बनवाई, जिसे देखकर विदूषक ने कहा—

यतस्त्ववेदिनोऽपि मम साक्षात् कमलजावुद्धिर्न चलति।

इसे देखकर मृणालिका ने वास्तविक कमलजा समझ कर पूछा कि क्या तुम आचार्य के पास गई थी? विदूषक ने उसे बताया कि यह मायामय है और इसके सहारे तुम्हारी सहायता से हम लोगों को तबतक राजा का विनोद करना है। राजा को भरमाकर भ्रान्तिवशात् उसका आलिंगन करने तक के लिए उद्युक्त किया। फिर वह मूर्ति राजा के विलास-भवन में पहुँचा दी गई।

सीतारामपरिणयात्मक नाटक में मृणालिका को राम और कमलजा को सीता बनाना था। इसकी सज्जा हो ही रही थी कि मधुकरिका नामक रानी की सखी को वह चित्र-फलक मिला, जिसमें राजा कमलजा का पादप्रणयी हो रहा था। राजा को कहना पड़ा कि तुम्हारी का चित्र कारण्डव ने बनाया है और विदूषक जी ने परिहास के लिए मेरी ऐसी स्थिति चित्र में कर दी है। रानी मानी नहीं तो राजा उसके पैर भी पड़ने लगा। रानी के जाने के पश्चात् मृणालिका ने राजा को वह

योजना कान मे बताई कि किस प्रकार नाट्याभिनय करती हुई कमलजा से उसी रंग-पीठ पर आपका साहचर्य हो। तदनुसार मृणालिका के स्थान पर राजा राम की भूमिका मे रंगपीठ पर उतरने के लिए भूमिकापरिग्रह प्रदेश-मार्ग पर चल पड़े।

सीताकल्याणनाटक मे रानी की इच्छानुसार मृणालिका को राम बनना था। उसने धूर्तता से कलहंस को राम की भूमिका मे रंगपीठ पर प्रस्तुत करा दिया। कलहंस को जानकी बनी हुई कमलजा का पाणिस्पर्श करते समय ज्ञात विकारो से रानी ने पहचान लिया। फिर तो कमलजा बन्दी बनाई गई।

रानी ने राजा को छकाने के लिए एक और योजना बनाई, जिसके अनुसार राजा का कमलजा से कापटिक विवाह होने वाला था, पर वस्तुत भ्रमरक को कमलजा बनाकर उससे राजा का विवाह कर देना था। विदूषक ने इस छल का प्रतिविधान कर दिया। उसने भ्रमरक को देवी का पत्र लेकर कमलालया के पास भेज दिया और उसके स्थान पर कमलजा को रंगपीठ पर ला दिया। इसके लिए बन्दिनी कमलजा के स्थान पर राजा के विलास-भवन से माया कमलजा को लाकर प्रतिष्ठापित कर दिया गया। अब रंगपीठ पर विवाहोत्सुक कलहंस और भ्रमरकवेषधारिणी कमलजा है। रानी इनका विवाह करा रही है। रानी समझती थी कि भ्रमरक वधू बना हुआ ठीक कमलजा जैसा लग रहा है। रानी ने कहा—

आर्यपुत्र, इमामपि कमलजामित पर मनिर्विशेषा पश्यतु।

(इति कमलजाहस्त राज्ञो हस्ते समर्पयति)

विदूषक ने कहा—मित्र डरे नही, चिरकाक्षित प्रियतमा से पाणिग्रहण के महोत्सव का आनन्द भोगें।

राजा ने मन मे सोचा—

अद्य प्रसन्नो भगवान् मनोभू—
रद्यैव मे जन्म न निष्फल च।
अद्य स्वय मे फलित तपोभि—
र्गृह्णामि पाणौ यदिमा मृगाक्षीम्॥ ४८

(इति कमलजा पाणौ गृह्णाति।)

कमलजा ने कहा—अद्य चरितार्थास्मि।

विदूषक ने कहा—वयस्य, अद्य फलित मम नीतिकल्पलतया।

रानी ने कहा—आर्यपुत्र, वर्धसेऽभिमतवधूलाभेन।

विदूषक नाचने लगा।

कुछ क्षणो मे ही रानी को रहस्य उद्घाटित हुआ कि जिसे वह भ्रमरक समझती थी, वह कमलजा है। तभी कमलजा की माता का पत्र रानी को मिला कि मेरी कन्या को किसी चक्रवर्ती की पत्नी बना दो। रानी को सतोष करना पड़ा कि यह कमलजा मेरी भगिनी ही लगेगी।

नाट्यशिल्प

कमलिनीकलहंस नाटिका अपने अद्‌भुत सविधानो के कारण असाधारण रचना है। इसमें छायातत्त्व अपने नाना रूपो मे प्रकट हुआ है। द्वितीय अंक मे नायिका के पैर पर प्रणिपात करते हुए राजा का चित्र देखकर नायिका उसे वास्तविक मानकर अपने उद्‌गार प्रकट करती है।[1] यथा,

महाभाग, उत्तिष्ठ, उत्तिष्ठ। अनुचितमेतद्।

उस चित्र के नीचे नायक का नायिका के लिए सन्देश भी लिखा था। प्रथम अंक मे इसी नायिका के चित्र को वास्तविक मानकर राजा उस चित्र के पाद भाग पर शिरसा प्रणत हुआ था।

तीसरे अंक म छायातत्त्व का अनूठा प्रयोग हुआ है। इसमे कारण्डव मायामय कमलजा का निर्माण करता है और वह सखी मृणालिका के इङ्गितानुसार नायक से प्रणयाभिमुख व्यापार करती है। यथा,

विदूषक ने प्रणयाभिभूत राजा से कहा कि तुम्हारी प्रेयसी ही लाया हूँ।

(तत प्रविशति मायाकमलजा सचारयन्ती मृणालिका)

मृणालिका—इदो इदो पिअ सही।

राजा—(सानन्दम्)

अवलम्ब्य सम्प्रति सखीकराम्बुज
शनकै पदानि सरसानि तन्वती।
कुचकुम्भभारपरिखिन्नमध्यमा
कुतुकेन मामभिसरत्यनिन्दिना॥ ३६

(इति स्वयमुपसर्पति)

मृणालिका—जेदु महाराओ।

राजा—अपि कुशल तव सख्या।

(कमलजा सख्या कर्णे कथयतीव।)

राजा—किं वद सुरभयति मधुरवाणी।

मृणालिका—महाराअ, विण्णवेदि मह पिअसही अज्ज कुसल सारसिआ देवीदइददमरोपेत्ति।

राजा—कमलजादयिदेनि वक्तव्यम्।

(कमलजा लज्जानाटितकेनावनतमुखी तिष्ठति।)

राजा—(निर्वर्ण्य स्वगतम्)

---

१ इस चित्र मे कारण्डव ने कमलजा की प्रतिकृति अंकित की थी और विदूषक ने राजा को उसके पैर पर प्रणाम करते हुए दिखा दिया।

आलोललोचनमरीचिपरम्पराभि—
नीलोत्पलस्रजमिवादधती स्वहारम् ।
श्रद्धया अपाभरदरानतकन्धरेयं
मुग्धेन्दुसुन्दरमुखी मुहुरत्सव न ॥ ३८

राजा उस मायामयी नायिका से कहता है-

उत्तुङ्गस्तन-जनितश्रमा ममास्मि—
न्नुत्सङ्गे त्वमुपविश क्षण मृगाक्षि ।
उन्नाम्यद्विपुलनितम्वविम्वभारा-
दुल्लाघं भवतु तदेनदूरुयुग्मम् ॥ ३६

चरणपरिचरणलीलादासं प्रभवामि तव कथं सुमुखि ।
कुचमणिमङ्गलकलशद्वयघटनादपि तु कलय घटदासम् ॥

राजा यह कहकर उसका आलिंगन करना चाहता है। तभी विदूषक और मृणालिका हँस पड़ते हैं, जिससे राजा वस्तुस्थिति समझकर कहने लगता है—

हन्त, प्रियतमा प्रतिमादर्शनेन वञ्चितोऽस्मि। सखे किमियं कारण्डव-मायाचातुरी।

अन्त मे राजा ने आदेश दिया कि यह प्रियतमा की प्रतिमा मेरे विनोद के लिए विलास-भवन मे पहुँचा दी जाय।

चतुर्थ अक मे विदूषक का ताल देकर नाचना मनोरञ्जक है।

एकोक्ति

कमलिनी-कलहंस के प्रथम अक का आरम्भ कलहंस की प्रेमिका विषयक वियोग की गाथा से होता है। वह कामासक्त है। इसके द्वारा कलहंस अपने हृदय की बात बताता है कि कैसे नायिका मेरे हृदय को नही छोड रही है। वह कामदेव को खोटी-खरी सुनाता है। द्वितीय अक के आरम्भ मे रगमच पर अकेले विदूषक की एकोक्ति है। इसमे कुछ दुर्घट घटनाओ की सूचना दी गई है कि कैसे उसके सो जाने पर उसके सिरहाने रखा नायिका का चित्र कोई उठा ले गया। उसके सिरहाने कमलजा का प्रणय-पत्र था। वहाँ पत्र रखने वाली मृणालिका ही वह चित्र ले गई हो—ऐसी सम्भावना उसे हुई। यह एकोक्ति प्रवेशक का काम करती है।

शैली

राजचूडामणि की सरल सुबोध शैली की सानुप्रासिक सगीतमयी स्वर लहरी मनोमोहिनी है। यथा,

हारा वज्रप्रहारा भवनमुरगपूः चाटुपाठा विपाठा
धारागाराणि कारागृहगहनगुहा शीतभानु कृशानु ।

सग्यालिंग स्फुलिंग सरमिजकलिका घूलिरगारपालि-
र्नर्मालापा प्रलापा शिव शिव सुतनोर्माल्यमत्युग्रशल्यम् ॥

इस प्रकार की योजना से भावतर्तिमा की वास्तविकता प्रतीत होती है।

आनन्दराघव

राम की कथा आरम्भ से ही कवियो को रुचिकर रही है। कथा को अधिकाधिक नाटकीयता प्रदान करने के लिए भास से लेकर अद्यावधि कवियो ने इसमे जोड-तोड करने मे हिचक नही की है, यद्यपि नाट्यशास्त्र के अनुसार ऐसे नायको की कथा से खिलवाड नही करना चाहिए था। आनन्दराघव की एक विशेषता है—सस्कृत नाटक की पद्यात्मकता की ओर चरम वृद्धि।[1]

कथावस्तु

कथा का आरम्भ जनकपुरी से होता है। मुनि विश्वामित्र ने अपने शिष्य देवरात को भेजा कि राम और लक्ष्मण को लाओ, जिनके साथ हम लोग जनक की यज्ञशाला मे चलेंगे। वे दोनो देवरात को मिथिला के बाहर उपवन मे मिलते हैं। राम ने सीता को विश्वामित्र का दर्शन करती हुई देखा था और वे उसके प्रेम मे निमग्न थे। वे सीता के लिए उद्विग्न होकर विनोद चाहते थे, जब सीता उस उपवन मे दुपहरी बिताने आ गयी। सीता योगविद्या के साथ वहाँ आयी। वे भी राम के लिए सन्तप्त थी। उन्होंने योगविद्या के आदेशानुसार राम का चित्र बनाया। राम ने यह सब देखा-सुना। योगविद्या की योजना से राम और सीता मिले। सन्ध्या के समय दोनों अपने-अपने आवास पर गये।

राम के द्वारा प्रत्यञ्चित करने के लिए जनक ने धनुष मँगवाया। उसी समय लङ्काधिप रावण के दूत सारण ने आकर कहा कि सीता रावण को दें। जनक ने रावण-प्रशंसा सुनकर भी पुन उसकी प्रार्थना ठुकराई। अन्त मे सारण ने रावण की प्रतिज्ञा बताई कि मैं सीता को लेकर रहूँगा।[2] राम ने धनुष तोड़ा और जनक उनके विवाह की सज्जा करने लगे।

रामादि चार भाइयों का विवाह सीतादि चार बहनों से हो गया। सारण ने शूर्पणखा के द्वारा शिव के भक्त विनायक, कुमार, बाणासुर और लवणासुर को उकसाया कि शिव के धनुष को तोड़कर राम ने आपके उपास्य देव का अनादर किया है। नारद ने इस विद्वेषाग्नि मे स्वभावत आहुति डाली। युद्ध मे राम ने कुमार को, भरत ने विनायक को, लक्ष्मण ने बाणासुर को और शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार भगाया। लवणासुर तो मार ही डाला गया। नारद ने सारण को उत्साहित किया कि अपने शिवभक्त परशुराम को राम से लड़वा दो और राम बचें तो उनसे सीता

1 इसका प्रकाशन १६३७ मे सरस्वती महल लाइब्रेरी, तञ्जौर से हुआ है।
2 सम्प्रत्यत्र, बनाधधार्य सुता सीता च नीतां बलात्। २.१२२

सहित दक्षिण में अगस्त्य के द्वादश वर्षीय यज्ञ की राक्षसों से रक्षा करने के लिए वनवास करवा दो।

सिन्धुतीर पर भरत को गन्धर्वों का उत्पीडन समाप्त करने के लिए दशरथ ने भेज दिया। शत्रुघ्न लवणासुर से मुक्त कालिन्दी-तटीय प्रदेश का शासन करने चलते बने। कुछ दिन दशरथ सहित रामादि के मिथिला में सानन्द रह लेने पर जब वे अयोध्या लौटने को हुए तो एक दिन परशुराम राम से युद्ध करने आ धमके। उनपर अनुनय विनय का जब कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उनका लक्ष्मण से वाग्युद्ध हुआ। अन्त में परशुराम इस बात पर माने कि राम विष्णु का धनुष प्रत्यञ्चित कर दें। राम ने ऐसा किया। परशुराम हारकर चलते बने। दशरथ वहीं मिथिला में राम का अभिषेक तभी करना चाहते थे, पर जनक ने कहा कि यथास्थान और यथासमय अभिषेक हो। तभी अगस्त्य के शिष्य पिप्पलाद के द्वारा ऋषि का सन्देश पाकर यज्ञ की रक्षा करने के लिए १२ वर्ष के लिए और कैकेयी को दिये वर की पूर्ति के लिए और दो वर्ष के लिए सीता और लक्ष्मण-सहित वन की ओर राम चलते बने। विश्वामित्र भी साथ ही अगस्त्य का यज्ञ देखने के लिए चले गये।

पञ्चम अङ्क में भरत गन्धर्वों को जीतकर अयोध्या आये तो सुमन्त्र ने उनसे बताया कि राम का वनवास, उनका गंगापार करना, काकासुर को दण्ड देना, शरभङ्ग और सुतीक्ष्ण से राम का मिलना, अगस्त्य के यज्ञ की रक्षा आदि कैसे हुए और कहा कि अब वे वनवास के दो वर्ष कैकेयी की इच्छापूर्ति के लिए वन में बिता रहे हैं। राम ने दशरथ की मृत्यु होने पर अयोध्या का शासन करने के लिए भरत को नियुक्त किया था और एतदर्थ अपनी पादुकायें दी थी। भरत ने उनका अभिषेक कर दिया। इस बीच सीता का हरण होने पर राम ने हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से सख्य करके रावण पर चढाई कर दी। उसी समय हनुमान् सञ्जीवनी लेकर उत्तर की ओर से उड़ते हुए अयोध्या के ऊपर आये तो उन्हें भ्रान्तिवश भरत ही राम प्रतीत हुए। वे उतर पड़े। हनुमान् ने भ्रम दूर होने पर रावण के सीताहरण-वृत्तान्त को बताया। उस समय हनुमान् को ढूँढते हुए वहाँ सम्पाति आया। उसने बताया कि कैसे नील के द्वारा प्रदत्त सञ्जीवनी से लक्ष्मण जी उठे और रावण मारा गया। हनुमान् सीता को यह समाचार देने के लिए उड़ पड़े। सम्पाति ने भरत को बताया कि कैसे राम ने सेतु बनाया, विभीषण को शरण दी और युद्ध में रावण को मारा।

राम अयोध्यापुरी विमान द्वारा आ पहुँचे। भरत ने उनका अभिषेक सम्पन्न किया। भरत युवराज पद पर अभिषिक्त हुए। यही आनन्द का क्षण आनन्दराघव का प्रमुख संविधान है।

राजचूडामणि ने रामकथा को एक नया रूप दिया है। कथा का अधिकांश दृश्य न रहकर श्रव्य मात्र रह गया है। प्रतिनायक रावण रंगमंच पर आता ही नहीं है। यही सब देखकर आलोचकों का मत है कि आनन्दराघव ज्ञान के लिए भले ही हो, रंगमंचीय अभिनय की योग्यता इसमें न्यून है।

राजचूडामणि का विश्वास है कि प्राचीन कवियो की रचनाओ के सामने नये युग का साहित्य तुलना मे नही ठहर पाता, फिर भी नवयुग का साहित्य समादर की वस्तु है। यथा,

प्राचा प्रबन्धान् रसयन्तु भव्यान्
अस्मद्वचोप्याददना रसज्ञा ।
आस्वादयन्तो मधुराणि वस्तू—
न्यम्ल न कि जम्भलमाद्रियन्ते ।। १ ३

इस नाटक को कवि ने 'नानाविधरससम्मेलन-शृ गाटकम्' बताया है।

प्राकृत बोलने वाले पात्र भी विशेष परिस्थितियो मे सस्कृत-भाषी बन जाते हैं। राजचूडामणि ने भावोद्रेक को ऐसी परिस्थिति मानी है। उनकी सीता सस्कृत बोलने लगती है, जब विवाह के पहले राम वनविहार करते समय उनकी आँखें अपने हाथो से मूँदते हैं। सीता कहती हैं—

आलिप्ता हरिचदनै किमु मिलत्कर्पूरपूरैश्चिर
मग्न किन्नु हिमर्तुशीतमिहिकाकासारनीरोदरे।
अहो शीतलमन्दरगमचिगदानन्दकल्लोलिता
धत्ते मोहमयी दशा न तु सखीस्पर्शो भवेदीदृश ।।१ ६६

कथाशिल्प

प्रथम अक का आरम्भ राम की छ पद्यो की एकोक्ति से होता है, जिसमे राम सीता के प्रथम दर्शन का अपने ऊपर प्रभाव बताते हैं। दूसरे अक के आरम्भ मे भी सात पद्यो की एकोक्ति है, जिसमे राम सीता के प्रति अपनी उत्कण्ठा व्यक्त करते हैं। तीसरे अक के आरम्भ मे सात पद्यो की सारण की एकोक्ति मे अधकार का वर्णन और राम के अप्रतिम पराक्रम के साथ गूढवेदी का लवणासुर आदि को उकसाने का नियोग प्रस्तुत है।

तृतीय अक के मध्य मे नारद की चार पद्यो की एकोक्ति है, जिसे रगपीठ पर अन्यत्र वर्तमान कुछ पात्र सुन सकते हैं।

विष्कम्भक एक प्रकार का लघु दृश्य हो चला है। इसमे सूचना-मात्र ही नहीं दी जाती, अपितु उसमे सरस काव्य के उदाहरण स्वरूप पद्य भी रखे जाने लगे हैं। इसमे लीलावन का वणन अनेक पद्यो मे है।

त्रुटियाँ

सीता से विवाह के पहले राम का कामयमान होना हमे अनुचित प्रतीत होता है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम स्नातक हैं न। राम कहते हैं—

यस्यास्त्वय पञ्चशर-प्रवीर प्रायेण सेवावसर-प्रतीक्ष ।
सैषा मृगाक्षी परिगण्डमूलम् दृश्य य पाण्डुरता बिभर्ति ।।१ २८

योगविद्या तो आधुनिका से भी बढकर कुमारी स्वातन्त्र्य का समर्थन कर रही है। यथा,

पतिव्रताना प्रथमाप्यहल्या जाता यदाज्ञा वशगा बताहो।
तदीयदोष्ष्मनरंगितत्व कन्या-जनाना कथमस्तु दोष ॥ १ ४६

राजचूडामणि ने राम और सीता को साधारण गान्धर्व-विवाह के प्रणयिजनो के स्तर पर ला दिया है। विवाह के पहले ही राम सीता का आलिगन करने को उद्यत हैं। उनका प्रेममय वनविहार देखते ही बनता है। विवाह के पश्चात् चतुर्थ अक मे उनका दाम्पत्यानुशीलन कुछ-कुछ वैष्णवी कृष्ण परम्परा पर विकसित किया गया है। ऐसा लगता है कि रामचरित के इस प्रकरण से कवि कामशास्त्र की शिक्षा देना चाहता है।

सवाद

कवि सवादो मे गद्याश परिस्पर्श मात्र के लिए देता है और तत्त्वाश के लिए पद्यो की भरमार करता है। अनेक स्थलो पर सवाद पद्यो मे ही चलते हैं। गद्य नाम के लिए भी नही हैं।

वर्णना

राजचूडामणि वर्णना के विशेष प्रेमी हैं। तीसरे अक के आरम्भ मे सारण की एकोक्ति के प्रथम चार पद्यो मे अन्धकार का वर्णन है। ऐसे वर्णनो के द्वारा काव्य की विशेष प्रतिष्ठा होती है, नाटकीयता की कम। कही-कही वर्णनो के द्वारा कवि ने कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यो का उद्घाटन किया है। यथा सारण का कथन है—

कार्याकार्यविचारदूरमतय प्रायेण राजाधमा
प्राज्ञमन्यतया स्वय प्रथमत कुर्वन्ति यत्किञ्चन।
तच्चेन्मन्त्रिजनैर्भवेत् सुघटित स्वायत्तमाचक्षते
दिष्ट्या चेद्वितथीकृत प्रकृतयस्तत्रापराधास्पदम् ॥ ३ १५४

प्रणय-व्यापार वर्णन की सीमा का उल्लघन राजचूडामणि ने शास्त्रीय मर्यादा को तोडते हुए किया है। यथा,

राम —(कुचपरिसरे कर व्याजेन निपातयन्)

कुचाभोगे पत्रावलिभृति कुलक्ष्माधरधिया
निज शस्त्र वज्रो नियतममुचन्नीरजमुखि।
तदेनत्काठिन्यादहह शकलीभूय शतधा
स्फुरत्याकल्पान्त स्फुटममतवज्रोपलनिभात् ॥ ४ २१६

शैली

अनुप्रास तो मानो कवि ने माँ के दूध के साथ ही पिया था। छेक, वृत्ति, श्रुति

और अन्त्य—चारो प्रकार के अनुप्रासो से इनके पद्य सुमण्डित हैं। गद्यांश भी पदो के सांगीतिक चरण से मनोहारी है। यथा,

सारण—यतो लोकातिशायितमहिमातिशयशालिनैव काष्ठा प्रतिष्ठाया।

द्वितीय अंक मे—

जनक—सारण, साधु भवता साधितं दौत्यसमुचितं कृत्यम्। ग्रनिपतति काल। साध्यतामन्यत्र साधनीयान्तरम्।

द्वितीय अंक मे गद्यांशो मे प्राय भारी भरकम समासो से सावादिक नाटकीयता क्षुण्ण है। यथा,

सारण-अद्य किल निखिलभुवनविजयधाटिका परिवाटिका समाटीकन-साटोपपाठीनकेतुपटुतरघोटिकाटोपोत्कटककोटीपाटवपरिपाटित—हरितटविसृमररजश्छटापाटिमपटच्चर रोदोरन्ध्र नीरन्ध्रयति जनद्दृगन्धङ्करणमन्धतमसम्।

रंगपीठ पर पात्रो के मुख से भारती नाचती है, जब पर्णाद की भूमिका मे पढा जाता है—

वेलोल्लघनकेलिजाधिकमहाकल्लोलहल्लो हल
कल्लोलीनिधिवल्लभ चुलकितं कुर्वन् करे दक्षिणे।
चञ्चद्वामकराङ्गुलीनखमुखेनादाय मोदादहो
दिव्यौ कूर्मझषौ कमण्डलुजलक्रीडापरो निर्ममे ॥ ४ १६६

कवि श्रवणानुसारी शब्दो का प्रयोग यथायोग्य करता है। यथा,

घटघटायते मे हृदयम्, ठात्कृतम् (२ १३०), चटचटध्वान (२ १३३), हल्लोहलम् ४ १६६, दर्दुरीकृत आदि।

नाट्यशिल्प

रंगपीठ पर एक ही अङ्क मे अनेक स्थानो के कार्यक्रम दिखाये जाने का विधान इस नाटक मे मिलता है। तृतीयाङ्क मे पहले तो रंगपीठ पर गूढवेदी और सिंहमुख की विष्कम्भक मे बातचीत होती है। उनके चले जाने पर सारण और फिर गूढवेदी की बातचीत होती है। बातचीत के बीच सारण कहता है—

तदावामपि मिथिलापुरमेव गच्छाव। ('इतिपरिक्रामित नाटितकेन) हन्त, मिथिलोपवनममीपमनुप्राप्तौ स्व। इसी बीच पूरी रात भी बीत जाती है। सारण के अनुसार इसी क्रम मे (दिशोऽवलोक्य) हन्त प्रभातप्राया रजनी।

कवि ने कुछ रमणीय योजनायें प्रस्तुत की हैं। यथा,

परशुराम राम से लडने के लिए उद्यत हैं। सीता वही राम को रोकने के लिए दौड पडती हैं। राम को कहना पडता है—

क्रूरा वाच कथयति मुनावेकत कोपनेऽस्मिन्
प्रेम्णान्यत्र त्वयि च सरस पाणिमापीडयन्त्याम् ।
माध्यस्थ्य मा चिरमुपनयन् वीरशृगारभग्नो
गात्रे गात्रे ग्रथितपुलको जायते कोऽपि भाव ॥ ४२५६

इस नाटक मे 'पत्र' अर्थोपक्षेपक के रूप मे चतुर्थ अक मे आता है। वैसे ही अर्थोपक्षेपक पिप्पलाद के दौत्य-द्वार से भी इसी अक मे साथ ही प्रस्तुत है। विश्वामित्र का भूतपूर्व कैकेयी के लिए इसी अक मे वरदान का उद्धरण भी अर्थोपक्षेपक है। पारम्परिक अर्थोपक्षेपक कोटि मे ये भले नही आते, किन्तु अर्थोपक्षेपण इनमे सुतरा होता ही है।

छन्द

आनन्दराघव मे कवि ने १८७ पद्यो मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग करके तत्सम्बन्धी अपना नैपुण्य प्रकट किया है। उसका दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका ५३ पद्यो मे प्रयुक्त है, स्रग्धरा और शिखरिणी मे क्रमश २८ और २१ पद्य हैं। राजचूडामणि की छन्दोविचिति वैविध्यपूर्ण है। किसी अन्य कवि ने शार्दूल और वसन्ततिलका का इतना बहुल प्रयोग इस युग मे नही किया।

०

अध्याय १०

सुभद्राहरण

सुभद्राहरण के लेखक माधव भट्ट ने अपना परिचय नाटक की पुष्पिका में इस प्रकार दिया है[1]—

जननीन्दुमती यस्य जनको मण्डलेश्वर ।
भ्राता हरिहरो यस्य स ख्यातो माधव कवि ॥

इसका प्रथम अभिनय श्रीपर्वत पर श्रीकण्ठ के प्रीत्यर्थ हुआ था। माधव ने इसकी रचना करके सूत्रधार को समर्पित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि श्रीपर्वत के समीप रहता था। माधव की उक्तियों की चारुता उनके जीवनकाल में ही प्रसिद्ध थी, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

जनताघनतापौघ-लोपकार्योपकारिका ।
महिना न हिता कस्य साधवो माधवोक्तय ॥२

कवि की अपने विषय में विनयोक्ति है—

ततिरिव फणिवल्ल्या केवलाना दलाना
यदपि रुचिनिदान गुम्फना मे न वाचाम् ।
तदपिरसगुणानामार्द्रपूगीफलाना—
मिव मुहुरनुपगाद्रञ्जनाय क्षमैव ॥

माधव भट्ट कब हुए—यह प्रश्न सर्वथा समाधेय नहीं है, किन्तु उनकी इस कृति की एक प्रतिलिपि १६६७ वि० स० तदनुसार १६१० ई० शती में हुई। इसकी रचना सोलहवी ईसवी शती में हुई होगी।

सुभद्राहरण का महत्त्व आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में कुछ कम नहीं है। कीथ और कोनो ने अपने नाटकेतिहास में इसकी अनेक प्रसगों में चर्चा की है। सर्वसम्मति से यही श्रीगदित कोटि का अकेला उपरूपक है, जो प्राप्त है।[2] कीथ ने इसका विवरण देते हुए लिखा है—

The presence of a narrative verse has suggested comparison with a shadow drama but for this there is inadequate evidence[3]

---

१ इसका प्रकाशन काव्यमाला में १८८८ ई० में तथा चौखम्भा-विद्याभवन से १६६२ ई० में हुआ है।

२ मध्यकालीन संस्कृत-नाटक' में धर्माभ्युदय का विश्लेषण करते हुए लेखक ने बताया है कि यह श्रीगदित कोटि का उपरूपक है। पृष्ठ २२६

३ Sanskrit Drama पृष्ठ २६८।

जैसे आख्यानात्मक पद्य की चर्चा कीथ ने की है, वैसा अनेक रूपकों में मिलता है। गंगाप्रताप-विलास में गंगाधर ने इसका प्रयोग किया है। इस प्रसंग में यह भी ध्यान रखने योग्य है कि छायानाटक का परछाईं वाले रूपकों से मध्ययुग में कम से कम भारत में कोई सम्बन्ध नहीं है।[1]

कथावस्तु

अर्जुन संयासी का वेश बनाकर मधुकरी वृत्ति करते हुए बलराम के घर पहुँचा, जहाँ कादम्बरी के गंध से घबड़ा कर वह भागना ही चाहता था कि किसी ने कहा कि रुकें, बलभद्र की बहन सुभद्रा भिक्षा लाती होगी। सुभद्रा और अर्जुन एक दूसरे को देखते ही परमाकृष्ट हुए। भिक्षा देकर सुभद्रा ने तो थोड़े असमंजस के बाद कह दिया 'मया एतस्मै आत्मापि समर्पित, यद्येष परिग्रहेण प्रसाद करोति'। अर्थात् मैंने तो इसे अपने आप को दे दिया। पूछने पर अर्जुन ने अपना नाम बताया, कि मैं ककुभ का पर्याय हूँ। सुभद्रा ने उन्हें अपने मनोनीत प्रियतम के रूप में पहचाना, जिसे चित्राङ्कित रूप में वह पहले देख चुकी थी। अर्जुन ने बताया कि इसी सुभद्रा के लिए मैंने यह कूटवेष धारण किया है। प्रेम की पराकाष्ठा का अनुभव करके वे दोनों चलते बने।

वसन्तोत्सव मनाने के लिए कन्याओं के झुण्ड में सुभद्रा उपवन में गई। वहाँ अर्जुन उसे अपहरण करने के लिए व्यग्र सा था। उसके इच्छा करते ही दारुक कृष्ण का रथ लिए आ पहुँचा। अर्जुन ने सन्यासी का वेष छोड़ा और वास्तविक रूप में रथ पर जा बैठा। धनुष की टंकार कर के वह क्रीडा करने वाले यूथ में सुभद्रा को हाथ से पकड़ कर रथ पर बैठाया और ले उड़ा। साथ की कन्याओं ने हल्ला किया। सारा समाचार राजा उग्रसेन को मिला। उन्होंने आदेश दिया कि सभी यदुवीर अर्जुन पर आक्रमण करें। बलदेव ने कहा कि रुकें, जरा कृष्ण से पूछ लें। नहीं तो अकेले ही मैं इन सबको पीस देता—

इन्द्रप्रस्थं कौरवं सार्धमुध्व
कालिन्दीये प्रक्षिपामि प्रवाहे।
क्षेत्रोत्खात-स्थूललोष्टामिव वा
सीताशीर्णं लाङ्गलाग्रेण कुर्वे ॥३६

अर्थात् हल के फाल से जोत कर मिट्टी में मिला दूँ।

कृष्ण ने पूछने पर कहा कि यह तो यथायोग्य ही हुआ है। अकेले अर्जुन हम हरा दे तो नाक कटी और हम सभी उसे मार डालें तो कितनी हानि होगी। तब तो—

'तेनात्र सप्रणयमेष विसर्जनीय ॥ ३६

१ मध्यकालीन संस्कृत-नाटक में लेखक के द्वारा पृष्ठ ३०२–३०९ पर दूताङ्गद का विवरण देते हुए छायानाटक का मर्म विस्तार से बताया गया है।

बलराम ने कहा—जो आप को ठीक लगे। आकाश से पुष्प वर्षा हुई। इन्द्र के दिव्य पुष्प द्वारा भेजे मोती के हारद्वय उन दोनो को मिले। इन्द्र को सन्तोष हुआ कि यह उचित हुआ।

छायातत्त्व

सुभद्राहरण का छायातत्त्व विकसित है। इसमे अर्जुन सन्यासी बनकर सुभद्रा का हरण करता है। वह कहता है—

धन्यश्चतुर्थाश्रमवेष एष छलाद्यदगीकरणेन बाढम्।
पूज्यत्वमीदृग्विधराजपुत्र्या गतोऽस्म्यहृ दीर्घविलोचनाया ॥

वह कपट-कोप प्रकट करता है। यह भावात्मक छाया है।

निवेदक

सुभद्राहरण मे निवेदक के द्वारा अर्थोपक्षेपक का काम लिया गया है।[1] निवेदक का वक्तव्य है—

स्तम्भारम्भणनिश्चलौ तदनु च प्रोद्भिन्नरोमोद्गमौ
वाष्पाम्बुस्थगितेक्षणौ करपुटक्लिन्नौ सकम्पौ तत।
कण्ठे गर्भितगद्गदावनुपद वर्णान्तरेणाश्रितौ
लीनावेकरसे परस्परभयौ स्वस्थानगौ तौ तत ॥१५

नाट्यशिल्प

इस श्रीगदित मे अङ्क तो एक ही है, किन्तु १५ वें पद्य के पश्चात् रगमच से सभी पात्र चलते बनते हैं। फिर नेपथ्य से वानर का उत्पात सुनाई पडता है। इसके पश्चात् बलदेव रगमच पर आते हैं। इस प्रकार रगमच कुछ देर तक रिक्त रहता है।

वानर के उत्पात की कथा सर्वथा अनावश्यक है। पूर्वापर कथा से इसका कोई सम्बन्ध नही है। इसके द्वारा बलराम का शराब पीकर तुतलाना हास्य रस की सृष्टि भले करता है।

कथा के उत्तरार्ध मे वसन्तागम मे क्रीडा के लिए वन मे सुभद्रा के जाने का वर्णन है। इसके पहले रगमच रिक्त होता है, नया दृश्य है वन भूमि का। उपवन मे वही निकट ही कही अर्जुन है।

रस

श्रीगदित मे शृङ्गार तो प्रधान रस है। उसके साथ हास्य और वीर अङ्गरस है। पीये हुए बलराम का अधोलिखित पद्य सुनाना हास्य के लिये है—

किं क्रुष्ट्वा हहलेन हन्मि भुभुजेनाक्षिप्य मृद्नामि वा
किं वा त चचुचूर्णयामि मुसलाघातेन चर्णाघनम्।
किं वोच्चर्धधरानले ससकल मपातये दुद्रुतम्
किं वा तेन सिसीधु पूरय पपापात्रे पिवामि क्षणाम् ॥१७

१ अङ्किया रूपक मे इस प्रकार के पात्र-विषयक परिचयात्मक गीत मैथिली मे देने की रीति इस युग मे प्रायश मिलती है।

अध्याय ११

रत्नेश्वर-प्रसादन

रत्नेश्वर-प्रसादन के रचयिता गुरुराम उत्तर अर्काट जिले में मूलन्द ग्राम के निवासी थे।[1] उनके पिता का नाम स्वयम्भू दीक्षित था। उनकी माता राजनाथ की कन्या थी। गुरुराम अप्पय दीक्षित और उनके भाई अच्चा दीक्षित के समकालीन थे। गुरुराम का कुल पाण्डित्य-मण्डित था। उन्होंने अपने पिता के विषय में लिखा है—'प्राचामाचार्यपादानामनूचान—वशावतमस्य त्यागराजाचार्यसुकृतपरिणामस्य पवित्रकीर्तिस्तबकस्य स्वयम्भूनाथदेशिकस्य' और अपने नाना के विषय में कहा है—

साहित्यविषयसाम्राज्यपट्टाभिषिक्तस्य राजनाथकवे

गुरुराम ने अपने हरिश्चन्द्रचरित-चम्पू की रचना का समय १६०७ ई० दिया है। रत्नेश्वर प्रसादन १६०० ई० में लिखा गया प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रन्थ—मुमद्राधनञ्जय नाटक, मदनगोपालविलास भाण, विभागरत्नमालिका आदि हैं।[2]

रत्नेश्वरप्रसादन नाटक के पाचवें अङ्क में शिव के वर्णन-बाहुल्य से प्रतीत होता है कि कवि शैव था।

प्रस्तावना-लेखक

रत्नेश्वर-प्रसादन की प्रस्तावना में सूत्रधार के वक्तव्य से निःसन्देह प्रमाणित होता है कि प्रस्तावना लेखक स्वयं सूत्रधार है, कवि नहीं। यथा,

सूत्रधार —तदेव विलिखमुपश्लोकयन्त्यार्यमिश्राः

ससद्विद्या कनकनिकष सद्विनीत प्रबन्धा।
वाराणस्या पशुपतियशोवासिनं चेतिवृत्तम्॥
न स्यात् कस्या सदसि यशसे नाट्यविद्या मदीया।
प्राय सेयं गुणगणनिका भाग्यनिश्रेणिका न॥

प्रस्तावना पद्य १०

तदस्मात्कोचित पात्रवर्गमादिशामि।

---

[1] रत्नेश्वर-प्रसादन का प्रकाशन १९-६ ई० में मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट सीरीज संख्या ४ में हो चुका है।

[2] इन ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ तंजौर की पैलेस लाइब्रेरी तथा अड्यार लाइब्रेरी में हैं। मुमद्राधनञ्जय में पाँच अङ्कों में सुभद्रा के विवाह की कथा है। मदनगोपाल-विलास भाण में कृष्ण और राधा के प्रेम की कथा है।

नटी के वक्तव्य से भी यही सिद्ध होता है कि नाटक का कवि प्रस्तावना-लेखक नही है। यथा—

नटी—नदेव मन्ये। त्रिभुवनगुरोर्देवदेवस्य सन्निधाने जीवनोपायेन वा दिवानिश प्रवृत्तसगीतानामस्माक जन्मलाभोऽमोघो भविष्यति।

कथावस्तु

रत्नेश्वर-प्रसादन नाटक की कथा सक्षेप मे सूत्रधार के शब्दो मे है—

योजन रत्नचूडेन गीतविद्याप्रमादित।
देवो रत्नेश्वरश्चक्रे भक्तिविन्यस्य निष्क्रयम्॥

सुवर्णपुर के वसुभूति नामक गन्धर्वराज की कन्या रत्नावली ने सरस्वती को गुरु बनाकर उच्च शिक्षा ली। समावर्तन के अवसर पर सरस्वती ने कलावती (दारिका) को आदेश दिया कि तुम रत्नावली का चित्त-विनोद किया करो। सरस्वती ने एक बार अपनी सखी सावित्री को रत्नावली का समाचार जानने को भेजा। मार्ग मे उसे पार्वती की सखी विजया से भेंट हो गई, जिसने रत्नावली का समाचार बताते हुए कहा कि शिव और पार्वती की बातचीत से मुझे विदित हुआ है कि शिव के सर्वाधिक प्रिय स्थान वाराणसी मे रत्नेश्वर नामक दिव्यलिङ्ग की स्थापना हिमालय ने की थी। उस लिङ्ग की निरन्तर आराधना रत्नावली कर रही है। उसका व्रत है—

प्राग्देवदर्शनान्नान्य पश्यामि न वदामि च।
इति लब्धप्रतिज्ञाया यस्या सुप्रातमन्वहम्॥

इस उपासना के कारण शिव रत्नावली से अतिशय प्रसन्न हैं। शिव ने अपने भक्त रत्नचूड को रत्नावली का वर चुन दिया है। रत्नचूड भोगवती का राजकुमार है।

रत्नचूड परिक्रमा करते हुए एक दिन वाराणसी पहुँचा। रत्नेश्वर-मन्दिर मे पूजा करने के अनन्तर वह शिवार्चन-सगीत गायन करने वाली रमणीय बाला की पदपक्ति का अनुसरण करते हुए बालोद्यान मे पहुँचा। रत्नचूड ने रत्नावली को वहाँ देखा—

अस्या रूपमनञ्जन किमु दृगोराहलादसिद्धौषध
तारुण्यस्य तप फल किमथवा कामस्य सजीवनम्।
शृ गारस्य विभूषण किमुत वा सौभाग्यसङ्केतभू-
राहोस्विद्वरवर्णिनी-विरचनापर्याप्तिमुद्राविधि॥ १ २६

रत्नावली के विषय मे अन्य सूचनायें प्राप्त करने के लिए नायक और विदूषक न उसकी सखियो की बातें छिप कर सुनने की योजना कार्यान्वित की। रत्नावली ने सखियो से बताया कि आज मैं रत्नेश्वर की आराधना का गीत वीणा पर गा रही थी। उस समय ज्योतिर्मयलिंग से देववाणी सुनाई पडी, जिसे लज्जावश कहने मे असमर्थ रत्नावली ने भूर्जपत्र पर लिख दिया—[1]

१ कवि के अनुसार यही रत्नेश्वर-प्रसादन है।

यस्त्वया रमते रात्रावद्य गन्धर्वकन्यके
तव नाम समानाय्य स ते भर्ता भविष्यति ॥ १३०

सखियों ने कहा कि वह कौन बडभागी देव है, जिसके लिए शिव ने आपको निर्णीत कर दिया ? विदूषक और रत्नचूड ने उनकी बातें सुनकर जान लिया कि वह सुन्दरी अपनी ही होने वाली है।

दोपहर होने पर रत्नावली सखियो के साथ आकाश-मार्ग से सुवर्णपुर चली गई रत्नचूड उसके वियोग मे पर्युत्सुक था। वह भी अपने विदूषक के साथ अपनी नगरी भोगवती मे चलता बना। वहाँ उसकी दशा है—

किमपि वदन्निव किमपि ध्यायन्निव किमपि सन्दिहान इव।
किमपि हसन्निव किमपि स्पृहयन्निव सोऽयमुद्भ्रमति ॥ २२

उसने अपने मनोविनोद के लिए ऐन्द्रजालिक नटो को आदेश दिया कि सुवर्णपुर मे अनुभूत किसी अद्भुत वृत्त का प्रदर्शन करें। इसके द्वारा नायक रत्नावली की प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त करना चाहता था। उसका कहना है—

अस्या दर्शनमास्तां सकल्पसमागम प्रसगो वा।
सुमुखी निवसति यस्मिन् सुखयति देशस्य तस्य वार्तापि ॥२१०

ऐन्द्रजालिक नटो ने गर्भाङ्क नाटक प्रस्तुत किया, जिसमे रगमञ्च पर एक ओर रत्नचूड और विदूषक प्रेक्षक हैं और दूसरी ओर रत्नावली और उसकी सखियो के द्वारा अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। रत्नेश्वर-प्रसादन नाटक के प्रेक्षक रत्नचूड और विदूषक का प्रतिक्रियात्मक अभिनय देखते हैं और रत्नावली और सखियो का अभिनय गर्भाङ्क-द्वार से देखते हैं।

रत्नावली गर्भाङ्क मे स्वप्नवृत्त को स्मरण कर कहना आरम्भ करती है—सोई हुई मुझको छोडकर हृदय चुराने वाले कहाँ छिप हो ? रत्नचूड देखता है कि रत्नावली के शरीर पर उपभोग चिह्न अङ्कित हैं। यथा,

अगेषु लुलितललितेष्वस्या विश्रान्तिमयति नाद्यापि।
अविरलता पुलकानामनुगतकम्प श्रमाम्बुपूरोऽपि ॥ २१२

रत्नावली की उत्कण्ठा दूर करने के लिए कलावती ने एक उपाय किया। उसने त्रिलोक के सभी युवको के चित्र बनाकर दिखाना आरम्भ किया, जिनमे से वह स्वप्न-दृष्ट युवक पहचाना जाय। रत्नचूड का चित्र देखते ही नायिका ने स्वप्न के समागमविशिष्ट व्यक्ति को पहचाना। उसे अब आज चिन्ता हुई कि नायक की मेरी ओर कैसी प्रवृत्ति है ? उसे मेरा सन्देश कैसे पहुँचाया जाय। कलावती ने कहा कि यह सब दूती के द्वारा होगा। गर्भाङ्क समाप्त हुआ।

नागलोक मे रत्नचूड से सम्पर्क करने के लिए रत्नावली की ओर से कलावती गई। उसने रत्नचूड को सुवर्णपुरी आकर रत्नावली से तुरन्त मिलने की योजना

कार्यान्वित कराई। वह सिद्धवापी मे प्रवेश करके विदूषक के साथ नायिका के नगर मे जा पहुँचा। वहाँ नायिका को खोजते हुए हिमगृह मे उसे नायिका के द्वारा अङ्कित नायक का भित्तिचित्र मिला। नायक ने उसके पास नीचे लिखा पद्य अङ्कित किया—

तपतु मनसिजस्त्वनु मदीया
नव पुनराद्रियना शरीररत्नम्।
त्वदुपगमफला कलाविनोदा
मम हृदय मदिराक्षि जीवित च॥ ३.७

नायिका चन्द्रमा की पूजा करने के लिए वहाँ आई। उसकी सखी कलावती ने बताया कि नायक आपको रत्नेश्वर के उद्यान मे देख चुका है और आपने भी उसे स्वप्न मे देखा है। नायिका और उसकी सखी की बातचीत नायक और विदूषक छिपकर सुनने लगे। नायिका नायक का भित्तिचित्र देखने आ गई। वहाँ उसने नायक का लिखा पद्य पढा। इससे ज्ञात हुआ कि रत्नचूड आ पहुँचा है। नायिका ने चन्द्रमा के सामने हाथ जोडकर उसे सम्बोधित किया—

भुवनालोकविभावन तपन, तपनविभक्ताधिकारव्यापार।
रत्नदिशावलयाना भगवन् सारगलाञ्छन नमस्ते॥ ३ १५

नायिका के अतिशय उत्कठित होने पर नायक वहीं उसके पास आ गया। थोडी देर तक उनका प्रेमालाप गूढानुराग-सूचक हुआ। तभी रत्नावली की माता उसे ढूँढने निकट आ गई और वे दोनो अलग हुए। नायक को छोडकर सभी किसी न किसी काम से चलते बने। थोडी देर पश्चात् रत्नावली और चेटी चित्रलेखा आरक्षिका का वेष धारण करके रत्नचूड के समीप आ पहुँची। वह चन्द्रिकाचत्वर पर बैठा एकोक्ति परायण था। रत्नावली और चेटी उसकी बातें छिपकर सुनने लगी। अन्त मे जब नायक अपने हृदय मे स्थित नायिका की अभ्यर्थना इन शब्दो मे करता है—

गूढासि किं नयनगोचरता भजेथा
गौरागि मा परिरभस्व कुचोपपीडम्।
स्वप्नापराद्ध इति कुप्यसि किं नु मह्य
त्वत्पादयोरुपहरामि नतिं प्रसीद॥ ३ २७

नायक की यह बात सुनकर नायिका उसके पास प्रकट हो गई। रत्नचूड ने अभ्यर्थना की—

प्राणा प्रयाणाभिमुखा पञ्चबाणाकुलीकृता।
स्तनभारार्पणादेते धार्यन्ता प्राणवल्लभे॥ ३ २६

तभी उधर मे आरक्षक आ निकले और उनके वहाँ पहुँचने से पहले ही नायक और नायिका पुन एक दूसरे से अलग हो गये। नायक उसके लिए विचारा बना रहा। विदूषक और नायक भोगवती लौट गये।

देवर्षि नारद ने पद्मावती के दानव सुबाहु को बताया कि रत्नावली तुम्हारे योग्य है। नारद के शिष्य ने जब यह सुना तो पूछा कि रत्नचूड का क्या होगा? क्या रत्नावली को सुबाहु पा सकेगा? नारद ने बताया कि मायावी दानवों के लिए क्या असम्भव है? मुझे तो कपिल के शिष्य रत्नचूड और बाण के शिष्य सुबाहु का युद्ध देखना है।

चित्राङ्गद नामक एक दानव ने रत्नावली के पिता वसुभूति के सारसक नामक कंचुकी का वेष धारण किया और रत्नावली को सुबाहु के कुचक्र में फँसाने के लिए उड़ कर काशी आया—

काशी नृणां कच्चरदेहकाचं कैवल्यरत्नक्रयभूमिरेषा।
अन्यत् किमस्यामवगाहमात्राद्दुत्सार्यमात्मर्यमुपैमि शान्तिम् ॥ ४.७
केषामुपरि न काशी क्षेत्राणां नित्यपरिवहद्गंगा
ज्योत्स्नास्नपितशिरांसि ज्योतींषि यतो मुहुः प्ररोहन्ति ॥ ४.८

काशी में वह वहाँ पहुँचा, जहाँ रत्नावली रत्नेश्वर की पूजा करके आ रही थी। उसके पिता कुबेर के घर गये थे। माया कंचुकी ने रत्नावली से कहा कि आपके पिता आपसे तत्काल मिलना चाहते हैं। रत्नावली ने उस दानव को अपने पिता का कंचुकी सारसक समझा और उससे पूछने पर उसे विदित हुआ कि वसुभूति नारायण यात्रा के लिए बदरीतपोवन में पड़े हुए हैं। माया-कंचुकी के साथ रत्नावली वे पिता से मिलने के लिए उड़ पड़ी। वहाँ उसे अपने पिता वसुभूति का रूप धारण किये हुए एक दानव मिला। उसने रत्नावली से वात्सल्योचित बातें करके चित्रांगद से कहा—

आरूढयौवनदशामवलोक्य वत्सां
श्रेयान् स्वयंवरमहोत्सव इत्यवैमि।
दैवादयोग्यघटना यदि कन्यकानां
कौलीनभाजनतया गुरवो भवन्ति ॥ ४.१०

माया-वसुभूति ने अपने माया-कंचुकी का समर्थन पाकर निर्णय लिया कि आज ही स्वयंवर हो। उसी समय बाणासुर का दूत वसुभूति के लिए यह सन्देश लेकर वहाँ आया—

स्वस्रीयाय सुबाहवे तव सुतां बाणः स्वयं याचते ॥ ४.१४

अर्थात् बहन के पुत्र सुबाहु से रत्नावली का विवाह कर दें। माया वसुभूति ने कहा—बहुत ठीक, परन्तु कन्या की आयु स्वयंवरोचित है। इसमें तो कन्या को ही वर चुनने का अधिकार होना चाहिए। दूत ने कहा कि सुबाहु की वलशालिता, रूप और उदारता सर्वोपरि हैं। स्वयंवर से क्या लाभ? मायावसुभूति उसकी बात मान गया, पर कुछ चिन्तित सा लगा। रत्नावली ने कहा कि देव और दानवों का यह अपूर्व सम्बन्ध कैसे होगा? उसकी कुछ भी चिन्ता न करके मायावसुभूति ने आदेश दिया—

तत्सम्पाद्यन्ता कौतुकमंगलानि। आनीयतां तत्रभवान् सुबाहु ।

रत्नावली अपनी दुर्भाग्यपूर्ण विपत्ति से आशङ्कित होकर निर्विण्ण हो उठी। उसी समय नेपथ्य में किसी ने दूर से सुबाहु को ललकारा—

नरहरिनखरकराला यमदंष्ट्रा निष्ठुरा ममाद्य शरा ।
न पतति यावदेते तावत्त्व भीरवश्चनोपाय ॥ ४.१८

अज्ञात रत्नचूड की यह ललकार सुनकर रत्नावली ने विचार किया—

किं नु खल्वेतत्। सजलजलधरस्तनितगम्भीर आर्यपुत्रस्येव स्वरसंयोग श्रूयते। एष खलु घर्मोपतापिना कलापिनीमिव मा सुखयति।[1]

ऐसी परिस्थिति मे भयभीत होकर माया-वसुभूति भाग चला।

उस स्थान पर नारद और उनके शिष्य आ गये। शिष्य ने उनसे कहा कि गुरु, आग आपने लगाई थी, आप ही बुझाइये। नारद ने रत्नावली से बताया कि तुम दानवो की माया मे फँसी हो। मैंने अभी-अभी रत्नाचूड को सूचित कर दिया है। यह सब तुम्हारे पिता की अनुपस्थिति मे सुबाहु के परिजनो ने किया है। अब रत्नचूड सुबाहु से लडेगा। घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें नायक ने प्रतिनायक को मार गिराया। ऋषियो ने नेपथ्य से हर्षध्वनि की—

प्रवर्त्यन्ता प्रत्युटजमाभ्युदयिकानि मंगलानि, यदिदानीमस्माकं निर्विघ्नानि नित्यनैमित्तिकानि नियमतन्त्राणि।

नारद ने रत्नावली को सूचना दी कि सुबाहु मारा गया और रत्नचूड विजयी हुआ। बदरिकाश्रम के सभी तपस्वी आनन्द-पूर्वक अपने धार्मिक कार्य सम्पन्न करेंगे। नारद वहाँ से नायिका को लेकर रत्नचूड के पास पहुँचे। बदरिकाश्रम मे सुबाहु के मरने के अनन्तर तपस्वियो ने महोत्सव किया। वह समाचार वसुभूति को चारणो के द्वारा सुनने को मिला। उसने बदरिकाश्रम से उन्हें लाने के लिए पुष्पक-विमान चित्राङ्गद के साथ भेजा। वसुभूति ने रत्नचूड को सन्देश भेजा कि आपका रत्नावली के साथ विवाह हम रत्नेश्वर के समक्ष देखना चाहते हैं। वह विमान से काशी की ओर उड पडा। विमान के उडने की कल्पना है—

चित्रेव सिद्धविद्या परिवृत्तिकलेव कालचक्रस्य।
दवयति यन्नेदीयो यदपि दवीयस्तदेव नेदयति ॥ ५.१४

विमान चन्द्रलोक जा पहुँचा। चन्द्र का वर्णन है—

अयमविरत—क्लिश्यत्नुप्यद्रथागचकोरक
सततविकसन्मीलन्नीलोत्पलाम्बुरहाकर ।

---

[1] नायिका का इस प्रकार का उद्घोष कुन्दमाला और उत्तररामचरित मे प्राय इन्ही शब्दो मे है।

तुहिनमहसो लोकसारावरोधशिरोगृह-
प्रणिहितसुधाकुम्भ प्रस्नौति नेत्ररसायनम् ॥ ५.१५

वहाँ से हिमगिरि में शिवाधिष्ठान देखते हुए वे विमान द्वारा प्रयाग पहुँचे। रत्नचूड ने प्रयाग की प्रशंसा की है—

अत्राम्भुना सुकृतिनो दिवमुत्पतन्तो
वैमानिका सपदि दिव्यविलोकनेषु।
स्वप्नं विमेष इति याभनिमेषमुद्रा
कौतूहलाद्दधति तान् पुनरुत्यजन्ति ॥ ५.३३

वहाँ से निकट ही वाराणसी की ओर विमान उड़ा। काशी की शोभा, पावनता और मोक्षप्रवणता से सभी प्रभावित हैं। यथा, कथं कथ्यते क्रोडीकृतपञ्चक्रोश प्रमाणेन सगृहीतसर्वतीर्थसारपरमाणुना आपन्नजनानुकम्पिना भगवता विश्वेश्वरेण सम्पादिता खल्वेषा। इसमें कन्दुकेश्वर, मणिकर्णिका, अविमुक्त-महेश्वर, रत्नेश्वरायन आदि हैं। विमान उतरा। परिवार के सभी लोग मिले। विदूषक ने भोजनप्राप्ति के लिए प्रशस्ति की—

अद्य प्रसादसुमुखो विधिरद्य सार्था
सर्वाशिष सफलमीप्सितमद्य जातम्।
रत्नावली—हृदयमस्य हरिष्यतेऽसौ
सचारिणीव गृहमङ्गलदीपरेखा ॥[1] ५.४८

वसुभूति ने गोद में बिठा कर कन्या का दान रत्नचूड के लिए किया और कहा—

चतुर्वर्गोपयोगाय छायेव सहचारिणी।
आनन्दयतु वत्सेयमनुकूला तवाशयम् ॥ ५.५२

नाट्यशिल्प

रत्नेश्वर-प्रसादन में पाँच अंक हैं। इसमें कार्यविस्थाओं और सन्धियों का विन्यास सुव्यवस्थित है। रंगमंच पर एक अभ्यन्तर मण्डप है, जिसमें प्रवेश करके काशी में रत्नचूड आराधना करता है। बाहर निकलने पर उसकी दाहिनी भुजा फड़कती है। उसने एक सुन्दरी को वहाँ शिवार्चन गीत गाते सुना था। उनकी पदपंक्ति के संकेत से चलकर वह वानायान में पहुँचा, जहाँ वासन्ती-वकुलानिसार-भवन केलीवन के रूप में था—

क्रीडत्कोकिलदष्टचूतलतिका-बालप्रवालाङ्कर
पालीभोग-सुगन्धि-मन्दपवन-स्पर्शोल्लसन्मल्लिकम्

---

१. इस सन्दर्भ में कालिदास का प्रभाव है।

एतनूननयूथिकानुसरणप्रेयान्ध-पुष्पचय
वासनीव कुलाभिमारभवन केलीवन वर्तते ॥ १ २४

नाटक के अभिनय मे रगमच पर वीणा सगीत-गायन का आयोजन रमणीक सविधान है। रत्नावली वीणा लेकर गाती है—

समिद्धीम्रो घडिदा देवाण जेण तेण भुवणगुरो
परेहि वच्छिद मह करुणा परिवाहिणा कडक्खेण ॥१ ३३

इस गायन की समीक्षा विशेषज्ञ नायक के मुख से है—

सुव्यस्तश्रुतिभि स्वरैरविकल व्यक्तीकृता मूर्च्छना
हृद्योमध्यविलम्बितद्रुतमयस्त्रेधा लयोदर्शित ।
रागाश्चाव्यनिकीर्णवर्णगमका रम्योऽपि तानक्रम
सन्दर्भोऽपि गिरा प्रगल्भमघुर शब्दार्थसौभाग्यभू ॥ १ ३४

इन्द्राजाल-विज्ञान पर आधारित गर्भाङ्क नाटक का समावेश इस रूपक मे विशेष सफल है।[1] इसमे आङ्गिक अभिनय का सङ्केत अभिनेताओ के लिए और प्रेक्षको को प्रबोधित करने के लिए विरल सविधान है। नायक के मुँह से शयनोत्थित नायिका का आखो देखा वणन है—

वारवारमपोटनीविशिथिल वासोऽनुसन्धीयते
स्वेदार्द्रात् प्रनिधार्यते निटिलत श्लिष्टालकाना तति ।
धार्यन्ते च कथचिदसविगलद्धम्भिलभारालसा—
न्यन्यानीव रतावमर्दसुरभीण्यङ्गानि तन्व्यानया ॥ २.१३

शृङ्गार रस के विरल अनुभव और सचारी भाव इस पद्य मे प्ररोचित है।

इसी प्रकार के पाँच पद्य एक से एक-एक बढकर आगे नायक के मुख से सुनाये गये हैं। इस प्रकार के गर्भाङ्कायोजन द्वारा ही नायक और नायिका के एकपदे ऐसे मनोमाव सुनने को मिलते हैं—

नायिका—अविज्ञातभाव जनमुद्दिश्य विधिना विप्रलब्धायाा मे एतावन्मात्रेण किं पर्याप्तम्।

नायक —

उत्कण्ठितासि यस्मिन् सोऽपि तथात्वत्कृते कृतो विधिना।
सदृशप्रणयविनिमयात् सम्प्रति नौ सोऽयमवचनीयपदम् ॥ २ २६

द्वितीय अङ्क मे चित्रपट पर विनोद के युवको के चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, जिन्हें एकैकश देखकर रत्नावली अपने मनोभाव व्यक्त करती है। वह अन्त मे रत्नचूड का चित्र देखकर कहती है—

१ गुरुराम ने इसका नाम तीसरे अङ्क मे स्वप्नविप्रलम्भ-नाटक दिया है।

किमेतदेना-यक्षराणि श्रुतमात्रेणैव सुखयन्ति। अनेन रत्नेश्वर-प्रसादितेन स्वप्नवल्लभेन भवितव्यम्। यतोऽस्य दर्शनमात्रेण परवशास्मि सवृत्ता

रत्नचूड के चित्र को देखकर रत्नावली की जो दशा हुई, उसका वर्णन अनङ्गलेखा नामक उसकी सखी ने चित्रलेखा से इस प्रकार किया—

अलसमनिनतारकास्या दृष्टिरनुरागस्य सुप्रभात निवेदयति। कटकित पुन कपोलतलम्।

चित्रो के इस प्रकार पुरुषस्थानीय होने से यहा छायानाट्य-प्रबन्ध है। तीसरे अङ्क मे नायिका के द्वारा अङ्कित अपने चित्र को देखकर नायक कहता है—

अद्य प्रसन्नो भगवान् मनोभूरद्योपपन्न फलमीप्सितानाम्।
पश्यामि तस्या प्रणयाग्रचिह्नमालेख्य-सम्भावितमात्मरूपम् ॥३ ४

नायक ने भी पार्श्व मे नायिका का चित्र बनाना चाहा, पर समयाभाव और प्रणयातिरेक से विवश होकर ऐसा न कर सका। इन सब प्रसगो मे छायानाट्य प्रबन्ध है, जो गुरुराम का प्रिय सविधान प्रतीत होता है।

कवि कही-कही कथा की भावी प्रगति की सूचना देते चलता है। तीसरे अक मे माता के आ जाने पर नायिका के अलग हो जाने पर नायक कहता है—

प्रथमजलदवृष्टि पातमाह्लादयित्री
प्रतिचलितमुखेन प्रस्तुत चातकेन।
नरभसमपनीता सा च वातूलगत्या
फलति किमभिलाप प्रानिकल्ये विधातु ॥ ३ २१

इससे चतुर्थ अक की सुबाहु द्वारा प्रचारित नायिकापहरणादि की प्रवृति का पूर्वज्ञान होता है।

नायिका पहचाने जाने के भय से अनेक रूपको मे रूप परिवतन करके नायक के समीप आती है। इस नाटक मे कवि ने वस्तु वक्रोक्ति के द्वारा नायिका को आरक्षिका रूप मे अभिसार करने की योजना कार्यान्वित कराई है। यह छाया-नाट्य प्रबन्ध है। आरक्षिका बन जाने से नायिका का रगमच पर एक विशेष ढग से चलना प्रेक्षको को मनोरञ्जक होगा—यह कवि का अभिप्रेत है। कही अभिनय के निर्देशक आरक्षिका नायिका को राजपुरुषोचित गति से चलाना भूल न जायें, वह अपनी ओर से सवाद मे ही इसकी व्यवस्था इस प्रकार करा देता है—

चेटी—इदानी पुनर्वेषानुगुण धीर परिक्राम।

(इति नाट्यनावस्थासदृश परिक्रामति)

चतुर्थ अक में सुबाहु के द्वारा कूट घटना का प्रपच किया गया है, जिसमे वसुभूति, उसके कञ्चुकी आदि मायात्मक है। नाट्यशिल्प की दृष्टि से यह घटना उस युग मे विशेष रोचक थी।[1]

चतुर्थ और पञ्चम अक के बीच मे जो प्रवेशक हैं, वह चक्रवाक और चक्रवाकी पक्षी के सवाद के रूप मे प्रस्तुत है। चक्रवाक सस्कृत बोलता है और चक्रवाकी प्राकृत। यह अलौकिक नाट्य-धर्मी व्यापार कहाँ तक नाट्योचित है—यह भारतीय रूढियो के आधार पर परीक्षणीय है। रगमच पर चक्रवाक और चक्रवाकी का वेष बनाकर उपस्थित पुष्प-पात्रो की परस्पर परिचर्चा परम प्ररोचक होगी। सम्भवत इसीलिए ऐसे पात्रो को समाविष्ट किया गया है।

विमान के द्वारा समग्र भारत की प्राकृतिक, आध्यात्मिक और सास्कृतिक महिमा को सभी प्रेक्षको के समक्ष लाने का कवि का प्रयास भास, कालिदास, राजशेखर आदि की पुरानी प्रथा के अनुसार देश की राष्ट्रीय एकता विभावित करने के लिए नितान्त सफल है। इससे नाट्यशरीर मे उदात्त चमत्कार निर्भर हो जाता है।

सवाद

सवाद मे कही-कही अन्योक्ति का सौरभ है। यथा,

विदूषक —एषा वकुलमालिका हृदयहारिणी नाम। किंतु न ज्ञायते परिगृहीतपर्वा वा न वेति।

इस प्रसग मे वकुलमालिका रत्नावली नामक नायिका के लिए अन्योक्ति द्वार से प्रयुक्त है।

लोकोक्तियो के प्रचुर प्रयोग से सावादिक प्रभविष्णुता सविशेष है। यथा,

१. फलति किमभिलाष प्रातिकूल्ये विधातु
२ किमेतदद्दष्टचद्रमण्डला चद्रिका
३ चद्रिकाभिमुखश्चकोर
४ कथ सहकारमुज्झित्वा मधुरसव प्रवर्तते।
५ पर्जन्याना परस्परसघर्षेण सर्वथा परितोषो भवति। केवल कमलिन्या पुनरातक।

रत्नेश्वर-प्रसादन-नाटक मे एकोक्ति की चारुता प्रकट होती है। तृतीय अक मे २१ वें पद्य के पश्चात् नायक अकेले ही रगमच पर है। वह अपनी मनोदशा का वर्णन करता है—

रत्नचड —(परित पश्यन्) सद्यस्त्वधीनमेव सौभाग्य भावानाम् यत।

१ चतुर्थ अकारम्भ से १६ वें पद्य के पहले तक कूट-घटना-प्रयोग है।

चन्द्राननविरहिन चत्वर प्रतिभाति मे ।
अपि चन्द्रातपाक्रान्तमनालोकमिवापरम् ॥३ २२

(पुन सवैक्लव्यम्)

प्रविकसदसितोत्पलेक्षणा परिणतचन्द्रपरिस्फुरन्मुखीम् ।
अयमहमनुपाल्य कामिनी कथमधुना गमयामि यामिनीम् ॥३ २३

अथवा प्रियाधिष्ठितपूर्व प्रदेश निगमयन्नेव निविशामि ।

इतना बोल चुकने के पश्चात् उसकी नायिका रग-पीठ पर आ जाती है और वह और उसकी चेटी अन्तरित रहकर उसकी एकोक्ति सुनती रहती हैं, जिसमे वह नायिका का स्मरण करता है, चन्द्र को गाली देता है, और अन्त मे अपनी हृदयस्थ प्रेयसी की अभ्यर्थना करता है—

गूढासि किं नयनगोचरता भजेथा
गौरागि मा परिरभस्व कुचोपपीडम् ।
स्वप्नापराद्ध इति कुप्यसि किं नु मह्य
त्वत्पादयोरपहरामि नतिं प्रसीद ॥ ३ २७

किसी सम्बद्ध प्रमुख व्यक्ति को अन्तरित रखकर एकोक्ति की गूढ व्यथा को सुनाने का उपक्रम सफल है ।

सवाद के द्वारा इतिवृत्तात्मक विवरणो के अतिरिक्त इहलौकिक और पारलौकिक परमैश्वर्यशालिनी विभूतियो का परिचय कराना कही-कही परिहास के लिए भी है । यथा,

गोत्रे पृष्ठे कुलशिखरिणा दानकाले सुताया
देव सोऽपि स्तिमितवचनो वन्दमानेऽथ तस्मिन् ।
आशाम्योक्तिप्रथनविधुर सोऽपि वेधा पुरोधा
सान्हास सदसि विबुधैस्तावुभावन्न दृष्टौ ॥ ५ १८

कवि सवादो मे वक्रोक्ति द्वारा ऐसे वाक्यो के लिए अवसर निकालता है, जो अविस्मरणीय है । यथा,

चन्द्रशेखरोऽम्रनशीकरानुपगशीतले मन्दरेऽपि निवसन् वाराणसीविरहेण सन्तपति ।

शैली

गुरुराम की भाषाशैली नाट्योचित है । वे सरल भाषा का प्रयोग करते हैं । फिर भी रसोचित भाषा समीचीन अक्षर-सयोग द्वारा युद्ध प्रकरणो मे उत्साहात्मक वातावरण का सृजन करने के लिए सुसदृप्त है । यथा,

प्रत्युद्यानमिव प्रमादिनमिवोपालब्धवद्दानव-
प्रत्यग्रं पथि रत्नचूडविनिखप्रक्षिप्तमन्त्र विघे ।
निर्भिद्य प्रसभं सुबाहु-हृदयं निर्गत्य वेगात्तत
पाताले वसना प्रियवदमिव क्षोण्या वितत्यन्तरम् ॥ ५ ३०

रत्नेश्वर-प्रसादन के सम्पादक पी० पी० शास्त्री ने इस रचना की समीक्षा करते हुए कहा—

Of his works, the Ratnesvaraprasādana is easily the best from the point of view of literary merit The easy flow of style, the graceful delineation of characters and the delightful imitation of the words, phrases and moods standard authors like Kalidasa and Bhavabhuti which sometimes make us wonder whether the imitator or the imitated is the greater poet—all these combine to make Gururama a poet and dramatist of the first magnitude



[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

---

१. [illegible]

२. [illegible]

राजनाथ द्वितीय था। अरुण के आश्रयदाता विद्यानगर के राजा वीरनरसिंह (१५०५–१५०६ ई०) तथा कृष्णदेव राय (१५०६–१५३० ई०) थे। अरुण पारेन्द्र अग्रहार मे रहते थे।

अरुण का अनेक भाषाओ पर समान अधिकार था। उन्हें डिण्डिमकविसार्वभौम और कविराज की उपाधियाँ समलङ्कृत करती थी। अरुण ने कृष्णदेव राय की विजयो का वर्णन अपनी तेलगु रचना कृष्णरायविजयम् मे किया है।

वीरभद्र का पाठ राजा के समक्ष हुआ था। वीरभद्रविजय मे पुराण की सुप्रसिद्ध कथा दक्षयज्ञ विषयक है। वीरभद्र की सृष्टि करके उससे दक्ष के यज्ञ का विनाश कराया गया था। यह डिम कोटि का रूपक है। इसमे चार अक हैं। इसका प्रथम अभिनय भूपतिरायपुरम् मे राजनाथ के महोत्सव मे किया गया था।[1]

महिपमगल भाण

महिप-मगल-भाण के रचयिता नारायण का प्रादुर्भाव केरल मे १६ वी शती के मध्यकाल मे हुआ। इनके पिता शकर उच्च कोटि के गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। शकर का जन्म १४६४ ई० मे हुआ था। इन्हे बृहस्पति का अवतार विद्वत्ता के कारण माना गया। शकर के समान नारायण ने भी गणित का अभ्यास किया। नारायण को कोचीन के किसी राजा राजराज का समाश्रय प्राप्त था, जिसकी इच्छानुसार उन्होंने इस भाण का प्रणयन किया।

नारायण की अन्य कृति भाषानैषधचम्पू मलयालम् मे मिलती है। इसमे सस्कृत मे निबद्ध पद्य उच्च कोटि के हैं, जिन्हे देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी रचना महिपमगल के लेखक द्वारा ही हुई होगी। यह मलयालम् के सर्वोत्तम चम्पुओ मे से है। नारायण की दूसरी रचना रासक्रीडा मानी जाती है। इसमे मन्दाक्रान्ता छन्द मे ६१३ पद्य हैं। यथा नाम इसमे कृष्ण की गोपियो के सग रासलीला का वर्णन है। उत्तररामचरितचम्पू का श्रेय भी नारायण को दिया जाता है। दोनो की कुछ समानतायें सकेत करती हैं कि इनका रचयिता एक ही व्यक्ति है।

महिपमगलभाण मे अनगकेतु और अनगपताका का प्रणय वर्णित है। इसकी कथावस्तु तो साधारण भाणो के प्राय समान ही है, किन्तु इसमे काव्योन्मेष और वर्णना की छटा उच्च कोटि की है। केरल मे इसके पद्य अब भी लोकोक्ति रूप मे लोगो की जिह्वा पर विराजमान हैं। यथा नायिका का वर्णन है।

१ यह नाटक Trennial Cat of Skt Mss in Oriental Library मद्रास मे III २८३२ पर हस्तलिखित मिलता है।

२ महिपमगलभाण का प्रकाशन पालघाट से १८८० ई० मे और त्रिचूर से भी हुआ है।

कुटिलमसितमेघच्छायमाभोगभार
चिकुरमधिकदीर्घं लम्बमानं वहन्ती।
परिलघयति पश्चाद्भागकान्त्यापि धैर्यं
न हि गुलगुलिकाया क्वापि माधुर्यभेदः ॥

सरसी की ओर स्नान के लिए जाती हुई लावण्यवती कन्या का वर्णन है—

अर्वालक्ष्यमनोहरोरुयुगलं नात्यायतं बिभ्रती
वासः प्रोषितभपर्णैरवयवैः कान्ति किरन्ती पराम्
तैलाभ्यक्त-तनुर्निबद्धचिकुरा ताम्बूलगर्भानना
वापीं स्नातुमितो निजान्निलयनान्निर्याति शातोदरी

भाण के अन्त मे कवि ने अपने आश्रयदाता का परिचय देते हुए लिखा है—

राजत्कीर्तिविभूषितत्रिभुवनं श्रीराजराजाह्वयं
राजेन्दुं क्षितिमायुगान्तसमयं पायादपेतापदम्।
वामार्धार्जितपुण्यपूरलहरी सोमार्धचूडामणे
कामाक्षीकुलदेवता मम च सा कामप्रसूः कल्पताम्।

कामाक्षी की पुनः स्तुति करते हुए नारायण कहते हैं—

अद्याहं मातमहाराजस्य राजराजस्य निदेशात् कम्पितवलयालय विहारया शिवकाममुन्दर्या श्रीकामाक्ष्या कटाक्षनालविगलदविरल-दयामृत मदासेक-प्रफुल्लकवित्वपादपेन केनापि निबद्धं कमपि भाणम्।

सत्यभामापरिणय

सत्यभामापरिणय सोलहवी शती के कवियो की अतिशय प्रिय कथा रही है। लक्ष्मण के पुत्र महाकवि स्फुलिंग ने पाँच अङ्कों का नाटक इस कथा का आश्रय लेकर प्रणीत किया।[1] इसका प्रथम अभिनय मुलन्द के उत्सव मे हुआ था।

स्फुलिंग का दूसरा नाम मल्लिकार्जुन था। वे कुमारडिण्डिम के जामाता थे। कुमार डिण्डिम का रचना काल १५०० से लेकर १५३० ई० के लगभग है। ऐसी स्थिति मे सत्यभामा परिणय की रचना १५५० ई० के लगभग हुई होगी।

नन्दिघोष-विजय

नन्दिघोष-विजय के रचयिता शिवनारायण दास ने पाँच अङ्कों मे कमला और पुरुषोत्तम की पारस्परिक चर्या का वर्णन किया है। इसीलिए इस नाटक का अपर

१ सत्यभामापरिणय का उल्लेख Triennial Cat of Sanskrit Mss in Oriental lib, Madras III 2953 मे मिलता है।

नाम कमलाविलास भी है।[1] इसमे पुरी की रथयात्रा महोत्सव के कतिपय दृश्य भी हैं। इसमे कवि के आश्रयदाता गजपति-नरसिंह-देव की भूमिका है। वे १६ वीं शती के मध्य भाग मे हुए। नरसिंह-देव उडीसा के राजा थे।[2]

रुक्मिणीहरण

सोलहवी शती मे दक्षिण मे गोदावरी के परिसर से शेषनरसिंह नामक विद्वान् आकर काशी में प्रतिष्ठित हुए। उन्हं वहाँ के राजा गोविन्दचन्द्र का आश्रय प्राप्त हुआ। उनकी धर्मशास्त्र और व्याकरण की प्रतिभा से तत्कालीन काशीमण्डल आलोकित हो उठा। उनकी शिष्य-मण्डली मे भट्टोजी और नागोजी उदीयमान व्याकरणाचार्य हुए। इन्ही नरसिंह के पुत्र चिन्तामणि ने रुक्मिणीहरण नामक नाटक लिखा।[3] इनकी दूसरी रचना रसमजरी-परिमल है।[4] चिन्तामणि का रचनाकाल सोलहवी शती का अन्तिम चरण है। इनके भाई शेषकृष्ण ने तीन नाटक लिखे कंसवध, मुक्ताचरित, सत्यभामा-परिणय तथा मुरारि-विजय।

ज्ञानचन्द्रोदय

ज्ञानचन्द्रोदय नामक नाटक के रचयिता पद्मसुन्दर हैं, जिन्हें मुगल सम्राट् अकबर का आश्रय प्राप्त था। पद्मसुन्दर नागौर के तपागच्छ के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। वे अकबर के सभासद् थे। जोधपुर के राजा मालदेव (१५३२-१५७३ ई०) ने भी पद्मसुन्दर को सम्मानित किया था।

इस नाटक के अतिरिक्त पद्मसुन्दर की अन्य रचनायें हैं—सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव (कोष), शृङ्गारदर्पण, हायनसुन्दर (ज्योतिष), भविष्यदत्तचरित, रायमल्लाभ्युदय, पार्श्वनाथ काव्य, प्रमाणसुन्दर। पद्मसुन्दर का रचनाकाल १५८२ ई० तक है। ज्ञानचन्द्रोदय की रचना १५७० ई० के लगभग हुई होगी।

वासन्तिकापरिणय

वासन्तिका-परिणय के प्रणेता शठकोप यति सोलहवी शती मे दक्षिण भारत के अहोविल मठ के सातवें आचार्य थे।[5] इनके पहले छठे आचार्य पराङ्कुश हुए, जो

१ इसकी हस्तलिखित प्रति लन्दन मे इण्डिया आफिस के पुस्तकालय मे ४१९० सख्यक है।

२ De Hist of Skt, Lit P 511

३ रुक्मिणीहरण का गुजराती पद्यानुवाद बम्बई से १८७३ ई० प्रकाशित हुआ। ब्रिटिश म्यूजियम मे इसकी प्रति २६३५९ सख्यक हैं।

४ चिन्तामणि तथा रसमजरी का उल्लेख Aufrecht's Cat Cat Pt I 527 तथा 77 मे हैं।

५ मैसूर से १८९२ ई० मे वासन्तिका-परिणय का प्रकाशन हो चुका है।

विजयनगर के रामराज (१५४२-१५६५ ई०) के समकालीन थे। शठकोप के समकालीन विजयनगर में रङ्गराज (१५७४-१५९८) हुए। इनका मूल नाम विठमल था और इन्होंने कवितार्किक-कण्ठीरव की उपाधि प्राप्त की थी। कहते हैं कि वे १०० लेखकों को साथ ही कविता लिखा सकते थे। वाहिनीपति नामक कवि ने इनकी प्रशंसा की है।

वासन्तिकापरिणय में पाँच अङ्क हैं। इसमें वासन्तिका नामक वनदेवी से अहोबिल नरसिंह का विवाह वर्णित है।

कौतुकरत्नाकर

कौतुकरत्नाकर के रचयिता वाणीनाथ के पुत्र कवितार्किक थे[1]। वे नोआखाली में भुलुआ के राजा लक्ष्मण-माणिक्य के पुरोहित थे। इन्होंने १६ वीं शती के अन्तिम चरण में कौतुकरत्नाकर नामक प्रहसन का प्रणयन किया। इसके नायक राजा दुरितार्णव बुद्धिहीन और अशक्त थे। उनकी राजधानी पुण्यवर्जित नगरी थी। एक बार उनकी दुःशीला पत्नी का अपहरण हो गया। उन्होंने अपने धूर्त सेवकों को उसे ढूँढ निकालने के लिए नियुक्त किया। उनमें से एक सुगतिशान्तक नामक नगर-रक्षक था, जिसके भुजपाश में आबद्ध होकर वह रानी जब बन्दिनी बनी थी, तभी अपहृत हुई। वसन्तोत्सव होने वाला था। बिना रानी के राजा उसमें कैसे सम्मिलित हों? राजा के परामर्शदाता मन्त्री थे कुमतिपुञ्ज, आचारकालकूट, वैद्य व्याधिवर्धक, ज्योतिषी अशुभचिन्तक, सेनापति समरकातर तथा गुरु अजितेन्द्रिय। इन सबकी सम्मति से अनङ्गतरङ्गिणी नामक वेश्या पत्नी के स्थान पर रख ली गई। तभी कपट-वेशधारी नामक ब्राह्मण के विषय में सूचना दी गई कि इसने रानी का अपहरण किया है। इस ब्राह्मण ने अनङ्गतरङ्गिणी से प्रेम करना आरम्भ किया था, पर वेश्या ने उसे दल कर ऐसा पटका की नाक से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। न्याय-चक्र से वह अपराधी तो घोषित हुआ, किन्तु वसन्तोत्सव में उसका अपराध धुल गया।

लक्ष्मणमाणिक्यदेव के नाटक

लक्ष्मणमाणिक्य देव नोआखाली के राजा अकबर के समकालीन थे। इन्होंने सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में दो नाटक कुवलयाश्वचरित और विख्यात-विजय लिखे।[2] कुवलयाश्वचरित में कुवलयाश्व और मदालसा के प्रणय की कथा है और विख्यातविजय में छः अङ्कों में नकुल के कौरवों से युद्ध की कथा है। इसमें कर्ण-संहार तक की घटनायें वर्णित हैं।

१. इसकी प्रति लन्दन में इण्डिया-आफिस लाइब्रेरी खण्ड ७ में ४६१८ तथा ४१६७ संख्यक है।

२ कुवलयाश्वचरित तथा विख्यातविजय की चर्चा Aufrecht के Catalogus Catalogorum III 25 तथा III 120 में क्रमशः है। हरप्रसाद की रिपोर्ट में पृष्ठ १८ पर इसका विवरण है।

कुवलय-विलास

कुवलय-विलास के प्रणेता रयस अहोवलमन्त्री के पिता नृसिंहामत्य और पितामह चप्पय मन्त्री थे। इस नाटक के पाँच अङ्कों मे कुवलयाश्व और मदालसा की कथा वर्णित है। उसकी रचना विजयनगर के राजा श्रीरंगराज (१५७१-१५८५ ई०) के इच्छानुसार हुई।[1]

ज्ञानसूर्योदय

वादिचन्द्रसूरि द्वारा विरचित ज्ञानसूर्योदय नाटक कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय और वेङ्कटनाथ के सङ्कल्पसूर्योदय की परम्परा की परवर्ती श्रेष्ठ कड़ी है।[2] कवि ने नाटक के अन्त मे अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार वे मूलसंघी ज्ञानभूषण-भट्टारक के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इस नाटक की रचना कवि ने मधूक नगर मे १५९२ ई० मे की।[3] मधूक नगर गुजरात मे था। वादिचन्द्र ने सम्भवत उसी प्रदेश को समलकृत किया था।

वादिचन्द्र ने काव्यात्मक और धार्मिक अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया। इनके पवनदूत मे १०१ पद्य और पार्श्वपुराण मे १५०० पद्य हैं।[4] इसकी रचना १५८३ ई० मे हुई थी। इनके लिखे ग्रन्थ पाण्डव-पुराण, होलिका-चरित्र और सुभग-सुलोचना-चरित, यशोधर-चरित आदि सस्कृत भाषात्मक हैं। यशोधरचरित की रचना १६५७ वि० स० अर्थात् १६०० ई० मे हुई। वादिचन्द्र का रचनाकाल प्राय सोलहवी शती का उत्तरार्ध है।

ज्ञानसूर्योदय पर प्रबोधचन्द्रोदय का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। इसकी कथावस्तु और असख्य पद्यो पर प्रबोधचन्द्रोदय की गहरी छाप है। बहुत से पद्य तो प्रबोधचन्द्रोदय के अनुकरण पर ही अनुरणन करते हैं। दोनो मे नायकादि प्रकृति के नाम और चारित्रिक वैशिष्ट्य समान हैं।

डा० गुलाब चौधुरी के अनुसार 'यह (ज्ञानसूर्योदय) भी श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोध-चन्द्रोदय के उत्तर मे लिखी कृति है। दोनो रचनाओ मे बहुत कुछ साम्य है। पात्रो के नामो मे प्राय साम्य है। इसके साथ ही एक ही आशय वाले बीसो पद्य और गद्य-वाक्य थोडे से शब्दो के हेरफेर के साथ मिलते हैं। ज्ञानसूर्योदय के कर्ता ने प्रबोधचन्द्रोदय के समान ही बौद्धो का उपहास किया है और क्षपणक के

१ इसकी हस्तलिखित प्रति तजौर मे २३१६ सख्यक है।

२ ज्ञानसूर्योदय का हिन्दी मे अनुवाद १९०९ ई० मे जैनग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, बम्बई से हो चुका है।

३ 'वसुवेदरसाब्जाङ्के वर्षे माघे सिताष्टमी-दिवसे' ग्रन्थ समाप्ति का काल निर्दिष्ट है।

४ पवनदूत काव्यमाला के १३ वें गुच्छक मे प्रकाशित है।

स्थान मे सितपट को खड़ा कर श्वेताम्बर वर्ग की कटु आलोचना की है।[1]

ज्ञानसूर्योदय मे प्रस्तावना के स्थान पर उत्थानिका है, जिसमे कमलसागर और कीर्तिसागर नामक ब्रह्मचारी सूत्रधार से इस नाटक का प्रयोग करने के लिए कहते हैं।

अभिराममणि

सात अङ्को के नाटक अभिराममणि के प्रणेता सुन्दर मिश्र का प्रादुर्भाव सोलहवीं शताब्दी मे हुआ। इसकी रचना, जैसा ग्रन्थ मे लिखा है, १५२१ शक-संवत्सर अर्थात् १५९९ ई० मे हुई। इसमे रामकथा महावीरचरित और अनर्घराघव के अनुरूप विकसित की गई है। इसका प्रथम अभिनय जगन्नाथपुरी मे पुरुषोत्तम विष्णु के महोत्सव मे हुआ था।[2]

बालकवि के नाटक

बालकवि की प्रतिभा का विकास केरल मे हुआ। इनके आश्रयदाता कोचीन के राजा रामवर्मा थे, जिनको नायक मानकर कवि ने रामवर्मविलास नाटक की रचना की। बालकवि उत्तर अर्काट मे मुल्लन्ड्रम् के निवासी थे और आश्रयदाता की खोज मे केरल आये थे। इनके पिता कालहस्ती और पितामह मल्लिकार्जुन थे।[3] इनके गुरु कृष्ण केरल के प्रकाण्ड पण्डितों मे से थे। बालकवि के कुल मे काव्य-रचना आनुवंशिक प्रतीत होती है। इनके प्रपितामह यौवाभारती भी कवि थे।

रामवर्म-विलास

बालकवि के लिखे दो नाटक मिलते हैं—रामवर्मविलास और रत्नकेतूदय।[4] रामवर्मविलास के पाचो अङ्को मे राजा रामवर्मा के प्रणय और विजय की कथा है, जिसके अनुसार नायक रामवर्मा कोचीन के राज्य का भार अपने भाई गोदावर्मा (१५३७-१५६१ ई०) पर डालकर कुलाक कावेरी मे रहने लगे और वहाँ मन्दार-माला नामक नायिका के प्रणयपाश मे आबद्ध होकर उससे विवाह करके कुछ समय

१ जैनसाहित्य का बृहदितिहास भाग ६ पृ० ६०१ जैन साहित्य और इतिहास पृ० २६७-२७१ लेखक नाथूराम प्रेमी।

२ विल्सन कृत थियेटर आफ दी हिन्दूज के पृष्ठ १८३ पर। विलसन ने इसकी दो प्रतियो का अवलोकन किया था। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलोगोरम १२६ मे है।

३ कवि ने अपनी वंश परम्परा का वर्णन करते हुए रत्नकेतूदय में कहा है—
एतमुपश्लोकितवान् केरलगुरुर्जिताशेषपणेमुपी-विशेष कृष्णामनीपी।

४ रामवर्मविलास-नाटक मद्रास के राजकीय संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थागार में ३८७३ सख्यक है। रत्नकेतूदय का प्रकाशन श्रीविद्याप्रेस, कुम्भकोनम् से हो चुका है।

विताया। इस बीच कोचीन पर शत्रुओ के आक्रमण हुए और गोदावर्मा की सूचना पाकर उन्होने पुन कोचीन आकर राज्य का भार सँभाला और शत्रुओ को परास्त किया। राज्यभार छोड कर रामवर्मा ने वाराणसी की तीर्थयात्रा भी की थी।

रामवर्मा ने १६०१ ई० तक शासन किया। इनके पहले १५६१ से १५६५ ई० तक कोचीन पर वीर केरलवर्मा का शासन था। गोदावर्मा १५३७ से १५६१ ई० तक कोचीन के राजा रहे। चिदम्बरम् के मन्दिर मे रामवर्मा का एक उत्कीर्ण लेख १५७५ ई० का मिलता है।

योऽभद्यौवनभारतीकविवराच्छ्रीसोमनाथात्मज —
च्छन्दोग स हि मल्लिकार्जुनकविर्धन्य पिना यत्पितु ।
सोऽय बालकवि सुधार्द्रकविताभाक्कालहस्त्यात्मज
प्रख्यातो भुवि कम्य न श्रुतिपथ श्रेयोनिधिर्गाहते ।।

बालकवि के रत्नकेतूदय की रचना भी कोचीन के राजा रामवर्मा की इच्छानुसार हुई। इसमे रामवम नायक हैं और उनके राज्य छोडने के पूर्व की कथा है।

उपर्युक्त दोनो नाटको का ऐतिहासिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त जीवनचरितात्मक नाटकीय कथावस्तु का विकास इन नाटको की विशेपता है। ऐसे नाटको में कार्यावस्थायें नही मिलती।



सत्रहवीं शती के नाटक

मृगाकलेखा

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रणेता विश्वनाथ-देव गोदावरी के परिसर मे धारासुर नगर से काशी मे आ बसे थे।[1] उनके पिता त्रिमल्लदेव थे। काशी ने कवि को आकर्षित किया था, क्योकि सारे भारत से कवि-प्रतिभा सिमट कर काशी को गौरवान्वित कर रही थी। कवि के शब्दो मे उनके नाटक के सामाजिक थे—

एते वगकलिगसिहलवलत्तैलगभूलिंगगा—
श्चचद्द्राविडगौडचोलविलसत्काश्मीरसौवीरजा।
अन्ये लाटवराटभोटनटगा कर्णाटचेद्युद्भवा
केऽप्यन्ये कविवाक्यकौशलकलाविज्ञा महाराष्ट्रजा ॥ १४

विश्वनाथ ने १६०७ ई० मे इस नाटिका को रचा था। अठारहवीं शती के माधवदेव न्यायसार के प्रणेता है। वे भी इसी धारासुर के निवासी थे। सम्भवत वे विश्वनाथ के वश के थे। नाटिका म शिव की स्तुति से और नाटिका के काशी-विश्वनाथ के महोत्सव म प्रयुक्त होने से कवि का शैव होना स्पष्ट है।

कवि का विश्वास है कि सस्कृत के पुराने महाकवियो से पर्याप्त विनोद सम्भव नही है। अतएव नये काव्यो का सस्कृत मे प्रणयन होना सामिप्राय है—

अतिपरिचयदोषात् प्रौढबालेव वाणी
न रचयति विनोद प्राक्तनाना कवीनाम्।
अभिनवकविवाचा कापि प्रीतिर्नवीना
युवतिरिव विधत्ते प्रौढमानन्दमन्त ॥ ११३

इस नाटिका का प्रथम अभिनय सूर्योदय के समय आरम्भ हुआ था, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

अये प्रथमुदयाचलान्तरित एव भगवानम्भोजिनीवल्लभ इत्यादि। अन्त मे कवि की आशसा है—

यावत् कल्पान्तवातो न चलति भुवने सतु तावत् समस्ता।
विस्फूर्जत्क्षीरधाराद्रवमधुरतरा सत्कवीना प्रबधा ॥ ४-२४

कथावस्तु

कलिङ्ग के राजा कर्पूरतिलक ने कामरूप की राजकुमारी मृगाङ्कलेखा को मृगया करते समय देखा और अपनी महारानी विलासवती से बढ़कर उसके प्रति

१. इसका प्रकाशन सरस्वती-भवन-प्रकाशन-माला मे २६ सख्यक हो चुका है।

आकृष्ट हुआ। वह चन्द्र को सूर्य की भाँति सन्तापक मानने लगा। नायक प्रेयसी के लिए नितान्त प्रदग्ध था।

दानव शखपाल तिरस्करिणी विद्या से नायिका को हरने ही वाला था कि भगवती सिद्ध योगिनी के द्वारा नायक ने उसे अपने अन्त पुर मे मँगवा लिया। वह विलासवती की सखी बनाकर रख दी गई। वसन्तोत्सव के अवसर पर विदूषक के साथ राजा ने मृगाङ्कलेखा को मदनोद्यान मे अपनी सखियो—कलहसिका और लवगिका के साथ देखा और उससे सम्पर्क स्थापित किया ही था कि सिद्धयोगिनी की आज्ञानुसार उससे मिलन के लिए चल देना पडा।

नायक और नायिका एक दूसरे के वियोग मे नितरा सन्तप्त थे। नायक के मनोविनोद के लिए विदूषक ने नायिका का चित्र बनाया, जिसे देखकर नायक ने कहा—

हरति हृदयमेषा चित्रभूमौ गतापि॥ २.१४

अन्त मे नायक नायिका के निकटवर्ती प्रदेश मे जाकर सखियो से उसका वार्तालाप सुनता है। वह उनके पास जाकर उसे सप्रणय पकडना चाहता है और अन्त मे उसका आलिंगन करता है। तभी महारानी की आज्ञानुसार उन्हे मृगाङ्क-पूजा के लिए चल देना पडा।

शखपाल ने मृगाकिका का पिण्ड न छोडा। एक दिन वह अपहरण करके श्मशान मे कालीमन्दिर में उसे रखकर पूजा करके विवाह करने का उपक्रम कर रहा था। नायक उसे ढूँढते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसने विक्रमोवर्शीय के पुरुरवा की भाँति मयूर, हाथी, हरिण आदि को सम्बोधन करके उन्हे अपनी प्रेयसी का ठिकाना बताने को कहा। अन्त में श्मशान में पहुँचा, जहाँ राक्षस-लीला देखने के पश्चात् काली के मन्दिर मे गया। वहाँ उसने दूर से ही शखपाल को मृगाकलेखा से यह कहते सुना—

> किं प्राणेश्वरि खेदमत्र कुरुषे यत्प्राणनाथे मयि
> त्रास मुञ्च मनस्विनि त्यज रुप किं लोचने साश्रुणी।
> त्वत्प्राप्त्यै यदवोचिष पुररिपो कातामिदानीमह
> तत्कृत्वार्चनमिंदुसुदरमुखि त्वा चुम्बयिष्याम्यहम्॥

उसकी बातो से राजा को विदित हुआ कि यह शखपाल है और मृगाकलेखा से प्रणय निवेदन कर रहा है। राजा और शखपाल दोनो क्रोधान्ध होकर आमने-सामने हुए। शङ्खपाल दौडकर तलवार लेने गया और फिर लौटा नही। नायक ने नायिका का वही आलिगन किया और उसे लेकर अन्यत्र चला गया।

नायक और नायिका के विवाहोत्सव का उपक्रम हुआ। मृगाकलेखा के पिता को सदेश भेजा गया। वे आ पहुँचे। नायक ने उन्हें देखा तो कहा—

ईदृशी [illegible] भवेत् ।[1]
नोदेति कैरवानन्दकारिणी चन्द्रिका रवेः ॥ ४.७

कामान्धिकर समझता था कि मेरी कन्या किसी की नहीं । फिर तो उसके विनाश का समाचार सुनकर वह अतिशय हर्षित हुआ । पौष्पकेन नायक कर्पूरतिलक से मिला । सिद्धयोगिनी नायिका को लेकर उपस्थित हुई । मृगांकलेखा ने आलिंगन पूर्वक उसका अभिनन्दन किया ।

तभी राजा ... उधर गजेन्द्र आगे नायक को ... राजधानी पर आया । नायक गजेन्द्र को देखने के लिए निकलने वाला ही था । पर वहीं सेनापति का भाई युद्धवीर के लिए राजधानी पर चढ़कर सुनाई पड़ा । जब नायक को गजेन्द्र ने ही मार डाला । राजा का प्राण जाते ही वह गया ।

रत्नचूडापादवत्त के शंखपालश्रवण से आकृष्ट राजधानी रत्नचूड जाता है कहता है

सर्वोर्वीश्वराणां विभवात्मतया येन सम्यक् निलीना
साम्राज्ये ... नवीन ... ।
देवी ... रत्नावतीनायकस्तु ... ॥
... ॥ ४.१६

सिद्धयोगिनी कामरूप ... ने बताया कि विधिवत् सम्पन्न हुआ । रत्नचूड ने बताया कि मृगांकलेखा का पति सार्वभौम सम्राट् होगा । इसीलिए सिद्धयोगिनी ने इसी आशय से ... बताया था ।

शैली

विश्वनाथ ... शब्दों के प्रयोग में विशेष ध्यान देते हैं । यथा,

[illegible] ॥ ९.४

अलंकार भी ... आदि प्रयुक्त हैं ।

... रीति के द्वारा प्रभावपूर्ण ... करने में विश्वनाथ को विशेष सफलता प्राप्त है । इनकी ... बड़ी मधुर है ।

अनुप्रास के द्वारा यहाँ का ... विन्यास प्रायशः लक्षित है । यथा

... ।
... ।

१. यह पद्य अभिज्ञानशाकुन्तल के 'मानुषीषु कथं वा स्यात्' १.२४ के समान है ।

भ्रमितरलितपक्षं कुर्वतेऽमी रतेच्छ-
मविरतमिह चञ्चूमञ्चयन्तश्चकोरा ॥ २ ३८

कहीं-कहीं अन्योक्ति-विलास देखते ही बनता है। यथा, मृगाकलेखा के विषय मे उसकी सखी लवंगिका कहती है—

अस्माकं पंजरस्थिता चकोरी चन्द्रिकासलिलं पातुं मुक्तबन्धना कर्त्तव्या।

इसमें व्यंजना नाट्योचित ही है।

रस

शृङ्गार की अजस्र धारा का आलम्बन विभाव नायिका है—

नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधरः
कालिन्दीजलचारु कुन्तललता बाहूमृणालोपमौ।
रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे।
सेयं कापि नवीनमीननयना सर्वोपमानिर्मिता॥ १ २१

शृङ्गार का उद्दीपन है वसन्तानिल[1]—

कावेरीजलसगशीतलशिलापृष्ठे लुठन्तः श्रमाद्
आन्ध्रीपीनपयोधरोच्चशिखरप्राग्भारसचूर्णिता।
चोलीलोलनलालिता कुचतटे लाटीभिरालिंगिता
दूता एव मनोभवस्य भुवने चचन्ति चैत्रानिला ॥१ २७

तृतीय अक में नायक की शखपाल से मुठभेड होने पर रौद्ररसोचित विभावानुभाव और सचारी भाव, ओजोगुणोचित पदावली में निबद्ध हैं।

नाटिका में शृङ्गार को अगी बनाकर उसे वीर और रौद्र से सगमित कराने में कवि को सफलता मिली है।

नाट्यशिल्प

प्रथम अक के आरम्भ होने के पूर्व विष्कम्भक के द्वारा नाटिका की कथा की भूमिका रत्नचूड नामक राजमन्त्री की एकोक्ति के रूप में प्रस्तुत है। द्वितीय अक के पहले के प्रवेशक का काव्यपूर रसात्मकता से निभर करना अशास्त्रीय है।

उद्यानपाल से शृङ्गारित और तच्छेदार तीन पद्य कहलवाना अस्वाभाविक है। उसे तो प्राकृत बोलना चाहिए। वह कहता है—

सिंहलीघनकुचाचलपातोच्चर्णितश्चपलरीतिमुदस्य।
वाति मालववधूसुरतान्तोद्भासिसीकरहरोऽत्र समीरः॥ १ ३२

द्वितीयाङ्कान्त में रङ्गमञ्च पर नायक आलिंगन करता है। यह अभारतीय होने पर भी परम्परागत विधान है।

---

१. इस वर्णन पर कर्पूरमञ्जरी के चैत्रानिल वर्णन की छाया है।

मृगाकलेखा विशेष रूप से रत्नावली, मालतीमाधव कर्पूरमञ्जरी आदि रूपको के अनुरूप निर्मित है। इसमें भास, कालिदास, भवभूति, राजशेखर आदि महाकवियो के सविधान वाग्वैचित्र्य और वर्णना का एकत्र रसास्वादन होता है।

दोष

कामियो की प्रणय प्रवृत्ति का निदर्शन करने के लिए मृगाकलेखा के कटाक्ष को पवित्र गगा की तरगो के सदृश बताना गगा का अपमान है। कवि का यह कहना अनुचित है—

अन्त स्मितसुधासारोल्लसदाननपकजा
अपागैरगना गागैस्तरगैरिव सिंचति ॥ १ ३७

छन्द

विश्वनाथ के प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा क्रमश ८१ और २५ पद्यो में प्रयुक्त हैं। इनके पश्चात् उसने १७ पद्यो में वसन्ततिलका और १५ में मालिनी का प्रयोग किया है।

•

मदनमंजरी-महोत्सव

मदनमंजरी-महोत्सव नाटक के रचयिता विलिनाथ का जन्म चोल प्रदेश के विष्णुपुर नामक अग्रहार के महापण्डित यज्ञनारायण के कुल में हुआ था। यज्ञनारायण को अच्युतराय ने मणिभूषण नामक ग्राम पारितोषिकरूप में प्रदान किया था और विद्यावल्लभ की उपाधि दी थी। यज्ञनारायण अच्युत की राजसभा में आये। विद्वानों के साथ अच्युत ने उनकी परीक्षा ऋग्वेद-सामवेद के पाठ में ली और उनकी विशेषता देखकर सम्मान प्रदान किया। यज्ञनारायण के पौत्र कनक-सभापति हुए। कनक-सभापति के पुत्र विलिनाथ हुए।

अच्युतराय विजयनगर के राजा १५३० से १५४१ ई० तक थे। उन्होंने वैदिक ब्राह्मणों को मद्रास के आसपास अग्रहारादि दिये थे।[1] उनके सामन्तों द्वारा और स्वयं राजा के द्वारा दिये हुए अग्रहार-विषयक उत्कीर्ण लेख मिलते हैं। अच्युतराय से लगभग ६० वर्ष के पश्चात् विलिनाथ की प्रतिभा का विलास मान लेने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मदनमंजरी की रचना १७ वीं शती के प्रथम चरण में हुई।[2]

मदनमंजरी नाटक का प्रथम अभिनय भगवान् तेजनीवनेश्वर के चैत्र यात्रा-महोत्सव के अवसर पर हुआ था। चैत्र मास में नाटकों का विशेष रूप से प्रयोग होता था। सूत्रधार ने इसकी उत्कृष्टता के विषय में प्रस्तावना में लिखा है—

शृंगारविभवशेवधि सरसपदसन्दर्भमणिदामहाटकपेटकं नाटकम्।

कापटिक संविधानों की अतिशयता के आधार पर संस्कृत के उत्तम कपट नाटकों में इसे प्रतिष्ठापित किया जा सकता है। पंचम अङ्क में इसे कपटनाटिका कहा गया है।

कथावस्तु

पाटलपुर के राजा चन्द्रवर्मा ने शिव के प्रीत्यर्थ तपस्या करते हुए पंचाल के राजा पराक्रम भास्कर को बन्दी बना लिया और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। वहीं तपस्या करती हुई प्रज्ञावती नामक तपस्विनी प्रव्राजिका को चन्द्रवर्मा ने दासी कर्म में लगा दिया। शिव को यह सब सह्य न हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मुझे चन्द्रवर्मा को दण्ड देना है। चन्द्रवर्मा अत्यन्त कुरूप था।

१ Epigraphia Indica III 147 पर छपे शिला लेख के अनुसार Achyuta gave a grant of a village not far from Madras to the Brahmins learned in the Vedas, Robert Sewell A Forgotten Empire P 172

२ इसकी हस्तलिखित प्रति १७०० ई० के लगभग की है। सागर विश्वविद्यालय में इसकी हस्तलिखित प्रति है।

उसी समय पुष्करपुर के राजा तपस्वी राजर्षि धर्मध्वज की कन्या कामरूप मे हैमवती अवतरित हुई। उसे पत्नी रूप मे बलात् प्राप्त करने के लिए चण्डवर्मा चल पडा। उसे बचाने के लिए शिवराज शिखामणि बने, कुबेर विदूषक बने तथा महाकाल आदि गणाधिपति मन्त्री बने। सभी चल पडे रथ पर बैठकर पुष्करपुर की ओर। शिखामणि मार्ग मे कात्यायन के आश्रम मे केवल विदूषक को साथ लेकर गये। भीतर जाने पर जो सगीत सुनाई पडा, उससे शिव मन्त्रमुग्ध हो गये। उस वीणागीति का उन्होंने वर्णन किया—

तुम्बीफल यदि भवेत्तु हिमाशुबिम्ब
तन्त्रीगुणा यदि च तत् किरणा भवेयु ।
इक्षुर्भवेत् परिणतो यदि च प्रवालो
गायन्त्यपीह यदि कापि सुरागना स्यात् ॥

गाने वाली कन्या पर राजा मोहित हो गया। विदूषक ने स्पष्ट कह दिया—कन्यकारत्न तवैवाभरण भविष्यति। वही राजशिखामणि का स्कन्धावार बना।

राजा के लिए नायिका है—

अगेषु चन्दनासक्तिरक्ष्णोरमृतवर्तिका।
आनन्दपरिवाहेण हृदये चाभिषेचनम् ॥

नायिका को बडी देर तक निहारते हुए उसका वर्णन कर चुकने पर नायक उसकी दो सखियो से उसकी बातचीत सुनने का उपक्रम करता है। गाने के बाद मदनमजरी ने कन्दुकक्रीडा करना आरम्भ किया। गेंद खेलती हुई मदनमजरी का प्रतिमात आगिक सौष्ठव देखकर नायक का मन विशेष आसक्त हो गया। उसने अपने को नायिका के समक्ष किया। नायिका तब भी खेलती तो रही, पर अन्यमनस्क होने से उसका खेल बिगडता गया। वह पसीन-पसीन हो गई। उसने नायक की ओर कटाक्षपात किया। विदूषक को अवसर मिला। उसने नायक से कहा—

अवलम्बस्व सपदि एना नितम्बवनी।

सखियों ने समझा कि यह बहुत थक चुकी है और उससे घर लौट चलने को कहा। नायिका ने कहा कि यहाँ तो देखा के लिए नायक उपस्थित हैं। नायक और नायिका अपने मित्रादि के साथ नर्मालाप के लिए बैठ गये। राजा ने उसके सगीत की प्रशसा की—

सौवर्णे यदि कुसुमे सौरभसम्पत्समागमोऽपि स्यात्।
अस्यामभिरूपाया साम्प्रनमेतत्तदा हि सगानम् ॥

सखियो ने मदनमजरी के पिता का नाम धर्मध्वज बताया और कहा कि एक बार कन्याभिलाषी धर्मध्वज ने पुष्करिणी के तीर पर तपस्या की। वहाँ कात्यायन

मुनि ने किसी कोकनद के पत्र पर यह कन्या देखी और उसे धर्मध्वज को दे दिया। उन्होंने इस अपनी पत्नी चित्रलेखा को उसे सौंपा। आज वही यह मदनमंजरी है। पिता चाहते हैं कि जिसे यह चाहे, उससे ही विवाह कर ले।

मदनमंजरी की नीराजना के लिए उसकी माता ने सन्ध्या के समय जब बुलाया तो कुछ घबरा कर सभी चलने के लिए उठ पड़े। नायक को नायिका ने प्रणाम किया। नायक ने कहा कि मेरे पुण्योदय से पुनः आपका दर्शन होगा।

अधीर नायक को विदूषक ने धीरज बँधाया कि जल्दी ही नायिका आपको मिलेगी। इधर नायक कातर था। वह सन्ध्या होने पर अपने सेना-सन्निवेश में जा पहुँचा।

द्वितीय अङ्क के पहले प्रवेशक में चन्द्रवर्मा के आतङ्क से अभिभूत धर्मध्वज के उसके प्रस्ताव को मानकर मदनमंजरी को उसके लिए देने की सम्भावना विदूषक बताता है। इधर चन्द्रवर्मा की दासी बनी हुई प्रज्ञावती मदनमंजरी को उसके वियोग में सन्तप्त राजशिखामणि नायक से मिलाने का प्रयास कर रही है। चन्द्रवर्मा के कोश-गृह में सिद्धमणि नामक तलवार थी, जिसके उसके पास रहते वह अवध्य था। चन्द्र-वर्मा की गणिका चन्द्ररेखा मदनमंजरी के रूप-सौन्दर्य से घबरा कर उसको मदन-मंजरी के लिए प्रेरित करती थी। शूरमर्दन नामक सेनापति भी उसे मदनमंजरी से विवाह कर लेने के लिए जल्दियाता था। कोशगृह की रक्षा मित्रगुप्त करता था। प्रज्ञावती की योजनानुसार शिखामणि ने अपने सचिव कृतमुख को भेजा कि सिद्धमणि को प्राप्त करो और शूरमर्दन को समाप्त करो।

राजा स्वप्न में ही नायिका का दर्शन करते हुए उसके आलिंगन का सुख भोग रहा था। जगने पर उसने कहा कि इस जागने से स्वप्न ही अच्छा रहता। उसने छिपे हुए विदूषक के वस्त्राचल को देखा तो समझा कि यही स्वप्नदृष्ट नायिका छिपी है। इस भूल में पड़े नायक ने उससे कुछ प्रेम की बातें कहीं। उसकी व्यग्रता देखकर विदूषक प्रकट हुआ। नायक उसके विषय में सोचते हुए रोने लगा। राजा के विदूषक से बात करते दो पहर हो गया। नायक दुपहरी बिताने के लिए मदनमंजरी के लीलावन में जा पहुँचा। विदूषक उसे बालोद्यान में ले गया। उस उपवन में नायक के लिए उद्यान असिपत्रवन था, किसलय छुरिका थे, मकरन्द क्षाररस था, पुष्परज स्फुलिंग थे। वे दोनों मरकत की चौकी पर बैठे। नायक की आँखों से नायिका के लिए आँसू झर रहे थे। उसे सर्वत्र नायिका ही दिखाई दे रही थी। अन्त में वह मूर्छित हो गया। वह फिर सहसा प्रसन्न हो गया।

कृतमुख नामक सचिव ऐसी स्थिति में राजा से मिला। उसने मदनमंजरी से मिलने की बात बताई कि कल सन्ध्या के समय मैं प्रज्ञावती से मिला। उसने कहा कि सुरंग बनाकर सिद्धमणि को तुम प्राप्त करो। प्रज्ञावती के साथ उसकी योजना-नुसार मैं उस स्थान पर जा पहुँचा। मेरे सुरंग बनाने के उपक्रम में पहले से बना

सुरगद्वार मिल गया। भीतर पहुँचने पर सोया हुआ मित्रगुप्त मिला। वही राज-कोश था। तभी मित्रगुप्त जग गया। पर उत्तर ओर जाकर मैंने मणिपेटिका उठा ली और सुरग से बाहर निकल आया। उधर मित्रगुप्त बहुत सा धन सुरगद्वार से लेकर चन्द्रलेखा नामक चन्द्रवर्मा की गणिका को दे आया। उसके हट जाने पर मैंने यह कह कर उस गणिका की नाक और कान काट दिये कि मैं शूरमर्दन हूँ। मेरे जीते जी तुम चन्द्रवर्मा के द्वारा परिगृहीत होने पर भी मित्रगुप्त की हो गई हो। फिर मैंने आकर प्रज्ञावती को सब कुछ बताया। प्रज्ञावती के शोर मचाने पर अन्धकार मे इधर-उधर आरक्षक दौड़े और उनका अध्यक्ष भी दिखाई पड़ा। मैंने भी पुराने मन्दिर मे पेटिका रखी और जोर से भाग चला। प्रज्ञावती ने शोर मचाया कि भूतग्रस्त मेरा पुत्र भागा जा रहा है। उसे पकड़ो, पकड़ो। इस प्रकार मैं बचा। दूसरे दिन प्रज्ञावती ने मुझे बताया कि चन्द्रलेखा की दुर्गति जान कर चन्द्रवर्मा ने उससे पूछा तो उसने बताया कि मेरी छोटी बहन कनकलेखा के पास मित्रगुप्त को देखकर शूरमर्दन ने उसे मार डाला और मेरी यह गति कर दी। चन्द्रवर्मा ने अपनी प्राणप्रिया गणिका की दुर्गति करने वाले शूरमर्दन का चित्रवध करने का निश्चय किया। ऐसी स्थिति मे मदनमजरी के प्रति उसका उत्साह कम हो गया है। उसने फिर मदनमजरी की स्थिति बताई कि आज प्रज्ञावती ने मदनमजरी को महेश्वर वन मे भेजा है और हमसे आपको सन्देश दिया है कि आप उसके निकट रहें। महेश्वर वन मे नायक और नायिका का मिलन प्रज्ञावती की उपस्थिति में हुआ। केवल नायक और नायिका को एकान्त मे रहने की सुविधा देकर जब सब चलते बने तो राजा ने गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव किया। तभी नपथ्य मे सुनाई पडा –

'अये राजहंस मुञ्च मुञ्चेदानीं पद्मिनीम्। तस्या मुखसरसीरुहप्रसादापनरणाय समागता सायन्तनी सन्ध्या।'

इस प्रकार नायिका की पितामही विद्यावती के आने की सूचना दी गई थी। तब तो राजा लतावलय मे जा छिपा। विद्यावती से नायिका ने बताया कि अब तो शरीर-सन्ताप शान्त है। विद्यावती ने फिर बताया कि भगवती ने मेघावती को किसी काम से पाटलिपुत्र भेजा है। मदनमजरी ने जाने के पहले नायक को साकूत सन्देश दिया—'तव सगेन लतागृहविहिन खल्वद्य सन्ताप। यथा स पुनरपि न भवेत्तथा यतनीयम्। त्वं हि मे शरणम्'

चतुर्थ अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में कञ्चुकी मदनमजरी के मदनातङ्क से चिन्तित है। उसे मेघावती दिखाई पडी। उसने बताया कि वन्दीकृत पराक्रमभास्कर को यह समाचार पाटलपुर मे दिया जा चुका है कि चन्द्रवर्मा का पराभव हो चुका है। उसने आगे की घटना बताई कि एक दिन धर्मध्वज की दासी सारणी ने राजा शिखामणि का वह चित्र चन्द्रवर्मा को देखने के लिए भूल से दे दिया, जो मदनमजरी ने बनाया था।

भगवती प्रज्ञावती ने चन्द्रवर्मा को बताया कि अतिथि बनकर सत्यवर्मा नामक सौराष्ट्र देश का राजा आपका सम्बन्धी आया है। उसके पास एक तलवार है, जिसके बल पर उसका अधिकारी भूर्भुव स्व का स्वामी बन जाता है, वह अवश्य हो जाता है, सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। ऐसी लोकधारणा है। उसकी तलवार से आप अपनी तलवार विनिमय कर लें। फिर आप तीनों लोकों के राजा बन जायेंगे।

इधर प्रज्ञावती के सन्देशानुसार राजा शिखामणि ने विदूषक कौशिक को सत्यवर्मा नामक राजा बनाया। प्रज्ञावती ने उसे शिक्षा दी कि किस प्रकार तलवार मिलते ही उसे हम लोगों के पास भेज दें।

चन्द्रवर्मा नकली राजा सत्यवर्मा से मिले। दोनों ने अपनी तलवारों की प्रशंसा की। चन्द्रवर्मा ने खड्ग विनिमय का प्रस्ताव किया। पहले तो सत्यवर्मा ने अनिच्छा प्रकट की। इधर चन्द्रवर्मा ने अपनी तलवार उसके चरण पर रखकर चरणवन्दन किया। फिर तो तलवारों का विनिमय हो ही गया। चन्द्रवर्मा प्रसन्नतापूर्वक चलता बना।

विदूषक ने वह तलवार राजशिखामणि के चरणों पर रखी और अपनी पत्नी को अपना राजवेश दिखाने दौड़ गया।

चतुर्थ अङ्क के अन्त मे धर्मध्वज नगर से स्कन्धावार मे कृतमुख का भेजा दूत पत्र लेकर आया। उसने शिखामणि को पत्र और अगूठी दी, जिसके अनुसार कृतमुख दैवज्ञ बन कर चन्द्रवर्मा के पास पहुँचा और पूछने पर बताया कि आपको किसी चिरगत श्रेष्ठ पुरुष के रूप के प्रति प्रीति हो गई है। वैसा ही रूप आपका बना दूँगा। बस, विमुक्तेश्वर नामक देवायतन मे होमकुण्ड बनाता हूँ। उसमें कल प्रात होम करूँगा और आपका रूप वैसा ही हो जायेगा। कल इसी अगूठी को सिर पर रखे हुए आप (शिखामणि) इस मन्दिर में अदृश्य भाव से आ जायें।

शिखामणि ने ऐसा किया। चन्द्रवर्मा वहाँ कृतमुख के साथ पहुँचा। वहाँ प्रज्वलित होमकुण्ड में चन्द्रवर्मा का सिर काट कर शिखामणि ने जला दिया। फिर तो उसने चन्द्रवर्मा ही राजशिखामणि है—यह लोकधारणा उत्पन्न करा कर उसके अन्त - पुर मे राजशिखामणि को प्रतिष्ठित करा दिया। वहीं सत्यवर्मा बना हुआ विदूषक भी आकर रहने लगा। इस महोत्सव मे सभी बन्दी छोड दिये जायें—इस योजना के अनुसार पुष्करपुर मे लाए हुए पराक्रम-भास्कर स्वतन्त्र कर दिये गये। प्रज्ञावती ने यह सारी बात धर्मध्वज को बताई।

पचम अक मे मदनमजरी का राजशिखामणि से विवाह आयोजित होता है। धर्मध्वज कात्यायनादि महर्षियों के साथ हैं। प्रज्ञावती के साथ राजशिखामणि आये। उनके साथ पराक्रम-भास्कर, सत्यवर्मा, कृतमुख आदि भी थे। सारे सम्भार में अलौकिकता थी। यथा—

'केकी नृत्यति किं प्रतीत्य पटहस्वानं पयोदध्वनम्' इत्यादि।

ऋषि जानते थे कि शिखामणि शिव हैं। धर्मध्वज को यह ज्ञात नहीं था। उन्होंने शिखामणि को आशीर्वाद दिया कि 'आयुष्मान् भव'। तब तो ऋषि मुसकराए—

अध्ययनस्य हि भगवन्नस्तदेनदाशास्यम्।

विवाह के लिए मदनमंजरी सपरिवार आई। उसके प्रणाम करने पर ऋषियों ने आशीर्वाद दिया—

अस्य जगदीश्वरस्य भर्तुर्बहुमता भव।

कात्यायन और धर्मध्वज दोनों ने मदनमंजरी का हाथ राजशिखामणि को पकड़ा दिया। कात्यायन ने जामाता का परिचय दिया—

जामाता ते किमपि परमं जायते ज्योतिराद्यम्।

धर्मध्वज ने कहा—फलमिदमभवदाराधनस्य।

नाट्यशिल्प

अङ्कीय कथा आरम्भ होने के पहले एक बहुत बड़े शुद्ध विष्कम्भक के द्वारा कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है, जिसमें नायक, नायिकादि का और उनकी प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया है। द्वितीय अङ्क के पहले के प्रवेशक में विदूषक अकेला पात्र है, जो एकोक्ति द्वारा अपनी बातें कह लेने के पश्चात् रंगपीठ से चला नहीं जाता, अपितु जहाँ का तहाँ बना रहता है और वहाँ नायक राजा उससे आ मिलता है। नियम तो यह है कि प्रवेशकादि अर्थोक्षेपक के पश्चात् पात्र को रंगपीठ से चल देना चाहिए, वैसे ही जैसे अङ्कान्त में पात्र चले जाते हैं, वस्तुतः इसे प्रवेशक न रख कर द्वितीय अङ्क में रखा जाय तो एकोक्ति का यह अच्छा उदाहरण रहेगा।

द्वितीय अंक में विदूषक की एकोक्ति के पश्चात् राजा की एकोक्ति एवं दृष्टि से अनूठी ही है। राजा स्वप्न देख रहा है, जिसमें वह अपनी प्रेयसी से बातें कर रहा है कि मुझे काम के बाणों से बचाओ। तृतीय अंक में नायिका से सद्य वियुक्त नायक की एकोक्ति मार्मिक है।

द्वितीय अंक के आरम्भ में राजा जो कुछ स्वप्न में कह रहा है। उसे विदूषक सुन रहा है और इस माध्यम से एकाकी प्रणयालाप के दुर्लभ रहस्य दर्शकों को मोह ही लेते हैं। यथा, राजा का स्वप्न में नायिका के प्रति कहना—

मा कार्या चरणाहतिर्मयि दृढं नैतावता मे व्यथा
गात्रं मामकमाघातनस्तव पदस्यैव व्यथा स्यादिति॥

ऐसे प्रसंगों में शृङ्गार की अविरल गम्भीर धारा प्रवाहित की गई है।

इस नाटक में तिलस्मी कथा का रस अनेक स्थलों पर मिलता है। द्वितीय अङ्क में कृतमुख के द्वारा राजकोश से सिद्धमणि के चुराने और चन्द्रलेखा गणिका के कान-

नाक काटने और शूरमर्दन के मरवाने की योजना ऐसी है, जो नाटको मे विरल है।

छायातत्त्व तथा कूट घटना

नाटक मे विदूषक का सत्यवर्मा नामक राजा बनना छाया-तत्त्व का चूडान्त निदर्शन है। वह कपट वृत्त द्वारा चन्द्रवर्मा की तलवार हथिया लेता है। यह सारा व्यापार कुछ तिलस्मी मनोरजन प्रस्तुत करता है। नाटक के कापटिक सविधानों के कारण पचम अङ्क के पहले के विष्कम्भ के अन्त मे इसे कपटनाटक कहा गया है।[1]

सवाद

अनेक स्थलो पर सवाद कलात्मक होने के कारण विशेष रोचक हैं। यथा,

राजा—(दैन्यगद्गदम्) निर्विण्णोऽस्मि तृपा।
मदनमञ्जरी—विद्यते जल वापीपु।
राजा—न स्वादु तत्
मदनमञ्जरी—स्वादिष्ठ जलनद्य तिष्ठति सरसीपु
राजा—सौरभ्यगर्भं न तत्।
मदनमजरी—पद्मं सुरभि
राजा—स्थित न कमले
मदनमजरी—सपानीयो मधु
राजा—नैवाह मधुपस्सुधाकरसुधाकाङ्क्षी
मदनमजरी—न सा मे वशे।

रस

नाटक म आलम्बन विभाव का स्रोत कवि न कही सूखने नही दिया है और न उद्दीपन का चमत्कार कही क्षीण हो पाया ह। इन दोनो के लिए वर्णनो का भरपूर सहारा लिया गया है। नख-शिख वर्णन अभिप्रेत है।

हास्य रस की किंचित् नई दिशा विदूषक की उक्तियो मे ह। उसन सिर पर एक बार राजमुकुट रखा तो हाथ से गिर छूते हुए कहा लगा—यह कितना बडा भार है। इससे कण्ठ झुका जा रहा है और आँखें बाहर की ओर आ रही हैं। कोई बलवान् किमान ही इसका भार ढो सकता ह।[2]

वर्णन

कवि को सवादो के माध्यम से रमणीय वर्णन पिरोने का अतिशय चाव है। हिमालय से पुष्करपुर आने के मार्ग म प्राकृतिक सौंदर्य का निदर्शन करते हुए शिव कहते हैं—

१ 'अहो भगवत्या, कपटनाटककला-प्रावीण्यम्।'
२ चतुर्थ अङ्क मे

कर्पूरागा मृदुलकदली निर्गताना परागै—
मूले लग्नैरपि मृगमदैर्मुग्धवासन्तिकानाम्।
कीर्णैरत्नैरपि च फणिना किन्नरा सन्नताङ्गी
कोणे वन्या कुहचन परिष्कुर्वते कौतुकेन॥

आगे कात्यायन मुनि का आश्रम है—

शृगाग्रे होमधेनोर्मुकुलितनयन सविशन्त्या कपोल
व्याघ्री कण्डूयमाना वितरति सदय स्तन्यमेणार्भकाराम्।
जिह्वाग्रेणागमेपा स्पृशति मृगपति केसरानस्य शश्वत्
कर्ण कर्ष कराग्रैरिह करिशिशव कल्पयन्ते विहारान्॥

वर्णन मे विचित्रता भी है, जहाँ

स्त्रीणा गीत्या प्रवालो विकसति।

उस गीत का वर्णन है—

ग्राम्ये हन्त जिघत्सितान्यपि तृणान्याबिभ्रत केवल
पश्यन्तोऽपि न भीरवो जनमिम प्राग्दर्शनागोचरम्।
अर्धामीलितलोचना पुनरमी वानप्रमीशावका
मधीभूय वितन्वते श्रवणयो साकूतभगोमिमा॥

कन्दुक-क्रीडा का वर्णन विशेष सागोपाग है और उसकी पृष्ठभूमि स्वभावत शृङ्गारित है।

प्रस्विन्न वदन प्रकीर्णमलक पारिप्लव लोचन
नीवी विश्लथिता वपुर्विलुलित निश्वासमत्यायुतम्।
विश्लिष्टा कुचकञ्चुकी विगलित कर्णोत्पल मध्यमम्
क्लान्त हारमपि च्युत विरचयन् कान्तो न किं कन्दुक॥

चतुर्थ अक के अन्त मे राजशिखामणि की एकोक्ति मे सन्ध्या का भावुकतापूर्ण वर्णन है। इसमे चन्द्रवर्णन नैषधीयचरित के आदर्श पर पल्लवित है। फिर मलयानिल की चर्चा है।

शैली

विलिनाथ की शैली समलङ्कृत है। अनुप्रासो की सागीतिक लडी गूँथने मे कविवर निपुण हैं। यथा,

रणत्कनकमेखल रभसनिस्वनन्नूपुर
परिस्फुरितकङ्कण रयपरम्परामेदुरम्।
पुरस्कृतकर मुहुर्नमितपूर्वकाय दृशो
कृतार्थयति सुभ्रुव किमपि कन्दुकक्रीडितम्॥

रूपक के द्वारा मूर्तिवत् वर्णना सम्भव की गई है। नायिका है पचायुधमणि-पचालिका।

लोकोक्तियो के द्वारा शैली मे बलशालिता भरी गई है। यथा,

१ को वा विमुचति रत्नम्।

२ गतानामिव निम्नगालहरीणा कामिनीनामपि न सुलभैव प्रत्यावृत्ति।

३ प्रेयसीवशीकरणफलो हि परिष्कृतिविशेषो लोकस्य। चतुर्थ अङ्क मे।



रघुनाथविलास

रघुनाथविलास नाटक के प्रणेता यज्ञनारायण दीक्षित के पिता गोविन्ददीक्षित तंजौर राजवंश के प्रधानामात्य थे।[1] यज्ञनारायण के छोटे भाई वेंकटेश्वर भी उच्च-कोटि के साहित्यकार थे। यज्ञनारायण के मूल गुरु उनके पिता तथा आश्रयदाता रघुनाथ नायक थे। कवि को अपने युग में सम्मान प्राप्त था, जैसा कृष्णयज्वा और सोमनाथादि समकालिक कवियों के द्वारा की हुई इनकी प्रशस्ति से विदित होता है। यज्ञनारायण साहित्य विद्या के अतिरिक्त व्याकरण और दर्शन में पारङ्गत थे।

यज्ञनारायण की साहित्यिक रचनायें इस नाटक के अतिरिक्त रघुनाथभूप-विजय, साहित्यरत्नाकर, अलंकाररत्नाकर आदि हैं।[2]

रघुनाथ-विलास नाटक का सर्वप्रथम अभिनय इसके नायक और कवि के आश्रय-दाता रघुनाथ के समक्ष हुआ था। कवि के पिता गोविन्द ने भी इस अभिनय को देखा था। इस उपस्थिति से नाटक के शोभनीय स्तर पर प्रकाश पड़ता है। कवि को रघुनाथ से पुरस्कार में बहुत रत्न मिले थे।

यज्ञनारायण ने अपनी कृतियों में आत्मपरिचय दिया है। यथा,

पातञ्जलं भाट्टमतं च तर्कमद्वैतराद्धान्तमवैमि किं तैः
प्रबन्धसन्दर्भभरं स्वविद्याविद्यामिदानीं प्रकटीकरोमि॥

प्रौढश्रीरघुनाथभूपनिकृपास्फारीभवत्साहिती—
साम्राज्यो निगमागमार्थनिपुणः श्रीयज्ञनारायणः।
गोविन्दाध्वरिसूनुरग्रिममिमं सर्गं मखिग्रामणी
काव्ये पूरयति स्म विस्मयकरे साहित्यरत्नाकरे॥

साहित्यरत्नाकर १५१, ६२

काव्यालङ्कृतिनाटकादिकलनापाण्डित्यमत्यद्भुतं
सर्वज्ञो रघुनाथभूपतिमसौ यस्योपदिश्य स्वयम्।
आदातुं गुरुदक्षिणामभिमतार्होऽप्यहो दत्तवान्
यः कर्णालङ्करणं निजं च पतगं पादाङ्गदं कङ्कणम्॥

रघुनाथविलास नाटक के आरम्भ में प्रस्तावना में ही सूत्रधार का अपने प्रति-द्वन्द्वी नटकेसरी से विवाद उठ खड़ा हुआ। नटकेसरी ने कहा—

१ इसका प्रकाशन सरस्वती-महल-तंजौर से हुआ है।

२. इनमें से रघुनाथभूपविजय अभी तक उपलब्ध नहीं है। साहित्यरत्नाकर महा-काव्य १६ सर्गों तक मिला है।

सति मयि सकलनटानां करिणामिह निग्रहाय केसरिणि ।
नाट्याचार्याभिख्या नट एव प्राकृत कथं वहते ॥ १३

प्रस्तावना के इस विवाद में नायक रघुनाथ भूप भी आ जाता है। इसमें नाट्य नृत्य और नृत्त का शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

प्रस्तावना के उपर्युक्त अंश से स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक कवि यज्ञनारायण नहीं है, अपितु सूत्रधार है।

कथावस्तु

नायक तंजौर के राजा रघुनाथ ने तीर्थयात्रा करते हुए किसी ब्राह्मण को स्नान करते समय मकर से ग्रस्त होने पर बचा लिया। उसने मकर का पेट तलवार से चीर दिया था। उसके पेट से एक रत्न समुद्गक निकला, जिसमें अतिशय कान्तिमती नासामणि थी, जिसके सौगन्धिक सुवास से राजा ने जान लिया कि रत्नधारिणी अभी-अभी ही इस मणि से समलङ्कृत रही होगी। उसका सौन्दर्य सौरभ पान करने के लिए वह समुद्र की लहरें चीरता हुआ जलयान से लंका पहुँचा। वहाँ इरावती के मुहाने के निकट वन में वही राजकन्या मिली। वह लंकाधिप विजयकेतु की पुत्री चन्द्रकला थी, जिसका रत्न समुद्रतट से मकर ने चुरा लिया था।

नायिका उपवन में सखियों से यह कहती मिली कि नासामणि देने वाले शिव के वरदान के अनुसार मेरा विवाह रत्नसमुद्गक-वाहक रघुनाथ नायक से होगा। नायक उस अवसर पर उसके समक्ष प्रकट हुआ, किन्तु शीघ्र ही रघुनायक का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उसे अन्तःपुर में जाना पड़ा, क्योंकि वहाँ राजकीय जनों के समागम से बड़ी भीड़ हो गयी थी। नायक भी अन्यत्र जाकर नायिका का चित्र बनाकर मनोविनोद कर रहा था। इधर कापालिकी प्रतिभावती ने अपनी शिष्या योगविद्या के साथ वियोग सन्तप्त नायक को बताया कि चन्द्रकला के पिता पारसीकों से आक्रान्त होने पर आपके पिता की सहायता से शत्रुओं को परास्त करके प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि आप उनके जामाता होंगे। उसने विरह-सन्तप्त नायिका का मार्मिक वर्णन किया और रघुनाथ से उसे मिलाने का वचन दिया।[1] नायक ने उसकी योगसिद्धि-प्रदायिनी मणि-पादुकायें और वेत्रलता प्राप्त कर ली, जिनकी सहायता से वह आकाश-मार्ग से उस उद्यान में पहुँचा, जहाँ उसे वियोगिनी नायिका दिखाई पड़ी, जिसे डराकर अपनी शरण में आने के लिए उसने माया हस्ती वेत्रलता से बनाया। नायिका उसके डर से उस कुञ्ज में आ गई, जहाँ नायक था। क्षणिक मिलन के पश्चात् नायक को पुनः

१ क्षामक्षामतनुस्त्वदेकशयना पूर्वा कामप्यवस्थां गता
तन्वाना निजमङ्गुलीयकमियं तन्वी महत्कङ्कणम्।
शान्तं पापमितः करोति तदिदं मा किं च वाहागदं
तन्मत्वा रघुनाथभूप कृपया तस्याः प्रसीदाधुना ॥ २४

वहीं लौट आना पड़ा, जहाँ प्रतिभावती ने उसे पादुकादि सौंपे थे। गान्धर्व विवाह हो चुका था।

इस बीच चद्रकला के माता-पिता उसका विवाह रघुनायक से करना चाहते थे। प्रभावती ने नायिका को सपरिवार तजौर ला दिया। नायक उसके वियोग में सन्तप्त था ही। वह विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा की भाँति चराचर से बातें उन्मत्त की भाँति करने लगा। नायिका उसकी आज्ञा से इन्दिरा-भवन में पहुँचाई गयी। नायक और नायिका का आजीवन मिलन सत्कार वहीं हो गया।

कथा-शिल्प

कवि न ऐतिहासिक नायक की वैवाहिक कथा को कल्पनारजित विवरणो से मण्डित किया है। नाटक की कथा विवरणो के कारण शिथिल गति से आगे बढती है। मकर के पट से नामारत्न क्या मिला—उस पर ऊहापोह मे विदूषक के साथ बडी देर तक माथापच्ची करने पर यह निर्णय हुआ कि—

> द्वीपे क्वापि पयोधिना परिवृते दीव्यत्यहो नायिका।
> नामारत्नमिहैव तत्परिसरे नाकपयेत् किं म माम् ॥१ ५४

दूर से ही नायक को नायिका दीख पडी तो वह उसका नख-शिख वणन करने लगा। आठ पद्यो म नायिका निरूपित हुई। अनेक स्थलो पर कवि ने भूतपूर्व कथाश प्रेक्षको को सुनवाया है। पचम अक के आरम्भ में विदूषक आद्यन्त कथा सुनाता है।

अभिनय के लिए एक ही रगमच पर अनेक भाग हैं। प्रथम अङ्क म नायक और नायिका एकही रगमच पर अलग अलग स्थलो पर अभिनय करते हैं। नायक तो नायिका वर्ग को देखता है, किन्तु नायिका नायक को नही देखती। वहीं एक तीसरे स्थल पर विदूषक मधु के छाते के नीचे मुँह बाये सोया है। वह भी दूसरे पात्रो से अनदेखा रह कर कुछ बडबडाता है। तीसरे अक म नायक रगपीठ पर अपने मनोभाव व्यक्त करता है और दूसरी ओर नायिका और उसकी सखियो का सवाद चलता है।

एकोक्ति

द्वितीय अक के आरम्भ मे नायक की एकोक्ति (Soliloquy) अतिशय मार्मिक और हृद्य है। इसके ८ पद्यो और गद्याशो मे नायिका के प्रति नायक का मोहोदय, मन्मथ की अभ्यर्थना, मदनतापविनोदनोपाय, मनोविनोदोपाय, दक्षिणाक्षिस्पन्द की व्यञ्जना, भावी कार्यक्रम की योजना आदि चर्चित हैं। मन्मथ की अभ्यर्थना है—

> तानेव त्वदमानचाप भगवन् सञ्चोदयास्मिञ्जने,
> ये पूर्वं प्रहितास्त्वया दृग्भुरम्येणीदृश मायका।
> एव चेदुभयोर्व्यथा न भविता यस्मादिद वर्मिन,
> वक्षोजाद्रियुगेन तत्प्रहितेम्ते चादिशताग्रा यत ॥२ ६

तृतीय अङ्क के आरम्भ में भी नायक की लम्बी एकोक्ति है, जिसके द्वारा वह मणिपादुका का लङ्का आने में अद्भुत उपयोग, प्रातःकाल का कामुक वर्णन, चक्रवाकों की अवस्था, प्रमदवन वर्णन, रति की मूर्ति का वर्णन, और अन्त में नायिकागम की सम्भावना १८ पद्यों और कतिपय गद्यांशों में प्रस्तुत करता है।

समीक्षा

विदूषक के बुभुक्षित होने की बात पचीसों बार कह कर कवि क्या हास्य उत्पन्न करता है—यह समझना कठिन है। नाटककारों की यह रीति अपने आप में तुच्छ है।

लम्बे लम्बे समस्त पदों से यज्ञनारायण का पाण्डित्य प्रसिद्ध हुआ है, किन्तु साथ ही इस कृति की नाटकीयता और अभिनयग्राहता विनष्ट हुई है।

कवि का अपना ज्ञानातिशय-प्रदर्शनमात्र के लिए संगीत के रागादिक की लम्बायमान चर्चा नायक के मुख से कराना अशाश्वत रुचि का उद्भावक है। इस सन्दर्भ में औडव, षाडव, नाटराग आदि आज के साधारण पाठकों के लिए नाममात्र हैं।

यज्ञनारायण ने कालिदास का स्थान-स्थान पर अनुसरण किया है। यथा इनका पद्य—

गाहन्ते मरय सरांसि विपिने गन्धद्विपेन्द्राः करे ॥१.११४

अभिज्ञानशाकुन्तल के पद्य—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम् ॥२.६

से भाव और छन्द की दृष्टि से सर्वथा समान है। नायिका की भ्रमर से रक्षा करने के लिए नायक का आगम अभिज्ञानशाकुन्तल में है तो यज्ञनारायण ने हाथी से नायिका को डराकर नायक का सामीप्य प्राप्त करा दिया।

पांचवें अङ्क में वियोगी नायक सहकार, केसर तरु, पवन कुमार, राजहंस, मेघ आदि से प्रिया-विषयक चर्चा करता है।

आलिंगितोऽहमनया त्रासविलोलाक्षितारकं तन्व्या ॥३.३६

कहीं-कहीं कवि अनुचित बातें भी प्रस्तुत करता है। यथा, नायिका का पिता कहता है—

अपि नाम कुशलं मदनाशुगविह्वलायै चन्द्रकलायै ?

क्या कोई पिता अपनी कन्या के विषय में ऐसा कहेगा ? वैसे ही कापालिकों का नायिका के पिता से कहना है—

एतान्येव विभूषणानि वनितामेतां प्रसादाद्विधे—
रद्वार्थेव विभूषयन्तु रुचिराण्यन्यादृशानि क्रमात्।
कान्त्यं नयनद्वयस्य वपुषः कार्श्यं च वक्षोजयोः,
स्थौल्यं चूचुकयोश्च नैल्यमपि च श्वैत्यं तथा गण्डयोः ॥४.२२

क्या कोई पिता अपनी कन्या के विषय में ऐसा सुनना चाहेगा ?

नित्य नई-नवेलियों को अन्तःपुर में लाकर रखने वाले राजाओं की भर्त्सना होनी चाहिए थी, न कि सौन्दर्यालोचन विज्ञान की दुहाई देकर इस प्रथा को स्वाभाविक

बताना चाहिए। यज्ञनारायण का इस प्रसग मे यह कहना चिन्त्य है —

उचिते वस्तुनि हृदमुदेति यदि न स्पृहा।
विशेषदर्शिता का वा विषये विदुषस्तदा ॥५ २३

समाज और विशेषत मनचले लोगो को कवियो की ऐसी तरुणा ले डूबी है।

वर्णना

यज्ञनारायण दीक्षित वर्णना को लम्बायमान करने मे बाणभट्ट से प्रभावित प्रतीत होते हैं। प्रथम अक मे उनका तजौर का वर्णन कादम्बरी मे उज्जयिनी-वर्णन से बासित लगता है। नायिकान्वेषण-परायण नायक का कई पृष्ठो तक इधर-उधर चक्कर लगाने का वर्णन कर लेने के पश्चात् कवि बताता है—

पद्मेक्षणाया पथि दक्षिणासम, तस्या प्रयान्त्या पदमेनदेकम्।
हस्तावलम्बावनतार्धविग्रह-स्फीतेन भारेण भृश यदर्पितम् ॥१ ६१

चतुर्थ अक मे रघनाथ के वर्णनो की आवश्यकता इस नाटक मे नही है। कवि अपने आश्रयदाता और गुरु का वैभव वर्णन करने मे बेजोड हैं किन्तु ऐसा करने मे नाटकीयता की अतिशय हानि हुई है—यह असन्दिग्ध है।

वर्णनाद्वार से कवि ने सहकार का पात्रीकरण किया है। नायक उससे पूछता है—

आयाति किं पथि वरारघुनाथनरीपा-
दाचक्ष्व मे त्वमवनीटनभोविभाग।
प्राग्नुत्वमाशु मफल भवतोऽपि भ्यात्,
नोऽय जनोऽपि भजनात् मुगमद्विनीयम् ॥५ ८

(पुनर्विभाव्य सहष) सेयमायानीति प्रचलितपल्लवागुलिभिरेप सज्ञापयति।

रस

हास्य की कुछ नई योजनायें इस नाटक म मिलती है। प्रथम अक में विदूषक नायक की तलवार अपने हाथ से न ढोकर अपने सिर पर रख कर ढोता है और पूछने पर कहता है—

महाराजकरग्रहयोग्य खड्गमह ब्राह्मणोऽपि कथ हस्ते वहामीति, उत्तमाङ्गेन वहामि।

अन्यत्र विदूषक मधु पान के लिए—

नावेष्टितमुत्तरीयमुपसर्हयन्नुत्तानयन्नग्रैवामक्तदृष्टिर्मधुच्छत्र पश्यति।

शृङ्गार की विविध सरणि को प्रोन्नत करने मे कवि का सफलता मिली है। वह नायक की पूर्वराग की स्थिति वर्णन करता है, नायिका का ध्यान करते हुए उसे वन-वन भ्रमण कराता है, उससे नायिका का नख-शिख चित्र बनवाता है, प्रतिभावती से वह नायिका की वियोगावस्था को सुनता है और चन्द्रमा को उपालम्भ देना है—

सन्ध्यानर्तनमत्वरभ्रमिकृतोन्मर्दात् कपर्दान्तरात्
देवस्य स्मरदेहदस्मरमहाकीते निटालानले।
क्ष्माधीश भवान् प्रमादवशतो यत्प्रच्युतो न स्वत
तत्ताद्दग्विवदुर्विधोविरहिणा शङ्क्यै फल केवलम् ॥२५१

नायक को वियोगिनी नायिका मिलती है—

क्षामक्षाममिद वपु प्रतिकल कामेन मुक्तै शरै
स्थूलस्थूलमूरोजयोर्युगमिद दुर्वारमुज्जृम्भते।
स्विन्नस्विन्नमिद पदद्वयमहो स्थाने कृत वेपते
वार वारमिद मनश्च विहृतौ बद्धादर जायते ॥३१६

शैली

यज्ञनारायण की शैली समास-ग्रहिल कही जा सकती है। छ पंक्तियों तक दौडते हुए समास अनुप्रासालकारो की सागीतिक लहरी मे अनुस्नात होकर पाठक को पाण्डित्य-प्रकर्षदान करने मे बहुश सफल हैं।

जिस किसी वस्तु का यज्ञनारायण ने दर्शन कराया है, उसको प्रायश सारे सम्भार के साथ रखकर सम्पूर्णता प्रदान की है। कवि की मरकत चतुष्किका है—

सन्निहिततर-महितबालकर्पूर-मदनकाननपरिणनिविदलितदलविगलित-कर्पूरपूरकरीषम्वच्छन्दकन्दलितचन्दनविटपिविटपच्छटागाढावलीढाधिकतमै-लालवगलतावितानप्रच्छायशीतले मरकतचतुष्किकातले।

इस नाटक के कुछ गीत आधुनिकता के प्रादुर्भावक हैं। यथा,

वदने मुकुरो मुकुरे वदन, प्रतिबिम्बमुपेत्य सम बलवत्।
प्रभयेव रयेण परस्परमप्यधुना विदधाति समाक्रमणम् ॥४३१

कही-कही अन्योक्तिद्वार से भावुकता का प्रगमन कराया गया है। यथा,

स्रोत शतेन सुमनस्सरितो वृताया
क्षोण्या वसन्ततितृपा क्षुभितान्तरग।
तन्वीत किं मरुमरीचितरगलेखा—
मालोकयञ्जगति हन्त जन प्रमोदम् ॥५४

कवि ने कुछ शब्दो का प्रयोग देशी भाषाओं से अपनाया है। चीटी शब्द का प्रयोग पत्र के अर्थ मे इस प्रकार किया गया है।

छन्द

नाटक मे काव्यात्मक पद्यो की अतिशयता है। सवाद का पद्यो मे होना अस्वाभाविक है, किन्तु काव्य का उत्कर्ष सगीतात्मक छन्दो के द्वारा द्विगुणित होता है। रघुनाथ विलास मे छन्द कवि ने शार्दूलविक्रीडित मे ५३ और वसन्ततिलका मे ५१ पद्यो की रचना करके तद्विषयक अपनी प्रौढता का परिचय दिया है।

पारिजातहरण

पारिजातहरण[1] के रचयिता कुमार ताताचार्य के पितामह श्रीनिवास गुरु और पिता वेङ्कटगुरु थे। इनकी जन्मभूमि और निवास-स्थान उत्तर अर्काटमण्डल में वन्दवाशी जनपद में हुआ था। इनकी जन्मभूमि आज का गाँव नावल्पाक्का नामक है। इनका और इनके पूर्वजों और वंशजों का श्रीपदपुरी (तिरुप्पदी) से विशेष लगाव था। इनके भक्त शिष्य ने इनकी प्रशंसा में कहा है—

कुमारतातयार्चायं सदाचारपरं सदा,
वेदान्ताचार्यसिद्धान्तविजयध्वजमाश्रये।
वेदान्तद्वयसिद्धान्तविमलीकृतमानसम्
तारकं भवभीतानां ताताचार्यमहं भजे॥

तंजौर के राजा अच्युत नायक ताताचार्य के आश्रम में एक वर्ष रह कर उनके शिष्य बने थे। जब वे राजा हुए तो उन्होंने ताताचार्य को तञ्जौर बुलवाया और उन्हें नगर में रखना चाहा। वे नगर में नहीं रहना चाहते थे। अतएव अच्युत ने उनके लिए कावेरी के तीर पर नीलमेघ भगवान् के मन्दिर के निकट भवन बनवा दिया। ताताचार्य कुछ समय तक वहाँ सकुटुम्ब रहे। वहाँ असंख्य-विध यज्ञों के सम्पादन के कारण इन्हें लोग चतुर्वेदशततनु कहते थे। उन्होंने राजा को सर्वथा सुवृत्त और विद्वद्गुणग्राहक बनाया। इनके आशीर्वाद से नायकवंशी राजाओं का काव्यानुराग अमर हुआ। वे अच्युतनायक (१५७२–१६१४ ई०) रघुनाथ नायक (१६१४–६३ ई०) तथा विजयराघवनायक (१६३३–१६७३ ई०) के राजगुरु रहे। इन्हीं ताताचार्य के रचे या प्रतिलिपि बनाये हुए ग्रन्थों के संरक्षण के लिए जो ग्रन्थालय बनाया गया, वह आज का सरस्वती महल है।

ताताचार्य को परम पद की प्राप्ति कुम्भघोण क्षेत्र में हुई। वहीं कोमलाम्बा के स्वप्नादेशानुसार इनकी शिलाधातु की मूर्ति बनी हुई आज भी देखी जा सकती है। ताताचार्य ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

सूनुस्तस्य कुमारतातयगुरुः सूरीन्द्रचूडामणिः
प्रत्युद्यत्प्रतिवादिकुञ्जरघटापञ्चाननप्रक्रमः।
व्याख्याता फणिराट्कणादकपिलश्रीभाष्यकारादिम-
ग्रन्थानां पुनरीदृशां च करणे ख्यातः कृतीनामसौ॥१२

नटी प्रस्तावना में नाटक की कथा को सूत्ररूप में यों प्रस्तुत करती है—

---

१ इसका प्रकाशन सरस्वती महल पुस्तकालय तंजौर से १९५८ ई० में हुआ है।

मन्दाकिनीमृणालं मन्दं गृहीत्वा व्रजति पवमानः ।
बहुवल्लभस्य दातुं कलहक्लान्ते एव राजहंसस्य ॥१८

पारिजातहरण की कथावस्तु शिशुपालवध के अनुरूप विकसित है। शिशुपालवध में जिस प्रकार युधिष्ठिर के यज्ञ और शिशुपाल के वध के दो काम कृष्ण के सामने हैं, वैसे ही इसमें भी नारद के द्वारा पारिजातोपहार से उद्भावित सत्यभामा के लिए पारिजातापहार और ऋषियों की इच्छा की पूर्ति के लिए नरकासुर का वध—ये दो कार्य हैं, जिनके लिए वे बलराम और उद्धव से परामर्श शिशुपालवध की भाँति ही लेते हैं। तभी राजहंस नामक दूत न १६००० वन्दिनियों की पत्रिका माधव को दी। पारिजातहरण की कथा-समाप्ति पाँच अङ्कों में हुई है।

कथावस्तु

परिजातहरण की कथा हरिवंश, विष्णुपुराण और भागवत में मिलती है। इसके अनुसार नारद को कृष्ण और इन्द्र का युद्ध देखना था। बस उन्होंने पारिजात का एक पुष्प कृष्ण के हाथ में उस समय दिया, जब वे द्यूतक्रीडा में रुक्मिणी से हारे थे। कृष्ण ने वह पुष्प रुक्मिणी को देकर अपने को पणबन्ध-मुक्त किया। नारद जी ने काम बनाया और सत्यभामा से कहा कि कृष्ण ने रुक्मिणी को पारिजात पुष्प दिया है। सत्यभामा ने पुष्प के लिए मान किया। कृष्ण ने कहा कि पुष्प आपको भी दूँगा। उस समय तपस्वियों ने आकर कृष्ण से कहा कि नरकासुर के अत्याचार से त्रिलोकी को मुक्त करें। नरकासुर के द्वारा बन्दी बनाई हुई सोलह सहस्र कुमारियों का प्रेमपत्र और चित्र राजहंस दूत ने दिया। कृष्ण ने समुद्रमार्ग से प्राग्ज्योतिषपुर जाकर नरकासुर को मारकर कुमारियों को बलदेव के साथ द्वारिका भेजा। वहीं से वे सत्यभामा और प्रद्युम्न के साथ इन्द्रपुरी पर आक्रमण करके उसे परास्त कर पारिजात सत्यभामा को देते हैं। द्वारका लौटने के मार्ग में कृष्ण सत्यभामा को आकाश-मार्ग से मेरु, मन्दर, ताम्रपर्णी, चोल, श्रीरंग, कावेरी, काची, गंगा, सरयू, हिमालय, कैलाश आदि की रमणीयता दिखाते हैं। अन्त में नरकासुर से मुक्त कुमारियों से कृष्ण का विवाह होता है।

इस नाटक का नाम यद्यपि पारिजातहरण है, किन्तु इसमें पारिजात की प्राप्ति के विषय में केवल इतना ही कहा गया है—

श्रङ्केनादाय भामामविरलपुलकामण्डजेन्द्राधिरूढः
प्रद्युम्नेनानुयातः प्रवनविजयिना प्राप्तमायारयेन।
देवी दृङ्मोददात्री समितिमुरगणं निर्जिते निर्जरेन्द्रे
प्राप्तस्तं पारिजातद्रुममरवनीभूषणं कंसजेता ॥

यह भी नेपथ्योक्ति है।

रंगमंच की भारतीय मर्यादा लुप्त प्राय सी मिलती है। द्वितीयाङ्क में तभी तो नाट्यनिर्देश है—

सम्भ्रम गाढमालिङ्ग्य मुग्ध्माघ्राय वक्षसि कृत्वा

यह माधव और सत्यभामा के बीच मानविनोदन की प्रक्रिया है। रंगमंच पर यह नहीं दिखाना चाहिए।

इस नाटक में अर्थोपक्षेपक का काम पत्र से लिया गया है। नरकासुर के द्वारा बन्दिनी बनाई हुई १६००० गोपियों का समाचार था—

विरहिजनविपाकग्रामाकरो मारुताना
मलयगिरिमुप्मान् प्रापिना दक्षिणाशाम्।
सुचिरमनशना यज्जानकी राक्षसेन
प्रियमपि पुनरागाज्जीवितं धारयन्ती॥ ३-१

पारिजातनाटक में छायातत्त्व विशेष रमणीय है। राजहंस नामक दूत ने नरकासुर के द्वारा बन्दिनी बनाई हुई १६००० कुमारियों के हावभाव विलासादि से समृद्ध कामिनियों की चित्रपटी अर्पित की, जिनको देखकर कृष्ण का भाव हुआ—

शरीर सौन्दर्यप्रसवखनिरेका न वनिता
मनो मे तन्वेतत्तरलतरल लेखनपदम्।
अनालोकं रतिनिबिडनरमोहान्धगहन
स्वय येनानगोऽप्युपकरणहीनोऽयमलिखत्॥ ३.३२

गरुड को पात्र बनाकर रंगमंच पर उससे सवाद कराना भी छायात्मक है।

रङ्गमञ्च पर नौका-चालन का दृश्य दिखाया गया है। नौका के ऊपर वातनिरोध पट्टी बाँधी गई थी। नौका-चालन और समुद्रयात्रा का दृश्य संस्कृत-नाट्यसाहित्य में विरल है। माधव का सत्यभामा से कहना है—

करटिकिटीन्द्रसान्द्रविकटाग्रतटीविटपि—
त्रुटितघनाघनस्तनितसक्षुभिताग्रपय।
सुतनु पुरावराहरदनाग्रसमुद्धृतभू—
रिव कृतमल एप धुरि भाति वराहगिरि॥

वीरों को साक्षात् युद्धभूमि में लड़ते हुए न दिखाकर पर्वत और नारद के मुख से उन वीरों के सवादों और कार्यकलापों को प्रस्तुत किया गया है। पर्वत माधव के उत्तर को नारद को सुना रहा है—

भोजात्मजामभिलपन् दमघोषसूनु-
र्यस्ने मुहृत्नवनसमदि धर्मसूनो।
आत्माभिपरणमगादमुनैव युक्त
सर्व सहाननय-सात्पदीनमेनत्॥ ४.५५

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग कहीं-कहीं प्ररोचक है। यथा विदूषक का कथन—
पारिजातप्रसगताण्डविनस्य कोपप्रहम्य अग्रतो मा बलि करिष्यसि।
कवि ने कहावतों का प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है। यथा,

'वृश्चिकभयात् पलायमानस्याशीविषमुखपतनम्'

ताताचार्य की शैली सरलतम वैदर्भी का अद्वितीय आदर्श है। छोटे-छोटे वाक्य, सन्धियों का निगन्ध और सावादिकता इस नाटक में विशेष रूप से स्वाभाविक है। यथा नारद का कथन है—

पारिजातप्रसूनेन देवि देदीप्यसे नराम्।
माधवप्रनिबद्धेन यथा माधवनी वनी॥ १.३०

उपर्युक्त श्लोक से कवि की सानुप्रासित गीतात्मकता प्रत्यक्ष है।

कवि ने सर्वत्र प्रकृति का मधुर और सौहार्दपूर्ण रूप व्यक्त किया है। यथा,

पत्राणामधुना कठोरतपनग्लानेरघोलम्बिना
प्रान्तेप्नतिशालिना परिचितच्छायान्तरालश्रिया।
हंसाः पद्मवनीषु निश्चलवपुस्सङ्कोचपिण्डीकृता
मीलन्नेत्रपुटा मिलन्ति विशदाम्भोजातकोशश्रिया॥ १.३२

चापलूसी करने की रीति इसमें अच्छी निखरी है। कृष्ण सत्यभामा का क्रोध शान्त करने के लिए कहते हैं—

त्वत्कैङ्कर्ये स्वरितहृदय षोडशस्त्रीसहस्र
देवास्सर्वे शतमखमुखास्त्वत्कटाक्षप्रतीक्षाः।
त्वत्प्रेयस्यस्त्रिदशवनिता यवनापत्यमुख्या—
नायस्सोऽय सकलजगता नाथति त्वत्प्रसादम्॥ २.१९

माधव की सत्यभामा के प्रति व्याजस्तुति है—

वक्त्र चेदयि वक्त्रिनेन्दुवलय मायामय मध्यम
वक्षोजौ वनजाक्षि कि न हरतीलक्ष्मी कुलक्ष्माभृतो।
पादश्चोरयते पयोजसुषमा पाणि प्रवालश्रिय
मुष्णाति स्वयमेव वृष्णितिलको हन्त त्वया चोरित॥ २.२८

परिजातहरण पर अभिज्ञानशाकुन्तल का पदे-पदे प्रभाव परिलक्षित होता है। दूसरे अङ्क के आरम्भ मे विदूषक अभिज्ञानशाकुन्तल के विदूषक सा आचरण भी करता है। अन्यत्र भी—

सहजरमणीयस्य वस्तुनस्सर्वमप्यलङ्करणाय।

यह उस समय की विदूषक से नायक द्वारा चर्चा की जाती है, जब वे दोनों सत्यभामा से सखियों की बातचीत सुन रहे हैं।

अन्योक्ति के सौरभ से परिजातहरण सुवासित है। यथा, सत्यभामा कृष्ण से कहती है—

मधुरमधुरभणितय यावत् स्वकार्यं साधका भवन्ति।
निष्ठन्ति मुग्धसविधे एषा प्रकृतिः खल्वन्यपुष्टानाम्॥ ३.३४

शिल्पवैशिष्ट्य

पचम अक का आरम्भ चूलिका से होता है। ऐसा करना विरल है। यहाँ चूलिका से विष्कम्भक का काम लिया गया है। ऐसा लगता है कि लगभग ३५ पात्रो की सख्या अधिक होने के कारण कवि ने बिना पात्रो की चूलिका को उपादेय माना।

विमान द्वारा सारे भारत का चक्कर नायक से कराने की रीति सम्भवत राष्ट्रीय एकता को प्रतिफलित करने के लिए मुरारी ने नाटक साहित्य मे आरम्भ किया, जिसे परवर्ती अनेक कवियो ने अपनाया। परिजातहरण मे कृष्ण विमान द्वारा भारत का पर्यटन करते दिखाये गये हैं।[1] कवि ने रुचि पूर्वक पूरा पचम अक इसी वर्णन के लिये रखा है। प्राग्ज्योतिपपुर नरकासुर की राजधानी थी। यह प्राग्ज्योतिपपुर कहाँ है ? इस प्रश्न को लेकर इसके सम्पादक देवनाथाचार्य ने सुझाव दिया है कि प्राग्ज्योतिपपुर चीन देश मे आज चूङ्किङ्ग है। चीनी भाषा मे चू का अर्थ प्राक् ओर किङ का अर्थ ज्योतिप है। चूकिंग हिमालय से निकलने वाली यागटिसीक्याग नदी के तट पर है। नरकासुर के मारन के पश्चात् कृष्ण ने इस दिन इस विजय के उपलक्ष मे जो दीपावली का महोत्सव प्रवर्तित किया, वह आज भी चूंकिग मे मनाया जाता है।[2]

छन्द

ताताचार्य ने युगानुरुप शार्दूल विक्रीडित मे ६० पद्यो की अपनी छन्द प्रौढि को प्रमाणित किया है। इसके पश्चात् वसन्ततिलका मे २२ और गीति मे १६ पद्यो का सनिवेश है।

---

१ इस पर्यटन मे माधव सत्यभामा के साथ हैं। लोकालोक पर्वत, चन्द्रमार्ग, आकाशगगा, रत्नशिखरी (मेरु), उस पर बैठे हनुमान्, लङ्का, काची, गगा, यमुना, हिमालय, द्वारका आदि का वर्णन वे सत्यभामा को सुनाते हैं।

२ इस का विस्तृत विवेचन The Journal of The Tanjore Saraswati Mahal library भाग १२ ? मे है।

अध्याय १७

प्रभावती-परिणय

प्रभावती-परिणय नामक नाटक के रचयिता हरिहरोपाध्याय का प्रादुर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मिथिला मे हुआ।[1] मिथिला मे महाकवियो की परिषद् थी, जिसके लिए समय-समय पर नवीन नाट्यकृतियो का अभिनय नाट्यमण्डली करती थी। इसकी प्रस्तावना में ऐतिहासिक महत्त्व की कुछ सूचनायें मिलती हैं। यथा,

(१) शङ्कर मिश्र नामक कोई श्रेष्ठ नाटककार सुदूर प्राचीन काल मे हुए, जिनकी रचनाओं का सर्वाधिक सम्मान उस प्रदेश मे था। उनके पश्चात् रुचिपति नामक महाकवि की नाट्यकृतियो का मिथिला मे सम्मान रहा है। सोलहवी शती मे तीसरे नाट्यकार रामेश्वर मिश्र ने मिथिला-भूमि को समलकृत किया। रामेश्वर मिश्रा हरिहर उपाध्याय के नाना थे।

(२) प्रभावती परिणय की रचना किसी राजादि आश्रयदाता के प्रीत्यर्थ धनागम के लिए नही हुई, अपितु कवि ने अपने छोटे भाई नीलकण्ठ के पढने के लिए इसका प्रणयन किया।

(३) नाट्य-मण्डलियो को कवि अपनी कृतियाँ अभिनय करने के लिए दे जाते थे, जैसा सूत्रधार के नीचे लिखे वक्तव्य से नि सन्देह प्रमाणित है—

'अभिनयाय चास्मासु भरतेषु समर्पिता।'

इस सूत्रधार के वचन से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है, न कि नाट्यकार।

(४) अभिनय की ओर चित्त को प्रसक्त करने के लिए सगीत का उपयोग किया जाता था। सूत्रधार का कहना है—

सासारिकेऽस्मिन् व्यापारे धावतोऽहर्निशहृद ।
सगीतभित्तिस्थगनान्न स्थिरीकरण परम् ॥

हरिहर के माता पिता का नाम लक्ष्मी और राघव था। उनके पितामह हृषीकेश प्रख्यात पण्डित थे। हरिहर का निवास-स्थान विट्ठो नामक गाँव था। इनकी अन्य रचना हरिहर-सुभाषित अथवा सूक्ति मुक्तावली मिलती है।

कथावस्तु

वज्रनाभ की कन्या प्रभावती के सौन्दर्य से प्रभावित होकर प्रद्युम्न उससे मिलने के लिए वज्रनाभ-पुरी मे छिपकर आ पहुँचा है। उसका चित्र हाथ मे लेकर प्रद्युम्न कहता है—

---

१ इसका प्रकाशन हरिदास-सस्कृत-ग्रथमाला २८५ मे चौखम्भा-सस्कृत-सीरीज आफिस, वाराणसी से १९६६ ई० मे हुआ है।

चैत्री चन्द्रद्युतिमनितरा दूरत कारयित्वा
जित्वा जाम्बनदकणासारसम्भारशोभाम् ।
चित्रोन्नीना मदयनि मन कान्तिरम्भोरुहाक्ष्या
साक्षादस्यान्नयनमिलने स्यान्न यत्तन्न विद्म ॥ १.४१

इधर नायिका भी नायक के ऊपर प्रणयासक्त है। एक दिन नायिका मदनातङ्क से व्यथित है। उसे अपनी नई सखी शुचिमुखी नामक हंसिनी मिलती है। वह बताती है कि मैंने तुम्हारा चित्र नायक को दिया है और वह तुम्हारा बन चुका है। नायिका के मागने पर वह नायक का चित्र बनाकर उसे देती है। नायिका उसके प्रति विशेष अनुराग प्रकट करती है।

तृतीय अङ्क मे नायक का नायिका के लिए मदनातङ्कित होने की चर्चा है। उसको शुचिमुखी और भद्र की योजनानुसार नाट्यमण्डली मे नायक की भूमिका मे प्रस्तुत करके वज्रनामपुर मे पहुँचाया जाता है। उसे अभिनय करते हुए नायिका देखती है और अधिक मदनातंकित होती है। एक दिन नायक का प्रेम-पत्र नायिका को शुचिमुखी देती है। नायक भ्रमर का रूप धारण करके नायिका के प्रेमी सा व्यवहार करता है। अन्त मे प्रद्युम्नरूप में प्रकट होता है, किन्तु शरीरत किसी को दिखाई नही पडता। ऐसी स्थिति मे स्फटिकशिलावेदिका में उसका चित्र दिखाई दे रहा था। नायक का पहले से ही एक चित्र विराजमान था। दूसरा प्रतिबिम्बित चित्र नायिका के लिए पहेली बन गया कि यह कहाँ से आया है? शुचिमुखी ने वास्तविक चित्र को छिपा दिया।

अन्त मे नायक प्रकट हुआ। नायिका शनैं शनैं उसके निकट सम्पर्क मे आई और वे दोनो पर्यङ्किका-मन्दिर मे रात बिताने के लिए जा पहुँचे। सखियों के संविधान से नायक के मित्र गद और साम्ब कन्यान्त पुर मे प्रच्छन्न होकर प्रवेश करने की योजना कार्यान्वित करने का उपक्रम करते हैं।

षष्ठ अङ्क के पहले विष्कम्भक मे कचुकी और कुब्जक के सवाद से प्रतीत होता है कि प्रच्छन्न नायकों के साथ प्रभावती, आदि नायिकाओ का गान्धर्व विवाह सम्पन्न हो गया। पश्चात् नायिका प्रभावती स्वप्न देखती है कि उसका नायक उसके पिता को यमलोक ले जाता है। नायक छिपे-छिपे इस स्वप्न को सुन लेता है, जब नायिका उसे अपनी सखी को बता रही है।

दानवो को ज्ञात हुआ कि यादवो ने अन्त पुर को दूषित किया है। इसमे इन्द्र और शेषनाग ने भरपूर सहायता की। प्रद्युम्न ने मायात्मक युद्ध किया। वज्रनाभ उसमे स्वय लड़ने के लिए सन्नद्ध था। इन्द्र की सेना प्रद्युम्न की सहायता करने के लिए आ पहुँची। अन्त मे कृष्ण भी द्वारका से युद्ध में भाग लेने के लिए आ पहुँचे। गरुड ने असख्य दानवो को मृत्यु के घाट उतारा। कृष्ण से प्राप्त चक्र से प्रद्युम्न ने वज्रनाभ का सिर काट डाला। अन्य महादानव भी मारे गये।

कथावस्तु में सविधानो के द्वारा उच्चावचना का समावेश किया गया है। यथा,

त्रिभुवनजययात्रा सम्भ्रम क्वायमद्य क्व च निजनगरेऽपि द्रोहिणो दुर्निवारा ।
क्व नदमरवधटी लुण्ठनोद्युक्तमना क्व पुनरपनितानोऽन्त पुरे दुर्नयस्य ॥७ १३

इसके अनुसार कहाँ वज्रनाभ की त्रिभुवन जय यात्रा होन वाली थी और कहाँ उसी के नगर पर शत्रु चढ बैठे।

नाट्य सविधान

हरिहर के नाट्याभिनय-सम्बन्धी कतिपय सविधान उनकी नवनवोन्मेष शालिनी कला प्रवणता प्रमाणित करते हैं। रगमच पर नायिका के अग-प्रत्यङ्ग का प्रेक्षको को प्रत्यक्ष दर्शन करा देना उनकी विरल योजना है, जो लोकरजक तो विशेष है, यद्यपि शिष्ट नही कही जा सकती। षष्ठ अक म इसके लिए कवि ने पहले तो वायु की प्रखर गति से नायिका के वस्त्रादि के अस्त-व्यस्त होने की बात कही है। उससे बचने के लिए जब वह क्रीडाशैल-शिखर-प्रसाद की ओर वेग से जा रही है, तब नायक को नायिका का अनावृत अग-सौष्ठव देखने को मिलता है। उसे देखकर वह कहता है—

याच्चाभिरेव सुरतावसरे कदाचिदगानि यानि कथमप्यवलोकितानि ।
सन्दर्शितानि सुदृशो ललितानि तानि व्यस्ताम्बर मुहुरनेन समीरणेन ॥६ २७

क्यो न मनचले प्रेक्षक इस अभिनय को पुन पुन देखने के लिए इस नाटक का प्रयोग करायें।

इसी प्रकरण मे पानी से भीग जाने के कारण फिसलन हो जाने से क्रीडाप्रासाद की सीढी पर चढते हुए नायक आलिगन करते हुए उसे लेकर तो नही चढता। केवल हाथ म हाथ धरे चलने का प्रस्ताव करता है। इस प्रकार नायक के शब्दो मे—

प्रगुणय जगतीयौवराज्य स्मरस्य ॥६ ३२

वह नायिका की अनुमति चाहता है कि मैं तुम्हारे केश सँवार दूँ।

रगमच पर नायक नायिका का आलिगन करता है और कहता है—

मदुत्सगासगस्फुरितरुचिमालोच्य भवती
हसन्ती हारिद्रद्रवनवनदीमज्जनगिरे ।
घनक्रोडक्रीडानरलमियमात्मीयमफल
मनुर्विद्युद्व्याी विघटयति भूयो घटयति ॥६ ४६

यह है रुचि, जिसका अनुवर्तन करत हुए कवि को यह सब विशेष सविधानो के द्वारा लाना पडता है।

प्रभावती-परिणय के प्रथम अक मे भद्र और सारण के सवाद द्वारा जो नाट्य कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है, वह विष्कम्भ के द्वारा होनी चाहिए थी। कवि को यह नियम मान्य नहीं लगता कि पिछली घटनाओ की सूचना अर्थोपक्षेपक से ही देनी चाहिए।

छायातत्त्व

प्रभावतीहरण में छाया तत्त्व की प्रचुरता है। यथा, प्रथम अंक में नायिका का चित्र देखकर नायक का भाव विभोर होना, जिसे देखकर प्रद्युम्न कहता है—

अहो चित्रगतायामपि मनोरम प्रियायामनिमिषि[illegible] ।
निमेषरहित[illegible] [illegible] [illegible] ।
यद्[illegible] मनोरम[illegible] [illegible] ॥

द्वितीय अङ्क में नायिका नायक का चित्र देखकर विह्वल होती है।

शुचिमुखी के हास्य-व्यापार में छायातत्त्व अनूठा ही है। एक ओर तो वह मृणाल-खण्ड खाती है और दूसरी ओर वह नायिका से मानवोचित वाणी में बातचीत करते हुए बताती है कि तुम्हारा चित्र नायक के हाथों में पहुँच चुका है। वह नायक की नायिका-विषयक रति उसे बताती है। वह नायक का चित्र बनाकर नायिका को देती है। रंगमंच पर यह सारा दृश्य कितना अनोखा और रंजक होगा—इसकी कल्पना दर्शक करें।[1] यही छायातत्त्व की उपयोगिता है।

नायक शरीरतः अदृश्य रहकर नायिका के समीप आ जाता है और उसकी बातें सुनता है।

प्रतिशीर्षक

छायातत्त्व की विरचना के लिए बहुविध प्रतिशीर्षकों का उपयोग होता था। इस नाटक के तृतीय अङ्क में भद्र ने [illegible] प्रतिशीर्षकों के नाम गिनाये हैं—[illegible], हंस, महिष, गृध्र, वानर आदि।

एकोक्ति

नायक की एकोक्ति द्वारा उसकी शृङ्गारित मनोवृत्ति का परिचय प्रथम अङ्क में दिया गया है। यद्यपि रङ्गमंच पर नायक के अतिरिक्त भद्र नामक नट है, पर भाव-निमग्न नायक उसे देखता तक नहीं और न उसकी बात सुनता है। उसकी एकोक्ति है—

लीलादान[illegible]–
[illegible]कुरङ्गीशिशिरा[illegible] ।
[illegible]
को जानीते [illegible] स्यात् ।

तृतीय अङ्क के आरम्भ में प्रद्युम्न की नायिका के लिए [illegible] एकोक्ति है।

षष्ठ अङ्क के आरम्भ में रंगमंच पर अकेले नायक की एकोक्ति में प्रातःकाल के वर्णन की प्रचुरता है। [illegible] एकोक्ति भाग के अन्त में वह अपनी बात कहता है

१ तृतीय अङ्क में शुचिमुखी रंगमंच पर है—[illegible] अर्थात् कमल [illegible] में प्रवेश की हुई। यह सारे [illegible] में हुआ करती है।

और प्रभावती की चर्चा करता है कि वह यहाँ नहीं है, उसे चित्रशालिका में ढूढूँ । अन्त में उसकी मनोवृत्ति की चर्चा करके बताता है कि वह तो सामने दिखाई देती है ।

द्वितीय अङ्क की नायक के शम्बरासुर द्वारा समुद्र में फेंके जाने और उसके मछली के पेट में जाकर बच निकलने और युद्ध में शम्बरासुर को मारने की लम्बी कथा अर्थोपक्षेपक में होनी चाहिए थी ।

उन्मादोक्ति

रस की चारुता की दृष्टि से उन्मादोक्ति का विशेष महत्त्व है । इसमें नायक की उन्मादोक्ति है—

भ्रमसि नयनालोके ल ना निषीदसि सन्निधौ
स्वपिषि शयानोपान्ते स्वान्ते विलासिनि लीयसे
तदिति यदि मा सान्द्रस्नेहा जहासि न हा प्रिये
किमिति न मनागालापोऽपि प्रसादरसादर ॥

लोकोक्ति

नाटक के सवाद लोकोक्तियों से प्रायश मण्डित हैं । यथा,

(१) प्रणय के विपदि प्रमाणयन्ति ॥५ २६
(२) किमिव धैर्यनियन्त्रणमन्तरा मुमनसामवसादनमापद ॥५ २७
(३) सम्पन्मूले श्रयति विपद को न सकोचमेति ॥५ २८

वर्णन

हरिहर ने वणनो से अपने प्रबन्ध की चारता मे चार चाँद लगा दिये हैं । यथा, प्रथम अङ्क के अन्त में शरद् ऋतु के मध्याह्न का रमणीय वर्णन है—

नीरावविहगैस्तिरोहितगिरो निर्वातनिस्पन्दना
मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इवोन्मूर्च्छिता ।
शोकोन्मादभरेण पादपतितास्तेषा तु जाया इव
च्छाया सकुचितोपनिष्पततनव क्रोशन्ति झिल्लीरवं ॥१ ५८

इसमें छाया का मानवीकरण प्रतिभाशापेक्ष है ।

कहीं कहीं वणनो के द्वारा कवि न चरित-नायको का प्रतिरूप वर्ण्य प्रकृति मे समारोपित किया है । यथा, पचम अङ्क के आरम्भ मे वसन्तलक्ष्मी का वणन करते हुए गद वृक्ष और लता म नायक और नायिका के प्रणय-व्यापार की चर्चा करता है—

इन पीत स्फीत स्फुरन्ति वकुल केसरभरै—
रित सूते कर्णज्वरमभिनव कोकिलरव ।
इतोऽपि श्रीखण्डोपवनपवनान्दोलितलता-
श्लेषा, केषा मनसि निविशन्ते न तरव ॥५ ६

वसन्त-वर्णन में कवि पुन पुन कामुकता के अग्रदूत भ्रमर के व्यापार-वैविध्य की चर्चा करते हुए उसके प्रणय रस को प्रत्यक्ष सा करता है।

कहीं-कहीं समय बिताते हुए नायक समय की गति का परिचय कराते हुए वर्णनात्मक पद्यो से मानो मनोरंजन करते हैं। पंचम अङ्क के अन्त में गद और शाम्ब सूर्यास्त से लेकर लोक के गाढान्धकार-ग्रस्त होने और फिर चन्द्रिका चर्चित होने तक का वर्णन स्पर्धापूर्वक लगभग १५ पद्यो में कहते सुनते हैं।

कहीं-कहीं वर्णनो के द्वारा नायको की भावी कार्य-प्रवृत्तियो की व्यजना की गई है। यथा,

किमिह निशया दूनीभावे निवेशितयानया
तिमिरतरुणं प्रागानीतैर्वनीमवनीभुज ।
प्रविरलदलच्छायाच्छेदच्छलादभिसारिका
प्रतितरुतल सगम्यन्ते तुपारकरत्विप ॥५.३८

इस पद्य में नायको और नायिकाओ के मिलने की सम्भावना व्यक्त की गई है।

कहीं-कहीं एकोक्ति के द्वारा वर्णन प्रस्तुत करने की रीति इस नाटक में मिलती है। यथा षष्ठ अङ्क के आरम्भ में नायक रंगमञ्च पर अकेले है और वह ११ पद्यो में प्रात काल का वर्णन करता है।

षष्ठ अङ्क में वर्षा ऋतु का कामुकोत्साहक वर्णन है। यथा,

दृष्ट्वा चिकुरनिकुर सख्या दूराल्लम्बिनप्रभिनम्।
तडिन्मिपाज्जलदाना तडिति विघटन्ति हृदयानि ॥ ६ ४७

विशेष वक्तव्य

स्त्रियो का चरित इस नाटक में अधिक है। कवि नारी-जाति की एक विशेषता बतलाता है—

वचोभिरभिसन्धाय सचेतसमपि स्त्रिय ।
तथ्यमह्लाय निह्नूय दर्शयन्त्यन्यथा स्थिताम् ॥ ४ २८

अर्थात् स्त्रियाँ अपनी बातो में फँसा कर और का और दिखा देती हैं।

नटो की स्थिति समाज में अच्छी नहीं थी। नायक ने अपने नटवेश-धारण को पाप मानकर उसका प्रक्षालन करने की बात बनाई है। चतुर्थ अङ्क में शैलूष-वेश को कुत्साकारि कहा गया है। ऐसा लगता है कि स्वान्त सुखाय नाटक करने वाले अभिनेताओं का अभाव था।

गीततत्त्व

गीततत्त्व प्रायश रसनिर्भर है। यथा, नायिका की नायक विषयक उक्ति है—

पान्थो हि दीर्घदीर्घनयनानि मोपयित्वा इदानी दृश्यसे।
लज्जया मा खलु मीलय हरन्तमात्मानम् ॥ ४४०

चारित्रिक वैषम्य

प्रभावती परिणय मे नारद का चरित्र विषम कहा जा सकता है। वे कहते हैं—

त विघ्नो विपय विवदते वीरद्वयी यत्कृते।
तद्राज्य बहुमन्महे यदुदयद्द्वैराज्यदोलायितम् ॥
एतन्न मुदित नराहवरवो यत्र श्रवो मुद्रण ।
सा दिक् साहसितामपायममिना पश्यामि यस्यामहम् ॥४ १६

नारद का ऐसा चरित्र लोकरजक ही कहा जा सकता है। हरिहर को ऐसी सृष्टि के लिए साधुवाद देना योग्य है।

रस

कवि ने इस नाटक मे वीर और शृङ्गार की सगमित धारा प्रवाहित की है, जैसा उसने स्वय कहा है—

एकत्र रम्यरमणीरमणानुरक्त देवद्विपामपरतो दलनोद्यतञ्च ।
चेत प्रयातुमिह वज्रपुरानुरोध शृगारवीररसवलत्वमलकरोति ॥५ २४

o

पाखण्ड-धर्मखण्डन

पाखण्ड-धर्मखण्डन नाटक के रचयिता दामोदर सन्यासी थे।[1] इसका प्रणयन सवत् ६६ वि० तदनुसार -३६ ई० मे हुआ।[2] कवि का प्रादुर्भाव गुजरभूमि मे हुआ था। दामोदर ने विविध विद्याओं का गहन ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने कलि के प्रभाव से धर्म की प्रवृत्तियों को दूषित देख कर घृणा-परवश होकर इस नाटक की रचना की। कवि ने प्रथम अक की पुष्पिका मे कहा है कि यह चतुर भक्त का तारक और चित्त का चमत्कारक है। कवि स्वय सदा शिवशकर का और वेदो का उपासक है।

कथासार

चारित्रिक भ्रष्टाचार का बढ़ा-चढाकर वर्णन करना दामोदर का अभीष्ट है। ऐसे पाखण्डियो का रूप है—

कण्ठिकाम्बरधरीविराजिता योनिसाम्यतिलकाङ्कललाटा ।
पापरूपवपुष कलिपूरा वेदधर्मसरणीपरिभ्रष्टा ॥

दिगम्बर-सिद्धान्त (जैनमतावलम्बी) कहता है कि शरीर की शुद्धि का प्रश्न ही कहाँ उठता है, जब शरीर मलभरित है? आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, यदि नीचे लिखी स्थिति प्राप्त हो—

दूरात् पादतले नति सुविधिना सत्कारतो भोजन
मिष्ट स्वादुतरान्नमेव मधुर पान तन सेवनम् ।
ईर्ष्या स्वल्पतरापि नैव कुलिनैर्दारै सम क्रीडता
कार्यं स्वच्छमन प्रमोदबहुल त्वेतद्धि पौरा मतम् ॥१२०

तभी सौगत आया, जिसे देखकर दिगम्बर चलता बना। उसने व्याख्यान दिया—

हमारा यह सौगत धर्म ही अच्छा है, जिसम सौख्य के साथ साथ मोक्ष है। क्या ही अच्छा जीवन है—

आवासो निलय मनोहरमभिप्रायानुकूला वणिड-
नार्यो वाञ्छितकालमिष्टमशन शय्या मृदुप्रस्तरा ।

---

१ इसका प्रकाशन १९३१ ई० मे ब्रह्मर्षि हरेराम सुन्दराम पण्डित ने ऋषिआश्रम तलीआनी पोल, सारगपुर, अहमदाबाद से किया। इसकी प्रति सस्कृत विश्व-विद्यालय, वाराणसी से प्राप्त हुई।

२ वह्नयब्धियुक्ते च रसेन्दुयुक्ते संवत्सरे कार्तिकमासि शुक्ले।
पक्षे त्रयोदश्यतिभाजि सोमे दामोदरो वै लिखितिस्म ग्रन्थम् ॥

श्रद्धापूर्वमुपासते युवतय क्लृप्ताङ्गरागोत्सवै
क्रीडानन्दभरै व्रजन्ति यमिना ज्योत्स्नोत्सवा रात्रय ॥२४

उसने सुगत (गौतम बुद्ध) की वाणी पुस्तक से पढ दी—

क्षणिका सर्वे सस्कारा । नायमात्मा स्थायी । तस्माद् भिक्षुषु दाराना-ग्रमत्सु नैर्पितव्यम् ।

फिर तो एक वैष्णवनामधारी पुरुष रगमच पर आया । उसने वैष्णव मत की प्रशसा की—

आलिगन भुजनिबन्धनमायताक्ष्या, स्वच्छन्दपानमशन न परस्वभेद ।
स्वात्मार्पण युवतिभिर्गुरुषु प्रयुक्त, धन्य च वैष्णवमत भुवि मुक्तिहेतु ॥१२६

वैष्णवो को नहाने की आवश्यकता नही, श्राद्ध व्यर्थ है उनकी दृष्टि मे यह ससार नही था न रहेगा और न है । और भी—

नास्ति परलोको देहे भग्ने मुक्ति, देहे सुखिनि स्वर्गो दु खिते नरकश्च ॥

वल्लभ वैष्णव कहता है—

धर्म, वेद, यज्ञ, गगा, शम्भु, गणेश, दुर्गा, सूर्य, इन्द्र, सरस्वती, ब्राह्मण आदि गणनामात्र हैं । हम लोगो के लिए तो गुरुचरण की पादुका और रमणिया चाहिए । अपनी प्रेयसी श्रद्धा से उसने कहा—

परस्पर भोज्यमहर्निश रति स्त्रीभि सम पानमनन्तसौहृदम् ।
श्रीगोकुलेशार्पितचेतसा परा रीति परा सुन्दरि सारवेदिनाम् ॥

उसको भगा कर श्रुति धर्म रगमच पर पहुँचता हैं । उसने वेद, हरि आदि की प्रशसा की ही थी कि कलि उसका सामना करने के लिए अपनी प्रिया श्रद्धा के साथ आ पहुँचा । फिर आये महामोह-रूपधारी मध्वाचार्य । उन्होने कलि से अपना कृतित्व वर्णन किया—

मोहिता सकलवर्महापिता, प्रापिता हरिपदादधोगतिम् ।
वर्णभेदरहिता कृता मया, शूद्रधर्मनिरता स्वय स्थिता ॥१५५

फिर तो महामोह के सचिव वल्लभ रगमच पर आगये । उन्होने कलि से अपने कृतित्व की वर्णना की सभी वर्णों मे, पूरे देश मे, पूरे धरातल पर मैंने श्रौतागम को विरल कर डाला है ।

फिर कलि का राजदूत विद्वान रगमच पर आता है और बताता है कि मैंने सारे लोक को धर्म विमुख कर दिया है ।

कलि ने उन सबसे कहा—वाराणसी मे वैदिक श्रौताचार का प्रगमन है । आप लोग उन्हे विपथगामी बनायें । वैदिक ब्राह्मणो को अपना अनुयायी बनायें । तभी अनृत, दम्भ, काम, क्रोध आदि भी आ गये और मोहादि दिग्विजय के लिये चल पड़े ।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे निरजन-मार्गी विटावतस नामक व्यास अपनी प्रेयसी बालाओ के साथ रगमच पर उपस्थित होता है। फिर आई सर्वाङ्गोच्छिष्टा नामक रजकी। उससे अपने ङ्गनित्व की वर्णना विटोपदेशा ने की कि बहुत से साधुओ को विट बनाया है। रजकी ने कहा कि निरजन की कृपा से व्याम भी सुन्दर है और उसकी पाँच-छ शिष्यायें युवतियाँ भी सुन्दरी हैं। एक ब्राह्मणी को निरजन मार्ग मे खीच लाया गया था। उसका परिचय दिया गया—

वैधव्यदु मे परिदह्यमाना शोकातुरा ब्राह्मणवशजाना।
व्रतोपवासैर्बहुखिन्नदेहा स्थूनाम्बरैर्वेष्टितपुण्यरूपा ॥२८

ब्राह्मणी को रजकी का चरणवन्दन करना था। ब्राह्मणी ने ऐसा करने मे असमर्थता प्रकट की तो रजकी ने कहा कि मेरा गुरु चाण्डालाचार्य है। मैं नित्य उसके चरण दाबती हू। ब्राह्मणी टस मे मस न हुई। तब उसे व्यास नामधारी विट के पास पहुचाया गया। व्यास ने स्वच्छन्द प्रणय-पथ पर चला कर विधवा को भी सुख देने वाले निरजन मार्ग की प्रशसा की तो उसने डाँट लगाई —

निरजनालम्बिन-मार्गसक्ता क्थ भवेयु परदाररक्ता।
ये विष्णुधर्मा अपि ते कथ स्यु स्वकीयपुत्रीयमनोद्यनेहा ॥

ब्राह्मणी की निम्नोक्ति आजकल के कुछ पाखण्डियो के पूर्वरूपो का परिचय देती है —

ये वल्लभीकचुकिकुम्भमध्ये निधाय हस्त प्रहसन्ति मत्ता।
गायन्ति नृत्यन्ति पतन्ति भमौ भजन्ति रण्डा किल कार्तनान्ते ॥२१५

शिल्प

सूत्रधार न इस नाटक को अभिनेतव्य बनाया है। इससे प्रतीत होता है कि अनेक नाटक ऐसे भी लिखे जाते थे जो अभिनयोचित नहीं होते थे। नाटक मे प्रायश पद्यात्मक सवाद है।

प्रस्तावना मे नाटक के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए समसामयिक पाखण्डो की छीछालेदर की गई है। यथा,

वेदा क्वापि पलायिता प्रियतमे वार्तापि न श्रूयते।
मान्य योगपुराणधर्मनिचय क्षमान्तर्गतो दृश्यते।
श्रीमद्वल्लभविट्ठलेशप्रमुखै शृङ्गारयधोद्यतै
प्रोक्त म्वात्मनिवेदन युवतिभि मन्दश्यते साम्प्रतम् ॥८

लोग श्रुति स्मृति-पुराणोक्त धर्मवार्ता को छोडकर मध्य-वल्लभ विट्ठलादि के बताये कुमार्ग पर चलते हुए नारीभग मे परानन्द की अनुभूति करते हैं। पाखण्ड क्या है—

अन्तस्तमो बहीरागो लोकमध्ये तु सात्त्विक।
कलौ नाम हरे श्रित्वा पाखण्ड प्रकरोत्यलम् ॥१६

इसमें प्रतीक तत्त्व है—महामोह, काम, क्रोध आदि का रंगमंच पर आना। ऐसी प्रतीकता छायातत्त्वानुसारी है।[1]

रंगमंच पर आने वाले पात्र का परिचय नेपथ्य से आवेदक करता है। यथा वैष्णव का परिचय-श्लोक है—

कण्ठे कर्णे च हस्ते कटितटविषये मस्तके काष्ठमाला
वृन्दाया मन्दधानो मृगपदसदृश चन्दनं वै ललाटे।
राधाकृष्णेति जल्पन् शृंगारविमुखो वैदिकान् भर्त्समान
स्त्रीवृन्दे कामपूरं प्रतिपदमिलितैर्वैष्णवी चुम्बमान ॥ २५

नेपथ्य से वल्लभ-वैष्णव का परिचय दिया जाता है—

सकलाधर्ममूलो वल्लभो वैष्णवनामधारी प्रविशति।

इसी प्रकार रंगमंच पर आने के पहले अन्य पात्रों का वर्णन है।

बीच बीच में भी पात्रों का वर्णन नेपथ्य से किया गया है। द्वितीय अङ्क में नेपथ्य से नवम पद्य व्यास-विषयक सुनाया गया है—

उरसि कुसुममाला स्वच्छवस्त्र वहन्त, तिलकमधुरभाले कुंकुमस्यापि विन्दुम्।
मुखगतवरपत्र नागवल्ल्या सपूग, विटयुवति समेत व्यासमेन ददर्श ॥२६

द्वितीय अङ्क में निरंजन मतावलम्बियों का नग्न चित्र रंगमंच से बहिर्गत नेपथ्य से ब्राह्मणी के मुख से १२ पद्यों में सुनाया गया है। इसके आगे भी १० पद्यों में नेपथ्य से चारित्रिक दुष्प्रवृत्तियों के प्रवर्तकों का पर्दाफाश किया गया है। यथा,

विप्रा केऽपि च गानताननिरता शूद्राग्रतो नर्तने
तृष्णा मोहमदाभिमानमनसा वेदं द्विषन्तीश्वरम्।
भुजन्ते रजकालयेऽपि मुदिता पक्वान्नक सारक
कामासक्तविचेतसो मदयुता उन्मत्तभृता शठा ॥ २३४

तृतीयाङ्क में कविपरिचय और उसका सद्धर्म-विषयक उपदेश है।

---

१. कलि कहता है—भो भो महामोहकामक्रोधादयो भवद्भिः शरीरमिमं वितव्यम्।

अध्याय १९

नलचरित

नलचरित-नाटक के रचयिता नीलकण्ठ दीक्षित का जन्म १६१३ ई० के लगभग हुआ था। उनके पिता का नाम नारायण दीक्षित था। इनके पितामह के भाई अप्पय्य दीक्षित के कृतित्व का घोष दक्षिण भारत में परिव्याप्त रहा है। उनके पूर्वजों और वंशजों के सारस्वत माहात्म्य से सैकड़ों वर्षों तक भारत जाज्वल्यमान रहा है। उनके चाचा अप्पय दीक्षित ने रुक्मिणी परिणय नाटक का प्रणयन किया था। नीलकण्ठ के गुरु सुप्रसिद्ध विद्वान् वेङ्कटेश्वर थे। नीलकण्ठ के पिता और गुरु नारायण महान् विद्वान् थे। नीलकण्ठ ने उन्हें सरस्वती का अवतार बताया है। अप्पय दीक्षित ने उन्हें व्याकरण का अध्यापन कराया था। नीलकण्ठ के धर्मशास्त्रज्ञ होने का प्रमाण उनके अघविवेक नामक ग्रन्थ से मिलता है, जिसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है—

सर्वा स्मृती समालोच्य सग्रहाश्च तथाखिलान्।
विवेकः क्रियतेऽघाना नीलकण्ठेन यज्वना॥

उनकी कैयट-व्याख्या से व्याकरण का उच्चकोटिक ज्ञान प्रमाणित होता है।

नीलकण्ठ को अपने ब्राह्मणत्व पर अभिमान था। वे अपने को क्षितिसुर कहते थे।[1] कलिविडम्बन में कवि का व्यक्तित्व स्फुरित हुआ है। इसके अनुसार धन के लिए कविता करना निकृष्ट है। वे मानवतावादी और सुधारवादी थे।[2] नीलकण्ठ के शिवतत्त्व रहस्य से प्रतीत होता है कि श्रीकण्ठ दर्शन में उन्हें परम पाण्डित्य प्राप्त था।

नीलकण्ठ महान् लेखक थे। उनकी कतिपय रचनायें इस प्रकार हैं—

महाकाव्य—शिवलीलार्णव तथा गगावतरण।

लघुकाव्य—कलिविडम्बन, सभारञ्जन, शान्तिविलास अन्यापदेशशतक, वैराग्यशतक।

भक्तिकाव्य—आनन्दसागर-स्तव, शिवोत्कर्षमञ्जरी, चण्डीरहस्य, रामायण-सार-सग्रह, रघुवीरस्तव।

नाटक—नलचरित

चम्पू—नीलकण्ठविजय

इनका मुकुन्दविलास अभी तक अप्रकाशित है।

वैराग्यशतक से प्रतीत होता है कि नीलकण्ठ पर भर्तृहरि की छाप थी।

---

१ शिवलीलार्णव ६.५७

२ अन्यापदेशशतक ८२ है—

भुक्ते भोज्यमुपस्थित समुपोह्य स्वय यान्यवान्।
य सीदन् क्षुधया विचिन्तय ततो धन्यश्च पुण्यश्च क ॥

कवि की दृष्टि पैनी थी। उसने कलिविडम्बा के सन्दर्भ मे देखा था कि किस व्यवसाय मे कौन सा नीच व्यवहार प्रच्छन्न है। नीलकण्ठ ने तिरुमल नायक आदि मदुरा के राजाओ की सेवा मे ३५ वर्ष रहकर उनके प्रधान मन्त्री पद से १६५६ ई० मे छुट्टी ली। उन्होंने ताम्रपर्णी के तट पर राजा की ओर से अग्रहाररूप मे प्राप्त पालामडई ग्राम मे अपने जीवन का अन्तिम आश्रम सन्यासी रह कर यापन किया। वही के मन्दिर मे उनकी समाधि अभी विद्यमान है।

नीलकण्ठ के छोटे भाई अतिरात्र याजी के नाटक कुशकुमुद्वतीय के प्रथम अभिनय के अवसर पर सभापति-पद पर विराजमान नीलकण्ठ के विषय मे कहा गया है—

विद्वद्वादविवादकालयुगपद्विस्फूर्त्यहपूर्विका
निर्यद्युक्तिमहस्रदर्शितनिजाहीन्द्रावताराकृति ।
कर्तुं कारयितुं तथा रमयितुं काव्यानि नव्यान्यल
भप्रार्भाति सभामभाजितमति श्रीनीलकण्ठाध्वरी ॥

यह था नीलकण्ठ का भव्योदार व्यक्तित्व।

नलचरितनाटक का प्रथम अभिनय कान्ची मे कामाक्षीपरिणय के अवसर पर इकट्ठे हुए यात्रियो के मनोरञ्जनार्थ हुआ था। सत्रहवी शती के कतिपय आलोचको का मत था कि इस युग मे मधुर नाटको का अभाव सा है।

इस युग मे नाटक लिखना बहुत प्रतिष्ठास्पद काम नही माना जाता था। इसकी रचना के प्रसङ्ग मे प्रस्तावना म यह भाव व्यक्त किया गया है—

पारिपार्श्वक —प्रथमयं कविरन्तर्मुखम्ध्यप्यन्तविचारप्रवृत्तोऽपि करोति-स्म नाटकेऽप्यभिरुचिम्।

सूत्रधार —यतोऽयमीदृशस्तत एवोक्तमत्रापि विषये तेनैव।
काल जेतुमपाययौ द्वौ कलिकल्मपसप्लुतम्।
कथा वा निषधेशस्य काशी वा विश्वपावनी॥ ११

नलचरित की कथा षष्ठ अङ्क के आरम्भ तक ही मिलती है। इसके आगे जो भाग नही मिलता, उसमे सम्भवत कवि ने कुछ ऐसा सविधान रखा हो, जिससे यह कृति काशी के समान विश्वपावनी कही गई।

कथावस्तु

नल ने प्रात स्वप्न मे किसी अपूर्व सुदरी को देखा और विदूषक को बताया—

हर्तुं विवेकमवधीरयितुं च धैर्यमन्धे तमस्यपि निमज्जयितुं मनो मे।
मायैव काचन वधूरिति दर्शिताभूत् स्वप्ने निवृत्तकरुणा मकरध्वजेन॥ ११६

इसके पहले एक दिन वन-विहार करते हुए नल ने स्वर्ण-हस पकडा था, जिसे दयार्द्र होकर जब उसने छोडा तो हस ने कहा कि मैं आपको अङ्काभरण-रत्न मिलाऊँगा। विदूषक ने कहा कि स्वप्न मे उषा ने अनिरुद्ध को देखा था और वह उसे

मिला। तुम्हें भी वह नायिका मिलेगी। उसका चित्र बना डालो, जिसे देखकर सामुद्रिक दैवज्ञ सत्याचार्य बताएगा —

एषा ईदृशस्य कन्यका, ईदृग्देशीया, ईदृशस्य वधूर्भविष्यतीति।

नल ने चित्र फलक पर स्वप्नसृष्ट नायिका का चित्राङ्कन किया। इसे देखकर सामुद्रिक सत्याचार्य ने कहा—इसका वरयिता कोई श्रेष्ठ महाराज विदर्भ या विराट का होना चाहिए।

सप्तद्वीपपतेस्तु कस्यचिदियं राज्ञोऽवरोधोचिता ।।१ ३४

इसके विवाह के सम्बन्ध में पहले और पीछे भी बड़े विघ्न पड़ेंगे। वहाँ से उद्यानमण्डप में जाने पर हंस दूत बनकर नल से पुनः मिला। उसने बताया कि विदर्भ से सरस्वती का भेजा हुआ मैं दमयन्ती की बातें कहने आया हूँ। नल को उसने सरस्वती का पत्र दिया, जिसमें लिखा था—

निर्माय रत्न किमपि त्रिलोकी लावण्यसारेण पितामहो व
निर्माणवैफल्यभियादिशन्मा भोक्तारमस्यानुगुणं वरीतुम्।

अर्थात् ब्रह्मा ने दमयन्ती को रत्नरूप में निर्मित करके मुझे आदेश दिया कि कहीं यह निर्माण विफल न रहे। इसके लिए योग्य वर चुनो। उसकी योजना थी कि कुलदेवता के आराधन के बहाने दमयन्ती के उद्यान में आने पर वहीं उसका नल से विवाह सम्पन्न हो जाय।

प्रतिनायक इन्द्र दमयन्ती को पाने के लिए उतावला था। उसकी कामाग्नि में नारद ने आहुति डाली कि दमयन्ती तुम्हारे ही योग्य है। मन्त्री वाचस्पति इन्द्र और नारद की दुर्बुद्धि से सहमत नहीं थे। विश्वावसु नामक इन्द्र के दूत ने विदर्भ से आकर वाचस्पति का नल विषयक समाचार दिया—

नलासक्ता भैमी स्वयमनुमतं तच्च विधिना
त्रिलोकीनाथस्तामभिलषति शक्रोऽप्यनिवली ।।२ ११

दमयन्ती के लिए स्वयंवर होने वाला था। वाचस्पति ने निर्णय लिया कि नल को इन्द्र के लिए दूत बनवाया जाय। नल इन्द्र के प्रार्थना करने पर यह काम अंगीकार कर लेगा, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा है—

अपि दद्यामिदं राज्यमपि दद्यां च जीवितम्।
अर्थिनो न तु पश्येयम सम्पूर्णमनोरथान्।। २ १४

यदि काम नहीं बनता तो विवाह हो जाने पर उसे झंझट में डाला जाय।

मातलि को सारथि बनाकर रथ पर विश्वावसु के साथ इन्द्र कुण्डिनपुर पहुँच गये। विश्वावसु को नल की चेरी सारंगिका से बातें करने पर ज्ञात हुआ कि दमयन्ती को ज्ञात हो चुका है कि इन्द्र उसे पाना चाहता है। तभी से वह निर्विण्ण है। लगातार नल का नाम ले रही है। उसके पूछने पर विश्वावसु ने बताया कि नल निकट ही है।

प्रश्न था इन्द्र का नल से प्रार्थना करने का कि आप मेरे लिए दमयन्ती के पास दूत का काम करें। नल इस याचना के लिए तैयार नही था। विश्वावसु ने समझाया कि आप सकललोकनाथ हैं। नल मर्त्यलोकपाल हैं। याचना न करें। उन्हे आज्ञा दें कि वे दूत के काम का निर्वाह करे।

सारगिका ने दमयन्ती को सूचना दी कि नल निकट ही आ पहुँचे हैं, जैसा मुझ उनके साथी भद्रमुख से ज्ञात हुआ है। दमयन्ती की सखी चन्द्रकला ने सारङ्गिका से विवरण पूछने पर जान लिया कि जिसे वह भद्रमुख बता रही थी, वह वस्तुत कोई देवता था। दमयन्ती ने जान लिया कि इन्द्र के साथ आया विश्वावसु उसका अनुचर है, भद्रमुख नही। इन्द्र का ध्यान आते ही दमयन्ती दुखी हो गई। इतने मे नल विदूषक के साथ आ ही पहुँचा। उसने दूर से दमयन्ती को देखा और विदूषक से बताया कि यह तो स्वप्न दृष्ट रमणी की छायानुकारिणी है। वे दोनो दमयन्ती की बाते सुनने लगे। उसने चन्द्रकला नामक सखी से बताया कि इन्द्र मुझे पाना चाहता है। इससे मुझे स्पष्ट है। वह अन्त मे मनोरथ की सिद्धि कठिन मानकर रोई।

दमयन्ती के लिए और कौन प्रतिनायक बना है-यह बात नल के मानस मे प्रतिफलित हुई कि सत्याचार्य ने कहा था कि दयमन्ती के मिलन मे बडी बाधायें आयेंगी। देवता इसके लिए प्रार्थना करेंगे।

दमयन्ती का मदनातङ्कोपचार हो रहा था। उसकी साँस बन्द सी होने लगी। नल ने यह देखकर कहा—

यामेता दधनी दशामपि शिला शक्नोति नालोकितु
या विध्यन् मदनोऽपि सास्रनयन व्यावर्तयेदाननम्।
तामेकस्त्वहमेव वज्रहृदयशक्तश्चिर वीक्षितु
क्रूरोऽसाविति जानतैव विधिना नन्वस्मि सन्दर्शित ॥३ १६

तभी सावित्री और सरस्वती के आने से भावधारा बदली। सरस्वती ने दमयन्ती के प्रणाम का उत्तर दिया—

अचिरादेव त्वमभिमतर भर्तार लभस्व।

सरस्वती न दमयन्ती की दयनीय स्थिति देखकर निर्णय लिया कि मैं पार्वती के चरणारविन्द की वन्दना करके इसके खेद को दूर करूँगी। वह उधर गई और तभी प्रतिनायक भी वहाँ देवीमन्दिर मे पहुँचे। सरस्वती न वहाँ भगवती की वन्दना की—

सत्यानन्दचिदात्मक समधिभिर्ब्रह्मेति या गीयते
कौलैराद्दतविग्रहा परशिवाङ्कस्थेति या स्तूयते।
नित्यैका जगता प्रसूरिति च या तैस्तैरघुंष्यते
प्रत्यक्ष परिदृश्यसे भगवती सैवाद्य धन्यैर्जनै ॥३ २३

क्व नु ध्यान मान क्व नु तव सपर्यापरिचय
क्व वा नाना होम क्व नु विविधमुद्राविरचना।

क्व नु न्यासव्यूह् क्व नु समाम्रेडनमिति
प्रपद्ये त्वामेका भुवनजननी भक्तिसुलभाम् ।।३ २४

दमयन्ती ने भुवनजननी की दया की याचना की। दूर से नल ने भुवनजननी के दयासाम्राज्य-सिंहासन की कामना की। सरस्वती आदि वहाँ से हटकर साल की छाया मे जा बैठी। नल के सैनिको को वहाँ आने से रोकने के लिए विदूषक चलता बना। सरस्वती की इच्छा के अनुसार सावित्री नल का पता लगाने के लिए चलती बनी। तभी नल सरस्वती के समक्ष आ गया। सबने नल के दर्शन से अपने को परितृप्त किया। सरस्वती ने दमयन्ती का हाथ नल के हाथ मे पकडवा दिया।

इस बीच विदूषक समाचार लाया कि इन्द्र आप से मिलने के लिए पधारे हैं। नल इन्द्र से मिलने के लिए चलते बने। इन्द्र ने उन्हे काम सौपा कि आप दमयन्ती को मेरी बनाइये।

नल की चिन्ता का कारण उसका दायाद पुष्कर बन चला था। उसे नल के मन्त्री कामन्तक ने विफल कर रखा था। उसकी चिन्ता का दूसरा कारण इन्द्र हो गया था। इन्द्र ने नल को बुलाकर समादर किया और विश्वावसु के माध्यम से उसके शौर्यपराक्रम की प्रशसा करवा कर अन्त मे प्रार्थना करवाई—

त्वदधीना भीमसुता त्वमसि च हृदय द्वितीयममरपतेः।
तदिह सखे घटनीया तरुणी दूतेन सा त्वयास्येति ।।४ ११

नल ने स्वीकार किया—

दतो भवानि कथयानि च तानि तानि
वाक्यानि यानि किल सवननोचितानि।
आवर्जयानि सुमुखीमपि शक्तितस्ता
वक्तु बिभेमि तु पर घटयेन वेति ।।

इन्द्र ने तिरस्करिणी-विद्या के योग से अदृश्य रहकर नल को दमयन्ती से मिलने के लिए अन्त पुर मे लाने की व्यवस्था भी कर दी। नल अदृश्य बनकर अन्त पुर-द्वार तक पहुँचे, पर सावित्री ने उन्हे वहाँ देख लिया।

इधर नल और इन्द्र की जो बातचीत हुई थी, उसे गुप्तचर से सरस्वती ने जानकर दमयन्ती को बताया। दमयन्ती उसे सुनकर अतिशय आतङ्कित हुई। समाचार देने के लिए सावित्री आ ही रही थी कि द्वार पर उसे नल मिले थे। सावित्री ने सरस्वती का दमयन्ती-विषयक सन्देश सुनाया कि—

ईदृशी च यदि वाक्यमन्यसे सर्वयासि मम जीवितेश्वर ।।४ १४

सावित्री ने नल को रोका कि इस उद्देश्य से दमयन्ती से मिलना भयावह और शोचनीय-परिणामकारक हो सकता है। नल ने समझ लिया कि इन्द्र गडबडी करने से रुकेगा नहीं। फिर भी उसने सावित्री से कहा कि ऐसा ही करूँगा और लौट पडा

सन्देश पाकर दमयन्ती की जो प्रतिक्रिया हुई, उसे इन्द्र को बताने के लिए विदूषक की बात से इन्द्र बहुत चिढा। उसने मौखिक सन्देश तो नल के पास भेजा ही, साथ ही बताया कि नल के लिए पत्र भी भेज रहा हूँ। पत्र पढकर नल बहुत क्रुद्ध हुआ। इसी प्रसङ्ग मे विदूषक से उसे ज्ञात हुआ कि विदर्भराज ने दमयन्ती की नल के प्रति एकनिष्ठा का परिचय सरस्वती से पाकर और यह जानकर कि नल आ चुके हैं, नल प्रात आपसे दमयन्ती का पाणिग्रहण करने वाले हैं। उन्होने स्वयंवर का विचार छोड दिया है। उन्होने स्वयंवरार्थ आये हुए इन्द्र आदि की अवहेलना कर दी है।

दमयन्ती पतिगृह मे आ गई। सरस्वती अब अपने देवलोक मे जाना चाहती थी, किन्तु नल के प्रार्थना करने पर उसके पुत्रो के चूडासस्कार तक रुक गई। दमयन्ती की खिन्नता दूर करने के लिए नल उसे उद्यान-मण्डप मे ले गये। वहाँ थक कर दमयन्ती नल की गोद मे सो गई। नल उसे निहारते हुए कहता है—

आजिघ्रन् मुखमापिबन् रदपटी कुचन् सुजातौ कुचा-
वालिगन्नपि चागमगमधुना नालक्षये निर्वृतिम्।
एनामेव पुरानुपेत्य सुमुखींमेवविधान् विभ्रमान्
चेतस्येव समुल्लिखश्चिरतर काल कथ प्राणिपम् ॥५८

तभी दमयन्ती स्वप्न मे चिल्ला पडी कि आप मुझे और बच्चो को अकेला छोड कर कहाँ गये?

षष्ठ अङ्क के आरम्भ मे मन्त्री चिन्ता व्यक्त करता है कि इन्द्र और पुष्कर की मैत्री नल की हानि करने के लिए हुई है। नगर मे गडबडियाँ होने की सूचना नल ने राजपुरुष से भेजी—

वैधेष्वप्यधुना बुधा विगसनाद्यशेषु सशेरते
स्पृश्यन्ते किमपि द्विजाश्च शनकै कोपेन लोभेन च।
लक्ष्यन्ते समुपेक्षिता इव पुनर्वीराश्च वीरश्रिया
जाने कि बहुना जगच्च निखिल मालिन्यमालम्बते ॥६७

कामन्तक ने नगरपाल को आदेश दिया कि राजधानी और राज्य मे—

यददृष्टचर भत यच्च वा किंचिदद्भुतम्
शकित वापि यत् किंचित् सर्व तदुपलभ्यताम् ॥६९

यहाँ से आगे का नाटकाश अभी तक अप्राप्त है।

कथाशिल्प

नीलकण्ठ ने प्रस्तावना मे बताया है कि इस नाटक मे कथोद्घात चित्र-विचित्र है। इसका आरम्भ नल की अधोलिखित एकोक्ति से होता है—

अस्थाने विनिपात्य शान्तविपयव्याक्षेप सुस्य मनो
दूरे बिम्वमिव प्रदर्श्य मुकुरे दुष्प्रापमर्थ पुन ।
स्वामिन् मन्मथ यत्त्वया खलु जनो मुग्धोऽयमायास्यते
कि ते शौर्यमिद किमग हसित कि नाम वा कौशलम् ॥११

कही-कही बनावटी बातो का रगढग निराला ही है। नल ने विदूषक से कहा कि चित्र बनाने की सामग्री लाओ और वह सामग्री उसकी महादेवी की चेटी कलावती लाई तो नल ने समझ लिया कि यह तो मेरे अभिनव प्रणय का भण्डाफोड हुआ चाहता है। उसने उसे डाँट लगाई—

'बालिश रे समानय चित्रवस्तूनि' इति आनीतवानसि किमालेख्यसामग्रीम् ।

चित्रगत छायातत्त्व की विशेषता नलचरित मे परिस्फुरित हुई है। यथा नल स्वप्नसृष्ट नायिका के चित्र को देखकर उसे सम्बोधित करते हुए अपने मनोभाव व्यक्त करता है—

पश्येय भवती दृशा न तु तया ग्लायन्ति गात्राणि ते
त्वामालिगितुमर्थये न हि महानगेष्वनगज्वर ।
त्वामन्न करणे वहे न हि न हि क्वेद ममेदृड्मन
पुष्पादप्यति कोमला क्व भवती मन्तुर्नव क्षम्यताम् ॥१२६

नलचरित के प्रथम अङ्क मे हस का दौत्य छायातत्त्व का परिचायक है।

कथा की भावी गति अङ्कों के सवादो मे व्यक्त की गयी है। स्वप्न मे जो देखा-सुना उससे जो कथा अज्ञात रह गई, वह आगे की कथा सूत्ररूप मे सत्याचार्य बता देता है। दूसरे अङ्क मे वाचस्पति इन्द्र की कामुकता का भावी परिणाम अपनी एकोक्ति मे स्पष्ट कर देते हैं। यथा,

हन्त कथमनुभूतफनोऽपि गोतमदारेषु न प्रतिपद्यते कर्तव्यमकर्तव्य च। अथवा किमनेन। सा हि दुर्लङ्घ्य-प्रपाता भगवती मदनहतकपचशरी

नाट्यशिल्प

रगपीठ को आहार्य-वस्तुओं के द्वारा वास्तविकता की सज्जा प्रदान की गई है। तिरस्करणिका के प्रयोग से रगपीठ पर उपस्थित पात्रों को अन्य पात्रों के लिए अदृश्य किया गया है। द्वितीय अङ्क मे इन्द्र तिरस्करणिका निगूढ रह कर विश्वावसु और दमयन्ती की चेटी की बातें सुनता रहता है।

द्वितीय अङ्क मे अपने को भद्रमुख बताते हुए विश्वावसु छायापात्र बना है। चेटी के द्वारा भद्रमुख समझा जाता हुआ वह भद्रमुख जैसा आचरण करता है। ऐसा छायापात्र मिथ्या बातें करता है।

रगपीठ पर तीन पात्र हैं। उनमे से प्रथम दो की बातचीत तीसरा न सुने—यह

रंगपीठ का नाट्यधर्मी तत्त्व है। तृतीय अङ्क में रंगपीठ के तीन भागों में पात्रों के तीन वर्ग अलग-अलग रहकर अलग-अलग समय पर काम करते हैं। इसमें दोष यह है कि ऐसी स्थिति में जिस समय एक भाग के पात्र काम करते हैं उस समय दूसरे भाग के लोगों को बिना काम करते हुए रहना पड़ता है।

नाट्य-कला की दृष्टि से इन्द्र का हीनदशापन्न होकर यह कहना सविशेष कौशल पूर्ण है कि

तपस्य त्यो यस्मै शतमपि महस्र युवतयो
न विन्दत्येका मा ननु मनुजगीर्वाणफणिनाम्।
स एवाह याचे स्वयमपगतव्रीडमपि या
उदास्ते मा भैमी न परमथ शोचत्यपि कथाम्॥३ २४

नायक की उच्चता से प्रतिनायक प्रभावित हो—यह इस नाटक में विरल तत्त्व विभावित है। यथा प्रतिनायक इन्द्र नायक नल के विषय में कहता है—

पुण्यश्लोकस्त्रिभुवनजयी भूभुजामग्रगण्यो
दाता प्राणानपि यदि भजन्त्यर्थिन कर्णमूलम्॥२ ३६

नाटक की उत्तमता मानी जाती है कि उसमें सीमातिग उत्थान-पतन की स्थिति नायकादि के समक्ष आये। इसमें स्वय लेखक ने नायक के मुख से इस स्थिति का समाकलन कराया है—

हन्त कथममृतेनेव सिञ्चन् विधिरग्नौ निपातयति।

अर्थात् अमृत से सींचते हुए भाग्य ने अग्नि में पटक दिया। पचम अङ्क के अन्त में इस स्थिति का व्यावहारिक निदर्शन है नल का दमयन्ती को गोद में रखकर सुलाना और दमयन्ती का स्वप्न में चिल्ला पड़ना कि हमें और बच्चों को अकेले छोड कर कहाँ चले गये?

यह सब कैसे हो रहा है कि नल दमयन्ती विषयक स्वप्न देख रहा है और उसे उपवन में हस मिलता है। ऐसी ऊहापोह लिए पाठक की जिज्ञासा तृतीय अङ्क के अन्त में शमन करती हुई सरस्वती नाटक की कलात्मकता का सवर्धन करती है कि मैंने यह सब भगवान् ब्रह्मा की इच्छापूर्ति के लिए आयोजित किया है।

एकोक्ति

नलचरित में एकोक्ति की चारुता उच्चकोटिक है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में रंगपीठ पर अकेले नल है। वह दमयन्ती के सर्वोटिक कर-किसलय के प्रथम स्पर्श का ध्यान करते हुए सोचता है। फिर वसन्त के नवावतार से मदनातुर ससार के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, विभिन्न जनों पर मलयपवन आदि के प्रभाव का अनुशीलन करता है और अन्त में अपनी ही स्थिति को कारण बताता है कि क्योंकर आज ये सभी मेरे लिए विषम बन गये हैं—

कि नागीदयमुत्तनाय सुरभिः कि नामवन्मन्मथ
शृंगारेषु गुरुः किमेष पवनो मित्रं न मे प्राणभृत् ।
अत्रैव मधुरेऽपि वस्तुनि रसानास्वादयन्नन्यथा
रोगीवाहमनेन दग्धविधिना नीतो दशामीदृशीम् ॥८६

चतुर्थ अङ्क में प्राय अन्त में रङ्गपीठ पर नायक को कोई काम करने के लिए जब अन्य पात्र चले जाते हैं और वह अकेला ही रह जाता है तो एकोक्ति द्वारा प्रकृति-वर्णन में निमग्न हो जाता है।

पंचम अङ्क के आरम्भ में एकोक्ति में श्रामात्य नामक अमात्य नल की सुरक्षा विषयक चिन्तना कर रहा है कि अब क्या होगा, जब इन्द्र और पुष्कर ने नल को परामूत करने के लिए मैत्री स्थापित कर ली है।

वर्णन

नाटकों में यात्रावर्णन का चाव कालिदास के युग से ही रहा है। नलचरित में स्वर्गलोक से विदर्भ तक इन्द्र का रथ पर विश्वावसु के साथ यात्रा करना अतिशय रुचिपूर्वक नीलकण्ठ ने दिखाया है। यात्रा करते हुए काशी दिखाई पड़ती है।

यत्रैकः श्रुतमक्षरं पशुपतेर्हेतुश्च तीना कृती
नद्यो रोहति चाप्दधा नतमृता यत्रैकमूत्र वपुः ।
यत्रैनाभ्रनदीकणोऽपि विधृते सर्वत्र सा धार्यते
सा दिश्यादपुनर्भवं सता रविगिरा पारे हि वाराणसी ॥२२२

अम्भस्युरे दिविषदा भवशोऽपि यस्याम् अद्यापि विभ्रमफनान्यवगाहनानि ।
आब्रह्मकीटमवगाहजुषामिहैषा कैवल्यहेतुरिति वाति तव प्रभावः ॥२२३

यही काशी सारे भारत की एकता निबद्ध करती थी। आगे प्रयाग है—

सम्पर्कापनिदध्यमानयमुनावल्लोलमुल्लस्यती—
मग्नो मानविसारिणिव्यञ्ज्वलन्सगीपगाम्भः प्लवः ।
प्रत्यासीदति न पचेविमतप गम्भीरसम्भावित—
प्रत्यासगकृतार्थमार्थ-निविडाभोग प्रयाग पुरः ॥२२४

नीलकण्ठ ने वर्णन-चातुरी का निदर्शन भी इस नाटक का बनाया है। इसमें नायक वर्णन से बातचीत कर रहा है—

पामोयगतनु नाम दग्धवपुष यत्नाग्य दण्डो नव ।
चन्द्रो गर्वयता गुणामयाया निग्योऽहमस्मीति वा ।
भ्रान्त शम वयस्य दम्भवमनयोर्मामद्वयोमायरम्
अप्यायु सम्प्रति जानतस्तव तयं पाप्येषु रस्य मन ॥८३

चतुर्थ अङ्क में अन्त में सन्ध्या, आराम, केलिकागार, अन्धकार, चन्द्रचन्द्रिका, चन्द्रमा आदि की रमणीय वर्णना है।

रस

नीलकण्ठ ने शृङ्गार रस की सूक्ष्म सरिता अतिशय विशद रूप मे प्रवाहित की है। यथा मदनातङ्कोपचार समलङ्कृत नायिका को विवश नायक टुकुर-टुकुर देखते हुए अपने मनोभाव व्यक्त करता है—

या कान्ति करयोर्मृणालवलयैर्नेय मणीकङ्कणै
यद्रूप नलिनीदलेन कुचयोर्नेद घृते कञ्चुके।
यद्वाष्पोद्गमरेखया नयनयोस्तन्नाञ्जने सौभग
यत्सत्य स्वदतेऽधुना परिचिता स्वप्नादपि प्रेयसी ।।३ १३

नायिका के श्वास भारी पडने लगे। उसने मदन से प्रार्थना की कि मुझे मारना चाहो तो मार डालो, पर एक बार मुझे प्रियतम का मुख दिखलाकर। ऐसे प्रसग नितान्त रोचक हैं।

शैली

नीलकण्ठ ने आलोचना का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया है, जो उस युग की रचनाओ पर प्राय सटीक बैठता है। नलचरित की प्रस्तावना मे सूत्रधार की स्पष्टोक्ति है—

स्वादूनेव रसान् कटून् विदधता कर्पन्तु मा मेति च।
अन्दन्त्येव पदानि वा कवयता कुर्वन्तु लज्जा च वा।
कुत्रैको मधुरो रस क्व मधुरा वाणीति नो जीवता
कर्णौ निष्करुण दहन्ति कवय कस्मादिदानीतना ।।

नीलकण्ठ ने अपनी वैदर्भी की सर्वोत्कृष्टता का परिचय देते हुए कहा है—

आदि स्वादुषु या परा कवयता काष्ठा यदारोहणे
या ते नि श्वसित नवापि च रसा यत्र स्वदन्तेतराम्।
पाचालीति परम्परापरिचितो वाद कवीना पर
वैदर्भी यदि सैव वाचि किमित स्वर्गेऽपवर्गेऽपि वा ।।२ १८

नीलकण्ठ के अनुसार तत्कालीन नाटक के दर्शको की मानो मृत्यु हो जाती है। उनको जीवन प्रदान करने के लिए नलचरित की रचना उसने की।[1]

नीलकण्ठ पूर्ववर्ती कवियो की वाणी को अपनाने मे चूकते नही। उनका दैवज्ञ नायिका का चित्र देखकर कहना है—

कथमीदृशस्य रूपस्य मानुषीषु सम्भव।

इसमे कालिदास प्रतिध्वनित है। नीचे लिखा पद्य भी कालिदास के 'गाहन्ता महिषा निपानसलिले' मे अवगाहन कर रहा है—

१ तदहनि भवानभिनवरूपकदर्शनव्यापन्नानामायुष्यमापादयितुम्।

स्वच्छन्दप्रचरन्मदान्धमहिषव्यावृत्तशृङ्गाहति–
क्षुभ्यत्पङ्कलकपल्वलपयोलुण्टाकचण्डातपा ।
दृश्यन्ते परिपाकपाण्डरदलव्याकीर्णजीर्णाटवी–
रिखद्दावशिखाचटच्चटरवोन्मिश्रा गिरिश्रेणय ॥१४७

बालाभि परिशीलित पवन इत्याचार इत्यादृत
मुग्धाभिर्मलयाद्रिमारुत इति प्रौढाभिरासेवित ।
दग्धैरध्वगयौवनैरनल इत्याकृष्यमान पुन.
शृङ्गारप्रथमास्पद प्रचलति श्रीखण्डशैलानिल ॥४४

नीलकण्ठ की लेखनी बलशालिनी है। यथा, चारायण का तृतीय अंक मे नल को विश्वास दिलाना कि जिसे आप देख रहे हैं, वह वस्तुत स्वप्नदृष्ट रमणी ही है—

यथोद्यानमेतत् कुण्डिनसमीपे, यथापर्युत्सुका एषा, यथा च त्वयैवभणित सन्दिष्ट शारदयैवमिनि, यथा चेदानी सज्जति ते दृष्टि तथा मन्ये सैवेषेति ।

भाषा के विषय मे नीलकण्ठ कुछ स्वतन्त्रता देते हुए दिखाई देते हैं। उनकी चन्द्रकला सस्कृत भी बोलती है। नायिका भी सस्कृत मे पद्य के द्वारा अपने विरहगान को विभावित करती है। ऐसा लगता है कि आवेश के प्रोन्नत क्षणो मे जो भावोर्मि उठती थी, वह प्राकृत का बन्धन तोड देती थी। ऐसे उद्गार सस्कृत मे व्यक्त किये जाते थे।

सूक्तिसौरभ

जीवन की बहुक्षेत्रीय सूक्तियो के द्वारा सप्रमाण सवाद को कवि ने सौरभ प्रदान किया है। कतिपय सूक्तिया हैं —

१ अयमसौ कण्टकमुद्धृत्य शल्यप्रक्षेप
२ करतले दर्पण गृहीत्वा कीदृश मे मुखमिति पृच्छसि ।
३ क खलु मन्दधीरपि नाम करस्थ रत्नमुत्सृज्य काच गवेषयते ।
४ क खलु कर्कोटकफणमणये कर प्रसारयति ।
५ अद्य पतिनस्सकृदयोऽय पतति जन ।
६ उपेक्षितश्शत्रुरल्प इत्युन्मिपति कालेन स्फुलिंग ।
७ कथमङ्गार कर्णयोरस्या वर्षणीय ।
८. शौर्यं व्यनक्ति पटुना विदधाति मन्त्रे
सख्य महद्भिरपि राजभिराननोति ।
विस्तारयत्यपि यशो विशद दिगन्ते
किं नाम नावलयते गुणवद्विरोध ॥

नीलकण्ठ के नाटक मे अश्लील शृङ्गार की धारा नहीं बहाई गई। भाव और

भाषा की दृष्टि से इसकी पेशलता अनुकरणीय है। न तो बड़े समास हैं और न लम्बे चौड़े व्याख्यान हैं, जिनसे प्रेक्षक ऊबे। व्यर्थ की बातों का भी इसमें प्राय सर्वथा अभाव है। नायकों के व्यवहार में प्राय नैष्ठिक गरिमा है, उछलापन नहीं।

नलचरित की सरलता और सरसता की मञ्जुल छाया परवर्ती कतिपय नाटकों पर पड़ी और कवियों ने समझ लिया कि भाषा और भाव की दृष्टि से दूर की कौड़ी लाना नाट्योचित नहीं है।



अध्याय २०

कुशकुमुद्वतीय

कुशकुमुद्वतीय नाटक के प्रणेता अतिरात्रयाजी सुप्रसिद्ध नीलकण्ठ दीक्षित के छोटे भाई थे, जिनके नलचरित नाटक की चर्चा हो चुकी है।[1] अतिरात्र की प्रतिमा का विलास १७ वी शती के मध्य भाग मे हुआ था। अपने पितामह के भाई अप्पय दीक्षित के वंशानुक्रम मे जो दर्शन और काव्य की सरस्वती प्रवाहित हुई थी, उसमे अतिरात्र ने सम्यग् अवगाहन किया था और अपने बडे भाई नीलकण्ठ से सरस काव्य-संस्कार पाया था। वे तन्त्र, क्रतु और शैव सिद्धान्त के मर्मज्ञ थे और विशेष रूप से अम्बिका की उपासना करने के बल पर स्वय अपने लिए अम्बिकादास की उपाधि कालिदास के समान ग्रहण की थी। उनका कहना था कि मेरा श्वास भी अम्बिका की कृपा पर अवलम्बित है।

कौन नाटक रंगपीठ पर सफल होगा और कौन असफल—इस सम्बन्ध मे अतिरात्र ने तत्कालीन स्थिति का पर्यालोचन किया है कि भगवान् की कृपा से ही कोई नाटक सफल होगा—

नार्थमन्दर्भसौन्दर्यात् न कवीन्द्रगुणादपि।
विद्वद्म्य न्वदने काव्य कटाक्षेण विना विघे॥

कुशकुमुद्वतीय का प्रथम अभिनय हालास्य-चैत्रोत्सव यात्रा के अवसर पर हुआ था। तत्कालीन रीति के अनुसार लेखक ने अपनी कृति सूत्रधार को अभिनय के लिए अर्पित की थी और दुर्वृत्त समालोचको के डर से सूत्रधार से कहा था—

विभावादिस्वादूकृतनवरसास्वादचतुरा
यदि स्यु श्रोतारस्सुकृतपरिपाकेन मिलिता।
तदा तेषामेव प्रकटय पुरस्तान्मम कृति
न चेदास्ता गूढा चिरमियमनिष्पन्नसदृशी॥

कवि की मान्यतानुसार इसका प्रणयन अम्बिका के प्रसाद से हुआ है।

कथावस्तु

अयोध्या नगरी राम के पश्चात् किसी राजा की राजधानी न रहने के कारण उजड सी रही थी। एक दिन उसकी अधिदेवी नागरिका ने सरयू नदी की अधिदेवी सागरिका से चर्चा की कि राम के पुत्र महाराज कुश हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। कोई उपाय नही दिखाई देता। अन्त मे वे दोनो तिरस्करिणी-विद्या से प्रच्छन्न होकर नागलोक से आई हुई कलावती और फणावती नामक दो कन्याओ की बातचीत सुनने के लिए चल पडी, जिससे उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी स्वामिनी कुमुद्वती अपने

१ कुशकुमुद्वतीय की हस्तलिखित प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है।

पिता कुमुद की अनुमति से नागलोक में दुर्लभ ज्योत्सना-विहार के लिए जनहीन अयोध्या में सहस्रों सखियों के साथ आती है। कुमुद्वती ने सरयू में स्नान करते हुए एक दिन हार पुलिन पर छोड़ दिया और नागलोक चली गई। उसने समझ लिया कि हार को सागरिका ने प्राप्त किया होगा, जिसे वह अपने स्वामी कुश को अर्पित कर देगी। उसका मन्तव्य जानकर सागरिका ने निर्णय लिया कि अब कुश को वश में करने का उपाय हाथ लगा कि वे नागलोक की अपूर्व सुन्दरी कुमुद्वती से मिलने अयोध्या आ जायें। कुशावती में रहते हुए कुश को दिव्य चक्षु देकर कुमुद्वती का दर्शन कराया जाय। वह नागरिका के साथ कुश से कुशावती में मिलने गई।

वसिष्ठ के शिष्य शार्ङ्गरव ने कुश को गुरु का सन्देश बताया कि आज अधिदेवियों की आप से भेंट होगी, जिसका परिणाम सुखद होगा। इसी बीच विदूषक ने आकर कहा कि आपकी महादेवी मुझे सामान्य जनों के समान ही मोदक देती हैं। मैं तो आज ही आपकी नयी दुल्हन देखना चाहता हूं। राजा की दाहिनी आँख तभी फड़की तो उसने समझ लिया कि विदूषक की वाणी सत्य होकर रहेगी।

सागरिका और नागरिका ने कुशावती आकर कुश को दिव्य चक्षु प्रदान किया, जिससे कुश ने उजड़ी अरण्यग्रस्त अयोध्या में राजप्रासाद देखा। वहाँ नागकन्या कुमुद्वती गौरी की आराधना करने के लिए आई हुई कन्दुक-क्रीड़ा कर रही थी। नायक ने देखा—

इन्दीवर प्रतिममक्षियुगं मुखं तु राकेन्दुकान्तमनयो रचितो हि योगः।
वक्षोरुहौ मदनपूर्णसुवर्णकुम्भौ रम्भापि सा कथमुपैष्यति साम्यमस्याः ॥

वह उस पर नितरां मुग्ध हो गया। इससे अधिदेवियों को विश्वास हो गया कि काम बना। नायक ने देखा कि नागकन्यायें प्रासादभित्ति चित्र देख रही हैं और कुमुद्वती उसका चित्र प्रेमपूर्वक देख रही है। विदूषक ने स्पष्ट ही कह दिया कि वह तुम्हारी पटरानी बनेगी। नागरिका ने समर्थन किया। राजा ने अधिदेवियों को आश्वस्त करते हुए बताया—

अयोध्यापुरीमहं नवीकृत्य प्रवेश्यामि, द्रक्ष्यामि सरयूमपि।

अधिदेवियाँ चलती बनीं। कुश के लिए प्रश्न हो गया—कुमुद्वती के बिना कैसे जीवन धारण करूँ?

अयोध्या का नवीकरण करके कुश वहाँ रहने लगा। सागरिका कुमुद्वती की मूल्यवान सखी बन गई। उस सागरिका ने कुश का चित्र दिया। दोनों का प्रेम बढ़ा।

अयोध्या को पुनः जनसम्मर्दित सुन कर कुमुद ने नायिका का वहाँ आना-जाना रोक दिया। सागरिका ने योजना बनाई कि तिरस्करिणी विद्या से नायक नायिका समागम हो।

अपवाद रूप से नायिका को एक दिन और अयोध्या में आकर गौरी-आराधन के लिए पिता की अनुमति मिल गई। सागरिका से कुमुद्वती ने प्रार्थना की कि एक

बार नायक का दर्शन करा दो नहीं तो मर जाऊँगी। नागरिका ने कुश और सागरिका ने कुमुद्वती को इस व्यापार मे नियोजित करने का काम लिया। राजा को मृगया करते हुए सरयू तट पर वहाँ नागरिका ने स्थापित किया, जहाँ नायिका उससे मिलने के लिए आने वाली थी।

तिरस्करिणी के द्वारा ऐसा प्रबन्ध किया गया कि राजा को कोई न देख सके, केवल कुमुद्वती ही देखे। राजा ने क्षण भर के लिए उसके कुचयुग के दर्शन से अपने को परितृप्त किया, जब स्नान करने के पूर्व उसका उत्तरीय कटि मे बाँध कर कंचुक हटाया गया। इसके पश्चात् सागरिका की योजना से नायिका का नायक से एकान्त मिलन हुआ और राजा ने उसे अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए—

दुर्गाणि राष्ट्रमियमर्णवनेमिरुर्वी मौलं बलं रथगजध्वजवाजिपूर्णम्।
दारा गृहा मम वसून्यसवोप्यहं च जानीहि तन्वि निखिलं त्वदधीनमेव॥

कुश और कुमुद्वती का प्रणय व्यापार यद्यपि रहस्यमय ढंग से प्रवर्तित हो रहा था, किन्तु कंचुकी के द्वारा यह नागलोक मे विदित हो गया कि कुमुद्वती का कुश से प्रेम चल रहा है। उसके पिता ने शंखपाल से उसका विवाह करने की योजना बनाई और शंख के घर मे उसे रख दिया। उसका सागरिकादि से मिलना बन्द कर दिया गया। विदूषक ने नायक के विवाह मे बाधा देखकर लव की सहायता से उसे दूर करना चाहा। उसने सर्पयज्ञ करके नागो का दर्पभंग करने की ठानी।

बन्दीभूत कुमुद्वती का नखलेख नायक को मिला कि विश्वास रखें, हम लोग जीयेंगे तो मिल कर रहेंगे। नागरिका ने राजा को आश्वस्त किया कि परसों तक आपका विवाह कुमुद्वती से सम्पन्न ही हो जायेगा। राजा ने कुमुद्वती को आश्वस्त करने के लिए अपना अङ्गद दिया, जिसे फणावती जाकर नायिका को दे और उसकी मूर्च्छा दूर करे।

चतुर्थ अङ्क मे सागरिका के नियोजन से नायिका ने मानस-सन्ताप से उन्मत्त होने का नाटक रचा। इस रोग को दूर करने के उपाय करती हुई सागरिका नायक को लाकर नायिका से मिला सकेगी—यह उसने नायिका को बता दिया था। नायिका से ऐसी स्थिति मे शंखपाल, कुमुद आदि ने चिकित्सक, मान्त्रिक, मौहूर्तिक आदि को उसका निदान करने के लिए बुलाया। सागरिका से भी उन्होंने पूछा कि कुमुद्वती को ठीक करने का क्या उपाय है? उसने कहा कि एक सिद्धयोगिनी को जानती हूँ। उसके हाथ मे सर्वज्ञ नामक तोता रहता है। वह इसे ठीक करेगी। कुमुद ने सागरिका से कहा कि उनको शीघ्र बुलायें। इस प्रसंग मे नागरिका सिद्धयोगिनी और कुश दिव्य शुक बना।

कुमुद्वती वैद्य, मान्त्रिक, मौहूर्तिक आदि के प्रयासो से अच्छी न हुई तो सागरिका, सिद्धयोगिनी और शुक राजा के आज्ञानुसार आये। शुक ने पुरुषवत् नायिका से प्रणय व्यवहार करते हुए अन्त मे अपने पंखो से उसका आलिंगन करके उसे सर्वथा

ठीक कर दिया और अपने मदनातङ्क को भी दूर भगाया। वह तो जीवन भर कुमुद्वती का तोता बनकर ही रहने को उद्यत हो गया था। उसका सोचना है—

राज्य रक्षतु मे लव स चतुर संरक्षणे शिक्षित
देवी कान्तिमतीतपश्चरतु मामुद्दिश्यकालान् बहून्।
नाह यामि पुन पुर ध्रुवमिद तिर्यग्वपुश्चास्तु मे
कान्ता स्पर्श-सुखादनोपि भविता किं वान्यदेतादृशम्॥

सिद्धयोगिनी ने उसे कुश का वह अगद दिया, जिसे फणावती के द्वारा नायक ने उसके लिए भेजा था। शुक की नायिका से सरस बातें हुई, जिसे सुनकर शख भाँप गया कि कुमुद्वती कहीं अन्यत्र ही प्रेमप्रवणा है। उसने कुमुद को यह बताना चाहा तो कुमुद ने उसे उलटे ही डाँटा। दूसरे दिन पुन आने के लिए शुकादि विसर्जित हुए।

पूर्वयोजनानुसार विदूषक ने लव को भडकाया कि बडे भाई की कामना पूरी करें। कुमुद लाख समझाने पर भी अपनी कन्या शख को देने से विरत नहीं होना चाहता था। लव ने कुमुदादि को डराकर सत्पथ पर लाने का आयोजन किया, जिसमे सर्पयाग की माया द्वारा विदूषक ने योगदान किया।

नागह्रद मे लव शरवृष्टि से नागो को उत्पीडित करने लगा। उसके तट पर विदूषक ने सर्पयज्ञ ठाना। गरुड ने असख्य नागो को अपनी चोच से नोच-खसोट लिया। अन्त मे अपनी प्राणरक्षा के लिए कुमुद ने सागरिका से प्रार्थना की। ऐसी स्थिति मे नायक और नायिका का विवाह हुआ। लव को शान्त करने के लिए कुमुद्वती की बहिन कमलिनी उसे दे दी गई। विदूषक को फणावती मिली।

कथाशिल्प

इस नाटक मे विदूषक के विवाह की योजना भी नायक के विवाह की योजना के साथ चलती है। सूक्ष्मदर्शिनी नामक ब्राह्मण कात्यायनी उसे अपनी कन्या देने का प्रस्ताव रखती है। उसके साथ कन्या को देखने का अवसर विदूषक को मिला और वह उस पर मोहित हो गया।

रगमच को नये सविधानो से शृगारित करने मे कवि ने रुचि ली है। द्वितीयाङ्क मे नायिका की कटि मे उत्तरीय बाँधकर उसके कचुक को खोलना सम्भवत छैले दर्शकों के प्रीत्यर्थ था। नायक ऐसी स्थिति मे नागरिका को उपालम्भ देते हुए कहने लगता है, जब नायिका क्षण भर के पश्चात् कुचमण्डल छिपा लेती है—

इदानीं हि मामग्रे पश्यन्ती कुमुद्वती लज्जते।

एक नायिका को प्राय अर्धनग्न अवस्था मे स्नान की प्रक्रिया म दिखलाना प्रेक्षकों के लिए अतिशय रुचिकर था। द्वितीय अङ्क मे ऐसी नायिका को देखकर नायक के नीचे लिखे वक्तव्य द्वारा प्रेक्षकों को मासलित किया गया है—

'अस्या नितम्बजघनादिपु यादृगद्यनग्न पटो निरवशेपमदृश्यभेद' इत्यादि

अतिरात्र ने भरत के इस नियम का उल्लंघन किया है कि जलक्रीडादि रंगपीठ पर न दिखाये जायँ।[1] द्वितीय अङ्क में—

फणावती-कलावत्यो करौ गृहीत्वा सरय्वामवतीर्य कुमुदवती नाभिदघ्ने जले तिष्ठति'। फणावती-कलावत्यौ कुमुद्वत्या उत्तरीय कट्या निबध्य स्तनवल्कुक मुञ्चत यह और इसके आगे के व्यापार (नायिका) लज्जमाना पाणिभ्या स्तनौ पिदधाति' आधुनिक चलचित्रो के पूर्वगामी दृश्य प्रस्तुत करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अश्लीलता मनचले लोगो के प्रीत्यर्थ थी। ऐसे ही लोगो के लिए उत्सुक नायिका को सागरिका के मुख से कहलवाया गया है—

प्राप्य प्रिय निकटकुञ्जगृह नयन्ती स्वर रमस्व परिरम्य चिराय धन्या॥

यह प्रकरण भाण की पद्धति पर विकसित है, जहाँ विटो को ऐसी बातें कहने-सुनने का एकाधिकार होता है। अभिनय के स्थान-स्थान पर निर्देश कवि की अभिनय चातुरी को प्रकट करते हैं। यथा, नायिका के लिए—

कथचिदपि धैर्येण किंचिद्विगलितत्रपा मुखमीषत् स्वमुन्नमय्य सस्मित प्रियमैक्षत।

प्रणय-पद्धति में झूठी बातें बनाने का विभ्रम इस नाटक में विशेष रूप से अपनाया गया है। यथा, द्वितीय अङ्क में सागरिका के नियोजन में नायिका नायक के साहचर्य-सुख का आनन्द ले रही थी। इसे छिपाने के लिए सागरिका कचुकी को उल्लू बनाती है यह कहते हुए—

अद्य पूजासमापनाय कुमुद्वत्यैव पुष्पाण्यवचितानि। पश्येति। तस्मै स्वकरस्थपुष्पाणि प्रदर्श्य एतदर्थमिय क्षणमन्यतो नीता।

गीतात्मकता के सौरभ से स्थान-स्थान पर यह नाटक सुवासित है, विशेषत एकोक्तियो में। नायक की एकोक्ति है—

कर्पूरसान्द्रहरिचन्दनलेपन वा यन्त्रस्थचन्द्रगलिता मृतसेवन वा।
हेमन्तहैमवतनिर्झरमज्जन वा तस्या स्तनाग्रघटनेन मयानुभूतम्॥

द्वितीयाङ्क से—

अर्थोपक्षेपक के समान चीटिका का उपयोग तृतीयाङ्क में मिलता है। विदूषक सागरिका से प्राप्त चिट्ठी राजा को देता है, जिसमें लिखा है—

'कुमुद्वती निरदर्घति' इत्यादि।

नाट्यशिल्प

एक ही रगमच पर एक ही समय सागरिका, नागरिका, राजा आदि एक ओर हैं। वे किसी व्यापार में नहीं लगे हैं। दूसरी ओर कुछ दूरी पर विदूषक का सूक्ष्म-

1. नाट्यशास्त्र २२ २६६-२६६।

दर्शिनी की कन्या के साथ विवाह का प्रस्ताव पारित हो रहा है। रंगमंच पर बिना किसी काम के पात्रों को दिखाना उचित नहीं है।

अनेकश रंगमंच पर पात्र बिना बोले हुए देर तक ऐसे काम करते रहते हैं, जो प्रेक्षकों को रुचिकर प्रतीत हों। यथा, चतुर्थ अङ्क में—कुमुद्वती तथा निष्ठति। कुमुद् हस्ते फलान्यादाय सर्वज्ञराजशुकाय तवाय फलोपहार इति प्रदर्शयति। इसी अङ्क में आगे चलकर—

शुक —सानन्दमुड्डीय कुमुद्वत्या अंसमारुह्य प्रत्यङ्गमभिमृशन्निव मुख मुखेन सयोज्य चक्षुरधरादीनि स्वतुण्डेन जिघ्रन्।

नाटक में कतिपय स्थलों पर अदृष्टाहति (Dramatic Irony) है। यथा,

शखपाल —शुकराज, त्व पाणिग्रहणमस्या यथा न विच्छिद्येत तथा क्रियताम्।

वह बिचारा कहाँ जानता था कि कुमुद्वती का विवाह तो कल होने ही जा रहा है, किन्तु उसके साथ नहीं, शुक के साथ।

नाटक में तोते का मानव-वाणी सम्पन्न होकर नायिका से प्रेमोपचार करना, कर्णपत्रिका पर नखलेखन द्वारा सन्देश अङ्कित करके नायिका को देना, तिरस्करिणी द्वारा नायक को अदृश्य रख कर केवल नायिका के लिए दृश्य रखना, चित्रदर्शन, आदि महत्त्वपूर्ण और रुचिकर सविधान हैं।

शैली

भाषा की सरलता और सवादों की स्वाभाविकता को कवि ने अपने बड़े भाई नीलकण्ठ से ही मानो उधार ले रखा था। इस दृष्टि से यह नाटक नलचरित के समान है।

अतिरात्र ने रूपकों के द्वारा अपनी लेखनी को स्पष्टता प्रदान की है। यथा,

इदमगाधे मदनातङ्कमहोदधौ मज्जतो मम काशकुशावलम्बनम्।

हास्यरस की अभिनव निर्झरिणी अतिरात्र ने प्रवर्तित की है। कुमुद्वती के उन्माद का दृश्य है। उसका पिता पूछता है कि मैं कौन हूँ ? वह उत्तर देती है—

त्व भूतलनाथो भूपाल । अथवा भवति द्युलोकनाथो महेन्द्र ।

शखपाल ने पूछा—मैं कौन हूँ ? वह उत्तर देती है—

त्व दक्षिणदिङ्नाथो धर्मराज ।

सवेतित अर्थ है—आप मेरे प्राण लेने वाले यम ही हैं।

वैद्य बुलाये जाते हैं। उन्होंने बताया कि वात-प्रधान रोग है। पाँच छ दिन में ठीक होगा। वे भगाये गये। फिर मान्त्रिक आये। पिता ने पूछा कि इसे ग्रहबाधा है कि नहीं ? कुमुद्वती ने स्वगत सुनाया—मुझे शखपाल के साथ पाणिग्रहण की बाधा

है। उसने कुमुद्वती के सारे अंग पर भस्म लगाया और कहा कि मेरे अनुष्ठान से इसे सर्वस्व लाभ होगा। फिर गोलाचार्य आये। उसने कहा कि इसे मुहूर्तानुसार गणना करने से देख रहा हूँ कि अभीष्ट वर लाभ होगा। उसने शावपाल के पूछने पर बताया कि तुम्हारा चाहा हुआ विवाह कल नहीं होगा।

सूक्तिसौरभ

१ विधिना विपरीतेन चरता विषमे पथि।
मैत्र्यामित्रेण दृष्टानामाधिराशु विनश्यति॥
२ अनुम्पाङ्गनारूप – सकृदालोकनादपि।
हृदयं विद्रवेत् पुंसां नवनीतमिवानलात्॥
३ प्रकृत्यैव मुग्धा निरकुशवचना च स्त्रीजातिः।
४ विविक्तप्रिया हि देवा।
५ अतिप्रीतिरनर्थाय प्रीत्यभावे कुतः सुखम्
तस्मान्मध्यमरीत्यैव सेव्यो राजा मनीषिभिः।
६ उपकर्तुरपकारः कर्तव्यः।
७ राजकार्याणि गूहनीयानि।
८ सुरूपास्तु विरूपा वा यस्य यस्या मनोगतिः।
सैव तस्योर्वशी सैव रम्भा सैव तिलोत्तमा॥
९ न हि पत्न्यसंनिधाने परस्त्रियः सम्भाष्या।
१० निसर्गमुग्धा हि स्त्रीजातिः।

इस नाटक की प्रगुणता असन्दिग्ध है। इसका सबसे बड़ा दोष है प्रकरणों और चर्चाओं को अनावश्यक रूप से लम्बायमान करना। ऐसा करते में कवि सापवाद या व्यर्थ की बातें भी कहने लगता है। भला पंचम अंक में कुन्द को अपनी प्रिया नायिका के विषय में ऐसा कहना चाहिए—

तडित्तुलितचाचल्याः स्त्रीणां प्रेमप्रवृत्तयः।
वश्या भवन्ति ताः पुंसां भूषाम्बरघनादिभिः॥

यह नायिका तो नायक के लिए प्राण दे रही थी। पंचम अंक में राजा का नागरिका से संवाद सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि इससे कोई बात नहीं बनती।

नाटक का नायक कठपुतली है। वह स्वयं कुछ करता नहीं। दूसरों के संकेत पर चलता-फिरता है। कवि को चाहिए था कि नायक से कुछ अपनी ओर से भी कराता।

छायातत्त्व

राजा कुन्द का चित्र देखकर नायिका का मुग्ध होना छायातत्त्व का परिचायक है। विदूषक का इस प्रकरण में प्रश्न है—

सा किमचेतन एव चित्रेऽनुरक्ता। न पुनस्तादृशरूपवति पुरुषे।

यह प्रश्न ही उत्तर था नायक के नीचे लिखे प्रश्न का—

किं मत्प्रतिच्छन्दकानुराग एव मय्यनुराग ।

सागरिका ने कुश को जो चित्र दिया, उसे नायक ही मानकर नायिका ने व्यवहार किया। यथा,

मुखे मुखं निदधतीव। इत्यादि।

इस नाटक में चतुर्थ अंक में यहीं तक राजा नायक का शुकरूप धारण करना छायातत्त्व है। वह मानवोचित वाणी से प्रपन्न है।

नागरिका का सिद्धयोगिनी बनना छायातत्त्व है। वह कहती है—(अभिमन्त्र यन्तीव क्षणमधरकम्पं कुर्वाणा कुमुद्वती वीक्ष्य शुकमंसादवरोप्य) भो भो सर्वज्ञ महात्मन्, मयि सौहार्दात् क्षणमेनामधिगम्य तत्तदवयवानामृश्य दोषानुत्सारयन् प्रज्ञामुत्पाद्य त्वरितमुल्लाघय।

अद्भुतदर्पण

अद्भुतदर्पण[1] के रचयिता महादेव के गुरु सुप्रसिद्ध बालकृष्ण थे, जिनके अपने गुरु होने की चर्चा कवि ने इन शब्दों में की है—

दिक्चक्र कियदण्डभित्तिभिग्दि नन्वावृत सर्वतो
ऽप्यण्ड नाम कियत्त्रिविक्रमपदैराक्रान्तमेतत्त्रिभि ।
तन्निर्यन्त्रणबालकृष्णभगवत्पादप्रसादोन्मिषत्-
प्राचण्ड्य कविमण्डलेश्वरयशोगुम्फ क्व वा जृम्भताम् ॥

यही बालकृष्ण रामभद्र दीक्षित के गुरु थे, जैसा उन्होंने नीचे लिखे पद में कहा है—

यस्यानुग्रहदृष्टिमर्पयति च श्रीबालकृष्णो गुरु ।

इस प्रकार महादेव और रामभद्र दोनों सतीर्थ थे। दोनों को शाहराज के द्वारा १६६३ ई० में प्रदत्त अग्रहार में भाग मिला था। महादेव को रामभद्र से तिगुना भाग मिला था। इससे महादेव की उस समय तक सर्वोपरि ज्ञानवृद्धि प्रमाणित होती है।

महादेव के पिता कृष्णसूरि कौण्डिन्य-गोत्रीय थे। वे तञ्जौर के निकट कावेरी के तट पर पलमारनेरी के निवासी थे। उन्होंने अद्भुत-दर्पण की रचना अपनी युवावस्था में लगभग १६६० ई० में की होगी। नाटक की प्रस्तावना में इसके लेखक सूत्रधार ने लेखक की नई अवस्था की चर्चा करते हुए कहा है—

अस्ति तस्य किल सूनुरायुष्मानस्माक गर्भरूपो वत्समहादेव ।

कौण्डिन्यवंश के उदार चारित्रिक योगदान के विषय में सूत्रधार का प्रस्तावना में कहना है—

आ प्राभाकरयज्वन स्वयमभिव्यक्तीभवद्ब्रह्मणा-
माचारैश्चरितार्थितश्रुतिगिरामाजानशुद्धात्मनाम् ।
कौण्डिन्यव्यपदेशपूतयशसा यद्ब्राह्मणाना चिरात्
सर्वोऽप्य सफलीकरोति नयन तत्र पर मगलम् ॥ ३

प्रसगत नाटकों के अभिनय के उपयोगों की चर्चा करते हुए सूत्रधार का कहना है—

सन्दर्भे परिशोधन क्वचिदितु सत्प्रीणन मादृशाम् ।
कीर्तिर्नाटकनायकस्य सदस सद्य परा निर्वृति ॥

१ अद्भुतदर्पण का प्रकाशन काव्यमाला स० ५५ में हुआ है।

नाटक का अभिनय यज्ञ-सम्पादन के अवसर पर अध्वरशोभा के लिए हुआ था।[1] लेखक का उद्देश्य था कि इस नाटक का परिशोधन अभिनय के प्रेक्षकों के द्वारा किया जाय।[2]

संविधान

इस नाटक का सर्वप्रथम संविधान एक ऐसे दर्पण की योजना है, जिसे रावण के श्वशुर मय ने उपहार में उसे दिया था। इस अद्भुत दर्पण की विशेषता थी—

प्रतिफलति यत्र सर्वं वस्तु यदा योजनत्रितयगात्।
तत्तन् क्रियाश्च सर्वा विना पुनर्मानमीं वृत्तिम्॥ १२३

अर्थात् तीन योजन के घेरे में जो कुछ होता था, उन क्रियाओं को इसमें प्रतिबिम्बित देखा जा सकता था।

कथावस्तु

राम ने लंका पहुँचने पर रावण के पास अंगद द्वारा संधि प्रस्ताव भेजा। यह रामपक्ष के वीरों को अच्छा नहीं लगा। इधर उन्हें समाचार मिला कि विभीषण के सकुटुम्ब आवास को मेघनाद जलाने का काम पूरा करने ही वाला था कि सम्पाति ने गुप्त रूप से कुटुम्ब को मैनाक पर्वत पर ले जाकर छिपा दिया। इधर लंका में 'मायाप्राय योद्धव्यम्' इस योजना के अनुसार मय, शम्बर, विद्युज्जिह्व आदि मायावियों का आदिकुल रावण की ओर से लंका में बुला लिया गया था।

शम्बर ने वानर का वेश रावण के मनोविनोद के लिए बनाया था, जिसकी सूचना जाम्बवान् ने राम को दे दी थी कि सभी वानरों को यह बता दिया जाय। विभीषण को यह काम दिया गया कि असली और नकली वानरों को वे जानकर समझाते-समझाते रहें। अनल ने राम से बताया कि अंगद को फोड़ने का प्रयास लंका में हो रहा है। उसी समय वानर वेशधारी शम्बर ने लक्ष्मण के कान में कहा कि अंगद राक्षसों से जा मिला है। जाम्बवान् को सन्देह हो गया कि अंगदविषयक समाचार देने वाला वानर छायात्मक है, वह वस्तुतः राक्षस है। उसने राम की इच्छानुसार शम्बर को पकड़ लिया। पर शम्बर ने अपने को झट अदृश्य कर लिया जब जाम्बवान् के समीप दधिमुख नामक वानर था और जाम्बवान् ने राम का पत्र पढ़ने के लिए उसका हाथ छोड़ रखा था। जाम्बवान् ने दधिमुख (प्रकृत) को (विकृत वानर शम्बर) समझकर विभीषण के पास उसकी पहचान कराकर दण्ड देना चाहा। इधर मुक्त हुए शम्बर ने निर्णय लिया कि बीच में विभीषण बन कर मैं दधिमुख को मरवा दूँगा।

१. सूत्रधार—(सस्मितम्।) अध्वरशोभार्थं वयमाहूताः।
२. सूत्रधार—तदद्य कर्मान्तरेषु युष्माभिः प्रयुज्यमानमार्या यावत् परिशोधयन्ति।

द्वितीय अङ्क मे शम्बर ने दधिमुख का रूप धारण करके राम और लक्ष्मण को भरमाया कि अङ्गद रावण से जा मिला है, सुग्रीव मार डाला गया और अगद वानरो पर उत्पात कर रहा है। इधर वानर लका के प्राकार का मर्दन कर रहे थे। राम और लक्ष्मण वानरो की सहायता के लिए चल पडे।

तृतीय अङ्क में शम्बर ने अङ्गद का रूप धारण करके सुग्रीव के कृत्रिम सिर को राम लक्ष्मण के आगे लाकर पटक दिया। उसने राम से कहा कि मैंने सुग्रीव से बदला ले लिया। राम ने छाया अङ्गद का अपूर्व व्यवहार देखा तो मन में सोचा—

अभ्यस्त एप बहुशोऽतिविनीतवृत्तिरद्य त्वपूर्व इव हन्त विचेष्टते यत्।
तज्जोपमेव सकल हृदि मर्पयन्त कार्यार्थिनो हि समये सति विक्रियन्ते ॥३.१३

लक्ष्मण को सन्देह हुआ कि यह अङ्गद नही है। उन्होने उसे मारना चाहा।

इस बीच वहाँ सुग्रीव आ पहुँचे। उसकी वाणी सुनते ही राम स्वस्थ हो गये। लक्ष्मण ने राम से कहा कि यह वास्तविक सुग्रीव है कि नहीं—यह जान लें। इधर रावण के सेनापति प्रहस्त ने शम्बर को वन्दी बना लिया था, क्योंकि उसने अगद का वेश धारण किया था। इधर दधिमुख और जाम्बवान् ने समझ लिया कि पररूपधारी राक्षस ने किस प्रकार जाम्बवान् को झटका देकर, अपने स्थान पर दधिमुख को पकडवा दिया और फिर विभीषण बनकर दधिमुख को मरवाने की चेष्टा कर रहा था। वे भी उत्तरगोपुर की ओर राम से मिलने चल पडे, जहाँ लडाई हो रही थी।

प्रहस्त अगदरूपधारी शम्बर को मार ही डालने वाला था, जब शम्बर ने उससे कहा कि मैं अगद नही, शम्बर हूँ। तभी जाम्बवान् वहाँ आया और उसने पुनरपि शम्बर को पकड लिया।

युद्ध में इन्द्रजित ने नागास्त्र का प्रयोग किया। उसने सुग्रीव को निश्चेतन कर दिया। राम ने गारुडास्त्र के प्रयोग से उसको विदलित किया। प्रहस्त मारा गया। रावण स्वय युद्धभूमि की ओर चला। राम को विभीषण ने अद्भुत दर्पण नामक रावण की मणि अर्पित की।

शूर्पणखा ने राम का कृत्रिम शिर सीता को दिखाकर उसे रावण से विवाह करने के लिए विवश करना चाहा। सीता उसे देखकर मूर्छित हो गई। त्रिजटा राम की विजय देखकर आई थी। यह बात सीता के कानो मे ज्योंही पडी कि वह सचेत हो गई।

सातवें और आठवें अङ्क में मायानाटिका की योजना करके त्रिजटा ने सीता को दिखाया कि किस प्रकार रामादि ने रावणादि को नीचा दिखाया है। रावण तिरोहित होकर यह सब देख रहा था। उसने सम्मा चला कर मारने का उपक्रम किया तभी रावण को नेपथ्य से सुनाई पडा कि कुम्भकर्ण मार डाला गया। थोडी देर पश्चात् उसने सुना कि इन्द्रजित मार डाला गया।

नवम अङ्क मे लङ्का और निकुम्भिला की बातचीत से ज्ञात होता है कि किस प्रकार हनुमान् ने लङ्का का छेद, भेद और दाह किया। लङ्का से ब्रह्मा ने बताया कि शीघ्र ही राम विभीषण को लङ्केश्वर बनायेंगे। हम लोगो को यज्ञपरायण होना है, व्यभिचार परायण नही।

रावण ने माया से अपने को असंख्य बना लिया और एक-एक वानर पर कई रावण पिल पड़े। फिर तो एक एक रावण पर असख्य राघव पिल पड़े। रावण मारा गया और लङ्का मे पुन शान्ति स्थापित हुई। लङ्का और निकुम्भिला सीता की शरण मे पहुँची। तब भी शूर्पणखा को पड़ी थी कि सीता के कारण सब हुआ है। उसी को उद्विग्न किया जाय। सीता को राम से अलग करना है। उसके परगृहवास-दूषण से राम खिन्न थे। मय ने योजना बनाई—

अह रामो भूत्वा जनसदसि सीतामुपगता
परित्यक्ष्याम्येना परभवनवास प्रकटयन्।
तत सा रोषान्धा नवममहमाना परिभव
प्रवेक्ष्यत्यम्भोधि दहनमथवा शोकविवशा ॥ १०८

सीता ने अग्नि प्रवेश किया तो अग्नि ने उन्हें पुन राम को दे दिया। ऋषियो ने नेपथ्य से घोषणा की कि आप विष्णु के अवतार के लिए लक्ष्मी-रूपी सीता पुन अवतरित हुई है। राम के सभी वानरादि सैनिक जी उठें। देवताओ के साथ दशरथ ने राम को सीता सहित आशीर्वाद दिया। राम, सीता और लक्ष्मण विमान मे बैठे। राम के अभिषेक की सज्जा होने लगी।

भरत वाक्य है—

ताप तमश्च जगता सरस हरन्ती। चन्द्रप्रभेव कविता जनता धिनोतु ॥

नाट्यशिल्प

रूपक मे समयाभाव को दृष्टि मे रखकर रगपीठ पर दृश्य कथा को छोटा बनाने के उद्देश्य से प्रस्तावना मे, अर्थोपक्षेपको मे और पताका स्थानको मे अनेक ऐसी घटनाओ की सूचना-मात्र दे देते हैं, जो कथा को पूर्णतया समझने के लिए आवश्यक होती हैं, किन्तु उनका अभिनय नहीं होता। प्रस्तावना या आमुख को प्रस्तुताक्षेपी होना चाहिए। इस प्रकार रगपीठ पर अङ्क अभिनीत होने वाली कथा का प्रसङ्ग समय मे आ जाता है। अद्भुतदर्पण मे प्रस्तावना के अन्तिम भाग मे हनुमान् का लङ्का-विषयक समाचार देना, समुद्र पार करने के लिए सेतु बनाना, वानर सेना का समुद्र पार करना, राम का त्रिकूट पर स्कन्धावार बनाना और अगद का रावण के पास जाना—यह सब एक वाक्य मे बता दिया गया है। यह सब एक प्रकार से आरम्भिक विष्कम्भक का रूप है।

कथा का आरम्भ वेणीसहार के समान होता है। वेणीसहार के भीम के समान अद्भुतदर्पण का लक्ष्मण कहता है—

मानी सखितया करोति हृदि कस्तद्वैरमल स्मरन्। ११०

विष्कम्भक मे रगपीठ पर दृश्य का अभिनय भी होता है, केवल सूचना ही नही दी जाती। दूसरे अङ्क के पहले जो विष्कम्भक है, उसमे दृश्य का निर्देश है—

ततः प्रविशति दधिमुख हस्ते गृहीत्वा जाम्बवान्। तथा—शम्बरः (सहसताल विहस्य)।

प्रथम अङ्क के पहले विष्कम्भक मे २७ पद्य हैं। विष्कम्भक पद्य के लिए भूतल नही बनाया गया था। फिर इतने पद्यों की भरमार तो विचित्र ही है। यह तो किसी अर्थ म अङ्क से भिन्न नही रह गया है। इसमे भूत और भावी घटनाओ की सूचना स्वल्प ही है।

महादेव को नाटक सम्बाध्यमान करने मे अपन की निपुणता है। पूरे षष्ठ अङ्क मे कोई काम की बात नहीं है, जो एक-दो पक्तियो मे कह देने पर कथा को आगे बढ़ने में कोर-कसर आने देती।

अङ्क के प्राय अन्त मे जो बात कोई कहता है, उसी बात को कहते हुए वह अगले अङ्क के आरम्भ मे रगमच पर आ जाता है। छठें अङ्क के अन्त मे और सातवे के आरम्भ में और सातवें अङ्क के अन्त में तथा आठवें अङ्क के आरम्भ में इस प्रकार सक्रमण जाते-आते हैं। अपन भी वे ही श्लोक पुन पुन आते हैं। यथा, 'विज्जुज्जीहृ सदेणवि' पराक्रमेण पति।वनि और धनेन सौजन्येनायमर्थी। 'तदुपायेन सरमा' पद्य की पुनरावृत्ति चार बार हुई है।

अदुष्टाहृति

अदुष्टाहृति (Irony) के कतिपय अनुत्तम उदाहरण मिलते हैं। रावण त्रिजटा को अपना हितैषी समझ कर आशा करता है कि मायारूपक दिखाकर वह सीता को मेरे पक्ष मे ला रही है। वह महोदर से सप्तम अङ्क मे कहता है—

वयस्य पर्यन्तस्थापयेति कारागारभरागारसप्रायेण मन्दारिणानुकेन मायाविहारेण मया मीतामार्जयितुमनया समारम्भेन भवितव्यमिति तर्कयामि।

आगे चल कर इसके ठीक विपरीत स्थिति उसके समक्ष आती है।

सप्तम अङ्क मे एक बार और नीचे लिखी अदुष्टाहृति है—

रावण—वयस्य, वानरमद्विजामहोत्सव दर्शयति सा।ायं त्रिजटेर्दाि सुहृत्तम तनमेतदस्माकम्।

वास्तव मे त्रिजटा राम को विजय दिखा रही थी।

मायानाटिका

महादेव की मायानाटिका नाट्यशिल्प की एक विशेष उपलब्धि है।[1] एक तो

---

१ मायानाटिका की सूत्रधारिणी त्रिजटा है, जो राक्षसी होते हुए भी मायाप्रपञ्च का सर्जन करके इस मायानाटिका को अभिनय सीता के मनोरजन के लिए करती है।

यह छायानाटक का प्रतिरूप है, जिसमें रंगपीठ पर सभी पात्र मायात्मक हैं और रंगपीठ पर ही वे ही पात्र दर्शक बन कर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं और दूसरे यह गर्भाङ्क अपनी कोटि का निराला ही है, जिसमें रंगपीठ चार भागों में नीचे लिखे अनुसार विभक्त है—

प्रथम भाग पर मायात्मक पात्र राम, रावणादि अभिनय करते हैं। इस मायात्मक अभिनय के कारण इसका नाम मायानाटिका है।

द्वितीय भाग पर आसीन सीता और सरमा प्रथम भाग को देखती हैं और अभिनयात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। तृतीय भाग पर उपर्युक्त दोनों भागों को तिरोहित रह कर प्रकृत रावण और महोदर देखते हैं और अपनी अभिनयात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

चतुर्थ भाग पर उपर्युक्त सभी भागों के अभिनयों को प्रकृत राम और लक्ष्मण अद्भुत दर्पण में देखते हैं और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

प्रेक्षक इन चारों भागों के अभिनयों को देखता है। संस्कृत के नाट्य साहित्य में ऐसा वैचित्र्यपूर्ण चतुस्स्थलीय अभिनय प्रेक्षकों को दिखाने का उपक्रम अन्यत्र विरल ही है। इसका उपजीव्य वस्तु बालरामायण में रावण के मनोविनोद के लिए प्रदर्शित सीता के स्वयंवर का रूपक है।[1]

एकोक्ति

अद्भुत-दर्पण का आरम्भ लक्ष्मण की एकोक्ति से होता है। इसमें राम के अङ्गद द्वारा रावण के पास सन्धि प्रस्ताव भेजने पर लक्ष्मण अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। वे इस एकोक्ति में व्यक्त करते हैं कि जाम्बवान् की भी प्रतिक्रिया मेरी ही जैसी है। उसी समय रंगपीठ पर एक ओर राम भी उपर्युक्त संवाद-प्रेषण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया एकोक्ति द्वारा व्यक्त करते हैं। प्रथम अङ्क में शम्बर रंगपीठ पर दूसरों के होते हुए भी आकर एक भाग में अपनी एकोक्ति सुनाता है।

चरित्र-चित्रण

कवि ने राम के चरित्र को इतना उदात्त बनाया है कि प्रतिनायक रावण भी उनकी प्रशंसा में कहता है—

अनेन सौजन्येनायमर्थी यद्युपतिष्ठते।
सीता विनाप्यदर्पितं दत्तमेव मया भवेत्॥२०॥

इसमें प्रकृति-वैविध्य रोचक है। मानव, राक्षस, भल्लूक, वानर आदि के साथ ही लङ्का और निकुम्भिला को रंगमञ्च पर लाया गया है। इनमें से लङ्का नगर की अधिदेवी है और निकुम्भिला राजोद्यान की अधिदेवी है। इनके अतिरिक्त

१ बालरामायण तृतीय अङ्क में सन्निवेशित प्रेक्षणक।

माया पात्रों का वैविध्य है। महोदर और माल्यवान् के चरित्र में वैविध्य है। वे अकेले में कुछ और सोचते हैं और रावण के समक्ष ठीक विपरीत बन जाते हैं।

छायातत्त्व

अद्भुत-दर्पण में मायावी राक्षसों और शम्बर, मय और विद्युज्जिह्व नामक असुरों के मायात्मक कार्यकलाप में छायातत्त्व का विस्मय चमत्कार स्वाभाविक है। प्रथम अंक में शम्बर वानर बन कर रामादि को भरमाता है कि अङ्गद रावण से जा मिला है।

छायातत्त्व के द्वारा नाटक में मनोरञ्जक मायात्मक व्यापार प्रस्तुत किये गये हैं। यथा, जाम्बवान् ने वानर बने हुए शम्बर को हाथों से पकड़ रखा था, जब उसने राम से बताया था कि अङ्गद रावण से मिल गया है। इस बीच सुग्रीव-सेवक दधिमुख नामक वानर उसके पास आया, जब शम्बर का हाथ छोड़कर जाम्बवान राम से प्राप्त पत्र पढ़ रहा था। फिर तो शम्बर अदृश्य हो गया और जाम्बवान ने दधिमुख वानर को पकड़ लिया। उसे सन्देह होने लगा कि यह वास्तविक दधिमुख ही है क्या अथवा वानर बना हुआ राक्षस? उसकी पहचान कराने के लिए वे उसे विभीषण के पास ले चले। मार्ग में उसने जाम्बवान् से कहा कि मुझे सुग्रीव ने भेजा है कि मैं राम से कह दूँ कि रावण ने अङ्गद को बन्दी बना लिया है। जाम्बवान् दधिमुख से पूछ बैठा—

ब्रूषे सद्यो यस्त्वमस्मत्पुरस्तात् तारेयस्यारातिपक्षप्रवेशम्।
स एव मद्यस्तद्विरुद्धप्रकारं किंचिच्चेद जल्पसीत्यद्भुतम्॥

इसे सुन कर दधिमुख ने कहा कि मेरा रूप धारण करने वाले किसी राक्षस ने आपको ठग लिया। जाम्बवान् ने कहा—वह राक्षस तो तुम्हीं हो। तुम्हें विभीषण से पहचनवायेंगे। फिर तो शम्बर बीच में विभीषण बन बैठा।

रस

अद्भुतदर्पण नाटक में अद्भुत रस अङ्गी होना स्वाभाविक है। राम ने स्वयं कहा है—

यत् सत्यमभित स्तब्धैरिन्द्रियैरिन्द्रजालवत्।
अद्भुतैकरसावृत्तिरन्तर्मीलयतीव माम्॥ ४८

शैली

अद्भुत दर्पण की शैली सर्वथा नाट्योचित है। कवि का प्रयास है सरल भाषा में अपने भावों को व्यक्त करना। इसमें उसे सफलता मिली है।

कहीं-कहीं कवि ने पौराणिक कथाओं का प्रसङ्ग देते हुए अपनी बातों को स्पष्ट किया है। यथा, लक्ष्मण रावण के द्वारा अपनी भुजाओं के पराक्रम की प्रशंसा करने पर सप्तम अङ्क में कहते हैं—

दृष्टा एव ते नन्वार्तस्य चिरादेकत्राणलक्ष्येण वालिना वानरेन्द्रेण बाहवः।

शृङ्गारकोशभाण

शृङ्गारकोशभाण के प्रणेता नीलकण्ठ दीक्षित के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र दीक्षित हैं। पिता से गीर्वाण ने शिक्षा पाई। भाण के अन्त में कवि ने 'काशीविश्वनाथाय नमः' लिखा है। इससे सम्भावना होती है कि इसकी रचना काशी में हुई हो। कृष्णमाचार्य के अनुसार कवि ने अन्यापदेश-शतक की रचना की थी।[1] कवि का वार्द्धक्य सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में स्फुरित हुआ।

शृङ्गारकोशभाण का प्रथम अभिनय वरदराज के वसन्तोत्सव-यात्रा के अवसर पर हुआ था। इसमें विट शृङ्गारशेखर अपने पूरे दिन की दैनिक चर्या का परिचय प्रस्तुत करता है। वेश्याओं के परिचय के साथ ही आनुषंगिक रूप से वेश से सम्बद्ध विविध प्रकार के विनोदात्मक युद्ध और वेशप्रेमियों की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों का प्रदर्शन प्रमुख है। स्वभावतः गीतितत्त्व का उच्चकोटिक उन्मेष भाण में निर्भर है।

> हृद् रूपकेण दरपीडितपार्वणेन्दुनिष्यन्दिनूतनसुधारसनोदनेन।
> वृत्तप्रयोगविशदादरसोत्तरेण, त्वं नो विकासय मनांसि विना विलम्बम्॥

रङ्गकेतु नामक पात्र ने भाण के नायक शृङ्गारशेखर की भूमिका निष्पन्न की थी। रङ्गकेतु इसके पहले मधुरापुर में नाट्याभिनय कर चुका था।

विट को सर्वप्रथम प्रातःकाल की रमणीय छटा में निमग्न पाते हैं। उसे पहले वसन्तक से भेंट होती है। वह सारंगिका का वियोग होने से व्यथित होकर गाता है—

> आगुल्फायतवेणिका स्मितमुखी मालर्णपूर्णेक्षणा
> नासात् किंचिदुरोजयोरवनता मन्दिरमध्योज्ज्वलाम्।
> तन्वीमुन्मदमन्दिराक्षगमना मन्त्यज्य सारंगिका
> वर्ते जीवतमात्मनो निरनुधन्दीनो नियेत्यात्मतात्॥ [illegible]

उसके साथ वेशवाट के प्राकृतिक रामणीयक के अवलोकन के द्वारा मनोविनोद करता था। वहाँ से दाहिनी ओर कमल वन खिल रहा था। उस जलाशय में चक्रवाक, हंस, भ्रमर आदि प्रातःकाल में उनिद्र हो रहे थे। एक ओर पुष्पवाटिका थी। विट का कहना है कि ब्रह्मा ने आँखें बनाईं। ब्रह्मा के इस श्रम को सफल करने की विधि है कि आप वेशवाट में वाराङ्गनाओं का कम से कम दर्शन तो करें। वे शय्यागृह से अभी निकल रही हैं। सर्वप्रथम शृङ्गारशेखर को अपनी भोग्या चन्द्रकला

1. शृङ्गारकोशभाण की हस्तलिखित प्रति सागर वि. वि. के पुस्तकालय में तथा तंजोर के सरस्वती-महल-लाइब्रेरी में ८६११ संख्या है। अन्यापदेशशतक Descriptive Catalogue of Sanskrit Mss in Oriental Mss. Library Madras में XX 8019 संख्यक है।

मिली, जिसकी कामक्रीडा का वर्णन करके चन्द्रशेखर ने आगे बढने पर मधुवरिका को देखा। उसे किसी विदशी विट न ठग लिया। उसके साथ पाच पैसे मे रात भर आनन्द मनाकर जब सवेरे के लगभग वह सोई तो विदेशी सारग द्वारा प्रदत्त उसके हार को चुराकर चम्पत हो गया, जिसका मूल्य २०० स्वर्णनिष्क था। फिर उसे वैजयन्तिका अपनी बहिन चन्दनलता के साथ दिखी। चन्दनलता वेशकर्म के समारम्भ के लिए सारग को कौमारहर रूप मे प्राप्त कर चुकी थी। सारग सर्वोत्तम विट है—

आकारसम्पदि विलासगतौ चटूक्तौ वित्ते कलासु सकलासु वदान्यतायाम्।
पचेषुविभ्रमपदे च दयाविशेष पश्यामि नास्य विमृशन्नपि तुल्यमन्यम्॥

इसे शृङ्गारशेखर ब्रह्मा की सृष्टि-विधान का साफल्य मानता है कि चन्दनलता को सारग मिला।

वसन्तक शृङ्गारशेखर के साथ-साथ घूम रहा था। उसे सारग का नाम सुनकर सारगिका का स्मरण हो आया कि मुझे सारगिका कैसे मिलेगी। तभी शृङ्गारशेखर को सारगिका दिखी। उसने उसे उपदेश दिया—

मजीरनाद-मधुर चरणप्रहार काञ्चीगुणाकलितकोमलबन्धन च।
भ्रूभगमामि विषमञ्च कटाक्षभेद स्वामिप्रवनगनिगमाहृत एप दण्ड॥

तुम वसन्तक को छोडो मत। वह धनी जो है। शृङ्गारशेखर ने दोनो का हाथ मिलवाया। इसके पश्चात् काममजरी मिली। उसके हाथ मे प्रेमी मधुकर के द्वारा प्रदत्त विदेशी शुकशावक था। वह बहुविद् था।

शृङ्गारशेखर को इसके पश्चात् बन्धन से छूटा मतगज दिखाई पडा। डर से भाग छोड देन पर उसे वासन्तिका नामक कुलवधू मिली, जिसन अभिसार-पथ पर अभी-अभी चलना आरम्भ किया था। शृङ्गारशेखर को उसका जो समागम सुख प्राप्त था, उसका सस्मरण उसने वसन्तक को सुनाया।

दोपहर होने पर मधुकर, विहग, वारागनायें आदि किस प्रकार उष्णता का परिहार कर रहे हैं—इसका वर्णन विट ने किया। वे धूप से बचने के लिए बाल-बकुलोद्यान मे जा पहुचे। वहाँ वसन्त ऋतु की मस्ती म प्रमत्त कोकिल, हरिणीमिथुन मृङ्कार, अशोक, शुककुल आदि से सुशोभित उद्यान से उनका मन प्रसन्न हुआ। यथा,

निस्स्वरपिकस्वर विचलमानमन्दानिल
विवृद्धनवचम्पक विकचमल्लिकाकोरकम्।
निनिद्रनवमाकिरामधुमदान्ध — पुष्पचय
सखे हरति योगिना मनो मनोज्ञ वनम्॥

वहाँ वाराङ्गनायें कहीं अग सौष्ठव दिखलाती हुई द्यूत खेल रही थी। हार जीत मे पाद-प्रहार और आलिंगन का सुख बदा था। वहीं कहीं लतामण्डप मे चित्रलेखा

वीणा बजा रही थी। वही पद्मावती मूर्छित पड़ी थी। उसका शृङ्गारशेखर से प्रणयासार अतिशय था। किस विट के कारण वह इस दुःस्थिति में पड़ी थी—यह प्रश्न था। ज्ञात हुआ कि कुसुमपुर चले गये हुए मकरन्द के वियोग में उसकी यह दुर्दशा है। शृङ्गारशेखर ने उसे समझाया—

नानिमानमरविन्दलोचने खेदमावहतु तावक मनः।
नन्वमौ कुसुमबाणगामनाद् आगमिष्यति पतिस्तवाचिरात् ॥

तभी मकरन्द आ गया। उसे भी शृङ्गारशेखर ने तत्काल प्रणयोपचार का उपदेश दिया।

आगे कन्दुकक्रीडा करती हुई नायिका मिली और उसके निर्देशानुसार अभीष्ट वाराङ्गना से मिलने के लिए विट वहाँ पहुँचा, जहाँ कुक्कुट युद्ध हो रहा था। यथा,

पक्षौ वितत्य समुदस्य च कण्ठकाण्डावन्योन्यवक्त्रविनिवेशितदृष्टिपातौ।
एतौ त्वनायकथितस्तुनि-सम्प्रहृष्टौ सन्नह्यतो रणकृते धुरिताम्रचडौ ॥

इस युद्ध का सविस्तार वर्णन शृङ्गारशेखर ने किया। फिर मल्लशेखर से वह प्रेक्षको को मिलाता है। उसे वीरसेन से लड़ना है। शृङ्गारशेखर को शृङ्गार के आगे वीर कुछ जँचा नही। वह कहता है—

अलमनेन परव्यसनावलोकनकुतूहलेन। साधयावस्तावत्।

ग्रामीणो के लिए सस्ती वारजरतियो पर भी शृङ्गारशेखर की दृष्टि पड़ी—

कृत्वान्तर्हित-मज्जनं कचगतं पालित्यमत्युन्नतौ
वक्षोजौ विरचय्य कञ्चुलिकया क्षौमाहृनाकुण्ठना।
भाले कुङ्कुममाकलय्य तिलकं श्यामोचितैश्चेष्टितै
ग्रामीणानिह कापि वारजरती वश्यान् विधत्ते जनान् ॥

आगे उसे रुद्रभट्ट मिले। उन्हें किसी वाराङ्गना ने देय धन के लिए पकड़ रखा था। फटे चीथड़ो मे दुर्दशाग्रस्त ब्राह्मण वेशवाट के मदनव्रतचर्या का फल भोग रहा था।

सन्ध्या के समय वारागनायें अपने ग्राहको के प्रीत्यर्थ प्रसाधन कर्म मे पुनः व्यापृत हो गई। शृङ्गारशेखर चन्द्रकला के सदन मे रात बिताने घुसा। उसका साथी वसन्तक सारंगिका को सनाथ करने चला गया। कवि ने भरतवाक्य प्रस्तुत किया है—

भयादस्त्वखिलजन्मा रतिपतेराज्ञा कुले कामिना
भक्तिः कामदुघा जनस्य सुदृढा भूयाद् भवानीपतौ।
एधन्ता चतुराननेन्दुवदना पादारविन्दक्वणन्
मञ्जीरध्वनि मञ्जुलाश्च जगदुत्सगे कवीना गिरः ॥

लेखक ने अन्त मे अपने आभिजात्य का परिचय दिया है—

श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमते प्रतिष्ठपनाचार्य-चतुरधिक-शतप्रबन्धनिर्वाहक-श्रीमहाव्रतयाजि-श्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्य — श्रीमदच्चा-दीक्षितपौत्रस्यश्रीनारायणदीक्षितात्मजस्य-कैयटव्याख्यान-शिवतत्त्वरहस्या-द्यनेकप्रबन्धनिर्मातु श्रीनीलकण्ठदीक्षितस्य तृतीयनन्दनेन गीर्वाणेन्द्र-दीक्षितेन विरचित ।

क्या इस उच्च कुल के गीर्वाणेन्दु को भाण लिखना चाहिए था ? मेरी समझ में यह कवि की प्रतिभा का दुर्विलास है कि उसकी लेखनी वारागनाओं की वृत्ति का आहरण करे ।



हरिजीवनमिश्र के प्रहसन

हरिजीवन मिश्र ने आमेर के राजा रामसिंह (१६६७—१६८४ ई०) के समाश्रय में राजोचित प्रहसनों की रचना की।[1] इनके पिता और पितामह क्रमशः लालमिश्र और वैद्यनाथ मिश्र थे। कवि की प्रतिभा-विलास का स्फुरण सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ। अद्भुततरंग नामक प्रहसन के अन्त में उन्होंने अपने को सकल विद्या विशारद कहा है।

हरिजीवन के प्रहसन हैं—अद्भुततरंग, प्रासंगिक, पलाण्डुमण्डन, विबुधमोहन, सहृदयानन्द, घृतकुल्यावली। इनके अतिरिक्त उन्होंने विजयपारिजात नाटक का प्रणयन किया।[2]

अद्भुततरंग

राजा मदनाङ्कविक्रम गौडरसमिश्र नामक वैष्णव से क्रुद्ध हुए और उन्होंने विश्वासविध्वंसक नामक धर्मशास्त्राचार्य से उसे दण्ड दिलवाया कि आत्मशोध के लिए कामाग्निकुण्ड में परिक्षिप्त होना है। यही दण्ड विध्वंसक ने यमानुज नामक राजवैद्य को भी दिलवाया। कुण्डदहन के लिए वेश्या बुलाई गई और साथ ही विध्वंसक की पत्नी। पत्नी क्या थी—विदूषक स्त्रीवेश में, जो अन्त में प्रकट होता है।

प्रासंगिक प्रहसन

प्रासंगिक प्रहसन प्र की शाब्दिक क्रीडा के द्वारा हास्यनिर्झरिणी प्रवाहित करने के उद्देश्य से प्रणीत है।

महाराज प्रताप पत्ति का मन्त्री प्रकृष्ट देव 'प्र' का प्रचारक है। 'प्र' का विरोधी केरलीय भट्ट उससे लड़ पड़ता है। सभा में योनिमञ्जरी नामक वेश्या के आने पर इन दोनों का विवाद तो समाप्त हुआ, पर योनिमञ्जरी के साथ का लड़का व्यङ्गमुख नामक उसके तथाकथित पति का है या वेत्रपाटी भट्टमार का है—यह निर्णय पितृत्व के अधिकारी राजा पर छोड़ते हैं। यह विवाद निर्णय-पथ पर चला ही था कि कोई वानर आकर प्रकृष्ट देव की पत्नी प्रकृतप्रिया का धर्षण करता है। भगाने पर वह अन्तःपुर में जा घुसता है और राजा वानर के पीछे चल देता है।

पलाण्डुमण्डन

इसमें शिखाशी भट्ट और उनकी दूसरी पत्नी चित्रा के गर्भाधान संस्कार के

---

[1] इनके नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ अनूप-लाइब्रेरी बीकानेर में हैं।

[2] Krisnamachariar History of Classical Sanskrit Literature P. 701

अवसर पर भारत के विविध भागों के अशास्त्रीय भोजी पलाण्डुमण्डन, लशुनपन्त आदि का भोजनानन्द कटाक्ष का विषय है।

सहृदयानन्द प्रहसन

इस प्रहसन में शब्दशक्ति, नायिका-भेद, गुण-दोष आदि का विवेचन हास्य उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया है। स्वभावत अश्लील प्रकरणों के निरूपण में उदाहरणों को मण्डित करके रसप्रतिबन्धक, वाक्यस्फोटिका आदि कथानायक प्रभृति को चमत्कार प्रदान किया गया है।

विबुधमोहन

हरिजीवनमिश्र प्रहसन के प्रणयन में विशेष रुचि लेते थे। उनके विबुधमोहन नामक प्रहसन का आरम्भ पुष्पकलिका नामक कवयित्री के एक नये प्रकार के नान्दी से होता है।[1] वही नान्दी पाठ भी करती है। उसकी एकोक्ति-रूप में प्रस्तावना के पूर्व १८ पद्यों और अनेक गद्यांशों से सवलित पाठ में विष्णु की स्तुति प्रमुख है। विष्णु-मूर्ति की तीन बार प्रदक्षिणा करते हुए वह कहती है—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यागनानि च
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥ ७

यहाँ तक पूजा हुई। इसके पश्चात् दक्षिणा देने के विषय में पुष्पकलिका कहती है कि मेरी परीक्षा ही दक्षिणा है। वह इसके पश्चात् सदालोचकों और सत्पुरुषों की प्रशंसा करती है।

कथावस्तु

मत्तागमाचार्य की कन्या साहित्य-माला अर्थालङ्कार के लिए समुत्सुक है, क्योंकि उसका विवाह अखण्डानन्द नामक विद्वान् से होना निश्चित हुआ है। साहित्यमाला के भाई पिता की आज्ञानुसार प्रतापमार्तण्ड नामक राजा की सभा में उपस्थित होते हैं। राजा पण्डितों की चर्चा में रुचि लेता था। वहाँ तर्ककर्कश, ज्ञानेन्द्र, भट्टमीमांसक, साख्यानन्द, पातञ्जलनाथ, वैशेषिक भट्टाचार्य, पाशुपत, पाञ्चरात्रिक, और अखण्डानन्द ने सृष्टिकर्ता के अनुसन्धानविषयक शास्त्रार्थ में अपने मत का समर्थन और दूसरों के मत का खण्डन किया। जगत् का कारण कौन है—इस प्रश्न का सबका उत्तर भिन्न-भिन्न था। अखण्डानन्द ने समझाया कि वेदान्ती का ब्रह्मानन्द रस सर्वोपरि तो है पर उसे प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि की आवश्यकता है और काव्य रसानुभवस्तु श्रवणसमनन्तरमेव विगलितवेद्यान्तरं प्रकाशते।

अखण्डानन्द का काव्यरसवाद सबसे ऊपर रहा। उन्होंने नेता बन कर राजा को आशीर्वाद दिया—

१ इसका प्रकाशन मलयमारुत के प्रथमस्पन्द में १९६६ ई० में तिरुपति से हुआ है।

वक्त्राणि पञ्चकुचयो प्रतिबिम्बितानि दृष्ट्वा दशाननसमागमनभ्रमेण।
भूयोऽपि शैलपरिवृत्तिभयेन गाढमालिंगतो गिरिजया गिरिशोऽवतादव ॥

राजा ने मत दिया—अहो साहित्यरसानुभवो ब्रह्मरसादप्यधिक एव नात्र सन्देह ।

काव्य रस मे भी रसराज शृङ्गार को अखण्डानन्द ने उच्चतर बताया। इसे सिद्ध करने के लिए अखण्डानन्द ने नीचे का पद्य पढा—

मुग्धे मुग्धनयैव नेतुमखिल काल किमारभ्यते
मान धत्स्व धृतिं बधान ऋजुता दूरे कुरु प्रेयसि ।
सख्यैव प्रतिबोधिता प्रतिवच तामाह भीतानना
नीचै शस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वर श्रोष्यति ॥

इसे सुनकर राजा मुग्ध हो गया, पर अन्य पण्डितो ने इसे दोषयुक्त बताया। अनेक सरस पद्यो को सुनाकर राजा को अखण्डानन्द ने मोह लिया। उसने कहा 'किमदेय साहित्य-रसिकाय'। अखण्डानन्द ने साहित्यमाला के लिए निवेदन किया। साहित्य-माला के भाई पण्डितो ने देखा कि राजा ने अखण्डानन्द को धन दिया। उन्होने कहा कि दीनहीन रहकर कैसे हम अखण्डानन्द का वर रूप मे स्वागत कर सकेंगे। राजा ने उन्हें भी यथेष्ट धन दिया। साहित्यमाला के विवाह का उत्सव आरम्भ हुआ, जिसे राजा ने भी छत पर चढकर देखा।

हरिजीवन का यह प्रहसन सरल भाषा मे सयत भावो को लेकर विकसित है। इसमे अश्लीलता और नग्न परिहासो का अभाव है।



वसुमतीचित्रसेनीय

वसुमतीचित्रसेनीय[1] के रचयिता अप्पयदीक्षित तृतीय का परिचय सूत्रधार ने इस नाटक की प्रस्तावना मे दिया है, जिसके अनुसार वे अप्पयदीक्षित प्रथम के पौत्र और नीलकण्ठ के भाई थे। दुष्यन्तचरित, रुक्मिणी-परिणय, अलङ्कार तिलक आदि के प्रणेता अप्पयदीक्षित द्वितीय ने उन्हे गोद ले लिया था। वस्तुत कवि के पिता नारायण दीक्षित थे। कवि ने मीमासा की तन्त्रसिद्धान्त-दीपिका–दुरूह शिक्षा और प्राकृतमणिदीप की भी रचना की थी। अप्पयदीक्षित तृतीय को मदुरा के सामन्त चित्रवोम्म (६५६-१६८२ ई०) का समाश्रय सम्भवत प्राप्त था।

वसुमतीचित्रसेनीय सस्कृत के उन विरल नाटको मे से है, जिसकी कथावस्तु उत्पाद्य है।[2] इसकी प्रस्तावना मे पात्रक्लृप्ति का विशद विवरण है, जिसके अनुसार स्त्रियाँ रगमच पर स्त्रियो और पुरुषो की भी भूमिका का अभिनय करती थी।[3] इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का रचयिता सूत्रधार है।

वसुमतीचित्रसेनीय का प्रथम अभिनय हालास्यपति की सेवा मे आये हुए सामाजिको की प्रार्थना मे हुआ था। इसके रगमच पर आरम्भ मे ही सेना लेकर निषाद उपस्थित होता है। सेना मे पैदल और घुडसवार थे।

कथावस्तु

कलिगराज शान्तिमान् अपनी कन्या वसुमती के कल्याणार्थ प्रयाग मे तप कर रहा था। इस बीच निषादराज ने उसकी राजधानी को आक्रमण करके लूटा और अन्त पुर के सदस्यो को बन्दी बनाकर ले चला। इसकी मुठभेड हुई मृगया करते हुए कथानायक महाराज चित्रसेन से, जिसने उन्हे मुक्त किया। शान्तिमान् चित्रसेन की पत्नी पद्मावती की बहिन ज्वालावती का पुत्र था।

निषादराज जब लूट की सब वस्तुओ को लौटा रहा था, तो चित्रसेन की दाहनी बाँह फडकी। उसे अपहृत राजमहिलाओ म सौन्दयराशि वसुमती दिखाई पडी,

---

१ इसका प्रकाशन केरल विश्वविश्वविद्यालय से सस्कृत सीरीज २१७ मे हो चुका है।

२ पारिपार्श्विक ने प्रस्तावना म बताया है—
किन्तु अप्रयुक्तपूर्वं कुतूहलावहमन्तुक च रूपकमिदम्।
केरल के नीलकण्ठ ने कमलिनी कलहस नाटक की कथावस्तु उत्पाद्य रखा है।

३ इसम सूत्रधार कहता है—इसमे कृत्रिम वस्तु है।
भगिनी पुनर्नलिना कलिङ्गपते शान्तिमनो राजन्तत्प्रसूतेर्वसुमत्याश्च कथा नायिकाया भूमिका सम्पादयिष्यति।

जिससे उसका मन एक हो गया। ज्वालावती ने उसका परिचय नायक को दिया। उसने वसुमती विषयक नायक की उत्सुकता देखकर मन मे सोचा—

नायक ने मन मे सोचा कि यदि बुढिया धूर्त न होती तो,

कथमिदमेवमस्यामभि निविष्टो धर्त पृच्छति।

अंके निवेश्य सुदृढ परिरभ्य चेय-मुन्नाम्य चाननमथोत्पुलके कपोले।
आघ्राय चुम्बितनरी ननु नाभविष्य-ज्ज्वालावतीह जरती यदि नागमिष्यत्॥ १ २२

वह चाहता था राजमहिलायें मेरी नगरी मे चलें, पर ज्वालावती ने कहा कि इस स्थिति म हम अपनी नगरी म ही जायें।

शान्तिमान् का मन्त्री रैवतक चाहता था कि वसुमती का विवाह चित्रसेन से हो जाय। उसकी योजनानुसार चित्रसेन ने भस्म, व्याघचर्म आदि धारण करके योगी का वेप बनाया। वह कलिंग के नन्दन नामक बहिरुद्यान मे ध्यान लगा कर बैठा, जहाँ वसुमती भी आ गई। उस भूत लगा था, जिसे छुडाने के लिए वसुमती नन्दन वन के योगी के पास जाय—यह मन्त्री रैवतक न ज्वालावती से अनुमत करा लिया था। नन्दनवन मे योगी उसे विभूतिदान, यन्त्र-बन्धन आदि के बहाने अपनी सगति का अवसर देने लगा। योगी न भूर्जपत्र पर यन्त्र बनाने के स्थान पर अभ्यासवशात् नायिका का चित्र बना डाला। विदूषक की इच्छानुसार यन्त्र बनाने के समय सभी लोगो को बाहर जाना पडा। जब यन्त्र बाँधने का समय आया तो विदूषक और चतुरिका (नायिका की सखी) भी बाहर चले गये। बच रहे नायक और नायिका। फिर उनका गान्धर्व विवाह हो गया। नायक ने नायिका से कहा—

अधरदलमेतदवले करतलपरिमिष्टमृष्टविद्रुमदलाभम्।
आस्वादये बलादपि किंचित्वनुमन्यता देवी॥ २१८

उसी समय पद्मावती के पत्रानुसार ज्वालावती ने घोषणा कराई कि अन्तःपुर की कन्या वसुमती किसी से बात न करे। नगर मे कोई तेजस्वी पुरुष प्रवेश न करे।

तृतीय अङ्क के अनुसार नायिका को नायक से मिलाने के लिए चित्रसेन के मन्त्री मुनीनि न मलयकेतु नामक डाकू से एक गुहामार्ग कलिंग से अपने नगर के वकुलोद्यान तक बनवाया। रात के समय सोती हुई नायिका और उसकी सखी को वकुलोद्यान मे पहुँचा दिया, जहाँ कुछ दूरी पर विरही नायक रम्भा मन्दिर मे विदूषक के साथ आ बैठा। थोडी देर के पश्चात् उसी उपवन मे उनसे दूर नायक की *महारानी देवी पद्मावती अपनी सखी सूक्ष्मदर्शिनी के साथ आ विराजी।* पद्मावती को पश्चात्ताप हो रहा था कि मैंने क्यो पर राजा की प्रार्थना ठुकराई। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि मेरा पति एक बार भले ही किसी सुन्दरी के प्रेमपाश मे पडे, वह सदा के लिए दूसरे का नहीं हो सकता।

बीच मे नायक, उसके एक ओर वसुमती नई नायिका और दूसरी ओर पुरानी नायिका पद्मावती—यह विषम स्थिति थी। जब नायक ने वसुमती और चतुरिका

की बातों की आहट दूर से पाई तो निकट जाकर लताविटप से छिप कर उनकी बातें सुनने लगे। मदनातङ्कित नायिका जब अपनी वियोग-गाथा का वर्णन करते-करते मूर्छित हो गई तो नायक उसके पास पहुँचा। इस विषम स्थिति में नायक और नायिका के परस्पर प्रणयानुबन्धी आलाप को सुनकर सूक्ष्मदर्शिनी के साथ पद्मावती वहाँ निकट पहुँची। नायक ने नायिका का आलिंगन किया और प्रेम-गीत गाया—

प्रत्याशापि न सगमं प्रति पुनरस्मिन्नभूदावयो—
र्यस्मिन्नद्य मम स्मृतेऽपि हा वह्निना सिच्यते।
तस्मिन्नप्यपरिक्षतेन विरहे यावन्मयैवास्ति मे
न ह्येतावदनर्कितोपतनया सत्यं त्वयाद्भुतम् ॥३ १६

पद्मावती के पास आते ही नायक और नायिका कहीं दूर जा छिपे। पद्मावती ने चतुरिका को वसुमती समझकर उसके साथ विदूषक को बन्दी बना लिया।

पद्मावती और उसकी सखी सूक्ष्मदर्शिनी ने तथाकथित वसुमती को सवसा साधारण सौन्दर्य वाली स्त्री देखकर निर्णय लिया कि यदि चित्रसेन को इससे विवाह की अनुमति दे दी जाय तो इससे दो लाभ हैं—प्रथम तो यह कि राजा शान्तिमान् से बन्धुता बढ़ेगी और दूसरे यह कि नायक का प्रेम पद्मावती के प्रति बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। सूक्ष्मदर्शिनी की इच्छानुसार तथाकथित वसुमती से उन्होंने सम्बन्ध बढ़ाया। रानी ने अपने भूषण उसे दिये और उसके भूषण अपने लिये। उसने विदूषक और नकली वसुमती को स्वतन्त्र कर दिया।

नायक चित्रसेन को वसुमती के मिलने से अतिशय हर्ष था। उससे एक दिन विदूषक मिला। उसने बताया कि चतुरिका भी शीघ्र ही मिलेगी। तभी चतुरिका का वेष-धारण की हुई पद्मावती नायक से मिलने आई। नायक ने उसे जब चतुरिका सम्बोधित किया तो पद्मावती को प्रतीत हुआ कि मैं जिसे वसुमती समझती थी, वह वस्तुतः चतुरिका है और मैं ठगी गई। उसने चतुरिका सी बनी रहकर कहा कि मैं वसुमती से मिल आऊँ। नायक ने उसे बता दिया कि बकुलवन के शय्या-गृह में वह है। उसने वसुमती विषयक राजा की प्रवृत्तियों को जानने की इच्छा से पूछा—

अपि न मे सखी मया विना म्लायति।

विदूषक ने उत्तर दिया—

सा कथं म्लायतु या महाराजपरिग्रहेण प्रतिदिनं स्वचरितायायन मादति।

नायक ने कहा—

ननु च सा मया त्वद्विरहखेदविस्मरणाय सर्वदा मभिधीयते।

और भी—

प्रेयान् प्राणा बन्धुता वा सखी वा धात्री चेटी वामनः कुब्जको वा।
यस्मिन् काले यद्यदिष्टं तदानीं तत्तत् सर्वं सैव मेऽहं च तस्याः ॥४७॥

चतुरिका बनी पद्मावती को अपने पति से यह भी सुनना पड़ा—

दृष्ट्वा दृष्ट्वा नवनवमिव विस्मयं निर्निमेषा
स्पर्शं स्पर्शं भवति शिशिरा कापि गात्राङ्गनेषु ।
कालेनास्या प्रणयवचनैर्मद्गिरां वीक्ष्य रागं
मन्ये देवी प्रगुणरहिता त्वद्वयस्यानपेक्ष्य ॥४८

नायक ने दाक्षिण्य प्रकट किया कि पद्मावती से भी प्रेम बराबर है—

यथा यथा स्यात् प्रचारः कन्दर्पे विधिर्निदानैर्हृदि हि पुरा चिरात्
तथा तथा दाक्षिण्यमद्य रज्यते मया समीक्ष्य च तनोऽपि रज्यति ॥४९

पद्मावती ने निर्णय लिया कि अब तो वसुमती को सिंहासन से बन्दी बनाती हूँ। वह चलती बनी। तभी पद्मावती की कूट भूमिका में वहाँ चतुरिका आ पहुँची। नायक ने उसे पद्मावती समझा। चतुरिका ने उसे समझाया कि मुझे पद्मावती न समझें, मैं चतुरिका हूँ। नायक को अपनी भ्रान्ति प्रतीत हुई कि मैंने अभी-अभी पद्मावती को चतुरिका समझ कर यह सब क्या-क्या कह डाला था। तभी प्रतिहारी ने समाचार दिया कि आपकी वसुमती का अपहरण हो गया।

वसुमती की विपत्ति का नया समाचार मंदिर से आये कञ्चुकी ने दिया कि ज्वालावती अब दुष्ट प्रयोग से वसुमती की हत्या करना चाहती है। नायक की चिन्तायें असह्य बढ़ती गईं।

दिष्ट्या दानवविजयिना कुमारवीरसेनेन विजयते देवः।

इस अवसर पर अमात्य सुनीति के आने पर परिस्थिति बदली। उसने समाचार दिया कि इन्द्र प्रसन्न है कि दैत्यों का नाश हुआ।

नायक को पुनः विदित हुआ कि सुनीति ने ही मत्स्यकेतु द्वारा वसुमती को राजा के लिए हस्तगत कराया है। नायक ने उसे पुनः वसुमती विषयक विपत्ति सुना दी। सुनीति ने बताया कि इन्द्र ने यह सब जान लिया है और कृत्या का नाश करने के लिए प्रमर्दिक को नियोजित कर दिया है।

पुत्र-विजय से प्रसन्न पद्मावती ने निर्णय लिया कि राजा का मन रख देना है। उसके इस निर्णय को चतुरिका ने नायक को बता दिया।

इधर ज्वालावती प्रज्वलित कुण्ड अथवा आगों में उतर रही थी। इसी समय आकाश से सुनाई पड़ा—

पापे, सन्त्यज मदा हतानि। नक्षत्रनाथसुन्दरजीवना मुञ्च तावत्।

यह सब क्या है? क्या वसुमती कृत्या के द्वारा मार डाली गई? ढूँढ़ने पर चितावन में वसुमती नहीं मिली तो लोगों की व्याकुलता बढ़ी। उसके लिए राजा, पद्मावती, चतुरिका, परिजन आदि लम्बा विलाप करने लगे। तभी एक स्त्री कटी-पीटी मरणासन्न सी दिख पड़ी। यह वसुमती है—यह सोचकर राजा ने उसके चरण को

उठा लिया। मर जाने पर भी राजा ने उसका आलिंगन किया। पर उसी क्षण उसका रूप बदला और वह कृत्या हो गई। विदूषक ने उसे पहचाना और बोला—

किमपि भूतमालिङ्गति वयस्य।

यह तो पिशाची है।

वीरसेन ने आकर उस समय बताया कि इन्द्रनियोजित प्रत्यङ्गिरस ने उस पिशाची को मारा है। वह मरते समय तक वसुमती बनी हुई आप लोगों को रुलाती रही। उसी समय दिव्य विमान में वसुमती ज्वालावती और शान्तिमान् के साथ वहाँ आ गई। शान्तिमान् ने बताया कि प्रयाग में कराली नामक पिशाची ने मेरे तप में बाधा डालने के लिए ज्वालावती में आवेश करके यह सब करवाया है। अपने मन्त्री रैवतक से वसुमती के गुम होने का समाचार जानकर आकर्षविद्या से उसने उसे अपने पास बुला लिया।

वसुमतीचित्रसेनीय की कथावस्तु पहले के सर्वोत्तम नाटकों से संविधानादि को ग्रहण करके निर्मित की गई है। यथा,

वसुमती चित्रसेनीय की घटना	समानता
१ चित्रसेन मृगया करते हुए नायिका से मिलता है।	अभिज्ञान शाकुन्तल में
२ नायिका से मिलने का आभास नायक के दक्षिण-बाहु स्पन्दन से होता है।	,,
३ द्वितीय अङ्क में नायिका का भूत उतारने के लिए नायक का वेष-परिवर्तन करना।	कुन्दकुसुमतीय में
४ तृतीय अङ्क में पद्मावती के द्वारा विदूषक और चतुरिका को वन्दी बनाना।	मालविकाग्निमित्र, रत्नावली, कर्पूरमजरी आदि में
५ पद्मावती या चतुरिका के वेश में नायक के पास आना और नायक की भ्रान्ति।	रत्नावली में
६ नायिका की हत्या की चर्चा	मृच्छकटिक में

नाट्यशिल्प

नाटक में गीतितत्त्व के उन्मेष से इसकी सजीवता द्विगुणित हो उठी है। नायक पवन से मानो बात कर रहा है—

निष्प्रत्यूहगति शिलाम्युपसरन् वातायनेन प्रिया
किं तस्या सुकुमारमुग्धमधुराण्यङ्गानि नालिंगसि।
यद्यस्त्येव परोपकारघटने कौतूहलं मारुत
स्पृष्ट्वा मन्दममू ममापि सुहृदप्यङ्गानि सम्भावय॥३.१२

नाटकीय संविधान की सरसता भावों की उत्थान-पतनिका में प्रगुणित है।[1] पंचम अङ्क में ज्यों ही राजा को ज्ञात होता है कि पद्मावती ने वसुमती को मुझे देने का निर्णय किया है, त्योंही उसे कृत्योत्पात दिखाई देता है। तृतीय अङ्क में नायिका सोचती है कि ज्वालावती ने मेरी हत्या करने के लिए इस वकुलोद्यान में पहुँचाया है। उसी उद्यान में थोड़ी देर पश्चात् ही उसे अपने अभीष्ट प्रियतम से भेंट होती है। इसी अङ्क में पद्मावती सोचती है कि अब चित्रसेन से मेलमिलाप होगा। तभी उसे ज्ञात होता है कि वह तो वसुमती से अभी-अभी मिला है।

तृतीय अङ्क में रङ्गपीठ के तीन भागों में अलग-अलग कार्य हो रहे, पर पात्रों को केवल अपने भाग का ही कार्य दिखाई देता है।

छद्म या कूट पात्रों का कार्य उपराया गया है। पद्मावती का चतुरिका के वेष में आना और भ्रान्तिवश नायक से यह सुनना कि अब तो दिनरात तुम्हारी सपत्नी बनने वाली नायिका के साथ बिता रहा हूँ—एक स्म्बायमान गाथा है, जो अन्यत्र इतना स्पष्ट नहीं है। अन्य रूपकों में छद्म-वेश में यदि कोई नायिका आई भी तो कुछ नोक-झोंक करके नायक से लड़-झगड़ कर चलती बनी, पर इसमें तो कूट पद्मावती ने जमकर नायक के नये प्रेम की पूरी पोलपट्टी उसी के मुँह से सुनी।

रङ्गपीठ पर कृत्या की मृत्यु दिखाई गई है। परवर्ती नाट्यशास्त्र-विधायक इसे अनुचित मानते हैं।

शैली

सूक्तियों और अन्योक्तियों के बहुत प्रयोग से इस नाटक के संवाद में प्रभविष्णुता और विभावना की अतिशयता उल्लेखनीय है। यथा,

१ किमिति सुखप्रसुप्तस्य मृगराजस्य प्रबोधनं करोषि।
२. प्रसुप्त ननु बोध्यते, न पुनः प्रबुद्ध।
३ बद्धफलप्रसूनापि कूष्माण्डी न हि शोभना।
निष्फलापि पङ्कजिन्यपि विसिन्येव शोभना॥
४ शारिकां वर्धयित्वा मार्जाराय दत्तवानेष।
५. एष नवनीतोद्भेदकाले यौक्त्रविच्छेद।
६ घर्मतप्तस्य वनस्पतेरयमशनिपात।
७ किमिदानीमरण्यरुदितेन।

कवि की भाषा सर्वथा सरल, सुबोध और नाट्योचित वैदर्भी-मण्डित है, जैसा इसके बहुत उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीयमान है।

प्राकृत भाषा के शब्दों से श्लेषार्थ उत्पन्न करके गाड का उदाहरण प्रस्तुत है।

१. कवि ने सुनीति के द्वारा अपने इस कलात्मक विन्यास का परिचय दिया है—
को वेद दैवमयगोतरमात्मनोनि ॥५.२५

यथा,

प्रतिहारी-भट्ट, हदा ।

चतुरिका-काए का ।

प्रतिहारी-देवीए वसुमई ।

राजा—(सभयम्) हन्त किं मारिता वदसि ।

प्रतिहारी-अवणीदत्ति विण्णवेमि ।

रस

शृङ्गार रस के इस नाटक में सारा वातावरण शृङ्गारित है । यथा,

राजा—कथमत्र पवनस्यापि रसिकता परोपकारव्यसनिता च । तथाहि—

आकर्षन्नलिवेणिका लवलिकामालिङ्ग्य तस्या स्वयं
मन्दं मन्दमपाकरोति पवनः पत्रावलीकचुकम् ।
किंचायं लघुचालितान्यविटपस्यायिप्रियाकस्मिक-
स्पर्शत्याजितकेलिकोपविरहानङ्कान् विवर्त्ते शुकान् ॥ ३.११

कवि ने अनेक अंगरसों का साधु विनिवेश इस नाटक में किया है । कृत्या का प्रकरण करुण, रौद्र और भयानक रसों की निष्पत्ति के लिए प्रयोजित है ।

करुण से कवि का विशेष लगाव है । नायक नायिका की वेणी देखकर कहता है—

एवं गतेऽप्यतृप्तनयनैरिव मे मधुव्रतैः विहिना ।
कुसुमानि वासयन्ती प्रिया प्रियाया इयं वेणी ॥ ५.१२

मरती हुई नायिका के लिए करुणा का अतिशय उद्रेक इस नाटक की विशेषता है । राजा उसके प्राणग्रहण का प्रतिपालन कर रहा है । वह कहता है—

आच्छिद्य प्रसभं प्रिया हृदयमप्युद्घाट्य यस्याः पपा-
वास्तं तत्र न नाम किंचन कृतं येन स्वयं धन्विना ।
सोऽहं पापमनिर्निकामकृपणः पश्यन्निति प्रेयसीं
संदष्टासि पिपीलिकाभिरिति तु क्रूरो दधानो दयाम् ॥ ५.१२

संवाद के छोटे-छोटे वाक्य स्वाभाविक लगते हैं । यथा,

मुनीनि—अवस्कन्द्य प्रतिनिवर्तमाना इत्येव ।

निषादराज—ण वुत्तो गु चोलिश्रा किरादाण ।

मुनीनि—तर्हि जात्यैव निरोधनीया ।

निषादराज—जति ण तुम्हाण विशयेशु ।

मुनीनि—स्वान्यत्र ।

निषादराज—कलिंगलाअस्स शातिमन्तस्स णयरम्मि ।

संवाद की भाषा कहीं-कहीं पात्र की मानसिक स्थिति के अनुकूल बन पड़ी है । जब नायक घबड़ाया है कि मेरी वसुमती पर अनेक विपत्तियाँ हैं तो वह दौवारिक से

सुनीति के प्रतिहार पर उपस्थित होने का सन्देश देने पर झल्लाता है—

जाल्म, किमस्यामहमनुपगम्य कदाचित् ।

वैषम्य

वसुमती-चित्रसेनीय का वैषम्य है नायक का अपनी पत्नी की बड़ी बहिन की पौत्री से विवाह करने की योजना कार्यान्वित करना। नायक के पुत्र ने दानवों पर विजय प्राप्त की थी। ऐसी स्थिति में उसकी अवस्था ८० वर्ष से अधिक ही होगी और नायिका १५ वर्ष की थी। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में ठीक ऐसी ही भूल की है।



अध्याय २५

रामभद्रदीक्षित के रूपक

रामभद्र ने शृङ्गारतिलक भाण में आत्मपरिचय दिया है—

> गिरिक्षुभिन्निस्वनत्कलशसिन्धुगर्भस्थली-
> निर्गलविनिर्गलन्नव - सुधारसस्रोतसा ।
> भुजाभुजिरणक्षमो भवति यस्य सूक्तिस्तम
> स एप सरस कविजयति रामभद्र सुधी ।। ५

इनको अपने जीवन-काल में परम प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी, जैसा इन्होंने बताया है—

> यश्चतुर्वेदयज्वेन्द्र— वशवारिधिकौस्तुभ ।
> यस्य कण्डरमाणिक्यग्रामो भवति जन्मभ ।।६

इसके अनुसार रामभद्र का जन्म कण्डरमाणिक्य नामक ग्राम में चतुर्वेदयज्वेन्द्रवश में हुआ था।[1] यह ग्राम कुम्भकोन से सात कोस दूर था। इनके पिता का नाम यज्ञराम दीक्षित था, जो वैयाकरण थे। इन्होंने सुप्रसिद्ध आचार्य नीलकण्ठ से साहित्य-विद्या में प्रावीण्य प्राप्त किया था। चोक्कनाथ ने इन्हें व्याकरण पढ़ाया था। बालकृष्ण भगवत्पाद से उन्होंने दर्शन का अभ्यास किया। अद्भुत-दर्पण नामक नाटक के लेखक महादेव इनके सहपाठी थे। तंजौर के राजा शहजि ने कावेरी के तटपर कुम्भकोन से दो कोस दूर अपने नाम से एक शहजिपुर-अग्रहार बनाया, जिसमें प्रतिष्ठित प्रतिग्रहीताओं में रामभद्र अन्यतम थे। इस प्रकार के कवियों के इस अग्रहार में रामभद्र के साथ भास्करयज्वा, वेङ्कटकृष्ण यज्वा, महादेव, तिप्पाध्वरी आदि का काव्यप्रकाश समुज्ज्वल हुआ। रामभद्र के भाई रामचन्द्र हास्यरस-प्रवण कवि थे।

रामभद्र के द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों में से अष्टप्रास, चापस्तव, जानकी-परिणय, पतञ्जलिचरित, पर्यायोक्तिनिष्यन्द, प्रमादस्तव, बाणस्तव, विश्वगर्भस्तव और शृङ्गारतिलक मिलते हैं। इन्होंने व्याकरण-विषयक परिभाषावृत्ति-व्याख्यान, उणादि मणिदीपिका और शब्द-भेद-निरूपण लिखा। दर्शन-विषयक इनकी रचना षड्दर्शन-सिद्धान्त-सग्रह है।

भाण का प्रणयन कोई अच्छी प्रवृत्ति नहीं और रामभद्र को स्वयं यह अपने व्यक्तित्व से हीन स्तर की बात लगी कि मैं भाण लिखूँ। इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है—'अयमस्य रघुवीर-चरणारविन्दस्मरणनिरन्तर-प्रवण-चेतसो भाणनिर्माणे प्रवृत्ति' इत्यादि। इसका कारण है—

---

१ इस गौरव को विद्वत्परत्नों की जन्मभूमि होने का श्रेय है। इण्डियन ऐण्टीक्वेरी भाग ? पृष्ठ १२६-१८२

प्रार्थितो निजशिष्येण रघुनाथेन धीमता।
शृंगारतिलकं नाम भाणं विरचयाम्यहम् ॥७

जानकी-परिणय

रामभद्र राम के भक्त थे। जानकीपरिणय उनकी मानसिक वृत्ति के अनुकूल रचना है।[1] इसकी रचना १६८० ई० के लगभग हुई होगी। इसमें सात अङ्क हैं। कथा का आरम्भ राम के मिथिला प्रस्थान से होता है। जनकपुर में पहुँचने पर राक्षसी माया उनके मार्ग में विघ्न बन कर आती है, जिसके द्वारा जनक के सामने रावण, सारण तथा विद्युज्जिह्व क्रमशः राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र बनकर आते हैं। ताडका सीता बन जाती है। ये मायात्मक और वास्तविक पात्र रंगपीठ पर परस्पर मिलते हैं। फिर तो कौन वास्तविक है और कौन कृत्रिम—यह सिद्ध करने के लिए उनके विवाद का अन्त इस बात से होता है कि वास्तविक राम ने शिवधनुष को प्रत्यञ्चित किया। राम और सीता का विवाह जनकपुर में न होकर विश्वामित्र के आश्रम में होता है। तृतीय अङ्क में विश्वामित्र का शिष्य काश्यप और राम का वयस्य पिङ्गल रंगपीठ पर आते हैं और उनके साथ ही उनके मायात्मक प्रतिरूप बनकर क्रमशः मारीच और कराल नामक राक्षस उपस्थित होते हैं। विवाह के पहले एक अत्यन्त हास्यप्रद घटना है रङ्गपीठ पर शूर्पणखा का सीता का रूप धारण करके राम से प्रणय करने का अभिप्राय पूर्ण करना। उसी समय सीता को हथियाने के लिए विराध राम का प्रतिरूप बनकर उपस्थित होता है। शूर्पणखा विराध को वास्तविक राम तथा विराध शूर्पणखा को वास्तविक सीता समझने की भूल करते हैं। वे परस्पर मुग्ध हैं। प्रणयालाप के अनन्तर शूर्पणखा (सीता) की इच्छानुसार विराध (राम) अपने कन्धे पर खड़ा करके पुष्पचयन कराते हुए ले उड़ता है। शूर्पणखा न गिरने के लिए पैरों में उसके कण्ठनाल का परिग्रहण करती है।

जानकीपरिणय के तृतीय अङ्क में सीता की सखी का मायात्मक प्रतिरूप बनाकर मारीच उसके द्वारा राम को समाचार दिलाता है कि रावण ने जनक की हत्या कर दी है। परिणामतः सीता अग्नि में कूदकर भस्मसात् हो गई। शोकवश राम भी अग्नि में कूदना चाहते हैं। जिस शिला पर खड़े होकर कूदने का वे उपक्रम करते हैं, वह उनका पादस्पर्श होते ही अहल्या बन जाती है और राम को बताती है कि आप राक्षसी माया के चक्कर में हैं। चतुर्थ अङ्क में सीता का विवाह होना है। रावण माया द्वारा राम बनकर जनक को धोखा देने का उपक्रम करता है। पंचम अङ्क में रावण के निर्देशानुसार शूर्पणखा, विद्युज्जिह्व और सारण क्रमशः मन्थरा, कैकेयी और

[1] इसका प्रकाशन १६०६ ई० में तञ्जौर से हो चुका है। १८६६ ई० में बम्बई से मराठी-अनुवाद-सहित इसका प्रकाशन हुआ। १८८१ ई० में मद्रास में इसका अनुवाद हुआ। वहीं से १८८३ तथा १८६२ ई० में भी इसका प्रकाशन हुआ। इन प्रकाशनों से इसकी अतिशय लोकप्रियता व्यक्त होती है।

दशरथ मे अपने को अभिनिविष्ट करके राम का वनवास कराने मे सफल हो जाते हैं। इसमे खरादिका का वध होता है। षष्ठ अङ्क का गर्भाङ्क रावण के विनोद के लिए है। इसके अनुसार सीता का अपहरण हो जाने पर विलाप करते हुए राम सीता को ढूँढ रहे हैं और उन्हे सुग्रीव का साह्य प्राप्त करने के लिए वालि को युद्ध मे मारना पडता है। इसमे घायल जटायु राम को बताता है कि रावण ने सीना का अपहरण किया है। उसने रावण मे युद्ध किया था।

जानकीपरिणय के सप्तम अङ्क मे शूर्पणखा तापसी बनकर भरत को सवाद देती है कि राम मारे गये। भरत शोकवश अग्निदाह द्वारा मरना चाहते हैं, पर उमी समय उन्ह रामविजय और उनके पुनरागमन का घोष सुनाई देता है। अन्त मे राम के राज्याभिषेक से नाटक समाप्त होता है।

जानकीपरिणय की छाया प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। रामायण मे ही राम-कथा म मायामय पात्रो का समारम्भ महत्त्वपूर्ण रहा है। परवर्ती युग में लोकरजन और अद्भुत सविधानो के अभिनिवेश के लिए माया-प्रवृत्ति की सख्या बढती गई। मध्ययुग मे शक्तिभद्र ने आश्चर्य-चूडामणि मे मायामय प्रवृत्ति की सातिशय योजना की। उसी परम्परा मे रामभद्र लगभग ८०० वर्षों के पश्चात् उनमे भी आगे हैं, जहाँ तक मायामय प्रकृति की योजना का सम्बन्ध है। इस युग मे अद्भुतपजर आदि नाटको मे भी छाया-भूमिका विशेष रुचिकर और प्रौढ है।

हास्य-योजना

मायामय प्रवृत्ति के द्वारा कवि । बारबार दर्शक को चमत्कृत करने मे सफलता पाई है। चतुर्थ अङ्क मे जब रावण सारण और विद्युद्जिह्व क्रमश राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र बनकर रगपीठ पर आते हैं तो मायामय रावण और सारण जनकको प्रणाम करते हैं। विश्वामित्र बने हुए विद्युद्जिह्व से शतानन्द की बातचीत इस प्रसग मे हास्य-निष्पत्ति के लिए इस प्रकार है—

शतानन्द—भगवन् गाधिसूनो

परस्परसमावेतौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैं ।
अनयो कतरो रामो लक्ष्मण. कतरोऽनयो ।।

विद्युद्जिह्व—(स्वगतम्) न कोऽपि

इसी अङ्क मे एक और परिहास है। जनक माया-राम को सीता देना चाहते हैं। शतानन्द उनसे कहते हैं कि आप लक्ष्मण (नकली सारण) को दे दें। फिर तो विद्युद्जिह्व सारण से उदास होकर कहता है कि मेरा तो आना व्यर्थ हुआ। सारण कहता है—

मा मैवम्।
कौशिकस्य मुनैं शिष्यैंर्घटोघ्नीभिश्च धेनुभि ।
सहैव गृहिणी यज्ञे गृहिणी ते भविष्यति ।।

विद्युद्जिह्व ने उसके परिहास से आहत होकर कहा कि मेरे लिए तो वह बुढिया ही रही न।[1]

रामभद्र की भाषा सर्वथा नाट्योचित है। सरल भाषा सुबोध अलङ्कारो से मण्डित है। नीचे लिखे पद्य मे प्रतीप के द्वारा विषय-वैपद्य प्रत्यक्ष है—

सगीत क्व मृगीदृशा मधुलिहामग्रे कल कूजता-
माकर्ण्य द्विपकर्णतालनिनदैरातोद्यमुत्सार्यते।
नातिक्रामति हमतूलशयन कि पल्लवैरास्तरो
वृत्त्या वन्यफलैर्विपाकमधुरै पौरी च बिम्मार्यते ॥५ ११

अनुप्रासा की सगीतमयी लहरी मे भ्रान्तिमान् नीचे लिखे पद्य मे साभिप्राय है—

स्नानार्द्रा करयोर्युगेन चिकुरा सशोषणार्थ मुहु-
र्धूयन्ते कुचकुम्भतुन्नसिचय यावत्तरुण्या तया।
तावत्ताण्डवयत्यय बलयनोदचलत्कलापोच्चय
केकागर्भितकन्धर च कुतुकात् केलीमयूरोऽन्तिके ॥६ १२

गर्भाङ्क

जानकीपरिणय के षष्ठ अङ्क मे गर्भाङ्क अर्थोपक्षेपक के रूप मे प्रस्तुत माना जा सकता है। इसके द्वारा रावण का मनोरजन अभिप्रेत है, जब वह सीता-विरह की अग्नि मे जल रहा था। गर्भाङ्क मे सीतापहरण के कारण राम के विलाप से लेकर वालिवध तक की कथा दिखाई गई है।

जानकीपरिणय नाम नाटककारो को प्रिय रहा है। दरभगा के बूहंन के पुत्र मधुसूदन ने १८८१ ई० मे जानकीपरिणय की रचना की।[2] भट्टनारायण के नाम पर एक जानकीपरिणय नाटक मिलता है। सीताराम ने भी जानकीपरिणय नामक नाटक लिखा है।

शृगारतिलक भाण

शृङ्गारतिलक का प्रथम अभिनय मधुरापुर मे मीनाक्षी-परिणय महोत्सव के अवसर पर अनेक प्रान्तो से दूर दूर से समागत यात्रियो के मनोविनोद के लिए हुआ था।[3] इस युग मे भी कुछ आलोचको की धारणा थी कि 'न गविदानी निबद्धार नरस ववय'। पर सूत्रधार आलोचको को फटकारते थे यह कह कर—

१ मारुग, कुतो जरठजानीकरणेन मामपहससि।
२ इसका प्रकाशन १८६४ ई० मे दरभगा से हुआ है।
३ तीययात्रियो को इस प्रकार के भाण दिखाने वाले कवि और नाट्यायाजको ने भारत के पतन की पूरी सामग्री प्रस्तुत की थी। इसका प्रकाशन काव्यमाला ८४ मे हुआ है।

स एष सरस कविर्जयति श्रीरामभद्र सुधी ।।५

कवि के व्याकरण-पाटव ने उसके हृदय की पेशलता को क्षीण नही किया था। उसने वासंतिक वातावरण म शृङ्गार को तिलकित करते हुए इस भाण की रचना कर डाली थी। अभिनय करने के लिए जो एकाकी पात्र रगपीठ पर आया, उसके स्वरूप की कल्पना करे—

मामिस्रस्न प्रवालारुणमपि शिरसा बिभ्रदुष्णीषभेद
कस्तूरीचित्रितांग दधदलिकतल कारितश्मश्रुरेख ।
कठ्यावद्धावलग्न कनकमयतुलाकोटिरम्यैकपादो
निद्राभङ्गारुणाक्ष प्रलपति किमपि ग्रामणी कामुकानाम् ।।

भुजङ्गशेखर नामक विट पाड्यराज का मित्र था। प्रेयसी (किसी अन्य की पुत्री) न प्रात होने के थोडा पहले ही उन्ह निष्कुट वन मे रात्रिकालिक विहार से विरहित किया तो वह रुआँसा सा होकर बोला—

यानैव हन्त तरुणी किमिति करोमि ।।१

ताम्रचूड के कूजन से यह वियोग हुआ था। उस पर बरस पडा—

परुषतरमकूजत् पातकी ताम्रचूड ।।१५

अब उससे मिलने की आशा न रही, क्योकि

यदद्य देवरो बाला बाभ्रव्य पतिमन्दिरम् ।
व्याघ्रो निवासकान्तार हरणीमिव नेष्यति ।।१८

अपनी रात्रिकालीन मञ्जुल प्रणयविष्टि से निकलने पर उसे भय से भागता हुआ अपना मित्र दिखाई दिया, जिसका नाम मन्दारक था। उसने बताया कि मुझे राजन्य चित्रसेन मारने के लिए ढूँढ रहा है। भुजगशेखर ने कहा कि अब क्या डर ? मैं चित्रसेन और हजारो योद्धाओ को मार भगाऊँगा। तब तो आश्वस्त होकर मकरन्द न बताया कि मुझे चित्रसेन की प्रेयसी पत्नी वासन्ती से प्रेम हो गया है। उससे प्रेम प्रकर्ष-पथ पर समुन्नत ही था कि मनोरथ भग्न हो गया। बिम्बाधरास्वादन-विरहित मन्दारक के पीछे पडा था चित्रसेन क्षत्रिय। रात मे उसके घर मे घुसते ही मन्दारक भागा और पीछा किया गया था। भुजगशेखर ने गतरात्रि आप बीती सुनाई। मन्दारक न कहा कि आज सध्या होते ही तुमको पुन प्रेयसी से मिलवाऊँगा।

दोनो किसी गली से चले ही थे कि उन्ह मनोहारिणी रथ्याविलासिनियो का झुण्ड मदनेनिन विहार-भवन से लौटता हुआ मिला। उनकी चर्चा के पश्चात् उन्हे नारायण भट्ट नामक पौराणिक मिला, जिसका वर्णन है—

ताम्बूल कुसुमस्रजो मृगमदोन्मिश्र च गन्धद्रव
भक्त्यास्मै ददते पुराणपठन शृण्वन्ति ये मानवा ।
किंचाय विधवा प्रलोभ्य युवतीर्ग्रन्थावसाने रह
क्रीडामेव हि दक्षिणा विरचयन् गृह्णाति चेलाञ्चलम् ।।३६

वसुदेवगुप्त की गृहिणी मालती वसन्तक की ऊढा नायिका दिखाई पड़ी।

भुजगशेखर से ज्ञात हुआ कि चन्द्रकला मन्दिर के द्वार पर वेशवाट में अद्भुत प्रदर्शन कोई ऐन्द्रजालिक करने वाला है। वह उधर जाने के मार्ग में ब्रह्मचारी को देखता है, जिसे उसके गुरु ने विरूप किया था। गुरु की विधवा सुन्दरी कन्या से शिष्य का प्रेमोपचार चलता था। आचार्य ने देख लिया और शिष्य की चोटी और यज्ञोपवीत काट दिया। शिष्य को आचार्य से प्रतिशोध लेना था। उसे धनमित्र को बताना था कि कैसे तुम्हारी पत्नी पुष्पिणी होने पर तीन दिन मेरे आचार्य के साथ विहार-सुख की प्राप्ति करती है। शिष्य ने अधरात के समय गुरु का पीछा करते हुए यह देखा था।

स्त्रीजाति के छद्म-रूप का अनावरण भुजगशेखर ने किया है—

> नान्यं किञ्चिदवेक्षते न सकृदप्येषा बहिर्गच्छति।
> स्वामालीमभिभाषते न कुलटा दृष्ट्वा परं वेपते॥
> स्निह्यत्येव सतीर्व्रतिनि प्रणयिनो विस्रम्भमातन्वती
> निद्राणेषु जनेषु नक्तमबला निर्याति रन्तुं विटैः॥५२

उस देवरात नामक ब्रह्मचारी को भुजगशेखर ने उपदेश दिया कि पढ़ना लिखना व्यर्थ है, विट बनो। इसके लिए तुम्हारा धनी होना आवश्यक नहीं। चोरी करो। बातचीत करते वह पहुँचा मधुरापुर की वेशवीथिका में, जिसका विशेषण है—

वारविलासिनीवर्गेण मौवर्गमपि मुखं लघकुर्वती सर्वरसिकजनहृदयनिरोधिका मधुरापुरवेशवीथिका।

इस वेशवाट में देश-विदेश के युवकों को वेश्यायें उल्लू बना कर अपने गान्धर्व और हाव-भाव से वश में रखती हैं। वेश्या मातायें युवजनों को फुसला कर लाती हैं। लीलावती नामक वेश्या को देख कर भुजगशेखर ने कहा—

> भवति विरक्तरागः पल्लवो निःस्नेहेन
> स्तवकयुगमनेन स्पन्दते मारुतेन।
> मधुकरनिकरोऽपि व्याकुलो दृश्यतेऽस्य
> वद नदियमवस्था वल्लिकायाः कुतोऽभूत्॥६४

कल्यश्री, कमलावति, पद्मावती, कमलिनी रत्नावली, मधुरवाणी, कलभाषिणी, इन्दुवदना, उमालिका, मुकुन्दलता, नवमालिका, काञ्चनलता आदि वेश्यायें अपनी-अपनी उपलब्धियों और विलासमय विशेषताओं से भुजगशेखर के द्वारा कभी अपनाई जा चुकी थीं।

विट के विषय में कहा गया है—

> बहिस्तु मधुराकारमन्तस्तिक्तरसं पुनः।
> विटस्य हृदयं मन्ये विपक्वमकलोपमम्॥१०१

मन्दारिका नामक जरती का वर्णन है—

पादौ दुष्प्रचलौ पृथूदरभरादेषोऽप्यलाबूफल-
द्राघीयान् हृदि लम्बते कुचभर श्वेता वलन्ते कचा. ।
दृश्यन्ते च मुखान्तरे त्रिचतुरा दन्ता शलाकोपमा
किं वक्ष्ये विधिनैव कापि रचिता कृत्या जरत्याननां ॥१३

साथ ही विट के लिए जरती की गालियाँ है—दुराचार, धूर्तजनाधम, कपटैकनिकेतन, निलज्ज, दुरात्मन् । अनेन जीर्णशूर्पेण प्रहरिष्यामि । उसको गाली सुननी पडती थी—दुष्टाचरणे, कष्टजीवने, जरठमर्कटिके ।

वेशवाट मे कन्दुक भी वेशपरायण हो गया है ।[1] यथा,

पाणिस्पर्शात्तव शशिमुखि प्राप्य रागातिरेक
रन्नु याचन्निव निपतति प्रायश पादमूले ।
लब्ध्वा पश्चादनुमतमिव त्वत्कटाक्षावलोक
भूय पातु मुखमिव समुज्जृम्भते कन्दुकोऽयम् ॥६४
विस्रस्तालकया कपोलयुगलव्यालोलताटङ्कया
स्वेदाम्भ परिमृष्टपत्रलतया सम्भ्रान्तनेत्रान्तया ।
व्यावल्गत्कुचकुम्भभारवहनक्लान्तोच्चलन्मध्यया
नम्रोन्नम्रनितम्बया विहरते कान्ते त्वया कन्दुक. ॥६५

वहाँ मदनाचार्य हैं—

उत्तालालकमधुरा विलेपनेल-श्यामार्धोरुकपरिमण्डितोरुकाण्डा ।
तोत्तत्ति तिमिति वदन् सहस्रताल वारस्त्रीर्नरयति मित्रविन्द एष ॥१०६

मदनाचार्य का भुजगशेखर से प्रश्नो मे एक था—

कच्चिदनुकूलयसि चतुरदूतीजनेन कुलनारी ।

इनके द्वारा विट और वेश्याओ के विवादो का निर्णय किया जाता था। इनके कलत्रपत्रिका को लेकर विवाद उठ खडे होते थे ।

छोटी-बडी वेश्याओ के एक ही विट के ग्राहक होने पर विट को बातें बनानी पडती हैं । यथा, अनङ्गलता और चम्पकलता नामक दो बहनो से साथ ही प्रेम करने का ढोंग रचने वाले इन्दुचूड के बचाव में भुजङ्गशेखर को कहना पडा—

तच्चन्द्रार्धसमानरूपमलिक सा चम्पकस्पर्धिनी
नासा ते मदनायुधे च नयने सा कान्तिरेखाभ्रुवो ।
तद्रम्य चिबुक स चाधरदले रागस्तदेव स्मित
तत्केलीगमन किमन्यदुभयोर्नाम्नैव भेदग्रह ॥१३२

[1] वामनभट्ट के शृ गार-भाण में भी कन्दुक की यही गति बताई गई है ।

निपुणिका नामक दासी को भुजगशेखर ने भर्तृहरि से एकतान करके वर्णन किया है—

दिशा वा नक्तं वा दिवसविरतौ वाप्युषसि वा
गिरौ वा गेहे वा वनतरुतले वा सरसि वा।
जडं वा धीरं वा तरुणमपि वा वृद्धमपि वा
विलज्जा लीलाभिर्ननु रमयसि त्वं निपुणिके॥१४३

चन्द्रकला नामक वेश्या कुक्कुट-समर से मनोरञ्जन करती है, फिर अन्यत्र घोर मुष्टि और वज्रमुष्टि का मल्लयुद्ध हो रहा था। एक स्थान पर जागलिक वानर और सर्प का खेल दिखा रहा था। अन्त मे भुजगशेखर अपने मित्र पाण्ड्याधिप की पत्नी चन्द्रकला के साथ ऐन्द्रजालिक का खेल देखने के लिए पहुँचा। ऐन्द्रजालिक के करतब से सभी पर्वत चल पडे, सभी समुद्र इकट्ठे आ गये, ऐरावत पर बैठा इन्द्र प्रकट हो गया, अर्जुन दिखाई पडा, हस के रथ पर बैठा ब्रह्मा समक्षित हुआ, गरुड पर बैठा विष्णु प्रकट हुआ, शिव नही लाये गये, क्योकि उनके लाने मे घोर अपराध का भय था। तभी पागल हाथी के आ धमकने से भगदड मच गई। दोपहर का समय हो गया। विट भुजगशेखर वेगवती नदी के तट पर उद्यान मे कुछ समय बिताने के लिए जा घुसा। वहाँ सब कुछ वासन्तिक सौरभ से समन्वित था।

विट को मनोज का प्रभाव सताने लगा। तभी कलहस आता दिखाई पडा। उसने उससे आलिगन करने पर स्वय ज्वरित होने की सूचना पाने पर कहा कि हेमाङ्गी का विरह ही कारण है। हेमाङ्गी मधुरा की कन्या थी और उसका विवाह रङ्गनगर मे हुआ था। वह अपनी माता के घर आई हुई थी। एक रात भुजगशेखर के वेशवाट की ओर जाते समय मार्ग मे राजपालित चीते के पजर से भागने के कारण भगदड होने पर वह हेमाङ्गी के पिता कामान्तक के निष्कुट मे जा घुसा। वहा दूर से ही हेमाङ्गी का गायन सुना और देखा कि वह अपनी माता के पास घोर निद्रा मे सो गई है। उसने उसे गोद मे उठाया और उस निष्कुटवन मे लाकर कदम्ब-वृक्ष के नीचे उसके सोते हुए और जागने पर प्रणयारम्भ किया। हेमाङ्गी को उसी दिन देवर के साथ पतिगृह जाना था। इस प्रयाण को रोकने का काम मन्दारक को वह दे चुका था। मन्दारक ने ज्योतिषी को घूस देकर उसकी माता से कहलवाया कि तीन मास तक यात्रा का मुहूर्त नही है। इन तीन मासो मे हेमाङ्गी और भुजङ्गशेखर के समागम से जो हेमाङ्गी का परपुरुष-प्रणय का रहस्य खुलेगा तो वह पतिकुल से परित्यक्त होने पर भुजङ्गशेखर के द्वारा वेशवाट मे रखवा दी जायेगी और सदा के लिए उसी की हो जायेगी। यह सवाद सन्ध्या के समय मन्दारक ने उसे दिया और कहा कि आज रात भी यही उससे मिलन होगा। और हेमाङ्गी धूर्ततापूर्वक आ पहुँची—

अथ पतिगृहदासी सेयमुद्दिश्य किंचिन्नगरमिदमवाप्ता मामपि ज्ञातपूर्वा।
अगमदिति तदानीं वञ्चयित्वा स्वबन्धून् भवनवननिकुञ्जं प्राप सार्धं तयैव॥२०७

पतिगृह मे रहती हुई हेमाङ्गी के प्रति भुजङ्गशेखर का प्रणय कैसे हुआ—यह कथा उसने अपने मित्र मन्दारक से बताई कि मैं कभी कावेरी-सेवित रगपुर गया था। वही महोत्सव देखकर लौटती हुई अखिल युवलोक वशीकरण-विद्या की भाति हेमाङ्गी को देखा। वह मुझे देखती हुई अपन घर मे चली गई। अपन घर के पास मँडराते हुए मुझे देखकर एक दिन उसने अपनी दासी से एक पत्र मेरे पास भेजा—

लब्धव्या रसिकेन चन्दनलता सा चेन्न लब्धु क्षमा
द्वीपे भीमभुजगमावृततया कि तस्य हीन तत ।
सारङ्गैरुपलालनीयमनघ सौरभ्यमभ्येयुषी
मोघा दुर्विधिना कृता परिणती सा केवल निन्द्यते ॥२१३

भुजगशेखर ने उत्तर दिया कि तुम्हारे माता के पास आ जाने पर दास भुजगशेखर साथी बन सकेगा।

कलहस की प्रेयसी मरालिका उसके विरह मे सन्तप्त थी। कलहस को भुजगशेखर ने आदेश दिया—

यावन्नास्या वियोगाग्नि प्रशातिमुपगच्छति
पीताधरदला तावदियमालिग्यता त्वया ॥२१७

रात आई और अभिसारिका बनकर आ पहुँची भुजगशेखर के पास हेमाङ्गी, जो

अज्ञातविविधचुम्बनमनभिज्ञातोपगूहनविशेषम्
अविदितनखार्पण पतिमवाप्य हिरतेपु खिन्नेयम् ॥२३२

भुजगशेखर के लिए यह *'अनुगुणमुपभोक्तव्या'* बनी।

ऐसा लगता है कि शृ गारित समाज के विनोद के लिए सुकवि भी अपनी कलम को कलकित करने से बाज नही आये। यह एक प्रकार से दैव दुर्विलसित ही कहा जा सकता है कि पूरे प्रबन्ध मे कवि ने कही नही कहा कि वेशवाट नरककुण्ड है, सर्वापहारी है और सर्वाधिक भ्रश का परम स्थान है। इस भाण म विट की प्रणय-प्रवृत्तियो को वेश की मर्यादा से बाहर करके कुलाङ्गनाओ को फसाने की दिशा मे प्रवर्तित किया गया है। यह नवीनता दु खद है।

o

अध्याय २६

सामराजदीक्षित का नाट्यसाहित्य

नरहरिविन्दुपुरन्दर दामोदर के पुत्र मथुरा निवासी सामराजदीक्षित ने १६८१ ई० में श्रीदामचरित का प्रणयन किया। इनके प्रतिमा-विलास का युग सत्रहवीं शती का तृतीय और अठारहवीं शती का प्रथम चरण है। कवि ने बुढ़ापे में रतिकल्लोलिनी नामक एक अन्य कामशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन १७१६ ई० में किया। इनकी तीसरी रचना शृङ्गारामृतलहरी है। श्रीदामचरित के अतिरिक्त उनका एक और रूपक धूर्तनर्तक-प्रहसन मिलता है। उनकी भक्तिरसात्मक रचना त्रिपुरसुन्दरीमानस-पूजनस्तोत्र है। काव्येन्दुप्रकाश उनकी काव्यशास्त्रीय रचना है।[1]

सामराज ने अपनी काव्यलहरी से व्रजभूमि को तरङ्गित किया था। वे बुन्देलखण्ड के आनन्दराय के समाश्रय में बहुत दिनों तक रहे। उनकी विद्वत्ता आनुवंशिक रही। उनके पुत्र कामराज ने शृङ्गार-कलिका लिखी। उनके पौत्र व्रजराज ने रसमंजरी की टीका लिखी और प्रपौत्र जीवराज ने रसतरंगिणी की टीका लिखी।

श्रीदामचरित

श्रीदामचरित का नायक सरस्वती-परायण सुप्रसिद्ध सुदामा है।[2] कवि ने अपनी ओर से भावात्मक प्रकृति और उनके कार्यकलाप की योजना की है। प्रमुख पात्र, दारिद्र्य है, जो अपनी पत्नी दुर्मति के साथ अतिथियज्ञ करने वाले श्रीदामा का आतिथ्य-पान करता है। श्रीदामा ब्राह्मणोचित दरिद्रता से भी प्रसन्न हैं, किन्तु उनकी पत्नी वसुमती उन्हें दारिद्र्य को दूर भगाने के लिए चिउड़ा लेकर कृष्ण के पास जाने के लिए बाध्य करती हैं। कृष्ण ने श्रीदामा का रुक्मिणी और सत्यभामा के साथ चरण धोये। फिर विद्यार्थी-जीवन की चर्चा हुई और अन्त में प्रमदोद्यान में उद्यानपान, विदूषकादि के साथ कालोचित काव्यपाठ किया गया। रात्रि में कृष्ण ने उन्हें अपनी प्रेयसियों के साथ रासक्रीडा दिखाई।

श्रीदामा लौटकर घर आये तो उनको कुटिया, पत्नी और दरिद्रता के स्थान पर राजोचित प्रासाद, समलङ्कृत रमणी और लक्ष्मी मिली। कृष्ण ने श्रीदामपुरी की रचना सुदामा के लिए करा दी थी।

अन्तिम अङ्क में कृष्ण सत्यभामा और विदूषक के साथ श्रीदामपुरी में आये।

---

१. सामराज की अन्य रचनायें अक्षरगुम्फ और शृंगारामृत-लहरी हैं।

२ यह नाटक चार अंकों तक अपूर्ण भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टिट्यूट पूना में मिलता है। विलसन ने इसके पाँचवें अङ्क को भी देखा था और अन्तिम अंक की कथा The Theatre of the Hindus के पृष्ठ १४६ पर दिया है।

सामराज ने श्रीदामा के चरित को उदात्त बनाया है। वे ऐन्द्रियक भोग-विलासो को सर्वहारा मानते है। वे पत्नी के कहने पर भी कृष्ण के पास इसलिए जाते हैं कि मुझे पुराण पुरुष का दर्शन मिले। वहा कृष्ण से कुछ भी नही माँगते। कृष्ण को कवि ने मर्यादा पुरुषोत्तम रूप मे चित्रित किया है। वे श्रीदामा को देखते ही अपने पलग से उतर कर उनके चरणो मे प्रणत होते हैं और आलिगन करके उन्हे अपने आसन पर बिठा कर फिर अपने बैठते हैं।

नाटक मे पवन को प्रणयी रूप म चित्रित किया गया है—

वने लनाना कुसुमाभिवर्षै कृत्वाम्बुकेलि सह पद्मिनीभि ।
भृगीभिरगीकृतगीतिरेति कामीव काम जनक समीर ॥

चतुर्थ अङ्क मे कृष्ण राधा का अधरपान करते हुए उन्हें बाहो मे लेकर रगपीठ पर आते हैं। इसके प्रथम अङ्क मे दारिद्र्य दुर्मति का आलिगन करता है।

प्रस्तुत नाटक उस परम्परा मे है, जिसमे प्रतीक पात्र मानव पात्रो के साथ-साथ हैं।

श्रीदाम चरित की कुछ सूक्तियाँ अधोलिखित हैं—

१ कलहा नाम स्त्रीणा कुलधनम्
२ प्रायो वयोऽवस्थाभेदेन विषया अपि भिद्यन्ते
३ प्राय स्नेहवता क्लृप्तमानन्याय प्रकल्पते।
प्रसरत्यतिमात्रेण विन्दु पयसि सर्पिष ॥३ ११
४ लाघवकारण हि स्त्रिय

श्रीदामचरित की शैली नाट्योचित है। इसमे अलकारो का उपयोग भावो को सुबोध और प्रतिमूर्त करने के लिए हुआ है। अनुप्रासालङ्कारो से सगीतमय सावादिकता की सृष्टि की गई है। कवि का आदर्श रूपक है—

रविरथ—हलावकृष्टे तिमिरौघसमीकृते नभ क्षेत्रे ।
वापयति कालहलिक क्रमशो नक्षत्रवीजानि ॥ ३.२८

कवि कही-कहीं अपनी उपमागर्भित पदावली से विविध पक्षो का ग्रहण कराते हुए चित्र सा बना देता है। यथा,

"अजनाद्रित इव गिरिकदगम्य इवाविर्भवन्, कलुषमय इव, मोहमय इव, अज्ञानमय इव शकर्मणिमय इव, नीलोत्पलमालामय इव"

यह अधकार का चित्रण है। इस प्रकार की सुबोध पदावली तृतीय अक मे प्रमदोद्यान के वर्णन मे है। रात्रि का वर्णन रूपकों के द्वारा निरूपित है—

अपहाय रागिणीमपि सन्ध्या मामेति तिमिराशु ।
इति मुदिनेव तमिस्रा तारापुलकान् समुद्वहति ॥ ३.३५

कही-कहीं पदावली बाण की अनुकृति सी कर रही है। यथा,

यत्र च अपर्णात्व गिरिजायाम् अवकेशत्व विधवादिषु, भिन्नपत्रत्वमाजिपराजितसादिषु, गतपुष्पत्व जरठयोषित्सु, स्थाणुत्व शकरे न लताद्रुमेषु।

तृतीय अङ्क मे।

सामराज की कल्पना - परिधि निरवधि है। यथा,

क्रामत्पाठीनपुच्छक्षुभिततिमिकुलाकाण्डसघट्टलोलत्-
पानीयानीकवेल्लनमणिगणकिरणाकीर्णप्रोन्निरिताम्भ।
एतामन्वर्थसज्ञा जलनिधिवसना चित्रसाटीयघाटी—
मालम्बन् वालवीचिनिचयकुहकनो बद्धनीवि करोति॥ ३६

एक शाश्वत सत्य का मार्मिक रहस्योद्घाटन इस नाटक में किया गया है। यथा,

गृहीतो हृदये यम कठे बद्धा सरस्वती।
एतेरितीव विप्रेम्य स्वैरं श्रीरपसर्पति॥ ११८

धूर्तनर्तक प्रहसन

भगवान् नरकेसरी की यात्रा के अवसर पर इसका पहला अभिनय हुआ था। कथानायक मूढेश्वर और उनकी नायिका वसन्तलतिका का चरित धूर्तनर्तक प्रहसन को समलङ्कृत करता है।[1] मूढेश्वर अपने शिष्य जगड्ढम्बक और मुखर को साथ लेकर वसन्तलतिका से मिलने चले। जगड्ढम्बक आगे-आगे चलकर वसन्तलतिका के पास गुरु के आगमन का समाचार देने पहुँचा तो उसीके प्रणय मे समासक्त हो गया। लौटा नहीं। गुरु के वहाँ पहुँचते पर शिष्य-द्वय वहाँ से भाग खड़े हुए और पुलिस को लेकर वहाँ जब पुन आये तो गुरु रंगे हाथों पकडे गये वसन्तलतिका के प्रणयपाश मे। उन दोनों के केशपाश को साथ ही सम्बद्ध करके उन्हें पुलिस ने पापाचार नामक राजा के समक्ष पहुँचाया। राजा ने वसन्तलतिका को देखा तो दण्ड देने की सुध बुध खो बैठे। इधर विदूषक से मूढेश्वर बताता है कि मेरी सिद्धियाँ इससे बढ-चढ कर हैं। वह राजा को देवताओं का साक्षात् दर्शन कराने के लिए उद्यत था। तभी श्री मगलकुमार मिश्र नामक धूर्त ने कहा कि गुरु सत्य कहते हैं। राजा को मूर्ख बनाकर ठगने के लिए सप्तर्षियों का दर्शन कराया गया। वसन्तलतिका तो गुरु की हो ही गई।

इस प्रहसन की प्रस्तावना मे सुगन्धित वायु का वर्णन किया गया है। समाज मे धूर्तों की चलती है। यथा,

अजानन्त शास्त्र श्रुतिषु नितरा मूढमतयो
न जाना कामारे पदयुगलपाथोजरसिका।
प्रगल्भन्ते नित्य करयुगशिर कम्पनविधौ
नमस्ते विद्वास शिव शिव कलेरेव महिमा॥ ६६

---

1 इसकी हस्तलिखित प्रति बनारस की सरस्वती भवन लाइब्रेरी में ३७६६५ सख्यक है। इसका सम्पादन १८७८ ई० मे कलकत्ते से रामचन्द्र तर्काचार्य ने किया है।

वरदाचार्य का नाट्यसाहित्य

वरदाचार्य या अम्मल आचार्य रामानुज के अनुयायी काञ्चीपुरी के दार्शनिक विद्वान् थे। इनके पिता घटिकाशत सुदर्शन थे, क्योंकि वे एक घडी में सौ पद्य लिख डालते थे। इनका प्रादुर्भाव १७ वीं शती में रामानुज के वंश में हुआ था।

वरदाचार्य की दो रचनायें वसन्ततिलकभाण और वेदान्तविलास मिलती हैं। वेदान्तविलास से कवि की दार्शनिक प्रवृत्ति का वैशिष्ट्य प्रतीत होता है, यद्यपि वसन्तविलास की शृङ्गारित वृत्ति उनके लोकान्तिक होने का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है।

वसन्ततिलक भाण

वसन्ततिलक भाण का अपरनाम कवि के उपनाम अम्मा के अनुसार अम्मा भाण भी है।[1] कहते हैं कि रामभद्र दीक्षित से शृङ्गारतिलक भाण १६६८ ई० में इसकी प्रतिद्वन्द्विता में लिखवाया गया और इसी कारण उसे अम्मा भाण भी कहते हैं।

इस नाटक की प्रस्तावना काञ्चीपुरी में सूत्रधार ने उस समय लिखी, जब वरदाचार्य की मृत्यु हो चुकी थी, जैसा प्रस्तावना के अधोलिखित अंश से स्पष्ट है—

काञ्चीपुरे कविरभूद्वरदार्यनामा सूनुः सुदर्शनकवेर्घटिकाशतस्य।
वेदान्ततर्कविविधार्थविचारधीरो वाऽस्यो वसन्ततिलकः स व्यभाणि भाणम्॥

सूत्रधार की यह नाट्य-मण्डली उज्जयिनी में भी नाटक कर चुकी थी। वरद की ख्याति उसने उज्जयिनी में ही सुनी थी कि उनका यह भाण उच्च कोटि का है। सूत्रधार ने भाण को रूपकों में मधुर बताया है।[2]

कथावस्तु

शृङ्गारशेखर नामक विट वसन्तोत्सव के अवसर पर वसन्तसेना की बहिन वासन्तिका का प्रथमरङ्गाधिरोहण महोत्सव में नृत्य देखने के लिए सबेरे से ही निकल पड़ा है। उसे प्रधान विटों को निमन्त्रण देना है। वह वासन्तिकानुरक्त-हृदय और भावुक है। वह कल्पना करता है—

> पादताडनमशोकपादपाश्चिन्तयन्त इव तन्तुमङ्गना।
> मन्मथाय महनीयसौरभानर्पयन्ति खलु हन्त सायकान्॥

उसने राजधानी काञ्चीपुरी की पूरी प्रशंसा की। वहाँ वसन्तवीथी थी।

---

१ इसका प्रकाशन १८७२ ई० में कलकत्ता से हुआ। इसकी प्रति सिंधिया पुस्तकालय उज्जैन में है।

२ भाणश्चेद् दशरूपकेषु मधुरः

शृङ्गारशेखर को सर्वप्रथम अनङ्गशेखर नामक विट की प्रेयसी चित्रलेखा दिखी। फिर उसकी भूतपूर्व प्रेयसी तारावली दिखी। तारावली की धूर्तता और उसकी जरती की गालियों को दुहराया है। गालियाँ विट के लिए कर्णामृत हैं। आगे शूरसेन और वीरसेन मुर्गा लड़ाते मिले।

विट को आगे वीणावती मिली। उसके साथ एक नई वेश्या वसन्तकलिका मिली, जो अपने ब्राह्मण पति को विट होते देख स्वयं उसका अनुसरण करती हुई वेशवाट मे रहने लगी। शृङ्गारशेखर वसन्तकलिका की सगति चाहता था, पर वह पुष्पिणी थी तो क्या हुआ? विट का तर्क था—

पण्यस्त्रीषु परस्त्रीषु पुष्पदोषो न विद्यते।

आगे उसे आहितुण्डिक मिला। उसके सापों का खेल देख सुनकर विट हारावली के पास पहुँचा, जो कन्दुकक्रीडा मे व्यापृत थी। उससे विट का पहले कभी सम्बन्ध था। गेंद खेलती हुई उसने विट से कहा कि विघ्न न डालें।

विट को आगे दाक्षिणात्य ब्राह्मण देवराज भट्ट वेशवाट मे घुसते मिले। उनकी पत्नी घर मे रहती हुई भी व्यभिचारिणी बन गई थी। गन्धहस्ती आगे मार्ग मे स्वतन्त्र होकर नगर मे भगदड मचाये था। हारिणी नामक वेश्या ने दोपहर की धूप से उस विट को बचने को कहा तो उसने उत्तर दिया—

त्वदर्थमनुभूतकामानलस्य मे कोऽयमातपो नाम।

आगे चन्द्रशाला मे अध्यापन करते हुए कामशास्त्र के उपाध्याय मिले। विट ने उनको नमस्ते ठोका। उनसे आशीर्वाद मिला—अनङ्गविद्यापारगतो भूयाः। पूछने पर उन्होंने कामशास्त्रीय भाषा मे बताया कि जाति-भेद, अर्धचन्द्रवैचित्री, विदुमाल-अन्तर, उत्तानकरण, क्षीरनीर और तिलतण्डुल-विवेक—आठ प्रकार के औपरिष्टक आदि पढा चुका हूँ। उपाध्याय को वासन्तिका नृत्य देखने का निमन्त्रण विट ने दिया।

आगे शृङ्गारशेखर ने देखा कि गणिका के लिए दो वीरों मे तलवार खिंच गई थी। विट के अनुसार पतिगृह व्यभिचारिणियो के लिए कारागार है। जैसे—

कार्येणापि विडम्बनं परगृहे श्वश्रूर्न सम्मन्यते
शङ्कामारचयन्ति भूमिभवनं प्राप्ते मिथो यातरः।
वीथीनिर्गमनेऽपि तर्जयति न क्रुधा ननान्दा पुनः
कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम्॥

वहाँ द्वन्द्व देखने के लिए आये हुए रत्नशेखर नामक विट ने अपनी कथा सुनाई कि रत्ननगरी की वेश्यावीथी मे मैं पहुँचा, जब काशी मे पिता से झगडा हो गया। वहाँ

कापि कमनीयमूर्तिः कनकशलाकेव कामिनी दृष्टा।

फिर उसके लिए मैं अधमरा हो गया। एक दिन एक कापालिकी ने मेरी दशा सुनकर मुझसे कहा—यह रत्न तुम्हारी बहेनी ने तुम्हारे लिए यह कहकर भेजा है

कि यह 'युष्मद्गुणगणक्रीतमस्मच्चेत' है । उसने उस प्रेयसी बाला की स्थिति बताई—

न क्रीडासु कुतूहलं वितनुते नालङ्कृतौ सादरा
नाहारेऽपि च सस्पृहा न गणयत्यालापलोला सखीम् ।
बाला केवलमङ्गकैरनुकनक्षामैर्विविक्तस्थले
ध्यायन्तो किल किंचिदन्तरधुना निस्पन्दमास्ते मुधा ॥

उसके मदनताप का अनुरणन कापालिकी के मुख से जान लें—

सन्तापस्फुटितोत्थितैस्स्तनतटान्मुक्ताफलैरन्वित
भस्मीभूतनवप्रवालशयन पर्याकुलैरङ्गकै ।
निश्वासग्लपितप्रसूनकलिकानिर्विण्णभृङ्गीकुल
तस्यास्तापमनक्षर कथयते तन्व्या लतामण्डपम् ॥

उस प्रेयसी की आत्मकथा है कि मैंने एक विलासी को देखा—

नवयौवनकुञ्जरस्य मन्ये मदलेखेव मदालसस्य यून ।
चरणैरगमद् कथ कथंचिद्विरहैर्विस्मितमार्गसन्निवेशे ॥

रङ्गशेखर ने उससे मिलने का उपाय बताया कि वह अपने को भूताविष्ट कहकर उन्मादिनी बने और मैं उसका उपचार करने के लिए मान्त्रिक बनकर उसका समागम प्राप्त करूँ । उस कामिनी का पिता लक्षाधीश था । उसने अपनी आधी सम्पत्ति उस व्यक्ति को देने की घोषणा की, जो उस कन्या के महाभूत को दूर भगा दे ।[1] रङ्गनाथ ने मन्त्र-तन्त्र से उसे ठीक कर देने का ढोंग रचा और एक दिन यक्षबलि के लिए पिता की अनुमति से उसके अकेले जाने का कार्यक्रम बनाया । वहाँ से वह सकेतित मातृगृह मे पहुँची, जहाँ सवथा एकान्त था और वही मैं था । फिर तो

तन्मय वि मय बाला मन्मयी किमुभावपि ।
किमानन्दमयो वेति न विज्ञात तया मया ॥

रङ्गशेखर और शृङ्गारशेखर ने परवधूरमण की निरतिशयानन्दिता की चर्चा की वीरवरो के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन करके शृङ्गारशेखर मेषयुद्ध का वर्णन करता है । फिर उसे नेपाली, चोली, आदि वारागनायें मिली और मन्दारमालिका से मिलने का कार्यक्रम बना—

सत्यमागच्छामि, शपामि ते पादपङ्कजेन ।

अन्त मे शृङ्गारशेखर रगोत्सव मे पहुँचा । वहाँ मगलतूर्यनाद हो रहा था । वहाँ विलासवीर का विलासवती से द्यूत सोत्साह चल रहा था । अन्यत्र आँखमिचौनी चल रही थी युवा और उसकी प्रेयसी की । उस रगस्थली मे चोल, केरल, नेपाल, मालव, मगध, कलिंग, कर्णाट आदि देशो के विट थे ।

---

१ भूतावेश के बहाने प्रियतम से मिलने का यह सविधान १७ वी शती के कुन्द कुमुद्वतीय तथा वसुमती चित्रसेनीय मे भी मिलता है ।

वासन्तिका के नृत्य के रङ्गमण्डप में पहुँचने पर शृङ्गारशेखर को अनेक देशों से आई हुई विलासिनियाँ दिखाई पड़ीं, जिनमें आन्ध्र, कर्णाट, पाण्ड्य, लाट, नेपाल आदि के रमणीरत्न विशेष उल्लेखनीय प्रतीत हुए। वहाँ विलासपुर से आई हुई चन्द्ररेखा सकललोकलोचनानन्द घोषित हुई।

विट ने वासन्तिका के सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद दिया—

न परं रूपतावर्ध्यस्तथा भव्नि मृगीदृशाम्।
विद्ययापि विशालाक्षि, विन्यस्ता वामपादुका॥

शृङ्गारशेखर ने वासन्तिकोपभोग के एकाधिकार के लिए करारपत्र दिया—

मासान् सप्त ममैवमस्तु दयिता दास्यामि चान्यं गतं
दीनारान् प्रतिमाससम्स्थिरयुगं नित्यं शतं वीटिकाः।
आमोदं कुसुमं च वाञ्छितमसौ मध्येऽन्यमीक्षेत चेद्
दत्त्वा तद्द्विगुणं कलत्रं तु पुनर्मासानिमान् सप्त च॥

रतिवर्धन, रागवर्धन और कुसुमसौरभ इसके साक्षी बने। जनान्तिक में शृङ्गारशेखर ने कहा कि मैं चोरी तथा द्यूत में निरतिशय निपुण हूँ। दो-एक मास में तुम्हारा घर स्वर्ण-राशि से भर दूँगा।

भाण में कवि आनुप्रासिक संगीत प्रस्तुत करता है। यथा

शशिपदमरिमाल चन्द्ररेखाभिराम ललितपुलकजाल लक्ष्यबिन्दुप्रवाल।

इसकी सरल सुबोध भाषा भाणोचित है। पद्यों के उदाहरणों में इसकी गीति-प्रवणता परिलक्ष्य है।

कहीं-कहीं लोकोक्तियों का प्रखर प्रवाह है। यथा,

१ मातङ्ग इवागत्य मार्जार इव निर्गतोऽभूत्।
२ कुबेरमपि कौपीनं परिधापयितुं कुशलासि।
३ क इव करतलगतं मुचेन मार्गितयम्।

कवि ने विट के मुख से ही वेश्याओं की धूर्तता का रहस्योद्घाटन किया है। यथा,

कपटानुरागशेमुषीदिराः खलु वेश्या जनाः।

आलापैर्मधुरैश्च काञ्चिदपरां नालोकितैः सस्मितै-
रन्यान् विभ्रमकल्पनाभिरितरानङ्गैरनङ्गोज्ज्वलैः।
आचारैश्चतुरैः परानभिनवैरन्यान् सुरैः कम्पनै-
रित्थं कांश्चन रञ्जयन्ति सुदृशो मन्ये मनस्त्वन्यथा॥

वृद्धजरती को विट कुट्टनी बतलाता है। उसकी गाली का उदाहरण है—

रे रे धनञ्जयधैर्य दरिद्रचडामणे उत्पन्नजन... जीर्णा। गर्भेणा निर्गन्द निष्कासितोऽपि ममाह्गन पुनरपि समागतोऽसि।

अध्याय २८

वेदान्तविलास

वेदान्तविलास का अपर नाम यतिराज-विजय भी है।[1] इसके छ अङ्कों मे रामानुज का जीवनचरित कथावस्तु-रूप म लिया गया है और उसके प्रसङ्ग मे रामानुज-वेदान्त का परिचय है। कथावस्तु मोहराज-पराजय की कथावस्तु के कुछ-कुछ समान विकसित है।

कथावस्तु के अनुसार नायक वेदान्त राजा मायावाद के चमत्कार से सत्पथ से भ्रान्त हुआ था। उसने अपनी पत्नी सुमति का तिरस्कार करके भ्रष्टाचार-परायण मिथ्यादृष्टि का पाणिग्रहण किया। इस काम मे उसके मन्त्री थे बौद्ध और चार्वाक आदि। अन्धकार की यह स्थिति अन्त मे समाप्त हुई, जब नायक यतिराज के ज्ञान-प्रकाश से अपनी विकृति का सज्ञान लाभ करता है। वह सुमति को पुन अपनी प्रतिष्ठित महिषी के स्थान पर समादृत करता है। इस प्रकार उसका उद्धार होता है।

वेदान्त-विलास मे सब मिलाकर ३८ पात्र हैं। इनमे से लगभग १५ प्रतीकात्मक हैं और शेष ऋषि, मुनि, मानवादि हैं। इसमे वेदमौलि (वेदान्त) नायक है, यतिराज रामानुज मन्त्री है और धर्म अनुचर है। शङ्कर, भास्कर, यादव, चार्वाक आदि अन्य चरित-नायक हैं। जनक, नारद, भरत आदि प्रमुख पात्र हैं, जो अन्य नाटकों से भी सुपरिचित हैं। नाटक का प्रथम अभिनय श्रीरंग मे विष्णु की चैत्रोत्सव यात्रा मे हुआ था।

नाटक की कथावस्तु सक्षेप में इस प्रकार बताई गई है—

सर्वैर्विलुप्तविषयं सचिवं पुरस्तात्
सम्यग्विचिन्त्य सचिवेन यतीश्वरेण।
सम्प्रापित स्वपदवैभवमद्वितीयं
सम्राडसौ खलु भविष्यति वेदमौलि ॥

नारद के शब्दों मे

निरस्य तिमिरं भानुर्निधत्ते जगति श्रियम्।
एवमेन यतीन्द्रोऽपि स्वपदे स्थापयिष्यति ॥

मानवपात्र और प्रतीकपात्र दोनो रगमच पर बात करते हैं। यह छायातत्त्व का उदाहरण है, जो प्राय पूरी पुस्तक म वर्तमान है। यथा,

धर्म -(उपसृत्य) अयमहमुपनतोऽस्मि।
यति -(सादरम्) धर्म, इदमासनमुपविश्यताम्।

---

1 इसका प्रकाशन १९५६ ई० म तिरुमल-तिरुपति-देवस्थान तिरुपति से हुआ है।

धर्म—भगवन्, अलमत्यादरेण। (इति भूमावुपविशति)।
यति—अपि दृष्टो राजा वत्सेन।
धर्म—(सविषादम्) राहुगृहीतो रजनीकर क्व दृश्यते।

वेदान्त-विलास का महत्त्व नाटक की दृष्टि से भले सम्प्रदाय वालो तक सीमित है और सच भी है कि इस नाटक का महत्त्व परखने के लिए इसकी साम्प्रदायिक महिमा को दृष्टि-पथ से ओझल नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही अन्य सम्प्रदायो की स्वरूप-गत प्रवृत्तियो की जानकारी के लिए इसका महत्त्व कुछ कम नही है। चार्वाक मत की बातो को जानने के लिए इसमें अनूठी बातें हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध मत के विविध सम्प्रदाय, जैन, पाशुपत मायावादी, भास्करीय, यादवीय द्वैती आदि सम्प्रदायो की प्रमुख मान्यताओं की झलक इसमे मिलती है।

एकोक्ति

इस नाटक की बहुत एकोक्तियाँ विशेष प्रभावशालिनी हैं। प्रथम अङ्क के आरम्भ मे रगमच पर अकेला नायक कहता है—

भेदोपजीव्यपि भिनत्ति तमेव भेद
मान प्रतिक्षिपति मानपरायणोऽपि।
सोऽय प्रमाणपुरुषं स्वकरोपनीतान्
मिथ्येति वक्ति मिषतोऽपि हरन् महार्थान् ॥१ ३०

नायक राजा के चले जाने के पश्चात् रामानुज रगमच पर आते हैं और वे अकेले हैं। वे अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन एकोक्ति रूप मे करते हैं—

वासो मुक्तपटच्चराणि वसतिर्मूले तरोर्भोजन
भिक्षास्वप्त नवा जल तु सुलभ त्यक्तास्समस्तैषणा।
वर्गेषु त्रिषु निस्स्पृहो भगवति न्यस्तात्मभारोऽपि सन्
चिन्तादन्तुर मानसोऽपि सचिवश्रीवेदमौलेरहम् ॥१ ३२

और भी—

मदन्तस्सन्ताप शमयितुमल रगनगरी—
समीरा कावेरीशिशिरलहरीशीकरमुच.।
समुत्पुष्यल्लक्ष्मीस्तनतटपटीरद्रवमिलन्
मुकुन्दोर क्रीडारसिकतुलसीसौरभमुप ॥१.३३

शैली

सूत्रधार के शब्दो मे वेदान्त-विलास की शैली

'कर्णामृतानि च भवन्ति कवीन्द्रवाच।'

अर्थात् मधुर-मधु पदावली से सरस है। यह नितान्त सत्य है।

नाटक की भाषा अति सरल है। भाव तो सम्प्रदाय के लोगो के लिए सरल होना स्वाभाविक ही है। सवाद मे व्याख्यान नहीं है, अपितु शास्त्रार्थ या शिक्षण की योग्यता प्रतीत होती है।

यद्यपि यह दार्शनिक नाटक है, फिर भी लोकरुचि के अनुरोधानुसार इसमे शृ गारित तत्त्व की निझरिणी स्थान-स्थान पर प्रवाहित है।

राजा वेदमौलि को छोडकर मिथ्या भाग गई तो वह अकेले कलपने लगा—

मा त्व प्रयाहि मदिराक्षि मया कृत ते
पश्यामि नात्पमपि दोषमथापि किं माम् ।
काष्ठागतप्रणयकन्दलित जहासि
का वा गतिर्मम भविष्यति काक्षतस्तव ॥२ २३

फिर तो इतिहास को देखकर वह फूट पडता है—

सौदामिनीव मेघ मा त्यक्त्वा मायाविलासिनी ।
गताह किं करिष्यामि विरहानलविह्वल ॥२ २४

वेदमौलि का अपनी रानी रागिणी देवी के प्रति प्रेम कुछ शिथिल सा ह। उसका शृङ्गारित परिताप है—

सन्तापस्फुटितोज्झितस्तनतटैस्सच्छादित मौक्तिकै
भस्मीभूत — नवप्रकाशशयन पर्याकुलैरगकै ।
विश्वासरूपितप्रसूनकलिकानिर्विण्णभृगीकुल
तस्यास्तापमनक्षर कथयते तन्व्या लतामडपम् ॥३ १

भूमिका

नाटक की भूमिका धर्म आदि भावात्मक सत्ताओ की है–इन्हें क्या समझा जाय? जैसे ईश्वर रूप ग्रहण करके रामादि बनता है, वैसे ही धर्म आदि मानव रूप धारण करके रगपीठ पर आते हैं। दूसरी दृष्टि यह है कि धर्म नामक भूमिका या चरितनायक धर्ममय पुरुष है।

वेदान्तविलास की प्रस्तावना के नीचे लिखे अश से इस नाटक के रचयिता के समय का ज्ञान होता है—

अस्ति खलु भगवद्रामानुजमुने पूर्वाश्रमभागिनेय श्रीवत्सकुलचूडामणि अखिलपरदर्शनमदकर्शन सुदर्शनो नाम ।

तस्य वेदान्तकूटस्य पौत्रोऽभद्वरदो गुरु
श्रुतप्रकाशिकाद्याश्च ग्रन्था यच्छिष्यसम्पद ॥

तस्य पचम प्रपञ्चविदितवैदुष्य काचीपुरीवास्तव्य श्रीघटिकाशतसुदर्शनाचार्यसुनु श्रीवेदान्ताचार्य—रामानुजाचार्ययो दर्शनस्थापनाचार्ययो प्रसादभूमिर्वरदाचार्यो नामकवि ।

इस सूचना के अनुसार रामानुजाचार्य से आठवी पीढी मे वरदाचार्य का प्रादुर्भाव प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे १२वी शती के रामानुजाचार्य से लगभग २५० वर्ष पश्चात् वरदाचार्य को चौदहवीं और पद्रहवीं शती मे ही रख सकते हैं। इस प्रकार वरदाचार्य का समय विवादास्पद है।

चोक्कनाथ का नाट्यसाहित्य

तिप्पाध्वरी के पञ्चम पुत्र चोक्कनाथ अपने पिता के अग्रहार शाहजीपुरम् के निवासी हो गये थे। मूलतः वे तेलुगु थे। तंजोर के शाहजी उनके आश्रयदाता थे। कुछ समय तक वे दक्षिण कर्णाट देश में बसव-भूपाल की राजसभा को समलङ्कृत करते रहे।

चोक्कनाथ के द्वारा प्रणीत तीन रूपक ज्ञात हैं—

१ सेवन्तिकापरिणय
२ कान्तिमती-शाहराजीय-नाटक
३. रसविलास-भाण

इनमें से कान्तिमती-शाहराजीय के नायक शाहजी १६८८–१७११ ई० तक और सेवन्तिकापरिणय के नायक बसवभूपाल १६९८–१७१४ ई० तक राजा थे। कवि ने सबसे पहले रसविलासभाण की रचना की थी। इसकी चर्चा कान्तिशाहराजीय की प्रस्तावना में है।

चोक्कनाथ को सूत्रधार ने महात्मा बताया है। उनके पिता तिप्पाध्वरीन्दु का परिचय सूत्रधार ने इन शब्दों में दिया है—

> तस्य जगदाचार्यस्य तिप्पाध्वरीन्दोरयं पुत्र इति महदिदमुत्कर्ष-स्थानम्। तथा हि—
>
> भाष्यादिग्रन्थजातं सरलमपि सदा पाठयन्तो महान्तो
> भूपालश्लाघ्यमाना विनिहितविजयस्तम्भजालादिगन्ते
> प्राप्ते वादे बुधेन्द्रैरहमहमिकया पूर्वमेवाभियान्तो
> देशे-देशे वसन्ति प्रसृमरयशसो यस्य शिष्याः प्रशिष्याः ॥

चोक्कनाथ के बड़े भाई कुप्पाध्वरी और तिरुमलशास्त्री थे। इनके गुरु स्वामी शास्त्री और सीताराम शास्त्री थे।

कान्तिमती–शाहराजीय

कान्तिमती-शाहराजीय[1] का प्रथम अभिनय तंजोर में मध्यार्जुनेश के चैत्रोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमें नृपति के चरित का अभिनय अभीष्ट था। यह उच्चकोटि का गीतिप्रवण नाटक है।

कथावस्तु

मागनगर के राजा चित्रवर्मा का राज्य एक बार यवनों के द्वारा छीन लिया

१. इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल तंजोर में ४३३६–४१ संख्यक है।

गया। तंजौर के महाराज शाहजी ने उसे राज्य पर पुनः प्रतिष्ठापित किया था। चित्रवर्मा महाराज से मिलने कुम्भकोणम आया था।

चित्रवर्मा के पुरोहित कौपीतकि से शाहजी के विदूषक कविराक्षस की बहिन सुलोचना का विवाह हुआ था। उसने विदूषक को सूचना भेजी कि एक मास पूर्व चित्रवर्मा की कन्या कान्तिमती तंजौर में आनन्दवल्ली नामक देवी की पूजा करने गई थी, जिसमें उसने सुयोग्य वरलाभ की प्रार्थना की थी। तंजौर में उसने तुम्हारे महाराज शाहजी को देखा और मदनातङ्कित हो गई है। तुम तो अब शाहजी को कुम्भकोणम ले आओ, जिसमें कान्तिमती से उनका मिलना हो। इस बीच शाहजी चित्रवर्मा से मिलने कुम्भकोण चले। महाराज के विवाह की अवश्यम्भाविता की चर्चा नागज्योतिषक ने की।

राजा रथोत्सव देखने के लिए सौध पर जा विराजे। विदूषक के परामर्शानुसार कान्तिमती को सुलोचना ने सामने के सौध पर खड़ा करा दिया। वहाँ से विदूषक ने सामने के सौध पर खड़ी कान्तिमती को दिखाया। राजा का उससे प्रेम देखकर विदूषक ने कहा कि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा।

राजा और विदूषक की कान्तिमती-विषयक वार्ता को महारानी सखियों के साथ आकर खम्भे के पीछे से सुनने लगी। रानी ने जान लिया कि राजा किसी अन्य नायिका के चक्कर में है। वह वहाँ से राजा की ओर बढ़ी। विदूषक ने राजा की स्थिति सम्हाली, यह कहकर कि राजा के ये उद्गार आपका चित्र देखकर निकले थे। रानी ने कान्तिमती का नाम राजा के मुँह से सुना था। उसने कहा कि अब मैं कान्तिमती नाम वाली हो गई हूँ।

कुम्भकोण में चित्रवर्मा ने शाहजी का भव्य स्वागत किया। उसे ऐश्वर्यशालिनी भेंट दी और कहा—

देवा नित्यतृप्ताऽपि यद्भक्तेन निवेदितम्।
अत्यल्पमपि तद्वस्तु बहुत्वस्य प्रसीदति ॥२.२
अत्यापद प्रपन्न मा रक्षितुं मम देवता।
अवतीर्णेति मन्येऽहं भवद्रूपेण भूतले ॥२.३

उन भेंटों में एक हार था, जिसकी मणि से पहनने वाला व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। इसके पश्चात् राजा चित्रवर्मा अपने मन्त्रियों से आवश्यक परामर्श करने गया और शाहजी उसके अन्तःपुर में उसकी प्रतीक्षा में पड़े रहे। पश्चात् विदूषक के निर्देशानुसार शाहजी चित्रशाला में गये, जहाँ कान्तिमती उनसे मिलने वाली थी। राजा ने वहाँ कान्तिमती को देखा—

उत्तंसयन्त्यरेयं कनिष्ठविन्यस्तवलिवहस्ताग्रा
चित्रं विलोकयन्ती जीवितमेवाय तिष्ठति पुरो मे ॥२.२०

खम्भे से छिपकर राजा और विदूषक कान्तिमती की बातें सुनने लगे। राजा ने कहा—

ममनयनयोरेषा योषा करोति कुतूहलम्।२.२२

कान्तिमती को नायक से मिलने के लिए उत्कण्ठित सुनकर विदूषक ने राजा को उसके पास ला दिया। नायक-नायिका के सान्निध्य में शृङ्गाररस की वाग्धारा प्रवाहित हुई। शीघ्र ही चेटी ने आकर उन सबको बताया कि भागानगर छोड़े बहुत दिन हुए। शत्रुओं से वहाँ भय उत्पन्न हो गया है। आज ही सबको यहाँ से चल देना है।

विदूषक और शाहजी को यह स्थिति अटपटी लगी। भाग्य से स्थिति में परिवर्तन हुआ। भागानगर की रक्षा के लिए रणधीर नामक अन्तपाल को चित्रवर्मा ने नियुक्त किया और अपने कुटुम्ब के साथ कमलालय के राजा की कन्या प्रभावती के विवाह को देखने के लिए निमन्त्रित होकर चल पड़े।

प्रभावती चित्रवर्मा की पत्नी के भाई चित्रसेन की कन्या थी। इसके विवाह में शाहजी भी तंजौर से सकुटुम्ब कमलालय पहुँचे। प्रभावती के विवाह में वहीं कान्तिमती अपने माता-पिता के साथ उपस्थित हुई। वहाँ चित्रसेन के गृहाराम में मदनाःतङ्कित नायक और नायिका दोनो पहुँचे। नायिका अपनी सखी की गोद में सिर रख कर सोई हुई उत्स्वप्नायित करने लगी। नायक उसके सामने प्रकट हुआ। थोड़ी देर में उनके मित्र उन्हें अकेले छोड़कर चलते बने। उन्होंने प्रेमालाप के साथ आलिंगन किया। उनके प्रणयव्यापार के बीच विदूषक कहीं वृक्ष से गिरा। सभी लोग उसके पास दौड़ पड़े, जिनमें चित्रवर्मा भी था। ऐसी स्थिति में कान्तिमती को कोई देख न ले—नायक ने उसे वह हार पहना दिया, जिसका पहनने वाला अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार नायिका की रक्षा हुई।

कान्तिमती की माता ने जान लिया कि उसकी कन्या का प्रणय सम्बन्ध पर्याप्त सीमा तक बढ चुका है। उसका परिचय जानकर यह चिन्ता हुई कि उसकी तो पहली पत्नी है। उस पत्नी की अनुमति मिलने से ही विवाह की सम्भावना रही। इसके लिए प्रयास आरम्भ हुआ।

शाहजी की पत्नी को वह पत्र मिला, जिसे कान्तिमती ने नायक के कमलालय आने पर विदूषक के माध्यम से भेजा था। रानी का माथा ठनका। नायिका को प्रतीत हुआ कि उसकी सिद्धि में बाधायें आ पड़ी।

इधर राजा विरहाग्नि में जलने लगा। वह जब विदूषक से बात कर रहा था तो रानी आ गई और छिप कर उनकी बातें सुनने लगी। तभी चित्रवर्मा का मन्त्री राजा का सन्देश लेकर आया कि कान्तिमती से आप विवाह कर लें। राजा ने स्पष्ट कह दिया कि रानी की अनुमति बिना यह नहीं होगा। उसी समय ज्योतिषी ने आकर कहा कि कान्तिमती से अवश्य विवाह कर लें। अन्त में रानी प्रत्यक्ष हुई। सबने सारा

दोष विदूषक पर मढा। इसी बीच शोभावती कमलाम्बिका से आविष्ट होकर रानी से बोली—

> शाहेन्द्रकान्तिमत्यो पाणिग्रहणभद्रेण प्रथितयशसो भवत्यास्तनया वोढवो जनिष्यन्ते। तदद्य सत्वरं प्रवर्त्यतां कन्यारामः।

उन दोनो का विवाह हो गया।

नाट्यशिल्प

सूत्रधार के शब्दो मे यह नाटक है—

चित्रसविधानपदम्।

नाटक के कुछ सविधान कोरे हास्य-निष्पादन के लिए हैं। प्रथम अक मे भले ही फलप्राप्ति की दिशा मे उपयोग रहित है विदूषक का घोडे पर चढना और उसकी पीठ से उचक कर अपनी टाँग तुडवाना, किन्तु हास्य के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। तृतीय अङ्क मे आरम्भ मे वर्धन का अपने साहस की कथा बताना केवल विनोद के लिए ही है।

शृङ्गार रस की धारा प्रवाहित करने के लिए कवि ने द्वितीय अङ्क के उत्तरार्ध मे कथा प्रवाह को रोक कर नायिका और नायक का विविध देशो मे मिलन वर्णन करते हुए उनके मनोभावो का चित्रण किया है।

इस नाटक का विदूषक कविराक्षस विदूषक होने के साथ उच्चकोटि की प्रत्युत्पन्न बुद्धि से युक्त है। वह अपने कवि नाम को सार्थक करता है। वह केवल एक टाइप नही है। उसका अपना कवित्वपूर्ण व्यक्तित्व है। राजा ने उसकी प्रशसा मे कहा है—

अपि शक्नोपि पुरस्थमप्यर्थं शशविषाणीकर्तुम्।

कवि ने प्रथम और तृतीय अङ्क के पहले के क्रमश विष्कम्भक और प्रवेशक मे उनके पश्चात् आने वाले अङ्को की नाट्यस्थली से भिन्न स्थली की घटनाओं की चर्चा की है।

खम्भे और वृक्षो से अन्तर्हित रहकर दूसरे चरितनायको के कार्यकलापो को देखते-सुनते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहने का कार्यक्रम गर्भाङ्क के समान ही विशेष रसवती योजना है।[1] यह योजना सभी अङ्को मे सफलतापूर्वक विन्यस्त है।

कान्तिमती की वृत्तियो को इसमे मनोरथ-नाटक की सज्ञा दो बार दी गई है।

१ गर्भाङ्क से इसका यही अन्तर है कि गर्भाङ्क मे नाटक के भीतर जो नाटक होता है, उसमे भूतकालिक घटना प्रत्यक्ष की जाती है और इसमे वर्तमान घटना ही प्रस्तुत होती है।

नायिका के मनोरथ की पूर्ति की योजना की विशेषता जिस कथा मे होती है, उसे मनोरथ-नाटक कहते हैं। चारदत्त म इसी प्रकार का अमृताङ्क-नाटक है।

नाटक के प्रेक्षक सदा से ही केवल कथावस्तु के प्रपञ्च मे ही अभिरुचि नहीं लेते रहे, अपितु स्थान-स्थान पर देश और काल का प्रसङ्ग आने पर प्रकृति और नगर की ऐश्वर्यशालिनी और सुमनोहर विभूतियो की चारुता का प्रायश गीति-शैली मे निबन्धन करते रहे। प्रस्तुत नाटक म अनेक वर्णनो का समावेश हुआ है। यथा प्रथम अङ्क के पूर्व मिश्रविष्कम्भक के अन्त मे सन्ध्या का वर्णन, प्रथम अंक के आरम्भ म प्रातःकाल का, कुम्भघोण नगर की वारविलासिनियो का, राजवीथि पर नृत्य, सौध की ऊँचाई से देवालय, कावेरी, आदि रथ का चलना, और तृतीय अङ्क में वर्षा, आराम-रामणीयक आदि वर्णन रसो के उद्दीपन के लिए प्रयुक्त है।

इनमें से अनेक वर्णन नायक-नायिका की भावी परिस्थिति के द्योतक हैं।[1] द्वितीय अङ्क में नायक और नायिका के प्रथम मिलन के मनोभावो का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कथावस्तु के प्रवाह को रोक कर प्रवर्तित है।

महाराज रगमंच पर घोड़े पर सवार होकर आता है। प्राचीनकाल मे यह दृश्य नाटको म शास्त्रानुसार साकेतिक विधानो से अभिनीत होता रहा है। किन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं कि रंगमञ्च पर घटनाक्रम को प्रत्यक्ष और वास्तविक बनाने का महत्त्व समझने वाले सशक्त व्यवस्थापक योरप के समान ही भारत मे घोड़े और रथ आदि को रगमच पर लाते रहे है।

प्रायश पात्र का रंगमच पर आना तब होता है, जब उसकी चर्चा कोई अन्य पात्र किसी प्रसंग मे पहले कर लेता है। इस प्रकार पात्रों का आना स्वाभाविक हो जाता है, आकस्मिक नहीं।

छायातत्त्व

द्वितीय अक मे नायिका नायक का चित्र देखकर हर्षोद्रेक प्रकट करती है। यह छायातत्त्व सफलता पूर्वक विनिवेशित है। राजा का हारमणि के प्रभाव से अदृश्य रहना भी छायातत्त्व है।

एकोक्ति

कवि की एकोक्तिनिष्ठा परिचेय है। तृतीय अक म वर्षन के विवाहोत्सव के लिए जाने पर नायक अकेले अपनी नायिका की चिन्तना म उधेड़-बुन करते हुए कहता है—

---

१ उदाहरण के लिए है—

नदन् भया भृङ्ग प्रनिकुसुमनादाय मधुरम् ।
मरन्द प्रेयस्य निरगति ततोऽयं तु विरति ॥

इसके पश्चात् नायक-नायिका के समागम की सुखानुभूति करता है—

इन्दीवराम्बुरुहतुङ्गकुलण्नाल — रम्भाद्रुमस्तवकचाम्पकवीक्षणेन।
तस्या उदग्रप्रकृतिकोमलमङ्गमग्न्मृत्वा मनोविकृतिमेनितरा कठोराम्॥

शैली

वैदर्भी रीति मे सरलता के साथ सरसता का सफल मिश्रण चोक्कनाथ की विशेषता है। नाटक के पद्यो मे अद्भुत गीतिमयता का सन्निवेश कवि ने किया है। सानुप्राम गीतिमयता का उदाहरण है—

सौन्दर्यनारसदन दाडिमफलबीजपरिलसद्रदन।
राकेन्दौ कृतकदन जयनितरा वारसुभ्रुवा वदनम्॥ १ २३

अलिकुललसदलकान्ता कुवलयदननीलमसृणनयनान्ता।
कैषा कुचभरतान्ता काचनलतिकेव दृश्यते कान्ता॥ १ ३०

राकेन्दुबिम्बवदना कनकोज्ज्वलागीमानीलकुन्तलभरान्तरलायताक्षीम्।
एना विलोक्य हृदय मम हृष्यतीव समुद्यतीव सजतीव विषीदतीव॥१ ३६

नायिका कान्तिमती नायक का चित्र देखकर कहती है—

ग्लपयति मम गात्र सर्वतश्चन्द्रिकेय
दलयति बत कर्णौ कोकिलाना निनाद।
मलयजपवनो मन्दीपयत्यङ्गमङ्ग
प्रहरति च पुनर्मा पातकी पचबाण॥ २ २५

नायक नायिका के विषय मे कहता है।

गृहे वा सौधे वा पुनरपि स तु दृष्टिपदवी—
उपेयादेपेति प्रमदभरित मे ननु मन।
इदानी तु प्राय प्रशिथिलितमूल विधिवशात्
समुत्कण्ठाभूम्नाभृशतरलमुद्वेगमयते ॥ २ २४

मन्द गच्छति तिष्ठति क्षणमथ व्यावर्तयत्यानन
दीना पश्यति लोचनान्तरगत बाष्प निरुन्धे तत।
तामेना बत सुन्दरी मम कृते प्राप्तामिमा दुर्दशा
पश्याम्येप कथ कठोरहृदय किं कर्तुमीशेऽथवा॥ २ २५

विकसितकुवलयनयना पुष्करशरदिन्दुबिम्बशोभिमुखीम्।
सतत हृदि निवसन्ती पश्यन् कमलाक्षि विस्मरामि कथम्॥ २ २६

रस

कान्तिमतीशाहराजीय मे अङ्गीरस शृङ्गार है। शृङ्गार को पुन पुन प्रोत्तेजित रूप मे प्राय सभी अको मे सम्पूरित किया गया है। नायिका के नखशिख-वर्णन, उसके हावभाव, विलास और वियोग या पूर्वराग के सचारी भावो का समुदित चित्रण करने की गहरी अभिरुचि चोक्कनाथ की विशेषता है।

रस निर्भरता के लिए चोक्कनाथ ने नायिका के उत्स्वप्नायित का प्रकरण समाविष्ट किया है। नायिका कहती है—

महाराअ, भुअजुअलेन मा परिस्सजेहि।

भाषा

नायकों की भाषा नियमानुसार संस्कृत और प्राकृत होने पर भी वे अपने गम्भीर वक्तव्यों को कहीं कहीं संस्कृत में व्यक्त करते हैं। यथा, द्वितीय अङ्क में नायिका नायक से वियुक्त होने के पहले कहती है—

शशाङ्कः स्वच्छन्दं ग्लपयतु करव्याजदहनैः
रसक्रोध क्रूरो मलयपवनोऽपि व्यथयतु।
शरौघं कन्दर्पः सपदि विकिरन् मा प्रहरतात्
मया नूनं धैर्यं दृढतरमवष्टब्धमधुना॥ २.२०

कहीं-कहीं कवि ने अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। यथा, तृतीय अङ्क के वर्षा-वर्णन में झलझल, चटचट आदि। इस वर्णन की ध्वनिलता इस प्रकार प्रतानित है कि उससे वर्षा का रूप प्रत्यक्ष होता है मानो अक्षर ही बूँद हो।

नाटक में एक विरल प्रयोग है कि चतुर्थ अङ्क में आद्यन्त प्राकृत भाषा में संवाद है।[1] अपवाद रूप से नायिका के द्वारा लिखा हुआ संस्कृत भाषा में पत्र है, जिसमें दो पद्य हैं। इनके अतिरिक्त दो संस्कृत के पद्य नायिका द्वारा कमलाम्बिका की स्तुति हैं।

दोष

यौवन के प्रमाद में लेखक को यह लिखना अच्छा लगा कि—

तत्कालम्पृहणीयपार्श्वनखविन्यासैर्यथावत्स्थिता— ।
मालिंगन् जनकात्मजा रघुपतिः पुष्णातु वः कौतुकम्॥

यह नान्दी है, जिसका लेखक सम्भवतः नाटक का कवि नहीं होता था, अपितु सूत्रधार स्वयं उसका प्रणयन करता था। रघुपति का यह शृङ्गारी रूप प्रस्तुत करना शैलूषोचित ही कहा जा सकता है। नान्दी के दूसरे पद्य शिव की स्तुति में भी सूत्रधार पार्वती के शृङ्गारी रूप की ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह मध्यार्जुनेश के रूप को शृङ्गारित देखता है—

बृहत्कुचनायिकावल्लभस्य भगवतो मध्यार्जुनेशस्य। इत्यादि।

रंगमंच पर किसी को सोते हुए दिखाना वर्जित है। इस नाटक के तृतीय अङ्क में कहा गया है—

ततः प्रविशत्युत्स्वप्नायमाना सुलोचनोत्सङ्गे शयाना कान्तिमती।

---

1 भास के स्वप्नवासवदत्त का द्वितीय और तृतीय अङ्क सर्वथा प्राकृत भाषा में हैं।

इसी प्रकार रगपीठ पर आलिगन का शास्त्रीय निषेध कवियो को अमान्य था। इसके तीसरे अङ्क मे नायक नायिका का आलिगन करता है। नायिका इसके पश्चात् कहती है—

जलमध्यगनमिवात्मान मन्ये।

प्रस्तावना-लेखक

इस नाटक की प्रस्तावना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाटको की प्रस्तावना का अधिकाश सूत्रधार की लेखिनी से प्रसूत होता था। यथा, सूत्रधार का कहना है—
कुम्भकोणनगरवासिने चित्रवेषाय पत्रिका प्राहिणव—सखे, कान्तिमतीशाहराजीय नाम नाटकमभिनेतु त्वमायाहि शीघ्र परिजनै महेति।

पारिपार्श्विक चित्रवेष की प्रशसा करता है—

अत्यल्पेन च रूपकेण जनयत्याश्चर्यमन्यादृश
नानावेषपरिष्कृतैरभिनयै सोऽय नटाग्रेसर।
सप्रत्यद्भुतरसविधान मधुरेणानेन सामाजिकान्
एनान् रजयनीतिभाव भणितव्य तावदस्त्यत्र किम्॥

सूत्रधार फिर आगे कहता है—

उत्तरमपि तेन प्रेषितम्। स्यादेतदेव सन्ध्यासमये सहपरिजनै समागच्छामि, किन्तु विदूषककविराक्षसस्य दैवज्ञनागज्योतिषिकस्य च वेषपरिग्रहाय सज्जीभवतु भवानिति।

उपर्युक्त बातचीत से यह असन्दिग्ध है कि इस नाटक की प्रस्तावना चोक्कनाथ-प्रणीत नही है, अपितु सूत्रधार के द्वारा लिखी गई है।

कातिमतीशाहराजीय उच्चकोटि का गीति-प्रधान (Lyrical) नाटक है। अनेक दृष्टियो से इसमे राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी की विशेषतायें चमत्कारपूर्ण सीमा तक प्रतिफलित हुई हैं।

सेवन्तिकापरिणय

सेवन्तिकापरिणय[1] की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि १७ वी शताब्दी का प्रेक्षक नवरूपको मे विशेष रुचि रखता था। नाना देशो से सुब्रह्मण्य तीर्थदर्शन के लिए आये हुए लोगो ने सूत्रधार से कहा—

तेन त्व नवरूपकेण बहुधा विस्मापयास्मादृशान्

साधारण नवीन कवियो की उपलब्धियो के विषय मे लोगो को सन्देह था। लोकोक्ति बन चुकी थी नीलकण्ठ की यह आलोचना—

---

१ इसका प्रकाशन ओ० रि० इ० सस्कृत सीरीज विश्वविद्यालय, मैसूर से १९५८ ई० मे हो चुका है।

कर्णौ निष्करुणं दहन्ति कवयोऽकस्मादिदानीतना

यह कहने वाले पारिपार्श्विक को सूत्रधार ने समझाया कि एक अद्भुतनाटक मुझे मिला है। राजा बसव को यह नाटक उसके लेखक चोक्कनाथ ने दिया। राजा ने उसे पुरस्कार दिया और सूत्रधार से कहा—

पञ्चषदिवसैरेतद्रूपकमभ्यस्य मानुबन्धिजन ।
अभिनीयभरतदेशिक नन्दय नानाकवीन्द्रसन्दोहम् ॥ ८

- इस प्रस्तावना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि (१) इसका लेखक सूत्रधार था। (२) इसकी प्रति लेखक ने बसव भूपाल को उपायन रूप मे समर्पित की थी। (३) नाटक-मण्डली पाँच दिनो मे ही अभिनय के लिए सज्जा कर लेती थी। नीचे लिखे पद्य से प्रतीत होता है कि पुरुष स्त्रियो की भूमिका मे रंगपीठ पर आते थे—

गृह्णाति पुत्रो मम नेतृभूमिका सेवन्तिकायाश्च पितृव्यनन्दन ।
तस्या सखीना गृहिणी सहोदरा कौपीतकस्य त्वमह महामते ॥१०

कथावस्तु

युद्ध मे गोदवर्मा ने केरलराज मित्रवर्मा को बन्दी बना लिया। उनके परिवार के स्त्री और लडको को मूकाम्बिका नगर मे लाकर सुरक्षित किया गया। मूकाम्बिका नगर केलदि के राजा बसवभूपाल के अधीन था। वह स्वय मूकाम्बिका नगर गया और उन लोगो के लिए भवनादि की व्यवस्था उसने की। मूकाम्बिका नगर मे राज-प्रासाद के सामने एक नया भवन ही उनके लिए बनाया गया। राजा ने देखा कि एक कुमारी-सौंदर्यराशि सामने के भवन पर विराज रही है। उसने कहा—

प्रतिसौधाग्रमारुह्य प्रत्यङ्ग हरिणीदृश ।
भूयो भूय समुद्वीक्ष्य चक्षुष्मत्ता कृतार्थये ॥

नायक विदूषक से सेवन्तिका नामक इस केरल-राजकुमारी के प्रति अपनी आसक्ति का वर्णन कर ही रहा था कि उसे कन्या की माता की मूकाम्बिका से प्रार्थना सुनाई पडी—

मूकाम्बिके मम सुता तव चरणप्रान्तनिपतितामेताम् ।
अनुरूपवल्लभेन क्षिप्र घटयस्व सार्वभौमेन ॥ १.५२

बसव की पत्नी इस बीच महाराज से मिलने आई। उसने सुना की राजा विदूषक से नीचे लिखे पद्य के द्वारा अपनी नई प्रेयसी की वर्णना कर रहा है—

कुम्भोन्नतस्तनभरा नतमध्यभागा राकानिशाकरनिराकरणोद्यतास्या ।
दृष्टेव मे नयनयोर्मुदमातनोति सेवन्तिका कुसुमवेष्टितवेणिकेयम् ॥ १.५६

देवी का माथा ठनका कि यह कौन सेवन्तिका सपत्नी पदारोहण के लिए आ गई। विदूषक ने कहा कि सेवन्तिका पुष्प है, नायिका नही।

सेवन्तिका बसव को पतिरूप मे पाने के लिए वन म प्रकट हुई। कालिका देवी से

प्रार्थना करने के लिए पैदल ही प्रतिदिन जाने लगी। एक दिन पानी बरसने के कारण अपनी सखी सारङ्गिका और मन्दारिका के साथ उसे रात में काली के मन्दिर में ही रह जाना पड़ा। थोड़ी रात बीतने पर निषाद उसका अपहरण कर ले गये। देवालय के पुजारी ने जाकर यह सब प्रणयी राजा को बताया। राजा प्रजवी घोड़े पर वहाँ गया। राजा ने उसे बचा लिया। इस स्थिति में उन दोनों का प्रेम और बढ़ा। राजा ने अपना विचार व्यक्त किया—

मयीयमनुरक्ताहमस्या वश्यस्तथापि तु।
सम्यपाक इवात्रापि समय कोऽपि साधकः ॥२.१६

नायिका उसकी अनुमति लेकर चलती बनी। उसे वन्य प्रकृति में अन्य नायिकादि प्रणय-प्रवृत्त दिखाई पड़े। यथा,

छाया विधाय सपदि स्तबकैरनेकैराच्छिद्यनूतनरसालतरुप्रवालम्।
चञ्चूपुटे परभृतो विनिधाय निद्रा-भङ्ग प्रतीक्ष्य निकटे वसति प्रियायाः ॥२.२२

उसे सारा वन सेवन्तिकामय दिखाई देने लगा—

पश्यामि ता प्रतिमहीरुहमानतागीमत्युन्नतस्तनभरावनतावलग्नाम्।
मन्ये तदद्य मदनो विदधेऽनुतापात् सेवन्तिकामयमिम विपिनान्तदेशम् ॥२.२४

नायक का मन दूसरी ओर करने के लिए एक अद्भुत घटना घटी। सेनापति ने निषादाक्रमण में एक स्थपति को पकड़ा, जो अदृश्य होकर घोड़े पर भाग रहा था। पकड़े जाने पर उसने एक मूलिका नायक को दी, जिसको हाथ में रखने वाला व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। उसने बताया कि गोदवर्मा ने मित्रवर्मा से कन्या की याचना की थी। गोदवर्मा का उसने तिरस्कार किया। फिर तो गोदवर्मा ने युद्ध में उसे बन्दी बनाया और हम लोगों को नियुक्त किया कि राजकन्या को आपके आश्रय में पकड़ लायें।

विदूषक ने नायक को उपाय बताया कि सेनापति को भेजकर नायिका के पिता मित्रवर्मा को मुक्त करायें। वे उपकृत होकर और अपनी कन्या का आप के प्रति प्रेम देखकर उसे आपको पत्नी बनने के लिए दे देंगे। ज्योतिषी ने ग्रहगणना की कि केरल-राजकन्या आपकी होकर रहेगी।

नायिका ने नायक से मिलन का एक दूसरा अवसर पाया। उसने कालिका-मन्दिर में सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् काली का आशीर्वाद पाने की योजना बनाई। राजा भी उस दिन मृगया के बहाने जंगल में चला गया। विदूषक को सहेजा गया कि आशीर्वाद पाने के अवसर पर मृगया से लौटते हुए नायक को वहाँ लेकर पहुँचो। विदूषक के साथ यथासमय वहाँ पहुँचकर लतान्तरित होकर दासियों सहित नायिका की प्रवृत्ति देखने लगे। उसने सपने में कहा—

महाभाग, दृढ मा परिष्वजस्व।

नायिका की उत्सुकता देखकर नायक विदूषक के साथ उसके निकट पहुँचा। थोड़ी देर में नायक और नायिका को अकेला छोड़कर सभी चलते बने। नायक ने नायिका से कहा—

ममान्तिके सम्प्रति याचित त्वया पयोधरालिंगनमङ्गनामणे।
अवश्यदेय खलु तत्समागत भवेत्प्रतिज्ञा विफला ममान्यथा ॥३ ३१

नायिका ने कहा कि यह तो उत्स्वप्नायित था। उसन अकापतित नायिका की इच्छा यह कहते हुए पूरी की—

लज्जासरसि निमग्न वदनाम्बुजमेतदुन्नमय का ते
श्रमजलदूषितमलके मृगमदतिलक समीकरोम्यधुना ॥३ ३३

(इति चिबुकमुन्नमय्याधरचुम्बनमभिनयति)

कामक्रीडा के समारम्भ मे निमज्जित नायक को विदूषक की नई विपत्ति उकसा देती है। विदूषक पेड से गिर कर मूर्छित है—यह सुनकर सैकडो लोग वहा पहुँच गये। नायिका की स्थिति लज्जास्पद थी। नायक ने निपाद-स्थपति की दी हुई मूलिका से उसे शरीरत अदृश्य बना कर उसकी रक्षा कर ली। उसी समय मित्रवर्मा का पत्र मिला कि मुझे चित्रवर्मा नामक सामन्त ने छुडा दिया है। मैं पुन राजा बन गया हूँ। आप मेरा कुटुम्ब मेरे पास भेज दें।

नायिका की एक सखी ने उसका चित्र राजा के पास विदूषक के हाथो भेजने के लिए दिया और उससे राजा का चित्र नायिका के लिए प्राप्त कराने के लिए कहा।

नायिका अपनी सखी के साथ अपने भवन के माधवी-मण्डप मे पहुँच गई। वहाँ कथावती के द्वारा उसे नायक का चित्र मिला, जिसे देखकर प्रेमपरिताप से उसके आँसू झरने लगे। अन्त मे पिता की इच्छा के अनुसार नायिका केरल चली गई।

नायिका नायक से मिलने के लिए उत्कण्ठित थी, तभी उसे मन्दारिका नामक सखी से विदित हुआ कि मेरा विवाह मेरे पिता को बन्दीगृह से छुड़ाने वाले चित्रवर्मा से कल ही सम्पन्न कराने की योजना मेरे पिता कार्यान्वित करना चाहते हैं। नायिका ने निर्णय लिया—

निराशाह प्राणानहह विजहाम्यद्य नियतम् ॥ ४५

अपने पिता का विचार जानने के लिए नायिका ने मूलिका देकर मन्दारिका को भेजा, जहाँ उसने प्रभाव से अदृश्य रहकर वह सब कुछ सुनकर बताये। नायिका ने नायक को पत्र भेजा कि इन विषम परिस्थितियों मे मर ही जाऊँगी। नायिका को समाचार मिला कि चित्रवर्मा कल ही बलात् विवाह कर लेना चाहता है। नायिका आत्महत्या ही अगला काम निश्चय करके विलाप करने लगी। उसे सहारा था, उन शुभ शकुनों का, जिनसे सकेत मिलता था कि भविष्य उज्ज्वल है और अभीष्ट की प्राप्ति होने वाली है।

नायिका से प्रेक्षावती नामक ईक्षणिका ने पूछने पर बताया।

वसवेन्द्रमहीपालो भर्ता ते नात्र सशय ॥ ४ १४

आपने जो चित्र नायक के लिए भिजवाया, उसे लेकर विदूषक जा रहा था तो मार्ग मे प्रमत्त हाथी से डर कर चित्र को फेंक कर निकटवर्ती घर मे जा घुसा। चित्र को हाथी ने सू ड मे पकडा और राजप्रासाद पर फेंक दिया। वसव राजा की पत्नी ने उसे पा लिया। उन्होंन राजा की पूरी भर्त्सना की। इससे और तुम्हारे वियोग से वसवराज तुम्हारा नायक अधमरा पडा है। मूलिका-चूर्ण के प्रभाव से नायिका को प्रेक्षावती ने कालिकोद्यान के लतामन्दिर मे पडे हुए नायक का दर्शन समीपस्थ सा कराकर समाश्वस्त किया कि 'भविष्यनि ने मनोरथ'।

अन्तिम अङ्क मे नायिका को दूरस्थ प्रियतम से मिलने का सविधान है, जिसके द्वारा वह पिता के उपकारी चित्रवर्मा के चङ्गुल से बच निकली।

मित्रवर्मा वसवभूपाल के उपकारो से कृतज्ञ होकर अपने कोश से भूषण-वसन-चित्रवस्तु-भरित मजूषायें भेज रहा था। एक मजूषा मे नायिका ने अपनी सखी सारगिका के साथ अपने को बन्द करा लिया और वसवभूपाल के पास जा पहुँची। भेद खुला और मित्रवर्मा को ज्ञात हो गया कि नायिका अपने अभीष्ट प्रियतम के पास जा पहुँची है। उसने चित्रवर्मा को वस्तुस्थिति लिख भेजी कि अब तो पाँच-छ दिनो मे स्वय वसव के पास जाकर उसे अपनी कन्या दे दूँगा। चित्रवर्मा अपनी राजधानी लौट गया।

हाथी ने नायिका का जो चित्र फेंका और महारानी को मिला, उसे उन्होंने कोशगृह मे रखवाया पर विदूषक जी उसे धूर्ततापूर्वक उठा ले गये। राजा के पास महारानी पहुँची और थोडी दूर से ही राजा को बडबडाते सुना—

नीता मनोजवदना नियनेऽतिदूर

उसने अपने पति के सेवन्तिका के वियोग के कारण उत्पन्न घोर मदनातङ्क को समझ लिया। राजा को विदूषक ने सेवन्तिका नायिका का चित्र दिया तो राजा ने अपना मनोभाव व्यक्त किया—

मन्दस्मिताङ्कुरमनोहरगण्डभागा वक्षोजभारवहनासहनभ्रमध्या।
तत्तादृशेन कुटिलेन दृगन्चलेन चित्रस्थितापि सुदती हरते मनो मे ॥५ ६

विदूषक ने कहा कि रानी आती ही होगी। चित्र को कही छिपा आऊँ।

इसी अवसर पर केरल महाराज मित्रवर्मा की भेजी हुई मजूषायें आई। रानी भी क्या-क्या मजूषा मे है—यह लतान्तरित रहकर ही देखती रही। उनसे अन्य वस्तुओ के साथ निकली उसकी सपत्नी बनने वाली नायिका और उसकी सखी सारगिका। राजा प्रसन्न हुआ रानी विषण्ण हुई। तभी मित्रवर्मा का पत्र आया कि वस्तुस्थिति जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि सेवन्तिका ने आपको वरण किया है। उसने लिखा था—

निजकन्यकानुरागं जानन्नपि नैवमन्यथाकरवम् ।
मन्दारिकामुखेन ज्ञात्वा खलु ततोऽभिनन्दयमहम् ॥

महारानी आवेश वश लतान्तरित न रह सकी। वह आ झपटी उसे देखकर सभी सकपका गये। वह बन्दी सेवन्तिका को लेकर चलती बनी।

मित्रवर्मा यथासमय आ पहुँचा। आशातीत ही था कि हर्षपूर्वक महारानी स्वयं वैवाहिक भूषण-भूषित सेवन्तिका को लेकर अपनी सपत्नी बनाने के लिए आई। तब राजा ने कहा—

सेवन्तिकामिदानीं प्रेमातिशयेन लालयन्तीयम् ।
नलिनीं विकासयन्ती ज्योत्स्नेव विभाति मे देवी ।

स्वागतं देव्यं ।

वाल्मीकि की पद्धति पर चोक्क ने उनका विवाह नीचे के मन्त्र द्वारा करा दिया—

वसवेन्द्र महीपाल भवद्वंशाभिवृद्धये ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ॥

सेवन्तिका परिणय का कथा प्रपञ्च अनेक संविधानों की समानता के कारण शाहजीकान्तिमतीय नाटक के समान है, किन्तु अनेक नई उत्कर्षमयी प्रवृत्तियों के कारण यह नाटक कान्तिमती-शाहराजीय से उच्चतर प्रतीत होता है।

नाट्यशिल्प

रंगमञ्च पर कुछ काम होते ही रहना चाहिए। ऐसा काम हास्योत्पादन के लिए यदि हो तो घटनाक्रम से असम्बद्ध भी रखा जा सकता है—यह चोक्कनाथ की रीति है। प्रथम अङ्क में इसी उद्देश्य से विदूषक की टाँग में मोच होना दिखाकर उसे रंगमंच पर चलाया जा रहा है लाठी का सहारा लिए हुए—

सजानुभग्नचरणो गाटाघातोपघूर्णितकपोलः ।
अधिकोच्छूनपिचण्डो यष्टिं परिगृह्य विकटमायासि ॥ १.२८

अङ्कों के भीतर ही कोरे सूच्य वृत्त सफलता पूर्वक पिरोये गये हैं। द्वितीय अङ्क में सेनापति के द्वारा स्वयंवर का वृत्तान्त सुनाना इस प्रकार सूच्य है।

आलिंगन और अधर-चुम्बन अभिनेय नहीं है—इस परवर्ती नियम का पालन इस नाटक में नहीं मिलता। तीसरे अङ्क में नायिका को गोद में लेकर नायक उसका अधर-चुम्बन रंगपीठ पर करता है। उस समय नायिका साह्लाद गाती है—

तुहिनद्युतिपर्यङ्के जलधरजठरे सुधारसाह्लादे ।
वपूरद्रवलिप्ता शयिनेदानीमहमिति मन्ये ॥ ३.३६

नाटकों में विशिष्ट संविधानों का महत्त्व होता है। चोक्कनाथ ने अपनी दोनों

कृतियो मे मनोरथ-नाटक नाम देकर प्रणयानुसन्धानात्मक सविधान को रखा है।[1] इसमे मनोरथ नाटक के अतिरिक्त अनर्थ-नाटक की भी चर्चा है।[2]

इस नाटक मे सेवन्तिका का राजा के नाम पत्र एकोक्ति (Soliloquy) के रूप मे प्रस्तुत है। यथा,

अतिसुकृतशालिनीना समागमस्ते घटते प्रमदानाम्।
मम मन्द भागिन्या वल्लभ सोऽद्य दुर्लभो जात.॥
मदनशर निकरदहनज्वालाहतिजनितव्रणकिणस्थगितम्।
विकृत मुक्त्वा गात्रम् अन्य गृह्णामि कीर्तिमयम्॥४ ८

पचम अङ्क का आरम्भ वसव की एकोक्ति से होता है, जब वह निष्कुट मे अकेले रह कर गाता है।

छायातत्त्व

नायक का चित्र देखकर नायिका कहती है—

लोकान्तरगता मा वल्लभ श्रुत्वा दुर्लभसमीहाम्।
मा भवतु तव विषादो जगति शत सन्ति मादृशा प्रमदा ॥४.१०

नायिका उस चित्र के पैर पर गिर पडी।

इसमे चित्रगत नायक सशरीर नायक ही प्रतीयमान है। यही छायातत्त्व है। पाचवें अङ्क म नायिका का चित्र ऐसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है।

छायातत्त्व का अद्भुत निदर्शन है नायिका का दूरस्थ नायक को मूलिका-चूर्ण के प्रभाव से देखना और कहना—

'अनिभमि गताम् एकण्ठामपनेन् महाराज दृढ परिष्वजिष्ये'

(इति बाहू प्रसारयति)

तब तो सभी हँसने लगे। इसके द्वारा तिलस्मी कार्यकलाप सम्भावित है। नायिका ने इस प्रकरण को यथार्थ समझा था।[3]

नाट्यधर्मी

नाट्यधर्मी तत्त्वो का इस नाटक मे उत्कर्ष है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रेक्षावती का नीचे लिखा कार्य कलाप—

प्रदर्शयामि प्रतिभामहिम्ना चित्र चरित्र चिरकाललभ्यम्।
विलोक्य मोदस्व विलासिनि त्व विश्वासमस्या विदधासि येन॥ ४ १७

---

१ अस्माक मनोरथनाटकस्येदानीमेव निर्वहण जातम। चतुर्थ अक मे।

२ हन्त किमप्यनर्थनाटकमभिनेतुमुपक्रमते।
प्रस्तावना खल्वेषा अनर्थनाटकस्य। चतुर्थ अक मे।

३. नायिका ने इस दृश्य के विषय मे कहा है—
महाराजमुखचन्द्रसदर्शनपरवशाया मम यथार्थमेतदिति स्फुरितम्।

उसने तैल-मिश्रित चूर्ण से नायिका की हथेली मल दी। फिर तो चलिनी जैसी सछिद्र हथेली से उसने गणेश को देखा। थोडी देर मे उसे सुब्रह्मण्यपुर दिखाई दिया और अन्त मे दूरस्थ नायक समीपस्थ सा हो गया।

शैली

सरलतम पदावली से विभूषित चोक्क की शैली छन्दोवैचित्र्य के द्वारा नतनमयी कही जा सकती है। यथा,

कुप्यतु दृप्यतु वा सा कुवलयदलदीर्घनयनाया।
अस्यास्तनगिरिदुर्गे चेतोहस्ती स्थितो वश नैति ॥२ २७

और भी—

वेष्टितागुलिकराम्बुजमेषा विस्मिता निदधती चिबुकाग्रे।
निश्चलभ्रू वदन च दधाना भाति चित्रलिखितेव नताङ्गी ॥ ३ १८

कही-कही लोकोक्तियो का प्रभविष्णु प्रयोग है। यथा,

वृक्षमूलाश्रयेण वृष्टिपरिहार मन्यसे। पचम अङ्क मे।

रस

हास्यरस उत्पन्न करने की उदरभर मोडी विधि के अतिरिक्त विदूषक बातें बनाता है। यथा,

सेवन्तिका निपादा रजनीमध्ये गृहीत्वा गता इति।
श्रुत्वा तान् विनिर्जित्य समागतोऽहमिमा निवर्तयितुम् ॥२ ६

उसने हाथ मे टूटी-फूटी लाठी ले रखी थी, जिसकी ओर लक्ष्य करके सारङ्गिका ने कहा—

प्रत्यर्थि विजयसाधन प्रहरण गृहीत भवता।

भले ही महामति ज्योतिषी को रगपीठ पर लाकर भावी सूचनायें देकर कार्यदृष्टि समुत्पन्न की गई है, पर उसका वास्तविक उपयोग है हास्य उत्पन्न कराने मे। यथा विदूषक का उससे कहना कि तुम्हारी भविष्यवाणी ठीक हुई तो तुम्हारा कनकाभिषेक होगा, अन्यथा जीभ काट ली जायेगी। उसने स्पष्टीकरण दिया—

एते ज्यौतिषका किमपि कार्यमुद्दिश्य पृष्टा किंचित्कालम गुलीगणन कृत्वा तात्कालिकलग्ने सत्कारारिपुस्तिष्ठति। सप्तमस्थानस्थित शनि त प्रेक्षते। अतो विलम्बात् कार्यसिद्धिर्भविष्यति, प्रथम सन्दिग्धमिव भणन्ति। ...आयु प्रश्ने यदि चिर जीविष्यति ततो मा बहु मानिष्यति, अन्यथा मृत एष क वा किं प्रक्ष्यति, इति चिन्तयित्वा सर्वमपि जन शतायुस्त्वमिति भणन्ति। अपि च गर्भप्रश्ने तनयो जनेष्यतीति जनकसविधे प्रतिजानन्ति, जननीसविधे कन्यकेति। एतादृश सहस्र वर्तते। वृथाकण्ठशोषेण किम्।

अद्‌भुत रस का विनिवेश स्थपति की घटना द्वारा किया गया है। यथा,

खलीनाधीनसचारो दृश्यते तुरगो यथा।
विनैव पुरुष तद्वत् दृष्ट कोऽपि तुरगम ॥२ ३१

श्रृङ्गार रस अगी है, जिसकी निष्पत्ति के लिए आलम्बन-विभाव और आश्रय की विभावनाओ का समाकलन करने मे कवि को पूरी सफलता मिली है।

गीतात्मकता

कवि के अनुप्रास, विशेषत पादान्तानुप्रास नर्तनमयी गीति की रचना करते हैं। यथा,

अलिकुललसदलकान्ता कुवलयदलनीलमसृणनयनान्ता।
कंपा कुचभरतान्ता काञ्चनलतिकेव दृश्यते कान्ता॥

भावुकता से सम्भ्रान्ति उत्पन्न करना गीति-प्रचय के लिए होता है। यथा नायक की उक्ति है—

कूजत्कोकिलसकुले वनतले नावैमि तस्या वच ।
तन्मञ्जीररवोऽपि हसनिनदाक्रान्ते न च ज्ञायते॥
तद्वक्त्राब्जपरीमलो न सुलभो ज्ञात सरोजावृते
कान्ता चन्द्रमुखी तत कथमिवेदानी विचेयामहे ॥३ ३

वह कोकिला के कूजन को नायिका का आलाप समझता है। मल्लिकाक्ष-वधू के निनाद को नायिका की मन्जीरध्वनि समझता है। ऐसा गीतात्मक वातावरण है।

नायक को शिलातल पर नायिका का पादचिह्न दिखाई पडा तो शिलातल से भिक्षा मांगी—

सुकृतेन येन भवता मुदनीपदपद्मतलहतिरवाप्ता।
तन्मे देहि शिलातल सुकृतविनरणे न सुकृतमाप्नोपि॥ ३ ११

भावो की उत्थान-पतनिका मे चोक्क का नैपुण्य सातिशय है। यथा, मित्रवर्मा का अमात्य वसव भूपाल नायक से कहता है कि मैं आपको समाचार देने आया हूँ कि सेवन्तिका चित्रवर्मा को देने का निर्णय हमारे राजा ने लिया है। इसे सुनकर राजा वसव ने कहा—

इतो दूर याता सरसिजमुखीनि प्रथमत
कृशानीत् प्रत्याशा शरदि तटिनीवाम्बुजदृशी
इदानी घर्मादौ खरतरविवम्वद्‌द्युतितनि-
प्रपीतानस्तोया क्रनकमरमीव प्रतिहता ॥६ ५

रानी ने यह सब सुना तो कहा—

स्वस्थहृदयास्मीदानीम्।

तभी मित्रवर्मा की भेजी हुई मजूषायें खोली गई और उनसे निकली सेवन्तिका नायिका। तब तो राजा का भाव था—

(निपुण निरूप्य सहर्षरोमाञ्चम्)

तद्वक्त्रं शशिबिम्बडम्बरहरं ते चायते लोचने
वक्षोजौ तपनीयशैलममताधिक्षेपदक्षौ च तौ।
वेणी सैव मरन्दतृप्तमधुपश्रेणीमदोत्सारिणी
विद्युत्पुञ्जनिभं वपुश्च तदिदं पश्यामि नैवान्यथा ॥५ १५

और रानी का स्वास्थ्य बिगड गया। वह कहने लगी—

दिनमात्रेण क्षीणिष्यत्यार्यपुत्रम्।

वर्णन

कवि वर्णनो को नाटक का महत्त्वपूर्ण अङ्ग बनाये हुए है। प्रथम अङ्क के पूर्व विष्कम्भक मे सन्ध्या, प्रथम अङ्क मे तुरगवेग, प्रभात, नगराभ्यन्तर, स्वागतकारिणी नगरी, वाराङ्गनाओ की मुखशोभा, उनका नृत्याभिनय, चन्द्रास्त, सूर्योदय, मध्याह्न, द्वितीय अङ्क मे कालीपूजा, वीणावादन, तृतीय अङ्क मे नायिका-सौन्दर्य, नायिका-प्रसाधन, नायिका की दृष्टि मे नायक की रूपराशि, नायिका का मदनातङ्क, चतुर्थ अङ्क मे हस्तिसम्भ्रम, नायिका का नायक से वियोग, सुब्रह्मण्यपुर, विघ्नेश, तुगभद्रा और मूकाम्बिका का वर्णन रसानुकूल प्रस्तुत है।

चोक्कनाथ के इस नाटक से अनेक स्थलो पर सामाजिक सस्थान की महत्त्वपूर्ण चर्चा मिलती है। यथा, रानियो का जीवन सपत्नी-प्रवर्तन से कैसा होता था—यह महारानी के मुख से सपत्नी-विषयक विषाद सुनिये—

स्वतन्त्रचित्ताना राज्ञा मन को नियच्छति। बालिका चापूर्वैपेति दिनयुगल सादर प्रेक्षते एनाम्। तत. परमहमिवैपापि।

०

अध्याय ३०

अप्पादीक्षित का नाट्य साहित्य

तजौर-नरेश शाहजी (१६८८–१७११ ई०) के आश्रय मे विकसित कवियो मे अप्पादीक्षित अन्यतम हैं। इनको अप्पाशास्त्री और पेरिया अप्पाशास्त्री भी कहते हैं। इनके पिता उच्चकोटि के विद्वान् चिदम्बरेश्वर दीक्षित थे।[1] अप्पा तजौर के निकट किलयूर के अग्रहार के निवासी थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर गुरुओ ने उन्हे कवितार्किक सार्वभौम की उपाधि से मण्डित किया था। उनके गुरु थे कृष्णानन्द देशिक, पिल्लेशास्त्री और उदय मूर्ति। मदनभूषण की रचना कवि ने गौरीमायूर ग्राम मे रहते हुए की।

अप्पादीक्षित की अनेक रचनाओ मे से नीचे लिखी कृतियाँ मिलती हैं—

१ शृङ्गारमजरीशाहराजीय[2]
२ मदनभूषण-भाण
३ गौरीमायूरचम्पू
४ आचार नवनीत

इनमे से प्रथम दो रूपक है।

शृङ्गारमञ्जरीशाहराजीय

शृङ्गारमजरीशाहराजीय का प्रथम अभिनय तिरुवैयर (तिरुवाडी) मे भगवान् पचनदीश्वर के चैत्रमहोत्सव के अवसर पर हुआ था। नायिका शृङ्गारमजरी को नायक शाह जी ने स्वप्न मे देखा और उसका चित्र बनाया, जिसे देखकर ज्योतिषी ने बताया कि यह सिहल की राजकुमारी है। महारानी के द्वारा बुलाये जाने पर काख मे चित्र छिपाये हुए विदूषक और राजा अतपुर मे पहुँचे। वहाँ महारानी की चेटी ने विदूषक की काँख से बलात् वह चित्र निकाल कर महारानी के समक्ष रखा। महारानी विमनस्क हुई।

इधर सिहलराज पर सिन्धुद्वीपेश ने आक्रमण कर दिया। सिहलराज से सहायता का पत्र पाकर शाह जी की सेना वहाँ पहुँची। शृङ्गारमजरी शाहजी के गुणो को सुनकर आत्मविभोर थी। वह योगिनी की सहायता से आकाशमार्ग से तजौर

१ चिदम्बर ने कामदेव नामक विद्वान् को शास्त्रार्थ मे परास्त किया था। इस विजय से प्रसन्न होकर तजौर नरेश ने उन्हे स्वर्णशिबिका और एरकरण का अग्रहार देकर पुरस्कृत किया था।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास मे ग० ओरि० मै० लाइब्रेरी मे डी० १५७६६ सख्यक है। वही भाग ३ सख्या २५७५ वाली इसकी दूसरी प्रति है।

जाती-जाती है और नायक-नायिका का प्रणय प्ररूढ होता है, किन्तु महारानी को यह ज्ञात हो जाता है और वह उपस्थित होकर रग मे भग करती है।

राजा न महारानी से इस अभिनव प्रणय के लिए अनुमति देने की अभ्यर्थना की और उसे प्रसन्न कर लिया। नायिका के वियोग मे नायक चराचर से उसके विषय म पूछता है। नाटक मे छठें अक तक कथा यही समाप्त हो जाती है।

इस नाटक मे नायक द्वारा शृङ्गारमञ्जरी का विस्तृत वर्णन कराया गया है।[1] इतने से कवि सन्तुष्ट नही है। उसने नायिका के लिए लगभग ४० विशेषण पद प्रथम अक के एक ही वाक्य मे प्रयुक्त किये हैं। ऐसे प्रयोगो से काव्योत्कर्ष भले ही सिद्ध हो, नाटकीयता प्रहीण होती है।

अप्पा को शिखरिणी छन्द प्रिय है। इस नाटक मे उन्होंने ३४ पद्य शिखरिणी मे लिखे, जो सत्रहवी शती के किसी एक नाटक के लिए सर्वाधिक हैं। इसके बाद राजचूडामणि का आनन्दराघव आता है, जिसमे २१ पद्य शिखरिणी मे हैं। उनके अन्य प्रिय छन्द, क्रमश आर्या, गीति और अनुष्टुप् हैं। शार्दूलविक्रीडित छन्द मे उन्होंने शाहराजीय मे १८ ही पद्य लिखे, किन्तु मदनभूषणभाण मे ४४ पद्य लिखे हैं।

अप्पा पर कहीं-कहीं भवभूति की छाप है। यथा,

विलिप्ता कर्पूरैर्निबिडमनुलिप्तो मलयजे
प्रसिक्त प्रालेयै प्रचुरमभिषिक्तश्च कलशै।
परिक्लिन्न स्फायत्तुहिनकरकान्तोपलजलै-
रपि स्नात. स्फारैरमृतपरिवाहैरभिनवै ॥३ २५

मदनभूषणभाण

मदनभूषणभाण यथानाम मदनभूषण नामक विट की चरितगाथा का अनुरणन है। इसका प्रथम अभिनय कावेरी तटपर भगवान् गौरीमायूरनाथ के मन्दिर की नाट्यशाला मे वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। सारा नगर वासन्तिक सौरभ और अलङ्करण से खिल उठा था। शृङ्गार-सिद्ध कवि सभा करके वसन्त का अभिनन्दन करते थे। इसका अभिनेता रगनाथ सूत्रधार का साला था। उसका वर्णन कवि ने किया है—

मध्याबद्धदुकूलदश्यविरलत् सौवर्णसूत्रस्फुरत्
मुक्तादामविभूषण श्रवणयोर्निक्षिप्तनीलोत्पल।
आलिप्तो हरिचन्दनैर्भृगमदै पिष्टातकर्घूर्णयन्
नेत्रे मन्मथलावलम्बिवसन साक्षाद्रतीशोऽपर ॥

इस पर भवभूति के उत्तर रामचरित के 'आश्च्योतन तु हरिचन्दनपल्लवानाम्' ३ ११ की छाया है।

१ प्रथम अक मे ४२-६६ पद्य

वह साक्षात् शृङ्गार रस मूर्तिमान लगता था।

कथास्थली का परिचय कवि ने दिया है—

श्रीशाहक्षितिपालरक्षणकृतक्षेमं सदा शाम्भवं
तच्चोलावनिमण्डनं खलु महत् मायूरनामास्पदम्॥

उस नगर मे मदनमजरी नामक गणिका की पुत्री बकुलमजरी के प्रथम विट-सगम के लिए मदनभूषण को निमन्त्रण मिला कि कल चन्द्रोदय होने पर पधारें। अपूर्व सुन्दरी थी नायिका। नायक उस दिन प्रात काल उठा। उस समय उसे सारी प्रकृति मे नायक-नायिका का विकास मनोज्ञ प्रतीत हुआ। उसका कार्यक्रम बना नगर की शृङ्गारित प्रवृत्तियो को देखते हुए दिनभर घूमते-फिरते सध्या तक बकुल-मजरी के पास पहुँचना।

सर्वप्रथम नायक को कनकवल्ली की बहिन चम्पकमाला मिली। उसका भोग शुल्क अतिशय था। इस बात को लेकर उनमे सवाद हुआ। अत मे मदनभूषण उसे अमर सौन्दर्य का आशीर्वाद देकर आगे बढा। उसे आगे मालती मिली, जिसके साथ अपने बीते प्रणय का विट ने इस प्रकार वर्णन किया—

स्मरसि गुरुजनेभ्यो भीतया यत् त्वयाहं
प्रथमवयसि किंचिद्गन्तुरोरस्कयापि
चकितचकितमाशावीक्षमाणस्समन्तात्
झटिति निबिडमेवालिंगितश्चुम्बितश्च॥

उसे विट ने आशीर्वाद दिया—तुम्हारा सम्मान लोक मे बढता रहे। फिर तो एक बूढा विट विश्वनाथ भट्ट नवयुवती वाराङ्गना वसन्तमालिका का प्रणयी दिखाई पडा। मदनभूषण ने उससे पूछा कि अब तो यह कर्म बुढापे मे छोडो। भट्ट ने कहा—जब तक शरीर तब तक नायिका बीर रहना है। यही पुरुषार्थ है। वसन्तमालिका से इस वृद्धप्रणय के विषय म उसने पूछा—

भवतु मथिता पद्मिन्येषा मतगजसगमात्
वहतु च यशो लोके ख्यात गजेन्द्र गतेति च।
जरठमहिपाव्रान्ता सेयं भवेद्यदि कर्शिता
किमिति ननुदेत् कर्णाविनत् कथा महतामपि॥

वसन्तमालिका ने पूछने पर उत्तर दिया—

स्त्रीणां जन्मैव कष्टं जगति पुनरियं वारनारीप्रसूति
तत्राप्यत्यन्तदु ख वसति जरतिका यद्गृहे दीर्घकालम्।
खेदस्तत्रापि घोर स्मरनिगममहातन्त्रसारार्थवित्त्वे
यत् स्वेच्छाधीनभोगे भवति बहुविधा प्रायशो विघ्नपंक्ति॥

पश्चात् विट उपवन मे मध्याह्न बिताने पहुँचा। वहाँ उसे चन्द्रकला नामक नवोदित वाराङ्गना कन्दुक क्रीडा करती हुई रसिको का चित्त मथ रही थी। वही

विट को मदनपाल मिला, जिसने चन्द्रकला के कौमार्य-काल में ही अपना सर्वस्व उसे देकर अपनी बना चुका था। उसके बाप को यह धन सूर्यग्रहण के समय तुलादान में प्राप्त हुआ था। कितना और कैसे दना था—यह जानें—

प्रत्यग्रं वसनद्वयं प्रतिदिनं सूक्ष्मं दुकूलद्वयं
कालेयेन्दुविमिश्रितो मलयजः कस्तूरिकामोदितः।
ताम्बूलानि यथेप्सितान्यभिनवात्पस्य दानं शतं
निष्काणां पुरुषायुषेऽप्यवनिला नानोक्त चाश्रुतम्॥

विट का कहना है कि ठीक ही तो किया मदनपाल ने। करोडों का व्यय करके जो यज्ञ किये जाते हैं, उनसे स्वर्ग मिले या न मिले। मदनपाल ने तो चन्द्रकला सगम का स्वर्गसुख साक्षात् पा ही लिया। यह वास्तविक पुरुषार्थ है।

उपवन से उत्तर की ओर देखने पर विट का यज्ञवाट दिखाई पड़ा। यज्ञ करके यजमान रम्भा नामक अप्सरा को मरने के पश्चात् पाना चाहता है। क्या यज्ञ समारम्भ में पत्नी इसीलिए सहयोग करती थी कि सुरसुन्दरी प्राप्त कर लेने पर उसका पति उसे छोड दे। उपवन से उत्तर की ओर देखने पर विट को अस्पृष्ट नवोदित चद्रलेखा दिखी। पश्चात् वासंतिका के द्वार पर रत्नमालिका नामक वाराङ्गना की बुढ़िया जरठा माता दिखी, जिसका वर्णन है—

अस्थिप्रायशरीरा लालाजालप्रवाहि दुर्वार्ना
व्यत्यस्तदन्तपङ्क्ति कम्पितमूर्धा चकास्ति धृतयष्टि॥

उसका भूतकालीन इतिहास है—कभी वह अपूर्व सुन्दरी पाण्ड्य राज की गृहीतदासी थी, जो असख्य युवकों को लालायित कर चुकी थी। वही है—

अद्येयं जरती पुनर्युवजनप्राणापहन्त्रीपण-
ग्राहित्वेन हिनस्ति तान् मनसिजप्रत्यर्थिभूता सती॥

आत्मसुखानुभूति प्राप्त कराने में समर्थ पद्मिनी के दर्शनमात्र से विट परितृप्त हो गया। उसे भानु नामक धनकुबेर अपना चुका था। पश्चात् हस्तिनी नामक वाराङ्गना दिखी। उसे देखकर विट ने लक्षणों से जान लिया कि यह मदनसगरप्रवृत्ता है। विट को आगे मनोरजन प्रस्तुत करने वाले शैलूष मिले, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में नित्य भ्रमण करते थे। उनमें ज्योतिषी, विषहर, वैद्य, नटनतक आदि थे, जो सभी ठग-विद्या में निष्णात थे। उसने फिर देखा अहितुण्डिक को, जिसके पास वानर था और काले साँप थे। वह उनका खेल दिखाता था।

विट ने आगे देखा ब्रह्मचारियों को और रो पड़ा—

अनिकृष्ट एव धर्मफलोपभोग एतेषाम्। तथा हि—

अस्नानमास्यनस्त्रासु मलमूत्राश्रियास्वपि।
यशाभिरभिहन्यन्ते निर्दयं ब्रह्मचारिणः॥

फिर विट को यासन्निक नामक मित्र विट मिला। उसने अपनी कहानी बताई— अपनी चहेती के घर मे घुसकर अभी आलिंगन और अधरपान किया ही था कि उसका पति जग पडा। उसे एक पटी म अपने को छिपाना पडा, जिसे मेध लगा कर चोर ले भागे। तब तो मेरी मुक्ति हुई।

विट मनोरजन-घाट मे पहुँचा। वहाँ एक ओर कामियो और कामिनियो के सग जुआ हो रहा था। कावेरी-तट पर ऐन्द्रजालिको का खेल हो रहा था, जिसमे से एक था-

आदायाम्रस्य बीज वपनि भुवि ततस्तत्क्षणे रुढमेतत्
भूय पत्राङ्कुराढ्य कुसुमितमयते मर्वथा भ्राजमानम्
फलेन कृत्वा मायाविरूढान् सदसिनिवसश्चेन्द्रजालेन चित्र
तेभ्यो गृह्णाति वित्त सफलप्रतिच नश्चाक्षुषी--सूत्रधार ॥

अन्यत्र शिल्पी अपना खेल दिखा रहे थे। यथा,

कृत्वा दारुमय लिंग स्थापयन्ति भुवस्स्थले।
मुख व्यादाय तत्पिण्डान् समुद्गिरति चाश्मनाम् ॥

आगे युवा कुक्कुटो का युद्ध हो रहा था। विट ने फिर अपने को नाट्यशाला मे पाया, जहा मोहक वीणागायन हो रहा था। वहा भरताचार्य वेश्याओ को शिक्षा दे रहा था।

विट को आगे दिखाई पडा मेषो का युद्ध और मल्लो का युद्ध। मल्ल का परिचय है—

मुण्डस्वल्पशिखाढ्ढ्यास्सुबलिन कापायवासोसृत
चूर्णे पाटलमृत्तिकाविरचितैरालिप्तदेहान्तरा।
कान्तासगविवर्जिता गललसत्सौवर्णसूत्रोज्ज्वला
मल्ला केचन बाहुयुद्धकुशलास्सग्राममातन्वते ॥

मल्ल युद्ध को देखकर विट के मुँह से निकल पडा—

युद्धे स्वात्मबलेन मानमभहो सन्तोषयन्तीह न ।

विट ने कावेरी के तटीय उपवन मे शीतल वायु का आनन्द लिया। उसे दिखाई पडा कि चोल देश मे लोगो ने कलाविलास प्रकृति से ग्रहण किया है।

विट को पुन एक अनुतम किन्तु विरहिणी व,राङ्गना कष्ट मे पडी दिखाई द गई। उसके मानस मे प्रश्न उठे, यह सन्ताप क्यो ?

लोके सन्ति न कि विटा नयनयोरानन्दसन्दायिन
पचेषोरिषवोऽपि कि युवजनप्राणापहारालसा।
पण्ड्त्व त्रिधिनाप्यधायि रिमयो पुमा जगद्वर्तिना
येले कि विरहाग्निना विधुरिता शीर्णेव वल्ली वने ॥

निकट आने पर विट को ज्ञात हुआ कि वह कचुकिनी की कन्या मजीरणी

मध्यार्जुन की रहने वाली यहाँ आई है। कैसे ? उसे उसका प्रियतम वहाँ पुन मिला और विट आगे बढा। उसे धार्मिक दिखाई पडे, जो निम्न प्रकार के थे—

१ पौराणिक जो वाणी से वैराग्य का उपदेश देते थे और सुनने वालो का शरीर, धन और प्राण भी अर्पण करा लेने के लिए समुत्सुक थे। श्रद्धालु अङ्गार्पण करें। उनके अनुसार गोपियों का आदर्श ग्राह्य है। यथा, पति की सेवा बाधक है। गुरुचरण-सेवा ही सुख का वास्तविक मार्ग है। पौराणिको ने ने असंख्य रमणियो को कृतार्थ करके सघनी बना दिया है।

२ मान्यविद्वान्, जो अपनी निस्पृह जीवनचर्या से उच्चादर्श प्रस्तुत करते हैं। वे अध्ययन रत है और स्त्रियो से कोई सम्बन्ध नही रखते।

३ वैष्णव मन्दिर के भक्त।

४ रामानुजीय भक्त, जो विलासिनियो के द्वैत मत का अनुष्ठान करते थे।

पश्चात् शिखामणि नामक विट ने आपबीती चरितनायक विट को सुनाई कि दोपहर को *जलाशय तट पर अपूर्व सुदरी दिखी,* जिसके सकेत पर उसके पीछे-पीछे उसके घर पहुँचा। वहा कई लोग पहले से ही थे, जिन्हे देखकर मैं भागना चाहता था। वह सुदरी इस बीच घडा उतार कर मुझे घर मे देखते ही हर्ष प्रकट करती हुई कहने लगी कि ये तो मेरे मामा केरल से आ गये और मुझसे लिपट गई। फिर उसके साथ रहने का अवसर मिला।

उत्तर मायूर नामक शम्भु-स्थान की पौराणिक कथा बताई गई है। पश्चात् मदनपाल की पत्नी की चरित गाथा है। उसके सपुत्रा होने पर सौन्दर्य क्षीण हुआ तो मदनपाल नवोदित वाराङ्गनाओ के चक्कर मे पडा। विट ने कावनलता को उपदेश देते सुना कि स्त्रिया एक पति से ही सम्बन्ध रखे। उसने कावेरी पार की। वहा गौरीमायूर मन्दिर मे सायकालिक शख ध्वनि सुनाई पडी। मन्दिर का वह पूरा वर्णन करता है। वहा से नृत्तमण्डप मे आता है। वहा लीलावती के नृत्त की प्रशसा करता है।

मन्दिर मे पूजन के लिए सामग्री लेकर आती हुई चन्द्रकान्त की स्वैरिणी भार्या को वह देखता है। उसके साथ अपने कामयोग की कथा कहता है कि जब मैं इसके बुलाने पर इसके घर पहुँचा तो वह किसी जार से बात कर रही थी। उसने उसे किसी कोठरी मे बन्द किया और मेरा स्वागत करने लगी। तभी उसका पति आ गया। उसी कोठरी म उसने मुझे भी बन्द किया और अपने पति की सेवा म लग गई। आधी रात के समय द्वार तोड कर कोठरी मे मैं निकल पडा और बाहर आकर चोर का वेष बनाकर उसे बाधकर, चुप रहना—यह आदेश देकर बाहर कही छोड आया। फिर उस रात उसके साथ सानन्द रहा।

अन्त मे वह विट वेशवाटिका मे पहुँचा। वहा से वकुलमजरी के पास पहुँचा। वह उसका सौदर्य देखकर चकित रह गया। अन्त मे उसने कहा—

चक्षुष्मत्ता सफला जन्म न न सफलमेव सजातम्।
अभिमन्सिद्धया चेत तुष्यति पीत्वा सुधामिवात्यन्तम् ॥

नाट्यशिल्प

शृ गारित वर्णनो को परवर्ती भाणो मे विशेष स्थान मिला। कुमारी वाराङ्गनायें कन्दुक-क्रीडा करते समय जो हाव भाव प्रस्तुत करती थी, उसकी सरसता से पाठक को आप्यायित करने का लोभ लेखक सवरण नही कर पाते थे। इसमे कन्दुक प्रायश नायक के रूप मे चित्रित किया जाता था। यथा,

अहो कार्तार्थ्य कन्दुकस्य। तथा हि—आकुलयन्नलकालिम्, अक्ष्णोर्द्वन्द्व विघर्णयन्, नीवी श्लथयन् हृदय मदयन् कान्त इवाचरति कन्दुकोऽप्यस्या अचेतनोऽप्यय सचेतन इव विचेष्टते।

वर्णन-परम्परा मे विट को देवयजन दिखाई पडता है। इन सबमे विट को 'मनोभवमहाराजस्य महिमा' दिखाई पडती है।

अप्पा ने भाण की परिधि मे कुछ नये वर्ण्य विषयो को समाहित किया है। यथा, ब्रह्मचारियो का पीटा जाना। विट ने द्यूत की निन्दा की है—

नलो नष्ट श्रीक सपदि स पुनर्धर्मतनयो
वियुक्त स्त्रीपुत्रैरपि च सहजैर्बन्धुनिकरै।
कले रक्षास्थान कमलभवनेनैव विहित
ततो निन्द्य मद्भिर्विटजनविलासास्पदमिदम् ॥

प्रकृति मे कवि ने शृ गार-विलास का दर्शन कराया है। यथा,

प्राप्याप्यन्या यौवन नाप्नुवन्ति प्राय कान्ता नात्मनस्तुल्यरूपान्।
पुष्पिण्येषा पूर्वकै पुण्यपुञ्जै मल्लीवल्ली पल्लवैरेव पूर्णा ॥

उसके अनुसार सूर्य भी परदारासक्त है। वह पूर्व और पश्चिम दोनो दिशाओ से अनुराग करता है।

रस

भाण स्वभावत शृ गार-रसभूयिष्ठ होना है।[1] वसन्तोत्सव के योग्य शृ गार होता है। इसमे साथ ही हास्य-रस का गम्भीर मिश्रण है। कवि ने स्वय कहा है—

कालो वसन्त प्रथमो रसाना हास्येन यस्मिन प्रथतेऽभिनेय ॥

आरम्भिक युग से ही जो भाण मिलते हैं, उनमे प्रायश हास्य की धारा अविरल रही है। अप्पाने अपने भाण मे इस वास्तविकता का स्पष्टत प्रकाशन किया है।

१ दशरूपक के अनुसार भाण मे वीर और शृ गार रस की प्रधानता होती है। यथा, सूचयेद् वीरशृ गारौ शौर्यसौभाग्यसस्तव। जो भाण मिलते हैं, उनमे शृ गाराभास तो मिलता है, किन्तु उनमे वीर की धारा प्राय नही है। यदि है भी, तो युद्धादि के वर्णन मे विरलप्राय है।

समाज-सुधार

भाण के द्वारा कवि ने समाज को कुछ सीख भी दी है। अपनी पत्नी की अवहेलना करके वेश्याओं से प्रेम करने का सीधा सा परिणाम यह है कि पत्नी भी अन्य पुरुषों से परितृप्ति का उपाय कर लेती है। आँख खोले समाज। कवि ने बताया है—

केचन बुद्धिहीना प्रसूता इति भार्यामवमन्यते, सेवन्ते च कलत्रान्तरम्। तास्तु तेनैव व्याजेन गतभया गलितयौवना इति गुरुजनरक्षिता परित्यक्त-लज्जा मुग्धभावा प्रगल्भासगरसिकैः सहानुभवन्ति सम्भोग-सौख्यम्।

काञ्चनलतिका के मुख से कवि ने स्त्रियों को उपदेश दिया है—

सर्वासामेक एव नियत पतिरंगीकरणीयो न सर्व।



अध्याय ३१

अद्भुतपञ्जर

मुद्राराक्षस की पद्धति पर कथावस्तु का कुछ-कुछ विकास लेकर चलने वाले अद्भुत-पञ्जर नाटक के रचयिता नारायण दीक्षित शाहजी की राजसभा को समलङ्कृत करते थे।[1] सूत्रधार ने कवि का परिचय देते हुए तत्कालीन रीति के अनुसार सर्वप्रथम उनके गुरु तिप्पाध्वरी की यशोगाथा प्रस्तावना में इस प्रकार प्रस्तुत की है—

शिष्या दिक्षु विदिक्षु यस्य विजयस्तम्भा इवोच्छ्रायिण
पुत्रा यस्य महोन्नता विनयिन षड्दर्शनी–पण्डिता ।
यस्मिन्नेव कृतास्पद च निखिल–व्यावृत्तमाचार्यक
श्रीतिप्पाध्वरिदेशिक श्रुतिपथ कि ते स नारोहति ।।

नारायण के दूसरे गुरु थे रामभद्र दीक्षित, जिनकी कवि के द्वारा की हुई प्रशसा को सूत्रधार ने प्रस्तावना में निविष्ट किया है—

विलोलमलयानिलस्फुटितमल्लिकामञ्जरी–
निरर्गल– विनिर्गलन्मधुझरीगलग्राहिण ।
जयन्ति मधुरोज्ज्वला जगति यस्य वाचा श्रमा–
श्चकास्ति मम देशिक स किल रामभद्राध्वरी ॥

नटी के शब्दो में 'महत् खल्वेनदुत्कर्षस्थान यद् रामभद्रदीक्षिनाना प्रधानशिष्यत्व नाम।

अद्भुतपजर नाटक की कथा नारायण के पिता रगशायी ने सक्षेप मे १५० पद्यो मे लिखी है। इसका उपयोग प्रेक्षको के लिए नाट्यारम्भ के पहले उसकी कथा समझाना था। अद्भुत-पजर की रचना १६६५ से १७०४ ई० के बीच कभी हुई होगी, सम्भवत १६६५ ई० मे।

अद्भुतपञ्जर का एक अभिनय १७०५ ई० मे महामघोत्सव मे हुआ था।[2] सम्पादक

---

१ अद्भुत-पञ्जर का प्रकाशन केरल विश्वविद्यालय की सस्कृत सीरीज मे २१० सख्या मे १९६३ ई० मे हुआ है।

२ सूत्रधार ने कहा है—आदिष्टोऽस्मि कुम्भीश्वरस्य महामघोत्सवप्रसगेन सगतैर्महानुभावै महजिराजविद्वत्पुरोगमै सामाजिकै —
धीरो दात्तमहाराजव्यापारपरिमेदुरम् ।
वस्तु यत्रादिम रस रूपक तत् प्रयुज्यताम् ।।५
शाहजी के शासनकाल मे १६६३ ई० तथा १७०५ ई० मे दो बार महामघोत्सव पड़े। इनमें से पहले को १६६३ ई० में देखने के लिए काशिराज-कन्या लीलावती आई थी। वह सारिका बन कर शाहजी की देवी उमा के साथ सात-आठ मास रही और राजा से प्रणय बढ़ने पर उसको राजवधू बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

राघवन् पिल्लई का कहना है कि यह अभिनय १६६३ ई० में हुआ था। उनका मत डा० वी राघवन् के निर्णयानुसार है। ये मत समीचीन नहीं लगते।

कथावस्तु

तञ्जौर के राजा शाहजी की पत्नी सारसिका नामक अद्वितीय सुन्दरी को राजभवन में राजा से छिपा कर रखती थी। महामघ में वह देवी को मिली थी। मेधावी नामक मन्त्री को यह सन्देह था कि वह काशिराज कमलकेतु की कन्या लीलावती है, जिसे उसने अपने मन्त्री सुमेधा के साथ महामघ देखने के लिए भेजा था। उनके साथ मेधावी के द्वारा नियुक्त परिव्राजिका मैनावती भी थी। मेधावी ने १६८२ ई० में लीलावती-शाहजी परिणय को सम्पन्न करने के लिए वचन दिया था।

इधर काशिराज पर तुर्कों का आक्रमण हुआ। रक्षा करने के लिए शाहजी ने विजयसेन की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी थी, जिसकी उपलब्धि विषयक पत्र में लिखा था—

निग्रहश्च तुरुष्काणामिन्द्रप्रस्थस्य चानम।
प्रनिष्ठा विश्वनाथस्याप्यादिष्टा स्वामिशासनात्॥१.१६

विजयसेन ने पत्र में लिखा था कि लीलावती का पता नहीं लग रहा है। लीलावती शाहजी की महारानी की मौसेरी बहिन थीं।

राजा मणिशिखर-सौध में विदूषक के साथ थे। उस दिन देवी नवरात्र के समारम्भ पर भगवती चण्डिका की शारदी पूजा करने वाली थी। राजा को साथ रहना था। राजा को नागरिकों का मंगल-गीत सुनाई पड़ा। उनके बीच देवी चण्डिका-पूजा के लिए प्रस्थान कर रही थी। उस महिलावृन्द में राजा को दिखाई पड़ी—

अव्याजसुन्दरमनुक्षणदर्शनीयमव्याहतस्फुरणमद्भुतसंनिवेशम्।
आमिञ्चदान्तरमिदं करणं मुधाभिरानन्दनं किमपि वस्तु मयाविरस्मि॥

राजा को वह अपनी भाग्यरेखा ही लगी। उसने उसे अपनी दूसरी देवी ही मान ली—

मन्ये देवीयमन्येति॥

रानी ने सारसिका को अपनी पूजा के समय अन्यत्र स्नान करने के लिए शृङ्गार-सर में भेज दिया, पर वहाँ उस राजा का प्रतिबिम्ब शृङ्गारसर की रत्नभित्ति पर

शाहजी का लीलावती से विवाह १६६४-६५ ई० में हुआ। विवाह के उपलक्ष में नारायण ने इस नाटक की रचना की होगी और ऐसा लगता है कि १६६५ ई० में यह रचा गया होगा। फिर दूसरे महामघ के अवसर पर १७०५ ई० में इसका अभिनय हुआ होगा, जिसमें सूत्रधार द्वारा प्रणीत भूमिका नाटक के साथ जुटी है। १६६३ ई० के महामघ में इसका अभिनय असम्भव है, क्योंकि रंगनाथी के अद्भुत-पञ्जर नाटक की कथा के अनुसार १६६३ ई० के महामघ को देखने के लिए कुमारी नायिका लाई गई थी।

दिखाई पडा। उसके सौन्दर्य को देखकर वह चिरकाल तक उसे ही देखने की इच्छा कर रही थी, पर शीघ्र ही पूजा समाप्त होने पर राजा के दूर जाने पर प्रतिबिम्ब वहाँ नही रह गया।

अपनी नई प्रेयसी के ध्यान मे मग्न विनोद के लिए उद्यान मे आये हुए राजा की एकोक्तियो का स्वरूप है—

स्वप्न किन्नु भवेदय न तदा यज्जागरूकोऽभव
भ्रान्ति किं न न यद्विशेषविपर्यर्वोधैर्न वाधोदय।
सङ्कल्प किमसौ न नैव यदभत् तत्तादृशी भावना
कन्दर्पस्य नदीदृश मनमहे कौतस्कुत चेष्टितम् ॥२२

शृङ्गार-सर के तीर-कुञ्ज के भीतर वह प्रकृति मे दाम्पत्य-भाव का समीक्षरा कर रहा था। यथा,

शिव शिव शिखिनीमनीक्षमाणा क्वचन पुर धुचमश्नुते शिखण्डी।
कुहचन दयिता दृटोपगूटो विहरति गभसुखीव राजहस ॥२६

थोडी दूर पर अकेली नायिका भी एकोक्ति मे निमग्न थी, जिसे राजा सुनने लगा। यथा—

सारसिका—भगवति लज्जे, नमस्ते। यस्यास्तव प्रभावेण प्रियसखी-सन्निधाने स महाभागो न विस्रब्ध दृष्ट। तदिदानी दया कुरु। एकाकिनी किमपि मन्त्रयिष्ये।

राजा को यह तो ज्ञात था नही कि सारसिका मेरे ही लिए उत्कण्ठित है। उसकी एकोक्तियाँ सुन कर कहता है—

राजा—अन्या पुनरीदृशानुरागहेतु, स कीदृशो महाभाग स्यात्।
अताड्कार शङ्के स किल सकलाया अपि भुव
स सर्वथा यूनामुपरि शिरसि न्यस्यति पदम्।
त्रिलोकीसाम्राज्यश्रियमपि स एवार्हति यत
स्वय यस्मिन्नेव वलयदियमुत्कण्ठितवती ॥२१५

उसकी एकोक्तियो से राजा ने जान लिया कि वह मेरे लिए ही उत्कण्ठित है। अन्त मे वह उसके पास आ ही गया और बोला—

पर्युत्सुका भवति परजपननेत्रे यस्मिन् जने निभृतमेव निरुद्धभावा।
सोऽय प्रिये स्वयमिहावसर-प्रतीक्ष पर्युत्सुक परवशश्च पुरस्तवास्ते॥

ऐसे समय उधर विदूषक आ रहा था। कलावती नामक सारसिका की सखी ने उसे रोक कर दूसरी ओर चलता किया। कलावती की वाणी सुन कर प्रणयी युग्म छिपने की सोचने लगा। राजा निकुञ्ज-निलय मे छिप गया। कलावती ने सारसिका से कहा कि शीघ्र अलड्कृत होकर पूजा करने चलें। देवी प्रतीक्षा कर रही हैं। सारसिका ने यहाँ से जाने के पहले अभिज्ञान-शाकुन्तल की नायिका की भाँति कहा—

आमन्त्रये रक्ताशोक, त्वा यस्य तव छायया मोदेनापि एतावन्त काल सन्तर्पितास्मि।

नवरात्र के अन्तिम दिन चण्डिका की पूजा के प्रसग मे लोकपावनी ने मरुद्विषा के द्वारा रानी को सन्देश भेजा कि एक ही मण्डप मे दो को पूजा नही करनी चाहिए। रानी ने निर्णय लिया कि कुसुमाकरोद्यान मे मैं पूजा करूँगी और वसन्तोद्यान मे सारसिका।

सारसिका के प्रेम मे उत्कण्ठित राजा को लेकर विदूषक पहले ही वसन्तोद्यान मे पहुँच गया। उन्हे कलावती के साथ नायिका दिखी। वहाँ वे दोनो पुष्पावचय कर रही थी। राजा और विदूषक छिप कर उनकी बातें सुनने लगे। सारसिका ने बताया कि मुझे राजा से प्रेम है। उसकी दृष्टि मे कठिनाई थी कि राजा को रानी अतिशय प्रिय हैं और वे एक-पत्नीव्रत हैं। सारसिका को राजा के बिना असह्य बेचैनी है। यह देख कर विदूषक उसके पास पहुँचा और फिर राजा भी उससे मिला।

विजयादशमी के विजयप्रस्थान से लौटते हुए राजा को एक सारसी मिली, जिसे उन्होने महारानी को दिया। इस बीच उनकी नई प्रेयसी को दुष्टग्रहावेश का रोग हुआ, जिसे दूर करने के लिए उसे लोकपावनी नामक योगिनी के पास जाना था। प्राकार-द्वार के रक्षको के बिना जाने ही नायिका को नगर से बाहर निकलना था, जहाँ पहले से ही योजनानुसार नायक उससे मिलने वाला था।

नायिका अपनी सखी कलावती के साथ-साथ निकुंज मे नायक से न मिल सकने का रोना रो रही थी कि अब तो मर ही जाऊँगी। नायक थोडी दूर पर छिप कर उसकी बातें सुन रहा था। उसने प्रतिक्रिया व्यक्त की—

आलोलमानलुलितालकमश्रुपातै रासिक्तदुर्बलकपोलमसीमधारं।
आकम्पितस्तनमरुन्तुददैन्यवादमा कीदृश व्यवसितं सुदृशा कृते न ॥४ १७

नायक नायिका के पास आ गया और बोला—

वरतनु सुकुमाग मा कठोरैम्तनु ते
परिमृशतु कराग्रै पातकी पद्मवैरी।
विरहविधुरकोकीलोकशोकाभिताप—
स्फुटघटितकलङ्को नैपदोषाकर किम् ॥३ १८

अन्त मे दोनो का प्रणय-व्यापार जब शिखरित हुआ तो वहाँ चन्द्रकला के साथ महारानी आ गई। उसने राजा को सारसिका से यह कहते सुना—

लावण्याम्बुनिधि विमथ्य नारण्यमन्थाद्रिणा
कन्दर्पाम्बुजलोचनेन विहित त्वद्वक्त्रपात्रान्तरे।
प्रत्यग्र मधुराधरामृतरस यत्सत्यमास्वादय-
न्निन्द्राणीगृहमेधितामपि तृणायाह न मन्येऽधुना ॥

रानी ने यह सुना और उनके बीच आ कूदी। उसे अतिशय क्षोभ हुआ और जब वह चण्डी बनी तो राजा ने निर्णय लिया— अब तो देवी का प्रसाद पाना है।

लीलावती जब सुमन्त्र, सुमेघ आदि के साथ वाराणसी से चली थी तो यवनों ने वाराणसी को घेर लिया। मार्ग से सुमेघ आदि इस समाचार को पाकर लौट पड़े। मन्दाकिनी नामक तपस्विनी से लीलावती का मेलजोल बढ़ा और मैत्रायणी भी पुरुषोत्तम का दर्शन करने के लिए लीलावती का भार मन्दाकिनी पर डाल कर चलती बनी। मार्ग मे मैत्रायणी को कमलकेतु मिले, जिन्होंने बताया कि लीलावती गुम हो गई है। वे काचीपुर तक आ चुके थे और वही से मेधावी के लिए पत्र भेजा। कमलकेतु भी तजौर आ पहुँचे।

रानी को लीलावती के जन्म के समय से ही उसके जातक से ज्ञात था कि उसका पति सार्वभौम होगा और पति जेठी रानी के पुत्र के युवराज होने पर उसका अनुवर्तन करेगा। वह उसको अपनी सपत्नी बनाने को उद्यत हो चुकी थी। तभी रानी को एक पत्र से ज्ञात हुआ कि मेधावी लीलावती का राजा से विवाह करने की योजना बहुत पहले से ही बना चुके हैं। राजा के सारसिका से प्रणय-व्यापार की प्रगति विदूषक ने रानी को स्पष्ट कर दिया और मेधावी ने बताया कि कैसे लीलावती को मैं आपकी सपत्नी बनाने की योजना कार्यान्वित कर रहा हूँ। इसके लिए रानी समुद्यत थी।

रानी को यह ज्ञात नही था कि सारसिका ही लीलावती है। उसने सारसिका को लकडी के पञ्जर मे बन्दी बना दिया। वह तो इस विपत्ति मे मरणासन्न हो थी। यह राजा से मिले, तभी जीवित रह सकेगी—यह विदूषक की योजना थी।

राजसभा मे राजा, देवी, कमलावती, कमलकेतु, मेधावी आदि का समागम हुआ। कमलकेतु ने काशी पर इस्लामी आक्रमण का वर्णन किया कि मैंने अकेले ही अश्वसादी बन कर उनके सेनापति से युद्ध किया। तभी आपका भेजा विजयसेन सुमन्त्र के साथ सहायतार्थ आ पहुँचा और तब तो—

जीवग्राह गृहीतो जग्ठयवनभूनायकस्तावकेन। ६ ११

पश्चात् मेधावी की योजनानुसार कमलकेतु ने राजा को अन्य उपायनो के साथ कमलावती से एक सारस रानी को दिलवाया। प्रसन्न होकर विदूषक से रानी ने कहा कि अपनी सारसी लाओ। इसके लिए विदूषक ने चन्द्रकला के नाम रानी का अनुमति-पत्र लिया, जिसे मेधावी ने लिखा और देवी ने मुद्रा लगाई।[1] फिर तो चन्द्रकला पत्र के साथ सारसिका को लेकर आई। उसे कमलकेतु और कमलावती ने पहचाना कि यह तो लीलावती है। राजा का लीलावती से विवाह सबकी प्रसन्नता के लिऐ सम्पन्न हुआ। उस समय समाचार मिला कि दिल्ली पर सफल आक्रमण हुआ है और विश्वनाथ की पुन प्रतिष्ठा हो चुकी है। तब तो राजा का साम्राज्याभिषेक हुआ। अत मे राजा ने आनन्दवल्ली की वन्दना की।

१. पत्र मे लिखा था—या आर्यपुत्रगृहीता सारसिका तव वशे मया निहिता, तामद्य पजराद् हस्ते गृहीत्वा झटिति आनय।

शैली

लोकोक्तियो के प्रयोग से शैली मे सावादिकता का विलास निर्भर है। यथा,

१ प्रपामण्डपिकामप्यासाद्य परिश्राम्यसि।

२ मूषिकाया मुखे अपूपिका रक्षणाय निक्षिप्ता।

३ हस्तस्थितवस्तुनो यामिकगृहीतस्य कुम्भीलकस्य दशामनुभवामि।

४ मुषितहस्त एव चोरकस्त्वया गृहीत।

५ तृणाग्रलग्नसलिलबिन्दुसदृशप्राणा खलु क्षत्रियजानि।

६. कथ मन्थनव्यापारमन्तरेण महोदधौ सुधालहरी।

७ कथ दीपप्रभया सन् तमसमपनिनीषता दिनश्रीरेव समासादिता।

८ मुषितस्वीकरणायैव चोर प्रति सान्त्व-प्रयोग।

९ न खलु चन्द्रिकया प्रकाशयितव्ये तारकाया प्रभा अनुरुध्यते।

कवि की शैली मे प्रभविष्णुता है, जब वह कहता है—अभित्तिचित्रायित खल्विदानीमेषोऽभिलाष।

अनुप्रास की मोहिनीशक्ति कवि को सुविदित है। वह ध्वनि-साम्य की छटा अनेक स्थलों पर स्फुरित करने मे सफल है। यथा,

दयया दर्शय दयिता परया न वृथा क्षण क्षमे वस्तुम्।
सुकृत दुष्कृतमपि वा समयो मयि ते समार्जिन् नियते ॥३ ७

कुटिलकोमलकुन्तलशालिना कुरवकस्तवकस्तनशोभिना।
कुसुमभाजनभासुरपाणिना कुतुकिन मम ते वपुषाधुना ॥३ २१

प्रतिकर्तुमना पुरत प्रपतन् परिहृत्य मया ममिनि प्रहृतिम्।
प्रतनाधिपति प्रथितो मथिता प्रपलायत तद्बलमप्यखिलम् ॥६ १२

नारायण की शैली सुबोध है। एक उदाहरण लें—

कमलकेतु—धन्य स्वमधुना मन्ये।
मेधावी—कृतकृत्योऽस्मिसाम्प्रतम्।
सुमेधा—चरितार्थश्रमो मेऽद्य।
मन्दाकिनो मरुद्वृधे—निवृत्त न प्रयोजनम् ॥७ ३६

शृङ्गार के साथ वीर रस का सफल सहयोग इस नाटक मे मिलता है। रस-योजना को कवि ने इस प्रकार बताया है—

उत्क्षिप्तो रस कोऽपि वीर कमलकेतुना।
करुणादमुनश्शृ गारेऽनया स्वीकृत ॥६ २१

नाट्यशिल्प

कवि ने अपने नाट्यशिल्प का परिचय दिया है—

न बीज कार्यस्याधिगतमपि यत्नो न विदितो
न मरम्भो ज्ञातो न पुनरवमर्शोऽप्यवधृत।
कृता चेदम्पर्यव्यवसितिरपि त्वेनदखिल
फले नैवोन्नेय कृतमिव पुरा जन्मसु नृणाम् ॥६ १६

कहीं-कहीं कवि ने पूर्ववर्ती नाटकों से संविधानों को ग्रहण किया है। यथा उत्तर-रामचरित से—

तावत् प्रतिज्ञावसरेऽधिकाशि मया पुरा या शरणीकृतासीत्।
गङ्गैव मास्माननुगृह्णातीत्यमङ्गीकृताङ्गीमवधारयंतम् ॥७ १६

नारायण की नाट्यकला में संवरण की अभूतपूर्व महिमा है। प्रायश चरितनायक परस्पर अज्ञात रहकर और अपने व्यक्तित्व और मन्तव्यों को अप्रकाशित रखकर कुछ रहस्यमय विधि से काम करते हैं। मन्दाकिनी ने कथा-प्रपञ्च की इस प्रवृत्ति को इंगित करके कहा है—

फलाधिगमात् प्रकाशितमिदानीमखिलं संवरणम्।

अन्त में संवरण जब अनावृत्त होता है तो प्रेक्षक को अद्भुत चमत्कार की अनुभूति से सर्वथा आनन्द होता है।

नाटक को फलागम तक समाप्त न करके आगे बढ़ा कर विशेष रूप से कुछ मांगलिक संविधानों को अन्त में रखने की प्रवृत्ति रही है। इस नाटक में जैसे-तैसे विवाह तक तो कथा प्रपञ्च ठीक था। इसके पश्चात्—

डिल्ला पल्लीवदाकान्ता राज्यं प्राज्यं वशे कृतम्।
अपि विश्वेश्वरः काश्यां विधिवत् सन्निधापितः ॥७ ३८

मन में कुछ विशेष मन्तव्य रखकर कोई व्यक्ति प्रश्न करे और उत्तर देने वाला मिथ्यावाद से उसके प्रश्न के उत्तर से सत्य को प्रकट न होने दे—ऐसी स्थिति रंगपीठ पर अभिनय द्वारा मनोरञ्जक बनाई गई है। सारसिका मदनातङ्कित है—यह जाननेवाली कलावती का सारसिका से प्रश्नोत्तर होता है—

कलावती—सारसिके कस्मात् कृशासि।
सारसिका—व्रतनियमात्।
कलावती—कुतस्तेऽङ्गेषु पाण्डुरता।
सारसिका—सखि प्रत्यग्रदुकूलनिचोलनात् तव तथा प्रतिभाति।
कलावती—कस्मादिदानीं दीर्घं निश्वसिषि।
सारसिका—पुष्पावचयपरिश्रमात्।

अन्त में कलावती को कहना पड़ा—

सत्यं कृशासि व्रतखेदनियन्त्रणाभिर्गौरी च नूतनदुकूलनिचोलनेन।
निःश्वासिनी च कुसुमावचयैरिदानीं वाचासु व्याहरसि किं पुनरन्यदन्यत् ॥३ १५

इसी अङ्क में कलावती भी झूठ बोलकर चतुरिका को झाँसा देती है कि फूल चुनने में देर होने से सारसिका की पूजा समाप्त न हुई।

तृतीय अङ्क में नायिका का प्रणयोपक्रम चतुरिका स्वयं देख न ले—इसके लिए उसकी आँखें मूँद लेने का रंगमंचीय संविधान रोचक है।

रङ्गपीठ पर नायक नायिका का आलिंगन करता है—यह परवर्ती नाट्यशास्त्रियों के मत के विरुद्ध है, किन्तु अभिनयोचित है। यथा तृतीय अङ्क में—

राजा—(नायिकाङ्ग किंचिन्निजाङ्गेन पार्श्वे सश्लेषयन् स्पर्शसुखमभिनीय सफल्कोद्‌भेद स्वगतम्)

किमाश्च्योतं सिक्तो मलयजरसानामविरलं
किमासान्द्रं रिन्दोरमृतविसरैर्वा क्वचित ।
किमामज्जन्मध्ये हिममरमि मग्नोऽहमथवा
घन सर्वाद्‌गीण प्रविसरति यत् कोऽपि जडिमा ॥३ २७

चतुर्थ अङ्क मे भी नायक नायिका का आलिंगन करता है ।

एकोक्ति

अद्‌भुतपञ्जर के द्वितीय अङ्क मे एकोक्ति का अनोखा प्रयोग हुआ है, जिसमे कुछ देर नायक नायिका को थोडी दूर से देखता हुआ भी उसके निकट न जाकर उसकी एकोक्तियो को सुनकर प्रतिक्रियात्मक एकोक्ति प्रस्तुत करता है ।

तृतीय अक मे अन्य प्रकार की एकोक्ति है, जिसमे रङ्गपीठ पर राजा के साथ विदूषक तो है, किन्तु राजा उसे अनदेखा करके एकोक्ति-निमग्न है । विदूषक स्वय कहता है—कथमुपस्थितमपि मामेष न प्रेक्षते । विदूषक कुछ कहता भी है तो

राजा—(अश्रुतिमभिनीय)

मन्दाक्षसहृतविकस्वरदृष्टिपात मन्दस्मितस्नपितकर्बुरिताधरोष्ठम् ।
मामेव सप्रणयमीषदपाङ्गयन्त्या वक्त्रारविन्दमरविन्दहृश स्मरामि ॥३ २

चतुर्थ अक मे राजा की एकोक्ति आरम्भ मे ही है । रगपीठ पर वह अकेले मानवती पत्नी के आक्रोश का वर्णन करता है । वह असमञ्जस मे पडी सारसिका के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है । वह देवी को प्रसन्न करने की सोचता है ।

कपट-नाटक

सत्रहवी शती के नाटको मे नायिका को ग्रहाविष्ट बनाकर उसको नायक से मिलाने की कापटिक योजना प्रवर्तित थी । इसमे सारसिका के ग्रहाविष्ट होने की कथा कपट-नाटक है । नायक से मिलने के लिए उसने यह नाटक रचा था । ग्रह का प्रभाव दूर करने के लिए नायिका को लोकपावनी के पास पहुँचाया गया, जहाँ नायक योजनानुसार उससे समागम के लिए उपस्थित हुआ । राजा ने काम के प्रभाव के विषय मे कहा है—

धीर गभीरमवधीर्य निरङ्कुश मा प्रावीवृतन् महति बालिशचापलेऽस्मिन् ।
मुग्धा पुन परवतीमतिकातरातामध्यापयत् कपटनाटकसविधानम् ॥

सारसिका नायिका ने कहा है—

यदाप्यदृष्टपूर्वा भगवती प्रथमदर्शने एव ग्रहावेश इति कपटाचरणेन कथ प्रतारयामि ।

कलावती ने कहा—

हा धिक् हा धिक्, अनर्हितया मया सविहितस्य कपटनाटकस्य प्रत्ययेव निर्वहणसम्पन्नम् ।

छायातत्त्व

सारसिका के द्वारा द्वितीयाङ्क मे राजा का प्रतिबिम्ब शृ गार-सरोमणिमित्ति पर देखना और नायिका का यह कहना---

अहो मणिभित्तिप्रतिविम्बितस्य महाभागस्य प्रतिकृते सुन्दरत्वम ।

इत्यादि छायातत्त्व है ।

भावात्मक उत्थान-पतन

भावो के उत्थानपतन की अपनी नाटकीय योजना को कवि ने इस प्रकार उदाहृत किया है --

अम्भो विधे, अमृतेन सम हालाहलमपि सृजन नैतदद्भुतम् ।

यह योजना पूरे नाटक मे दर्शनीय है ।

ऐतिहासिक घटनायें

अद्भुतपञ्जर के अनुसार १६६३ ई० के महामघ के पश्चात् आने वाले विजयादशमी के पहले यवनो का उच्छेद हुआ था ।

यवनो ने १६६१-६२ ई० मे काशी को घेर लिया था ।

तञ्जोर मे शाहजी से निगृहीत होकर दिल्लीश की सेना ने १६६३ ई० मे काशी पर आक्रमण किया । विजयसेन की अध्यक्षता मे आई हुई शाहजी की सेना की सहायता से काशीराज ने यवन सेना के छक्के छुडा दिये । इसके पश्चात् विजयसेन सेना सहित दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए चला गया ।

इस नाटक के अनुसार काशिराज ने १६६३ ई० मे विश्वेश्वर की प्रतिष्ठा की । अत मे शाहजी का साम्राज्याभिषेक हुआ ।

इनमे से कोई भी घटना इतिहास से मेल नही खाती, यद्यपि यह नाटक सर्वथा समसामयिक है । इतिहास के अनुसार शाहजी तो मुगल राज्यपाल को कई लाखो की प्रतिवर्ष भेंट देकर अपना अस्तित्व बनाये रखता था ।

राजनीति

भारतीय नरेशो को इस्लामी राजाओ की विध्वसक प्रवृत्तियो से राष्ट्र की रक्षा करने के लिए एकीभूय प्रयास करना चाहिए--यह कवि का मन्तव्य है, जो इस नाटक मे अनेक स्थलो पर व्यक्त होता है । उनकी एकता की चर्चा इस प्रकार पञ्चम अङ्क मे है---

राजा-- प्रायस्तातचरणो सौहार्दमपत्यसम्बन्धेन परिपालयेयमिति कमलकेतोराशय ।

राष्ट्रीयएकता

गगा महामघ मे कुम्भकोण नगर के जलाशय मे और शिवगगा मे भी आ जाती हैं । उस गगा का कावेरी से सख्य है । यह सब राष्ट्रिय एकता के मूल शाश्वत सत्य हैं । शाहजी के द्वारा वाराणसी के राजा की रक्षा और विश्वनाथ की प्रतिष्ठा करवाने का श्रेय भी इसी दिशा मे इ गित करता है ।

अध्याय ३२

अमृतोदय

अमृतोदय के प्रणेता गोकुलनाथ सुप्रसिद्ध महाकवि विद्यानिधि पीताम्बर के पुत्र थे। उनका आविर्भाव सत्रहवीं शती में हुआ।[1] उनके द्वारा प्रणीत मासमीमांसा में लिखा है—सम्प्रति हि शकाब्दा एकत्रिंशदधिकषोडशशती १६३१। इससे इसकी रचना १७०६ ई० में प्रमाणित होती है। विण्टरनिज आदि विद्वानों के द्वारा सम्मत अमृतोदय का रचनाकाल १६६३ ई० समीचीन प्रतीत होता है।

गोकुलनाथ बिहार में मिथिला के मैथिली ब्राह्मण फणदहा (फन्नहवार) के निवासी थे। ऐसा लगता है कि गृहस्थाश्रम का आरम्भिक समय उन्होंने गढवाल जनपद के श्रीनगर के राजा फतहशाह (१६८४–१७१६ ई०) के समाश्रय में बिताया। उन्होंने अपनी रचना एकावली में लिखा है—

> वृत्तसागररत्नाना सारमुद्धृत्य निर्मिता।
> एकावली फतहशाह तव कण्ठे लुठत्यसौ॥

उन्होंने मासमीमांसा की रचना मिथिला के राजा राघव सिंह के प्रीत्यर्थ की थी। राघव सिंह ने १७०३ से १७०६ ई० तक राज्य किया। गोकुलनाथ ने कुण्ड-कादम्बरी नामक कर्मकाण्ड का ग्रन्थ अपनी कन्या कादम्बरी के कुण्ड में डूब जाने पर की थी। उसको सम्बोधित करके उन्होंने इस ग्रन्थ में कहा है—

> कोऽयं लोकः क इव विषयः किं पुरं को निवासः।
> यस्मिन्नस्मद्विमुखसहृदया त्वं निलीय स्थितासि॥

कवि की मृत्यु काशी में ९० वर्ष की अवस्था में हुई। उन्होंने दो रूपकों की रचना की, जिनमें से अमृतोदय प्रतीक नाटक है और मुदितमदालसा नाटिका है, जिसमें विश्वावसु की कन्या मदालसा का कुवलयाश्व से विवाह वर्णित है।[2]

गोकुलनाथ के प्रकाशित ग्रन्थ अमृतोदय, पदवाक्य रत्नाकर, काव्यप्रकाश-विवरण, सूक्तिमुक्तावली तथा मासमीमांसा हैं। इनके अप्रकाशित ग्रन्थों की संख्या लगभग ३० है, जिनमें से प्रायः दर्शन के और कुछ धर्म, ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड

---

१ कीथ ने गोकुलनाथ को सोलहवीं शती में माना है। The Sanskrit Drama P 343 कृष्णमाचार्य के अनुसार गोकुलनाथ ने एकावली की रचना श्रीनगर के १६वीं शती के फतेहशाह के प्रीत्यर्थ की। A History of Sanskrit Literature P 655। विण्टरनिज के अनुसार गोकुलनाथ ने सम्भवतः १६६३ ई० में अमृतोदय की रचना की। डा० डे भी इसकी रचना का समय १६६३ मानते हैं।

२ अमृतोदय काव्यमाला ५९ में प्रकाशित है। मुदितमदालसा हस्तलिखित Descriptive Cat of Skt Mss in Oriental Ms Lib Madras XXI 8444 में है।

के हैं। उन्होंने रसमहार्णव नामक रससिद्धान्त-विषयक ग्रन्थ लिखा है और एकावली तथा वृत्ततरंगिणी मे छन्द शास्त्र का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यप्रकाश की एक टीका भी लिखी।

उपर्युक्त सब ग्रन्थो के विषय और उच्चस्तरीय निवन्धन से प्रतीत होता है कि गोकुलनाथ साहित्य विद्या के साथ-साथ दर्शन, विशेषत न्याय, के प्रकाण्ड पण्डित थे और धर्मशास्त्र मे उनकी प्रगाढ अभिरुचि थी।

गोकुलनाथ ने अपने जीवन का उद्देश्य बताया है—

जननि तव पुमर्था एव पादा प्रथन्ते
प्रथमचरणवद्धो निर्भर रौमि वत्स।
चरमचरणामल - प्रस्नुता स्तन्यधारा--
ममरगवि कदा ते मुक्तबन्ध पिबेयम् ॥१ ११

गोकुल वेदान्ती थे, स्वभाव से अतिशय विनम्र और हसन।

अमृतोदय का अभिनय रात्रि के समय हुआ था। अभिनय के लिए रात्रि सर्वोत्तम समय है--

नोद्वेजयन्ति जनतामभिनयकर्मणि न खेदयन्ति नटान्।
आयामिन सुषीमा व्यायामसहा निशायामा ॥१४

अमृतोदय का आरम्भ होता है सुगतागम नामक सेनापति के द्वारा श्रुति की कन्या प्रमिति के अपहरण से। श्रुति को सुगतागम के सैनिक अनृत आदि खदेड रहे हैं। आन्विक्षिकी तक के साथ श्रुति की रक्षा के लिए अग्रसर है। युद्ध मे प्रमिति की रक्षा की गई और उसे पुरुष के पास पहुचा दिया गया। इधर परामर्श का पक्षता से विवाह हो गया। उदयन पक्षता और परामर्श की रक्षा करने के लिए चार्वाक से युद्ध कर रहा है। चार्वाक मारा गया। अतिक्रूर सोमसिद्धान्त वर्धमान के द्वारा मारा गया।

पुरुष पुरुषोत्तम से वियोग होने के कारण सन्तप्त है। उसके विलाप को सुनकर पतञ्जलि उसे सिद्धि से सयुक्त करते हैं, जिससे वह परमात्मा को देख ले।

पुरुष को सयम के द्वारा समाधि सिद्ध हो गई, जिससे वह परम पुरुष पुरुषोत्तम का साक्षात्कार करने लगा। पुरुषोत्तम ने बताया है कि पात्रवत् आचरण करते हुए पुरुष मेरे लिए हास उत्पन्न करने वाले हैं। पुरुष ने पुरुषोत्तम से विवाद करते हुए अपने आपको उसमे विलीन होने की अभ्यर्थना की। विवाद के द्वारा पुरुष और पुरुषोत्तम के सापेक्ष सम्बन्ध और स्वरूप का विशदीकरण है। जीवन्मुक्त की स्थिति म कर्मगण और महामोह का विनय हो गया। अपवर्ग क्षेत्रज्ञ नगर का अधिपति बना।

आन्वीक्षिकी, बुद्धमत और तथागत के सवाद मे बुद्धमत नैरात्म्य तथा क्षणिकता का सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। जैनमत ने निर्जरा और सवर के द्वारा बन्धन-विमुक्ति को उपादेय बताया। पाशुपत सिद्धान्त के अनुसार शिवसायुज्य अपवर्ग है।

वैष्णवमत मे भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इसमे वैकुण्ठसारूप्य अपवर्ग है। आन्वीक्षिकी के आगे न डट सकने के कारण इन सबका प्रध्वस हुआ।

ब्रह्मविद्या, सांख्ययोग, मीमासा आदि ने अपवर्ग का अभिनन्दन करते हुए कहा—

बुद्धि शरीर विषयेन्द्रियाणि सुख च दु खैकनिकेतनानि।
विवेकिने केवलमात्मविद्या विद्योतितात्मा स्वदतेऽपवर्ग ॥५ १२

इसी अपवर्ग को लक्ष्य करके गोकुल ने यह नाट्य प्रबन्ध प्रणीत किया।

इस प्रबन्ध मे नाटकीय अभिनय के द्वारा दार्शनिक सुसस्कृति का निष्ठापन करने में गोकुल नि सन्देह विदग्धतम हैं। इसका आध्यात्मिक ऊहापोह सुबोध है।

रस-विमर्श

दर्शन-विषयक होते हुए भी अमृतोदय शृङ्गारामृत को सोत्साह उछाल रहा है। इसमे एक नायक परामर्श सोल्लास आत्मनिवेदन कर रहा है—

टङ्कोत्कीर्णा त्वचि, विलिखिता नेत्रपत्रे, निषिक्ता
स्वान्ते, स्यूता वचसि, निचिता पार्श्वत पृष्ठतश्च।
धारारूढा झरिति पुरत काचसद्मेव काचिन्
नाना भूत्वा वरतनुरिह प्रायश प्राविशन् माम् ॥२ ७

अमृतोदय मे अङ्गीरस शान्त है। इसमे वेदान्ती, वैष्णव, पाशुपत, जैन और बौद्ध सभी अपवर्ग के द्वारा मोक्ष या मुक्ति पाना चाहते हैं, यद्यपि इन सबमे मार्गभेद है, जो उनके विवाद का विषय है। इसका भरत वाक्य है—

ससारात् प्राप्य निर्वेद सर्वे निर्वाणलिप्सया।
श्रवणान् मननाद् ध्यानान् पश्यन्तु पुरुषोत्तमम् ॥५ २६

गोकुल हास्य के प्रेमी हैं। उनकी प्रमिति ब्रह्मा से कहती है—

विपमनिगमकाननान्तशाखा ततिषु निलीय परान्निरीक्षमाण
परिणति विदलज्जगत्कपित्थग्रसनकपे सुचिरान्निरूपितोऽसि ॥२ २४

अर्थात् ब्रह्मा वानर है।

द्रुहिणभवनपद्मबीजमाला मणिपरिवर्तनतत्परात्मनस्ते।
प्रमितुमखिलमेव जन्तुजात विजनयता विदिता विडालवृत्ति ॥१ २५

अर्थात् ब्रह्मा की विडाल-वृत्ति विदित है।

कचुकी का हास्यास्पद आत्म-परिचय है—

कुब्जेन त्रिपद पद्मु शिशुजनत्रासाय सृष्टो मया। २ १

परिहास-धारा मे पशुपति की भी छीछालेदर गोकुल ने की है। यथा,

जाति विहाय वनके रमते पशूना भर्त्ता बिभर्ति शिरसा कृपण कपर्दम्।
राजेति वक्रशशिन तिलकीकरोति तस्मादसौ पदिमवास्पदमीश्वरोऽपि ॥ ३ ४

दर्शन के इस नाटक मे वीर रस की सम्भावनायें प्रचुर हैं। यथा, आन्वीक्षिकी और बौद्धो की लडाई है—

अन्योन्यव्यतिघट्टनानलकणाकूरा करेभ्यो द्विपा
सहत्यंकपदे पतन्ति परितो या स्मायुधश्रेणय।
बाणैस्तास्त्रसरेणुपुञ्जपदवीमानीय सोऽय जनो
रक्षामण्डलमात्मनो व्यरचयद् भूमण्डले पासुभि ॥ १.२९

प्रकृति-परिशीलन

अमृतोदय मे भावात्मक नायकादि प्रकृति की बहुलता है। उनके साथ ही मानव प्रकृति है पतञ्जलि, जाबालि, महाव्रतकापालिक आदि। प्रतीक नायकादि नाममात्र के लिए भावात्मक हैं। उनका तो मानवो से कुछ कम गहरा प्रणय-व्यापार नही है। *पक्षता और परामर्श का प्रेम चल रहा है तो परामर्श उसके विषय मे स्वप्न देखता है—*

स्तम्भेन कर्मणि तनो स्थगितेऽपि काम-काष्ठा परामधिरुरोहतरा वरोरु।
गीर्गद्गदेन यदपि ग्लपिता तथापि वाचामगोचरमवोचत लोचनान्त ॥

प्रकृति को इस नाटक मे प्रकृति-रूप मे स्थापित करके पुरुषो को पात्र बनाया गया है। यथा,

प्रकृतिचरितनाट्यसूत्रधार भ्रमयसि मामियतीषु भूमिकासु।

नाटक के पुरुष और पुरुषोत्तम नामक वचानायक परिहसन हैं—हँसते-हँसाते हैं। उनकी बात-चीत का स्तर हँसोडो जैसा है अतिशय आत्मीय। यथा,

भवपथपथिकोऽस्मि वाटपाटच्चर मिलितोऽस्मि विलुण्ठ सम्पदो मे।
अहमपि भवदन्तर प्रविश्य ध्रुवमचिरेण हरामि ते विभूती ॥४.६८

फिर पुरुष कहता है पुरुषोत्तम से—

व्यवधिरुपरराम मूर्विविक्ता प्रभवसि गूढगतिर्न मा प्रहर्तुम्।
तदिह भवतु तावदेकशेषा-परविलयावधिरावयोर्विमर्द ॥४ ७८

शैली

विण्टरनिज ने इस नाटक की प्रशसा करते हुए लिखा है—A very learned work is also the drama Amrtodaya in five acts of Gokulanatha of Mithila [1]

गोकुल की विचारणा अपने अर्थगाम्भीर्य के कारण प्रभावशालिनी बनकर निखरी है। निर्वेद ने लक्ष्मी, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि की निस्सारता व्यक्त की है—

जहिहि तरला लक्ष्मीमेता त्यजामरपादपान्
हृदय हनया किं ते चिन्तामणेरपि चिन्तया।

1. Hist of Indian Lit Vol III Part I page 282

जठरदहनज्वालाशान्त्यै यदि स्युरमी तदा
स्वपितुरुदधे रौर्वं निर्वापयेयु रुपर्बुध ॥३ १

कवि का रूपक सफल और सार्थक है। उसने वद्धपुरुष का पुरुषोत्तम के प्रति निवेदन व्यक्त किया है —

बहुविध भवभूमिकाभिराभिर्नर्तयसि नाथ यथा तथा नटामि।
कृपण गमयिता भवानविद्याजवनिश्यान्तरित क्रियन्त्यहानि॥

अन्यत्र पुरुषोत्तम की कुमारी कन्या श्रुति है—

श्रुतिजनक रटत्यसौ कुमारी तव दुहिता वहिरेत्य नेति नेति।
व्यवहितनिकटस्थितोऽसि यस्मात्त्वयि मिलितेऽपि मभानिधे क्व भोग॥

शाब्दिक क्रीडा के द्वारा हास्य की उत्पत्ति करने मे गोकुल निपुण हैं। यथापुरुष और पुरुषोत्तम का गलचौरन है—

अचिरपरिचितो हरे समल हरसि विशेषगुण परस्य।
पथयसि खलतामिमामपूर्वा कथयसि यद्विगुणत्वमात्मनोऽपि।।४ १७

अपि च कलत्रदुश्चरितमर्पणस्येर्ष्याकषायमुषितमनस्तव किमनेन प्रबोधेन। चतुर्थ अङ्क से।

गोकुल अपनी मस्ती मे वातो को सीधे कहते ही नहीं। उन्होने अपनी इस शैली का परिचय अपने ही शब्दो मे इस प्रकार दिया है —

अपगतपदपाटवोऽपि गर्भाद् उपनिषदामधुनोद्गत प्रवन्ध।
जनयतु तव कौतुक कलेन प्रतिपदविस्खलितेन जल्पितेन।।४ २६



अध्याय ३३

राघवाभ्युदय

राघवाभ्युदय के प्रणेता भगवन्तराय गङ्गाध्वरी तजौर के राजा एकोजी के अमात्य थे। एकोजी का शासनकाल १६७६ से १६८३ ई० तक था। इस नाटक का सर्वप्रथम अभिनय त्र्यम्बकराय मखी के द्वारा सम्पादित यज्ञ के अवसर पर १६९६ ई० मे हुआ।[1] भगवन्त के द्वारा प्रणीत दो अन्य रचनायें मुकुन्दविलास काव्य और उत्तरचम्पू मिलती हैं।

राघवाभ्युदय मे रामकथा का आरम्भ विश्वामित्र के साथ राम के जाने के समय से होता है और इसका अन्त रावण-विजय के पश्चात् राम-राज्याभिषेक से होता है।

राघवाभ्युदय मे रामकथा का अनेकत्र नयारूप मिलता है। इसके अनुसार राम परब्रह्म परमात्मा के अवतार हैं। उन्हे विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए ले जाते हैं और वहाँ से वे दशरथ के धनुर्यज्ञ मे पहुचते हैं, जहाँ उन्हे सीता देखने को मिलती हैं और वे प्रणय-सूत्र मे बँध जाते हैं। राम ने प्रासाद पर बैठी सीता की छाया मिथिलोद्यान के जलाशय मे देखी और उन पर लट्टू हो गये। इधर सीता ने उन्हें देखकर नेत्र के कज्जल से राम का चित्र बनाकर इस कलाकृति को ही वास्तविक मानकर आनन्द पाया।

परशुराम क्रुद्ध होकर आये और राम का कटुवचन मे तिरस्कार किया। राम ने उनका दमन किया। उद्यान मे राम और सीता सम्मुख तो हुए, पर उनमे बात तक न हुई।

रावण सीता को अपनाना चाहता था। उसने सीता को पाने के लिए मायात्मक व्यापार किये और सर्वप्रथम अपने शुक को दूत बनाकर सीता के पास भेजा। इस शुक ने सीता के शुक का रूप धारण करके रावण के प्रणय का निवेदन किया, पर शीघ्र ही भेद खुला और वह तिरस्कृत हुआ। रावण ने इसके पश्चात् रावण को स्वर्णमृग बनाकर भेजा। उसके पीछे सीता ने राम को दौडाया, पर विश्वामित्र के बुलाने पर वे उनकी यज्ञशाला की ओर गये और वहाँ शिव धनुप लेकर उसीसे मारीचमृग को मार डाला। तृतीय अङ्क मे राम का षडाननादि से युद्ध भी होना है। रावण ने इस अङ्क मे सीता का मिथिला से ही अपहरण किया।

चतुर्थ अङ्क मे राम सीता को ढूँढने निकलते हैं। वे सीता के पैरो के चिन्ह देखकर रोते हैं। वे उन्हें ढूँढते हुए अगस्त्य के आश्रम मे जा पहुचते हैं। पचम अङ्क मे राम का सुग्रीव से सख्य हुआ। सुग्रीव जब वालि से लड रहा था, उस समय राम ा सुग्रीव की ओर से आकर वालि के आमने-सामने होकर उसे मार डाला।

१ राघवाभ्युदय की हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल लाइब्रेरी तजौर मे है।

राम के लिए हनुमान ने लका जाकर पूँछ की अग्नि से लका जलाई फिर राम-रावण युद्ध हुआ, जिसे सीता ने प्रत्यक्ष देखा, क्योकि शची से सीता को वह दिव्याञ्जन प्राप्त हो चुका था, जिससे अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष हो जाता है। षष्ठ अङ्क मे राम ने युद्ध-भूमि मे रावण को मार डाला। सप्तम अङ्क मे राम और सीता का विवाह होता है और रामराज्याभिषेक के अवसर पर विष्णु ने प्रसाद रूप मे आकाश से जो माला गिराई, वह राम के गले मे आ पडी।

राघवाभ्युदय मे छायातत्त्व है राम का प्रासाद पर बैठी सीता का निकटवर्ती सरोवर मे पडा हुआ प्रतिविम्ब देखकर सीता के प्रति आसक्त हो जाना। सीता का अगुलि पर नेत्र के काजल से राम का चित्र बनाकर प्रसन्न होना भी छायातत्त्व है।[1] तृतीय अङ्क मे पुन छायातत्त्व है रावण के दूत शुक का सीता के क्रीडाशुक रूप मे प्रकट होकर सीता को ठगना। क्रीडाशुक का रगमच पर आना मात्र भी छाया-तत्त्व है।

नायकादि प्रकृति को अलौकिक शक्तियो से युक्त किया गया है। पचम अङ्क मे सीता को शची एक ऐसा अजन देती हैं, जिससे वह राम-रावण युद्ध को अदृश्य होने पर भी देख रही है।

'प्राचीन कथा को भगवन्तराय ने मनमाना बदला है। सीता और राम का विवाह उन्होने रावण के मारे जाने के पश्चात् बताया है। रावण का सीता को मिथिला से अपहरण करना ऐसा ही प्रकरण इस नाटक मे है।

राघवाभ्युदय मे स्त्री प्रकृति कम है। जहाँ पुरुष प्रकृति की सख्या २३ हैं, वहाँ स्त्रियाँ केवल ५ हैं।

भगवन्त का शैल्पिक अभिनिवेश नायक और नायिका के चित्रो के सन्निवेश से स्पष्ट है। प्रथम अङ्क मे सीता के चित्र मे हाथ और पैर की रेखायें तक दिखाई गई हैं। सीता ने तो नेत्राञ्जन ही से राम का चित्र अपनी अगुलियो पर बना दिया था।

राघवाभ्युदय के पाँचवें अङ्क मे सीता के प्रीत्यर्थ एक गर्भाङ्क नाटक प्रयुक्त हुआ है। इसकी प्रकृति दो गन्धर्वों की है। इसमे राम के द्वारा सीता के अन्वेषण से लेकर हनुमान् के लङ्का-प्रस्थान तक की कथा है।

युग के अनुरूप कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जिसमे उसने ५२ पद्यो की रचना की है। दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका ३३ पद्यो मे है। उसने २७ पद्यो में गीति छन्द रखा है। उसने मृग के दौड़ने का वर्णन द्रुतविलम्बित छन्द में यथायोग्य ही किया है।[2]

भगवन्त की कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

निसर्गभीरव पु सामाभिमुख्य कुलागना।
न सहन्ते दृश इव प्रसाद रवितेजसाम् ॥२ १३

---

१ राघवाभ्युदय के द्वितीय अङ्क से।

२ राघवाभ्युदय ३·२५

भृत्याना भवति हि जीविकैव कष्टा ।१·१३
न वीरसमयोचित द्विषि पराङ्मुखे मर्दनम् ।।५ ५६

भगवन्त की शैली सरल होने के कारण नाट्योचित है। यथा,

कासार इव विनाब्ज चान्द्रमसविम्बमिव विनाकाश ।
नाय भाति गवाक्ष मम्प्रनिवदन विना तस्या ।।२ १६

इस पद्य मे विनोक्ति अलकार की शोभा व्याप्त है। विरोधाभास है—

रामे कुर्वनि चन्द्रशेखरधनुर्दण्डे गुणारोपणम् ।
दोषारोपणमेव जातमखिल क्षोणीभुजा विक्रमे ।।

अध्याय ३४

कमलिनी-कलहंस

कमलिनी-कलहस नाटक[1] के प्रणेता नीलकण्ठ के विषय मे सूत्रधार ने इस नाटक की प्रस्तावना मे सूचना दी है। यथा,

अस्ति केरलेपु सगमग्रामनाम गृहम् ।
अभूवन् गाधिकुलजा कुशला सर्वकर्मसु ।
द्विजा हरिपदाम्भोजस्मरणाहतकिल्विषा ।
आसीन्महत्तरस्तेषाँ नीलकण्ठ इति स्मृत
तृतीयस्तस्य तनयो नीलकण्ठ कविस्त्विह् ।।

अर्थात् केरल मे सगमग्राम मे गाधिकुल मे नीलकण्ठ के पुत्र नीलकण्ठ थे। सगम ग्राम आधुनिक कुडल्लूर है। वही प्रसिद्ध नम्बूतिरि कुल मे सम्भवत १७ वी शती मे नाटककार नीलकण्ठ का प्रादुर्भाव हुआ।[2]

कमलिनी-कलहस का प्रथम अभिनय अनन्तासनपुर मे विष्णु की यात्रा के अवसर पर हुआ था।

कथावस्तु

कलिनी का विवाह् कलहस से हो, ऐसा दुर्गा देवी का आशीर्वाद है। एक दिन विज्ञानवती नामक आचार्या की योजना से पुष्पावचय करती हुई कमलिनी अपनी सखी कुमुदिनी के साथ दुर्गा के मन्दिर के पास पहुची, जहाँ थोडी दूर पर नायक कलहस पहले से ही था। उसने नायिका को देखा तो परवश हो गया। उसके मुँह से निकल पडा—

का न्विय कमनीयाङ्गी काम जनयती मम।
उद्याने विद्युदुल्लासहृद्यद्युतिमती भवेत् ॥१ २०

नायक और नायिका परस्पर मिलकर एक दूसरे के हो गये। फिर नायक और नायिका अकेले रह गये तो नायक ने उसका आलिगन करना आरम्भ किया और नायिका बचने लगी। इसी बीच भगवती विज्ञानवती कुमुदिनी के साथ आ पहुची। लतागृह मे वे दोनो साथ मिले। विज्ञानवती ने उन्हे आशीर्वाद दिया कि तुम दोनो शिव-पार्वती आदि की भाँति योग्य दम्पती बनो।

रात मे कमलिनी कलहस के लिए विकल रही। उधर कलहस विज्ञानवती के बुलाने पर उसके पास आ पहुचा। तभी 'बचाओ' का आर्तनाद सुनाई पडा। हाथी ने कमलिनी पर आक्रमण किया था। बचाया कलहस ने। वह चेतनाहीन कमलिनी

१ इस नाटक का प्रकाशन केरल विश्वविद्यालय से १६६ सख्या मे हुआ है।
२ The Contribution of Keral to Sanskrit Literature P 219 के अनुसार वे १८ वी शती मे भी नीलकण्ठ हो सकते हैं।

को लेकर विज्ञानवती के पास पहुचा। कलहस को कुमुदिनी के अनुसार कमलिनी का पति बनने का अधिकार प्राप्त हुआ तो वह कमलिनी के पैर पर गिर पडा।

दोनो का विवाह हो गया। फिर तो कलहस के अनुसार नायक की मधुर अभ्यर्थना से वशीकृत नायिका ने कहा—

प्राप्ते सुन्दरि कामुको न सहते कालक्षय सगमे ।५ ११

यत् ते छन्दो भवति सर्व विदधातु। अह तावल्लज्जया अनीशास्मि।

अतिम अक मे नायिका पितृगृह से विदा लेती है। इस अवसर पर विज्ञानवती का नायिका को उपदेश अभिज्ञान-शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क के समान है। कुमुदिनी सखी का विवाह नायक के मित्र चक्रवाक से हो गया।

प्राय प्रमुख चरित-नायकों के नाम प्रकृति से लिए गये हैं। यथा, कमलिनी का पति कलहस, कुमुदिनी का पति चक्रवाक आदि। ये नाम यथायोग्य सगमनीय हैं।

सविधान

नायिका को अग्रपाद पर खडा कर पुष्पावचय प्रथम अङ्क में कराया गया है, जिससे नायक को उसकी असाधारण कायमङ्गिमा देखने को मिलती है। यथा,

उत्तानवक्त्रकमुदञ्चितबाहुयुग्ममुन्मार्जितत्रिवलिविस्तृतकाययष्टि।
पादाग्रविष्ठितमहीतलमात्मकम्पमम्या स्थित हरति मे हृदय मृगाक्ष्या ।१ २२

नायक को थोडी दूर पर छिपाये रख कर उसके द्वारा नायिका पुष्पावचादि मनोहारिणी प्रवृत्तियो का दर्शन और वर्णन प्रस्तुत करने की रसात्मक योजना पहले अङ्क मे अन्य कई नायकों के समान ही है।

श्लेषात्मक शब्दो के प्रयोग द्वारा महत्त्वपूर्ण तथ्यो का पूर्वप्रकाशन किया गया है। यथा, प्रथम अङ्क मे कमलिनी का अपनी सखी कुमुदिनी से इस प्रकार सवाद होता है—

कुमुदिनी—(अम्बुजमादाय) कलहसो उपट्ठिओ विअ पडिभादि।

कमलिनी—किं कलहसओ उवट्ठिओ।

कुमुदिनी—एहि एहि एद। उवट्ठिओ कलहसओ विअ पडिभादि त्ति मए भणिद। तुए उण णामसारिस्सेण अण्णहा कप्पिअ।

इस श्लेष प्रयोग से नायक को ज्ञात हो जाता है कि यह सुन्दरी मुझमे अनुराग करती है क्या? इससे उत्साहित होकर वह कमलिनी से मिलने के लिए आगे बढता है। सभी कमलिनी भगवती से बुलाये जाने पर चल देती है।

द्वितीय अङ्क मे कलहस का मित्र चक्रवाक उससे मिलता है। कलहस नायिका की प्रशसा करता है। चक्रवाक कहता है कि उसका चित्र बना दें तो ठीक से समझ मे आ जाय। कलहस के पास जो चित्र-फलक भगवती ने भेजा था, उस पर उसका चित्र था। उसे ज्ञात हुआ कि कमलिनी नायिका ने यह चित्र रचा है। कलहस ने उस पर कमलिनी का चित्र बना दिया। वह चित्रफलक कमलिनी के पास पहुचा। योजना बनी कि दोनो सगमित चित्रो को देख कर माता पिता उन्हें एक कर देंगे।

कलहंस और कमलिनी परस्पर मदनातङ्क दूर करने के लिए भाग्यवशात् साथ हैं, पर विवाह के पहले कमलिनी अपना हाथ नहीं पकड़ने देती तो कलहंस कहता है कि विवाह तो हो चुका है—

धर्माय ते करसरोजमिदं गृहीतं मारागिनिजर्जरदशेन मया करेण।
अज्ञानिनेदमविमृश्य विमुच्यते चेद् धर्म मृगाक्षि मम मूलत एव नष्टः ॥३ १४

पचम अङ्क के अन्त मे रगमच पर सखी की उपस्थिति मे नायक अपनी विवाहित नायिका का रोमाञ्च पूर्वक आलिगन करता है—यह शास्त्र विरुद्ध कहा जाता है, पर नाटककारो ने इसे लोकरुचि सवधन के लिए छोड़ा नहीं।

एकोक्ति

एकोक्ति के द्वारा रमणीय वर्णना प्रस्तुत करने की योजना सफल है। प्रथम अक मे रगमच के दो भाग करके एक मे नायक को छिपाये रखा गया है, जहाँ से रगमच के दूसरे भाग मे पुष्पावचय करती हुई नायिका को सखी के साथ देखते हुए उसकी रमणीय प्रवृत्तियो से वासित होकर वह कहता है—

करेण पल्लवाभेन नवाकर्षति मल्लिकाम्।
मल्लिकासुमविद्धा मे बालाकर्षति मानसम् ॥१ २४

आगे चल कर वह जाल लगी दीवाल मे अपने को छिपा कर नायिका की देवीपूजा देखते हुए कहता है—

एषा ममायतभुजाञ्चललध्यदेशमभ्येयुषी जिगमिषुर्गिरिजासकाशम्।
स्पष्टं प्रकाश्य वपुषो विभवं पृथुस्तद्दीपयत्यतितरां मदनानलं मे ॥१'३२

प्रथम अङ्क के अन्त मे सभी पात्रो के रगमच से चले जाने के पश्चात् नायक कलहस अकेले बचता है। वह तीन पद्यो मे नायिका की प्रवृत्तियो का गीतात्मक वर्णन करता है। एकोक्ति मे मध्याह्न-वर्णन भी है।

द्वितीय अङ्क मे रगमच के अलग-अलग भागो मे अवस्थित चक्रवाक और कलहस की एकोक्तियाँ हैं। कलहस की एकोक्ति का आदर्श है—

प्रहर कुसुमबाणैर्वज्रसारैरनेकै
र्धनुरपि गुरुसारं धत्स्व चेक्षुं विहाय।
हृदयमवशयित्वा यद्भवान् मत्समक्षं
व्यरचयदतिरम्यान् पक्ष्मलाक्ष्या विलासान् ॥२ ६

पचम अङ्क के आरम्भ मे विवाह हो जाने के पश्चात् नायक नायिका-विषयक चिन्ता को एकोक्ति के १० पद्यो मे व्यक्त करता है। तब उसे कही कमलिनी दिखी।

कथा समीक्षा

कमलिनी-कलहस की कथावस्तु प्रख्यात नहीं है, उत्पाद्य है। सूत्रधार का कहना है—

अस्माकं चेतसस्तोषमापिपादयिषुर्नवम्।
प्रयुङ्क्ष्व नाटकं रम्यं सुहृत् कृत्रिमवस्तु च ॥

सस्कृत नाट्यशास्त्र के लिए नाटक मे कथावस्तु का उत्पाद्य होना कोई नई बात नही है, किन्तु इतनी स्पष्टता से इस तथ्य का प्रतिपादन अन्यत्र नही दिखाई पडता। प्रस्तावना मे एक बार और कवि ने इस तथ्य की उद्घोषणा की है।

कथावस्तु का सूत्र पहली बार ग्रहण कराने के लिए नटी सूत्रधार से कहती है कि मेरी कन्या का अमुक व्यक्ति से प्रेम है। मैं उनके प्रेम का प्रतिपालन करने के लिए चिन्तित हू। कथासूत्र ग्रहण कराने के उद्देश्य से कहता है—

वत्साया सयोग महत्सेवा करोति न।
यथा वै योगिनीसेवा दुहितुश्चन्द्रवर्मण॥

इस युग के कतिपय अन्य नाटको म भी यह योजना प्राय इसी सविधान के अनुसार अपनाई गई है।

प्रथम अङ्क मे मेघाविनी कलहस को बताती है कि कमलिनी और कुमुदिनी कौन हैं।

नाटक की शैल्पिक योग्यता के विषय मे सूत्रधार का वक्तव्य प्रगुणवाद है। यथा,

हृद्या वाक् कृत्रिम वस्तु रम्य दम्पति चेष्टितम्।
मनोहरसुहृन्नव्य रूप रूपय नो मुदे॥

ऐसा नाटक कमलिनी कलहस ही है।



अध्याय ३५

नल्लादीक्षित का नाट्यसाहित्य

नल्ला का अपर नाम भूमिनाथ मिलता है। इनके पिता बालचन्द्र कौशिक गोत्रीय थे। नल्ला की जन्मभूमि चोल प्रदेश मे कण्डरमाणिक्य अग्रहार नामक ग्राम है। यह ग्राम कुम्भकोनम् के समीप था। उन्होने अपनी 'अद्वैतमजरी' मे गुरुओ की नामावली दी है—परमशिवेन्द्राचार्य और उनके शिष्य सदाशिव ब्रह्मेन्द्र। षड्दर्शनीसिद्धान्तसग्रह मे उनके गुरु रामनाथ मखीन्द्र की चर्चा है। नल्ला के परम मित्र वैद्यनाथ थे, जिनके कहने पर शृङ्गार सवस्व के अनुसार

बालचन्द्रमखीन्द्रस्य तनयो विनयोज्ज्वल ।
स भाणं पाणयद् बाल्ये सदयुर्वचनगौरवात्[1] ॥६

नल्ला के द्वारा अधो लिखित कृतियाँ प्रणीत हैं—

१ शृङ्गारसर्वस्वभाण
२ सुभद्रापरिणयनाटक
३ जीवन्मुक्तिकल्याण नाटक
४ चित्तवृत्तिकल्याणनाटक
५ अद्वैतमञ्जरी

इसमे शृ गारसर्वस्व और सुभद्रापरिणय नाटको की रचना कवि ने १७ वी शती मे और शेष नाटको की रचना अठारहवीं शती मे की। अद्वैतमञ्जरी वेदान्त-दर्शन का ग्रन्थ है।

शृंगारसर्वस्व

शृङ्गारसवस्व मे अनङ्गशेखर नामक विट की अपनी एक दिन की चरितगाथा है। उसका हृदय किसी एक तरुणी ने चुरा लिया था। उसने इसको दृष्टि से मारा था और चली गई थी। चन्द्रमुखी नामक कुट्टनी ने कहा था कि उससे तुम्हारा सगम हो कर रहेगा।

रात बीत रही थी। कुल्टायें विटो की सगति का आनन्द लेकर अभिसार-स्थली से अपने पतियों के घर जाने लगी थी। अनङ्गशेखर को सूर्य भी विट ही प्रतीत हो रहा था। यथा, उसके शब्दो मे—

१ नल्ला ने शृङ्गारसवस्व की रचना २० वष से कम की अवस्था मे ही की थी, जैसा इसकी अन्तिम पुष्पिका से ज्ञात होता है—

प्रागेव विंशद्वयस प्रवन्धा नल्लाकवीन्द्रेण सुधीश्वरेण ।
शृ गारसर्वस्वमिति प्रतीत सन्दर्भितोऽय सरस प्रवन्ध ॥

इसका प्रकाशन काव्यमाला ७८ सख्या हो चुका है।

प्राचीकुचमुदयाद्रि परिरम्भमाणं करैस्तपनः ।
कञ्चन विकासयोगं कुरुते सरसीमुखाब्जेषु ॥२४

अनगशेखर पण्यवीथिका से होकर अपनी यात्रा करने लगा। वहाँ विलासिनियो का झुण्ड प्रेमप्रवण था। चूडी पहनाने वाले कुछ मनचले युवको से विलासिनियो का प्रेमसलाप चल रहा था। विद्युल्लता नामक विलासिनी क्या थी—

पश्यति चेदियमबला फलितं न पूर्वसचितं पुण्यं ।
सल्लपति सादरं यदि स स्वर्गः स परमपवर्गः ॥२८

उस परवधू से अनङ्गशेखर को किसी रात विजन उपवन मे परानन्द की प्राप्ति हो चुकी थी। उसने बातचीत करते हुए बताया है कि पातिव्रत्य का ढोग भी चल रहा है।

कष्टं नाम कामिनीनां पतिगृहवासपातकम् ।

अनङ्गशेखर को विद्युल्लता कैसे प्राप्त हुई थी, यह उसने बताया है—

प्राकारमुल्लध्य महानिशीथे प्रविश्य कृत्स्नाद् भवनं त्वदीयम् ।
निद्राति नाथे तदुपान्त एव त्वयान्वभव किल सगतानि ॥३१

विद्युल्लता चूडी पहनाने वाले की विटता से प्रसन्न होकर उसके पास जा पहुँची।

कलमाषिणी नामक कुलवधू कुलटा थी। वह भी सवेरे चूडी लेने के बहाने वहाँ पहुँची थी। अनङ्गशेखर से साहचर्य-घटना इस प्रकार उसीने बताई है—

कदाचित् कावेरीपरिसरगते नीपविपिने
लताकुञ्जे सद्यस्तनकिसलयस्तोमशयने ।
समारम्य क्रीडा रसपरवशे मय्युपरते
विलोलभ्रूरेषा स्वयमकुरुत वीरायितविधिम् ॥३८

कलमाषिणी ने भी कुटुम्बवास के नियन्त्रण का रोना रोया—पजरबद्धशुकीव शोकमनुभवसि। विट ने उसे परामर्श दिया—

अद्य प्रभृति विश्रृङ्खलीभय सफलीकुरुष्व तारुण्यम्। अरण्यचन्द्रिका मा कुरु करभोरु सुकुमारतरं शरीरम्।

इसको चूडी पहनाते हुए—

स्वयं धन्यमन्यो जयति तरुणः स्वर्णवलयी ।४४

कान्तिमती नामक वधू चूडी पहन रही थी। उसी समय कोई युवक उधर से आ निकला, जिसके दर्शन मात्र से पहनाई जाती हुई सारी चूड़ियाँ विदलित हो गई। उसे पकड कर चुड़िहारा उसके घर ले जा रहा था कि यह वृत्त अक्षरश वहाँ बताऊँगा। कान्तिमती डर रही थी कि यदि प्राणनाथ के कानो मेरी प्रणय वार्ता पहुची तो विपत्ति ही है। अनगशेखर ने उसे अपना स्वर्णकङ्कण देकर कान्तिमती को उससे विमुक्त किया।

वलय-वीथिका के अनन्तर अनङ्गशेखर शृङ्गार वीथिका मे आया। यही वेशवाट था। वहाँ उसे सर्वप्रथम पद्मावती नामक प्रणयिनी मिली। वह तो कुछ उपेक्षा सी

करती हुई प्रतीत हुई। अनगशेखर ने पूछा कि मुझे क्यो उपेक्षा-भाव से देख रही हो, जब पहले कभी प्रगाढ प्रणयानुराग से तुम्हारी सगति का आनन्द प्राप्त कर चुका हू। इतने से भी काम न चला तो वह पद्मावती के चरणो पर गिर पडा—

वद स्तोक दासे मयि विदितमाग कियदपि ॥५८

पद्मावती ने प्रसन्न होकर कहा—

अद्य प्रभृत्यात्मनो भृत्यजनेष्वसावपि गणनीया भवता।

इसके अनन्तर अनङ्गशेखर को विटशेखर और सारसाक्षी के विवाद का निर्णय करना पडा। मणिगुप्त नामक विहार (खेल) मे विटशेखर ने सारसाक्षी को पराजित करके एक मास उसे कलत्र रूप मे प्राप्त किया था। तीन-चार दिनो तक तो ठीक चला, पर इसके पश्चात् सारसाक्षी पलट गई। उसने अनगशेखर को कारण बताया कि हम दोनो का यह भी समय था कि यदि उस मास मे किसी दूसरी प्रमदा से विटशेखर का सम्बन्ध होगा तो कलत्र-भाव की समाप्ति हो जायेगी। कल इन्होंने मेरी छोटी बहिन मुक्तावली की सगति का आनन्द उठाया, जब मैंने इन्हे पान देने के लिए भेजा था। विटशेखर ने कहा कि मैंने मुक्तावली की समागम-प्रार्थना ठुकरा दी थी। अतएव उसने मिथ्या बातें जड दी हैं। सारसाक्षी ने कहा कि जब वह लौट कर आई तो उसके सभी लक्षणो से उसका समागम प्रतीत होता था। विटशेखर ने कहा—

क्रीडासद्मनिहसतूलशयने निद्रालसोऽह स्थित
सा तत्रावसरे समेत्य रभसादुत्सगमध्यास्त मे।
वीटी तद्वदने मया वितरता किंचिन्निपीड्याधर
वक्षोजे निहित कर किमियता काम समागवित ॥ ६२

अन्त मे यह निस्सन्देह प्रमाणित हुआ कि मुक्तावली का विटशेखर से प्रसङ्ग हुआ। अनङ्गशेखर ने अन्त मे निणय दिया कि मुक्तावली को भेजकर सारसाक्षी ने अनुचित किया। उसे कलत्रभाव मानना ही पडेगा।

आगे अनगशेखर को चक्षुरपिधान-विहार करने वाली सुमध्या और काञ्चन-माला मिली। काञ्चनमाला ने आँख खुलने पर कलभगमना को ढूँढ निकाला। अनगशेखर ने कलभगमना के स्थान पर स्वय विहार मे सम्मिलित होना चाहा, पर उन्हे यह कह कर विमुख किया गया कि पुरुष इस विहार मे रमणी को स्मरपरवश होकर उपभोग की सामग्री बना लेते हैं। आगे अम्बरकरण्डक विहार मे प्रवृत्त वाराङ्गनायें मिलीं। इसमे मणिप्राय करण्डक को एक हाथ से ऊपर फेंककर गिरते समय उसे लोका जाता था। कलकण्ठी इसमे दक्षता दिखा रही थी। अनङ्गशेखर ने उससे कहा कि तुम्हारी पतितसग्रह प्रवृत्ति अच्छी रहे। उसने उत्तर दिया कि जब से कुसुम चित्त लगाया, तब से ही यह प्रवृत्ति रही है। अनङ्गशेखर ने उससे कहा—

उत्सङ्गे भवती निधाय सरस सलापमभ्यस्य च
प्रेम्णा ते मुखवीटिकाविनिमयव्याजाद् गृहीत्वाधरम्।

पाणिभ्यामपि ते पयोधरभरामर्शं विधाय स्वयं
कामप्यद्य कृति कयापि विधया कर्तुं मनः काक्षति ॥ ७३

उसने उत्तर दिया—मैं तो तुम्हारी ही हूँ। कलकण्ठी का वसन्तक से एक वर्ष के लिए कलत्र-पत्र इस प्रकार लिखा गया था—

मासे मासे वसनयुगलं मादृशा श्लाघनीयं
पक्षे पक्षे परमभिनवा कञ्चुली रत्नगर्भा।
प्रातः प्रातः परिमलमुचो वीटिका गन्धमाल्ये
नक्तं नक्तं नवमपि पयो देयमित्यस्ति पत्रे ॥ ७४

कालान्तर में वसन्तक ने यह सब देने के स्थान पर चोरी करने की ठानी। एक रात गाढ़ी निद्रा में जब कलकण्ठी सोई थी तो उसके सारे अलंकार शरीर से उतार लिए। जब मुक्ताहार पर हाथ साफ कर रहा था तो वह जग गई और उसे पकड़ लिया। तब तो उसकी कठोर माता ने पुराने सूप से उसे मार भगाया था। उसके पश्चात् प्रतिदिन वह नये-नये युवकों का मन भरती रही।

आगे वसन्तकलिका गेंद खेल रही थी। उससे अनङ्गशेखर ने कहा कि चरण पर गिरे हुए को कठोरतापूर्वक मारने की तुम्हारी रीति रही है—

वाचालकङ्कणगणेन भुजेन कण्ठे मामन्तिकस्थमभिगृह्य निपात्य मञ्चे।
आक्रम्य वक्षसि निपीड्य पयोधराभ्यामाक्रीडितं खलु नतोदरि यद्भवत्या ॥७८

आगे पद्मलाक्षी जूआ खेलती मिली। उसने अनङ्गशेखर को अर्धासन पर बिठा लिया। उसके स्पर्श से इन्हें रोमाञ्च हो आया। आगे चलने पर विवाद-निर्णय के लिए निवेदन करती हुई कुम्भस्तनी मिली। मन्दारक जूये में हारा था, जिससे पद्मलाक्षी को वीरायित करने का अधिकार प्राप्त था, और मन्दारक मान नहीं रहा था। अनङ्गशेखर ने उसे समझाया—

शेष्वाधस्तादथ वितर वा तस्य बिम्बाधरं त्वं
शेतेऽधस्तादधरमथवा सोऽपि दत्ते भवत्यै।
अस्मिन्नर्थे समरसतया नास्ति कश्चिद्विशेषो
भूयो भूयः कलहविधया ब्रूहि किं वा फलं वा ॥८९

दोपहर के समय अरविन्दमुखी के साथ गप्प करने विट पहुँचा। वह झूला झूल रही थी। दोला-विहार का आनन्द लेने के लिए उसने अनङ्गशेखर को आमन्त्रित किया। अनङ्गशेखर ने कहा कि आतिथ्य विधिपूर्वक होना चाहिए—अङ्कपीठ, पयोधरनालिकेर और वीटी देकर। अरविन्दमुखी ने कहा कि यह सब रात्रिकालीन आतिथ्य में देय हैं। अनङ्गशेखर ने कहा—

ननु प्रतीक्षणीया रजनी किल वेद किंकरैरेव।
स्वच्छन्दचारिणां पुनरहरहरहः स्मृतं सुरतम् ॥९४

अन्त में अरविन्दमुखी ने वीणा बजाती हुई गायन प्रस्तुत करने का आयोजन किया तो अनङ्गशेखर कुचताल देने के लिए उत्सुक हो गया। गाना सुनकर उसने कहा—

तव तन्वङ्गि सगीते द्रवन्ति हि शिला अपि।
नि सारो मक्षिकासारो नीरसश्च सुधारस ॥६७

आगे रत्नचूड से लडती कम्बुकण्ठी मिली। उनमे युगमयुगमदशन विहार मे जीत होने पर स्वामित्व पाए था। मुक्ताओ को गिनते समय कम्बुकण्ठी ने अपह्नव किया था। अनङ्गशेखर ने उसकी पराजय की घोषणा कर दी। पर अन्तिम निर्णय न दे सका।

आगे चलने पर उसे कृशोदरी मकरद को फटकारती हुई मिली। गजपति-कुसुम-कन्दुक-विहार मे मकरद को कृशोदरी का घोडा बनना था। विचारा मकरद उसके स्तनजघन भार से पीडित होकर थोडी दूर पर उसे फेंककर मुक्त हुआ। अनङ्गशेखर ने उसे सकेत दिया कि पलायन करो, नही तो यह छोडने वाली नही है।

आगे चतुरङ्ग खेलने वाली मारवल्लरी की मण्डली मिली। विदग्धभूषण को अनङ्गशेखर ने कहा कि फिर से खेल कर जीतो। आगे चलने पर अनङ्गशेखर को सिर पर पुस्तको का भार ढोता हुआ कामान्तक नामक विट मिला। वह काञ्चीपुर से लौटा था। वहाँ एक दिन उसे एक परम सुन्दरी दिखाई पडी। उसने उसका चित्त चुरा लिया। उसके विरह ताप से मरते हुए कामान्तक को किसी दिन एक कुट्टनी मिली। उसने कामान्तक से कहा कि तुम्हारी चहेती भी तुम्हारे लिए मर रही है। आज रात मे निष्कुट वन मे उसको जीवन प्रदान करो। कामान्तक उसके गृहोद्यान मे रात मे उस प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहा था, तभी वह अपने पति के सो जाने पर उसके पास आ गई। उसके समागम का पूरा आनन्द कामान्तक को मिला। कामान्तक से अनङ्गशेखर ने अपना मनोरथ पूछा, जिसे उसने सिर पर रखी पुस्तकें देखकर बता दिया कि आज रात मे अभिलषित तन्वी से समागम का अवसर मिलेगा। अनङ्गशेखर ने उसे बताया कि कनकलता नामक कन्यारत्न के लिए उत्सुक हूँ। उसे एक बार देखा और वह मेरा चित्त लेकर चलती बनी। कामान्तक ने कहा कि वह तुम्हें मिल कर रहेगी।

आगे बढ़ने पर अनङ्गशेखर को स्तम्भननट मिले। उनकी स्त्रियो का खेल देखा—

हन्त स्तम्भननटाङ्गना कतिचन प्रेक्षासमस्थले
पादाभ्यामभिहत्य मूर्धनि चिर तिष्ठन्ति निश्चेष्टितम्।
उत्प्लुत्याम्बरसीम्नि चक्रमिव च भ्रान्त्वा निपातक्षणे
पद्भ्यामेव पुरेव भूतलमलकुर्वन्ति नार्योऽवरा ॥१३०
पाशावलम्बकलया सहसाविरुह्य स्तम्भाग्रमुन्नतमुरोजभरेण खिन्ना।
तिर्यग्विर्नतितनुस्तरणीचिराय चक्रे परिभ्रमति चम्पकमालिकेव ॥१३१

कही मुष्टि-युद्ध करते हुए मल्ल दर्शक को समुत्सुक बना रहे थे। कहीं कुक्कुटों का युद्ध चल रहा था। कही कोई मदारी बदर की जोडी लिए घूम रहा था। अन्यत्र कोई मदारी तुमडी बजा रहा था। कही ढोल पीटा जा रहा था। ढोल की घोषणा से ज्ञात हुआ कि कावेरी-तीर पर शिव का प्रस्थान मगलोत्सव है। नगर की

रमणियाँ अप्सरा की भाँति पतिगृह के कारागार से मुक्त सी होकर सजधजकर रगरेलियाँ करती हुई सडक पर उधर चली। सुन्दरतम युवको को देखकर मनस्तृप्ति के अपूर्व अवसर का लाभ उन्होंने पूरा उठाया। मार्ग मे अनङ्गशेखर को प्रमत्त हाथी दिखाई पडा, जिसे उसने गजानन-रूप मे पहचाना। उसने स्तोत्र पाठ किया—

जय जय जगता मूल जय जय भो जन्म कल्मपद्वेपिन्।
गजवक्त्र विघ्नशत्रो सुत्रामस्तुतचरित्र शिवपुत्र ॥१४६

तभी चन्द्रमुखी नामक कुट्टनी ने आकर अनङ्गशेखर को बताया कि कनकलता की माता ने मुझ से कहा है कि प्रियविरह मे सन्तप्त मेरी कन्या का मनोरथ जैसे भी हो पूरा करो। आज चन्द्रशाला मे आपको उससे मिलना है। सन्ध्या हो गई। अनङ्गशेखर ने देखा—

सकेतस्थलमुद्दिशन्ति कुलटा साक विटाना वरं॥
मोदन्ते परसुन्दरीकुचपरीरम्भक्रियारम्भिण॥

वह अपनी प्राणनाडी कनकलता से मिलने चला।

धिक्कार है उस विद्वम्मण्डली को, जिसमे सर्वोच्च प्रतिमाशाली आचार्यों और उनके वशजो की लेखिनी वाराङ्गनाओ के वर्णन-रूपी कालुष्य को मसि बनाकर भारतीय आध्यात्मिक सस्कृति पर कालिख पोतन मे समर्थ हुई। देश के सामने अब और तब असख्य सामाजिक समस्यायें थी, जिनका समाधान करने मे यदि उनकी वर्णना प्रवृत्त होती तो भारत की भव्यता विनष्ट न हो पाती। दुर्भाग्य है सस्कृत का कि कुछ ही कवियो की दृष्टि सदा चार-दर्शिका बन पाई। इस भाण मे कुलाङ्गना कुलटाओं को नल्ला ने समेट लिया है। केवल वाराङ्गनाओ से उन्हे परितोप न हुआ। *कुलवधुओ को फँसाने के लिए यह कामतन्त्रीय भाण सफल प्रयास बन पडा है।*

शैली

नल्ला की शैली भाणोचित वैदर्भी से समलङ्कृत है। स्वर और व्यञ्जनो की सानुप्रासिकता से वे प्राय सगीत का सर्जन करन मे सफल हैं। यथा,

कूलकपकुचभारा कुकुमकर्दमितमुग्धमणिहारा।
कुन्तलविनिहितमाला कुरुते केय कुतूहल बाला ॥४६

सुभद्रापरिणय

सुभद्रा-परिणय पाँच अङ्को का नाटक है।[१] इसका प्रथम अभिनय मध्यार्जुन-प्रभु की यात्रा के अवसर पर हुआ था। इसमें महाभारत और पुराणो मे सुप्रसिद्ध अर्जुन के द्वारा सुभद्रा के अपहरण और विवाह की कथावस्तु पल्लवित है। इसके अनुसार दुर्योधन भी सुभद्रा से विवाह करना चाहता था। अर्जुन की अनुपस्थिति मे द्वारका जाकर वह बलदेव को प्रभावित करता है कि मैं सुभद्रा के योग्य हूँ।

१ इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास के राजकीय ओ० मैनु० पुस्तकालय मे R0778 सख्यक है।

अर्जुन कृष्ण से मिले और सुभद्रा को छद्म द्वारा प्राप्त करने की योजना उन्होंने कार्यान्वित की, जिसके अनुसार अर्जुन साधु वेश मे द्वारका मे सुभद्रा और उसकी सखियो से मिलकर उनसे बाते करते हुए अर्जुन-रूप मे पहचाना जाता है और सुभद्रा उसको मनसा वरण कर लेती है। तभी बलदेव के वहाँ आ जाने से सुभद्रादि चली जाती हैं और बलदेव उन्हे बिना पहचाने राजोद्यान मे रहने की सुविधा प्रदान कर देते हैं।

एक दिन सुभद्रा ने सन्देहवश स्वय अर्जुन की सेवा न करके चेटी को भेज दिया। उस दिन कृष्ण की इच्छानुसार शकर ने आकर अर्जुन से युद्ध किया। इस बीच दुर्योधन न सेविका चेटी को सुभद्रा समझकर उसका अपहरण कर लिया।

सुभद्रा का यह सन्देह प्रगाढ हो गया कि यतिवेशधारी छली दुर्योधन है। उसने ग्लानिवश आत्महत्या करने का उपक्रम किया। अर्जुन ने उपस्थित होकर ऐसा करने से उसे रोक लिया। अन्त मे उन दोनो का प्रणय परिणय में परिणत हुआ।

परवर्ती युग मे सुभद्रापरिणय की कथा सस्कृत नाटककारो की दृष्टि मे अतिशय नाट्योचित रही है। कृष्णमाचार्य ने सुभद्रापरिणय नामक तीन नाटक क्रमश नल्लाकवि, रघुनाथाचार्य और रामदेव के गिनाये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक नाटक सुभद्रा और अर्जुन के परिणय के विषय मे लिखे गये। इन सब मे अधिकतम उच्चकोटिक कथा सविधान कुलशेखर के सुभद्रा-धनजय नाटक का है, जिसकी छाप नल्लाकवि के सुभद्रापरिणय पर स्पष्ट झलकती है।[1]

नल्ला ने इस नाटक की कथावस्तु में सघर्ष और युद्ध का वातावरण बनाने के लिए कई सविधान जोडे हैं। पहले तो दुर्योधन का द्वारका आकर सुभद्रा के लिए बलदेव से याचना करना, फिर दुर्योधन का सुभद्रा की चेटी का हरण करना—इन दो बातो से दुर्योधन का विशेष सचेष्ट होना प्रकट होता है। नल्ला ने इसकी कथावस्तु मे शकर और अर्जुन मे युद्ध का अवसर लाकर एक अप्राकलित प्रसग का समावेश अपनी युद्ध-प्रियता के कारण किया है। यही किरातवेश-धारी शकर से अर्जुन के युद्ध का अवसर उपस्थित होता है। कवि ने यतिवेशधारी अर्जुन के प्रति सुभद्रा की यह भ्रान्ति कि यह दुर्योधन है—कवि की निजी देन है। युद्ध मे अर्जुन शकर को पराजित करके प्रसन्न करता है। सुभद्रा ने अपनी चेटी को सुभद्रा बनाकर अर्जुन के पास भेजा छायातत्त्व का विशेष विलास इन बहुत सारी माया-छद्म आदि की योजनाओ से स्पष्ट है।

पचमअङ्क मे छायातत्त्वानुसारी भ्रान्तियो का जाल सा बिछाने में नल्ला को सफलता मिली है। नायिका अर्जुन को पति रूप मे पाने के विषय मे निराश होकर जब आत्महत्या करना चाहती है तो यतिवेशधारी अर्जुन उसे बचाने जाते हैं। उसे देखकर और परपुरुष समझकर वह उससे बचने के लिए चिल्लाती है। उसे दुर्विनीत

१ सुभद्रा धनजय की विस्तृत आलोचना लेखक के मध्यकालीन सस्कृत-नाटक के पृ० १०१—१०८ मे है।

कहती है। यह सब अदृष्टाहति (Irony) का अच्छा प्रसग है।

इस नाटक मे कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूल-विक्रीडित है, जो २७ पद्यो मे प्रयुक्त है। इसके बाद श्रेष्ठ छन्दो मे वसन्ततिलका १७ पद्यो मे प्रयुक्त है, जो शृङ्गारोचित है। कही-कही कहावतो के प्रयोग से भाषा बलशालिनी है। यथा, अन्ध किमन्धमपर पथि नेतुमीष्टे। कवि के जीवन का चारित्रिक आदर्श उसके नीचे लिखे पद्य से परिचेय है—

सम्पदो विपदो वापि सम्पद्यन्ता पराश्शता।
मर्यादा नातिवर्तन्ते महान्तस्सागरा इव ॥४८

कवि की भाषा नाट्योचित सरल है। अलकारो का प्रयोग सौविध्यपूर्ण है। वैदर्भी रीति और कैशिकी वृत्ति का प्रायश सामञ्जस्य है। प्रच्छन्नता के प्रकरणो मे स्वभावत आरभटी वृत्ति है।

जीवन्मुक्ति-कल्याण

नल्लाध्वरी की परिपक्वावस्था मे १८ वी शती के आरम्भ मे यह आध्यात्मिक नाटक प्रणीत हुआ था।[1] इसका प्रथम अभिनय मध्यार्जुन-प्रभु की यात्रा मे उपस्थित ब्रह्मनिष्ठ सामाजिको के कहने पर हुआ था।

कथावस्तु

कथानायक जीव की पत्नी बुद्धि प्रौढा नायिका है, जिससे जीव ऊब चुका है। वह कहता है—

अतिचारिण्या बुद्धया सह ससरतो मम कल्याणे का न्यूनता नाम। यथा,

रथ्याना जनुप परामुखतया नित्य, प्रवृत्त्युन्मुखान्
भूय प्रेरणकर्मणा स्वयमपि प्रोत्साहयन्ती मुहु।
स्वस्य मा विषमेष्वमीपु विषयेष्वाकृष्य चाकृष्य च
भ्राम्यन्ती कृपया ह्रिया च रहिता नाद्यापि विश्राम्यति ॥

जीव प्रमाता बनकर सुख का अनुभव नही करना चाहता। उसका स्पष्ट कहना है—

प्रमातृत्वावेशे सति भवति कर्मस्वधिकृति
स्तत कर्तृत्व स्यात्तदनु फलभोक्तृत्वमपि च।
विमुक्तस्यानेन ध्रुवमखिलदु स्वप्नप्रशमन
विमुक्त्यर्योपायस्तदनुसरणीय प्रथमत ॥१·३२

---

१ लेखक का परिचय देते हुए सूत्रधार ने प्रस्तावना मे कहा है—

यस्य कवि सुभद्रापरिणय-शृङ्गार-सर्वस्व-चित्तवृत्तिकल्याण-अर्द्वैत रसमजरी-प्रायनोप्रबन्धनिबन्धनाभिनन्दनीय श्रीबालचन्द्रमसौन्द्रनन्दनो नल्लाध्वरी। चित्तवृत्तिकल्याण नाटक अप्रकाशित है। नाम से ज्ञात होता है कि इस प्रतीक नाटक मे चित्तवृत्ति के विवाह की योजना वैसी ही है, जैसे जीवन्मुक्ति-कल्याण मे।

रमणीयचरण नामक मन्त्री से यह सब चर्चा करते हुए जीव जागरित नामक वन को पार करके स्वप्नाराम मे जा पहुँचे। वहाँ उसने देखा कि सभी रूप क्षण-भगुर हैं। यथा,

हस्तीत्याकलित क्षणेन स महानद्रि समापद्यते
सद्य स द्रुमनामुपैति स पुन पक्षिप्रथा गाहते।
अज्ञान शतयोजनान्तरितमप्यध्यक्षमालक्ष्यते
वस्तुप्राप्तिमदप्यपूर्वमिव सप्राप्तव्यमास्ते पुन ॥१४२

निद्रालस देवी बुद्धि को जीव ने भुला दिया और अपने उस कल्याणी कन्या को ढूँढने चला, जिसकी मधुरवाणी से वह आनन्द-विभोर हो चुका था। वह उसका वणन करता है—

इय सा कल्याणी सुललितलतामूलनिलया
पयोदेनालीढा तडिदिव जगन्मोहनतनु।
अवस्थाभेदे च स्थितिमुपगता काचिदधुना-
सदानन्दस्फूर्ति सुनुरिति समोहयति माम्॥१४६

इसकी बाह्य और वास्तविक रमणीयता पर मुग्ध होकर जीव कहता है कि यदि यह मेरी हो जाय तो मम स एव मोक्षोत्सव।

बुद्धि के पिता अज्ञानवर्मा को यह ज्ञात हो गया कि जीव मेरी कन्या से खिन्न होकर जीवन्मुक्ति नामक दूसरी सुन्दरी के चक्कर मे है। उसने बुद्धि को सावधान किया और कामादि अपने छ सेवकों को लगाया कि जीव को जीवन्मुक्ति की ओर प्रवृत्त न होने दो।

इधर जीव ब्रह्मचर्याश्रम मे प्रवेश करके जीवन्मुक्ति को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हुआ। पर उसे बुद्धि से छुटकारा कहाँ? उसे देखते ही जीवन्मुक्ति को भूला हुआ सा बोला—

एह्येहि सुन्दरि किमन्तरितासि दूरं कल्याणि नन्वयुतसिद्धममु जुपस्व।
उत्सगमण्डलमलकुरु मे निविष्टा जीवन्नसौ न सहते किल ते वियोगम्॥२२२

बुद्धि ने कहा कि यह सब बनावटी बातें हैं। तभी जीव का बनाया नई नायिका जीवन्मुक्ति का चित्र उसे आपातबोध की काँख से गिरा हाथ लगा। आपातबोध ने बताया कि मुझे यह सुन्दरी वेदवन मे दिखी है। इसके सौन्दर्य से स्वामी जीव का मनोरजन करने के लिए इसका चित्र बनाकर लेता आया।

बुद्धि ने कहा कि आपातबोध, मैं अज्ञानवर्मा नामक ऐन्द्रजालिक की कन्या हू। तुम मुझे उल्लू नहीं बना सकते।

आपातबोध ने जीव को समझाना आरम्भ किया कि जीवन्मुक्ति को प्राप्त करने के लिए कर्म को छोडो। इसके लिए सन्यासाश्रम ग्रहण करो। तभी कामादि छ मागरण्ट बनकर आ पहुँचे। उन्होंने अज्ञानवर्मा की आज्ञा से जीव को अपने चक्कर मे फँसाये रखने का उपक्रम किया। काम ने अपनी योजना बनाई—

आरूढमाश्रमथ त वितथाभिलापमाशु क्षिपेव परुषे विषयान्धकूपे ।।
फिर तो वह मुक्ति की सीढी पर नही चढ पायेगा।

काम के कहने से मोह ने गज का रूप धारण किया। काम उसके कंधे पर जा बैठा। मद, मत्सरादि परिवार मे सम्मिलित हो गये। वे पहुचे जीव के पास। जीव को आपातबोध न समझाया कि यह कोई वास्तविक हाथी थोडे है। पर जीव माना नही। उसने कहा कि इसके विषय में मुझे कुतूहल है। वह काम के कहने से हाथी पर बैठ गया। उसकी इच्छानुसार आपातबोध भी साथ ही आ बैठा। जीव ने हस्तिवाहक से कहा कि मुझे सन्यासाश्रम मे पहुचाओ। काम ने उसे पुर मे पहुचा कर कहा कि यही वह आश्रम है। वहाँ का दृश्य है—

उद्गायन्ति कुशीलवाम्नव पुरी गाथाममाधारणी
नृत्यन्त्यद्भुतरूपसम्पद इत. सम्भूय वारागना ।
सघीभूय जनेन वन्दिन इत सप्रस्तुवन्ति स्तुति
पौरा जानपदाश्च भो जय जयेत्याशीर्वच कुर्वते ।।३ २७

पुर के प्रासाद मे वहाँ तो जीव फँस गया। उसे बचाने के लिए दयादि आठ आत्मगुण उपस्थित हुए। वे जीव को चुपके-चुपके ले उडे। कामादि ने अपना प्रयास व्यर्थ जाते देख विवशता प्रकट की। काम ने कहा कि जीव कहीं वन मे छिपा होगा। उसे चल कर पकडें।

आत्मगुणो ने जीव को सन्यासाश्रम मे ले जाकर समझाया—

त्वमसि जगता निष्ठा काष्ठा गतिश्च परायण
श्रुतिभिरुदितो भयो गत्यन्तर किमपेक्षसे।
पुरुष भवतस्तादृक्षस्य का नु परा गति—
र्न खलु जलधेरन्या काचिद् गति सरितानिधे ।।३ ४८

सब कुछ तो सन्यासाश्रम मे जीव को ठीक लगा, पर सौन्दरनन्द के नायक की भाँति उसे अपनी अभिनव प्रेयसी की स्मृति होती रही। वह कहता है—

प्राणान् पञ्चनियम्य त च करणग्राम निगृह्य क्षण
प्रत्याहृत्य मन पराग्विषयतो यावत् समाधीयते।
तावत् पादझनज्झनायितमणीमजीरभृ गारिता
बाला किंचिदुदञ्चनस्मितमुखी चित्ते ममोज्जृम्भते ।।४ ४

इधर भवितव्यता बुद्धि के पास अपन पति जीव की प्रेयसी जीवन्मुक्ति का चित्र देखकर उसे बताती है—

सर्वे वेदा यत्पद सगिरन्ते सर्वाण्येवाचक्षते या तपासि।
यामिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति प्राज्ञा जीवन्मुक्तिरेषा सखी मे ।।

बुद्धि ने कहा तो यह मेरी भी सखी रही। भवितव्यता ने कहा कि तुम तो साधन-सम्पत्ति और ब्रह्मजिज्ञासा नामक अपनी सखियों के साथ चलो। गुहाभ्यन्तर में तुम्हें

जीवन्मुक्ति को साक्षात् दिखा दूँ। उन्होंने ऐसा किया। तब तो बुद्धि ने जीव को जीवन्मुक्ति से मिलने में सहायता की।

शिव ने शिवप्रसाद को नियुक्त किया कि जीव का अभीष्ट उसे प्राप्त कराओ। उसने ब्रह्मविद्या नामक सिद्धाञ्जनौषधि से वह दृष्टि दी कि उसने जीवन्मुक्ति का दर्शन कर लिया। ब्रह्मविद्या के तेज से अज्ञानवर्मा जग गया। जीव का जीवन्मुक्ति से विवाह हो गया।

रस

नल्ला ने आध्यात्मिक नाटक को भी पर्याप्त शृङ्गारित बना कर सहृदय प्रेक्षकों की भी अभिरुचि इसमें उत्पन्न की है। यथा नायिका जीवन्मुक्ति का नायक जीव ने स्वप्न में दर्शन किया। उसका वर्णन रमणीयचरण नामक मन्त्री को सुनाता है—

सस्नेहं परिरम्भसम्भ्रमदशारम्भे विलोलभ्रुव-
स्तस्यास्तु गपयोधरक्षितिधरासगातिभारादिव।
आनन्दाम्बुनिधेरगाधपयसो मध्ये निमग्नस्तदा
बाह्यं किंचन किंचनान्तरमहं नावेदिषं वस्तु ॥२४

जीव उसका चित्र प्रस्तुत करता है—

सैषा वधूरिह सुधारसधारयेव सूक्त्या यया श्रुतिरभूदभिपूरितेयम्।
सन्दर्शनस्य पदवीमदवीयसी मे या च व्यगाहत तदोपवनान्तभागे ॥२ १४

एकोक्ति

द्वितीय अङ्क में २१ वें पद्य के पश्चात् बुद्धि जगती है और अकेले बोलती है—

अहो जललिपि पुरुषाणां स्नेहो व्यवहारश्च। इदानीं सापराध एव स, येन सुपुप्तगृहे एकाकिनीं मामुज्झित्वाग्रतो निर्गत आर्यपुत्र।

छायातत्त्व

तृतीय अंक में मोह गज का रूप धारण करता है और काम उसका वाहक बन जाता है। यह छायातत्त्वानुसार है।

संवाद

कवि ने मनोरंजक संवादों की योजना अनेक स्थलों पर प्रस्तुत की है। यथा,

जीव—(आपातबोध हस्तेन गृहीत्वा, सोपहासम्) आपातबोध, गजो मिथ्या, किं पलायसे?

आपातबोध—पलायनमपि मिथ्यैव।

चतुर्थ अंक में खादिरमूले कपित्थफललाभ, 'वराटिकान्वेषणप्रवृत्तस्य निधिलाभ' आदि जैसे व्यंग्य प्रयोगों में संवाद चटपटे बन पड़े हैं।

सत्रहवीं शती के अन्य नाटक

मधुरानिरुद्ध

आठ अङ्कों का मधुरानिरुद्ध प्रणयात्मक नाटक है।[1] इसमें यथानाम उषा और अनिरुद्ध के गान्धर्व विवाह की कथा है। अन्त में उषा के पिता बाणासुर से युद्ध होता है, जिसमें बाणासुर मारा जाता है।

मधुरानिरुद्ध के रचयिता चन्द्रशेखर बुन्देलखण्ड के राजा वीरसिंह के आश्रय में रहते थे।[2] इस राजा का शासन काल सत्रहवीं शती का प्रारम्भिक युग है। नाटक का प्रथम अभिनय शिव के उत्सव के अवसर पर हुआ था। लेखक स्वयं शैव था।

प्रथम अङ्क में नारद कृष्ण और बलराम को बतलाते हैं कि बाणासुर शिव का वरदान पाकर उत्पात करने लगा है, जिससे इन्द्र त्रस्त हैं। वे अन्त में बाणासुर की राजधानी शोणितपुर जा पहुँचते हैं तथा बाण और शिव के बीच मनमुटाव उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। द्वितीय अङ्क में जय और वीरभद्र के संवाद से ज्ञात होता है कि बाण के गर्व से शिव चिन्तित हो उठे हैं। वे कैलास चले गये। पार्वती भी कैलास गईं और उषा को बतला गईं कि शीघ्र ही तुमको पति का दर्शन होगा। उषा ने बातचीत में चित्राङ्गदा को बताया कि मुझे देवी के वर के विषय में चिन्ता है। तीसरे अङ्क में अनिरुद्ध अपना स्वप्न बताता है कि मैंने स्वप्न में अपूर्व सुन्दरी देखी है, जिसके विषय में नारद समझाते हैं कि वह बाणासुर की कन्या उषा है। अनिरुद्ध बाणासुर की नगरी तक जा पहुँचे, परन्तु उस नगर के चारों ओर तो अग्निकुण्ड दहक रहा था जिसके शमन के लिए उसने ज्वालामुखी देवी को तपस्या द्वारा प्रसन्न करना आरम्भ किया। चतुर्थ अङ्क में ध्वजा के पतन से बाणादि चिन्तित हैं कि अब मृत्यु-योग निकट है। पंचम अङ्क में जब अनिरुद्ध ज्वालामुखी के प्रीत्यर्थ आत्मदाह करने को उद्यत है तो वह उसे आकाश-मार्ग से विचरण करने की शक्ति देती है। वह आकाशयान से दुर्गा (ज्वालामुखी) से मिलने के लिए समग्र उत्तर भारत का भ्रमण करके ज्वालामुखी के समीप पहुँचता है और उनका वर प्राप्त करता है।

षष्ठ अङ्क में चित्रलेखा की बनाई चित्रावली में उषा स्वप्न में देखे हुए नायक को पहचान लेती है। उसे पाने के लिए नारद चित्रलेखा को द्वारका भेजते हैं। सातवें अङ्क में नायक-नायिका का गान्धर्व विवाह हो जाता है। आठवें अङ्क में बाण अनिरुद्ध के दूषण को जानकर लड़ाई करता है। कृष्णादि भी अनिरुद्ध की सहायता

---

१. इस नाटक की चर्चा विल्सन ने The Theatre of the Hindus के पृष्ठ १४३–१४५ में की है।

२. कृष्णमाचार्य के अनुसार इनके पिता वाजपेयी गोपीनाथ राजा वीर केसरी रामचन्द्र के गुरु और धर्माचार्य थे।

के लिए आ जाते हैं। शिव ने परिवार सहित बाण की सहायता की, पर उसकी चार बाहों को छोड़कर सभी बाहें कृष्ण ने काट दीं। पार्वती और ब्रह्मा ने बाण से सन्धि कर लेने की प्रार्थना की। शिव से लड़ते हुए कृष्ण को मानसिक सन्ताप हो रहा था। तब शिव ने उनसे कहा कि युद्ध करना तो अपने आप में पूर्ण उद्देश्य है, इसमें शत्रुता और मैत्री के भाव का प्रश्न ही नहीं उठता।[1] पार्वती के साथ उषा वहाँ आती है। शिव और पार्वती की इच्छानुसार बाण उषा को अनिरुद्ध के लिए सौंप देता है। शिव बाण को अपना पार्षद बना लेते हैं, जिसका नाम महाकाल पड़ता है।

उषा और अनिरुद्ध के प्रणय की कथा मूलतः महाभारत, हरिवंश, भागवत-पुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, मत्स्यपुराण आदि में मिलती है। चन्द्रशेखर ने उपर्युक्त उपजीव्य ग्रन्थों से कथा लेकर उसमें अभिनव कथांश जोड़े हैं।

विल्सन के अनुसार वर्णनों की अधिकता से इसकी नाटकीयता में कमी आ गई है। उनका कहना है कि इस नाटक की काव्य शैली में पर्याप्त औदात्य है।

नलानन्द नाटक

सात अङ्कों के नलानन्द नाटक के रचयिता जीवबुध हैं।[2] इनके पिता कोनेरी राजा थे। इनका जन्म उपद्रष्टा वंश में हुआ था, जिसमें सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ हुए हैं। जीवबुध ने अपने चाचा सुब्रह्मण्य के कहने से इस नाटक का प्रणयन किया था। स्टेनकोनो के अनुसार इसकी रचना १६५० ई० के पहले हुई होगी।[3]

कथावस्तु

नल और दमयन्ती के विवाह-विषयक असंख्य नाटकों की कथा के समान ही जीवबुध ने महाभारत की नल की कथा को उपजीव्य बनाया है और दमयन्ती के स्वयंवर से लेकर उसके विवाह, द्यूत में नल की पराजय, ऋतुपर्ण का सारथि बनना और नायिका से पुनर्मिलन आदि घटनाओं का संयोजन किया है।

कृष्णाभ्युदय

कृष्णाभ्युदय नामक प्रेक्षणक के रचयिता लोकनाथ भट्ट का प्रादुर्भाव सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में हुआ।[4] लोकनाथ के पिता वरदार्य या कविशेखर थे। कहते हैं कि लोकनाथ भट्ट विश्वगुणादर्श के रचयिता वेङ्कटाध्वरी के मामा थे। वेङ्कटाध्वरी का प्रादुर्भाव १७ वीं शती के मध्य भाग में हुआ था।

कृष्णाभ्युदय का प्रथम अभिनय काञ्चीपुर में हस्तिगिरिनाथ के वार्षिक यात्रा-महोत्सव में आये हुए सामाजिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

---

१ यह विचार भारत का युद्ध परायण बनाने के लिए है।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल लाइब्रेरी, तंजोर में ८३६९ संख्यक है।

३ . . . of which we possess a manuscript transcribed in 1650 A D Stenkonow A History of Sanskrit Drama P 174

४ इसका प्रकाशन जबलपुर में १९६४ में हुआ।

प्राय पूरे प्रेक्षणक मे प्रस्तावना के पश्चात प्राकृत मे स्त्रियो का सवाद है। विश्ववेदिनी लक्षण देखकर भविष्य बताती हुई वसुदेव के घर पहुँचती है। यह गर्भ-भार से अलसाई हुई देवकी से मिलकर बताती है कि आपको तो अब शुभ ही शुभ है। वह अपनी पेटी से काञ्चन-शलाका निकाल कर पुष्प-अक्षत आदि से पूजा करके हाथ जोडकर उसके विषय मे अन्य शोभन बातें भी बताती है। फिर उसका हाथ देखती है और कहती है—

चूतप्रवालसरसीरुहविद्रुमेषु कुन्दशिरीषकुसुमेषु कुमारभाव ।
देव्या हस्तकमलेक्षण किमप्येतत् सत्कान्तिरूपसुकुमारगुणस्य रीतिम् ॥१८

वह कहती है कि यह अपत्य रेखा है। इसके अनुसार जो पुत्र उत्पन्न होने वाला है, वह—

विश्वम्भराभारहरो धुरीण विश्वातिगो विश्वविधानदक्ष ।
आकल्पमव्याहतपुण्यकान्ति-दीप्तार्कज्योतिरय वासरस्य ॥१९

आपको जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसका विभव ब्रह्मा भी नही वर्णन कर सकते। विश्ववेदिनी ने देवी का सकल्प बताया—

वृन्दावने पुण्ये शुकहर्से भद्राणि पुष्पाणि ।
लीलया च पर्यटन्ती गोकुलमध्ये वसेयमहम् ।

थोडी देर के पश्चात् कृष्ण जन्म हुआ। दिव्य मगलवाद्य घोष हुआ, पुष्पवृष्टि हुई और आनन्द-पूर्वक नृत्य हुआ।

देवकी ने पुत्रको वसुदेव के हाथ मे दिया। पिता ने कहा—

अङ्गमङ्गममृतोपमेन मे स्पर्शनेन सुखयस्व पुत्रक ।
अङ्गकैरमृतवृष्टिशीतलैरेधि तापहरणाभिलाषुकं ॥ २८

वसुदेव देवकी भरतवाक्य कहते हैं—

राजा जीयान्नयविभवन प्राणिरक्त प्रवृत्तौ
विद्यावेदानुमतगतय सन्तु यशैरुपेना ।
काले वृष्टिर्भवतु महती लोकमुज्जीवयन्ती
भक्तिर्भूयाद् भगवति श्रीपतौ वासुदेवे ॥ ३०

इस प्रेक्षणक की आद्यन्त मृदुता कृष्णजन्मोत्सव के अवसर पर भक्तों को महती प्रीति उत्पन्न करने मे नितरा सफल रहेगी।

कृष्णनाटक

कृष्णनाटक सस्कृत रूपक-परम्परा की एक अभिनव दिशा की प्रतिनिधि कृति होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है।[1] इसके रचयिता मानवेद या एरलप्पाट्टि राजा कालीकट के जमोरिन (महाराज) थे। वे परम वैष्णव थे और गुरुव यूर के विष्णुमदिर मे भक्तिपूर्वक प्राय रहा करते थे। मानवेद १६५५ ई० मे जमोरिन बने। कहते हैं

१ इसका प्रकाशन त्रिचूर से मगलोदय कम्पनी से १९१४ में हुआ था।

कि अपने आध्यात्मिक गुरु विल्वमंगल की कृपा से वे बालकृष्ण को वशीवादन करते देखते थे। मानवेद ने उनसे स्पर्शपूर्वक प्रेम करना चाहा तो बालकृष्ण मोरपंख छोड़कर चम्पत हो गया। उस मोरपंख को मुकुट में जड़वा कर मानवेद उस बालक के शिर पर रखते थे, जो नाटक में कृष्ण की भूमिका में रंगपीठ पर आता था।

मानवेद ने अपनी कवि-प्रतिमा के विलास को नारायण भट्ट की गुरु गरिमा से मण्डित किया था। नारायण ने मानवेद की प्रशस्ति में बताया है कि वे नाटक, व्याकरण, तर्क और काव्य में विशेष निष्णात थे। कृष्ण पिशारोटी से उन्होंने व्याकरण पढ़ा था।

मानवेद ने १६४३ ई० में पूर्वभारतचम्पू की रचना की थी। इसके द्वारा उन्होंने अनन्तभट्ट के अपूर्ण भारत चम्पू को पूरा किया था।

कृष्णगीति में जयदेव के गीतगोविन्द के आदर्श पर आठ परिच्छेदों में कृष्ण का समग्र जीवन जन्मोत्सव से देवलोकगमन पर्यन्त भागवत पर आधारित चरित वर्णित है।[1] इसमें गीतियों के साथ ही पद्यों में भी आख्यान हैं। कहते हैं कि इसी नाट्य के आदर्श पर कथाकली का विकास हुआ था। गुरुवयूर के मन्दिर में अब तक प्रतिवर्ष इसका अभिनय होता है। इसकी रचना १६५२ ई० में हुई थी।

कृष्णनाटक के कुछ गीत जगद्विजयच्छन्द की परम्परा में प्रतीत होते हैं। यथा,

'विलसितहृदयविकार विरहितविविधविचार।
विलुलितपृथुकुचभार मदचलमदनागार॥
मसृणितनियतस्वार मुखरितरशनावार।
मुकुलितनयनमसारम्।'[2] इत्यादि पृष्ठ १०६ पर

मानवेद को स्वल्पतम अक्षरों के पाद वाले पद्यों की रचना का विशेष चाव था, किन्तु दण्डक कोटि के सुदीर्घ पद्य भी अनेक हैं।

कृष्णनाटक गीतनाट्य है। इसमें आख्यान तत्त्व पद्यों में और भाव विशिष्ट तत्त्व गीतों में दिये गये हैं। गीतों का भावात्मक अभिनय नृत्य के द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। गीतों में अनुप्रासात्मक ध्वनियों का सामञ्जस्य सुसगत है। कहीं-कहीं कीतन की माधुरी प्रस्तुत है। यथा,

कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम
कृष्ण राम तव तु नटनमधिक-मोहनम्।
याम इमे शरण त्वा यदुवर, याम इमे शरण त्वाम्।

---

१ भागवत के अतिरिक्त हरिवंशादि पुराणों से कतिपय कथांश गृहीत हैं। यथा हरिवंश से कैलास-यात्रा-चरित। कतिपय अंश कृष्ण-विलास पर आधारित हैं।

२ ऐसे ही पद्य पृष्ठ ६१ पर
"मकर-कुण्डल गण्डमण्डन वदन-मण्डल तापखण्डन" आदि हैं। इन दोनों कृतियों का समय तो प्रायः एक ही है, पर उद्भव-स्थान अतिदूर हैं।

गीत-दिगम्बर

चार अंकों के गीतदिगम्बर के रचयिता वंशमणि मैथिल ब्राह्मण के पिता रामचन्द्र थे।[1] वे नेपाल में राजाश्रित होकर रहने लगे थे। उन्होंने १६५५ ई० में काठमाण्डू में प्रतापमल्ल के *तुलापुरुष-दान के उपलक्ष्य में इसका प्रणयन किया था।* महाराज ने इस अवसर पर कवच-सहित अपने बराबर स्वर्णादि रत्नों का दान ब्राह्मणों को दिया था। उस समय उपस्थित राजाओं और विद्वानों के मनोरंजन के लिए इस नाटक का प्रयोग हुआ था। प्रताप स्वयं उच्चकोटि के कवि थे। उनके विरचित अष्टक अब भी शिलाओं पर उत्कीर्ण मिलते हैं।

हास्यसागर-प्रहसन

हास्यसागर-प्रहसन के प्रणेता रामानन्द ने इस कृति में अपना संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया है[2]—'श्री सरयूपारीण मधुकरात्मज रामानन्द' इत्यादि। अपने युग में रामानन्द की प्रतिभा काशी को प्रकाशित करती थी। १६५६ ई० में दारा शिकोह ने इनसे विराड्विवरण नामक ग्रन्थ लिखने की प्रार्थना की थी।[3] इस प्रकरण से रामानन्द का मानवतावादी होना प्रमाणित होता है। कवि का साहित्य विद्या के साथ ही षड्दर्शन पर अधिकार था। काशी के इतिहास में मोतीचन्द्र ने उनके *द्वारा प्रणीत अन्य ग्रन्थों की चर्चा की है*—रसिकजीवन, पद्यपीयूष, काशी कुतूहल और रामचरित्र। इन्होंने किरातार्जुनीय की भावार्थ दीपिका टीका लिखी। ऐसे बड़े विद्वान के योग्य हास्यसागर नहीं प्रतीत होता। इसमें कुलकलंकिनी ब्राह्मण वधू विन्दुमती की कुट्टनी कलहप्रिया उसे मान्दुरिक नामक यवन के सम्पर्क में लाती है। विन्दुमती का भाई कुलकुठार राजा के पास इस दुर्वृत्त को पहुँचाता है और वहीं कुलकलंकिनी का भण्डाफोड़ होता है।

रामानन्द ने इस प्रहसन में संस्कृत के साथ हिन्दी का भी प्रयोग किया है। इसमें हिन्दी के पाँच पद्य छप्पय छन्द में लिखे गये हैं। संवाद एकमात्र संस्कृत में ही हैं। हिन्दी का नाटकों में प्रयोग का यह प्रथम उदाहरण प्रतीत होता है, यद्यपि उर्दू का प्रयोग १५ वीं शती के गंगा-प्रताप विलास नाटक में हुआ। इसकी उर्दू हिन्दी है केवल मुसलमान वक्ता के होने से फारसी और अरबी के शब्दों का बाहुल्य है।[4]

इस प्रहसन में रामानन्द ने हिन्दुओं की औरङ्गजेब-कालीन दुर्गति का चित्रण इस प्रकार किया है—

> हन्यते निर्निमित्तं सकलसुरमयो निर्दयैर्म्लेच्छजातै-
> र्दीर्यन्तेऽमी सदैवा सकलसुमनसामालयाश्चातिदीर्घाः।

---

१ कैटलोगोरम भाग २ में ३३ संख्यक।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति संस्कृत वि० विद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में है।

३ इसमें साकार ईश्वर की सार्थकता सिद्ध की गई है।

४ मध्यकालीन संस्कृत नाटक पृष्ठ ४१७।

पीड्यन्ते साधुलोका कठिनतरकरग्राहिभि कामचारै-
प्रत्यूहैस्तै ऋतूना समयमिव जगत्पामराणा कुमारै ॥

रामानन्द के कुल मे आज तक संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते आये है।[1] दारा ने इनके पाण्डित्य से प्रभावित होकर इन्हे विविध विद्या-चमत्कार-पारगत की उपाधि से मण्डित किया। औरंगजेब ने दारा को मरवा डाला। तब विपन्न होकर रामानन्द ने कहा—

दाराशाहविपत्सु हा कथमहो प्राणान गच्छन्त्यमी।

रामानन्द साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष और कर्मकाण्ड मे निष्णात थे।

इस प्रहसन मे कुछ अन्य पात्र मिथ्याशुक्ल तथा मण्डक-चतुर्वेदी है।

शृंगारवापिका

शृङ्गारवापिका[2] के प्रणेता विश्वनाथ भट्ट रानाडे मूलत कोङ्कण के चित्त पावन ब्राह्मण थे, किन्तु लोकानन्द की तुच्छता से प्रभावित होकर वे शिवशरण प्राप्ति के लिए काशी मे आ बसे। उन्होंने शम्भु-विलास नामक काव्य मे अपनी प्रवृत्ति का परिचय इस प्रकार दिया है—

मुक्त्वा वैषयिक सुख कविरसौ सञ्जात-बोधस्ततो।
दृश्य स्थावर-जगमात्मकमिद ज्ञात्वा प्रपञ्च मृषा॥
सर्वानन्दगृह परात्परतर श्रीराजराजेश्वरी—
रूप ब्रह्म हृदि स्मरन् शिववने काश्या स्थिति निर्ममे॥

विश्वनाथ के पिता महादेव भट्ट, और पितामह विष्णुभट्ट थे। उनके आचार्य दुण्ढिराज ने उन्हे अन्य शास्त्रो के साथ साहित्य विद्या मे पारङ्गत बनाया था। इनके दूसरे गुरु कमलाकर भट्ट थे।

विश्वनाथ ने शृङ्गार-वापिका नाटिका का प्रणयन आमेर के महाराज रामसिंह (१६६७-७५ ई०) के समाश्रय मे रहते हुए किया। इसकी कथावस्तु अधोलिखित है—

उज्जयिनी के चन्द्रकेतु और चम्पावती के राजा रत्नपाल की कन्या कान्तिमती का प्रथम प्रणयानुसधान स्वप्न द्वारा हुआ। स्वप्न की राजकुमारी से मिलने के लिये राजा चन्द्रकेतु सिद्ध योगिनी मुण्डमाला के द्वारा उससे सम्पर्क स्थापित करता है। योगिनी चम्पावती मे जा बसती है और चन्द्रकेतु उससे मिलने जाता है। उसे वहाँ के राजा का आतिथ्य प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रणयिनी नायिका से साक्षात्कार के क्षणो मे उनका प्रेम परा काष्ठा पर पहुँचता है। मुण्डमाला ने इस

१ इस समय इनके वशज श्री करुणापति त्रिपाठी संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति है।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, होशियारपुर म ३५६१ सख्यक है।

बीच कुलदेवी से रत्नपाल को स्वप्नादेश दिया कि कान्तिमती और चन्द्रकेतु का विवाह होना समीचीन है। नायक और नायिका का पाणिग्रहण होता है।

शृङ्गारवापिका का प्रथम अभिनय राजाराम सिंह की राजसभा के मनोरंजन के लिए हुआ था। इसमें कवि का एक प्रधान लक्ष्य है अपने आश्रयदाता रामसिंह की प्रशंसा करना। नाटिका के लगभग एक चौथाई भाग में रामसिंह की प्रशंसा है। इसके चौथे अङ्क में राजसभा की कविगोष्ठी के आयोजन का वर्णन है, जिसमें कवि सुभाषित और समस्यापूर्ति के पद गाते हैं। इस प्रकार नाटिका की रीति इस कोटि की रचनाओं से बहुत-कुछ भिन्न पड़ती है।

कवि को अपनी काव्यशैली पर वास्तविक अभिमान है। इस नाटिका में उसने २१ अक्षरों की स्रग्धरा में ६६ और १६ अक्षरों के शार्दूलविक्रीडित में १२३ पद्यों की रचना की है। ये दोनों संस्कृत के विकट छन्दों में से हैं। कवि के अन्य प्रिय छन्द १४ पद्यों में वसन्ततिलका, २० पद्यों में शिखरिणी और १० में पृथ्वी छन्द हैं। १७वीं शती के किसी कवि ने अपने बड़े से बड़े नाटक में २८ से अधिक पद्य स्रग्धरा में नहीं लिखे।

छन्दों की भाँति कवि ने अलंकारों के वैविध्य से भी अपनी रचना को मण्डित किया है। यथा श्लेष,

सद्वृत्ता सद्गुणोपेता सदलङ्कृति शोभना।
कान्ता कान्ता च कविता च कण्ठे भाग्यवता सदा।

सरल वैदर्भी रीति से नाटिका में सर्वत्र माधुर्य और प्रसाद गुण चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

इसमें कुछ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व की सूचनायें मिलती हैं। इसकी प्रस्तावना के अनुसार जयपुर के राजा महासिंह ने अनेक बड़े यज्ञ कराये थे।

मदनाभ्युदय-भाण

मदनाभ्युदय भाण की रचना सत्रहवीं शती में कृष्णमूर्ति ने की।[1] कृष्णमूर्ति के पिता सर्वशास्त्री वशिष्ठ गोत्री थे और उत्तरी-सरकार प्रदेश में रहते थे। कृष्णमूर्ति की प्रतिभा का विलास १७वीं शती के अन्तिम चरण में हुआ था। उन्होंने अपने आपको अभिनव कालिदास कहा है और मदनाभ्युदय भाण के अतिरिक्त यशोल्लास की रचना की, जिसमें उत्तरमेघ की कथावस्तु प्रपञ्चित है।

कुशलव-विजय

कुशलव-विजय नाटक के प्रणेता सत्रहवीं शती के वेंकटाद्रि के पुत्र वेङ्कटकृष्ण दीक्षित तञ्जौर के श्री शाहजी महाराज के आश्रित थे।[2] वे उच्चकोटि के महाकवि थे।

१ मदनाभ्युदय भाण की प्रति Triennial Cat of Skt Mss in Oriental Library में खण्ड २ में २०३१ संख्यक है।

२ कुशलव विजय नाटक की हस्तलिखित प्रति ट्रावनकोर में ७६ संख्यक है।

उन्होंने नटेश-विजय-काव्य, श्रीराम-चन्द्रोदय-काव्य और उत्तरचम्पू की रचना की थी।

वेङ्कटकृष्ण को १६९३ ई० में शाहजीपुरम् के अग्रहार में भाग मिला था। उन्होंने शाहजी की इच्छा से इस नाटक का प्रणयन किया था।

युक्तिप्रबोध नाटक

मेघविजय गणी युक्तिप्रबोध नाटक के रचयिता हैं।[1] सत्रहवीं शती में मेघ विजय औरंगजेब के समकालीन थे। इनके गुरु कृपाविजय और विजय प्रभसूरि थे। उन्होंने साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष और न्याय-शास्त्रों में प्रचुर पाण्डित्य प्राप्त करके अपने उच्चकोटिक ग्रन्थों की रचना की। इनका सप्त-सन्धान काव्य अपनी कोटि की एक निराली रचना है। इनके देवानन्दाभ्युदय में विजयदेव सूरि का चरित वर्णित है। इसकी रचना १६७१ ई० में हुई। शान्तिनाथ-चरित में इन्होंने नैषधीय-चरित की कविता को समस्या रूप में गूँथा है। इनका मेघदूत समस्या लेख में विजय प्रभसूरि से अपने को प्राप्त सदेशामृत का वर्णन है। इन्ही सूरिका चरित उन्होंने दिग्विजय महाकाव्य में वर्णन किया है।

मेघविजय ने युक्तिप्रबोध नाटक में न्यायदर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रतीक पात्रों के सहारे किया है। इसमें १२ वी शती के अमृतचन्द्र-विरचित पद्यों के कतिपय उद्धरण संस्कृत और प्राकृत में मिलते हैं। इसकी रचना लगभग १७०० ई० में हुई। लेखक ने स्वयं इसकी टीका भी लिखी है। इसका प्रधान उद्देश्य है प० बनारसीदास के मत का खण्डन करना, जैसे नीचे लिखे पद्य से प्रकट है—

पणमियवीरजिणिन्द दुम्मयमयमय विमद्धणमयद।
कुच्छ सुयणहितत्थ वाणारसियस्स नयभेद ॥१८

बनारसीदास ने अपने न्याय-सम्बन्धी सम्प्रदाय की स्थापना वि० स० १६८० में की थी।[2]

रतिमन्मथ

रतिमन्मथ नामक नाटक के प्रणेता जगन्नाथ हैं। जगन्नाथ के पिता बालकृष्ण तंजौर के राजा एकोजी (१६७५–१६८४) के मन्त्री थे। जगन्नाथ की दूसरी कृति शरभराज विलास है। इनका दूसरा नाटक वसुमती परिणय है। जगन्नाथ स्वयं सरफोजी प्रथम (१७१२–१७२८ ई०) के आश्रित थे। स्टेनकोनो के अनुसार जगन्नाथ के गुरु कामेश्वर थे। ये वही जगन्नाथ हो सकते हैं, जो तंजौर के थे और शाहजहाँ के पुत्र दारा से सम्बद्ध थे। जगन्नाथ ने वसुमती-परिणय नाटक की भी रचना की थी।

---

१ इसका प्रकाशन ऋषभदेव-केसरीमल-श्वेताम्बर-संस्था, रतलाम से हो चुका है। इसकी रचना लेखक ने आगरे में रहते हुए की थी।

२ यही बनारसीदास समयसार नामक हिन्दी के नाटक के रचयिता हैं।

३ हस्तलिखित प्रति तंजौर महल पुस्तकालय म भाग ८ में ३४६० सख्यक है। इसका प्रकाशन बम्बई से (१८९०–९१) में हो चुका है।
ZDMG 42 P 554

अतन्द्रचन्द्र-प्रकरण

अतन्द्रचन्द्र प्रकरण के रचयिता जगन्नाथ के आश्रयदाता फतेहशाह का शासन-काल १६८४ से १७१६ ई० है।[1] कवि तीरभुक्ति के प्रख्यात काव्यजीवी वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह रामभद्र उच्चकोटि के कवि थे। उनके अन्य तीन बड़े भाई सुयोग्य विद्वान थे। जगन्नाथ के पिता पीताम्बर थे।

जगन्नाथ की रचनाओं में से अभी तक यही उपलब्ध है। इसका प्रणयन आश्रय-दाता और उसके सामन्तों के मनोरंजन के उद्देश्य से किया गया था। इसमें सात अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय फतेहशाह की राजसभा के मनोरंजन के लिए हुआ था।

कथानक

अतन्द्रचन्द्र के चरितनायक प्रकृति के प्राङ्गण में विचरण करने वाले तत्त्व पुरुष-रूप हैं। इसका नायक चन्द्र है, जिसका चन्द्रिका से अनुराग प्ररूढ हुआ। दूसरा नायक सागर है, जिसका चन्द्रकला से प्रणय-व्यापार चल रहा है। चन्द्रिका को अपने प्रणय पाश में आबद्ध करने के लिए प्रतिनायक है तमिस्रा का पुत्र विमूढ, जिसकी सहायता कादम्बिनी नामक सिद्धयोगिनी कर रही है और जिसकी योजना के फलस्वरूप चन्द्रिका का विवाह विमूढ से आयोजित तो हुआ, किन्तु सानुमती नामक योगिनी के प्रपंच द्वारा चन्द्रिका-वेशधारिणी उसकी सखी कलावती से उस अवसर पर उसका विवाह हुआ। विवाह के अनन्तर कलावती ने एक और जाल रचा। वह चन्द्रकला नामक विमूढ की बहिन को सागर नामक नायक से संगमित कराने का प्रलोभन देकर अपने साथ ले गई। विमूढ ने समझ लिया कि यह सब चन्द्र और सागर के करतब हैं। उसने ससैन्य उन दोनों पर आक्रमण कर दिया, पर हार गया।

कादम्बिनी ने तिरस्करिणी विद्या के प्रयोग से चन्द्रिका का अपहरण करवाया। वियुक्त होने पर नायक चन्द्र मरना चाहता था। उसके मित्र सागर ने भी उसके साथ ही निराश होकर मर जाना ही श्रेयस्कर समझा। ऐसी स्थिति में चन्द्रिका की पक्षधारिणी शारदा नामक योगिनी ने चन्द्रिका को आकर्षिणी विद्या के प्रयोग से चन्द्र के लिए बचा लिया। उन दोनों का प्रणय प्ररूढ हुआ। चन्द्रकला तो सागर की हो ही चुकी थी।

अतन्द्रचन्द्र-स्त्री प्रधान रूपक है। इसकी प्रकृति में पुरुष तो केवल पाँच हैं, किन्तु स्त्रियाँ १३ हैं। अपवाद रूप से ही रूपकों में स्त्रीप्रकृति पुरुष-प्रकृति से अधिक होती है।

इस रूपक में तिलस्मी जादूगरी के करतब अद्भुत हैं। योगिनियों के कार्यकलाप साधारण स्तर के दर्शकों के लिए विशेष रुचिकर हैं। यथा शारदा की आकर्षिणी विद्या का प्रभाव है—

1 इसकी हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओ० रि० इ०, पूना में है।

यद्यस्ति त्रिदशालये सुरबुधवृन्देभससेविते।
पाताले यदि वा किमु प्रियचरभूलोकयास्ते यदि ॥
अम्भोधौ जलधौगिरावपि वने लीलामहो चन्द्रिका-
माकर्षामि समाधिवैभवफल सम्पश्यतु मामकम् ॥

जगन्नाथ कवि का सुप्रिय छन्द इस शती की छान्दसिक प्रवृत्ति के अनुरूप शार्दूलविक्रीडित था, जिसमे उन्होने ८४ पद्य लिखे, जो उनके सभी पद्यो के लगभग आधे पडते हैं। शार्दूलविक्रीडित इस युग का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द रहा। इसके बाद अनुष्टप् और वसन्ततिलका आते हैं, जिनकी सख्या नाटको मे शार्दूलविक्रीडित से आधी ही है।

जहाँ सिद्धयोगियो का कार्य व्यापार है, वहाँ शैली का गूढ होना स्वाभाविक ही है। कवि ने प्रणय की चर्चा मे वैदर्भी रीति और माधुर्य-गुण का प्ररोचन किया है। छठें और सातवें अङ्क मे माया और युद्ध के प्रसगो मे ओजोगुण के योग्य पदरचना क्लिष्ट है। मायात्मक आरभटी वृत्ति इसमे पर्याप्त सफल है।

इस युग मे प्रकरणो का प्राय अभाव रहा है। जगन्नाथ की यह रचना इस कारण भी महत्त्वपूर्ण है।

जगन्नाथ ने अतन्द्रचन्द्र के चतुर्थ अङ्क मे अपने वर्णनो से प्राय समग्र भारत की प्राकृतिक विभूतियो का सग्रहण किया है। गोदावरी, गगा आदि नदियो, पचवटी तथा विन्ध्यारण्य आदि के उनके वर्णनो से भवभूति का स्मरण होता है। इस प्रकरण मे चन्द्र और सागर की ओर से युद्ध करने वाली सेना का कार्यकलाप उल्लेखनीय है। हाथियो के चिग्घाड की चर्चा जैसी इसमे हैं, वैसी अन्यत्र कम ही मिलती है।[1]

कल्याणपुरजन

कल्याणपुरञ्जन के रचयिता शठमर्षण गोत्र के तिरुमलाचार्य तेलङ्गाना मे गडवल के रहने वाले थे।[2] गडवल के रेड्डी नरेश सस्कृत-विद्या के उन्नायक थे। कवि के आश्रयदाता पालभूपाल थे। कल्याणपुरजन मे केवल दो अङ्क हैं।

१ अतन्द्रचन्द्र ६ ३

२ इसकी हस्तलिखित प्रति मैसूर कैटेलग भाग ? पृ० ७७५ सख्या १८६४ मे निर्दिशित है।

अठारहवीं शती के नाटक

अध्याय ३७

शाहजी महाराज की नाट्यकृतियाँ

तञ्जौर में महाराष्ट्रिय राजाओं ने संस्कृत-साहित्य की विशेष अभिवृद्धि की। इनमें से कई राजा विद्वान साहित्यकार हुए। महाराज शाहजी को इस दिशा में अपनी विशेष उपलब्धियों के कारण धारा के भोज की ख्याति प्राप्त थी।

शाहजी का जन्म १६७२ ई० में हुआ था। उनका शासनकाल १६८४ ई० से १७१४ ई० तक है। इनके आश्रित कवियों में संगीत और साहित्य-विद्या में परम निष्णात गिरिराज कवि हुए। इनकी तत्सम्बन्धी रचनाओं से सम्भवतः शाहजी को प्रेरणा मिली हो। शाहजी ने अनेक संगीत-रूपकों का प्रणयन किया। इनमें से चन्द्र-शेखर-विलास विशुद्ध संस्कृत में है। शेष विविध भाषाओं में रचित हैं।[1]

संगीत-रूपकों को यक्षगान या अभिनय-रूपक भी कहते हैं। इनका समारम्भ और विकास यक्षवर्ग के संगीत प्रेमी लोगों में हुआ और उन्हें देशी नाट्यविधा कह सकते हैं। यक्ष लोग इस कोटि के रूपकों के द्वारा सार्वजनिक मनोरंजन करते रहे हैं। शनैः शनैः इनकी लोकप्रियता बढ़ी और सुसंस्कृत वर्ग ने इस नाट्यविधा को अपना लिया। तञ्जौर में नायकवंशी राजाओं के समुदय के समय तेलुगु भाषा में रचित यक्षगानों का विशेष प्रचार हुआ।

महाराज शाहजी के शासन काल में तेलुगु के अतिरिक्त संस्कृत, तमिल, महाराष्ट्री, हिन्दी आदि भाषाओं में भी यक्षगानों की रचना होने लगी। ऐसी रचना संस्कृत साहित्य की एक नई शाखा-रूप में विकसित हुई।

शाहजी ने चन्द्रशेखर-विलास के अतिरिक्त पञ्चभाषा-विलास नामक यक्षगान की रचना की। इसमें संस्कृत की प्राथमिकता तो अवश्य है, किन्तु इसके साथ ही तमिल, तेलुगु महाराष्ट्री और हिन्दी-भाषा-भाषी, अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं।

शाहजी के दो यक्षगान हिन्दी में मिलते हैं—विश्वातीत-विलास नाटक तथा राधा-वंशीधर-विलास नाटक। उन्होंने शब्दरत्न-समन्वय-कोष तथा शब्दार्थ-संग्रह की रचना की। तेलुगु और मराठी में उनकी अनेक रचनायें हैं।

चन्द्रशेखर-विलास की रचना कब हुई? इस प्रश्न का निश्चित समाधान अभी तक नहीं हो सका है। इसकी सर्वप्रथम हस्तलिखित प्रति १७०१ ई० की मिलती है। सम्भव है, यह १७०१ ई० में लिखा गया हो, अथवा इसे १७ वीं शती के अन्तिम छोर पर रखना उचित होगा।

शाहजी ने अपने यक्षगानों की कोटि महानाटक बनाई है। चन्द्रशेखर-विलास के आरम्भ में सूत्रधार कहता है—'अस्मिन् चन्द्रशेखर-विलास-महानाटके' इत्यादि। इसके अन्त में सूत्रधार कहता है—

---

१ चन्द्रशेखर-विलास का प्रकाशन तञ्जौर से १९६३ ई० में हुआ था।

इति श्रीमद् भोसलकुलाम्बुधिसुधाकर श्रीशाहजी-महाराजविरचित चन्द्रशेखरविलासमहानाटकम्' इत्यादि। इसको नाटक या महानाटक भरत की परिभाषा के अनुसार माना ही नहीं जा सकता। इसकी सारी सामग्री अधिक से अधिक एकांकी के बराबर है। इसमें अङ्कों के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से विभाजन भी नहीं मिलता। इसमें नान्दी, प्रस्तावना, आमुख आदि भी प्राचीन रूप में नहीं हैं। इसकी वस्तु की प्रस्तावना कंचुकी करता है। आन्ध्र-भाषा के यक्षगान के समान इसमें दरु, चूर्णिका, पद आदि का प्रयोग मिलता है। पहले के संस्कृत-नाटकों में ये नहीं मिलते हैं।

यक्षगान गीत-प्रधान हैं। इसके आरम्भ, मध्य और अन्त में गीतों का सम्भार है। गीत के पश्चात् नृत्य का स्थान है। इसमें विघ्नराज का नृत्य अभिप्रेत है।

कथावस्तु

इन्द्र अपनी सभा में पधारते हैं। नृत्य-कौतुक देखने की इच्छा देवाङ्गनाओं के आगमन से पूरी की जाती है। वे नाचती-गाती हैं। सभी देवता इन्द्र की शरण में आ पहुँचते हैं। नारदादि मुनि भी आते हैं। सभी इन्द्र से कहते हैं कि कालकूट का अतिदारुण भय है। इन्द्र ने कहा कि इस भय को मैं दूर करने में असमर्थ हूँ। हम सब ब्रह्मा के पास चलें। पर ब्रह्मा स्वयं वहाँ आ पहुँचे। सबने उनसे कहा—

अद्य अतिसत्वर पाहि गरलात् कमलसम्भव।

ब्रह्मा ने कहा कि मेरे लिए यह शक्य नहीं। हम सभी विष्णु के पास चलें। ब्रह्मा ने स्वयं विष्णु से कहा—

अस्मदार्तित्राणपरायणेन भवताधुना भवितव्यम्।

विष्णु ने कहा कि शङ्कर के बिना और कोई आप लोगों का भय दूर नहीं कर सकता। थोड़ी देर में शिव वहाँ आ पहुँचे। विष्णु ने शिव की स्तुति की—

शरणं शरणं भवच्चरणमस्माकं हर परिहर शीघ्रमखिलदुरितम्॥

सभी देवताओं ने शिव से निवेदन किया—

भयमखिलं निवारयाभयं विनरं दयया
भयदं कालकूटं वारयोद्भटं सकटादुत्तारय॥

तब तो कात्यायनी ने उन सबको डाँट लगाई—

क्षीराब्धिसम्भवानि स्वीकृतानि सुवस्तूनि
दारुणं कालकूटं दातुं हरायागता किम्॥

पर शिव ने उन्हें आश्वासन दिया कि आपका भय दूर करने के लिए मैं अमृत के समान विष को पी जाऊँगा।

देवों ने शिव को हालाहल दिखा कर उनकी स्तुति की—

हालाहलं पश्य त्रिपुरहर देव अनन्तभयप्रदमिदं त्रिपुरहर।
कालाग्निरूपमिदं त्रिपुरहर लोककण्टकमिदं दुस्सहमिदं त्रिपुरहर॥ इत्यादि

शिव ने उसका आचमन करना आरम्भ किया। पार्वती ने देखा कि शिव के उदर में जगत् है। कहीं गरल उसे नष्ट न कर दे। जगन्माता पार्वती ने शिव से कहा—

अन्तःस्थजगदवनाय हालाहल त्वया कवलितम्।
अन्तस्थजगदवनाय मया हालाहल त्वद्गलस्थ कृतम् ॥

देवताओं ने फिर शिव की स्तुति की। शिव ने उन्हे उत्तर दिया—

भक्त्या स्मरणेन शुद्धभावेन मा नित्य
युक्त्या पूजया भजत युष्मानभितोऽधिकृम् ॥

नारदादि मुनियों न मङ्गलगान किया।

मगल शशिधराय मगल शिवाय
प्रणतार्तिहराय परमेश्वराय प्रणवस्वरूपाय कालनेत्राय।
फणिराजभूषाय प्रमथनाथाय कनकाद्रिचापाय कालकठाय ॥

अन्त म ग्रन्थ श्रीत्यागेश साम्बशिव को अर्पित है।

नाट्यशिल्प

चन्द्रशेखर-विलास मे सूत्रधार रगमच पर आद्यन्त रह जाता है। वह निवेदक की भाँति आगे आने वाली घटनाओ की सूचना रगमच से देता रहता है और *आवश्यकतानुसार कभी कभी अन्य पात्रो से सवाद भी करता है।*[1] यथा,

सूत्रधार —एव कचुकिमुखात् सभासज्जीकरण श्रुत्वा इन्द्र- समायाति। पश्यन्तु सभासद ।

इन्द्र के आने के पश्चात् वह पुन सूचना देता है—

एव कचुकिना आहूता देवाङ्गना समायान्ति।

सूत्रधार अपनी सूचनाओ को प्राय पद्यो मे विविध रागो मे गाकर सुनाता है, साथ ही नायको का लोकरजक वणन करता है। यथा,

अलिनीलवेणी अम्बुजपाणी सुकेशी समायाति, इन्द्रसमाजम्।
काञ्चन-कलशस्तनी कमनीयकोकिलवाणी ऊर्वशी समायाति इन्द्रसमाजम् ॥

रगमच के दो भाग हैं। कतिपय पात्र एक भाग से दूतो द्वारा दूसरे भाग के पात्रो को सवाद भेजते हैं। दृश्य स्थली बदलने के लिए कहीं-कहीं पात्रो का परिभ्रमण-(थोडा चलना फिरना) मात्र पर्याप्त है।

भाषा-वैचित्र्य

सस्कृत को उत्कृष्टता प्रदान करने हुए कवि न उसे तेलुगु से ससृष्ट रखा है। यथा,

राजीवलोचनू रे राकेन्दुवदनू रे आजिजितदनुजू रे अमरेन्द्र मा पाहि रे
सारि साधा पथसरि गागा रि रि सारि गाधा इत्यादि।

इस पद्य मे लोचनू, वदनू अनुजू आदि तेलुगु के रूप हैं।

---

1 अर्थोपक्षेपक की सारी सामग्री सूत्रधार के निवेदन-रूप मे मिलती है।

इस यक्षज्ञान में शिष्य तेलुगु बोलता है, एक मुनि भी तेलुगु बोलता है। इनकी भाषा नितान्त सरल, सुबोध और सर्वथा संगीतमयी है।

रस

यक्षगान कोटि के रूपक में शृङ्गार की विशेषता स्वाभाविक है। देवाङ्गनायें नीचे लिखे शृङ्गारित पद्य का नृत्य इन्द्र के प्रीत्यर्थ करती हैं—

सललित दयया स्तनयुगले नखक्षतममित कुरु विभो।
कलितप्रीत्या मामालिंग्याधरं गाढं चुम्ब रमस्व मया सह॥

व्यञ्जना का अभाव ऐसे स्थलों पर ग्राम्य दोष का परिचायक है।

पंचभाषा-विलास

पंचभाषा-विलास शाहजी की दूसरी संस्कृत नाटकीय कृति है।[1] इसमें कृष्ण का चार नायिकाओं से प्रेम-निवेदन है। आरम्भ में गणेश की पूजा होती है, जिसमें परिचारिका नट, देवदासी और शहनाई-वादक भाग लेते हैं। सूत्रधार संवाद देता है कि द्रविड देश की राजकुमारी कान्तिमती शृङ्गार-वन में आई है। तभी उधर से कंचुकी आता दिखाई पड़ा। कंचुकी के साथ ओछा व्यवहार करने पर सूत्रधार आदि को सुनना पड़ा कि आप लोग वेश्यापुत्र हैं।

कान्तिमती ने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में कृष्ण को देखा था और उनके रूप-गुण पर मुग्ध होकर उन्हीं की बन कर रहना चाहती थी। शृंगार-वन में अपने प्रणय का निवेदन करती हुई वह कहती है कि जिस दिन से मैंने श्रीकृष्ण को देखा है, उसी दिन से काम-पीड़ित हूँ। उसके रंगमंच छोड़ देने पर उसी जैसी आन्ध्र-देश की राजकुमारी कलानिधि रंगमंच पर आती है। वह राजसूय-यज्ञ में श्रीकृष्ण को देखकर मोहित होने पर शृंगार वन में आ पहुँची है और अपनी उद्दाम प्रेमभावना को विस्तार से प्रकट करती है। उसकी सखी उसकी बातें सुनाती हैं। वह रंगमंच से चली जाती है।

तीसरी नायिका महाराष्ट्र राजकुमारी कोकिलवाणी है। उसका सौन्दर्य निरूपण सूत्रधार आदि करते हैं। अंत में रंगमंच पर आकर वह अपना विरह निवेदन करती है कि कैसे कृष्ण के प्रेमपाश में निगडित होने पर कामदेव के द्वारा सताई जा रही हूँ।

इसके पश्चात् उत्तर देश की राजकुमारी सरसशिखामणि रंगमंच पर आती है। वह कृष्ण के प्रति अपनी आसक्ति का वर्णन सखियों से करती है—

विरह सतावे मोहे छनछन माई। उन बिन मोहे कल न परत है।
कइसे रहूँ निसवासर हो माई। तन तपता है उनके मिलवे कूँ॥
नैन पेशेद के उर मले सखी। ध्यान न जानो मन्त्र न जानो।

1 इसका प्रकाशन T M S S M Library के जर्नल में १८ ३ तथा १९ १-३ में हो चुका है।

जानो उनही को नाव सखो । सम्पद सुखानन्द वो हि दीनो हर ॥
ओहि के जतावे जाने दे मखी ॥

यमुना-तट पर सखाओं के साथ वनविहार करते हुए कृष्ण को कचुकी विरहिणियों की अवस्था बताता है। इधर इन कन्याओं में कृष्ण-प्रेम के तारतम्य को लेकर परस्पर विवाद होता है। द्राविड और आन्ध्र-भाषिणी नायिकायें एक-दूसरे को समझती हैं और परस्पर कलह करती हैं। महाराष्ट्र और उत्तर देश की नायिकायें परस्पर कलह करते हुए एक दूसरे की बात समझती हैं। कलहवार्ता को सुनकर कृष्ण ने सवभाषाविद् नमसचिव को उनसे बात करने के लिए भेजा। नायिकायें संस्कृत नहीं समझती थी। नमसचिव ने पहले द्राविड भाषा में वार्तालाप किया। कान्तिमती ने उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। कलानिधि से बातें तेलुगु में हुई और कोकिलवाणी से मराठी में। सरसशिखामणि से बातें हिन्दी में हुई। अन्त में उसने कृष्ण से उनकी प्रणय-गाथा सुनाई। कृष्ण से उसकी बातें संस्कृत में हुई। कृष्ण की अनुमति से सभी नायिकायें विवाह के लिए कृष्ण के पास आई। उनका वर्णन है—

कन्निर्फकल् नालुपेरु कूडि	(द्राविड)
कनकभूपाणालु घरिचि	(तेलुगु)
मान्यभावे भक्तिनें	(मराठी)
माधव से मिलने चले	(हिन्दी)
पश्यन्त्वसिलजना ।	(संस्कृत)

पुरोहित काशीभट्ट की सहायता से सबका कृष्ण से विवाह हुआ। वे सभी प्रसन्नता-पूर्वक कृष्ण के साहचर्य में अपनी इच्छापूर्ति में लग गई।

ऐसा लगता है कि यक्षगान का अनुरंजन प्राकृत जनोचित है। इनमें नायिकायें अपनी मनोव्यथा व्यञ्जना से न कहकर अभिधा से प्रकट करती हैं। यथा कोकिल-वाणी का कहना है—

मेरा जीवन व्यर्थ है। करिकुम्भ गर्वापहारी, कनककलश के समान मेरे स्तन कृष्ण-समागम के बिना व्यर्थ हैं, इत्यादि।

नाट्य में परवर्ती अन्य भाषाओं का सामञ्जस्य दिखाया गया है। यही इसकी प्रमुख विशेषता है।

०

आनन्दलतिका

आनन्दलतिका के प्रणेता कृष्णनाथ सार्वभौम, भट्टाचार्य हैं[1]। इनके पिता का नाम श्री दुर्गादास चक्रवर्ती था। दुर्गादास कृष्ण-भक्त थे। कवि का आश्रयदाता सामन्त चिन्तामणि नामक था। कन्या का विवाह होने पर जब वह पति के घर चली गई तो चिन्तामणि अयमनस्क थे। उनका मनोविनोद करने के लिए आनन्दलतिका का प्रथम प्रयोग हुआ था।

कवि के प्रारम्भिक आश्रयदाता चिन्तामणि के विषय में अन्य विवरण अज्ञात हैं। इनके अन्य आश्रयदाता रामजीवन का नाम उल्लेखनीय है। रामजीवन के पुत्र का नाम रघुनाथ राय (१७१५-१७२८ ई०) था। १७१५ ई० में रामजीवन की मृत्यु होने पर रघुनाथ राय राजा हुआ, जिसका समाश्रय कवि को प्राप्त हुआ। रामजीवन की राजधानी नाटौर में थी। रामजीवन के पितामह राजाराम कृष्णराय ने १७०३ ई० में कविवर को भूमि दान में दी थी, जिसे कवि ने अपने शिष्य रामजीवन पचानन को १७१६-१७ ई० में दे दिया था।

कृष्णनाथ ने पदाङ्क-दूत की रचना १७२३ ई० में की थी। पदाङ्कदूत प्रौढ कवित्व से निर्भर है। आनन्दलतिका की रचना इसके पहले हुई होगी। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है—

अभिनवकविकवितेयं भरति न वा रुचमेनदभिज्ञानाम्।
हरति वा वित्तचित्त चटुलयति मा हरेर्गुणानुवाद ॥

ऐसी स्थिति में इसकी रचना ७१५ ई० के पूर्व हुई—यह सम्भावना है। आनन्दलतिका के अतिरिक्त कृष्णनाथ ने पदाङ्कदूत में मेघदूत के आदर्श पर गोपियों के द्वारा कृष्ण के पदचिह्नों को दूत बनाकर वृन्दावन भेजा है। उनके कृष्ण-पदामृत में कृष्ण की स्तुति है और मुकुन्दपद-माधुरी में कारिकायें सटीक प्रणीत हैं। कृष्णनाथ यथानाम कृष्णोपासक थे।

कथावस्तु

आनन्दलतिका के पाँच कुसुमों में साम और रेवा के परिणय की कथा है। एक बार नारद कृष्ण के पास आये। कृष्ण उनके चरणों में गिर पड़े। फिर कृष्ण उन्हें कालिन्दी के घर में ले गये। नारद ने कृष्ण को बताया कि राजा दमन की कन्या रेवा अनुपम गुणों से मण्डित है। तुम्हारा पुत्र साम अपने योग्य कन्या ढूँढते हुए मेरे द्वारा प्रदत्त विद्या के सहारे अदृश्य रहकर दमन की नगरी में प्रवेश कर गया। राजा के अन्तःपुर में रेवा से उसका मिलन हुआ। दोनों में प्रगाढ प्रेम उत्पन्न हुआ।

---

१ यह रूपक संस्कृत साहित्य-परिषद् पत्रिका २३ १ तथा इसके पश्चात् के अङ्कों में अंशतः प्रकाशित है। इसकी अप्रकाशित पूर्ण प्रति लन्दन की इण्डिया आफिस की लाइब्रेरी में मिलती है। इसकी एक प्रति ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

नायक ने अपने मित्र सुमूति (उद्धव के पुत्र) से सब बातें बताई और नायिका का चित्र बना दिया।

दमन ने रेवा का स्वयवर रचा। अनेक राजकुमार आये। स्वयवर में राजकुमारी की ओर से एक समस्या अभ्यर्थियो की पूर्ति के लिए रखी गई, जो इस प्रकार थी—

रौपाभित्रो धीरसमोऽप्यधीर को मित्रजामित्रजनप्रसूत ॥

अन्य राजकुमार इसकी पूर्ति मे असफल रहे। साम ने अन्तिम दो पादो की इस प्रकार रचना करके सफलता पाई—

कृष्णात्मजोऽसौ सम एव नान्य प्रासूनकालिन्द्यपि य स एव ॥७६

उसे रेवा ने जयमाला पहना दी। विवाह हो जाने के पश्चात् शीघ्र ही रेवा के पतिगृह जाने का मुहूर्त आया। राजा दमन उसके प्रस्थान के समय विलाप करते हुए कहने लगा—

रेवा याम्यति हन्त नाथ निलय बालानभिज्ञा कथ
शुश्रूषा प्रविधास्यति श्वसुरयो पत्युर्मनोरक्षणम्।
क्षुद्दृत्तापविपीडिता च कुलजा कस्मै किलाख्यास्यते
शून्यान्येव दिवा मुखानि किमहो पश्यामि ता चिन्तयन्॥

यह कह कर राजा रोने लगा।

मन्त्री न राजा को समझाया कि आप धैर्य धारण करें और प्रस्थान की अनुमति दें। राजा ने रेवा को सद्व्यवहार की सीख दी।

मार्ग में यात्रा करते हुए दम्पती अष्टावक्र के आश्रम मे महर्षि का दर्शन करते हैं। आश्रम है—

नानापुष्पितपादपा प्रतिदिशो नृत्यन्मयूरा स्थली
शाखायामभया पठन्ति किमहो सामानि शुद्ध शुका।
माध्वीकान्मधुर कपोलमधुलिट् पुस्कोकिलै क्षीयते
आघ्रातु रथवाजिनामपि मुखान्यायान्ति मुग्धा मृगा॥

सभी लोगो को छोड कर दम्पती अष्टावक्र से मिले। उनकी कृपा से तत्क्षण द्वारका जा पहुँचे।

नाट्यशिल्प

नाट्शिल्प की दृष्टि से आनन्दलतिका नई धारा का प्ररोचन करती है। इसमें अङ्कों के स्थान पर पाँच कुसुम मिलते हैं। सूत्रधार नान्दीपाठ द्वारा सभ्यो को आनन्द प्रदान करने के कारण आनन्दक कहा गया है। प्रस्तावना मे रगमच पर अकेले आनन्दक है, किन्तु प्रेक्षकों से उसकी बातचीत होती है। नान्दी सुनकर वे कहते हैं—

भो आनन्दक! साधु, साधु! नान्दीभिर्नन्दिता वयम्। किन्तु देवस्य चिन्नामणेर्जामातृपरिणेतृनीततनया निमित्तमन्यादृशमानसम्। तदस्य मनोनिर्वेदजनकमपि प्रबन्ध प्रस्तावय।

आनन्दक (सूत्रधार) कहता है—'श्रीकृष्णनाथकविना विरचितमानन्दलतिकानाम प्रबन्धमधीतवानस्मि ।' इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक स्वय आनन्दक है। प्रस्तावना के कतिपय दृश्य कार्य पाठको को सूचित किये गये हैं। यथा,

सभ्येषु निवेद्य नृपतिपुरत उपसृत्य प्रकटितकरपुटक प्रचलद्ववदल सविनयनमितकन्धर क्षितिपतिपदनिहित-नयनस्तिष्ठति ।

नाटक मे निवेदनो की अधिकता है। इनसे प्राय अर्थोपक्षेपक के प्रयोजन सिद्ध होते हैं। निवेदनो मे सवाद नही हैं, पर इनमे काव्यात्मकता उस अभाव की पूर्ति करता है। इस दृष्टि से यह हनुमन्नाटक की परम्परा मे आता है।



अध्याय ३६

घनश्याम की नाट्यकृतियाँ

घनश्याम का जन्म १७०० ई० के लगभग हुआ था। वे १८वीं शती में तन्जौर के भोसलावंशी राजा तुक्कोजी (१७२६–१७३५ ई०) के मन्त्री थे। इनके कुल में पाण्डित्य परम्परागत था। उनकी दोनों पत्नियाँ सुन्दरी और कमला परम विदुषी थीं और उन्होंने मिलजुल कर विद्धशाल-भञ्जिका की चमत्कार-तरंगिणी नामक टीका लिखी थी। इनके एक अमोघ पुत्र गोवर्धन ने भी घटकर्पर पर टीका रची।

घनश्याम में अनेक व्यक्तित्व समुदित थे। उन्होंने अपनी मानसी वृत्तियों का आकलन किया है—

दत्त्वा ग्रामान् द्विजेभ्य कृतमखबुधसात्कृत्यदन्तावलेन्द्रान्
कृत्वा श्रीपौण्डरीकं रचितवनमरं सत्रदेवालयादि।
नीत्वा ख्यातिप्रबन्धान् प्रथितरणयशा न्यस्य राज्येषु पुत्रा-
नन्ते संन्यस्य शम्भो त्वयि हृदिव वपुर्गाङ्गनीरेऽर्पयामि॥

नवग्रहचरित से।

डमरुक में सूत्रधार ने घनश्याम के विषय में कहा है—

षट्पड्भाषाकाव्यं नाटकभाणौ च सट्टकं चम्पू।
अन्यापदेशशतकं प्रहसनमपि येन लीलया ग्रथितम्॥

घनश्याम के विषय में लोकमत था—

बुद्ध्या वर्धितशैवपक्ष-निजदोर्दण्डात्तभाग्योपहृत्
प्रायो वैदिकलौकिकाध्वगनिमज्जनष्टप्रजन्योकर।
आनन्दाम्बुनिधे श्रियम्बककुलोद्धारकहेतो कवे
धीरश्रीसुरनीरपण्डितघनश्याम त्वमन्यादृश॥७

उनके विषय में किंवदन्ती थी कि वे सरस्वती हैं—

सरस्वती घनश्यामो घनश्यामः सरस्वती।५

बीस वर्ष की अवस्था में ही घनश्याम को सर्वोत्कृष्ट ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। सूत्रधार ने कुमारविजय नाटक की प्रस्तावना में कहा है—

स्वच्छन्दप्रबहन्मुधारसभरी कल्लोलहल्लोहला
हुकारोत्तरहृदियारसमहावाग्गुम्फनाप।
द्वैतध्वान्तदिवाकरं किल महाराष्ट्रैकचूडामणि
सन्तोषाय कुतूहलाय च घनश्यामो विजेजीयते॥

घनश्याम ने शैशव में ही काव्य-रचना में प्रकाम निपुणता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने केवल १२ वर्ष की अवस्था में युद्धकाण्ड-चम्पू लिखी। उस समय से आजीवन अहर्निश वे कुछ-न-कुछ लिखते रहे। कहते हैं कि उन्होंने सौ से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें से ६४ संस्कृत में तथा २० प्राकृत और अन्य इतर भाषाओं में थे। उनकी रचनायें अधिकांश तंजौर के सरस्वती भवन में प्राप्य हैं। उनके काव्य-धवलित अनेक नाम मिलते हैं। यथा, सर्वज्ञ, कण्ठीरव, सुरतीर, वश्यवाक् आदि। कवि की कुछ प्रमुख रचनाओं के नाम नीचे लिखे हैं—

रूपक

प्राप्त—कुमारविजय नाटक, मदनसंजीवन भाण, नवग्रहचरित, डमरुक, प्रचण्ड राहूदय, अनुभूति-चिन्तामणि नाटिका, प्रचण्डानुरंजन प्रहसन, आनन्द-सुन्दरी-सट्टक।[1]

अप्राप्त—गणेश-चरित, तिमठी-नाटक, एक डिम और एक व्यायोग—चारों का उल्लेख विद्धशालभंजिका की चमत्कार तरंगिणी टीका में मिलता है।

काव्य

प्राप्त—भगवत्पादचरित, षण्मतिमण्डन, अन्यापदेशशतक।

अप्राप्त—प्रसंगलीलार्णव, वेङ्कटेश-चरित स्थलमाहात्म्यपंचक।

टीकायें

प्राप्त—उत्तररामचरित, विद्धशालभंजिका, भारतचम्पू, नीलकण्ठविजयचम्पू, अभिज्ञानशाकुन्तल, दशकुमारचरित पर।

अप्राप्त—महावीरचरित, विक्रमोर्वशीय, वेणीसंहार, चण्डकौशिक, प्रबोध-चन्द्रोदय, वासवदत्ता, कादम्बरी, भोजचम्पू और गाथासप्तशती पर।

कलिदूषण नामक काव्य में घनश्याम ने ऐसे पद-विन्यास रखे थे, जो संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं से सिद्ध थे और कलि की दूषित प्रवृत्तियों का परिचय देते थे। घनश्याम का आवोधाकर श्लेष-काव्य अर्थी था, जिसका प्रत्येक श्लोक नल, हरिश्चन्द्र और कृष्ण-परक था।

कवि का लेखन अत्यन्त क्षिप्र गति से चलता था। उन्होंने मदन-सञ्जीवन भाण की रचना एक दिन में की थी।[2]

घनश्याम की मृत्यु १७५० ई० में हुई। वे २६ वर्ष की अवस्था में टुक्कोजी के मन्त्री हुए थे।

---

१. घनश्याम ने वैकुण्ठचरितसट्टक और एक अज्ञात-नाम सट्टक की भी रचना सम्भवतः की थी।

२. एकेनाह्ना कृतं तेन मयंकेन प्रयुज्यते। इत्यादि प्रस्तावना में।

मानुदत्तादि समसामयिक बहुत से कवियों ने घनश्याम की प्रशस्ति में कहा है—

वाग्देवीकरदण्डघातनलिकक्रीडा-विनिर्यत्सुधा–
सारासारमहापरीमलझरीमाधुर्य--वेगासह ।
गम्भीरं सग्लो विलेखनविलम्बेन क्षणापूरण
श्रीमान् भातिरमोमिल कविघनश्यामस्यवाग्गीभर ॥

घनश्याम पुरानी लकीर के फकीर नहीं थे। उन्होंने डमरुक नामक एक नाट्य विधा को संस्कृत के अभिनय-प्राङ्गण में प्रतिष्ठित किया। नवग्रह-चरित में रूपक की प्रस्तावना तथा नान्दी आदि की एक अभिनव दिशा मिलती है।

कुमारविजय

कुमारविजय का अपर नाम ब्रह्मानन्द विजय है, क्योंकि लेखक ने इसे अपने गुरु ब्रह्मानन्द के प्रसाद से लिखा। घनश्याम ने बीस वर्ष की अवस्था में कुमारविजय की रचना की।[1] इसके लिखने के पहले युद्धकाण्डचम्पू, मदनसंजीवन-भाण, मणिमण्डन (छः भाषाओं में), अन्यापदेश-शतक तथा आनन्द-सुन्दरी लिख चुके थे।

कुमार विजय का प्रथम अभिनय परिषद् में यह कहने पर हुआ कि 'सभाजन-समुचित किमपि रूपक निरूप्यतामिति'। इस वक्तव्य से प्रतीत होता है कि कुछ रूपक समाजन-समुचित नहीं माने जाते थे, फिर भी उनका अभिनय होता था। चण्डानुरंजन प्रहसन की प्रस्तावना में सूत्रधार ने जनमत स्पष्ट किया है कि—सभ्यजनानुचितमपि नायक प्रहसन मह्यमुपकरोति यदिदानीं प्रहसनस्य प्रयोक्ता मया भवितव्यमिति मसूचितोऽस्मि।

कथावस्तु

दक्ष-यज्ञ में पिता के न बुलाने पर और पति के अनुमति न देने पर भी सती वहाँ यज्ञस्थली में जा पहुँची। पिता के व्यंग्य करने पर सती ने आवेश में आकर अपने को अग्निसात् किया। फिर तो जब यह समाचार शिव को मिला तो क्रोधाविष्ट शङ्कर ने वीरभद्र की सृष्टि करके यज्ञ का विध्वंस करवा दिया। वीरभद्र ने शिव को बताया कि कैसे-कैसे क्या हुआ—ब्रह्मा के दाँत तोड़े, सरस्वती की वीणा फोड़ी, इन्द्र की टाँग मरोड़ी और भगाड़े विष्णु का केवल प्राण छोड़ा। पश्चात् सनत्कुमार ने आकर उनसे कहा कि आप धैर्य धारण करें। शिव ने उनकी बात मान ली और वन में ध्यान लगाने के लिए चल बने।

हिमवान् की पत्नी मेरुकन्या मेनका ने पार्वती को जन्म दिया। एक दिन मौहूर्तिक ने नवजात शिशु के विषय में बताया—

भक्त्यादरेण प्रगुणैर्नवैरपि प्रत्यग्रसौदर्यभरैर्भरैरपि ॥
स्वरान्यका पूर्णमनोहराप्यसौ शम्भो शरीरार्धहरा भविष्यति ॥२ १६

1 इस अप्रकाशित नाटक की दो प्रतियाँ तञ्जोर के सरस्वती महल में हैं।

दक्षयज्ञ में सती को देवताओं ने इसलिए जल जान दिया कि सती के जन्मान्तर में ही उसके गर्भ से तारक को मारने वाला वीर उत्पन्न होगा। नारद को पार्वती-जन्म के आगे के कार्यक्रम का नियोजक देवताओं ने बनाया था। नारद ने जो पार्वती को एक दिन कण्ठमाला दी, उसके प्रभाव से स्वप्न में पार्वती ने शिव का दर्शन किया और प्रणयासक्त हो गई। नारद ने विल्व वन में तपस्या करते हुए शिव की सेवा पार्वती करे—ऐसा उसके पिता को परामर्श दिया। दो सखियों के साथ पार्वती शिव की सेवा के लिए गई।

तृतीय अङ्क में शिव समाधि लगाये हुए हैं—

नासाभागादगुष्ठकनिष्ठिकानामिकात्रयीमवतार्य
नासारन्ध्रममी दहन्नुदयति श्वासानिलो मासलो
दुर्वारो हृदयज्वर क्षणमपि स्तोक न विश्राम्यति।
क्षुभ्यन्ति प्रसभ शनैरवयवा निर्वेदभारश्लथा
वाप्पव्याकुलमीक्षण च विपयान् गृह्णाति नो तत्त्वत ॥३१

अर्थात् उनको मदन-सन्ताप विरह वेदना से व्यथित कर रहा था।

नन भाति तथापि तद्विरहित शून्य जगद्मण्डलम् ॥३६

शिव वेद की निन्दा करने लगे कि यज्ञ का विधान यदि वेद ने न किया होता तो यह सारा सकट मेरे ऊपर न आता। वे पत्नी वियोग में उन्मत्त होकर कहते हैं—

कुत्र गच्छसि कथ नायासि किं पीडयस्यङ्गानि।
प्रसभ दृशा तव मया पीतानि किं धावसि। इत्यादि

पार्वती सखियों के साथ वहाँ आई और पूर्वजन्म का अनुबन्ध शिव को स्मृत हो आया। इधर पार्वती ने स्वप्न में सुन्दर युवक देखा था, जो तपस्वी था सौष्ठव-विहीन। फिर भी तपस्वी की सेवा करके कामना-पूर्ति की आशा से पार्वती ने शिव की सेवा आरम्भ कर दी। सेवाकार्य थे—फल लाना, फूल लाना, पानी लाना, पादसंवाहन। पार्वती ने शिव को अपना मन्तव्य बता दिया। शिव ने उपासना की अनुमति दी।

चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक में रति पार्वती को उमयानुराग-चरित नाटक देती है कि आप के गर्भदोहद के मनोरंजन के लिए इसका अभिनय होना है। पार्वती का शिव से गान्धर्व विवाह हो गया था। उसके गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति हो, इसके लिए पुंसवन संस्कार होना था। पहले शिव ने काम को जलाया, पर पुन उज्जीवित कर दिया, क्योंकि काम ने वस्तुत शिव का स्वार्थ ही सिद्ध किया था। फिर तो शिव ने काम को आदेश दिया कि उस कन्या को मेरे मनोनुकूल बनाओ। शिव को सती दाह से सन्ताप मिला, फिर तप का ताप था, फिर जलाने के लिए काम आया तो शिव ने उसे जला दिया था।

कामदेव से पार्वती ने दोहद की चर्चा की। उसने नाटक का अभिनय करने का आयोजन किया। इसके अभिनेता तरु तथा लता मानवरूप धारण करके भूमिका

सम्पन्न करेंगे। गमनाटक की कथा वस्तु है—शिव पार्वती के क्षणिक वियोग में सन्तप्त हैं। कुछ देर में कुबेर आ गये। वे शिव की विरहोक्तियाँ सुनते हैं। कुबेर ने शिव कहते हैं कि आप तो मुझे पार्वती से मिलाइये। कुबेर ने पार्वती को शिलापट्ट पर बैठी दिखाया। शिव वहाँ गये। उनके मदन-ज्वर को दूर करने के लिए वैद्य बुलाये जा रहे थे। पार्वती का उत्स्वप्नायित अभिनय में प्रस्तुत है। शिव पार्वती से मिलकर उनके साहचर्य का निरन्तर आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं।

इसके पश्चात् पार्वती का पुंसवन-कल्याण देवताओं के नियोजन में हुआ।

पार्वती का पुत्र कार्तिकेय तारकासुर का वध युद्ध में करता है। कार्तिकेय का अभिषेक-समारोह होता है। वे भद्रपीठ पर आसीन किये जाते हैं।

नाट्यशिल्प

कुमारविजय में स्त्री आदि पात्रों का प्राकृत बोलना स्वाभाविक मानकर नाट्य-शास्त्रीय विधान का समुचित आदर किया गया है। ऐसे नाट्यकारों का कवि ने उल्लेख किया है, जो प्राकृत के स्थान पर 'संस्कृतमाश्रित्य' लिखकर संस्कृत से काम चलाते हैं। सूत्रधार की दृष्टि में यह नाट्यकारों के प्राकृत-ज्ञान का अभाव है।

इस नाटक की प्रस्तावना में नटी नहीं है क्योंकि सूत्रधार अविवाहित है। नटी के अभाव में मंगलगीत नहीं गाया जा सका। सूत्रधार ने बताया है कि भृङ्गिरीटि की भूमिका में मेरा भाई रंगमंच पर आ रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार ही है। सूत्रधार का विवाह नहीं हुआ है—यह विवरण भी नाटक का लेखक नहीं देगा, अपितु सूत्रधार से ही इसकी आशा की जाती है।

चरित्र-चित्रण की दिशा में घनश्याम को प्रगल्भता प्राप्त है। वे नायक का परिहासात्मक चित्रण करने में रुचि लेते हैं। उनके विषय में कथा-संविधानानुसार चकोरिका कहती है—आरम्भ में स्त्री जनलम्पट यह शिव था, बीच में तपस्वी हो चला था, इत्यादि।

घनश्याम एकोक्ति के विशेष प्रयोक्ता हैं। अंकों के बीच में भी एकोक्तियाँ हैं। कुमारविजय के प्रथम अङ्क का आरम्भ शिव की एकोक्ति से होता है। वे इसमें रानी के जलन पर शोकाकुल विचार प्रकट करते हैं। फिर देश के विषय में अपनी उत्सुकता प्रकट करते हैं। इसके ठीक पश्चात् दश की एकोक्ति है। एकोक्ति के लिए रंगमंच पर पात्र का अकेला होना आवश्यक नहीं है। रंगमंच के एक भाग में एकोक्ति करने वाले पात्र के लिए अदृष्ट कोई दूसरा पात्र रह सकता है। वीरभद्र की एकोक्ति ऐसी ही स्थिति में है। आगे चलकर सनत्कुमार भी ऐसी ही स्थिति में इस अङ्क में अपनी एकोक्ति प्रस्तुत करते हैं। द्वितीय अंक में पुरोहित की एकोक्ति भी ऐसी ही स्थिति में है। रंगमंच पर दूसरी ओर अन्य पात्र हैं। कवि ने पवनों को पात्र बनाया है। द्वितीय अंक में पल्लिकूट और मल्लिकूट नामक दो पात्र रंगमंच पर बातें करते हैं। यह वृत्त छायातत्त्वात्मक है।

अठारहवीं शती में सूत्रधार नान्दी-पाठ करता था, जैसा चतुर्थ अंक के गर्भनाटक का सूत्रधार करता है।

चतुर्थ अंक प्राय पूरा का पूरा गर्भनाटक है।

शैली

मदनसजीवन-भाण की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कवि की शैली की वर्णना की है—

फुल्लन्नीरज-सौरभी मधुघटी-निद्रापित-द्वीपज-
द्राक्षा तादृशमाधुरी-सहचरी वाचा कवेर्वैखरी ॥६

सास्कृतिक सूचनायें

घनश्याम ने अपने युग के समाज की विषम प्रवृत्तियों का दर्शन कराया है। पुरोहित, कचुकी और मौहूर्तिक अपनी-अपनी दुर्दशा पहले प्रेक्षकों को एकोक्तियों द्वारा बतला कर फिर अपना नाटकीय काम करते हैं। मौहूर्तिक की दु स्थिति का परिचय चेटी के मुख से इस प्रकार है—

जीर्णवसनो मलीमसा वेतालसदृश

कन्यायें सिर नहीं ढकती थीं। हाथ में पाच-छ कंकण पहनती थीं। वे कटि में नील वस्त्राचल धारण करती थीं। कन्धे पर मणिसरत्रितय होता था।

कवि के मदनसजीवन भाण की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भद्र पुरुष भी भाण जैसे हीनकोटि के अश्लील रूपकों का अभिनय देखने जाते थे। इस भाण में घनश्याम ने विस्तारपूर्वक द्राविड, गुर्जर तथा महाराष्ट्र देशों की स्त्रियों के अशिष्ट आचार तथा माध्वगुरु, गोस्वामी आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों में धर्म के नाम पर प्रचलित घोर चारित्रिक भ्रंश का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। यथा, गोस्वामियों को लीजिये—

अभर्तृकासनरुणी सभर्तृका अपत्नीकानात्मन सपत्नीकान् विदधाना। विधवास्वेवास्माकमनुराग इति सूचयितुमिव काषाय-वसान वसना, सन्तत-मुञ्छवृत्तिदम्भेन गृह-गृह रण्डावलोकनाय हिण्डमाना इत्यादि।

द्राविडों में उस समय कुछ कुरीतियाँ थीं। कवि ने उनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। यथा, स्त्रियों की दुर्गति है—

सदानीत बाल्य जनकगृह-सम्मार्जनविधया
हृत तारुण्य च श्वसुरगृह-सर्वार्थवहनैं।
इदानीं वृद्धासीदहह विधिना गोमयपरा
वन स्वप्नेऽप्येष भजति न सुख द्राविडवधू ॥४१

कोई द्राविड स्त्री अपने द्वार पर ही गोमय चित्ता बना रही थी।

मदनसजीवन-भाण

मदनसजीवन भाण का प्रथम अभिनय पुण्डरीकपुर (चिदम्बर) में कनक-सभा-पति के आर्द्रादर्शनमहोत्सव के समय हुआ था।[1] इसके प्रेक्षकों में काव्य, सगीत,

[1] इस अप्रकाशित भाण की प्रति तजौर के सरस्वती महल में है।

साहिती आदि के मर्मज्ञों के साथ अद्वैत विद्या में पारगत तथा महायाज्ञिक भी थे। ये सभी सूत्रधार के शब्दों में रसिक जन हैं। सूत्रधार इसको गुणगणगर्भित बनाता है।[1]

कवि ने बीस वर्ष की अवस्था में इस भाण की रचना की। इतनी कम अवस्था का युवक इस प्रकार के भोंडे साहित्य की सर्जना करे—यह उस युग की चारित्रिक निर्माण-सम्बन्धी विषमता को व्यक्त करता है।

मदनसंजीवन का अभिनय सूत्रधार के भागिनेय भृंगिरीटि ने किया था।

कथावस्तु

कुलभूषण नामक नायक भट्टगोपाल की कन्या चित्रलेखा के साथ अपनी नई-नई प्रणय-ग्रन्थि जोड़े है। उसके विरह में व्याकुल है। उसका आलिंगन करने की उत्कट अभिलाषा कुलभूषण को है। वह चलते फिरते वेश्या-ग्रस्त वेदपाठी, वस्त्र धोती हुई द्राविड कन्याओं, आन्ध्री महिलाओं, वैष्णवस्त्री-समूह, विधवायें, गुर्जर स्त्रियाँ, महाराष्ट्राङ्गना, जनार्दन तीर्थ नामक माध्व गुरु, यतिवृषभ, गोस्वामी आदि के कुत्सित आचारों का वर्णन करता है। अन्त में वह वेशवाट में पहुँचता है। यहाँ की वेश्याओं का रूप-दर्शन अन्यतम ही कहा जा सकता है। यह प्रकरण कामिक प्रक्रियाओं के नग्न वर्णन से वस्तुतः कामशास्त्र का अध्याय प्रतीत होता है। विट वेशवाट के पश्चात् मध्याह्न में उद्यान में जा पहुँचता है। वहाँ चक्रवाक, मयूर, कपोत, शारिका, जलक्रीडा-परायण स्त्रियाँ और उपदेशक पौराणिक को देखना-सुनता है।

विट ने सँपेरे का सांगोपाङ्ग वर्णन किया है। उससे कोई विच्छू-साँप की ओषधि, कोई स्तम्भन-मणि, स्त्रीवशीकरण-गुलिका आदि माँग रहे थे। आगे चलने पर विट ने देखा कि वसुलता नामक वेश्या के लिए दो विट तलवार खींच कर लड़ रहे थे। आगे मल्लयुद्ध, कुक्कुटयुद्ध, मेषयुद्ध, वृषभ का नृत्य, कवि का आशुकवित्व, सुन्दरी की कन्दुक-क्रीडा आदि देखते हुए विट शिवमन्दिर में हर-हर महादेव करते पहुँचा।

उस मन्दिर में विट घनश्याम के बड़े भाई चिदम्बर ब्रह्म को देखता है। उन्हें उसने १२ बार प्रणाम किया। उनके दर्शन का पुण्य फल तत्काल मिला। उसकी प्रेयसी चित्रलेखा को प्राप्त कराने के लिए मंजुगुण गया था। वह विट को आता हुआ दिखा। उसने बताया कि चित्रलेखा को निकटवर्ती मण्डप में लाया हूँ। चित्रलेखा को देखकर विट उसके सौंदर्य का बाण की शैली पर लम्बा-चौड़ा वर्णन करता है, जो तीन पृष्ठों तक विस्तृत है। उस समय चन्द्रोदय हुआ और विट का नायिका से मिलन हुआ।

उपदेश

भाण की रचना करते समय भी घनश्याम अपना विशुद्ध ब्रह्मरूप नहीं भूल पाते। नायक के मुख से श्रीकृष्ण के देवालय में बजने वाले घण्टे का ध्यान्य अर्थ उन्होंने प्रस्तुत किया है—

1. उस युग की ओर सूत्रधार की गुणगण सम्बन्धी मान्यता विचित्र है।

पुत्रा के दयिता च का जनयिता क कस्य माता च का
त्राता कस्य च कस्तदेतदखिल हन्तेन्द्रजालोपमम्।
संसारो जलधिस्तम किल निशा मायाखिल विष्टप
साधो जागृहि जागृहीति रणति श्रीकण्ठघण्टामणि ॥१८

कुछ उदाहरण भी घनश्याम न दिये हैं, जिनसे वेश्याओ से विराग कराना उनका अभिप्राय स्पष्ट हैं। वेदपाठी ने भिक्षा मे प्राप्त धन को गणिका को देकर उसका सहवास प्राप्त किया तो रोगभग्न होकर वेदना को शिव-शिव कह कर छिपा रहा था।

विभिन्न सम्प्रदायो मे किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ रहा था, उसके अनुयायी कितने लोभी, लम्पट और लीलापरायण थे, उनके द्वारा धर्म का कैसा विद्रूप प्रकट किया जाता था, भक्तो को वे कैसे पीडित करते थे, कितने विलासी हैं, स्त्रियो को चरित्र भ्रष्ट करने के लिए कौन कौन उपाय इन दम्भियो ने अपनाये हैं—आदि प्रकरण कवि ने रुचिपूर्वक स्पष्ट किये है।

वेश्यागामियो का पतन अनेकमुखी है। बुरे साधनो से अर्जित धन भी वशपरम्परा को पतित बना देता है—यह कृष्ण दीक्षित और उनके पुत्र केशव दीक्षित की कथा से स्पष्ट होता है। यथा,

'सर्वमर्थवता जितम्' इति द्यूतचौर्याभ्यामर्थसार्थं सम्पाद्य अहमपि वेश्याभुजगमो भवेयमिति पिता यावन्त काल प्रार्थयेत तावन्त काल धनलोलुपंस्सेवकंस्ताडयित्वा निगलनियन्त्रित च कारयित्वा रुदन्ती जननीमपि किमायास्यसि न पनिदशा न द्रष्टव्यसीति भीषयन् पत्नीभूषणानि चादाय मुदात्र प्राप्त ।

विट के मुख से सहसा निकल पडता हैं—

कुशल किल दिगम्बरमपि नग्नयितु वेश्याजन ।

वेश्याओ को देने के लिए धन-सचय करने के लिए मन्दारक ने चोरी की तो ग्रामपालक के द्वारा पीटा गया। इन सब बातो से शिक्षा देना कवि का गौण मन्तव्य है।

चण्डानुरञ्जन प्रहसन

घनश्याम का भाण एक भद्दी रचना है—यह पहले ही कहा जा चुका है। उनका चण्डानुरञ्जन प्रहसन नाम व्यभिचारिता का भोडा वर्णन है।[1] आश्चर्य है कि घनश्याम को प्रहसन के लिए यही अश्लील दिशा मिली। प्रहसन का क्षेत्र अतिशय विशाल होता है। ऐसा लगता है कि कवि युवावस्था की उद्दाम शृङ्गारित प्रवृत्तियो को उगलने मे आनन्द का अनुभव करता है। कवि ने २२ वर्ष की अवस्था मे इसका प्रणयन किया था।

१ प्रहसन की हस्तलिखित प्रति तंजौर के सरस्वती महल मे है।

सूत्रधार ने बताया है कि मेरे सम्बन्धी मार्जार, बकर और तणक की भूमिका में रंगमण्डप में आ रहे हैं।

डमरुक

घनश्याम का रूपक डमरुक एक उच्चतर कोटि का प्रहसन है।[1] शिव ने पाँच-छः बार कवि को स्वप्न में आदेश दिया कि डमरुक लिखो। इसकी रचना कवि ने २२ वर्ष की अवस्था में की। इसमें कवि की पत्नी सुन्दरी का अपने पति के विषय में लिखा पद्य सूत्रधार ने प्रस्तावना में सन्निविष्ट किया है—

अये सखि गृहे गृहे भुवि पुनर्विवाहश्रुते
कचाकचि मम सम घर्वविदधते चकोरीदृश।
अहं तु कविनास्त्रिया मृगिनलब्धदष्टोज्झित-
त्रिलोकवरया स्वयंवृतधवापि नन्दाम्यहो॥८

सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना में बताया है कि बहुत से ग्रन्थों का प्रणयन करना चाहिए—

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
कर्तव्या बहवो ग्रन्था यद्येकोऽपि प्रथां व्रजेत्॥११

बाईस वर्ष की अवस्था में कवि ने आठ प्रबन्धों की रचना कर ली थी।[2]

समीक्षा

डमरुक में घनश्याम ने विशेष व्यंग्यात्मक शैली में माधुर्यपूर्वक सरसता की सरिता प्रवाहित करते हुए साधारण लोगों की अविचारित, और ववचित् आत्मप्रवञ्चनामयी, अन्यत्र परवंचनामयी जीवनपद्धति और प्रवृत्तियों की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना की है। साथ ही जिन सात्त्विक मनीषियों की प्रवृत्तियाँ उदात्त हैं, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी कवि ने की है। अन्त में भर्तृहरि की पद्धति पर वैराग्यपरक जीवन को सारपूर्ण बताया है। घनश्याम ने देवताओं का परिचय कहीं-कहीं परिहासात्मक पद्यों के द्वारा सजोया है। यथा,

वासश्चर्म रथो वृषः प्रियतमापर्णा रदन्न मुनो
ज्येष्ठोऽन्यस्तु विशाख इत्यभिजनो हन्त कपर्दी धनम्।

---

१ डमरुक का प्रकाशन १९२६ ई० में मद्रास से हो चुका है। इसकी प्रति सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।
डमरुक एक नई नाट्य विधा है, जैसा मदनसञ्जीवन की भूमिका में कहा गया है—
प्रहसन—डमरुनाटक-नाट्य-काव्य द्विमञ्जरी-भाणान्।
देवनाटकलिपि इत्यादि यश्चान्यमिष्टशतचम्पूम्॥

२ इस डमरुक के भरतवाक्य में कहा गया है—
जीयाच्च प्रथया महाकविरसावष्टप्रबन्धीकरः॥
इससे ध्वनित होता है कि भरतवाक्य सूत्रधार लिखता था।

नो मातापितरौ गृह महिधरो भस्माङ्गरागो महा-
नित्थ सर्वदरिद्रमीश्वरमहो लक्ष्म्यै भजामो वयम् ॥१०४

कवि के तीखे व्यग्य हँसी उत्पन्न करने के साथ लोगो की आँख खोलने के लिए हैं। यथा,

लेखिन्य पञ्चषा द्वित्रा पत्रिका द्वौ मषीघटौ।
कुकवे कवमानस्य केवलो डम्भडम्बर ॥५४

कही कही सामाजिक वैषम्य की ओर दृष्टिपात कराया गया है। यथा,

प्रात पर्युषित भुक्त्वा रज्जुग्रथनकर्मणा।
महिषीक्षालनेनापि क्षिपन्ति द्रविडा वय ॥६५
करीषकृतये व्रीहिवितुषीकरणाय च
निर्ममो निर्मिमीते स दुर्विधिर्द्रविडाङ्गना ॥६७

बडे लोगो पर फबती है—

परद्रव्य पर धर्म परनिन्दा परा मतिम्।
परनारी पर ब्रह्म प्रभवो ननु मन्वते॥१०६

वैराग्य या वानप्रस्थ की सुलालसा का अन्तर्दर्शन करें—

मुहु स्नातु पुण्या विविध सरितो धर्तुममला-
स्त्वचो भोक्तु कन्दादिकमनुचरा बालहरिण ।
इनीद निर्याश्चि सकलमपि क्लृप्त ननु तथा—
प्यरण्ण दुर्जन्तुर्जगति न शरण्य कलयति॥११७
अज्ञादज्ञानवनवा स्वेदा इव सुतादय ।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते मुधा मुह्यन्ति जन्तव ॥११८

भाषा-सम्बन्धी परिहास करने मे कवि चूकता नही। तमिल ध्वनि का उदाहरण हास्य के लिए है—

नाज्ञान् मानानुपेर्यतम्भिरप्पाकुट्टिश्च मुत्तवन्।
वेङ्कड नल्लनम्भिश्च रज्जुग्रथनकर्मणा॥६४

नाट्यशिल्प

डमरुक नामक रूपक कवि की अप्रचलित नाट्यशिल्प की रचना है। इसमें अभिनय के नाम पर कुछ भी नही है। इसके १० अलङ्कारों मे प्रत्येक मे लगभग १० श्लोकों म कवि न अलग-अलग पात्रो का किसी एक विषय पर पद्यो द्वारा चुभती हुई साङ्गीतिक शैली मे विमर्श प्रस्तुत किया है।[1] आरम्भ म प्रस्तावना के स्थान पर पात्र-सूचना और अन्त म भरतवाक्य साधारण रूपको की भाँति ही है। कवि का यह नाट्य विधान वस्तुत रोचक है।

[1] दस अलकारो मे क्रमश राजानुरजन, कलिदूषण, सुकवि-सजीवन, कुकवि-सतापनम्, अबोधाकर, शाब्दिक मञ्जन, पण्डित-खण्डन, जाति-सन्तजन, प्रमुख और अखण्डानन्द की चर्चा है।

नवग्रह-चरित

घनश्याम ने २२ वर्ष की अवस्था में नवग्रहचरित नामक रूपक का प्रणयन ११वीं कृति के रूप में किया, जैसा प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है। इस रूपक में नाटकीय पारिभाषिक शब्दावली अनूठी है। इसका आरम्भ मङ्गल-गान के तीन पद्यों से होता है। इसके पश्चात् रंगमंच पर विश्वासवसु ज्यों ही कुछ कहता है कि आकाशवाणी सुनाई पड़ती है जिसने प्रसंग में वह कुछ कहता है कि फिर आकाशवाणी उसका समाधान करती है। इस प्रकार रंगमंच पर विश्वावसु अकेले ही वर्तमान है और पुन पुन आकाशवाणी उसकी बातों का उत्तर देती जाती है। अन्त में उसी से उसे ज्ञात होता है कि मुने घनश्याम के नवग्रह-चरित का प्रयोग करना है। उसके पश्चात् उसे वायु एक भूजपत्र-पुस्तक देता है जिसमें लिखा है- -

प्रारब्ध कमदेव सुकृतविधिदशा ईश्वरेच्छा शिवाज्ञाम्
काल होरेति पूजाफलम दैव सकल्पयोगे।
पुण्य पाप च भाग्याङ्कुरपरिणमनमनप्राक्तनादृष्टरेखा
भाविप्रान्तेश्वरा इत्यभिदधति जना यान् ग्रहा पान्तु ते न ॥

प्रस्तावना (सूच्याथ) में सूचना दी गई है कि घनश्याम-विरचित नवग्रहचरित का अभिनय होना है।

कथावस्तु

कवि के शब्दों मे कथावस्तु है—

सूर्यस्य राहोश्च गृहाधिपत्याय स्वतन्त्रतया राशिलाभाय राहुवार-केतुवारकल्पनाय च दारुण कलहकोलहलोऽभिवर्तते।

अर्थात् सूर्य का प्रतिनायक राहु गृहाधिपति होना चाहता है। स्वतन्त्ररूप से राशिलाभ करना चाहता है और अपने तथा अपने साथी केतु के नाम पर एक-एक दिन बनवाना चाहता है। देववर्ग ने बुध को कुमार बनाया है। मगल सेनाधिपति नियुक्त है।

इधर राहु देवों की पराक्रमपूर्ण उपलब्धियों से व्याकुल होकर उनकी निन्दा कर रहा है। तभी केतु न आकर बताया कि शुक्राचार्य ने हमारे अभ्युदय के लिए कुछ ऐसे ऐसे उपाय किये हैं। उन्होंने शनैश्चर को फोड लिया है। ग्रहों में भी परस्पर वैमनस्य है। उसकी जड़ है उनकी दुर्बलता। यथा,

शाणच्छिन्नवपु शशधर क्षीणस्त्रिकोणालयो।
भौम पण्डवरो बुधोऽशुचिवधूर्जीवो विहग्भार्गव ॥
पङ्गुर्भास्करसूनुरंगविकलौ यद्राहुकेतू ततो।
यत्सत्य सरसीरुहाक्षि भुवने सन्ति ग्रहाणा ग्रहा ॥२२

लडाई ठनने वाली है। सवत्सर, क्षन, करण, तिथि, होरा, ऋतु, घटिका, सन्ध्या, रात्रि, प्रहर, दिवस मास, निमिप, काष्ठा, कला, क्षण आदि के अधीन उनके सैनिक हो गये। उन्हें अपनी-अपनी स्थिति बनाकर सभी दशाओ मे रक्षा करनी है।

सूय, बुध रग मच पर आते हैं। उनको बृहस्पति के सविधान मे सन्देह हो रहा है, क्योंकि देवपक्ष हार रहा है। रोहिणी ने आकर बताया कि चन्द्र को केतु ने जीते जी पकड लिया। कुछ देर बाद चन्द्र आ गया। उसने बताया कि मेरे पकडे जान का सवाद झूठा है।

दोनो पक्षो के युद्धवीर लडने के लिए सन्नद्ध तो थे, पर शुक्र और बृहस्पति ने युद्ध की भीषणता समझते हुए सन्धि कर ली। बृहस्पति के सन्धि प्रस्ताव को और आकाशवाणी के निवेदन को शुक्राचार्य ने मान लिया। शुक्र ने प्रस्ताव रखा—

राहो सदास्त भजतो रवीन्दुभौ मयज्ञकाला कुजपण्ढमन्दा।
मूढौ भरुद्दैत्य-गुरुपतित्व तेपा ग्रहाणा कथ श्रर्हसीनि ॥३१६

शुक्र ने कहा—राहु का नाम स्वर्भानु कर दिया जाय। सूर्य तो केवल भानु है।

नाट्यशिल्प

नवग्रहचरित की प्रस्तावना मे बताया गया है कि नेपथ्य यवनिका का बना हुआ है।[1] इसमे नान्दी-पाठ बहुत से गद्य पद्यो के माध्यम से विश्वावसु के द्वारा विवरण दे चुकने के पश्चात् आता है। नान्दी के पश्चात् सूत्रधार के समकक्ष सूचक नामक एक पात्र आता है, जिसकी गृहिणी कालयुक्ति अन्य रूपको की नटी के समकक्ष पडती है।[2] प्रस्तावना का नाम सूच्यार्थ है। प्रस्तावना के पश्चात् अको के स्थान पर तीन प्रपञ्चो मे कथावस्तु प्रपचित है। विष्कम्भक का नाम इसमे कला है। प्रथम प्रपच के पूर्व शुद्ध कला का समावेश है। इसमे भावात्मक पात्र धृति और आनन्द आदि है। इसमे दिव्य और भावात्मक पात्रो का सयोजन हुआ है। तृतीय प्रपञ्च के पहले कला तो ६ पृष्ठ की है और प्रपञ्च एक पृष्ठ मात्र का है।

चरितनायक

नवग्रह-चरित की भूमिका विचित्र ही है। इसमे देवता चरितनायक हैं। विश्वावसु, वायु आदि नान्दी तक हैं। इसके पश्चात् सूचक और कालयुक्ति मे प्रस्तावना (सूच्यार्थ) मे बातचीत करते हैं। कथावस्तु की भूमिका का विष्कम्भक के द्वारा व्यतीपात और व्याघात नामक पात्रो के कथोपकथन से होता है। मुख्य पात्र राहु और श्रोधन सर्वप्रथम रगमच पर आते हैं। राहु का द्वारपाल राक्षस है। द्वितीय प्रपञ्च के मिश्र विष्कम्भक (कला) के पात्र देर पक्ष के धृति और आनन्द हैं।

---

१ अयत्र इसमे कहा गया है—'कौशेयनिर्मित–नेपथ्याभिमुखमवलोक्य' इत्यादि
२ सूचक—तद्गृहिणीमाकारयामि।

प्रचण्डराहूदय

घनश्याम का प्रचण्डराहूदय पाँच अंकों का नाटक है।[1] कहते हैं कि प्रबन्ध चन्द्रोदय और संकल्प सूर्योदय की परम्परा में यह कड़ी घनश्याम ने जोड़ी थी। इसमें वेदान्तदेशिक के विशिष्टाद्वैतका खण्डन है।

अप्राप्त रूपक

घनश्याम द्वारा विरचित अनुभूति-चिन्तामणि या अनुभव-चिन्तामणि नाटिका, गणेशचरित नाटक और त्रिमठी नाटक अभी तक अप्राप्त हैं। इनके उल्लेखमात्र मिलते हैं।

१—यह अप्रकाशित नाटक और इसकी टीका तंजौर के सरस्वतीमहल में मिलते हैं।

अध्याय ४०

वेङ्कटेश्वर का नाट्यसाहित्य

कावेरी नदी के तट पर दक्षिण भारत में मण्लूर नामक अग्रहार में घमराज नामक विद्वान् थे। वे स्वय उच्च कोटि के नाटकों के रचयिता थे। घमराज के पिता वैद्यनाथ और पुत्र वेङ्कटेश्वर दोनो असाधारण प्रतिभा के मनीषी हुए। सूत्रधार ने वैद्यनाथ का परिचय देते हुए कहा है।

श्रीमनिध्रु व-काश्यपान्वयमणिर्निर्णीत सर्वागमो
निर्वेलप्रथितान्निदानजनुषा कीर्त्या जगद् भासयन् ॥
यत्तातो भुवि वैद्यनाथ-सुमनिर्वैकुण्ठयोगीश्वर
सद्य सन्यसनेन चिद्घन-सुधाम्भोवेरगादेकताम् ॥

समापति-विलास की प्रस्तावना से।

सूत्रधार ने उन्मत्त-कविकलश प्रहसन की भूमिका म बताया है कि वेङ्कटेश्वर के पिता मणलूराग्रहार के नायक मणि थे। उनको षड्दर्शनी-सागर-निशाकर और षड्भाषा सार्वभौम की ख्याति प्राप्त थी। वे नित्य साहित्यिक रचना करते रहते थे। वे महाभाष्य कण्ठाग्र कर चुके थे। वे नाटक लिखने में दक्ष थे। धर्मराज के बड़े भाई राम महाभाष्य के आचार्य थे।

वेङ्कटेश्वर का जन्म ऐसे महामनीषियो के कुल मे हुआ था। सूत्रधार ने समापति-विलास की प्रस्तावना मे बताया है कि वेङ्कटेश्वर योगीन्द्र थे। जब वे ध्यान लगाते थे तो उनके समक्ष साक्षात् शिव प्रकट हो जाते थे। राघवानन्द की प्रस्तावनानुसार वे प्रतिदिन प्रबन्ध-निर्माण पर थे।

वेङ्कटेश्वर ने अनेक रूपक लिखे। यथा,

१ समापतिविलास[1]
२ उन्मत्त-कविकलश-प्रहसन[2]
३ नीलापरिणय[3]
४ राघवानन्द[4]

राघवानन्द का ही अपर नाम सम्भवत प्रतिज्ञा-राघवानन्द है। इसमे राम ने मुनियों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है। इनके अतिरिक्त उन्होंने भोसल-वंशावली-चम्पू का प्रणयन किया। इसमे तंजौर के भोसलवशी राजाओ का सरफोजी तक वर्णन है।

वेङ्कटेश्वर तंजौर-नरेश सरफोजी प्रथम (१७११-१७२८) ई० के आश्रय में रहे।

---

१ समापति-विलास अन्नमलाइ से संस्कृत-ग्रन्थमाला स० २ प्रकाशित है।
२-४ इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ तंजौर के सरस्वती-महल और सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं। अभी तक ये प्रकाशित है।

सभापति-विलास

सभापति-विलास मे सभापति शिव हैं। उनके आनन्द ताण्डव की योजना इस नाटक मे निबद्ध है। यह वेङ्कटेश्वर की श्रेष्ठ कृति है। इसकी रचना पर उन्हे चिदम्बर-कवि की उपाधि मिली। इसका प्रथम अभिनय चिदम्बरपुर मे कनक-सभापति (शिव) की यात्रा के महोत्सव के अवसर पर हुआ था। उच्चकोटि की सज्जन-मण्डली दर्शक बनकर विराजमान थी। इस महोत्सव का सास्कृतिक प्रभाव नीचे लिखे पद्य मे है—

साहित्यामृतपारणाय कतिचित् कुर्वन्ति गोष्ठी जना
वादायापि ससम्भ्रमा कतिपये कण्डूलजिह्वाञ्चला।
पुण्या केऽपि मिथो विविक्तमनस पौराणिकीस्ता कथा
सगीतागमभगिपु खितधिय सभ्या परेऽभ्यागता॥ प्रस्तावना ६

कथावस्तु

दक्षिण भारत मे स्थल माहात्म्य नामक पुराणपथानुसारिणी कथायें प्रचलित हैं। वेङ्कटेश ने ऐसे ही स्थल-माहात्म्य को लेकर इस नाटक की रचना कर डाली है। एक बार आर्द्रोत्सव के समय चिदम्बर-स्थल की व्याख्या करते हुए श्रोताओ को उन्होने चिदम्बर-माहात्म्य सुनाया। उस समय श्रोताओ ने उनसे निवेदन किया—

विद्वत्पु गव वेङ्कटेश्वर कवे वाणी तवेय दलन्
मन्दारान्तर - माकरन्दलहरीमाधुर्यधुर्योदया।
तन्निर्माय चिदम्बरेश-विषय किं चित्नव नाटक
चेत प्रीणय नश्चिदम्बर-कविर्भूया स्त्वमेतावता॥ प्रस्तावना १२

शिव माध्यन्दिनि बालमुनि की सेवा से प्रसन्न होकर उसकी इच्छा-पूरण करने के लिए दर्शन देना चाहते हैं। उन्होने नन्दिकेश्वर को तिल्वाटवी मे भेज कर अपने आविर्भाव के योग्य भूमि जान ली।

शिवगगा-तीर्थ पर नन्दिकेश्वर पहुँचा। वही बालमुनि अपने शिष्य के साथ पहुँचे। वे शिव के चरण कमल-दर्शन की उत्कट अभिलाषा शिष्य को बतलाते हैं। वे दोनो मूलनायक (शिव) की सेवा करने के लिए चल देते है। बालमुनि मूलनायक के पास पहुँच कर स्तुति करता हैं—

क्व चाह जात्यन्धो विविधजननैकान्तवसति
क्व च त्व ब्रह्मेन्द्रप्रमुख-सुरदुर्बोधमहिमा।
तथाप्याकाक्षेऽह तव चरणसन्दर्शन-सुख
कुतस्तन्मे सिध्येत् कुटिल-विषयव्यापृतधिय॥

शिव पार्वती के साथ वहाँ साक्षात् प्रकट हुए। बाल ने उनकी स्तुति की—

नम इदमव्याजदयानर्तित-चित्राय देवदेवाय।
सकल-जनता-मुमुक्षा-प्रत्युपहारैकहेतवे तुभ्यम्॥

शिव के कहने पर उसने वर माँगा कि पूजा के लिए जाते समय मेरे हाथ-पैर व्याघ्र रूप हो जायें। यह नगर मेरे नाम पर प्रसिद्ध हो। शिव ने कहा—एवमस्तु। फिर शिव अन्तर्धान हो गये। तत्काल बाल व्याघ्रपाद हो गये और नगरी व्याघ्रपुरी हो गई।

इधर नन्दिकेश्वर से देवर्षिवर भानुकम्प ने बताया कि आज दारुवन के मुनीन्द्रों का गर्व खर्व करने के लिए विष्णु मोहिनी और शिव भिक्षु बनकर पहुँच रहे हैं।

बालमुनि ने वसिष्ठ की बहिन से उपमन्यु को उत्पन्न किया। आरम्भ में शिशु अरुन्धती के द्वारा पाला-पोसा गया। वह सुरभि का दूध पीता था। जब उसे बाल-मुनि अपने घर लाये तो उसे दूध के स्थान पर जौ की दलिया दी गई। उसने दूध के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। बाल उस बालक को मूलनाथ विष्णु के पास लाये। फिर तो उन्हें क्षीरसागर ही उस बालक के लिए बनाना पड़ा।

गर्भाङ्क में रंगमंच पर विष्णु, शिव और नन्दिकेश्वर अपनी-अपनी भूमिका में आते हैं। विष्णु मोहिनी हैं, शिव विट हैं। वे दारुवन के मुनियों में व्यामोह उत्पन्न करने जा रहे हैं। मुनियों के आश्रम यज्ञ और होम-धूम से परिलक्षित हो रहे थे। कार्यक्रम बना कि मोहिनी मुनियों को मोहे, शिव उनकी दीक्षित पत्नियों को फँसायें। नन्दिकेश्वर को वही सब देखते रहना था।

शिव पर्णशाला के चारों ओर घूमते-फिरते हैं। मुनि-पत्नियाँ कामुकता वश उनके पीछे पड़ती हैं। नपथ्य से उन्हें बोध कराया जाता है कि मुनिपत्नियों को व्यभिचार-पथ नहीं अपनाना चाहिए। मुनिपत्नियाँ उत्तर देती हैं—

युक्तायुक्तविचारः स्वाधीनानां खलु मदनचाण्डाल।
न सहते कालविलम्बं प्रसीद न प्राणपालनं कर्तुम्॥

इधर मुनीन्द्र-गण मोहिनी को देखकर उसके प्रणयी बने हुए हैं। मोहिनी भी—'ललितं परिक्रम्य, मुनीन्द्रानवलोक्य मुखं साची करोति' सभी मुनि उसके लिए ललचा रहे हैं। तभी वह चले जाने की उत्सुकता प्रकट करती है। मुनीन्द्र कहते हैं—

देवि, किमित्यात्मनीनमगणयित्वा दासकुलं प्रस्थीयते।

मोहिनी ने मुनीन्द्रों से कहा कि आपका ऐसा आचरण अयोग्य है। मुनियों ने कहा कि पहले हमारा प्राण तो बचाओ। वे प्रार्थना करते हैं—

कर्पूरवीटि-प्रतिपादने वा संवाहने वा चरणाम्बुजस्य।
क्रीतदासा नवनालवृन्त-सवीजने वा विनियुङ्क्ष्व सर्वान्॥२४०

तब तो मोहिनी के पीछे-पीछे मुनिगण रंगमंच से चलता बना। मुनियों को ज्ञात हो जाता है कि यह सब शिव की योजनानुसार हो रहा है। उन्होंने अभिचार से सिंह, सर्प आदि बनाये कि वे शिव का संहार करें। शिव ने उन सबको वश में कर लिया। फिर तो मुनि शिव की स्तुति करने लगे, जब उन्होंने अपना ताण्डवनृत्य दिखाया। पार्वती उनके साथ नृत्य कर रही थी। शिव-प्रदत्त चक्षु से मुनियों ने

शिव का नृत्य देखा। शिव की इच्छा से मुनियो ने शिवलिंग की प्रतिष्ठा की। इसकी पूजा से आपको परम पद प्राप्त होगा। यथा,

अस्मिन्नेव वने विप्रा मम नृत्ताङ्गणे शुभे
शिवलिंग प्रतिष्ठाप्य पूजयध्वमतन्द्रिता ।
पूजया तस्य लिंगस्य भोगमोक्षैकहेतुना
अनन्यलब्ध परम लभध्व पदमव्ययम् ॥२.५५

तृतीय अङ्क मे तिल्व-वन मे प्रात काल हो रहा है। वही कृष्ण की कुटी मे सेवक दारुक पहुँचता है। कृष्ण वहाँ शिव-दीक्षा लेने के लिए सत्यभामा-सहित आये हुए थे। सत्यभामा और कृष्ण प्राकृतिक सौरभ के बीच मनोविनोद कर रहे हैं। उसी समय दारक ने सिंहवर्मा के द्वारा भेजे हुए चित्रपट का उपहार वायु मे उडा कर उनके पास तक पहुचाया। सिंहवर्मा की चमडी सिंह की सी थी। उससे वह मुक्ति पाने के लिए कृष्ण के अनुग्रह की याचना करता था।

कृष्ण और सत्यभामा ने आकाश मे बोलते हुए शुक की वाणी से शिव-दीक्षा का दार्शनिक रहस्य जाना। वे दोनों भी शिव-कृपा की महिमा विषयक चर्चा करते हैं। यथा कृष्ण का कहना है—

वागीशा जननी यस्य व्योमव्यापी पिता शिव ।
मन्त्रैं शिवाध्वरे जात स मुक्तो नात्र सशय ॥२ २६

निकट ही कृष्ण को अपने गुरु उपमन्यु से भेंट हुई। उपमन्यु ने उन्हें आशीर्वाद दिया—

शिवविज्ञान-सम्पन्नौ भूयास्ताम्।

फिर वे उपमन्यु के पिता व्याघ्रपाद से मिलते हैं। व्याघ्रपाद ने उन्हे शिव के ताण्डव का वर्णन सुनाया। कृष्ण के पास सिंहवर्मा के द्वारा प्रेपित चित्र को देख कर तत्सम्बन्धी चर्चा होने पर व्याघ्रपाद ने बताया कि वह शिवगङ्गा मे स्नान करे तो सिंहरूप से मुक्त हो जायेगा।

चतुर्थ अङ्क मे कौण्डिन्य व्याघ्रपाद को एक चित्र देता है, जिसमे शिव के चरित की स्थलियाँ चित्रित थी। उसमे चिदम्बर-क्षेत्र, पूर्वी समुद्र, कावेरी-नदी, चोलमण्डल, ब्रह्मपुर-क्षेत्र, जटायु क्षेत्र, सिद्धामृत सरोवर, मायूर-क्षेत्र, तेजिनीवन-क्षेत्र, रक्तारण्य-पुरी, कमलालय-आयतन, वेदारण्य, सेतुबन्ध, हालास्य-क्षेत्र, गजारण्य, पचनद क्षेत्र, एकाधिकरण क्षेत्र, दक्षिणावत-देवालय, कुम्भकोण, मध्यार्जुन क्षेत्र, श्रीपुरी, वृद्धाचल-धाम, शोणाचल, काची, कालहस्तीश्वर-क्षेत्र (कैलाश), श्रीपर्वत, भीमेश्वर-क्षेत्र, विन्ध्यपर्वत, रेवाक्षेत्र, गोकर्ण क्षेत्र, प्रभास-क्षेत्र, गया, वाराणसी, केदारनाथ, हिमालय, मेरु, सुमेरु, कैलास आदि देखते हैं।

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि शिव के दर्शनार्थ आते है। यह सब चित्र मे दिखाया गया है।

पतञ्जलि नामक सर्प व्याघ्रपाद से मिलने के लिए रंगमंच पर आते हैं। उन्होंने बताया कि शीघ्र ही आप शिव के आनन्दताण्डव का दर्शन करेंगे। वे वस्तुत शेषनाग हैं। शेष ने अपनी कथा बताई कि कैसे मुझे आनन्दताण्डव देखने की योग्यता के लिए घोर तप करना पड़ा।

चित्सभा हुई। वह आनन्द-ताण्डव के दर्शन के लिए इकट्ठी हुई थी। सभी श्रेष्ठ देवता और ब्राह्मण सभा मे दर्शक थे। सभी के यथोचित आसन ग्रहण कर लेने पर शिव उमा के साथ नृत्य करते हैं। व्याघ्रपाद और पतञ्जलि उनके पार्श्वों मे स्थापित किये जाते हैं।

देवी पार्वती की स्तुति दण्डक छन्द मे विस्तारपूर्वक पतञ्जलि ने की। शिव ने उन दोनो को यथेष्ट वर मांगने की आज्ञा दी। उन्होंने वर मांगा कि यहाँ रहने वालो को और हमे सदा आपका नृत्य देखने को मिले। शिव ने कहा—एवमस्तु। उसी समय शिवगंगा मे स्नान करके सिंहवर्मा ने मानव शरीर प्राप्त किया। वह हिरण्य वर्मा हो गया।

इस नाटक का प्रधान नायक व्याघ्रपाद और उपनायक पतञ्जलि हैं। फल है आनन्दताण्डव का दर्शन।

नाट्यशिल्प

पाँच अङ्कों के नाटक सभापति-विलास का आरम्भ लम्बी एकोक्ति से होता है, जिसमे नन्दिकेश्वर शिव के उस आदर्श की चर्चा करते हैं कि तिल्वाटवी मे मेरे प्रकट होने की स्थली ढूंढें। यह एकोक्ति वर्णनात्मक है। इसके १६ पद्यों मे तिल्वाटवी की प्राकृतिक विभूति और तज्जनित शान्ति के वातावरण का चित्रण है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ मे कौण्डिन्य की एकोक्ति है।

प्रथम अङ्क के अन्त मे विष्णु का मोहिनी-रूप धारण करना और शिव का लिङ्ग बनना छाया-नाटक के तत्त्व हैं। तृतीय अङ्क मे शुक को पात्र बनाना छायातत्त्वानुसारी है। चतुर्थ अङ्क मे चित्र के प्रयोग द्वारा छाया नाट्य का प्रवर्तन मिलता है।

द्वितीय अङ्क मे गर्भाङ्क नाम से एक प्रेक्षणक सन्निवेशित है।[1] सूत्रधार उसे रूपक कहता है।[2]

वर्णनो के लिए कवि की विशेष अभिरुचि है। उसने तिल्वाटवी का विस्तृत वर्णन प्रथम अङ्क मे किया है। द्वितीय अङ्क मे मध्याह्न तथा सन्ध्या, चन्द्रोदय का वर्णन है। काव्य की दृष्टि से ऐसे वर्णनो की चारुता असन्दिग्ध है, पर नाटक मे ऐसे लम्बे वर्णनो का परित्याग अच्छा रहता है, क्योंकि वर्णनो के साथ अनुभाव और सचारिभावो का सामञ्जस्य विरल होता है। कवि की दृष्टि मे सफल नाटक के लिए दो बातें आवश्यक हैं—कथावस्तु-सन्दर्भ तथा अभिनय-भङ्गि मे माधुर्य।

---

१ कौण्डिन्य —ममापि खलु मन प्रेक्षणकालोकनदत्तक्षणम्।
२ किमप्यभिनव रूपक नाट्यितव्यम्। दारुकावनवामाभिधानम्।

इस रूपक मे नटो का नाम नर्तक मिलता है।[1]

तृतीय अङ्क के आरम्भ म कृष्ण और सुदामा तिल्वन, प्रात काल और पारस्परिक भावनाओ का वणन विस्तार से करते हैं। इसका कोई उपयोग नही दिखाई देता।

सत्यभामा कृष्ण का आलिगन करती है, जब तृतीयाङ्क मे कृष्ण सत्यभामा को उत्सग मे लेते हैं। यह दृश्य वस्तुत भारतीय सस्कार से हीन पडता है, किन्तु जिस काव्य-परम्परा मे भाण जैसे अश्लील साहित्य की रचना हुई, उसम रगमच पर आलिगन को वर्जित मानना असगत है। महाकाव्यो की नग्न शृगारित प्रवृत्ति भी यही प्रकट करती है कि प्राचीन भारत और उसकी आधुनिक परम्परा सौन्दय-पिपासा की परितृप्ति की दिशा मे कुछ भी अकथ्य और अदृश्य नही रहने देना चाहते थे। इस क्षेत्र मे व्यजना को छोडकर अभिधा का आश्रय लेना उनकी कला-विहीनता का परिचायक प्रतीत होता है।

रस

रस-निर्भरता के लिए उद्दीपन-विभावो का वर्णन विशेप है। द्वितीय अङ्क मे शृ गार के लिए चन्द्रोदय आदि का वर्णन समीचीन है।

छन्द

सभापति विलास मे शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, अनुष्टुम्, मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, हरिणी, नर्दटक, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी आदि छन्दो का प्रयोग है।

राघवानन्द

सूत्रधार ने राघवानन्द की प्रस्तावना मे बताया हैं कि अभिनय-विद्या मुझे कुल-क्रम से प्राप्त हुई है। इसका अभिनय रगनाथ के मन्दिर मे शरद् ऋतु मे हुआ था।

कथावस्तु

वनवास के अनन्तर राम चित्रकूट मे पहुँच चुके हैं। इस अवसर पर वसिष्ठ न एक पत्र अगस्त्य के पास भेजा है कि कैसे राम के द्वारा तपस्वियो का कल्याण होना है। चित्रकूट मे मारीच राम की विपत्ति का अवसर देख रहा है। वह अनेक रूप धारण करके तिरोहित रहता है। उसे राम ने विश्वामित्र के यज्ञ मे बाधा डालने के कारण बाण-प्रहार से सैकडो योजन दूर फेंक दिया था। वह महाशम्बर से मिलकर चित्रकूट मे अपनी योजनायें कार्यान्वित कर रहा है।

अगस्त्य ने हनुमान् को भेजकर वालि के पास से सुग्रीव को ऋष्यमूक पर्वत पर बला लिया। सुग्रीव राम की सहायता करेगा और साथ ही रावण से पृथक् किया हुआ विभीषण भी राम का सहायक बनेगा।

महाशम्बर ने राम को विपत्तियो में डालने का काम अपने ऊपर लिया है। वह भरत और शत्रुघ्न का निवर्तन करने के लिए यमुना तट पर लवणासुर को और

१. अहो नर्तकानामभिनयकौशलम्। द्वितीयाङ्क मे।

केकय-प्रदेश मे गन्धर्वों को राम के विरुद्ध उभाडता है और दण्डक वन मे विराध को उकसाता है। भरद्वाज के शिष्य हारीत ने चित्रकूट मे रामादि को बताया कि यमुनातट पर लवण अत्याचार कर रहा है। वहाँ से सीधे भरत उसे दण्ड देने के लिए चलते बने।

महाशम्बर तापस बनकर चित्रकूट मे राम से मिला और बताया कि दक्षिण के मुनियो के साथ अगस्त्य ने आपको आदेश दिया है कि आप गोदावरी तट पर पचवटी मे रहे, जिससे हमारी तपश्चर्या ठीक से चले। राम पचवटी की ओर चलते बने।

द्वितीय अङ्क की सूचना के अनुसार राम ने खरदूषणादि को मार डाला है। विराध उनके पहले ही मारा जा चुका था। शूर्पणखा रामादि के लिए काम-पीडित होने पर कान-नाक विरहित की गई। फिर राक्षसो का उपर्युक्त अनर्थ हुआ। सीताहरण के लिए मारीच के साथ रावण आया है। महाशम्बर वही निकट है।

गोदावरी-तट पर विनोद करते हुए लक्ष्मण ने काञ्चन मृग देखा। उसे वह सीता को उपहार रूप मे देना चाहते है। उसे पकडने के चक्कर मे वे वही पहुँचे, जहाँ राम और सीता हैं। उस हरिण का वर्णन सुन कर सीता ने उसको पाने की उत्सुकता प्रकट की। अब प्रश्न था कि राम अगस्त्याश्रम मे यज्ञ की रक्षा करने जायें अथवा हरिण के चक्कर मे पडें। हारीत उन्हे बुलाने के लिए आ गया। राम मुनि के पास जा पहुँचे। अगस्त्य ने उनसे मुनिजनों की रक्षा करने के लिए कहा था। अगस्त्य यज्ञ के फलरूप मे एक रत्न सीता को देते है। उन्होंने रावण के विषय मे बताया—

न चेदेनत्क्रौर्यं क इह सदृशो राक्षसपते ।।२.३६

राम ने अगस्त्य को बताया कि मैं स्वर्ण-मृग को पकडने जा रहा हूँ। लक्ष्मण सीता की रक्षा करेंगे। अगस्त्य ने कहा कि सीता की रक्षा तो वह रत्न करेगा, जो मैंने उसे दिया है। उन्होंने सीता को आशीर्वाद दिया—जब राम और लक्ष्मण तुमसे वियुक्त हों तो पृथ्वी तुम्हें धारण करें।

अगस्त्य ने राम को बताया कि वालि द्वारा निष्कासित सुग्रीव ऋष्यमूक पर आपकी मैत्री के लिए प्रतीक्षा कर रहा है। उसका मन्त्री हनुमान् सहायक होगा।

राम हरिण पकडने के लिए गये। हारीत का रूप धारण करके महाशम्बर लक्ष्मण को अगस्त्य के पास बुला ले गया। इस बीच रावण ने सीता का अपहरण किया और उसे अशोक-वन मे रखा। सुग्रीव के आदेश से हनुमान् लङ्का गये। अशोक-वन मे छिपकर वहाँ महाशम्बर सीता के लिए मदन सन्तप्त रावण की बातें सुनता है। इसके पश्चात् वह रावण से मिलता है। रावण उसके कान मे उसका भावी कार्यक्रम बताता है कि मेरे लिए सीताहरण से लेकर अब तक की घटनायें प्रत्यक्ष करो। फिर तो माया-लक्ष्मण आदि का कार्यकलाप उसने रावण, सीता

और त्रिजटा के सामन सिनेमा जैसा अशोक-वन मे प्रस्तुत कर दिया ।[1]

उपर्युक्त माया नाटक के अनुसार कबन्ध और अधोमुखी आदि को मार कर रामादि सफलता की ओर बढ रहे है । राजपद पर अभिषिक्त सुग्रीव ससैन्य राम का सहायक बन चुका है । हनुमान् को सीता की खोज करने के लिए लङ्का भेजा गया है । यह सब गभनाटक मे देखकर रावण की चिन्ता बढी । उसने गवपूर्वक कहा कि आज हनुमान् आदि सभी शत्रुओ को समाप्त करता हूँ ।

रावण के जाते समय हनुमान् द्वारा गिराई हुई मुद्रिका सीता को त्रिजटा ने दी । पश्चात् हनुमान् को अगणित राक्षस वीरो ने घेर लिया । हनुमान् ने असख्य वीरो को धराशायी किया । मेघनाद ने उन्हे पकड लिया और उसकी पूँछ मे आग लगाई, जिससे सारी लङ्का-नगरी ध्वस्त हो गई । अकेले विभीषण का घर अग्नि की लपट से अछूता रहा । सीता ने हनुमान् की कल्याण-कामना करते हुए कहा—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरित तप, ।
यदि वास्त्येकपत्नीत्व शीतो भव हनूमत ॥३४१

तृतीय अङ्क के अन्त मे सीता से चूडामणि अभिज्ञान-रूप मे लेकर हनुमान् राम से मिलने चलते बने ।

राम ने लङ्का पर आक्रमण किया । विभीषण ने उनकी पूरी सहायता की । चतुर्थ अङ्क के आरम्भ मे रामपक्ष के योद्धाओ का पराक्रमात्मक परिचय दिया गया है । फिर युद्ध का समारम्भ है । युद्ध की भूमिका का सविस्तर वणन है । राम अगस्त्य को प्रणाम करके रावण से युद्ध करने वाले हैं ।

पचम अङ्क मे स्वय अगस्त्य भी विजयोपाय बताने के लिए रामपक्ष मे विराजमान हैं । रावण के द्वारा त्रस्त देवो न उन्हे इसके लिए प्रेषित किया था । घनघोर युद्ध का घोर वर्णन है । रावण और विभीषण का भयङ्कर युद्ध हुआ । रावण ने उन्हे पकडा तो अगद और लक्ष्मण ने युद्ध करते हुए उनकी रक्षा की । राम और रावण का युद्ध हुआ । घायल रावण को सारथि युद्धभूमि से दूर ले गया । रावण की पराजय हुई ।

षष्ठ अक मे युद्ध भूमि मे भागती हुई रामसेना विभीषण के उत्साहित करने पर रुकती है । अतिकाय सबको डरा रहा है । लक्ष्मण अतिकाय से लडने के लिए आये । उन दोनो मे षष्ठ अक मे जो बातचीत हुई, उसमे राम और रावण पक्ष की दुर्बलताओ का सकेत करते हुए दोषारोपण किया गया है और उनको प्रतिपक्ष द्वारा निरस्त किया गया है । नेपथ्य से युद्ध का वर्णन किया गया है । उसमे बताया गया है कि कुम्भकर्ण राम के द्वारा मारा गया है । यह उस समय हुआ, जब वह कहता था कि मैं वानरो को नचाने आया हूँ । युद्ध मे लक्ष्मण ने अतिकाय को धराशायी कर दिया ।

---

१ इस गर्भनाटक मे राम की भूमिका मे राम ही शाम्बरी माया से नायक बन कर रगमच पर आते हैं ।

षष्ठ अङ्क के अन्तिम भाग मे मेघनाद के प्रयासो का वर्णन है। वह महाशम्बर को गडबडी मचाने के लिए अयोध्या मे भेजता है। इधर हनुमान् ओषधि लाने के लिए उत्तर-पर्वत पर गये। उस दिव्यौषधि से घायल वीर विशेषत जाम्बवान स्वस्थ हो गये। महाशम्बर का वध करने के लिए जाम्बवान् ने हनुमान् को अयोध्या भेजा।

सप्तम अङ्क मे सिन्धुतट-वासी तीन करोड गन्धर्वों को परास्त कर भरत कैकय से अयोध्या आ रहे हैं। महाशम्बर भरत को विनष्ट करने के लिए अदृश्य होकर उनके पास पहुचता है। दक्षिण से आये हुए सिद्धो ने सुमन्त्र को राम की विजयाभिगामिनी प्रवृत्तियो को बता दिया है, जिसे वे भरत को बताते हैं। रावण और इन्द्रजित् के अतिरिक्त सभी महाराक्षसो का अन्त हो चुका है। यह सब सुनकर महाशम्बर अदृश्याजन मिटाकर सिद्ध का रूप धारण करके भरत के समक्ष आकर बताता है कि राम और लक्ष्मण युद्ध में मारे गये। राम और लक्ष्मण के लिए भरत करुण विलाप करते हैं।

महाशम्बर ने सुमित्रा को ध्वस्त करने के लिए बताया कि लवणासुर से लडते हुए शत्रुघ्न की मृत्यु भी युद्ध में हो चुकी है। तब तो भरत नदी मे डूबने के लिए चलते बने। उस समय उन्हे दक्षिण दिशा से आती हुई सेना दिखाई दी। हनुमान् ब्राह्मण-वटु का रूप धारण कर शाम्बरी माया का निराकरण करने के लिए पहुचते हैं। हनुमान् ने पूछने पर महाशम्बर को बताया कि आप से योगविद्या सीखने आया हूँ।

इसके पश्चात् नेपथ्य की घोषणा से विदित हुआ कि विजयी शत्रुघ्न अयोध्या पहुँच रहे हैं। महाशम्बर ने सामने शत्रुघ्न को आते देखा तो भरत से कहा कि यह लवणासुर है, शत्रुघ्न का रूप धारण करके आ रहा है। भरत उस पर बाण-प्रहार करना चाहते हैं। यह देख कर शत्रुघ्न अन्यत्र चले जाते हैं। महाशम्बर ने भरत को उकसाया कि शीघ्र शत्रु को मारें। वह अब भागने ही वाला था कि झपट कर हनुमान् ने उसे वन्दी बना लिया। उसे भरत के पास ले जाकर उन्होंने अपना परिचय दिया कि मैं राम का सेवक हनुमान् हूँ। फिर भी उन्हे हनुमान् की बात पर पूरा विश्वास नही पडा तो हनुमान ने वसिष्ठ को बुलवा कर सारी परिस्थिति उनके सामने रख दी। यह भी कहा कि शत्रुघ्न भी विजयी होकर आ गये हैं, किन्तु भरत के भय से सामने नहीं आ रहे हैं। सभी वसिष्ठ के आश्वस्त करने पर प्रसन्न होते हैं। हनुमान् ने राम के पराक्रमो का आद्यन्त परिचय दिया और सीता की अग्नि परीक्षा की चर्चा की।

वसिष्ठ ने बताया कि रावण ने माया-सीता का अपहरण किया था। सीता वस्तुत अगस्त्य के दिये हुए रत्न के प्रभाव से राम और लक्ष्मण से वियुक्त होने पर पृथ्वी के द्वारा उदर मे धारण की गई थी। अग्निपरीक्षा मे वास्तविक सीता पुन आविर्भूत हुई। महाशम्बर को हनुमान् ने दूर ले जाकर मार ही डाला।

राम के आगमन की सूचना घोषित हुई। पुष्पक विमान नीचे उतरा। भरत ने उनके चरणो मे खडाऊँ पहना दी। राम का पट्टाभिषेक हुआ। सीता ने अपने कण्ठ

से दिव्य हार निकाल कर हनुमान् को दिया। भरत ने राम से याचना की कि सबके हृदय मे आत्मज्योति का उदय हो।

समीक्षा

राष्ट्र के समक्ष असख्य समस्यायें थी। उनको कथावस्तु मे न अपना कर कवि ने सनातन सास्कृतिक विकास का रामायणीय कथानक अपने ढग से अच्छा सजोया है। राम की कथा मे नाट्यकारो ने बहुविध परिवतन मनमाना किया है। वेङ्कटेश्वर का नाम इन परिवतनकारो मे अग्रगण्य है।

शिल्प

द्वितीय अङ्क मे पत्रवाचन अर्थोपक्षेपक रूप म प्रयुक्त है। तृतीय अङ्क मे रावण के लिए अपशकुन बताने के लिए रगमच पर बिल्ले से मार्ग कटवाया जाता है। वहाँ नेपथ्य से सुनाई पडता है—

भो भो प्रगृह्यतामय मायामयो मर्कटो मार्जाररूपमधिगत्य यदेष लङ्का प्राप्तो विलोक्य नृपतिमवरुणद्धि।

वेङ्कटेश्वर की सावादिक शैली षष्ठ अङ्क मे विशेष व्यग्य-प्रखर है। ऐसे व्यग्यो से सवाद मे चटपटापन आ गया है। इसमे कोई सन्देह नही कि ऐसे सवादो की काव्यात्मक चारुता भले ही हो, किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से ये सर्वथा व्यर्थ हैं। इनके बीच कथासूत्र लुप्तप्राय हैं। कही-कही द्व्यर्थक वाक्यावली के प्रयोग द्वारा प्रेक्षको को असमजस मे डाला गया है।

राघवानन्द मे छायानाट्य की विशेषता है। महाशम्बर की बहुनामयी भूमिका वैदिक काल से ही सुप्रसिद्ध है। इस नाटक के प्रथम अङ्क के आरम्भ मे वह राक्षस तापस वेष मे रगमञ्च पर आता है। द्वितीय अङ्क मे वह अगस्त्य शिष्य हारीत बन कर लक्ष्मण को अगस्त्य के पास भेज देता है, जब उन्हे सीता की रक्षा करते हुए कही नही जाना चाहिए था। तृतीय अङ्क मे वह मायामय रामादि को अशोकवन मे सीता और रावण के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। यहाँ महाशम्बर का मायात्मक व्यापार गर्भनाटक का परिष्कृत रूप है। इसमे राम की प्रवृत्तियो और कार्यकलापो के प्रति रावण की प्रतिक्रियाओ का रसमय वर्णन है, जो अन्यथा असम्भव होता।

महाशम्बर के मायात्मक व्यापार से कृत्रिम पात्र, रूप बदलते हुए पात्र, अदृश्य पात्र आदि रगमच पर कार्यपरायण है। इनकी प्रवृत्तियो से रगमच पर अद्भुत कार्य-कलापो का प्रदशन सम्भव होता है।

चरित्र-चित्रण की कला इस नाटक मे सुविकसित है। शत्रु के मुख से भी प्रशसा करवा कर रामचरित्र का औदात्त्य विभावित है। यथा शम्बर की उक्ति है—

दृष्टा श्रुताश्च भुवनेषु मुधाभिरूढविक्रान्तयो भुजभृत कति नाम कि तै।
वीररसत्वमेव भुवि यो रजनीचरेन्द्र वीरायितानि वचसापि निराकरोषि॥

इस नाटक मे अनेक पात्र रावण के साथ और उसके हितैषी हैं, पर वे राम

के प्रशंसक हैं और रावण के दुर्वृत्त के निन्दक हैं। महाशम्बर उनमें सर्वप्रथम है। स्वयं रावण भी लक्ष्मण की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।[1]

शिल्प

अपभ्रंश और मागधी नामक पात्र क्रमशः अपभ्रंश और मागधी भाषा बोलते हैं। अपभ्रंश का प्रयोग संस्कृत नाट्यसाहित्य में सर्वथा विरल है।

अदृष्टाहृति

अनेक स्थलों पर अदृष्टाहृति (Irony) का प्रयोग मिलता है। यथा, पंचम अङ्क में जब कुम्भकर्ण कह रहा है कि मैं तो वानरों को नचाने आया हूँ, तभी वह राम के द्वारा मारा जाता है।

एकोक्ति

नाटक का आरम्भ महाशम्बर की एकोक्ति से होता है। इसमें वह अपनी विचित्र कुहनामयी दशा और राम के शिवधनुर्भञ्जन आदि पराक्रमों की चर्चा करता है। वह अपनी योजना बताता है। राम को विघ्नित करने के लिए पूरी की हुई अपनी कार्यावली का वर्णन करता है। उस प्रकार वक्तव्य की दृष्टि से यह एकोक्ति अर्थोपक्षेपक से भिन्न नहीं है। द्वितीय अङ्क का आरम्भ गोदातीर पर विनोद करते हुए लक्ष्मण की एकोक्ति से होता है। वहाँ उन्हें एक स्वर्ण मृग दिखाई देता है। उसको पकड़ने के चक्कर में वे अपने विचार प्रकट करते हैं।

रंगमंच

रंगमञ्च को प्रथम अंक के आरम्भ में दो भागों में विभक्त करके एकभाग में राम-लक्ष्मण और सीता का संवाद दिखाया गया है और दूसरे भाग में अदृश्य रहकर शम्बर उनकी बातें सुनते हुए अपनी प्रतिक्रियात्मक बातें कहता है।

द्वितीय अङ्क में रंगमंच पर गोदावरी, उस प्रदेश के वन, सीताराम की अवस्थान-भूमि और अगस्त्याश्रम—ये सभी साथ ही दिखाये गये हैं। राम के अवस्थान से अगस्त्याश्रम तक जाने के लिए केवल अधोलिखित नाट्यनिर्देश पर्याप्त है— परिक्रम्य मुनिं प्रति

वर्णन

अनेक परवर्ती नाट्यकारों की भाँति वेङ्कटेश्वर ने इस नाटक में वर्णनात्मक पद्यों का प्रचुर समावेश किया है। ऐसे वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में हैं।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में गोदावरी तट पर मनोविनोद करते हुए लक्ष्मण गोदावरी-तट के वृक्षों और स्वर्ण मृग को पकड़ने के प्रयाण पथ पर पड़ने वाले जङ्गलों का मनोत्पादक वर्णन करते हैं। वर्णन-शैली रसानुरूप है। ऐसे ही वर्णनात्मक संवादों के बीच में कथासूत्र त्रुटित सा है। कवि को चाव है मुनिजीवन-दर्शन कराने का। तदनुसार रमणीय वर्णन है—

1 राघवानन्द ३.१६—'श्रृङ्गार किं वीररौद्ररसयोः' इत्यादि।

शय्या स्निग्धनरोस्तल सिकनिल मर्वर्तु भोग्य पय
पर्यन्ते विमल प्रबुद्धकमल स्नानार्चनादे क्षमम् ।
काले छ्यानविरामदायि पननाटोप फल चाशन
क्म्यैव सुखमस्त्विद शमधनैर्यत्प्राप्यते कानने ॥२२०

ऐसे पद्यो से भर्तृहरि का स्मरण हो आता है। अनेक वणन कोरे प्रशसात्मक होने के कारण व्यय से प्रतीत होते हैं। राम और अगस्त्य का प्रारम्भिक सवाद कुछ ऐसा ही है। पचम अङ्क मे वेङ्कटेश्वर का युद्ध-वणन अद्वितीय ही है। षष्ठ अङ्क मे युद्धनतर वीरो का शत्रुओ से रोषपूण निन्दा-स्तुति-परक बातें करना मनोरजक है। इस प्रकार सवाद अस्वामाविक होने पर भी रोचक हैं। इनका अभिनयात्मक महत्त्व है।

उन्मत्त-कविकलश-प्रहसन

वेङ्कटेश्वर यदि इस प्रहसन को न लिखते तो कम से कम मेरी दृष्टि मे उनके लिए अधिक आदर होता। इसके नग्न अनुचित शृङ्गार से कोई भी सुसस्कृत पाठक मन ही मन उस समाज से घृणा करेगा, जिसमे अयोग्य कामपिपासा को बुझाते हुए नर नारियो से सडक, गली, कूचे, मन्दिर और मठ भरे हो। कोई वर्ग भी तो अपने वेश के योग्य सयत नही दिखाई देता। यह प्रहसन विटो की सभा के विनोद के लिए अभिनीत हुआ। वास्तव मे वेङ्कटेश्वर को स्वय अपने पतन से ग्लानि हुई थी। इस रूपक की रचना करके वे रोये थे—

पुण्यश्लोकसुधाकथालहरिभि सिक्ता मनीगावताम् ।
वाग्गीगर्ह्य चरित्रकीर्तनभुवा दोषेण हा क्लिप्यते ॥

क्या प्रहसन का यही रूप होना चाहिए ? कम से कम विश्वात्मक प्रहसन-साहित्य को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह प्रहसन नितान्त भोंडा है। भारत मे भी पुराने और मध्ययुग मे कुछ प्रहसन मिलते हैं जिनके वण्य विषय का स्तर और शैली प्रकाम ऊँची हैं। प्रहसन को अश्लील शृङ्गार की सीमा से ऊपर उठाना वेङ्कटेश्वर जैसे मनीषियो का काम था, पर वे ऐसा न कर सके। इस प्रहसन के हास्य मे वैशद्य का सर्वथा अभाव है।

इस प्रहसन के नायक कवि कलश हैं—

दौजन्यस्य तप फल सुचरितस्योत्पातकेतु कले-
र्गावृनिर्दुरितस्य गर्भमदन मोहस्य काष्ठा परा ।
तृष्णाया परदेवनान्ननगिरा सीमा खलश्रेयसा-
मास्थान कलशस्स एप कविरित्यायाति मायानिधि ॥१३

उनकी वेश-भूषादि से ही हँसी आती है—

कटिघटितकटारि कचुकोष्णीपकक्ष्ये
यवन इव दधान श्मश्रुजाल च भीमम् ।

असितकृशशरीरो तालदीर्घोऽधुनोल्का
मुख इव कलशोऽसौ दृश्यते क्रूरकर्मा ॥१४

कलश का उस दिन का काम था दिन का व्यय चलाने के लिए ऋण प्राप्त करना। उनसे ऋण चुकता पाने के लिए सैकड़ों व्यक्ति उनकी टोह में थे। वह छिपकर इधर-उधर निकलता था।

कलश और उनके शिष्य रण्डाओं को फँसाने वाले पौराणिकों की निन्दा कर लेने के पश्चात् राजैश्वर्यशाली माध्व-संन्यासी और मठाधीश-यति के विवाद की चर्चा करते हैं। उन दोनों के शिष्य झगड़ पड़ते हैं। आगे कलश को विधवा और भागवत मिलने हैं। भागवत ने देवालय-प्राङ्गण में विधवा को सनाथ किया था। उसे मोक्षमार्ग दिखाने के बहाने उसकी कामुकता शान्त की थी।

आगे उन्हें प्रौढ कवि और बालकवि रंगमञ्च पर मिलते हैं। बालकवि के मुख से कलश का वर्णन है—

मत्कुणवृश्चिकमहिपप्लवगकौलेयकाजगोष्ठश्वान ।
पृथक् पृथगवलोक्या कविकलशे दृष्टिगोचरे जाते ॥४७

कलश ने अपने विषय में कहे हुए इस पद्य की बड़ी प्रशंसा की।

कलश और उसके शिष्य को कृपण-भक्त नामक वैश्य का पुत्र विट-चक्रवर्ती मिलता है। आगे एक ब्राह्मण मिलता है, जिसने चेटी से सम्भोग कर लेने के पश्चात् उसके सो जाने पर उसकी सम्पत्ति चुरा ली। कलश के कहने पर रोती हुई चेटी को उसने पेटिका से चुराई हुई धनराशि देने का जब उपक्रम किया तो चेटी पेटिका लेकर भाग गई। कलश के माँगने पर उसने अपनी रुद्राक्ष माला दे दी।

आगे कलश को एक रोता हुआ व्यक्ति मिलता है। उसकी एकस्तनी पत्नी किसी विदेशी विट के साथ भाग गई थी। कवि कलश ने उसे खिलाने की आज्ञा दी।

कलश प्रापणिक के पास ऋण के लिए पहुँचा। उसने कलश से बचने के लिए उन पठानों को सूचना दे दी, जिनके ऋण वह नहीं लौटा रहा था। बाहर निकाल कर सड़क पर कलश की दुर्गति की गई। वह मूर्छित हो गया। राजपुरुषों ने पठानों को पकड़ कर राजा के पास पहुँचाया। पठानों ने कहा कि यह पचास दीनार नहीं लौटा रहा। इसके भरत वाक्य से इसकी अश्लीलता की कल्पना करें।

साधुषु विवेकमत्योर्योगो गाढ शुनो रन इवास्तु।
त्यक्तुरिभशेफ-नुमिव दैर्घ्यं मर्त्यायुषा सदा भूयात् ॥६१

नीलापरिणय

वेङ्कटेश्वर ने नीलापरिणय की रचना के पहले राघवानन्द और सभापति-विलास लिखे थे। एक ही नाटक-मण्डली ने कवि के अनेक रूपकों का देश विदेश में भ्रमण

करके अभिनय किया था।[1] नटी अपने गीत से कथावस्तु का सङ्केत करती है।

कथावस्तु

नीला नामक कन्या पहले नन्द के गोपकुल मे उत्पन्न हुई। कृष्ण की मुरली जब बजती थी तो गुरुजनो से रोकी हुई वह कृष्ण के चित्र से विनोद करती थी। मरने पर वह चोलराजकुमारी कृष्ण के चित्र सहित चम्पकमजरी हुई।

कृष्ण राजगोपाल नाम से प्रख्यात होकर द्वारका मे रहते हैं। एक दिन गरुड ने एक दिव्य मणि तथा दर्पण गोप्रलय महर्षि को दिया। ऋषि ने दर्पण को सौराष्ट्र के राजा के भवनोद्यान मे लगा दिया। उसे मायाधर अपने स्वामी के लिए पुन प्राप्त कर लेना चाहता था।

राजगोपाल दर्पण को देखने के लिए आये। उस समय झञ्झावात से उडाकर प्रासाद सहित दर्पण अदृश्य कर दिया गया।

इधर चम्पकमञ्जरी नामक सुन्दरी का चित्र विदूषक ने राजगोपाल को दिया। कुछ समय बाद वह सुन्दरी आ गई। राजगोपाल के मुख से उसका वर्णन है—

नेत्रे नीलसरोरुहे विचकिल मन्दस्मिताशुर्जपा
पुष्प दन्तपटश्शरीरसुषमा चाम्पेयदामावली।
वक्षोजौ कनकाब्जकुड्मलयुग पद्मौ मृगाक्ष्या पदे
प्राप्य किं परत प्रसूनमपर लीलावनाभ्यन्तरे॥२ १६

दूर से राजगोपाल और चम्पकमजरी एक दूसरे को देखते हैं। चम्पकमजरी को विदूषक ने उसका चित्र दिखाया, जो झझावात मे उड गया था। विदूषक ने राजगोपाल और चम्पकमजरी को मिलाकर कहा—मजरी आप के लिए है।

राक्षस मायाधर बतलाता है कि स्थूलाक्ष के लिए दर्पण तो मैंने पुन प्राप्त करके दे दिया। अब मेरे स्वामी ने मुझे चपकमजरी को लाने के लिए भेजा है। यहाँ चम्पक-वन मे कृष्ण वियोगी बनकर नि श्वास ले रहे हैं। ऐसा लगता है कि चम्पक-मजरी के विरह मे उनकी यह स्थिति है।

इधर राजगोपाल के प्रेम मे पगी चम्पकमजरी अतिशय सन्तप्त है। राजगोपाल उसका मदन-सन्ताप देखकर अन्त मे उसके सामने प्रकट होते हैं। मायाधर ने वहाँ की स्थिति देखकर योजना बनाई कि अदृश्याञ्जन से गूढ होकर चम्पकमजरी को छिपा कर स्वामी स्थूलाक्ष के पास ले जाऊगा। उसने चम्पकमजरी की सखियो को पकडा। उनके आक्रन्दन करने पर रामगोपाल चम्पकमजरी को छोडकर उधर गए। मायाधर ने किसी द्रव्य के प्रभाव से चम्पकमजरी को अदृश्य कर दिया। दैवज्ञ ने उसके पिता को आश्वासन देते हुए बताया कि गोप्रलय महर्षि के यज्ञ की समाप्ति होने पर उसके साथ राजगोपाल का विवाह होगा।

चतुर्थ अङ्क मे राजगोपाल और उनके साथी रगमच पर हैं। उनके साथ ही चम्पकमजरी अदृश्य होकर वर्तमान है। राजगोपाल उसे ढूँढ रहे हैं। घूमती-फिरती

१ नटी—किं ण दिट्ठाणेण कइ देण आसूत्तिआ राहवानन्द सहाअइ-विलास अ णाडअ अम्हेहिं तेसु तेसु दिअन्तेसु विम्हयाणदवोसन्ता महन्ता। प्रस्तावना से।

जब वह सरसी-तट पर पहुँचती है तो वहाँ जल मे उसकी छाया राजगोपाल देखकर वहाँ उसकी उपस्थिति की कल्पना करते है। चम्पकमजरी वासन्तिका का आह्वान करती है। सखियाँ कहती हैं कि राक्षस उसे खा गया। उसकी कोई कला बोल रही है। यह सुनकर नायक के मूर्छित होने पर चम्पकमजरी ललाट पर उसका स्पर्श करती है। नायक सचेत होता है। फिर उसके मूर्छित होने पर नायिका अदृश्य रह-कर ही उसका आलिंगन करती है। नायक सचेत हो जाता है। इस आलिगन मे उसके ललाट पर लगा अजन छूट जाता है, जिससे वह सशरीर प्रकट हो जाती है। नायक के हाथ मे लगे अजन से विदूषक को अदृश्य बना दिया गया। अन्त मे नायिका देवी के पास पहुँचा दी गई। इधर गरुड न स्थूलाक्ष को मार डाला। गरुड ने मायाधर के चगुल से अदृश्य चम्पकमजरी को बचाया था। अन्त में यह घोषणा की गई कि नायिका का विवाह नायक से होगा। विवाह होने पर देवताओ ने अतिशय हर्ष व्यक्त किया।

प्रस्तावना-लेखक

सूत्रधार ही प्रस्तावना लिखता था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से स्पष्ट है।

सूत्रधार —मारिष, मद्वचनाद् उच्यना नर्तकास्तेषु तेषु पात्रेषु सावधानै-र्भवितव्यमिति। यावदेपोऽहमधुना गोप्रलय-महर्षि-शिष्यस्य हारीतस्य भूमिका गृह्णामि।

पात्रानुसन्धान

नीलापरिणय नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषो की भूमिका मे आती थी। इस नाटक मे सूत्रधार हारीत बना और उसकी नटी मायाधर राक्षस बनी।[1] पुरुषो का स्त्री भूमिका मे आना कोई असाधारण बात न थी।[2] द्वारका मे कृष्ण राजगोपाल है। राजगोपाल को इस नाटक के तृतीय अङ्क मे कपट-नाटक सूत्रधार कहा गया है।

नीलापरिणय मे पौराणिक सूचनाओ की भरमार है। किसी नाटक मे इस प्रकार अधिकाधिक सूचनायें देना नाट्यकला के विरुद्ध है।

एकोक्ति

तृतीय अङ्क के आरम्भ मे विष्कम्भक के अनन्तर देवराजगोपाल की लम्बी एकोक्ति मे ११ पद्य हैं। वे पहले तो चम्पकमजरी के आङ्गिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। फिर अपने मन की विवशता की चर्चा करते हैं। उन्होंने कामदेव की प्रहार-लीला का अनुसन्धान किया। यह सब सोचते-विचारते वे चम्पक वन म पहुँचते हैं। वहाँ चन्द्रोदय का अपने ऊपर प्रभाव बताते हैं और मलयवायु को उलाहना देते हैं। यह सब एकोक्ति में है।

रगमञ्च पर तृतीय अङ्क मे नायक नायिका का आलिगन दिखाया गया है। यह विधान अभारतीय है।

१ सूत्रधार —यावदेपोऽहमधुना गोप्रलयमहर्षि-शिष्यस्य हारीतस्य भूमिका गृह्णामि।

नाटी—अह अ माग्राहरम्स।

२ आनन्दराय मखी के विद्यापरिणयन मे शिवभक्ति की भूमिका मे रगनाथ आता है।

आनन्दराय-मखी का नाट्यसाहित्य

आनन्दराय मखी का प्रादुर्भाव तञ्जौर नरेशो के मन्त्रिकुल मे हुआ था। इनके पितामह गगाधर महाराज एकोजी के मन्त्री थे और पिता नृसिह राय एकोजी तथा शाहजी के मन्त्री थे। स्वय आनन्दराय शाहजी प्रथम, सरफोजी प्रथम तथा तुक्को जी के धर्माधिकारी और सेनाधिकारी थे। आनन्दराय का जन्म १७ वी शती के उत्तरार्ध मे हुआ और वे लगभग १७ ५ ई० तक जीवित रहे।

सूत्रधार ने विद्यापरिणयन मे आनन्दराय को विद्वत्-कविकल्पतरु कहा है। इससे प्रमाणित होता है कि वे विद्वानो के आश्रयदाता और पोषक थे। आनन्दराय कोरे कवि ही नही थे, अपितु 'समरे च विक्रमार्क इव' अर्थात् युद्ध मे विक्रमादित्य की भाँति पराक्रमी थे।

सूत्रधार के अनुसार तो स्वय सरस्वती ने शाहजी के रूप मे अवतार ग्रहण किया था। उसने आनन्दराय पर प्रसाद किया, जिसके फलस्वरूप उनकी प्रतिभा का सर्वोपरि विकास हुआ।

आनन्दराय का चारित्रिक विकास समीचीन था। सूत्रधार न उनका परिचय दिया है कि वे दीनो पर दया करते थे। पारिपार्श्विक न उनकी दिनचर्या बताई है—

'श्रुतिस्मृतीतिहासागमतन्त्रादिसिद्धनानाविध–साम्बशिवचरणपरिचरण-तदनुसन्धान–निरन्तरितनिखिलवासरस्य तदन्तरालपरिमितपरिशिष्टकनि-पयमुहूर्त-निवर्तनीय-चतुरुदधि-परिमुद्रित-सकलराजतन्त्रस्य शरभमहाराज-मन्त्रिशिखामणे' इत्यादि।

आनन्दराय शिव और विष्णु मे अन्तर नही मानते थे। उन्होने निवृत्ति के मुख से विद्यापरिणयन नाटक मे कहा है— 'विष्णुर्न शिवादन्य'।१ ४३

आनन्दराय के दो नाटक विद्यापरिणयन और जीवानन्दन प्रसिद्ध हैं। इनकी अन्य कृति आश्वलायन-गृह्यसूत्रवृत्ति है।

विद्यापरिणयन

विद्यापरिणयन नाटक की रचना सरफोजी प्रथम (१७११-२८ ई०) के समय मे हुई। इसका अभिनय भगवती आनन्दवल्ली अम्बा के महोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथावस्तु

विद्यापरिणयन सात अङ्को का नाटक है।[1] सूत्रधार ने नाटक की कथावस्तु का साराश इस प्रकार दिया है—

१. विद्यापरिणयन का प्रकाशन १९६७ मे चौखम्भा-संस्कृत-सीरीज मे हुआ है।

यल्लाभतो वल्लभमस्ति नान्यदात्मा स शेषी सकलागमानाम् ।
येनाधिगम्येत तदागमान्त प्रमेयसर्वस्वमिहेतिवृत्तम् ॥

जीव अविद्या के मोहपाश मे ग्रस्त होकर नाच रहा है। परमेश्वरी को उसकी दुर्गति पर दया उत्पन्न हुई। उसने शिवभक्ति से कहा कि तुम्हारे होते हुए जीव क्यो कर दु ख भोगे ? जीव वस्तुत शिव और विद्या शिवा है। परमेश्वरी इनकी सन्तान है।

जीव अविद्या और उसकी सखियो प्रवृत्ति, विषय-वासनादि के साथ प्रसन्न है। उन्ही के साथ चित्त शर्मा जीव का सचिव भी है। वह विवेक के प्रभाव मे आकर जीव को अविद्यादि के पाश से मुक्त करने की योजना के अन्तर्गत इनकी प्रसन्नता के उत्कृष्ट अवसर पर कहता है—इन सबसे क्या सुपरिणाम होगा ? फिर तो चित्त के ऊपर अविद्या और उसके परिवार का मर्मान्तिक वाक्-प्रहार आरम्भ हुआ। आवेश मे आकर चित्त ने अपनी भावी योजना का आभास दे ही डाला कि आपको इन सुख-दु खो मे नचाने वाली शक्तियो से क्षणिक छुटकारा मैं ही दिलाता हूँ। यथा,

एतास्तावदह प्रतार्य करणद्वाराणि बद्ध्वा दृढ
निर्व्यापारतया पुरी तदुदरे गूढ निलीय स्थित ।
दु खासकलित नयाम्यनुपद नो चेदभवन्त सुख
कृत्वा रोगसहस्रगुम्फनमिमा कि वा विदध्युर्न ते ॥

निवृत्ति जीव से मिली, जब वह चित्तशर्मा के साथ था। निवृत्ति से प्रभावित होकर जीव ने उसका परिचय पूछा। उसने अपना आवास आनन्दमय वेदारण्य बताया। जीव ने पूछा—क्या मेरा भी वहाँ प्रवेश हो सकता है ? निवृत्ति ने कहा—हाँ, शिव-भक्ति के प्रसाद से।

वातावरण कुछ ऐसा बना कि अविद्या को सन्देह हुआ कि जीव को मुझ से विलगाने वाले प्रयत्नशील हैं। वेदारण्य के महायोगी शम, दमादि इनमे प्रमुख हैं। अविद्या ने काम्य क्रिया और उपासना को नियुक्त किया कि जीव को भक्ति, विरक्ति, निवृत्ति, शम, दमादि के चक्कर मे न पडने दो।

तृतीय अङ्क मे चित्तशर्मा ने वेदारण्य के तपस्वियो से शृङ्गार वन मे बैठे जीव को विद्यापरिणय की जो बात सुनी थी, वह बताई। जीव विद्या के विषय में उत्सुक हो गया। तभी शिव-भक्ति के द्वारा निर्मित विद्या का चित्र जीव के लिए निवृत्ति ने लाकर दिया। इसे देखकर वह लुब्ध हो गया। वह उसके प्रेम में उन्मत्त होकर अपनी आसक्ति की वर्णना करने लगा, जिसे अविद्या ने वहाँ आकर छिपे-छिपे सुना। जब उससे नही सहा गया तो वह प्रकट हुई और जीव को फटकारने लगी। जीव भी एक घुटा हुआ था। उसने कहा कि यह सब चित्तशर्मा का इन्द्रजाल था। इसमे वास्तविकता कहाँ है ? जीव ने पैर पर गिर कर अविद्या को प्रसन्न करना चाहा, पर वह उसका तिरस्कार कर थोडी दूर हो गई।

चित्तशर्मा ने अविद्या को परामर्श दिया कि जीव का पिण्ड न छोडे। वह वेदारण्य

मे जाना चाहता है तो जाय, पर वहाँ उसे महामोह आदि को लगा दें कि वे शम-दम को ध्वस्त कर दें।

इधर विद्या भी जीव को पतिरूप मे पाने के लिए बहुत उत्कण्ठित थी। सत्सग से मिलकर चित्तशर्मा ने योजना बनाई कि वेदारण्य मे कैसे विद्या का जीव से परिणय कराया जाय।

वेदारण्य मे अविद्या अपनी सखियो के साथ जीव से मिलने आ पहुँची। अविद्या की ओर से जीव को सत्पथ से च्युत करन के लिए विविध पापण्ड, मोह आदि नियुक्त थे। इधर शिवभक्ति ने वस्तु-विचार को उन्हे ठीक माग पर चलान के लिए नियुक्त किया था। लोकायतिक, बौद्ध सिद्धान्त, चार्वाक, विवसन (जैन) सिद्धान्त, आदि की बातें जीव न न मानी। फिर अविद्या की इच्छानुसार सोमसिद्धान्त, पाञ्चरात्र-सिद्धान्त, तान्त्रिक, श्रीवैष्णव, कलि आदि के पारस्परिक विवाद से भी जीव का मन न भरा। वे सभी पापण्ड हार कर भाग चले।

अविद्या ने अपने पक्ष की विफलता देखकर असूया के द्वारा भेजे हुए मोहादि के द्वारा शम आदि के प्रचार को रोकने की योजना को कार्यान्वित करना चाहा।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, दम्भ, आदि अविद्या की सहायता के लिए आये। चित्तशर्मा के साथ जीव विराजमान हुए। वेदारण्य मे वैदिक यज्ञो का प्रकाम विस्तार था। जीव काम, लोभादि के वश मे कुछ-कुछ आ रहा था, पर चित्तशर्मा ने किसी की एक न चलने दी। अन्त मे अविद्या को हारकर कहना पड़ा—

न वाग् न रूप न रसो न गन्धो न स्पर्शन वा सुखहेतुरस्ति।
भवानहो क गुणमाकलय्य विर्येति सम्मुह्यति वा न जाने ॥५ ३६

जीव विद्या को और विद्या जीव को प्रत्यक्ष देखकर परस्पर प्रणयाभिसन्तप्त हो गये। इधर अविद्या ने चित्तशर्मा से कहा कि जीव मेरे हाथ से बाहर जा रहे हैं। आप उन्हे रोकें। चित्तशर्मा ने कहा कि जीव जब आपको प्रसन्न करने जायँ तो आप प्रसन्नता न प्रकट करें। आगे मे सब समाधान कर लूँगा।

अविद्या कोपभवन मे बैठी थी कि जीव चित्तशर्मा के निर्देशानुसार तापसारण्य मे प्रवास करने चले। जीव अविद्या के पास मनाने आये तो बात कुछ बनी नही। जीव ने कहा कि जब अविद्या नही प्रसन्न होती तो मैं वेदारण्य मे चला। तापसो ने जीव से भेंट की। तभी अविद्या के द्वारा नियुक्त राजसी और तामसी शिवभक्ति ने यज्ञ-समुदायो के साथ जीव को पकडा। उन्होंने अपने साथ लौकिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले पाशुपतादि अस्त्र, शरभेश्वर मन्त्र, बगलामुखी मन्त्र, श्वेनयाग आदि ग्रहण करने की सुविधा प्रदान की। जीव ने कहा कि यह सब कुछ नही। अष्टाङ्गयोग के प्रकट होने पर चित्तशर्मा ने जीव को उसकी उपयोगिता बताई। योग ने अपने दण्ड से जीव को सत्पथ मे अलग रखने का प्रयास करने वालो को दूर हटाया।

विवेक और मोह की महती सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ। मोहपक्ष हारकर भागा। फिर तो योग ने एक दिन निद्रा मे साम्बदक्षिणामूर्ति का दर्शन जीव को

कराया। शिवभक्ति के प्रति कृतज्ञ जीव ने उससे मिलते ही उसे सौ बार प्रणाम किया।

पुण्डरीक-भवन में विद्या को सजाकर उसके विवाह की तैयारी कर दी गई। साम्बशिव ने रंगमंच पर प्रवेश किया। जीव ने उनकी लम्बी स्तुति की। फिर तो तण्डु के निर्देशन में शिव कल्याण मण्डप की ओर चले। शिवप्रसाद और ओ३म् की उच्चारणीयता का निनाद हुआ। निदिध्यासन ने विद्या का कन्यादान जीव के लिए कर दिया। अविद्या ने यह सब देखा और सपरिवार परावृत्त हो गई।

विद्यापरिणयन की कथा पढ़ने से पाठक को अश्वघोष कृत सौन्दरनन्द महाकाव्य की कथावस्तु का स्मरण हो आता है। महाकाव्य का नन्द नाटक का जीव है, सुन्दरी अविद्या है और मुक्ति विद्या है। महाकाव्य का बुद्ध नाटक का विवेक है तथा आनन्द चित्तशर्मा है।

समीक्षा

सूत्रधार ने आनन्दराय के रचना-वैशिष्ट्य का निदर्शन करते हुए कहा है—

अश्लील न तितिक्षते न सहते पात्रेषु चानौचितीम्।

संस्कृत-भाषा तो भारत के विद्वानों की १८वीं शती की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा थी, पर मध्यकालीन प्राकृत भाषायें—शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी आदि जनता से दूर हो गई थी। इन भाषाओं को नाटककारों ने यद्यपि अपनाये रखा, किन्तु शाहजी जैसे राजकवियों ने इनके स्थान पर स्थानीय आधुनिक भाषाओं को अपनाया। उनके पंचभाषा-विलास में हिन्दी, मराठी आदि भाषायें प्राकृतों के स्थान पर हैं। मध्ययुगीन प्राकृतों को नाटक में स्थान न देने की प्रवृत्ति भी इस युग में पनप रही थी। आनन्दराय ने प्राकृतों को नाटक में स्थान न देने का कारण इस प्रकार बताया है—

अप्राकृतसभाहृद्या न प्राकृतगिरो मता।
अत संस्कृतया वाचा सभालंकियतामिति॥

अपने मन्तव्यों को प्रत्यक्ष सा कर देने में आनन्दराय निपुण हैं। विद्वान् भी अविद्या के पाश में बद्ध होकर वानर की भाँति नचाये जाते हैं—यह आनन्दराय की उक्ति है—

दृष्टस्त्वया विवलते विषयेषु नाम।
बद्धो वलीमुख इवाशरणो बुधोऽपि॥२.४

विषयवासना साधिकार कहती है—

स्वाध्यायाध्ययनावबोधविहितानुष्ठाननिष्ठाश्रमं,
कान्तारे गिरिकन्दरे तृणपर्योवृत्या च शुद्धान्तर।
आरुह्य श्रवणादितुङ्गपदमध्यात्मा निदिध्यासनात्।
न नम्योनमियापकृष्य विषये बध्नामि कामादिभि॥२.१०

प्रस्तावनालेखक सूत्रधार

आनन्दराय मखी के नाटकों की प्रस्तावना से स्पष्ट होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है। पारिपार्श्वक के पूछने पर जीवानन्द में सूत्रधार कहता है—

सूत्रधार —नन्वस्ति ममवशे सहृदयजनहृदयचन्दन जीवानन्दन नाम नवीन नाटकम् ।

विद्यापरिणयन मे सूत्रधार पारिपार्श्वक को नाटककर्ता आनन्दराय मखी का परिचय देते हुए कहता है—

स (आनन्दराय मखी) तावत् इद नाटकमुचितेपु प्रयोक्तव्यम् इति सबहुमानमस्मद्वशे समर्पितवान् ।

अर्थात् आनन्दराय मखी ने आदरपूर्वक यह नाटक मुझे समर्पित किया और कहा कि उचित प्रेक्षको के होने पर ही इस नाटक का अभिनय किया जाय ।

जीवानन्द की प्रस्तावना मे पात्रो के नाम दिये हुए हैं। विद्यापरिणयन मे सूत्रधार कहता है—

अये मत्स्यालको रगनाथनामा शिवभक्तेर्भूमिकामादायागत एव ।

जीवानन्द मे विकट नामक नट के सूत्रधार के प्रतियोगी होने की चर्चा है ।

उपर्युक्त बातें केवल सूत्रधार ही लिख सकता है, नाटककार नही—यह विद्वान् स्वय समझ सकते हैं ।

पात्रो की सज्जा

पात्रो की सज्जा की कल्पना इस नाटक की निवृत्ति की सज्जा से की जा सकती है ।[1] यथा,

भस्मालेपनत क्षरज्जलधरच्छाया तनु बिभ्रती
पक्ष्मभ्यामधरश्रिया च कथमप्युन्नेयवक्त्राम्बुजा ।
वैयाघ्र परिधाय चर्म दधती सव्यानमैणीत्वच
विद्युत्पिङ्गजटाच्छटा विजयते सेय निवृत्ति पुर ॥१ २४

नायक-कल्पना

इस नाटक मे प्राय सभी नायक भावात्मक हैं। उनका मानव रूप केवल प्रतीक के द्वारा है। यह प्रतीक कल्पना अधिष्ठातृदेव की मान्यता से परिपुष्ट और साकार हुई है। नदी केवल वारिराशि नही है, अपितु वह एक देवी है। अग्नि देव हैं। सूर्य आदि देव हैं। ऋग्वेद के समय से ही मयु आदि भावो को देव मानकर उनके मानव रूप की कल्पना हुई है। आनन्दराय इन नायको को स्थूल मानव रूप भी देते हैं। नीचे के उदाहृत पद्यो से यह स्पष्ट होगा। भावात्मक नायको के अतिरिक्त इस नाटक के अन्त मे साम्बशिव देवता नायक हैं। तण्डु उनके साथ है।

नायको का रूपोच्चय कवि की एक विशिष्ट देन सस्कृत नाटक के लिए मानी जा सकती है। तपस्वियो को कवि दृष्टि से परखें—

गाढोद्बद्धजटासनीडनिबिडव्यानद्धनीडोदर—
क्रीडन्नीडजकाकलीकलकलाटोपैरविक्षेपिण ।
देवे क्वापि निविष्टतुष्टमनस शिष्टा इमे तापसा
सघीभूय समापतन्ति क इमे धर्मा विशुद्धा इव ॥६ १५

---

१ निवृत्ति नामक पात्र की सज्जा का वर्णन १ ३९ मे भी है ।

नायकों के नाम कहीं-कहीं ऐसे मिलते हैं कि उनके अधिष्ठाता देव और मानव स्वरूप मानो स्पष्ट सा है। यथा, चित्त नामक नायक चित्तशर्मा कहा गया है।

नाट्यशिल्प

अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री भी रंगमंच पर अङ्क-भाग में दी गई है। प्रथम अङ्क में निवृत्ति वह सारी बात बताती है कि शिवभक्ति ने मुझे बताया है कि जीव को अविद्या से छुटकारा प्राप्त कराने के लिए क्या योजना बन चुकी है। यथा,

"मायागहनकर्मणश्चित्तशर्मणो भेदनेनैव जीवराजोऽभिमुखी करणीय।"

तृतीय अङ्क में चित्तशर्मा जीव को वे सारी बातें बताता है, जिन्हें वह वेदारण्य में सुन चुका है।

कोई पात्र रंगमंच पर प्रवेश करते ही किसी अन्य पात्र को दूर से ही देख कर उसके विषय में अपने मनोभाव एकोक्ति द्वारा प्रकट करे—यह रीति आनन्द राय ने अपनाई है। द्वितीय अङ्क में प्रवृत्ति की अविद्या के विषय में ऐसी एकोक्ति इस प्रकार है—

प्रवृत्ति—कथमत्रैव विषयवासनया सह भद्रपीठमध्यास्ते देवी। यैषा,

पश्यन्त्येव न पश्यति प्रणयिनी वस्तून्यहो चक्षुषा,
शृण्वत्येव शृणोति न प्रियसखी नर्मानुलापानपि।
चेतः क्वापि क्व कुतोऽपि तदहं मन्येऽधुना चिन्तया,
पत्युर्विप्रियजन्मना चिरमसावाकृष्यते केवलम्॥२८

अतएव किल,

प्रातश्चन्द्रकलेव पुष्यति दृशोर्नन्दमस्यास्तनु-
र्निश्वासोष्मविघट्टनेन गलितो बिम्बाधरे शोणिमा।
वीटी चित्रगतेव तिष्ठति चिरं चिन्मुद्रया मुद्रिता
सन्त्रस्तो विफलोद्यमः परिजनः पर्यन्तमासेवते॥२९

तदुपसर्पाम्येनाम्।

कवि ने इस प्रतीक नाटक में नायकों को ऐसा रूपित किया है कि वे मानवों से मानो अभिन्न हैं। जीव का रूपायन देखिये। वह कहता है—

हृद्यं वस्तु न रोचते हृदयजस्तापो न विश्राम्यति
श्वासः प्लोषयतेऽधरं शिथिलयत्यङ्गानि चिन्ता मम।
मोहे मज्जति चेतनापि निमिषः कल्पादनल्पायते
कस्मै किं कथयेय हन्त तमिमं कालं क्षिपेयं कथम्॥३३

इस पद्य में जीव शरीर, मन और वाणी से पूरा मानव है।

छायातत्त्व

विद्या के चित्र से नायक वैसे ही मुग्ध होता है, जैसे सदेह व्यक्ति में। वह चित्र देखकर कहता है—

आप्लाव्य ज्वलदङ्गमङ्गमभितः संसृत्य नाडीष्वपि
प्लोषावेगकदर्थितासुकरणान्युज्जीवयन्ती पुनः।

अथ्या निस्तुलतत्तदङ्गसुषमाकल्लोलिता काप्यसा—
वानन्दामृतदिव्यसिन्धुलहरी विश्व किलापह्नुते ॥३ २८

वह चित्र को बहुत देर तक निहारता है, उन्मत्त हो जाता है और उसे सम्बोधित करके कहने लगता है—

मृद्नामि किं नु मृदुल पदपल्लव ते, किं ते लिखामि कुचयोरुन पत्रवल्लीम्।
एह्येहि मे विदधती सकृदङ्कपालीमन्तर्गत निरवशेषय तापमेनम् ॥

अन्त मे चित्तशर्मा को बताना पडता है—

(सोपहासम्) वयस्य प्रतिकृतिरिय खलु तस्या ।

छायातत्त्व के उत्तम उदाहरणो मे से यह एक है। वस्तुत प्रतीक नाटक आद्यन्त छायातत्त्व से सम्भृत होता है।

जीवनदर्शन

आनन्दराय ने इस नाटक मे जीवन-दर्शन की वही दिशा बताई है, जो भर्तृहरि के वैराग्यशतक मे है। यथा,

पिष्टरसामृत-सदृश वैषयिक तत्सुख सुख नैव।
आधि-व्याधिजराभिर्दुर्लभमेतच्च काकमासमिव ॥

जीवानन्दन

सात अङ्कों का जीवानन्दन आनन्दराय का दूसरा प्रतीक नाटक है।[1] इसका प्रथम अभिनय तञ्जोर म बृहदीश्वर-रथोत्सव के अवसर पर हुआ था। नाटक देखने के लिए जो सभ्य उपस्थित थे, उनका वर्णन सूत्रधार न किया है—

सरसकविनानाम्नो हेम्न कषोपलता गता
विहरणभुव षड्दर्शिन्या विवेकधनाकरा ।
विदधति तपोलभ्या सभ्या इमे मम कौतुक
तदिह हृदय नाट्येनैतानुपासितुमीहते ॥

जीवानन्दन के नायक जीव का मन्त्री विज्ञानशर्मा है। जीव राजा है, उनकी पत्नी बुद्धि है। नायक-पक्ष के अन्य पात्र हैं—ज्ञानशर्मा (अपवर्ग-मन्त्री), धारणा (बुद्धि की सहचरी), प्राण (प्रतिहारी), विचार (नगर-पालक), किंकर (विचार का साथी), वैतालिक, विदूषक, शिवभक्ति, स्मृति, श्रद्धा, चेटी, काल, कर्म, परमेश्वर, परमेश्वरी, औषधियाँ आदि। प्रतिनायक राजयक्ष्मा है। उसकी पत्नी विषूची है। अन्य पात्र है पाण्डु (यक्ष्मा का मत्री), सन्निपात (सेनापति)-श्वास कास (भृत्य), छर्दि (कास की पत्नी) कण्ठकण्डूति (छर्दि की सपत्नी), गलगण्ड (यक्ष्मा का परिचर), गद (यक्ष्मा का चर), व्याक्षेप (गुप्तचर)। इस प्रतीक नाटक मे लेखक का उद्देश्य दु साध्य राजयक्ष्मा का निदान प्रवर्तित करना है। शिवभक्ति का माहात्म्य स्थान-स्थान पर चर्चित है।

जीवानन्दन नाटक का महत्त्व आयुर्वेद की दृष्टि से भले ही अधिक हो, साहित्यिक पाठ्य की दृष्टि से यह नगण्य है।

---

१ जीवानन्द का प्रकाशन काव्यमाला-सीरीज मे तथा अड्यार से हो चुका है। १९५५ ई० मे इसका प्रकाशन पुस्तकभवन-वाराणसी से हुआ।

अध्याय ४२

गोविन्दवल्लभ नाटक

गोविन्दवल्लभ नाटक के प्रणेता द्वारकानाथ के पिता रुक्मिणीकान्त थे।[1] कवि ने नाटक के अन्त मे अपनी वशपरम्परा का वर्णन किया है, जिसके अनुसार क्रमश द्वारकानाथ, रुक्मिणीनाथ, जगदानन्द, गोकुलचन्द्र, शीलगोपाल, कानुराम और पर्णगोपाल पितृपरम्परा मे हुए। पर्णगोपाल के आश्रयदाता राजा सुन्दरानन्ददेव चैतन्य के प्रियपात्रो मे से थे। कवि का प्रादुर्भाव १८वी शती के पूर्वार्ध में हुआ था। इस नाटक की रचना १७२५ ई० के लगभग हुई। कवि ने गीतो मे कही-कही अकेले और कही-कही पूर्वजों के नाम सहित अपना नाम दिया है[2]। यथा,

द्वारमुलान्तिकनाथककाह्वसतेरितगीतमुदारम्॥ तृतीयाङ्क मे गीत ८ से।

द्वारकानाथ ने इसे सूत्रधार को समर्पित किया था।[3] वर्षा ऋतु में इसका अभिनय लेखक के पितामह जगदानन्द के कहने से हुआ था। उन्होंने सूत्रधार से कहा था—

हरिचरितविचित्र चित्तचौर नराणा सहृदय-हृदयाब्धे पूरणाम्बुस्वरूपम्।
अभिनवकृतिमुद्यद् गीतपद्यालिहृद्य प्रकटय नटवर्य त्व प्रबन्ध नु कचित्॥

अभिनय का आरम्भ प्रात काल के समय हुआ।[4]

कथावस्तु

कथा का आरम्भ बालकृष्ण के प्रात जागरण के लिए यशोदा के गीत से होता है। कृष्ण उठे, मुँह-हाथ धोया और मल्ललीला के लिए गये। व्यायाम का वर्णन है—

गत्वा तत्राग्रज श्रीहलधरविहितादेशसकाशकारी
दोर्द्वन्द्वाशक्तरक्तच्छविमृदुमृदसौ शौर्यजास्फालनादि।
भूमौ कृत्वा कराब्जद्वितयमथ पदद्वन्द्वमोजोजवाभ्या
काय चित्र चिरायाचरितबहुविध चालयत्येप कृष्ण॥

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति भुवनेश्वर के राजकीय-सग्रहालय मे है। इसका प्रकाशन वगलिपि मे श्रीधाम नवद्वीप (नदिया) के हरिबोल कुटीर से हुआ है।

२ लेखक ने गीतो में कही-कही अपने को जगदानन्द सुतात्मज कहा है। यथा,
जगदानन्द सुतात्मज-शसनमेतदतीव मुदव। १ १७
अन्यत्र गोकुलचन्द्र-सुतात्मजपुत्र कहा है। २ १ मे

३ श्रीगोविन्दवल्लभनामसगीतनाटक निर्माय समर्पितम्। तदभिनेष्याम। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है।

४ प्रस्तावना मे नवसूर्य आदि अभिनयारम्भ के समय का वर्णन है।

कृष्ण गायों को दूहते हैं और दूध अन्य बालकों को पिला कर पीते हैं। कृष्ण को दासों से फल मिलता है। उनके स्वाद से तृप्त कृष्ण उनसे पूछते हैं कि कहाँ मिला ? वे बताते हैं कि निकट ही वृन्दावन से। बस, गाय लेकर वृन्दावन जाने का कार्यक्रम वे सभी गोप बालकों के साथ बनाते हैं। यशोदा इसका विरोध करती है। कृष्ण ने माता से अनुरोध किया कि मैं तो गोपाल हूँ। मेरा जातिधर्म है गाय चराना। राजकुल मे उत्पन्न हुआ तो क्या हुआ ? बलदेव ने कृष्ण का समर्थन किया। अन्त मे यशोदा ने बलराम से कहा कि अच्छा, कृष्ण को ले जाओ।

इसके पश्चात् द्वितीय अङ्क मे नन्द की अनुमति पाने की समस्या आती है। स्वय यशोदा रगमच पर उनसे पूछती हैं कि इन सबकी इच्छा है कि कृष्ण गोचारण के लिए वृन्दावन जायें, यदि आप अनुमति दें। नन्द ने प्रसन्नता व्यक्त की और ज्योतिषी बुलाकर जान लिया कि कृष्ण के लिए यह मुहूर्त गोचारण प्रारम्भ के लिए अच्छा है। ज्योतिषी ने कृष्ण के कान मे कहा—

अद्य तावद् यात्राया स्त्रीरत्नलाभो भविता।

माता ने कहा—

गोविन्द गोकुल सुधाकर वत्स तात हे नीलरत्नवर वशधर स्विदद्य
नून प्रयाम्यमि वन पशुपालनाय तत्त्वामह स्वकरतो बत भूषयामि॥

यह सब होने पर कृष्ण गोचारण के लिए चले। उनके साथी श्रीदामा ने कहा कि मेरी माता ने आपको अपने घर आने का निमन्त्रण दिया है। वृषभानुपुरी मे उसके घर कृष्ण और बलराम पहुँचे। वृषभानुराज की महिषी कीर्तिदा और उसकी सपत्नी सुशीला ने कृष्ण के स्वागत की पूरी सज्जा की। राधा ने भी कृष्ण का गुण पहले से ही सुन रखा था। वह उनके दर्शनो के लिए उत्कण्ठित थी। सखियो ने राधा को कृष्ण का दर्शन कराया। राधा ने कृष्ण को देखा और उसका वर्णन करने लगी—

एष विलासी शोभाराशि निर्मल-गोकुलचन्द्रो हरति मन ॥ ध्रुव
सजलजलद-रुचिर-कलेवर-चपलाचेलविकाश । इत्यादि

राधा की माताओ ने उनका बडा आदर किया। बलराम को वहाँ पीने के लिए उनकी प्रिय मदिरा मिली, जिसे उन्होने कृष्ण को न पीने दी। माता ने राधा को बुलाया। कृष्ण और राधा एक दूसरे के दर्शन-मात्र से एक दूसरे के हो गये।

चतुर्थ अङ्क मे कृष्ण और राधा की प्रेम-प्रवृत्तियाँ बढती जा रही थी। तभी बलदेव ने शृङ्ग बजाया और कृष्ण के साथ सभी गोप उनके पास जा पहुँचे।

कृष्ण वृन्दावन मे प्रवेश करते हैं। वृन्दावन का गीतात्मक वर्णन है—

प्रविशति गोकुलचन्द्रो वृन्दाकाननम्।
गोपकदम्बकलध्वनि-सहकृतविश्वमनोहरगानम्।
वायुविलोलितलतागुलि-कूजित-चित्रविहङ्गमजातम्।

सादरमाह्वयदिव पुरत स्वकमागत-सुरभि-सुदूतम् ।
भावकमिव शुभपुष्पधनानि किरन्मृदुवायु विलोलम् ।
वाष्पतुलितमधुधारमहो परिहृष्टननूरहजालम् ।
अलिकुलभङ्कृति-गद्गदभाषणमानसशाखाव्रातम् ।

वृन्दावन मे पहुँचकर कृष्ण गाय चराने लगे। साथ ही अन्य गोपाल-बालो के साथ उनका वनविहार होने लगा। कृष्ण और श्रीदाम का मल्लयुद्ध हुआ। कृष्ण श्रीदाम से पटके जाते हैं। बलराम और अन्य गोप भी मल्लयुद्ध करते है। हारने पर विजयी को पीठ पर लाद कर ढोना पडता है।

पचम अङ्क मे कृष्णादि गोपो का यमुना-जल-विहार होता है। फिर कृष्णादि भोजन करते हैं। इसके पश्चात् सभी मिलकर एक स्वाग रचते है, जिसमे कृष्ण राजा, बलराम मन्त्री, श्रीदामादि पार्षद बन जाते हैं। कृष्ण सिंहासन पर बैठते हैं। राजसभा मे मनोविनोद का कार्यक्रम चलता है। सभी राजा कृष्ण का कीर्तिगान करते हैं। विदूषक के घोडा माँगने पर उसे किसी हरिण पर चढा कर परिहास किया जाता है। कृष्ण वशी-ध्वनि से हरिण को निकट बुलाकर भीत विदूषक को उतारते हैं। अन्त मे सभी कृष्णादि गोपाल बिखरी गायो को ढूँढने चले जाते हैं।

षष्ठ अङ्क मे वियोगिनी राधा पौर्णमासी के निर्देशानुसार कृष्ण से मिलने के लिए वृन्दावन मे जा पहुँचती है। राधा से प्रेमभरी छेडछाड करते हुए कृष्ण उसे छेंकते हैं कि मैं राजा हूँ। मुझे ऐसा करने का अधिकार है। राधा कहती है कि राजा हो तो ठीक है—

तव तु भवतु राज्य राज्यभाज प्रजा का
वयमुन कुलबाला न क्व च त्व रुणत्सि।
प्रकटय ननु गोपु वृक्षेपु वाद
किमिति निरपराधे स्त्रीगणे ते नृपत्वम् ॥

कृष्ण ने उत्तर दिया—

आग कि न कृन रुन परभृनो नीन मृगेन्द्रोदर
द्वैप कुम्भयुग त्वयाथ हरिणीनेत्र च हसद्रुतम।
ता रोपात् क्व गता प्रजा गनिभृनश्चाम्पेय-बन्धूकको
अन्देते हृतकान्तिकावगती गात्राधराभ्या पुर ॥६ १९

राधा और कृष्ण का परस्पराक्षपण इस प्रकार कुछ और बढा।

सप्तम अङ्क म विरही कृष्ण को वन काटन लगा। उन्होने अपने मित्र सुबल से कहा कि राधा को जैसे-तैसे मिलाओ। सुबल राधा के पास जाकर बोले, कि यमुना के उस पार पुष्पच्छटा दर्शनीय है। वहाँ कृष्ण भी अपना पुष्प शृगार करते हैं। आप भी चलें। कृष्ण आप सबको नदी पार करायेंगे। यह सुन कर राधा कृष्ण के पास पुन आ गई। राधा ने कृष्ण से प्रार्थना की—

पारय नो हे नाविकवर
दुस्तरतरणिमुनामनिमुन्दर शरणहरे यदुवीर ।। इत्यादि

कृष्ण ने सभी गोपियो को नाव पर बैठाया। फिर नाव चलाई—

चालयतीह तरि वनमाली
करत्वरजलताडनातिसाधनातिशाली ।
गायति कलगीतमननुकीर्तनन्व कामम् ॥
झणझणझणझणझणझण-शिंजिताभिरामम् ॥

बीच मे सोने का बहाना करके राधा के अक मे हाथ रख दिया। राधा ने कहा कि जागिये, नहीं तो नौका डूबी।

अन्त मे यमुना पार कर राधा के साथ कृष्ण केलिसदन मे प्रवेश करते हैं। वहाँ कृष्ण राधा से कहते हैं कि मुझ पर दयादृष्टि डालें। उनकी कामक्रीडा का कवि ने वर्णन किया है। अन्त मे राधा कृष्ण से कहती है—

शिरसि निधाय कराब्ज मम माधव हे कुरु निगमम् ।
त्वा तु कदाचन न निरसितास्मि हृदेमम् ।। इत्यादि

इस प्रकार उनका गान्धर्व विवाह हुआ। राधा अपने घर गई और कृष्ण अपने साथियों के बीच जा पहुँचे।

आठवें अङ्क मे बलराम अधिक मधुपान किये हुए मिलते हैं। उनसे बची मदिरा साथी गोपों ने पी थी। पी पाकर सभी सोने लगते हैं। सो लेने के बाद कृष्ण ने बलदेव को जगाया तो वे सबको मारने के लिए हल मुसल से प्रहार करते हैं। दौडते हुए बलदेव यमुना मे गोपबालो की छाया देखकर उन्हे वास्तविक गोप समझ कर उन्हें दण्ड देने लिए यमुना मे कूद पडे। फिर वहाँ बडी देर तक जलक्रीडा करते रहे। वे कहने-सुनने पर भी न निकले तो बलिष्ठ गोपो ने उन्हें पकड कर यमुना से बाहर निकाला। नशा उतर चुका था। उन्होंने फिर घडे मे रखी मदिरा माँगी। कृष्ण ने कहा कि पीकर आपने प्रमादवश हम सबको मारने का उपक्रम किया था। बलदेव लज्जित हुए। उन्होंने कहा कि कोई मेरी पियक्कडी की चर्चा माता-पिता से न करे। सबको मधुमगल पर सन्देह था। बलराम ने उसे पेड से बाँधा। सभी गोप ताली बजा कर नृत्य करते हैं। मधुमगल ने प्रतिज्ञा की कि किसी से नहीं कहूँगा। तब बलदेव ने उसे मुक्त किया। कृष्ण ने पुन अपने हाथो से बलदेव को मदिरा पिलाई।

नवम अङ्क मे सन्ध्या के समय बिखरी हुई गायो को एकत्र करके गणना करने के लिए कृष्ण बाँसुरी बजा कर उन्हें बुलाते हैं।

दशम अङ्क मे सन्ध्या के समय कृष्ण के न लौटने पर यशोदा और नन्द की व्याकुलता का वर्णन है। ऊँचाई पर चढ कर वे उन्हे बुलाते हैं। तभी नन्द को मुरली की स्वर-लहरी सुनाई पडती है। दूत यशोदा को सूचित करते हैं कि कृष्ण

आ ही रहे हैं। गोपियाँ उनका स्वागत करती हुई दर्शन करना चाहती हैं। कृष्ण आदि सभी बालक गोष्ठ में आ गये। यशोदा पुत्रों की आरती उतारती हैं। वे भोजन करते हैं।

शिल्प

सूत्रधार ने प्रस्तावना में इसे संगीतनाटक कहा है। आद्यन्त यह नाटक सुललित गीतों से भरा है। द्वितीय अङ्क के अन्त में गोपबालकों का नृत्य द्रष्टव्य है।

निवेदन

नाटक में गद्य और पद्यों के माध्यम से चूलिका-रूप में निवेदनों का विनिवेश प्रचुरमात्रा में हुआ है।[1] प्रथम अङ्क का आरम्भ नीचे लिखे निवेदन से होता है—

प्रत्यूपप्राप्तनिद्राहतिरतिरभसो हासयन् स्वीयभासा
देशं देशं निदेशं पितुरपि तु पथि स्वीकरोति प्रियत्वात्।
यावत्तावच्च नीचैर्न चलति चपलं चालयन् पाणिपद्मं
सानन्दं नन्दसूनोः सविधमथ विधोर्याति दामा सुदामा॥

माणिक्यमुक्तामणिदामनिर्मित—श्रीमत्सुपर्यङ्कविचित्रविष्टरे
निद्रासमुद्रोक्षणनिश्चलाङ्गकं गोविन्दमुत्थापयतीह दामा॥

निवेदन चूलिका से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। द्वितीय अङ्क के आरम्भ में चूलिका में नन्द का वर्णन है—

'कर्णान्दोलितरत्नकुण्डलसद्गण्डस्थलस्तुन्दिल' इत्यादि।

भूमिका

नाटक में पुरदेवता की भूमिका है। वृषभानुपुर देवता और गोकुलपुर-देवता

---

१ निवेदन के द्वारा रंगमंच पर घटने वाली कार्यावली का परिचय संवाद के द्वारा न देकर नेपथ्य से दी जाती है। यदि कोई घटना रंगमंच पर नहीं होती है तो उसकी सूचना विशुद्ध चूलिका है। किन्तु यदि घटना रंगमंच पर दृश्य है और उसका वर्णन नेपथ्य से सुनाया जाय तो वह दृश्य का वर्णन होने के कारण चूलिका नहीं, अपितु निवेदन है। यथा, तृतीय अङ्क का अधोलिखित पद्य—

तस्मिन् श्रीवृषभानुराजसदने गोपालबाला मिथः
केयाञ्चिन् निभृतं च केचन बलात् केचिच्च नानाछलात्।
पात्रेभ्यः कवलयन्ति मोदभरतः सम्भोजनीयं मुदा
कामिन्यो हसितारविन्दवदना पश्यन्ति दिक्षु स्थिता॥३.२५

द्वितीय अङ्क के १२वें पद्य में ज्योतिषी के रंगमंच पर आने के समय ही नपथ्ये—
खर्वः स्थूलांशुकेनावृतकटितटकः स्थूलवासः शिरस्कः।
इसमें ज्योतिषी का वर्णनमात्र है। किसी घटना की सूचना नहीं है।

तृतीय अङ्क में ३१वाँ पद्य 'इति वचनं विलोला' आदि निवेदन का अनूठा उदाहरण है।

ऐसे पात्र बनते हैं। पात्रो की वेश-भूषा भी मनोरजक है। प्रथम अङ्क मे बलराम हल और मुसल लिए रगमच पर आते हैं। दस अङ्को का यह नाटक है। इनमे से नवम अङ्क तो एक ही पृष्ठ का है। इतनी कम सामग्री के लिए एक अङ्क बनाना अपवादात्मक है।

ग्रामता

सस्कृत नाटको मे ग्रामता विरल है। गोविन्द-वल्लभ-नाटक इसका अपवाद है। कृष्ण का जन्म, लीलायें और बालपन ग्राम-जनो के बीच हुआ। मनोरम है बालकृष्ण का गोदोहन—

गामिह गोकुलचन्द्रो दोग्धि
पय स्वयमथ सुखोदधिमध्याध्यस्तशरीराम्।
सक्रममीरितवशविचूपण-पूर्णपयस्तनभाराम्।।
विहित-तदीयपराङ्घ्रि-युगोचित-बन्धनमत्र सुपात्रम्।
निपुणजनानुकरणमनु जानुयुग च विभर्त्यतिमात्रम्।
करकमलद्वितयेन च पातयतीह पयो बहुधारम्
अनिधनधर्घरघोषणकर्णवजातकुतूहलपूरम ।।१३

श्यामल सुन्दर कृष्ण की बाललीला भी इस नाटक की विशेषता है। आद्यन्त इस नाटक मे बाललीला अपूर्व रुचिकर तत्त्व है।

भोजनादि का अनिषेध

रगमच पर भोजन का निषेध है, किन्तु इस नाटक मे द्वितीय अङ्क मे बताया गया है—यशोदानन्दनो भुक्ते।

सगीत

नाटक मे सगीत तो सर्वाधिक निर्भर है। कतिपय गीतो मे ग्रामता की पुट है। यथा, गोपाल गाते हैं—

है है हहो हो हो' इत्यादि।

शराबी का गीत बलराम के

'कृ कृ कृष्ण कु कु कुत्र क्व माता य यशोदा' से झलकता है।

एक ही गीत के विभिन्न पादो को दो पात्र रगमच पर सवाद के रूप मे गाते हैं। यथा,

नन्द —वत्स त्व किमुतानि घोरविपिने शक्तो गवा चारणे
कृष्ण —शक्तोऽह् जनकाग्रजेन बलिना चेद् सीरिणा सम्भृत ।
नन्द —क्वित् त्व नाप्तवया ।
कृष्ण —कथ मम ममा दामादयस्तद्वने।
तन्मात्रादिभिरीरिता विभविनो बाला गवा चारणे ।। २६

सप्तम अक मे कृष्ण और राधा का ऐसा ही द्विगान है—

रा०—किं तनुषे नो बत खलताम् । पयसि मुरारे विपरीताम् ॥
कृ०—का खलता वितरातरक अधितरि राधे त्वमभीकम् । इत्यादि

रस

हास्य रस की एक लोकोचित धारा प्राचीन परिपाटी से सर्वथा भिन्न अपनाई गई है। यथा, द्वितीय अङ्क में ज्योतिषी बहरा है। उससे नन्द पूछते हैं कि मेरे पुत्र कृष्ण गोचारण के लिए वन में जाना चाहते हैं। ज्योतिषी उत्तर देता है—घर से आ रहा हूँ। सब ठीक है। नन्द फिर वही प्रश्न करते हैं तो ज्योतिषी कान में कहता है—क्या पुत्र के विवाह की बात है? इस प्रकार अप्रासंगिक उत्तरों की परम्परा के अन्त में अनेक गोपाल-बाल जोर से उसके कान में चिल्लाकर नन्द का प्रश्न दुहराते हैं। फिर भी ज्योतिषी कुछ दूसरा ही समझ कर पूछता है—

ज्ञात बलदेवोद्वाहदिवसमावेदयथ। ज्येष्ठेऽनुद्वाहे कनिष्ठोद्वाहासम्भवात्।

हास्य-प्रवण कवि ने मधुमगल नामक ब्राह्मण-विदूषक की दुर्गति चतुर्थ अङ्क में कराई है। वह कृष्ण के समान अपनी भूषा गोप-बालकों से कराना चाहता था। सुदामा ने उसकी हास्यास्पद भूषा कर दी। यथा,

गले दिव्या माला वितरति करे ताञ्च कपर्द-
ईशोशचूर्णं कर्णे ऽप्यलिकफलके मूर्ध्नि गरुत ।
पिकाना गण्डे त्वञ्जनमुपकचान्त च विटप
सुदामान्तर्हासो मुदित-हृदयस्यास्य रहसि ॥४ ३५

उसके पूछने पर गोपों ने कह दिया कि अब तो आप कामदेव को भी लज्जित करने लगे। फिर तो कृष्ण के पास ले जाकर उसे नचाया गया। इतनी हँसी देख कर उसने यमुना के जल में अपना रूप देखा तो लज्जित होकर सुदामा से बदला लेने दौड़ा।

कवि पर माघ के शिशुपाल वध का कहीं-कहीं प्रभाव परिलक्षित होता है। जैसे महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में सभी ऋतु कृष्ण की सेवा करने आते हैं, वैसे ही इस नाटक में भी—

अथ बलेन हरिं परिसेवितु निजभवोत्तम-पुष्पफलादिना
ऋतुगण परमादरत सम नयनगोचरता व्रजनि स्फुटम् ॥
मृदु पलाशि पलाशि गण स्फुटत् सुभगपुष्पगपुष्पलिहा सनाम्
स्वरचितो निचितोनु सुगीतकं परभृतैरभृतैव परैर्वने ॥

इसमें माघ की पदावली और यमकालङ्कार-योजना स्पष्ट है।

द्वारकानाथ का नाटक अतिशय सजीव और दैनंदिन जीवन की रसभरी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है। कृत्रिमता का अभाव नाटक में रुचिरता ला देने में सफल है। अनेक दृष्टियों से द्वारकानाथ का गोविन्दवल्लभ नाटक अभिनव प्रवृत्तियों से परिपूर्ण होने से तथा विशेष रूप से सांगीतिक होने के कारण आधुनिक युग के नाट्य साहित्य में उच्च स्थान पर विराजमान है।

अनुमिति-परिणय-नाटक

अनुमिति-परिणय नाटक के रचयिता नृसिंह मद्रास के निवासी थे ।[1] कृष्णमाचार्य के अनुसार उनकी रचनायें १८वी शती के प्रथम चरण की हैं। कवि उस समय समुद्र तट पर बसी हुई कैरविणी पुरी मे रहते थे। उनके पिता वेङ्कटकृष्ण भारद्वाज-गोत्रोत्पन्न थे। प्रस्तावना मे सूत्रधार ने नृसिंह के विषय मे बताया है कि वे नटो से अनुराग करते थे।

इस नाटक का अभिनय कृष्ण के चैत्रोत्सव मे आये हुए विद्वानो के मनोरजन के लिए हुआ। कैरविणीपुर नामक कोई नगर समुद्र-तट पर स्थित था। वही इसका रङ्गमण्डप था। नाटक की प्रस्तावना मे नदी को रगमगल-देवता कहा गया है।

कथावस्तु

कथानायक न्यायरसिक की पहली पत्नी साक्षात्कारिणी को आकाशवाणी से ज्ञात होता है कि नायक का अनुमिति नामक नई नायिका से प्रणयारम्भ हो गया है। उसे नायिका का परिचय देवतानुग्रह से मिला था कि पार्वती की कृपा से तुम्हें योग्य पत्नी मिलेगी। न्यायरसिक का सखा तर्कसार साक्षात्कारिणी की सखी बुद्धिलता से बातें करते हुए बताते हैं कि साक्षात्कारिणी नायक के नये प्रेम से खिन्न होकर कोपभवन मे है। नायक उसे मनाने गया है। ऊपर मे वह साक्षात्कारिणी को मनाता है, पर उसका हृदय अनुमिति मे निमग्न है। नायक और नायिका मे विवाद होता है। नायक कहता है—

प्रिये त्वद्दर्शनैकजीवातुहृदयस्य मम कथमन्यथानुरागः।

चपलहरिणनेत्रा मुच वक्षोजभारा-
वनततनुलता त्वामन्तरा चेतना मे।
घनदनगर-भूपादीर्धिकामाश्रयन्ती
श्रयति न परा राजहसीव कुल्याम् ॥१ २४

पूवनायिका ने कहा कि बातें बनाने से क्या होता है? मेरी आत्मा आपके दर्शन मात्र से क्लान्त होती है। तभी क्रोध करते हुए, हाथ मे चिट्ठी लिये हुए साक्षात्कारिणी का पिता चार्वाक अपने शिष्यो के साथ न्यायरसिक से दो टूक बात करने के लिए आया। उसने तार्किक को खोटी खरी सुनाई। न्यायरसिक ने चार्वाक की प्रशसा पर प्रशसा की पर वह मानने वाला नही था। अपने पक्ष मे न्यायरसिक को कहना पडा—

सति सतीत्वे कथमसत्यामभिलाप।

१ इस अप्रकाशित नाटक की अधूरी प्रति (पहला अङ्क और दूसरे का किंचित् भाग) मद्रास की ओरियण्टल मैनु० लाइब्रेरी मे मिलती है।

चार्वाक माना नहीं। वह बलात् अपनी कन्या साक्षात्कारिणी को ले जाने लगा तो न्यायरसिक ने उसकी दाढ़ी पकड़ कर प्रार्थना की कि यह प्रथम परिग्रह है। रहने दें। चार्वाक ने कहा कि तब ऐसा लगता है कि अब दूसरे परिग्रह की तैयारी है। अनुमान की कन्या अनुमिति के चक्कर में आप हैं।

न्यायरसिक ने शिरोमणिकार से चार्वाक को परास्त कराने का आयोजन किया।

द्वितीय अङ्क के पूर्व विष्कम्भक में चित्रचरित और नयनाभिराम के संवाद में चोल देश का रमणीय वर्णन है। यथा,

निरीक्षणाश्लेषविहारिणीनां स्वेदोदसर्वचित-हारिणीनाम्।
करोति तापप्रशमं वधूनां कवेरकन्या सलिलैरतीव॥

फिर वे गौडदेश और अवन्ति की सुषमा का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। गौडदेश की प्रशस्ति है—कृत-मुकुन्द-निचयैरेव सेवितव्यो गौडदेशः।

दक्षिण की प्रशस्ति है—श्रोत्रिया खलु दाक्षिणात्या

नाट्यशिल्प

सूत्रधार को सामाजिकों की ओर से पत्रिका मिलती है कि इस प्रकार का नाटक करें,

वाणीनर्तितसत्कवीन्द्ररचना सन्धुक्षितैः सत्पदैः
क्रीडाब्धिश्च सुधारसेन विदुषामार्याणि चेतांसि च।
धीरोदात्तमहागुण-प्रणयिभिस्स्यूता प्रयोज्येऽधुना
चेतोहारिणि रूपके तु कविना यस्यानिमात्रोद्भवा॥

तस्य मान्यार्थसन्दर्भनिर्भरस्य त्वया वयम्।
प्रयोगेणाप्यनुग्राह्या पात्रितन्यायवस्तुनः॥

प्रस्तावना में उपर्युक्त चिट्ठी की प्राप्ति के लिए सामाजिकों की सूत्रधार से जो बातचीत होती है, वह नीचे लिखे आकाश-भाषित से सम्भव बनाई गई है—

सूत्रधार—(आकाशे कर्णं दत्वा) किं कथ। अये भरतानामपारीण प्रतिगृह्यतामियं पत्रिकेति।

रंगमंच पर नायक नायिका का आलिंगन करता है—

'सरसमन्यतो गन्तुं प्रवृत्ता तां झटिति कराभ्यामुत्सङ्गे स्थापयित्वा करेण परामृशन्' इत्यादि

लम्बे-लम्बे विष्कम्भकों में कवि वर्णन तथा बहुविध चर्चायें सन्निवेशित करता है।

कामकुमार-हरण

कामकुमार-हरण के रचयिता कविचन्द्र द्विज से असम प्रदेश समलङ्कृत हुआ था।[1] उनके आश्रयदाता महाराज शिवसिंह (१७१४–'४४ ई०) थे, जिनकी पत्नियाँ प्रमथेश्वरी और अम्बिका सुप्रसिद्ध थी। कविचन्द्र ने १७३५ ई० मे धर्मपुराण का अनुवाद किया था। प्रमथेश्वरी देवी १७२८ ई० से १७३१ ई० तक शिवसिंह के साथ शासिका रही। इन्ही के शासन काल मे कामकुमार का प्रणयन हुआ।

कामकुमार-हरण का अभिनय महाराज शिवसिंह के आदेशानुसार हुआ था। वे स्वयं इसका अभिनय देखने के लिए उपस्थित थे।

कथावस्तु

एक बार महाराज बाणासुर वनविहार के लिए नदी के तीर पर रंगस्थली बनाकर सपरिवार उषा को लेकर पहुँचे। वही रुद्र भी आने वाले थे। कुछ देर मे वे पार्वती के साथ बैल पर बैठे हुए अपने गण के साथ उषा का मनोरथ पूरा करने आ पहुँचे। बाण ने उनकी स्तुति की। आने वाले मागध, सूत और वन्दियो ने शिव की स्तुति की। विहार के पश्चात् उन सबने शिव की स्तुति की। अप्सराओ ने शिव की स्तुति की। शिव ने कामिनीमोहनवेश धारण किया। चित्रलेखा नामक अप्सरा देवी पार्वती का रूप बना कर शिव को प्रसन्न करने लगी। शिव उससे प्रसन्न हो गये। उन्होने कहा कि तुम्हारे रूपलावण्य को देखकर चित्त को परितुष्ट कर रहा हू। पार्वती ने यह देखकर शिव के पार्षदो को आज्ञा दी कि अप्सराओ के साथ क्रीडा करें—

शृण्वन्तु पार्षदा सर्वे वचनम्मे भवत्प्रियम्।
अप्सरोभि सहानन्द विहरन्तु यथेच्छया ॥१ ४५

पार्षदो मे कोई लगडा, कोई काना था। सभी काममोहित होकर अप्सराओ से प्रार्थना करने लगे। अप्सराओ ने घृणापूर्वक उन्हे दूर से ही फटकारा। फिर तो उन्होने दिव्य रूप धारण कर लिया। पार्षदो को सुन्दर देखकर अप्सरायें भागकर पार्वती के पास पहुँची।

उपर्युक्त दृश्य उषा ने देखा तो काम सन्तप्त हो गई। उसने कहा—

धन्या सभर्तृका नार्यो रमन्ते स्वेच्छया मुदा।
अलब्धभर्तृका पापा वृथा जीवन्ति मद्विधा ॥१ ५३

मनोगत जानने वाली पार्वती ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हे शीघ्र पति का साहचर्य प्राप्त होगा। यथा,

१ कामकुमार-हरण नाटक का प्रकाशन रूपकत्रयम् मे १९६२ ई० मे असम-साहित्य-सभा, चन्द्रकान्त हैन्दिकि-भवन, जोरहट, आसाम से हो चुका है।

वैशाखे मासि शुक्लायां द्वादश्यां तु दिनक्षये
रमयिष्यति यस्त्वां वै स ते भर्ता भविष्यति ॥१ ५५

उपर्युक्त तिथि में किसी दिव्य पुरुष ने सोई हुई उषा का आलिङ्गन किया। उसने चित्रलेखा से कहा—मैं तो परपुरुष-सम्पर्क से दूषित हूं। आप लोगों के साथ कैसे रहूं? अब तो मरना ही श्रेयस्कर है। वह सखियों के समझाने पर भी स्वप्नगत प्राणेश के वियोग में मानों मर सी गई।

चित्रलेखा सहायता करने के लिए आ गई। उसने बताया कि शिव की कृपा से सब कुछ मुझे विदित है। मैं सभी प्रमुख पुरुषों का चित्र बनाती हूँ। जिसे तुम स्वप्नगत प्रियतम बताओगी, उसे ला दूंगी। उसने बनाये चित्रों में से एक-दो-तीन पटों को दिखाये। तीसरे पट में उसे कृष्ण का पुत्र अनिरुद्ध अपना प्रियतम प्रतीत हुआ। वह उन्मत्त होकर चित्र-पुत्तलिका का आलिंगन करने के लिए दौड़ पड़ी। उसे हटा दिया गया तो वह तलवार से अपना सिर काटने को तैयार हो गई। चित्रलेखा ने उसे समझाया कि सप्ताह के भीतर ही तुम्हारे प्रियतम को लाकर तुमसे मिलाती हूँ। वह रथ पर चल पड़ी द्वारिका की ओर। मार्ग में नारद ने उससे कहा कि इस असम्भव कार्य से विरत हो जाओ। चित्रलेखा ने कहा कि मायाबल से ऐसा कर लूंगी। नारद ने कहा—इससे काम न चलेगा। तुमको निगूढ विद्या बताता हूँ। उसने सीखा और द्वारका जा पहुँची।

नारद कृष्ण से द्वारका में मिले और बताया कि आज रात में चोर अनिरुद्ध का अपहरण करेगा। इधर उषा रात में भ्रमरी बनकर अनिरुद्ध के कमरे में पहुँची। वहाँ अपने रूप में होकर अपने और अनिरुद्ध के ललाट पर तिलक लगाया। दोनों भ्रमरी-भ्रमर बन गये। उषा ने अपनी पीठ पर भ्रमर को रखा और रथ के पास लाई और उसे लेकर उषा के पास आ पहुँची। मार्ग में अनिरुद्ध ने उससे प्रेम करना चाहा तो उसे समझा-बुझा कर मनाया।

चतुर्थ अङ्क में उषा और अनिरुद्ध ने वाचा विवाह कर लिया। फिर चित्रलेखा के पौरोहित्य में उनका सुविधा से विवाहसंस्कार हो गया। आठ दिन तक उनकी दाम्पत्य क्रीडा विलसित हुई। एक दिन कुब्जा दासी से यह व्यभिचार नहीं देखा गया। उसने अनिरुद्ध को खोटीखरी सुनाई और उन्हें बाणासुर के पास ले जाने को उद्यत हुई। उसने कहा

पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्।

उसने गान्धर्व विवाह की बात राजमाता से कही। राजमाता ने उससे कहा कि राजा से न कहा यह सब। वह मानी नहीं और राजा से जाकर सब कुछ कह दिया। बाण ने उसकी नाक तो कटवा ली, पर अपने दस पुत्रों को भेजा कि जाकर देखो कि क्या कुब्जा सत्य कह रही है। उनको अनिरुद्ध ने अपने हाथ में उखाड़े हुए एक स्तम्भ को घुमाकर विचलित कर दिया। वे सभी मारे गये। फिर तो ९० पुत्रों को साथ लेकर बाण अनिरुद्ध से लड़ने आया। उसे देखकर अनिरुद्ध ने कहा—

हे हे महाराज, अह गोविन्दस्य नप्ता, कामदेवस्य पुत्र । तव दुहित्रा परमप्रयत्नेन आनीत । अह ता विवाहितवान् । तस्य च दिनाष्टक यातम् । तव ये दशपुत्रा आगता अतीव मूढा मा बहु तिरश्चकु । तथापि मया क्षान्ता । 'केशेनाकष्टुमिच्छन्ति' इति दृष्ट्वा क्रोधात मया हता । एष दोष क्षम्यताम्, क्षम्यताम् ।

बाण माना नही । बाण की सेना ने उसे घेर लिया । ६० पुत्रो ने उसके ऊपर बाणवर्षा की । उसने लाखो की सेना को मार गिराया । उसके एकमात्र शस्त्र-स्तम्भ को बाणपुत्र कुम्भवीर ने बाण से काट डाला । तब उसने सूर्य की प्रार्थना की कि सहायता करो । सूय ने आकाशद्वार से उसे उत्तम धनुष-बाण दिया । बाण ने उसे नागपाश मे बाध दिया । सूर्य ने उसके शरीर को अभेद्य कवच से पिनद्ध कर दिया । उसे मारने के लिए बाण ने उसको दस हाथियो से कुचलवाया । अगाध जल मे फेंकवाया । वह डूबा नही ।

मन्त्री कुम्भाण्ड ने बाण से कहा कि इस वीर की अद्भुत महिमा है । इसे वन्दीगृह मे डाल दें । यह कौन है—यह ज्ञात करके इसकी रक्षा करें या मार डालें । नागपाश से बँधे अनिरुद्ध को बाण की आज्ञानुसार रक्षक घेर कर खडे हो गये । अनिरुद्ध ने अपने को नागपाश से छुडाने के लिए दुर्गा देवी की प्रार्थना की । तब तो सिंहवाहिनी दुर्गा प्रकट हुई और बोली—मैं नागपाश को शिथिल कर देती हूँ । शीघ्र ही कृष्ण तुमको मुक्त करेंगे ।

उषा ने अनिरुद्ध के लिए करुण विलाप किया । तलवार से आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुई । उसे चित्रलेखा ने यह कहकर रोका कि कृष्ण अनिरुद्ध को तीन-चार दिन मे मुक्त कर लेंगे ।

स्वय नारद ने अनिरुद्ध को आश्वस्त करके द्वारका मे कृष्ण को अनिरुद्ध का वन्दी होना बताया । कृष्ण ने तुरन्त गरुड को बुलाकर उसे अर्घ प्रदान किया और युद्ध मे उसकी सहायता ली । शोणितपुर के चारो ओर अग्निवृत्त रक्षा के लिए था । उसे गरुड ने बुझाने का प्रयास किया । कृष्ण ने उनके नेता अगिरा को बाण से मार कर मूर्छित कर दिया । अग्नि भाग चले । कृष्ण के शोणितपुर मे प्रवेश करने पर शिव उनसे लडने आये युद्ध देखने के लिए देवगण आ पहुँचा । शिव का पूरा परिवार युद्ध मे आ जुटा । शकर को कृष्ण ने पछाड दिया ।

शकर ने देखा कि कृष्ण बाण को मार डालेंगे । उन्होने पार्वती से कहा कि उसे बचाओ । पार्वती ने उसकी रक्षा के लिए कोटवी भेजा कि जाकर कृष्ण को युद्ध से विरत करो । अन्त मे युद्ध बन्द न होने पर कृष्ण और शिव का युद्ध हुआ—

हरिहरयुद्धमवर्तत घोरम् । सकलसुरासुरधैर्यविचोरम् ।

ब्रह्मा ने बीच मे आकर उन दोनो का युद्ध बन्द करा दिया । अनिरुद्ध के कहने से चित्रलेखा गद को विवाह मे दे दी गई । मगलगीत गाया गया ।

शिल्प

आसाम की अङ्किया नाट परम्परा में कामकुमार-हरण अनेक दृष्टियों से आदर्श माना जा सकता है। इसमें नाट्य-निर्देश का नाम कथा मिलता है। इसका वक्ता सूत्रधार है। सर्वप्रथम कथा है—

तमवलोक्य मृदङ्ग वादयित्वा परिभ्रम्य हरिध्वनिं विधाय प्रणम्य तिष्ठति मार्दङ्गिके सूत्रधारो वदति। इस कथा का वक्ता कोई पुरुष सम्भवतः पर्दे के पीछे या नेपथ्य में रहता था। सूत्रधार आद्यन्त रंगपीठ पर विराजमान रह कर प्रत्येक वक्ता का नाम लेकर बताता था कि संवाद में अब कौन बोल रहा है और साथ ही उस पात्र के अभिनयात्मक भावों को भी बताता था। यथा,

सूत्रधार—तच्छ्रुत्वा उषा शोकं परिहृत्य सानन्दं ब्रूतेस्म।

उषा—भो भो प्रिय सखि त्वां विना मत्प्राणप्रिया कापि न विद्यते।

सूत्रधार गाता भी था। पूरे नाटक में प्रत्येक ललित दृश्य की भूमिका उसके गीत से मिल ही जाती थी, चाहे प्राकृतिक दृश्य हो या किसी पुरुष की उदात्तता हो। उसने आरम्भ में बाणासुर का वर्णन राग और ताल पूर्वक किया है, फिर पज्झटिका में क्रीडास्थली का वर्णन किया है। यथा,

श्रीहरगौरीक्रीडास्थानम्। पश्य सभासत् केलिनिदानम्॥११

तरुगण राजति गंगातीरम्। मन्द सुशीतलमलयसमीरम्॥११

कहीं-कहीं सूत्रधार बताता है कि रंगपीठ पर कौन पात्र क्या कर रहे हैं। यथा,

सूत्रधार—अत पर गन्धर्वकिन्नरचारणा देवकन्या अप्सरसश्च स्व-स्ववाहनमारुह्य रंगस्थलीं प्रविशन्ति स्म। एवं प्रविश्य ते सर्वे पुष्पलाजाक्षतक्षेपादिना बहुविहारं कुर्वन्ति।

छायातत्त्व

अनिरुद्ध के चित्र का आलिंगन, उसे दूर हटाने पर आत्महत्या करने के लिए तलवार उठाना आदि दृश्य छायातत्त्वानुसारी हैं। पंचम अङ्क में अग्नि कृष्ण से युद्ध करते हैं। अग्नि ज्वलनशील है। ऐसे पात्र का प्रकल्पन छायातत्त्व का मनोरम प्रयोग है। षष्ठ अङ्क में बाण के मयूर और कृष्ण के गरुड का युद्ध छायातत्त्वानुसारी है।

अङ्क में अनेक दृश्यस्थली

तृतीय अङ्क में शोणितपुर में उषा का घर, निकटस्थ दैवज्ञ का घर, फिर द्वारकापुरी और फिर शोणितपुर में उषा का प्रासाद दृश्य हैं। एक ही अङ्क में परस्पर दूरस्थ अनेक स्थलों के दृश्यों का समावेश अटपटा सा है। इसके लिए दृश्य-परिवर्तन का विधान होना चाहिए।

नग्नता

संस्कृत रंगपीठ पर नाननृत्य कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में समाविष्ट किया

था। उनके पश्चात् नग्नता प्राय विरल ही रही है। चन्द्रद्विज ने इस नाटक मे कोटवी को विवस्त्र बनाकर रगपीठ पर ला दिया है। यथा,

सूत्रधार —एवमुक्त्वा पवनाधिकवेगा श्रीकृष्णाग्रे गत्वा विवस्त्रा तस्थौ।

भाषा

कामकुमार-हरण मे सवाद सस्कृत मे हैं। कोई पात्र प्राकृत नही बोलता। गीत सस्कृत म हैं या ऐसी असमी भाषा मे है, जिसका सस्कृत से ६० प्रतिशत साम्य है। यथा

परमकृपानिधि विहित सुरत-विधि सुन्दर नटवरवेश।
निजपदसेवक देवकपालक जटिल सुपिङ्गलकेश॥१२६

नाटकीय असमी भाषा मे भी उदू, फारसी और अरबी के शब्दो का सवथा अभाव है। वणन के कतिपय गीत विशुद्ध सस्कृत मे हैं। असमी गीत है—

हा प्राणेश्वर सर्वागसु दर नाहि पटन्तर यदुवीरवर।
विधियो लिखिले तोमार हेन विलाय।
अति शुभनय मदनतनय गहन आशय सर्वगुणालय
तयु दुख देखि किसक प्राणनेयाय॥५७

लोकरजकता

गाली-गलौज और परिहास मे लोक की रुचि जानते हुए कवि ने एतन्मात्र प्रयोजन से रुचिकर सवादो की झडी लगाई है। उषा और त्रिभङ्गी नामक उसकी सखी दैवज्ञ से बातचीत करती हैं।

त्रिभङ्गी—अरे अरे लम्पट, स्त्रीपराधीन जगद्भण्डक तव सर्वदा स्त्रीसग एव रति। इत्यादि

उषा—अये जगद् भण्डक, एतद्वार्ता यदि अन्यै श्रूयते तर्हि अवश्य नासिकाच्छेदन करिष्यामि।

उषा अपनी दूती चित्रलेखा से कहती है—

किं वा पूर्व स्वयमुपभुज्य पश्चाद् मयि निवेदयिष्यसि।

लक्ष्मी-देवनारायणीय

लक्ष्मी-देवनारायणीय नाटक के रचयिता श्रीधर अम्पलप्पुल के राजा देवनारायण के द्वारा सम्मानित कवि थे।[1] इन्हीं को नायक बनाकर कवि ने इस नाटक का प्रणयन किया है। स्थापना में सूत्रधार ने श्रीधर की एक राजप्रशस्ति इस प्रकार उद्धृत की है—

> धीमन् श्रीदेवनारायण धरणिपते त्वद्गुणाम्भोधिवीची-
> केलीलोलात्मना मज्जितजडमनसाप्येवमेतन्मया हि।
> कष्टं दुष्टं निकृष्टं गतरसविषयं नाटकं टीकमानं
> युष्मत्कारुण्यमाध्वी-रसपरिमिलितं मंगलं वोभवीतु॥

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि श्रीधर स्वभावतः विनयी थे। इसी प्रसङ्ग में सूत्रधार के द्वारा कवि का एक विशेषण बताया गया है—'करुणाकूपारवल्लङ्कप-विलोचन-देवनारायणामोदजलधिवीचीकण-मिलितवपुः' इत्यादि। इस नाटक की रचना १८ वीं शती के पूर्वार्ध में हुई।

लक्ष्मीदेवनारायणीय की रचना तथा अभिनय कथानायक देवनारायण के निर्देशानुसार हुआ। देवनारायण ने विचित्र-यात्रा के उत्सव का आयोजन कराया था। उसमें देश-विदेश के विद्वान् उपस्थित हुए थे। सूत्रधार के अनुसार उन्होंने विद्वानों ने इसके अभिनय के लिए कहा था।

कथावस्तु

पाँच अङ्कों के इस नाटक में यथानाम लक्ष्मी का देवनारायण से विवाह वर्णित है।[2] लक्ष्मी के पिता दिनराज और माता छाया हैं, जिनका आवास नन्दनपुर में था। नायक-नायिका की प्रतिमा-मात्र देखकर मदन-सन्तप्त है। वह वारिभद्रा नदी के तट पर मनोरंजन करने के लिए विचरण कर रहा है और निकट के वासुदेव मन्दिर में जा पहुँचता है। यहीं पर नायक नायिका का चित्र देखता है और नायिका नायक का। नायक विदूषक के साथ एक ओर बैठकर नायिका और उनकी सखी की बातें सुनाता है। नायिका उस फलक को ढूँढती है, जिस पर नायक का चित्र बना था। विदूषक उसे नायिका की ओर फेंक देता है।

नायिका नायक के पास आ जाती है। तभी परिजनों के आह्वान पर उसे दूर चला जाना पड़ता है। राजा पुनः वियुक्त होकर शोक-संविग्न हो जाता है।

लक्ष्मी ने मदनलेख नायक के पास बालनन्दा नामक सखी से भेजा। उन दोनों को परस्पर मिलने का अवसर देने की योजना थी। राजा ने बताया कि

१ अम्पलप्पुल त्रावनकोर में स्थित है।
२ इस अप्रकाशित नाटक की दो प्रतियाँ त्रिवेन्द्रम् में केरल विश्व

हिमालय पर गंगा के प्रवाह का मदनन्दन प्रदेश है। वहीं नायिका को लाओ। नायक ने उस प्रदेश में रहने वाले राक्षस-राज को भगा दिया था। राक्षसराज ने प्रतिज्ञा की कि मैं भी आपकी पत्नी का हरण करूँगा।

नायिका लक्ष्मी नायक से मिलने के लिए आ गई। उसकी प्रेम-प्रवण वाणी से नायक प्रमोद-निर्भर हो गया। नायिका नायक के लिए सन्तप्त हो रही है। वह सखी की दी हुई नायक की हारलता का आलिंगन करके सुख पाती है। नायिका के मदन-ज्वर को नायक स्वयं उसके समीपस्थ होकर दूर करता है। उसके आलिंगन से नायिका सचेत हो जाती है।

प्रेमपरवश दम्पती को राक्षस ने अपने को वनगज बनाकर क्षुभित कर दिया। उसके आक्रमण से मुनियों की तपोभूमि विसष्ठुल हो गई। इधर नायक उसे मारने गया, उधर राक्षस ने आकर नायिका का अपहरण कर लिया। राजा ने उसका पीछा किया तो वह नायिका को छोड़कर छिप गया। कुछ समय के पश्चात् अपनी सेना-सहित उसने नायक से घोर युद्ध किया और मारा गया। नायिका नन्दनपुर में चली गई। नायक उसके वियोग में उन्मत्त होकर विक्रमोर्वशीय के नायक की भाँति अमानवों से पूछताछ करता है। वह गजराज से पूछता है—

यदि सा पृथुलारोहा नायाता सरणीं दृशो।
कथं वा गतिरेषा ते मन्थरा सुलभा भवेत् ॥४।१६

वह मयूर से पूछता है—

वियोग-विधुरं कापि बिभ्रती वदनाम्बुजम्।
कानने भवत केकिन् किमयान् पद्धतिं दृशो ॥४।२०

प्रेयसी के वियोग में नायक नदी में डूबकर प्राणान्त करना चाहता है। तभी उसे नेपथ्य से वासुदेव की वाणी सुनाई पड़ती है कि आपको प्रेयसी के साहचर्य का सुख शीघ्र मिलेगा। मैंने उसकी रक्षा कर ली है। मैं उसे पिता के घर से लाता हूँ।

पंचम अंक में राक्षस नायिका के पिता से युद्ध कर रहे हैं। इधर नायिका लक्ष्मी के नदी में गिराने का समाचार फैला। उसे वासुदेव ने बचा लिया।[1] उसे लेकर वह नन्दनपुर आये, जहाँ नायक पहले से ही उपस्थित था। कन्या के पिता ने कहा—

मायागोपकिशोरो व्रजति दृशो पद्धतिं कृपालुरयम्।

वासुदेव ने लक्ष्मी से कहा कि तुम अपने माता-पिता को समाश्वस्त करो। अन्त में लक्ष्मी देवनारायण से विवाहित हुई। नायक ने कन्या के पिता दिनराज से कहा—

वैवस्वताननगता दुहिता त्वदीया सेयं विभो दिनमणे यदुसंगता माम्।
नागन्धयच्च युवयोर्वपुरार्ति-भिन्नमेतत्समं कपटगोपतनो प्रसादः ॥५।२५

लक्ष्मी-देवनारायणीय' की कथा पर रूपगोस्वामी के नाटकों की कथाओं का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है।

१ नायक ने नायिका के पिता से पंचम अंक में कहा है—

मुकुन्देन रक्षिता तनया तव।

नाट्यशिल्प

भास के नाटकों की भाँति इस नाटक में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना है। नाटक के आरम्भ में भास के आदर्श पर नान्दीपाठ कोई अन्य करता है और इसके बाद सूत्रधार रंगमंच पर आता है। नाटक का आरम्भ 'तत प्रविशति सूत्रधार' से स्पष्ट है कि सूत्रधार नान्दी पाठ नहीं करता था, अन्यथा नान्दी के बाद उसके रंगमंच पर उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।[1]

एकोक्ति

नाटक का आरम्भ नायक की एकोक्ति से होता है। वह प्रतिमा देखकर उसके विरह की अनुभूति का वर्णन करता है। पुन वह नायिका की वारिमद्रा-तटीय वनराजि और निकटस्थ वासुदेव के मन्दिर में कृष्ण का वर्णन करता है और आगे नायिका का वर्णन करता है। चतुर्थ अङ्क में नायक अकेले ही नायिका के प्रति भाव-निमग्न होकर विलाप करता है।

रंगमंच पर पात्रों की कार्य-बहुलता इस नाटक की विशेषता है। जहाँ अन्य नाटकों में पात्र कोरी बातचीत करते हैं, वहाँ इसमें पात्रों की पूरी हलचल कार्य-परक है।

इस नाटक की हस्तलिखित प्रति में विष्कम्भक आदि को अंक का भाग नहीं बनाया गया है। विष्कम्भक के अन्त में इति विष्कम्भक तथा अङ्क के अन्त होने पर इति अंक लिखा गया है।

वर्णना

प्राकृतिक वर्णनों की प्रचुरता, विशेषत साङ्गीतिक स्वर लहरी में, विशेष रोचक है। पवनभूमि, वर्षाऋतु और मयूरपति—तीनों की सांगीतिक गति से परिप्लुत श्लोक है—

श्रोत्रानन्द निनदमतिगम्भीरमम्भोधराणा
शृण्वन्नन्तस्स्फुरित-कुतुक विद्युदुद्योदितानाम्।
प्रत्यासारैर्विशदममल प्रस्तर विस्तृतोच्च-
र्बर्हापीडश्शिखिपतिरसौ लास्यलीलस्समेति ॥४२१

और शुकों की चारिमा है—

विराजन्ते जम्बूविटपि-पटली-कोटर-गृहे-
ष्वये प्रत्यग्रोद्यत्किसलयरुचिरतेनवदना।
प्रियावक्त्रानीतप्रतिनवफलास्वादमुदिता
गलन्माध्वीलापा दधति मुदमेते शुकगणा ॥४२१

---

१ यह नाट्यशास्त्र ५.१०८ के विरुद्ध है, जिसके अनुसार नान्दीपाठ सूत्रधार को करना चाहिए। सम्भव है नान्दी-पाठ यवनिका के भीतर से होता हो या नेपथ्य में होता हो। तब सूत्रधार नान्दीपाठ करके रंगमंच पर चले आता हो।

अध्याय ४६

चन्द्रकला-कल्याण

चन्द्रकला-कल्याण नाटक नञ्जराज यशोभूषण के पष्ठ विलास मे समाविष्ट है।[1] इसके रचयिता नृसिंह कवि मैसूर के सनगर नामधारी ब्राह्मण कुल के थे। नृसिंह के पिता सुधीमणि और बडे भाई सुब्रह्मण्य थे। पिता से ज्ञान विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके नृसिंह ने योगानन्द नामक सन्यासी से पराविद्या का अध्ययन किया। इनके एक अन्य गुरु पेरुमल थे।

नृसिंह के आश्रयदाता नञ्जराज (१७३६-१७५९ ई०) मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (१७३४-१७६६ ई०) के श्वसुर तथा सर्वाधिकारी थे। उन्होने नञ्जराज यशोभूषण के अतिरिक्त शिवदयासहस्र काव्य का प्रणयन किया। इनकी अन्य रचनाओ का अभी तक परिचय नही प्राप्त हुआ है।

अठारहवी शती मे प्रतापरुद्र-यशोभूषण की परम्परा मे अनेक ग्रन्थ रचे गये। नञ्जराज यशोभूषण मे कवि ने आलङ्कारिक लक्षणो के उदाहरण नञ्जराज के चरित-विषयक स्वरचित पद्यो के द्वारा दिये हैं। इसकी रचना १७४० ई० के लगभग हुई होगी।

नञ्जराज विद्वानो के अतिशय प्रेमी थे। उनकी सभा के काशीपति ने इन्हें नवभोजराज की उपाधि दी थी। नृसिंह की कविता से प्रभावित लोग इन्हें अभिनव कालिदास कहते थे। नञ्जराज स्वय उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उन्होंने सगीत-गगाधर, कर्णाट भाषा मे हालास्य-चरित और शिवभक्ति-विलास आदि अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया था।

कथावस्तु

ककुद्गिरि पर सेनापति वीरसेन के साथ मृगया करते हुए नञ्जराज ने एक रमणी-रत्न को देखा, जहाँ निकट ही नूतनपुर का सरोवर तथा भद्रशैल थे। उसे देखते ही उन्हें उसके प्रति उदग्र अभिनिवेश उत्पन्न हुआ। नपथ्य की वाणी से उन्हें समाश्वासन प्राप्त हुआ। विदूषक ने उसे मिलाने का वचन दिया। उसके निर्देशानुसार नायक मरकत-सरोवर के समीप मनोरजन करने के लिए चला गया। उसने विदूषक को बताया कि नायिका चन्द्रकला ने मरकत सरोवर मे स्नान करके देवी की उपासना करते समय वीणा बजाते हुए मधुर राग मे गीत गाया। वहीं नायिका की भी दृष्टि नायक पर पडी और वह उसी की बन गई।

नायक नायिका से मिलने के लिए इतना व्याकुल था कि उसके लिए वह एक रात तक प्रतीक्षा करने मे असमर्थ था। तब तो विदूषक दैशिका महिला का रूप बनाकर चन्द्रकला के अन्तःपुर मे पहुँचा। उसे आने-जाने से चन्द्रकला की चेटियाँ

१ नञ्जराज यशोभूषण का प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, सख्या ४७ मे बडौदा से हो चुका है। इसकी प्रति जबलपुर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है। चन्द्रकला-कल्याण का प्रथम अभिनय गरल्पुरीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था।

विचक्षणा तथा मंजरी ने सहायता दी थी। विदूषक ने योजना बनाई कि चेटियाँ चन्द्रकला को दोहद के बहाने नवमालिका-गृह में पहुँचायें, जहाँ नायक उसे मिलेगा।

नायक काम का रूप धारण करके नायिका से क्रीडा-स्थली में निश्चल होकर बैठ गया। सखियाँ नायिका को चन्द्रोदय तक समय बिताने के लिए कन्दर्प की पूजा करने के लिए ले आती हैं। सखियों ने कन्दर्प-रूपधारी नायक की पूजा नायिका से करा दी। नायिका को सन्देह होता है कि कहीं यह नायक ही तो नहीं है। दोनों को सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं। प्रतिमा में स्वेद-बिन्दु देखकर नायिका सखियों से पूछती है कि क्या प्रस्तर-प्रतिमा में स्वेद होता है? सखियाँ कहती हैं कि आपके सौन्दर्य के प्रभाव से पत्थर भी पसीज गया है। चन्द्रकला ने अपने मनोरथ कन्दर्प बने राजा के सामने कहे। उसने प्रमादवश कुछ पुष्प गिरा दिये तो सखियों ने कहा कि कन्दर्प ने आपकी इच्छा-पूर्ति का संकेत दिया है।

दोहद का समय चन्द्रोदय होने पर आया। नायिका ने आलिंगन करके कुरवक को पुष्पित किया। फिर वहीं उसे नायक से मिलन-सुख प्राप्त हुआ। विदूषक के वहाँ आने से तथा कञ्चुकी द्वारा नायिका के बुला लेने पर दोनों इधर-उधर चलते बने। नायिका को साथियों ने बता दिया कि जिसे आप कन्दर्प की मूर्ति समझती हैं, वह आपका प्रियतम है।

कुन्तल-देश के राजा रत्नाकर ने भगवती अम्बिका के स्वप्न-सन्देश के अनुसार अपनी कन्या चन्द्रकला का स्वयंवर आयोजित किया, जिसमें नायक को सम्मिलित होने का आमन्त्रण मिला। उसमें नायक नञ्जराज को जयमाल से पुरस्कृत किया गया। दूसरे दिन धूमधाम से दोनों का विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ।

शिल्प

तृतीय अङ्क में विदूषक चूडाकर्ण का दासिका महिला का रूप धारण करके चन्द्रकला को नायक की ओर विशेष अभिमुख करने का कार्य छायातत्त्वानुसारी है। तृतीय अङ्क में नायक की कामदेव की प्रतिमा-रूप में प्रतिष्ठित होकर नायिका-स्पर्श-प्राप्ति की योजना नए प्रकार का छाया-तत्त्वानुसंधान कवि की विशेष उद्भावना का परिचायक है।

समीक्षा

चन्द्रकला नाटक में उस युग के अनुरूप चन्द्रोदय, प्रमद वन, क्रीडाशैल, मरकत सरोवर, सूर्योदय, सन्ध्या आदि के वर्णन समाविष्ट हैं। कवि की वर्णना चारुतर है। यथा सूर्योदय है—

वेगेन प्रतिसद्य निष्कुटमहीनिद्रायिना पद्मिनी-
स्त्वत्पाणिग्रहणोत्सवं कथयितुं नूनं करैर्बोधयन्।
मीलत्पङ्कजबन्धनालयगतानिन्दीवरान् मोचय-
न्नुद्विद्रि मपल्लवच्छविरसाम्युज्जिहीते रविः ॥

नाटक का नायक ऐतिहासिक है। नाटक में उल्लिखित कतिपय घटनायें, ऐतिहासिक हैं।

अध्याय ४७

चन्द्राभिषेक नाटक

चन्द्राभिषेक नाटक के रचयिता बाणेश्वर विद्यालङ्कार बङ्गाल के १८ वी शती के सर्वोच्च सस्कृत साहित्यकारो मे से हैं। बाणेश्वर साहित्य-विद्या के साथ ही धर्मशास्त्र-कोविद (Jurist) थे। इनका जन्म हुगली जनपद की गुप्तपल्ली मे हुआ था। इनके पूर्वजो मे शोभाकर सुप्रथित हैं। बाणेश्वर के सूत्रधार ने शोभाकर का परिचय इस प्रकार दिया है—

शोभाकरो द्विजवर प्रथित पृथिव्या विद्यानवद्यकविताादिगुणाम्बुराशि ।
यश्चन्द्रशेखरगिरौ कृतपुण्यपुञ्ज सिद्धि जगाम परमा मनुसत्तमस्य ॥

प्रस्तावना ३६

बाणेश्वर के दादा विष्णु सिद्धाथ भट्टाचार्य उच्चकोटि के कवि थे और उनके पिता रामदेव तर्कवागीश नैयायिक थे। कहा जाता है कि उन्हे पूरा महाभारत कण्ठस्थ था। बाणेश्वर के भाई रामकान्त के पुत्र बलराम भट्टाचार्य बनारस के महाराज महीपाल नारायण सिंह के दीवान थे।

बाणेश्वर की शिक्षा उनके पिता के श्रीचरणो मे हुई। कवि की विद्वत्ता की ख्याति जब फैली तो नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र ने उनको अपना सभाकवि बनाया।[1] इसके पश्चात् वे अलिवर्दी खाँ के पास मुर्शिदाबाद मे पहुँचे। मुर्शिदाबाद से वे वर्दवान के राजा चित्रसेन के पास पहुँचे। वहाँ १७४४ ई० तक वे चित्रसेन के समाश्रय मे रहे। यही पर उन्होने चन्द्राभिषेक नाटक और चित्रचम्पू की रचना की।[2] चित्रसेन की मृत्यु १७४४ ई० मे हुई और फिर कवि को नदिया के महाराज कृष्णचन्द्र का आश्रय लेना पडा। कुछ वर्षो के पश्चात् बाणेश्वर कलकते के शोभाबाजार के महाराज नवकृष्णदेव के आश्रय मे आ बसे।

---

१ अलीवर्दिनवाबमभ्यय नवद्वीपे चरस्त्वाश्रित
तत्पश्चान्नवकृष्णभूपनिमम् रे चित्त वित्ताशया ।
सर्वत्रैव नवेति शब्दघटित त्वच्चेत् कमालम्बसे
तद्वेव परमार्थद नवघनश्याम कथ मुञ्चसि ॥

२ इस चम्पू मे चित्रसेन की उपलब्धियो का वर्णन है, और मराठो के बगाल पर आक्रमण का आख्यान और भारत के तीर्थों का विशद विवरण है। इसकी रचना १७४१ ई० मे हुई। भास्कर पत ने १७४१ ई० मे बगाल और विहार पर आक्रमण किया था। १७४४ ई० मे चित्रसेन की मृत्यु हो गई थी। ऐसी स्थिति मे ग्रन्थ रचना का काल इसमे दिये हुए कालाङ्कतर्कोपधि मे काल को ३ मान कर १७४१ ई० रखना समीचीन है।

कवि ने १७५५ ई० में वाराणसी की तीर्थयात्रा की। वहीं उन्होंने काशीशतक का प्रणयन किया। इस शतक की रचना उन्होंने पाँच घण्टे में पूरी कर दी थी।[1]

अंग्रेजी शासकों के द्वारा हिन्दुओं के विवादों का निर्णय करने में भारतीय धर्मशास्त्रों की सहायता ली जाती थी। इसके लिए वैज्ञानिक विधि से सुसम्पादित विधियों की आवश्यकता थी। यह काम वारेन हेस्टिंग्स के आदेशानुसार बाणेश्वर ने अन्य दस विद्वानों के साथ सम्पन्न किया। इस सग्रह-ग्रन्थ का नाम विवादार्णव-सेतु है। इसके पहले फारसी भाषा में और फिर अंगरेजी में इसका अनुवाद हुआ। यह ग्रन्थ २१ खण्डों में है और इसमें १६२२ पद्य हैं।

कलकत्ते में रहते हुए बाणेश्वर ने कृपाराम घोष के निवेदन करने पर रहस्यामृत नामक महाकाव्य की रचना २० सर्गों में कुमारसम्भव के आदर्श पर की। इसमें पार्वती की तपस्या के पश्चात् शिव से विवाह होने पर दम्पती के वाराणसी में आ बसने का कथानक है। बाणेश्वर की अन्य ज्ञात रचनायें सौ श्लोकों का शिवशतक, हनुमत्स्तोत्र तथा तारास्तोत्र हैं।

चन्द्राभिषेक नाटक की रचना १७४० ई० के लगभग हुई। इसके प्रणयन के लिए चित्रसेन ने स्वयं आग्रह किया था। इसका प्रथम अभिनय चित्रसेन के मन्त्री के आदेशानुसार राजा के कुसुमाकरोद्यान में वसन्त ऋतु में हुआ था। राजा प्रेक्षकों में से एक था। सूत्रधार के शब्दों में—

तद्वंशाम्बुधिसम्भवेन कृतिना यन्निर्मितं नाटकं।
राज्ञा मौलिमणेर्महागुणनिधेरम्यानया सम्प्रति ॥
तत्तस्यैव निदेशतोऽद्य पुरतश्चन्द्राभिषेकं मया।
शक्या नाटयितव्यमत्रभवता याचे प्रसादं परम् ॥

कथावस्तु

चित्रकूट में मन्दाकिनी के समीपवर्ती प्रदेश में योगीन्द्र सम्पन्न समाधि के शिष्य दान्त और विनीत गुरु की अनुमति से अपने को पवित्र करने के लिए सभी तीर्थों में गये और जल लेकर अपने गुरु के पास आये। गुरु के पूछने पर उन्होंने बताया कि हमने राजा नन्द को अप्रतिम शक्तिशाली और तेजस्वी पाया है। योगीन्द्र ने नन्दवंश की प्रशंसा करते हुए कहा—

१ काशीशतक में कवि ने लिखा है—

शाके द्वीपपरागक्षितिपरिगणिते मार्गशीर्षस्य मासे
गौरस्यैकोनविंशेऽहनि बुधदिवसे सार्धयामान्तरा।
सम्पूर्णं श्रीलकाशीशतकमनितरा कानरस्तद्वियोगाद्
भक्त्या यत्नेन तेने द्विजवरतनय श्रीलवाणेश्वराख्य ॥

कवि को आशु कविता की रचना में अप्रतिम दक्षता प्राप्त थी। वे समस्या-पूर्ति में अद्वितीय थे।

धन्यो वैन्य इति प्रसिद्धचरितो येनेयमुर्वी पुरा।
चापोग्रेण समीकृता क्षितिभृता क्षिप्रा दिगन्त गता ॥
मान्धातापि च भूर्बभूव सकला यद् यजयूपाङ्किता।
द्वीपानम्बुधिभि प्रियव्रतनृपश्चक्रे रथाङ्गैरपि ॥१४७

उसी कुल मे कृष्ण और राम हुए।

गुरु को नन्द के विषय मे जिज्ञासा हुई तो शिष्यो ने बताया कि उन्होने राजसूय के लिए सारी पृथ्वी से रजत तथा स्वर्ण का क्रयकर लिया है। राजाओ को जीतकर उनसे उपहार-रूप मे सारा स्वर्ण तथा रजत ले लिया।

गुरु ने शिष्यो को पूछने पर बताया कि नन्द नव हैं, जो नवग्रह की भाँति सुशोभित हैं। इनका मन्त्री शाकटार दास महामनीषी है।[1]

आचार्य के द्वारा समीहित व्रत पूरा कर लेने पर दोनो शिष्य सभी अभीष्ट विद्याओ मे पारगत बना दिये गये। उन्होंने गुरु से आग्रह पूवक कहा कि गुरु दक्षिणा माँगें। गुरु ने १४ कोटि स्वण मुद्राओ की दक्षिणा माँगी। उस अन्यत्र प्राप्त करना असम्भव देखकर उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी की शरण मे जाकर एकान्त व्रतोपवास किया। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हे स्वप्न मे बताया कि तुम लोग अपने गुरु के पास चले जाओ। वे ही तुम्हे दक्षिणा-प्राप्ति का उपाय बतायेंगे। गुरु योगीन्द्र समाधि सम्पन्न को भी स्वप्न मे ज्ञात हो गया था कि शिष्य किस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी को तप से प्रसन्न कर रहे हैं। कुछ देर पश्चात् शिष्यो को आया हुआ गुरु ने देखा कि वे तप से क्षीणकाय केवल श्वासमात्र से जीवित हैं। गुरु ने उनका स्वागत किया और कुछ समय के पश्चात् उन्हे दक्षिणा-प्राप्ति का उपाय बताया कि आज से पाँचवें दिन नन्द मरेगा। मैं उसके शरीर मे प्रवेश करूँगा। इसके लिए वहाँ के लोगो को दिखाने के लिए विनीत कहेगा कि मैं मृत राजा को सजीवनौषधि से पुनरुज्जीवित करता हूँ और दान्त इस बीच मेरे शरीर को गुफा मे रख कर रक्षा करेगा। मैं जब विनीत को जीवनदान--उपकार के लिए १४ कोटि स्वण मुद्रा दे लूँगा तो वह यहाँ आकर मेरे शरीर की रक्षा करेगा और दान्त मुझसे १४ कोटि की दक्षिणा लेगा। फिर मैं मृगया करते हुए यहाँ आकर मर जाऊँगा और पुन अपने शरीर मे पुरप्रवेश विद्या से प्रवेश कर जाऊँगा।

शाकटार को नन्द के मरणासन्न होने से अतिशय खेद है कि नन्द के शेष आठ भाई कामचारी हैं और अब परस्पर लडकर मर जायेंगे। नन्द को गगातट पर मरने के लिए लाया गया था। वह वहाँ पर्यङ्क से उतरे और गगा मे स्नान करके पर्यङ्क पर आकर परमानन्द भगवान् का ध्यान करते हुए मर गये। उसी समय विनीत मिश्र शाकटार से अनुमति लेकर सारी दाम्भिक प्रक्रियायें पूरी करके नन्द के शरीर

१ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति 'इण्डिया आफिस, लदन' तथा सागर--विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है।

मे प्राण सचार कर देता है। शाकटार समझ लेता है कि किसी योगी ने योग के द्वारा राजा के शव में प्रवेश किया है। तथापि उसने अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए नगर मे महोत्सव की सज्जा कराई, सगीत का आयोजन कराया, दान और ब्राह्मण-भोजन कराया।

पुनरुज्जीवित नद ने शाक्टार से कहा कि आप मेरे पिता के स्थान पर हैं। बताइये, किसने मुझे जीवित किया। मैं उसे १४ कोटि सुवर्ण मुद्रा दान दूँगा। शाकटार ने समझ लिया कि ये वास्तविक नद नही हैं। ये तो प्रयोजक साधक योगी नद बने हैं। उसने विनीत मिश्र का नद का आदर करना देख कर समझ लिया कि जो योगी प्रविष्ट है, वह विनीत मिश्र का गुरु है। यह १४ कोटि का दान गुरु दक्षिणा देने के लिए है। शाक्टारदास ने निर्णय लिया कि यह योगी पुन राजशरीर को छोड न दे। नही तो सारी बनी बात बिगड जायेगी। परशरीर में प्रविष्ट योगी को तभी नये शरीर के साथ रखा जा सकता है, जब उसका अपना वास्तविक शरीर जला दिया जाय।

शाक्टारदास ने तत्काल विनीत मिश्र को १४ कोटि स्वर्ण मुद्रायें दिलवाई। विनीत ने कहा कि मेरा मित्र दान्त भी मुझे ढूँढते हुए आयेगा। उसका भी आप लोग सत्कार करें। राजा न कहा कि उसे भी १४ कोटि मुद्रायें दूँगा। विनीत के साथ भारवाह उसके आश्रम की ओर मुद्रायें लेकर चले। शाक्टार ने उन भारवाहो के कान मे कह दिया कि तुमको मेरे लिए कैसे क्या-क्या करना है।

राजा अन्त पुर मे पहुँचा। शाक्टार न वहाँ लोगो से कह दिया कि बीमारी और मरण के कारण राजा की मानसिक स्थिति ठीक नही है। सभी इनसे अधिकाधिक प्रेम करें और इनकी त्रुटियो को क्षमाभाव से देखें।

शाक्टार ने सभी राजपुरुषो को बुलाकर कहा कि राजा को शव से घृणा हो गई है, क्योकि वह स्वय शव बन चुका था। कल वह मृगया करने जायेगा और जिस राजपुरुष के क्षेत्र मे शव दिखाई देगा, उसे मार डाला जायेगा। आपके क्षेत्र मे जहाँ-कही शव हो, उन्हे जला दें।

विनीत भारवाहो के साथ न दौड सका। वे जल्दी-जल्दी दान्त के पास आये, उसे १४ कोटि मुद्रा दी और एक पत्र दिया, जिसमे लिखा था कि पत्रवाहक राजा के आत्मीय भृत्य हैं। ये विश्वासपात्र हैं। इनकी बातें सुनिये और तदनुसार कार्य कीजिये। भारवाहो ने उसे विनीत का मौखिक समाचार बताया कि आप जिस गुप्त वस्तु की रक्षा कर रहे हैं, उसे इन भृत्यो को सौंपकर शीघ्र यहाँ आ जाइये। फिर हम दोनों यहाँ से साथ चलेंगे।' दान्त ने ऐसा ही किया। उसके पाटलिपुत्र की ओर चल देने पर भारवाहो ने योगीन्द्र के शव को शाक्टार की आज्ञा के अनुसार जला दिया और फिर दौड पड़े पाटलिपुत्र के लिए। मार्ग मे जब वे उससे पीछे-पीछे आते मिले और पूछने पर कुछ न बोले तो उसने भाँप लिया कि दाल मे कुछ काला

है और वह वहीं से लौट गया। उसने वहाँ देखा कि गुरु का शव भस्मीभूत है। विनीत जब पाटलिपुत्र से लौटकर चित्रकूट के आश्रम मे पहुँचा तो दान्त ने सारी घटना सुनाई। विनीत ने यह सब जानकर समझ लिया कि यह सारा अनर्थ शाक्टार की धूर्तता से हुआ है। उसने क्रोध मे आकर शाप दिया—शाकटार का सकुटुम्ब शीघ्र ही नाश हो।

इधर राजा भी मृगया करते हुए वहाँ चोला बदलने के लिये आ पहुँचा। वह सारे परिवार को नीचे ही छोड कर राम के चरण चिह्नो को देखने के बहाने पर्वत शिखर पर चढ गया। कृपाणवल्ली लिये शाकटारदास को ही उसके साथ जाने की अनुमति मिली। वह उस गुहा के पास पहुँचा, जहाँ उसका शव रखा था। वही दोनो शिष्य रोते हुए मिले। राजा ने समझा कि मेरे शरीर को किसी हिंस्र जन्तु ने खा लिया होगा। शिष्यो से मिलने पर उसे वस्तु स्थिति का ज्ञान हुआ। उसने सोचा कि शिष्यो से अनुराग करने का यह फल मुझे मिला है। उसने अपनी मर्यादा-रक्षा के लिए आँख के सकेत से ही शिष्यो को समाश्वस्त किया। वह वहाँ से दूसरी गुफा म विश्राम करने के लिए पहुँचा और प्रतिज्ञा की कि जिसने शवदाह कराया है, उस वैरी को बन्धु-बान्धवो सहित नष्ट कर दूँगा।

शाक्टार ने देखा कि शोक के कारण कही राजा मर न जाय। उसने उचित यही समझा कि राजा को अपना सारा मन्तव्य बता दे। उसने राजा से अनुमति लेकर कहा कि मैं जानता हूँ कि आप योगिराज हैं और शिष्यो का कल्याण करने के लिए नन्द के शव मे प्रविष्ट हैं। मैंने ही पृथ्वी को सनाथ रखने के लिए शव को जलवाया है। शाक्टार उनके पैरो मे गिर पडा। राजा ने देखा कि इस धूर्तराज शाक्टार के चगुल मे मैं हूँ। इसके सामने शोक प्रकट करना ठीक नही। उसने शाक्टार से कपट पूर्वक कहा कि आप मेरे गुरु हैं। आपके ही हाथ मे राज्य-शासन का कार्य-सचालन है। राजा के कहने पर उसने दान्त मिश्र को १८ कोटि मुद्रायें दी, जिन्हे वह अपने साथ पाटलिपुत्र से लाया था।

राजा पाटलिपुत्र लौट आया। उसने शाकटार से बदला लेने के लिए अपनी योजना कार्यान्वित की। गुप्तचर ने परिव्राजिका की सहायता से बालक राक्षस को प्राप्त किया, जिसे राजा ने अपने अन्नपान से सवर्धित किया था। एक दिन उसने शाक्टार को सकुटुम्ब अर्धरात्र मे बुलाकर उसे सर्वथा श्रीहीन बना दिया और राक्षस को मन्त्री बना लिया। घोषणा की गई—

> दुष्टामात्यकृतापराधकलुषाण्युद्धर्तुमुच्चैस्तरा।
> श्रेय सक्रमणाय दस्युपिशुनप्रत्यर्थिनाशाय च॥
> वात्ये यो विदुषा विधाय विजय मन्त्राश्रयो राक्षस।
> सोऽय मन्त्रिसमाजराजपदवी धीरोऽयमारोप्यते॥

इसके पश्चात् मन्त्री राक्षस ने बडी सेना लेकर दिग्विजय के लिए प्रयाण किया।

कालान्तर मे शाक्टार को सकुटुम्ब किसी भूमिगृह मे डाल दिया गया। वहाँ तीन दिन मे एक बार उन्हे सत्तू और जल मिलता था। कुछ ही दिनो मे शाक्टार को छोडकर सभी लोग मर गये।

एक दिन रात मे नन्द मूत्र करने के बाद हँसा। उसे हँसते देखकर रानी भी हँसी। नद ने उससे कहा कि यदि तुम मेरे हँसने का कारण नही बताती तो तुम्हारे जीवन का अन्त कर दूँगा। रानी ने इसका समाधान करने के लिए भूमिगृह मे जाकर शाक्टार का दर्शन किया। शाक्टार ने पुछवाया कि जहाँ पेशाब किया था, वहाँ क्या था। पता चला कि एक वट का नवजात पौधा उखडा हुआ था। इतने से शाक्टार ने नन्द की हँसी का कारण जान लिया कि आरम्भ मे जड पकडने के पहले थोडी शक्ति से शत्रु का विनाश सुकर है, जैसे इस पौधे का। यही नीतिवाक्य स्मरण कर राजा हँसा। राजा ने शाकटार की दुर्गति दूर करके उसके जीवन की सुव्यवस्था कर दी।

राजा ने रानी के द्वारा बताये हुए उत्तर को सुनकर उससे पूछा कि किसने आपको यह समाधान बताया है? तब रानी ने क्षमा याचना करके शाक्टार का हाल सुनाया। राजा उसकी विचारणा से चकित होकर उसे पुन राक्षस के ऊपर मन्त्री बना दिया। राजा ने घोषणा की—

नेत्रद्वय मम तु सम्प्रति शाकटारदासस्तथा सचिव राक्षस इत्यवेहि।।
सान्त पुरप्रकृतिवर्गविशेषमत्र प्राचीनतेति बहुदर्शितयोपदिष्टम्।।

शाक्टारदास राजा नद की की हुई उस नृशसता को भूल न सका, जिससे उसके कुटुम्बी जन मारे गये थे और उसकी प्राणान्तक दुर्गति हुई थी। वह बदला लेने की सोच ही रहा था कि उसे चाणक्य दिखाई पडा जो दर्भग्रास को उखाड कर उसकी जड मे माध्वीक डाल रहा था, ताकि जडो को चीटियाँ खा जायें। इस मनस्वी को देखकर उसने समझ लिया कि इससे मेरा काम सिद्ध होगा। उसने चाणक्य को नन्द के राजसूय यज्ञ मे आने का निमत्रण दिया। चाणक्य आया और भूल से गदे कपडे पहने हुए राजसिंहासन पर बैठ गया। नद ने उसका अपमान किया और चाणक्य ने नद कुल को उन्मूलित करने की प्रतिज्ञा की। उसने ऐसा अभिचार किया कि सभी नद ज्वर-पीडित होकर मर गये। तब तो चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राजा बना दिया।

नाट्यशिल्प

सात अङ्को के नाटक चन्द्राभिषेक की प्रस्तावना मे नाटक के प्रयोग की आज्ञा देने वाले राजा की प्रशसा म नव श्लोक वैतालिको की नपथ्य से वाणी के द्वारा और दो श्लोक सूत्रधार की प्रशस्ति द्वारा समाविष्ट हैं। यही ऋतु-वर्णन भी अतिशय विस्तारपूर्वक किया गया है, जिसम १५ पद्य हैं। ऐसा लगता है कि इस वणन के द्वारा सूत्रधार अपनी काव्य-रचनात्मक दक्षता से प्रेक्षकों को प्रभावित करना चाहता है। प्रेक्षको का ध्यान केन्द्रित करना ऐसे वणनो का उद्देश्य तो है ही।

प्रस्तावना मे कवि का परिचय प्रस्तुत करने के लिए अवसर कैसे मिले, इसके लिए कवि ने आकाशभाषित का सहारा लिया है, जिसमे उसे प्रेक्षको की वाणी सुनाई पड़ती है। यथा, (आकाशे कर्णं दत्त्वा) किं ब्रूथ ? कीदृशोऽसौ कविरिति। फिर उन्हे सम्बोधित करके बताता है—

आर्य-विदग्धमिश्रा

किं तन्न्यायनयादिसूक्ष्मसरणीदीक्षातिदाक्ष्यादिभि
सम्प्रोक्तं रपरैश्च सद्गुणगणैर्जातस्य तस्मिन् कुले।
यत्राशेषकलाविलासजलधिर्वैदग्ध्यवारानिधि-
र्धीर श्रीयुतचित्रसेनवसुधाधीशोऽप्यतिप्रेमवान् ॥

प्रस्तावना मे किसी पात्र की सूचना-मात्र होनी चाहिए।[1] इस नाटक मे सूत्रधार ने योगीन्द्र नामक पात्र की सूचना मात्र न देकर उसकी प्रशस्ति भी की है। यथा,

बन्धाभ्यासगुणेन येन हि जगत्प्राणो विहङ्गोपम
सन्नीतो वशतामपीन्द्रियमहादुर्दान्तिरक्षोगण।
अन्तस्तामरसाटवीमटति यो हसायमान सदा
श्रीमत्पन्नसमाधिरेति स पुर शिष्यद्वयेनान्वित ॥

नाटक मे पञ्चम अङ्क दो पृष्ठ का है, किन्तु उसके पूर्व आने वाला विष्कम्भक सात पृष्ठो का है। स्पष्ट है कि कवि विष्कम्भक को भी अङ्क से कम महत्त्व नही देता। परम्परानुसार नाट्यशास्त्रीय विधान को देखते हुए विष्कम्भक मे सूचना मात्र सक्षेप मे होना चाहिए था, किन्तु कवि ने इसे अन्य बहुविध बातो से भर रखा है।

एकोक्ति

तृतीय अङ्क के आरम्भ मे अकेले विनीत अपनी एकोक्ति मे नीचे लिखी सूचनाये देता है—(१) सम्पन्न-समाधि वत्सल हैं (२) गुरुदक्षिणा का क्या उपाय उन्होने बनाया है (३) गुरु कैसे नन्द की मृत्यु होने पर पुरप्रवेश-विद्या द्वारा नन्द के शरीर मे प्रवेश होकर १४ कोटि सुवर्ण-मुद्रा दान करेंगे। (४) कैसे गुरु का प्राणहीन शरीर सुरक्षित रखा गया है। (५) वह पाटलिपुत्र का वर्णन करता है (६) नन्द को देखने के लिए आने वाले लोगो का वर्णन (७) राजा के मरणासन्न होने पर आर्तनाद होता है (८) अपनी योजना कार्यान्वित करनी है। षष्ठ अङ्क के आरम्भ मे शाकटारदास की मार्मिक एकोक्ति है।

अर्थोपक्षक

चन्द्राभिषेक नाटक मे पाँचवें अङ्क के पहले विष्कम्भक मे चन्द्रकला और हेमलता के पुत्र की लम्बी कहानी कहना असाधारण विन्यास है। अर्थोपक्षेपको मे कार्य-वैविध्य का निदर्शन अन्यत्र भी अतिशय विस्तारपूर्वक किया गया है। उनका सविशेष महत्त्व

१ सूचयेद्वस्तु बीज वा मुख पात्रमथापि वा।

है। प्राय अर्थोपक्षेपको मे महत्त्वपूर्ण सामग्री मनोरजक विधि से दी गई है। विष्कम्भक मे तो पात्रो के काम भी कही-कही दिखाये गये हैं।

छायातत्त्व

सम्पन्नसमाधि का नन्द के शव मे प्रवेश करना और उसके पश्चात् उसके सारे कार्य छायातत्त्वात्मक हैं।

कपट-नाटक

चन्द्राभिषेक मे कपट-नाटक के तत्त्व विशेष रूप से मिलते हैं। इस दृष्टि से यह मुद्राराक्षस से कतिपय स्थलो पर मिलता है। चतुर्थ अङ्क मे विनीत मिश्र ने दान्त से कहा भी है—तन्मन्ये त्वा कपटवार्तया विश्लिष्य तरैव दाहितमिद मद्गुरु-शरीरम्।

शाकटार तो कपटी है ही, उसके साथ योगीन्द्र भी राजा नन्द बनकर महाकपटी बन जाता है। इनके कापटिक कार्य कलाप मे छायातत्त्व अवश्यम्भावी है।

कार्य-विशेष

रगमञ्च पर कतिपय कार्यविशेष प्रभावोत्पादक हैं। यथा, चतुर्थ अङ्क मे राजा के चित्रकूट मे आने के समाचार से उसका शरीर भस्म हो जाने के कारण शिष्यो का छाती पीट-पीट कर रोना।

कथावस्तु का विन्यास कहानी की भाँति होता है। प्रथम अङ्क मे कही बीज का निक्षेप नही दिखाई देता। वास्तव मे नाट्यकार कहानी का प्रेमी है। वञ्चक्रीडाङ्कुरग की कथा शाकटार सुनाता है, जिसमे चार पृष्ठ हैं। कहानी पर्याप्त विस्तार से कही गई है। यह धूर्तों की कथा है, जो वस्तुत मनोरजक है, पर नाट्यकला की दृष्टि से हेय है। पाँचवें अङ्क के पहले विष्कम्भक मे हेमलता और चन्द्रकला की लम्बी कहानी तीन पृष्ठो में दी गई है। सारे नाटक की कथावस्तु मे कुछ तिलस्मी रग है, जो युग की विशेषता है।

नायक-विश्लेषण

यद्यपि इस नाटक मे भूमिका विविध क्षेत्रीय है और अतिशय विशाल परिधि से ली गई है, तथापि स्त्रियो की भूमिका नगण्य है।

वर्णना

नाटक मे काव्यात्मक वर्णना को उत्कृष्ट स्थान दिया गया है। उदात्त भावो को प्रेक्षको के समक्ष उपमान द्वार से भी प्रस्तुत कर देने मे कवि सफल है। यथा,

नाथ भाति महेन्द्रचापसहित सौदामिनी-शोभन
सान्द्रश्यावरणनव्यनीरदमहाव्यूहो मनोरञ्जन।
वैदेही-महित शरासनधर पूर्व प्रवासाश्रम
शङ्के प्रेक्षितुमागतस्स भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वयम्॥

प्रात काल का वर्णन है—

चक्री चत्रसमागमाद्विजयते स्फूर्जत् प्रमोदश्रिया
हसान्दोलितपद्मसभवमहामोद समुज्जृम्भते।
मूर्धोल्लासितचन्द्रकोज्ज्वलतनु श्रीनीलकण्ठस्तथा
भूतैरप्यपरैश्च नृत्यति निजं कार्यैरिवाकल्पित ॥

कही-कही आदर्शो को प्रस्तुत किया गया है। यथा गुरु और शिष्य हैं—

न पित्रोर्नो मित्रे न वपुषि कलत्रे न तनये
भवेद् तादृक् यादृक् स्फुरति रतिरुच्चैरतितराम्।
गुरौ क्षान्ते दान्ते विदुषि विषयास्वादविमुखे
परब्रह्मध्यानस्तमितहृदये भक्तसदये ॥

अन्यत्र चतुर्थ अङ्क मे लोककल्याण की राजकीय योजनाओ का सविस्तर आकलन है।

ऐतिहासिक सूचना

सूत्रधार ने बताया है कि महाराज चित्रसेन को नागपुर से बलि प्राप्त होती थी। यथा,

इन्द्राणीमयभूरपि प्रतिपद य प्रीणयत्युच्चकं
य प्रोच्चैरुपदिश्यतेऽथ गुरुणा काव्येन सूक्ष्माश्रुति।
भेजे नागपुराद्बलिश्च सुमहान् यस्यान्तिक दृश्यते
सोऽय कोऽपि सुरासुरेन्द्रविभव श्रीचित्रभूमीपति।

समीक्षा

चन्द्राभिषेक सस्कृत के परवर्ती सर्वश्रेष्ठ नाटको में अन्यतम है। इसमे राजतरगिणी के रचयिता कल्हण की इतिहास-निदर्शना के साथ नीति और वैराग्य का उपदेश और बाणभट्ट की कादम्बरी जैसी रमणीय शैली का सवलन अनूठी सफलता की उपलब्धि है।



अध्याय ४८

प्रमुदित-गोविन्द

प्रमुदित गोविन्द के रचयिता सदाशिव को उत्कल-प्रदेश मे खारकोटे के राजा ने कविरत्न की उपाधि से विभूषित किया था।[1] वे राजपुरोहित थे। सदाशिव का प्रादुर्भाव अठारहवी शती मे हुआ था। सूत्रधार ने सदाशिव का परिचय प्रेक्षको को देते हुए बताया है—

अस्ति तावद्वत्सकुलकैरवाकरकलाकरायमाणस्य प्रथितकविरत्नपुरोहित-राजपदवीकस्य कवे सदाशिवोद्गातुरभिनव प्रमुदितगोविन्द नाम रूपकम्।

प्रमुदित गोविन्द का अभिनय राजसभा के प्रीत्यर्थ हुआ था। जैसा प्रस्तावना मे मे बताया गया है, राजसभा का एक पत्र नटी को प्राप्त हुआ था कि किस प्रकार का नाटक खेला जाय। सूत्रधार के शब्दो मे नाटक की आलोचना है—

शृङ्गार-सवलित-वीररस-प्रकर्ष-व्यामिश्रितोत्तमचमत्कृतिसारगर्भम्।
सन्दर्भमुद्ग्रथितसाधुपदार्थभाज गम्भीरमाजनयितु वलते मनीषा ॥७

कवि को इसके द्वारा साधु चरित्र-परम्परा का उद्घाटन करके सहृदयो का आराधन करना है। सदाशिव मूलत वैष्णव थे। वैष्णव संस्कृति का विस्तार और प्रचार करने के लिए उन्होने इस नाटक का प्रणयन किया था।

कथावस्तु

दुर्वासा ने एक बार ऐरावत पर आरूढ इन्द्र को स्वनिर्मित माला दी। इन्द्र ने उसे देखने के लिए ऐरावत के गण्डस्थल पर रखा। ऐरावत ने सूँड से माला लेकर पैर तले रखकर मसल दिया। अपनी माला की दुर्गति देखकर दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया—आप की श्री नष्ट हो जाय। दुर्वासा का चरित्रचित्रण है—

वटव स्वतो हि कटव किंपुनस्तत्र दिग्वासा असौ दुर्वासा।

इसके पहले ही देवासुर-सग्राम मे मायावी असुरो ने देवताओ को परास्त कर दिया था। इन्द्र की इस विपत्ति को निरस्त करने के लिए ब्रह्मा और शिव विष्णु से परामर्श करते हुए इस निर्णय पर पहुँचे कि समुद्र का मथन करके देवताओ को अमृत प्राप्त करना है। इस योजना के कर्णधार विष्णु बने। उन्होने असुर-प्रमुखो को बुलाया कि हमारे सम्मिलित प्रयास से अमृत प्राप्त हो। वलि और वासुकि उनसे सहमत हो गये। समुद्र के मध्य मे देवता पहुँचे। उन्हे लगा कि तत्काल दैत्यों और नागो से परामर्श करके मथन मे सफलता की योजना प्रतिपन्न होनी चाहिए। विष्णु से पत्रिका लेकर पुण्डरीक वलि के पास पहुँचे। वलि पत्रिका पढ़कर दैत्यो

१ प्रमुदित गोविन्दकी अप्रकाशित प्रतियाँ मद्रास की ओरियण्टल लाइब्रेरी और स्टेट म्यूजियम, भुवनेश्वर मे प्राप्य हैं।

का मन्तव्य जानकर समुद्र-मन्थन के लिए उद्यत हो गया। विष्णु की पत्रिका पाकर वासुकि नाग भी समुद्र-मन्थन मे विष्णु की सहायता करने के लिए उद्यत हो गया।

द्वितीय अङ्क के पहले प्रवेशक के अनुसार कार्तिकेय की अध्यक्षता मे देवसेना समुद्र-मन्थन के लिए तट पर पहुँची थी। मन्दर-पर्वत को वैशाखी बनाया गया। पर वह उठता नही था। अन्त मे स्वय विष्णु को उसे उठाना पडा। विष्णु ने उसे सागर के अर्वाची तीर पर रख दिया। वहा से वह पर्वत इन्द्र का विवाह देखने के लिए अदृश्य होकर चलता बना। इन्द्र ने पुलोम नामक दैत्य की कन्या शची से इसलिए विवाह किया कि दैत्यो से मुठभेड होने पर श्वशुर-पक्ष से सहायता प्राप्त कर सके।

मन्थन-कर्म मे विष्णु ने वासुकि को नेत्र बनाया। जब मन्दर समुद्र मे डाला गया तो पैप्पलादी ने उसे मुँह मे ग्रस्त कर लिया। स्वय विष्णु कच्छप बन और पर्वत को पीठ पर उठाकर ऊपर लाये। असुरो ने हठ करके अपनी श्रेष्ठता बताने के लिए वासुकि का फणप्रदेश पकड कर मन्थन करने का उद्योग किया। देवो ने पुच्छ पकडी। मन्थन से बहुविध वस्तुयें क्रमश निकली, जिनका बटवारा होता जाता था। हालाहल-विष के निकलने पर उसे ग्रहण करने के लिए कोई आगे न बढा। देवताओ ने शिव से कहा कि आप विषपान करें। पार्वती ने उन्हे प्रारम्भ मे अनुमति नही दी, किन्तु अन्त मे लोकरक्षा के लिए अपने पति को विष कवलित करने के लिए भेज दिया। शिव ने विषपान किया और पार्वती से मिलने के लिए चलते बने।

लक्ष्मी निकली और विष्णु से अपना प्रणय प्रकट किया। धन्वन्तरि अमृतकलश लेकर निकले। दानव छीन कर उसे लिए हुए पर्वत पर जा पहुँचे। अमृत पाने के अभिलाषी देवता विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु मोहिनी का रूप धारण करके दानवों के पास पहुँचे। मोहिनी से आकृष्ट होकर दानवो ने अपना सर्वस्व उस पर निछावर कर दिया। उन्होने उसे अमृत-कलश देकर निवेदन किया कि आप इसे देव और दानवो मे अभेद बुद्धि से बाँट दें। मोहिनी ने सारा अमृत देवो को दे दिया। असुर ताकते ही रह गये।

समुद्र से निकली वस्तुओ मे ऐरावत, उच्चैश्रवा, अप्सरा, कल्पवृक्ष, लक्ष्मी आदि देवताओ ने ली। फिर तो बलि ने देवो से युद्ध ठान दिया। रगमच पर आकर बलि इन्द्र को सन्देश भेजता है कि युद्ध करो। युद्ध मे बहुत से असुर मारे गये। भार्गव ने उन्हे जीवित कर दिया।

अन्तिम सप्तम अङ्क मे समुद्र ने लक्ष्मी को विवाह मे विष्णु के लिए दे दिया। इसके पश्चात् विष्णु और शिव ने विषपान और मोहिनी के अमृत-वितरण की चर्चा की। शिव ने मोहिनी-रूप पुन देखना चाहा। विष्णु के मोहिनी-रूप को देखकर शिव मोहित हो गये।

सा तत्र दर्शितघनस्तनबाहुमूला मूलाद्धरस्य धृति-वीरुधमुच्चखान।
गौरीपति पतितहस्तगृहीतशस्त्र पचाशुगम्य गमिताजनि नष्टचेष्ट ॥७ ११

उसे हस्तगत करना चाहा तो वह सुन्दरी अदृश्य हो गई। फिर पास आ गई। इस प्रकार शिव को छकाया।

शिल्प

प्रस्तावना मे सूत्रधार और नटी के चले जाने के पश्चात् उनके द्वारा प्रवर्तित प्रियवद और उसकी पत्नी मजु के द्वारा सवाद मे प्रमुदित गोविन्द-नाटक की भूमिका प्रस्तुत की गई है। इस भूमिका का नाम यद्यपि हस्तलिखित प्रति म मिश्र विष्कम्भक मिलता है, किन्तु यह विष्कम्भक नही है, क्योकि विष्कम्भक का पात्र नाटकीय कथा का पात्र होना चाहिए। इस नाटक मे ऐसा नही है। प्रियवद और मजु नाटकीय कथा के पात्र नही हैं, अपितु सूत्रधार के सहकर्मी हैं। वे किसी की भूमिका मे रगमच पर नही उतरते।

कवि ने वर्णनो से नाटक की चारुता बढाई है। द्वितीय अक मे मदरोद्धरण का वर्णन प्रवरसेन-विरचित सेतुबध के प्रासगिक वर्णन से मिलता-जुलता है। यथा—

निर्यान्ति बहिराननं कुटिलग यात्यद्रिमध्याच्छिखी
त चान्वक् शबर करे धृतधनुर्बाणस्तमेणादन
एन चापि वृकस्तमत्तु मयते सिहस्तमष्टापद
शैलान्ते गगन समीक्ष्य चकिता पृष्ठे भजन्ते रिपुम् ॥२ १३

वर्णनो मे कवि-कल्पना की नवता दर्शनीय है। यथा—

निद्रा कैतवमीयुषा कृततम प्रावारद्वम्वारणा
रात्रीवासकसज्जिकामुपगत प्रालेयरुक्कामुक
द्वित्रैरेव करैर्निचोलमनयत्तत्तन्मुखादन्यथा
कस्मात् काश्चन ता दिश प्रनिहसन्त्येता वयस्या यथा ॥२ १८

ऐसे वर्णन कलात्मक होने पर भी अनुपयोगी और कथासूत्र को अदृष्ट बनाने वाले हैं। द्वितीय अक मे वर्णन ही वर्णन हैं, दृश्य तो नाममात्र का ही है। तृतीय अक मे सवाद के द्वारा सूचनायें मात्र वैसे ही दी गई हैं, जैसे इसके पूर्व के प्रवेशक मे।

छायातत्त्व

मन्दर पर्वत इन्द्र का विवाह देखने के लिए जाता है। विष्णु उसे समुद्र तट पर रखते हैं। वहाँ से अदृश्य होकर चल देता है। यह छाया नाट्य है। विष्णु का मोहिनी का रूप धारण करके दानवो को छलना छाया-तत्त्वानुसारी घटना है।

निवेदन

पचम अङ्क मे रगमच से शिव के चले जाने के पश्चात् कोई नट बिना रगमच पर आये ही सुनाता है—

प्रालेयाम्भोधराद् प्राङ्मुखमिव ककुभा दृश्यते तीरमब्धे
सोऽय कालस्तपर्तौ चरममिव दिनस्यातिरम्यत्वमेति।
मन्थेऽपि स्पर्धिपन्ते विमथितपुरुषाभूतभूम्नि श्रमेऽपि
व्यापारेऽस्मिन् फलाय प्रभवति महतामेकमध्याहराम।

यह निवेदन चूलिका से कुछ-कुछ मिलता जुलता है।[1] रग पीठ पर कतिपय ऐसे कार्य होते हैं, जो सवादो के द्वारा वर्णित नही हैं। उन्हे सम्भवत नेपथ्य से कोई बताते चलता है। पचम अक मे लक्ष्मी के रगमच पर आने पर निवेदन किया जाता है। यथा—

इतरे विश्वजननी प्रगेमुरविशकिता।
मनसा मानस स्त्रीणा सस्थानेनोपपद्यते॥

नाट्यसकेत

रूपक मे लम्बे-लम्बे नाट्य-सकेत मिलते हैं। पचम अङ्क मे लक्ष्मी का प्रवेश होने पर १५ पक्तियो मे उसका गद्य में वर्णन नाट्य सकेत के रूप मे है। ऐसी सामग्री कीर्तनिया नाटको मे पद्यात्मक मिलती है और गीत है। इसके पश्चात् 'कैचित्' को गाने वाला मानकर एक गीत भी लक्ष्मी-वर्णन के लिए प्रयुक्त है।

इसी अक मे धन्वन्तरि के अमृत-कलश लेकर रगमच पर आने पर निवेदन के द्वारा उनका लम्बा वर्णन है और बताया गया है कि रङ्गमच पर दानव उनके कन्धे से अमृत-कलश लेकर भाग चलते हैं। देवता विष्णु की स्तुति करने लगते हैं। यह सारी सामग्री किरतनिया नाटको के योग्य है।[2]

इन लम्बे नाटक-सकेतो से यह प्रतीत होता है कि यह नाटक लेखक की दृष्टि मे पढने के लिए है, अभिनय के लिए गौण रूप से ही है। अभिनय मे तो ये सारी बातें आहार्य, अनुभाव आदि प्रत्यक्ष ही होते चलते।

मूकपात्र

पचम अक मे लक्ष्मी रङ्गमच पर आती है और कुछ भी बोलती नही। उसके हावभाव का वर्णन मात्र कर दिया गया है।

---

१ चूलिका से अन्तर यही है कि इसमे वृत्त और वर्तिष्यमाण का नही, अपितु वर्तमान घटनादि का परिचय दिया जा रहा है। यह निवेदन की प्रमुख विशेषता है।

२ अठारहवीं शताब्दी मे मिथिला किरतनिया नाटको का विकास हो रहा था। इन नाटको मे स्तुति और वर्णन-परक सामग्री मैथिली भाषा मे प्रस्तुत की जाती थी। प्रमुदित-गोविन्द मे यह सामग्री सस्कृत मे है।

पारिभाषिक शब्दावली

प्रमुदित गोविन्द मे कही-कही नई पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त है। यथा, अंक समाप्ति के लिए अंक-स्थान[२] षष्ठ अंक के पहले प्रवेशक के लिए प्रस्तावना आदि।

अङ्को के आरम्भ मे अङ्को की संख्या का नाम या उनके आरम्भ की सूचना नहीं दी गई है। केवल उनके अन्त मे प्रवेशक और विष्कम्भक के अन्त की भाँति यह लिख दिया गया है कि अङ्क समाप्त। सप्तम अङ्क के आरम्भ के पहले जो प्रवेशक है, वह वस्तुत लघु अङ्क है। इसमे सूच्य तो नगण्य है और दृश्य महत्त्वपूर्ण है। इसमे हरि और समुद्र का संवाद है। ऐसे प्रवेशक वस्तुत लघु दृश्य हैं।

शृङ्गार-विशेष

शृङ्गारोचित विभावादि का कवि ने रुचिपूर्वक वर्णन किया है। सप्तम अङ्क मे २० पंक्तियो के एक वाक्य मे मोहिनी की उन चेष्टाओ का वर्णन है, जिनसे उसने शिव को छकाया।

---

२ चतुर्थ अङ्क के अन्त मे।

अध्याय ४६

श्रीकृष्ण-विजय

श्रीकृष्ण-विजय डिम के प्रणेता वेङ्कटवरद मद्रास-प्रदेश के अर्काट जनपद में श्रीमुष्ण ग्राम के निवासी थे।[1] कौण्डिन्य गोत्र में रामानुज वैष्णव आचार्यों के कुल में श्रीनिवासार्य के पौत्र तथा वरदाचार्य के पुत्र अप्पलाचार्य हुए। अप्पलाचार्य के पुत्र बालविपश्चित् वेङ्कटवरद ने श्रीकृष्ण-विजय नामक डिम का प्रणयन १८ वीं शती के पूर्वार्ध में किया। सूत्रधार ने श्रीनिवास के विषय में बताया है—

श्रीरंगनगरीनाथ श्रीनिवासगुरु भजे।

वेङ्कटवरद ने ७७ वर्ष की अवस्था में श्रीकृष्ण-विजय की रचना की। उनके पिता अप्पलाचार्य ८० वर्ष की अवस्था तक ग्रन्थों की रचना करते रहे। इनके पितामह श्रीनिवास के विषय में कहा जाता है—

त्रय एव हि लोकेऽस्मिन् कवयो बुधसम्मता।
प्राचेतसमुनिर्व्यास श्रीनिवासगुरुत्तम॥

श्रीनिवास ने (१) अम्बुजवल्ली-परिणय (२) भूवराह-विजय (३) अनङ्गमगल (४) अष्टपदी (५) वृत्तालौकिक्सारमालिका (६) वराहचम्पू (७) वकुलमालिनी (८) गीता-परिणय (९) सीतादिव्यचरित्र (१०) भारतचन्द्रिकासारसंग्रह (११) मीमासा-सारसग्रह (१२) वेदान्तसार (१३) अम्बुजवल्लीदण्डक (१४) श्रीवराहचूर्णिका (१५) ध्यानचूर्णिका (१६) श्रीरंगदण्डक (१७) चूर्णिकाकीर्तन (१८) श्रीरंगराज चरित (१९) शतपद इत्यादि ग्रन्थों की रचना की थी।

श्रीनिवास के पुत्र वरदाचार्य ने (१) लक्ष्मीनारायणचरित (२) रघुवीरविजय (३) कमलनयनचर्या (४) रामायण-संग्रह (५) गद्य-रामायण (६) शब्द-माहात्म्य (७) औक दर्पण (८) अम्बुज-वल्लीशतक (९) वराहशतक (१०) प्राकृत-रत्नाकर (११) स्मृतिसार (१२) रहस्यरत्न (१३) श्रीरंगराज (१४) श्रीरंगनायिका-दशक इत्यादि की रचना की।

वेङ्कटवरद ने (१) श्रीनिवास-चरित्र (२) श्रीनिवासकुलाब्धिचन्द्रिका (३) श्रीनिवासामृतार्णव (४) श्रीदिव्यदम्पतिवरस्तव और (५) अत्रिकामकल्पवल्ली की रचना की। रूपक के अभिनय के समय सूत्रधार के अनुसार वे कल्याण-साधिका की रचना करने वाले थे।

श्रीकृष्ण-विजय डिम का सर्वप्रथम अभिनय श्रीमुष्ण में श्रीमुष्णपुर-नायक वेङ्कटेश भगवान् विष्णु की सभा में वसन्त ऋतु में यज्ञ के अवसर पर हुआ था।

इस डिम में कम से कम पाँच यवनिकान्तर थे, जिनमें से पचम यवनिकान्तर केवल अंशत मिलता है।

---

१ इस रूपक की हस्तलिखित प्रति शासकीय हस्तलिखित ग्रन्थालय, मद्रास में है।

प्रस्तावना लेखक सूत्रधार

'श्रीकृष्ण-विजय डिम की प्रस्तावना में सूत्रधार न कवि के पितामह श्रीनिवास के ग्रन्थों के नाम बताकर कहा है—एतानि मया दृष्टानि उक्तानि च।' यह सूत्रधार की लेखिनी से ही प्रणीत हो सकता है। आगे चलकर नटी ने सूत्रधार से कहा है—

इय प्रस्तावना सलक्षणा निरूपिता त्वया कुशीलवकुञ्जरेण।

कथावस्तु

कृष्ण से द्वारका म आये हुए अर्जुन ने कहा कि मुझे आपकी भगिनी सुभद्रा से सबसे अधिक प्रीति है। कृष्ण न कहा, मैं ऐसा करा दूँगा। द्वारका के समीप कृष्ण उनसे पुन मिले और बताया कि आपसे मिलन बलरामादि आ रहे हैं। इस बीच आप त्रिदण्डी सन्यासी बन जायें। फिर पवत की गुहा मे जा बैठें। कृष्ण और बलराम कुछ देर के बाद आये। बलराम ने प्रस्ताव किया कि यह यतिराज हमारे प्रमदवन मे रहे। अर्जुन प्रमदवन मे आ पहुँचा। सुभद्रा उसकी सेवा के लिए नियुक्त हुई। फिर तो गान्धर्व विवाह हो गया। पश्चात् सभी देवताओ ने सम्मिलित होकर उनकी सास्कारिक विवाह-विधि सम्पन्न की।

शिल्प

श्रीकृष्ण विजय डिम अनेक दृष्टियों से एक ऐसी रचना है, जो पुरानी परम्परा से सवथा भिन्न है। सर्वप्रथम इसके नाम को लीजिये। श्रीकृष्ण-विजय मे सुभद्रा अ र अर्जुन का विवाह होना प्रमुख घटना है। ऐसा होना उचित नहीं प्रतीत होता।

जहाँ तक डिम की कथावस्तु का सम्बन्ध है, इसमे कुछ लडाई-झगडे की बात होनी चाहिए, पर श्रीकृष्णविजय मे ऐसा कुछ भी नही है। कथावस्तु मे रौद्र रस की योग्यता होनी चाहिए। इस रूपक मे न तो रौद्ररस है और न रौद्ररसोचित कार्यव्यापार हैं। उलटे इसमे डिमके लिए वर्जितशृङ्गार की सरिता और कहीं-कहीं तो अनुचित शृङ्गार की प्रवृत्तियाँ अपनाई गई हैं। अनेक स्थलों पर शृङ्गार की दृष्टि से यह भाण के आसपास जा पहुँचता है।[1]

विष्कम्भक और प्रवेशक डिम में नहीं होने चाहिए। श्रीकृष्णविजय मे इनकी प्रचुरता है। डिम मे चार अक होने चाहिए। इसमे कम से कम ५ अक हैं। अकों के स्थान पर यवनिकान्तर हैं।

डिम के १६ नायक सभी के सभी मानवेतर होने चाहिए। इस नियम का पालन भी इसमे नही है।

---

१ द्वितीय यवनिकान्तर मे कवि ने अनावश्यक होन पर भी भँडैती की है। पद्य २८, ३० इसके उदाहरण हैं। लोकरुचि की भ्रष्टता का अनुमान ऐसे दूषित पद्यो से किया जा सकता है। तृतीय यवनिकान्तर मे स्त्रीसग के अभाव मे क्या उपाय कामुक करते हैं—ये सब अश्लील बातें इस रूपक मे बढा-चढा कर कही गई हैं।

वेङ्कट के सामने डिम की एक परिभाषा थी, जिसे सूत्रधार ने प्रस्तावना मे बताया है, किन्तु इस डिम की हस्तलिखित प्रति मे वह परिभाषा त्रुटित है। प्रथम यवनिका के अन्त की पुष्पिका मे कवि ने अलङ्कारसर्वस्व नामक ग्रन्थ की परिभाषा का उल्लेख किया है। सूत्रधार की डिम की परिभाषा का स्वल्पाश मिलता है, जिसके अनुसार इसमे कविस्तुति, विष्कम्भ और चूलिका की प्रचुरता होती है और नाना प्रसग हैं। ये सब बातें इसम प्रचुर मात्रा मे हैं।

छायातत्त्व

अर्जुन का त्रिदण्डी सन्यासी बनकर पूजा जाना छायातत्त्वानुसारी है। कृष्ण ने उनसे कहा—

त्रिदण्डकाषाय-शिखोपवीतैं सितोर्ध्वपुण्ड्रैस्सहितो द्विपाकं ।
कदा सुभद्रा घटयन्नुरस्था सुख लभेयेति-विचिन्तयन् वस ॥२७

मनोरञ्जन की बाह्य सामग्री

रूपक मे मनोरजन की सामग्री बढाने के लिए वेङ्कट ने विद्याविलास-प्रकरण कथावस्तु मे अनावश्यक होने पर भी जोड दी है। इसमे पहेलियाँ बुझाई गई हैं और उनके उत्तर दिये गये हैं। यथा,

किं वा सर्वरसज्ञम्—जिह्वा

सावमर्श-चूलिका (निवेदन)

इस युग मे निवेदन के अनेक नाम मिलते है। असम-प्रदेश के नाटको मे निवेदन का प्रयोजक सूत्रधार होता था। मैथिली किरतनिया नाटको मे भी सूत्रधार ही यह काम करता था। इस डिम मे ऐसे निवेदन का नाम सावमर्श-चूलिका दिया गया है। तृतीय यवनिकान्तर मे उदाहरण है—

तत्रान्तरे सरससारसचारुनेत्रा सौन्दर्य-सागर-समुद्भवसारलक्ष्मी ।
साक सखीभिरनुरूप-विभूषणाढ्या पर्युत्सकाशमभजत यतिन सुभद्रा ॥३३

सावमर्श-विष्कम्भक तथा अङ्कास्य

तृतीय यवनिकान्तर के पूर्व सावमर्श विष्कम्भक है, जिसकी परिभाषा है—

समयत्रयकार्यार्थप्रशसा क्रियते यत ।
विष्कम्भ सावमर्शोऽपि नाटके कीर्त्यते बुधै ॥

इसके पश्चात् अकास्य है, जिसकी परिभाषा है—

अङ्कास्य नाम वृत्तान्तो यद्यत्र प्रसूच्यते ।
प्रबन्धोऽय मध्यपात्रैस्तदङ्कास्य मुदीरितम् ॥

आलिंगन

नायिका का रगमच पर नायक आलिंगन करता है, जैसा तृतीय यवनिकान्तर मे नीचे लिखे रगनिर्देश से ज्ञात होता है—

तामङ्के निधायालिंग्य तिष्ठति ।

तृतीय यवनिकान्तर के अंतिम भाग मे बिना वक्ता का नाम बताये कुछ सूचनायें दी गई हैं। तृतीय यवनिका मे सूचनायें ही आद्यन्त हैं। नायक और नायिका के सवाद द्वारा भी सूचना दी गई है।

अध्याय ५०

रुक्मिणी-परिणय

रुक्मिणी-परिणय के प्रणेता रमापति उपाध्याय पल्ली-निवासी मैथिल मार्गव-वंशी ब्राह्मण थे।[1] इनके पिता श्रीकृष्णपति उपाध्याय स्वयं कवि और वेद तथा उपनिषद् के प्रकाण्ड पण्डित थे। रमापति की प्रतिमा का विलास दरभंगा के राजा नरेन्द्र सिंह (१७४८-१७६१ ई०) के आश्रय में हुआ। इनकी एकमात्र रचना रुक्मिणी-परिणय नाटक मिली है। इसके छः अङ्कों में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की कथा है। लेखक ने नाटक की रचना छात्रों के प्रार्थनानुसार की थी।

रुक्मिणी-परिणय का अभिनय राजा नरेन्द्रसिंह की कमलेश्वरी-स्नान यात्रा के अवसर पर समागत विद्वानों के अभिनन्दन के अवसर पर हुआ था। स्वयं राजा ने किसी नव्यरूपक का अभिनय करने के लिए कहा था। रुक्मिणी-परिणय नाटक की हस्तलिखित प्रति कवि ने अपने शिष्य भरतों को दी थी।

इस नाटक के अनुसार सूत्रधार अन्य कुशीलवों का गुरु होता था। यथा,

सूत्रधार—प्रिये, साधु, साधु। सम्यक् परिचीयते त्वयैव महाराज तस्मात् सहैव मया मदन्तेवासिभिश्च कुशीलवैर्गीयतामस्य गुणौघः।

नाटक की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक सूत्रधार है, रमापति उपाध्याय नहीं। प्रस्तावना में कवि के आश्रयदाता का विस्तृत वर्णन है। यह परवर्ती नाटकों की विशेषता रही है।

कथावस्तु

राजा भीष्मक और उनकी महारानी अपनी कन्या रुक्मिणी के विवाह के लिए भारत के विविध देशों के राजाओं को स्वयंवर में आने के लिए ब्राह्मण से निमन्त्रण भेजते हैं। वे दोनों कृष्ण को जामाता बनाने के लिए उत्सुक हैं। द्वितीय अङ्क में कलहवर्धन नामक घटक रुक्मी के इस मत का समर्थन भीष्मक के सामने करता है कि शिशुपाल को रुक्मिणी दी जाय। फिर दूसरा घटक हरिवल्लभ शर्मा को बुलाया गया। उसने भीष्मक के मत का समर्थन किया कि यादवेन्द्र कृष्ण को रुक्मिणी दी जाय। अन्त में भीष्मक ने कृष्ण के पास यह सन्देश भेजा—

देव्या मया च मनसा परिकल्पितोऽसौ पाणिग्रहे यदुपतिर्दुहितुष्पतिर्मे।
भूयादयाशुभमनि शिशुरेष नृप प्रत्यूहमाचरति किंकरणीयमत्र ॥२६

रुक्मी के विरोध का शमन भीष्मक ने यह कहकर करना चाहा कि अन्यथा कृष्ण आक्रमण करके रुक्मिणी को ले जायेंगे। क्रोध करके रुक्मी ने शिशुपाल के

---

१ रुक्मिणी-परिणय का प्रकाशन तीरभुक्ति, १ एलेनगंज-रोड, इलाहाबाद से हो चुका है।

पास जाने का उपक्रम किया तो उसे पिता ने यह कह कर रोक लिया कि स्वयवर में सभी राजाओ को बुलाया जाय। ब्राह्मण और नाई से सभी राजाओ को स्वयवर का सन्देश दिया गया।

कृष्ण ने उग्रसेन, बलरामादि के साथ सभा मे रुक्मिणी के स्वयवर का निमन्त्रण पाया। पत्रवाहक द्विज ने अकेले श्रीकृष्ण के सामने रुक्मिणी का सौन्दर्य वणन किया। ब्राह्मण ने कृष्ण से सकेत पाने पर बताया कि आप कुण्डिनपुर पहुँचेंगे तो रुक्मिणी जालमार्ग से देखेगी। आपके लिए सारी व्यवस्था हो जायगी।

सभी यादव वीर ससैन्य कुण्डिनपुर की ओर चल पडे। कृष्ण का वहाँ क्रथकैशिक के घर मे स्वागत हुआ। कैशिक ने यादवो के लिए वहाँ मन्दिर बनवा रखे थे। क्रथकैशिक ने श्रीकृष्ण के चरण का प्रक्षालन करके उन्हे सिर पर रख कर उनके लिये चँवर डुलाकर उपचारो से पूजा की।

कुण्डिनपुर मे आये हुए सभी राजाओ को सूचना दी गई कि आप कृष्ण के राजेन्द्राभिषेक मे सम्मिलित हो। जो नही आयेगा, वह वध्य होगा—यह देवराज का आदेश है। इस राज्याभिषेक मे भीष्मक भी सम्मिलित हुए। कृष्ण सभाभवन मे जाकर स्वयवर मे सम्मिलित नही हुए थे।

भीष्मक ने कृष्ण की रुचि के अनुसार स्वयवर का कार्यक्रम विघटित कर दिया और कहा—

> गच्छध्व भूमिपाला नय-विनययुतास्वैरनीकैस्समेता।
> इदानी मम सुतायाः पतिवरणमतो राजधानी स्वकीयाम्॥
> क्षन्तव्यश्चापराधो मम गतवयस शीलवद्भिर्भवद्भि।
> याचेऽह नम्रमौलि कृतनयवशगो नो विधेय प्रकोप॥

विदर्भ नगर से भीष्मक कुण्डिनपुर चले आये और कृष्ण ने भी मथुरा की ओर प्रस्थान किया। इधर रुक्मी के साथ मन्त्रणा करके जरासघ आदि ने कालयवन के नेतृत्व मे मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण ने पहले से ही द्वारका नगरी गरुड से बनवाकर सभी यादवो को वहाँ भेज दिया और राजा मुचकुन्दकी नेत्राग्नि से कालयवन को भस्म करा दिया। वे स्वय भी द्वारका चले गये। वहाँ से उन्होंने भीष्मक को नारद से सवाद दिया कि आप शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह का समारम्भ करें। कृष्ण के दूर चले जाने पर रुक्मिणी की मानसिक वृत्ति का वणन मनोरम गीत के द्वारा वर्णित है—

> माधव-गमन-दिवस सत्रो सजनी, मोहि होग्र जहिन विषाद।
> जननहु कहए न पारिग्र सजनी, छने-छने तनु अवसाद॥
> ग्रमिग्रकिरन शशि सुनिग्र सजनी, सेहओ बरिस विखधार।
> दखिन पवन तह तनु दह सजनी, मलयज परस ग्रगार॥ इत्यादि

रुक्मिणी ऐसी स्थिति मे मूर्छित हो गई। सखियो ने उसका उपचार किया। अन्त मे सखी के बुलाने पर नारद वहा आये। उन्होने रुक्मिणी पर दया करके कहा कि शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। मैंने छिप कर तुम्हारी कृष्णप्रेम-विषयक सारी बाते सुन ली हैं।

रुक्मिणी ने नारद से अपने को कृष्ण का बनाने के लिए योजना नारद को बताई—

गिरिनन्दिनी पूजए हम जाएब बाहर देव अगार।
तखने गहथुकर देव गदाधर तेहि पथ अछि सुविचार॥

नारद ने कहा—मैं जाकर कृष्ण को अभी लाता हूँ।

षष्ठ अक मे शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने के लिए धूमधाम से राजधानी मे आ पहुँचता है। रुक्मिणी इस समाचार से कृष्ण के लिए रोने लगती हैं। नारद ने आकर रुक्मिणी को बताया कि गरुड से कृष्ण यहाँ आ रहे हैं। उन्होने आपको आश्वस्त करने के लिए मुझे भेजा है। मै पुन जाकर कृष्ण को आपके विषय मे बताऊँगा।

नगर-बधुओ ने कृष्ण को देखकर गाया—

इन्दु विनिन्दक अोरे हरिमुख देखि तहि हरल सकल दुख।
बहुत जनम तपें अोरे पाओल लोचन जुगल जुडाओल॥ इत्यादि

कृष्ण ने वियोगिनी रुक्मिणी की वार्ता सुनकर नारद से सन्देश भिजवाया।

यथा विपीदत्यनिश मृगाक्षी तथैव तच्छेतुमवेहि मामपि।
भूपालवर्गान् परिभूय तस्कर हृत्वा ग्रहीष्यामि बलात् प्रभाते॥

दूसरे दिन सबेरे पूजा करने के लिए अम्बिका-गृह मे जाने वाली रुक्मिणी की रक्षा के लिए जरासन्ध आदि राजा नियुक्त हुए। इधर सभी यादव भी सन्नद्ध हुए।

गौरी की पूजा रुक्मिणी ने विधिवत् की। अन्त मे वर माँगा—

भवतु मे धवो माधव।

नारद ने कृष्ण को बताया कि देवी की पूजा करके रुक्मिणी मठ से बाहर निकल कर जाने वाली है। आप गरुडरथ पर विराजमान हो। कृष्ण ने गरुड से कहा कि अब मैं रुक्मिणी का हरण करने चला। आप तो ऐसा करें कि जरासन्धादि मेरे पास न फटकें। गरुड ने कहा कि डैनो से ऐसा तूफान प्रवर्तित करूँगा कि जरासन्ध कुछ कर न सकेगा।

कृष्ण ने रुक्मिणी को देखा तो विमुग्ध हो गये। अन्य लोग भी रुक्मिणी को देखने के लिए आये। भीड लग गई। नारद ने सकेत दिया कि अभी हरण का ठीक समय है। कृष्ण ने झपटकर रुक्मिणी का हाथ पकडा और उसे रथ पर बिठा लिया और ले भगे। यह सब जानकर रुक्मी ने प्रतिज्ञा की—

अनानीय स्वसार स्वामहत्वा केशव युधि।
भवद्भिरवधानव्य न प्रवेक्ष्यामि कुण्डिनम्॥६१३

कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका जा पहुँचे। इधर बलराम ने जरासन्धादि से घोर युद्ध किया। सबको हराकर बलदेव भी यादवों के साथ अपनी नगरी की ओर चलते बने। द्वारिका नगरी में विवाह-महोत्सव सम्पन्न हुआ। स्त्रियाँ गाती हैं—

अति सुदिवस भेल आजे, रुकुमिनि पानि गहथि व्रजराजे। इत्यादि

नारद ने आशीर्वाद दिया। देवताओं ने नीराजना की। फिर कृष्ण कौतुकागार में जा पहुँचे। वहाँ रुक्मिणी के साथ बैठे। रुक्मिणी की सखियों ने गाया—

माधव सुनिअ निवेदन बानी, सुमुखि मिलल तोहि गुनमय जानी। इत्यादि

सभी चलते बने। रुक्मिणी ने रोते हुए कोपपूर्वक कृष्ण से कहा—आप मेरे भाई को तत्काल बन्धन-विमुक्त करें। कृष्ण की आज्ञा से रुक्मी विरूप करके छोड़ दिया गया। तबसे लज्जित होकर वह भोज नगर में रहने लगा।

शिल्प

रंगपीठ पर एकही अङ्क में अनेक स्थलों की घटनायें दिखाई गई हैं। चतुर्थ अङ्क में विदर्भ-नरेश कौशिक और कृष्ण का संवाद कौशिक के स्थान विदर्भ नगर में बताया गया है। इसके पश्चात् दूसरा घटना-स्थल इसी अङ्क में है कुण्डिनपुर में रंगभूमि का, जहाँ जरासन्धादि हैं। इन दोनों कथाशों के बीच में रंगनिर्देश है—'इति निष्क्रम्य रङ्गभूमिं गत' अर्थात् प्रतिहारी एकही अंक में दो स्थानों पर अविलम्ब वर्तमान होता है।

छठें अङ्क में कुण्डिनपुर और द्वारका दोनों स्थलों की घटनायें दृश्य हैं। पात्र आँख बन्द करते हैं और कुण्डिनपुर से द्वारका जा पहुँचते हैं।

आकाशयान

पंचम अंक में रंगमंच पर आकाशयान से नारद को उतारने का दृश्य दिखाया गया है। इसके पूर्व रंगनिर्देश है—

ततः प्रविशति आकाशयानेन नारदः।

जब वे जाने लगते हैं तो कहा जाता है—

इत्याकाशमार्गेण निष्क्रान्तः।

विष्कम्भक

रुक्मिणी-परिणय के पंचम अंक के पूर्व जो विष्कम्भक है, वह वस्तुतः विष्कम्भक नहीं है, अपितु लघु अंक के सदृश है अथवा पंचम अंक का भाग है। इसमें नारद और भीष्मक पात्र हैं। इतने ऊँचे पात्र इस अर्थोपक्षेपक में नहीं होने चाहिए। जो घटनायें प्रेक्षकों को ज्ञेय हैं, वे नारद भीष्मक को सुनाते हैं। नारद ने कृष्ण का सन्देश इस विष्कम्भक में सुनाया है। ऐसी स्थिति में भीष्मक का विष्कम्भक में पात्र होना उचित नहीं है। यह अंक में होना चाहिए।

छायातत्त्व

गरुड पक्षी को मानवोचित वाणी से युक्त बताया गया है। कृष्ण उनसे कहते हैं—'मद्वचनात् समुद्रसकाशात् स्थलमुपगृह्य भवना पक्षवातेन जलं प्रक्षिप्य विश्वकर्माणमाहूय तत्र सकलयादवगणसन्निवेशयोग्या द्वारवती नाम्नी नगरी द्रुत विधेया।'

गरुड प्रणाम करके उत्तर देते हैं—

देवदेव, सर्वमेतन्मया सम्पादनीयम्।

पंचम अंक मे नारद ने आकारगोपन किया है। उन्हीं से सुदक्षिणा कहती है कि आप नारद हैं। वे कहते हैं—कुत्रास्ति नारद ' सुदक्षिणा कहती है कि आप नारद हैं। नारद कहते हैं—मुझ वृद्ध तपस्वी को नारद कहा तो डण्डे से तुम्हें मारूँगा। अन्त मे उन्होंने स्वीकार किया—

स एवाह मुनि'। कथय प्रयोजनम्॥

प्राय निवेदन पद्यात्मक हैं और मैथिली भाषा मे हैं। निवेदन के विषय हैं रङ्गमञ्च पर आने वाले का वर्णन तथा पात्रो द्वारा आत्मवर्णन। उच्च कोटि के पात्र संस्कृत भाषा मे ही पद्यात्मक आवेदन भी प्राय करते हैं, अपवाद रूप से मैथिली मे।

संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग इतिवृत्तात्मक सवादो मे पात्रों की पदमर्यादा के अनुसार यथायोग्य है। जहाँ तक मैथिली बोलने का सम्बन्ध है, उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के सभी पात्र मैथिली के योग्य प्रकरणो को मैथिली मे ही पद्यात्मक विधि से कहते हैं। राजा भी कहीं-कहीं मैथिली मे पद्यो द्वारा सन्देश देता है।

रुक्मिणी-परिचय कीर्तनिया नाटक है। देवताओ का कीर्तन तो गीतात्मक है ही। अन्यत्र भी जहाँ किसी का भावुकतापूर्ण भावावेश का वर्णन है, वह भी प्रायश मैथिली भाषा मे गीतात्मक है। देवी साश्रुपात सप्रश्रय गीत से राजा से रुक्मिणी के विवाह के लिए आवेदन करती है—

भूपति अवहुँ करिय सुविचार।
दुहिता परिनए तोरित कराबिअ आनिअ घटक कुमार॥ध्रुवम्

एकोक्ति

नाटक मे मैथिली भाषात्मक एकोक्तियो की प्रचुरता है। जब कोई नया पात्र रङ्ग पीठ पर आता है, वह प्राय अपना परिचय एकोक्ति द्वारा मैथिली-गीत मे देता है। द्वितीय अक मे ब्राह्मण की ऐसी एकोक्ति है।

के नहि जानए हमे द्विजराज सतत करिअ हम भूपनिकाज।
धवलतिलक उपवीत विसाल धौत वसन युगकर जयमाल॥ इत्यादि

द्वितीय अक मे कलहवर्धन और हरिवल्लभ नामक घटक एकोक्ति द्वारा अपने परिचय के साथ मन्तव्य भी व्यक्त करते हैं।

प्रथम अङ्क मे रुक्मिणी के लिए चिन्तित उसकी माँ की एकोक्ति हृदय-द्रावक है।

निवेदन

कवि अपनी ओर से नेपथ्य मे खड़े किसी पाठक के द्वारा प्रेक्षकों को सुनाने के लिए बहुश निवेदनो का प्रयोग करता है। रुक्मी अपने पिता की कृष्ण के समर्थन मे बातें सुनकर जब चलने लगता है तो निवेदन सुनाया जाता है—

जनक वचन सुनि कोपित भए मने घटकराज लए साथ।
काढि विभूषन सकल मनोहर चाप बाण गहि हाथ।।
रुसि चलल कुमार हमे नहि सुनबे रहन विचार।। इत्यादि

निवेदन के द्वारा नायक का वर्णन करने और परिचय देने की रीति इस नाटक मे मिलती है। तृतीय अक के आरम्भ मे कृष्ण के विषय मे निवेदन-गीत है।

हेर इत हर भव भीति कलेश। अति सुखदायक हरि-परवेश।। इत्यादि

आगे चलकर बलदेव का ऐसा ही वर्णन निवेदन रूप मे है—

रिपुबल-तिमिर-विनाश-दिनेश। रोहिणि नन्दन देल परवेश।। इत्यादि

फिर उग्रसेन का वर्णन निवेदन-गीति के रूप मे है।

निवेदन रूप मे प्रयाण-गीत तृतीय अक मे है।

कुण्डिन-नगर चलल गोविन्द। सूनि स्वयवर अतिसानन्द।। इत्यादि

किरतनिया नाटक

किरतनिया नाटक मे मैथिली के गीत हैं। मैथिली गीतो को छोड कर इस कोटि के नाटक की परम्परा सस्कृत मे भी मिलती है। सदाशिव का प्रमुदित-गोविन्द इसी शती का सात अङ्को का ऐसा ही नाटक है। कीर्तन की विशेषता से किरतनिया नाम पड़ा है। इसके समकक्ष आसाम मे अकिया नाट और दक्षिण भारत मे यक्षगान पड़ते है।

शैली

छोटे-छोटे वाक्य, पूर्व परिचित शब्दावली और स्वाभाविकता से मण्डित रुक्मिणी-परिणय की भाषा सर्वथा नाट्योचित है। नाटक मे मैथिली-भाषा एक प्राकृत के रूप मे उच्च स्थानीय प्रतीत होती है। इसकी मैथिली-भाषा को हम प्राकृत ही कह सकते हैं। यह आधुनिक प्रान्तीय भाषाओ की भाँति उर्दू-फारसी-अरबी आदि के शब्दो से सर्वथा विनिर्मुक्त है।

मैथिली-भाषा के अतिरिक्त इसमे सस्कृत और शौरसेनी प्राकृत मे सवाद पात्रानुकूल रखा गया है। स्त्रिया शौरसेनी बोलती हैं। प्राकृत भाषा भी सर्वथा

रमणीय है। गद्यात्मक संवादो में मैथिली का प्रयोग कहीं नहीं मिलता।

कहीं-कहीं स्त्री-पात्र भी संस्कृत बोलते हैं। यथा रुक्मिणी—

जलार्द्रया किं नलिनीदलेन किम् । श्रीखण्डकर्पूररजश्चयेन किम् ॥
आकर्णेन केन विलोकितं वा । हृद्रोगशान्तिः करमार्जनेन किम् ॥

अन्यत्र भी पद्यात्मक संवादों से नाटक संवलित है। कुछ गीत संस्कृत में भी हैं। यथा रुक्मिणी द्वारा गाया हुआ—

किम्मे ददातु गिरिजा परिवाञ्छितार्थं ।
किं वा हरत्वखिलजीवहर कृतान्त ।
प्राणस्तथाप्युभयथा भवितावसान
दु खरय मेऽद्य सखि तेन हृदि प्रहर्ष ॥५५

छठें अङ्क के अन्त में कतिपय मैथिली गीतों की संस्कृत श्लोकों में छाया भी दी गई है।



रामपाणिवाद का नाट्यसाहित्य

अठारहवी शती के सर्वोच्च नाटककार रामपाणिवाद की प्रतिभा का विनास केरल मे हुआ। उनके द्वारा विरचित अनेक रूपक मिलते हैं। पाणिवाद और पाणिघ उस प्रदेश के ब्राह्मणो की उपाधियाँ हैं। पाणि (हाथ) से ताल देकर बजाये जानेवाले वाद्य मृदङ्ग के वादक पाणिघ लोग अभिनय म योग देते थे। इस वाद्य का नाम मिलावु है। इनके मामा राघव पाणिघ भी उच्चकोटि के विद्वान् थे। राम का जन्म १७०७ ई० मे मगलग्राम मे हुआ था।

राम ने नारायण भट्ट से काव्य-रचना की शिक्षा प्राप्त की थी, जैसा उन्होने कहा है—

श्रीनारायणभट्टपाद — करुणापीयूषगण्डूपणाद्।
इष्टा पुष्टिमुपैति यस्य कविताकल्पद्रुबीजाकुर ॥[1]

सीताराघव की प्रस्तावना से

रामपाणिवाद की सक्षिप्त जीवनी बालभारत के एक तालयन्त्र पर इस प्रकार मिलती है—

योऽसौ विष्णुविलासनाम कृतवान् काव्य तथा प्राकृत
काव्य कसवधाभिध गुणयुत तद्राघवीय तथा।
पश्चात्तद्वदुपानिरुद्धमपर वीथीद्वय नाटक
सीताराघवमेव च प्रदिशतान्मह्य गुरुर्मंगलम् ॥
प्राकृतवृत्ति तद्वत् श्रीकृष्णविलासकाव्यविवृति च।
कृतवान्यानपि य स जयेच्छ्रीरामपाणिवाद कवि ॥
तालप्रस्तारशास्त्र च सद्वृत्तो वृत्तवार्तिकम्।
तद्वत् प्रहसन किंचित् कृतवान् राममातुल ॥
क्षोणीदेवक्षितीशो निजमिव तनय देवनारायणाख्य
बाल्ये य लालयित्वा विधिवदथ पर शास्त्रमध्यापयित्वा ॥
सरक्षन् यत्कुटुम्ब द्रविणवितरणात् कामित साधयित्वा ,
स्नेहेनापालयन्मे दिनमनु स गुरु श्रेयसे वोभवीतु ॥

१७६५ ई० मे रामन् नम्बियार ने ये पद्य लिखे। लेखक रामपाणिवाद का भतीजा था। इसके अनुसार अम्पल्लपुल के राजा देवनारायण ने बचपन से ही

१ उस प्रदेश मे कई नारायण हो चुके है। The Contribution of Keral to Sankrit Literature मे कु जुनी राजा ने बताया है कि राम के गुरु १७ वी शती के मेलपुत्तूर के नारायण भट्ट नही थे। वृक्कारमनु कुत्त के नारायण भट्ट भी इनसे भिन्न थे। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है।

रामपाणिवाद का पुत्रवत् पोषण किया और उनके कुटुम्ब का सरक्षण किया। १७५० ई० मे अम्पल्लपुल ट्रावनकोर मे मिला दिया गया और रामपाणिवाद ट्रावनकोर चले गये, जहाँ मार्तण्ड वर्मा राजा था।

रचनायें

कवि ने मदनकेतु-चरित-प्रहसन, चन्द्रिका और लीलावती वीथी और सीताराघव नाटक लिखे। राघवीय महाकाव्य में २७ सर्गों मे रामकथा लिखी गई है, जिसमे उत्तरकाण्ड की कथा नही है। इसमे १५७२ पद्य हैं। राम ने स्वय इसकी बाल-पाठ्या नामक टीका लिखी। राम का दूसरा महाकाव्य विष्णुविलास है। इसमे आठ सर्गों मे भागवत की कथा है। इसकी विष्णुप्रिया नाटक टीका सम्भवत राम की ही लिखी हुई है। राम के लिखे भागवतचम्पू मे मुचकुन्द-मोक्ष तक भागवत कथा मिलती है। इसमे सात स्तवक मिलते है। इसमे प्राकृत के कतिपय गद्य भी हैं। राम पाणिवाद के स्तोत्रो मे मुकुन्दशतक नामक दो रचनायें हैं। इनमे से एक मे १०७ और दूसरे मे १०१ पद्य हैं। प्रत्येक पद्य दशको मे विभक्त है। अम्बरनदीश-स्तोत्र मे कृष्ण की प्रशसा मे ११२ पद्य और सूर्याष्टक मे ८ पद्य हैं। इनके शिवशतक में शिव की प्रशसा है।

उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त रामपाणिवाद की अनेक ग्रन्थो पर टीकायें मिलती हैं और उनके रचे शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इनके वृत्तवार्तिक मे छन्दो का और तालप्रस्तार मे अनुष्टुप् छन्द के विविध रूपो का सोदाहरण लक्षण है। प्राकृत मे उनके काव्य कसवध और उषानिरुद्ध हैं। उन्होंने वररुचि के प्राकृत-प्रकाश की व्याख्या लिखी है। इनके अतिरिक्त अनेक और रचनायें राम द्वारा प्रणीत बताई जाती हैं, जो तत्त्वानुशीलन से दूसरो की प्रतीत होती हैं।

सीताराघव

सीता-राघव का प्रथम अभिनय वञ्चि मार्तण्ड की पण्डित परिषद् के प्रीत्यर्थ हुआ था। पद्मनाभ के मन्दिर मे १७५६ ई० मे मुरजप के उत्सव मे इसके द्वारा मनोरजन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था।

कथावस्तु

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम से जनकपुर गये। विश्वामित्र ने नारायण नामक दूत भेजकर दशरथ की एतदर्थ अनुमति ले ली थी। विश्वामित्र के आश्रम मे राम ने मारीच को तो उड़ा कर दूर फेंक दिया था। बचा था उसके साथ आया हुआ उसका शिष्य मायावसु। मायावसु को यथेष्ट रूप प्रदान कराने वाली एक अगूठी मारीच से मिल गई थी, जिससे उसने दशरथ का रूप बना कर मिथिला मे प्रवेश किया। उसका उद्देश्य था सीता से राम के विवाह मे विघ्न डालना।

विश्वामित्र ने जनक से कहा कि राम के द्वारा शिवधनुष को प्रत्यचित करने का

आयोजन करें। जनक इसके लिए बहुत उत्साहित नही थे, क्योंकि उन्होने देख लिया था कि किस प्रकार बडे-बडे वीर असमर्थ हो चुके हैं। फिर भी विश्वामित्र की प्रेरणा से जब वे कुछ तैयार हुए तो नेपथ्य से सुनाई पडा—

भो भो साहसिकस्य शासनगिरा गाधेस्तनूजन्मन-
श्चण्डीशस्य शरासनं नृपशिशो मास्म ग्रहीर्दुग्रहम्।
सरोद्धु प्रियनन्दनो दशरथो राजा तवोपक्रम
साकेतात् स सुमन्त्र-यन्तृकरथारूढ स्वयं प्रस्थित ॥ २१३

विश्वामित्र ने क्रोधपूर्वक कहा कि जिसने मुझे साहसिक कहा, उसे अपनी तप की अग्नि मे जलाता हूँ। उन्हे जनक ने रोका—

कोपस्य कोऽयं क्रम।

मायावसु और उसका सेवक करम्भक क्रमश दशरथ और सुमन्त्र का वेश धारण करके मिथिला मे आ पहुँचे।

मायावी दशरथ ने कहा कि सारी दुनिया से झगडा मोल लेना होगा, यदि धनुष प्रत्यञ्चित करके राम सीता से विवाह करते हैं। उसकी इन बातो से काना-फूसी होने लगी कि यह तो दशरथ जैसा नही लगता। फिर उस मायावी ने विश्वामित्र से कहा कि आप मेरे लडको को यज्ञ समाप्त होने पर भी क्यो नही लौटा देते? आपने कोई दूत भी नहीं भेजा। तब तो विश्वामित्र का सन्देह दृढ हो गया। उन्होंने कहा कि क्या आप को उन्माद हो गया है? मैंने चारायण जो भेजा था और आपने स्वीकृति दी थी। मायावी दशरथ ने कहा कि मारीच शिष्य मायावसु ने कुछ गडबडी की होगी। वही कहीं चारायण बन कर अयोध्या तो नहीं आया था? यही स्पष्ट करने के लिए मैंने आपसे ऐसा पूछ लिया। मायावी ने जनक के पूछने पर फिर जब अपनी कमजोरी बताई कि राम धनुष के पास नहीं फटकेंगे तो जनक ने विश्वामित्र से कहा—

महीतल-कलाभुजोऽप्यहह नैवमाचक्षते।
जगत्त्रितयशासिनो मनुकुलोद्भवा किं पुन ॥

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

अयं न हि महीपतिर्दशरथस्तथा विग्रहे।
निकामनिरवग्रहो नियतमेष नक्तंचर ॥२३६

प्रतिहारी ने आकर बताया कि शतानन्द के साथ महाराज दशरथ सपरिवार पधारे हैं। तब तो जनक ने मायावी दशरथ से पूछा कि यह क्या बात है। उसने कहा कि बहुत से नकली दशरथ आदि घूमा करते हैं। उनसे हानि की सम्भावना है। हमे तो राम को लेकर शीघ्र अयोध्या की ओर चल देना है। तब तक शतानन्द आ पहुँचे। उन्होने देखा कि यहाँ तो दशरथ पहले से बैठे हैं। उन्होंने पूछा कि राम ने क्या धनुष को प्रत्यञ्चित किया? जनक ने कहा कि ये

दशरथ रोक रहे हैं। शतानन्द ने कहा कि यह कैसा दशरथ ? यह तो राक्षस है। राम शीघ्र धनुष को प्रत्यञ्चित करें। मायावी दशरथ ने फिर रोका तो जनक ने उससे कहा—

धिङ्मूर्खे निशाचरेषु कस्यादर ।

पश्चात् नेपथ्य से सुनाई पडा कि राम ने धनुष तोड दिया। मायावसु और क्रम्भक परशुराम की सहायता लेने के लिए भग गये।

तृतीय अक के पहले के विष्कम्भक के अनुसार रामादि चार भाइयो का विवाह सीतादि चार बहनो से हो गया। परशुराम मायावसु की योजनानुसार तृतीय अक मे आ पहुँचते हैं। परशुराम राम के द्वारा शान्त किये गये। कन्याओ की विदाई के पूर्व जनक, शतानन्द आदि ने उन्हे पतिगृहाचार की सीख दी। वही राम के यौवराज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। चौथे दिन अभिषेक होने वाला था।

चतुर्थ अक के पहले विष्कम्भक मे शूर्पणखा के द्वारा नियोजित अयोमुखी ने इस अवसर पर मिथिला मे राक्षसो का अच्छा काम बनाया। वह मन्थरा का रूप बनाकर कैकेयी के पैर पर गिर कर बोली—

मुग्धे दुग्धमितिभ्रमेण गरल पातु प्रवृत्तासि किं।
रामो यद्यभिषेचित स भरतो राज्यादपि भ्रशित ॥४२

उसके बारबार कहने पर कैकेयी ने दशरथ से दो वर मागे—१४ वर्ष का राम का वनवास और भरत का यौवराज्य। फिर राम वन चले। अयोमुखी ने इस प्रकार दो कामो का बीज डाला—

१ रावण द्वारा सीता का ग्रहण।
२ शूर्पणखा द्वारा राम की पति रूप मे प्राप्ति।

चतुर्थ अक मे रावण सीता के लिए मदनातङ्कित है। उसका मनोरजन करने के लिए प्रहस्त हाथ मे चित्रपट लिए आया। गन्धर्व भी वीणा लिए उसका मनोरजन करने आया। वह वस्तुत इन्द्र का गुप्तचर था। अन्त मे नाक-कटाई हुई शूर्पणखा नेपथ्य से अपनी कथा सुनाती है। रावण मारीच को सन्देश भेजता है कि अब तुम्हे क्या करना है।

मारीच-मरण, सीताहरण, वालि-मरण, हनुमान् का सीता को ढूँढने जाना आदि हो जाने के पश्चात् मायावसु राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को मार डालने के उपक्रम मे चारण का रूप बनाकर पहुँचता है। वह बतलाता है कि मैं यशाह्लद नामक चारण हूँ। मुझे इन्द्र ने भेजा है कि मेरे पुत्र वाली को मारकर राम ने जो अपराध किया है, उसका बदला लेने के लिए तुम वालि पुत्र अगद को शीघ्र ले आओ। मैं दक्षिण-समुद्र-तट पर घूमते-घूमते पहुँचा। वहाँ अगद ने मुझसे बताया है कि सम्पाति सखा गया, यह कहकर कि आजकल मे हनुमान और सीता को लाता ही

हूँ। पर वह रोते हुए लौटा कि रावण ने जब देखा कि सीता प्रसन्न नही हो रही है तो उसने तलवार से उसका सिर काट डाला। इसे सुनकर रामादि मूर्छित हो गये। उनके सचेत होने पर मायावसु ने बताया कि हनुमान् ने जब तोड-फोड की तो इन्द्रजित् ने उसे मार डाला। अगद भी उनकी यह स्थिति देखकर प्रायोपवेश द्वारा मर मिटे।

पश्चात् दधिमुख नामक वानर ने आकर बताया कि सफल हनुमान् लका को जला कर लौट आये। तब तो मायावसु सीधे भाग चला।

छठें अक मे राम के सेतुवन्ध-निर्माण करके लका पर आक्रमण करने की कथा है। लका मे युद्ध होन लगा मायावसु मारा गया। कुम्भकर्ण लडाई करने लगा और वह दीर्घनिद्रा प्राप्त कराया गया। मेघनाद का वध हुआ। फिर रावण लडने के लिए आया। इन्द्र ने सारथि-सहित अपना रथ राम की सहायता के लिए भेजा। उसकी मृत्यु के अनन्तर युद्ध समाप्त हुआ।

सप्तम अक मे राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण और सीतादि विमान पर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते है। वे चित्रकूट के ऊपर से होते हुए प्रयाग मे भरद्वाज-आश्रम पहुँचे। महर्षि के आश्रम वाट मे वटवृक्ष हैं—

शारीशुकायतनकोटरसम्प्ररूढ-श्यामाकशालिफलशालिवटद्रुमाणि।
गोगर्भिणी-परितदर्भकुशाङ्कुराणि विश्राम्लिमाश्रमपदानि हशोर्दिशन्ति॥७ १६

सभी ऋषि-महर्षि, जनक, राजा, महाराजादि राम के राज्याभिषेक के लिए अयोध्या पहुँचे थे। विमान अयोध्या पहुँचा। वहाँ मातायें मिलीं—

प्रस्नुतस्तनपयोनयनाम्भो—निर्झरस्नपितशुष्कशरीरा।
सम्भ्रमस्खलितपादसरोजा मातर स्वयममूरभियान्ति॥७ २५

राम सिंहासन पर बैठे। भरत ने लाकर उनकी पादुकायें उन्हे पहनाई।

रामपाणिवाद ने उत्तर रामचरित, बालरामायण, जानकी-परिणय, आश्चर्य-चूडामणि, अनर्घराघव आदि रामपरक नाटको से पर्याप्त सकेत लेकर इस नाटक की कथा को रूपित किया है।

नाट्यशिल्प

प्रधान पात्रो के रगमञ्च पर आने की सूचना प्रावेशिकी ध्रुवा गीति के द्वारा दी गई है। इस नाटक मे अर्थोपक्षेक का एक रूप चित्रपट के माध्यम से अङ्कभाग मे प्रस्तुत किया गया है। प्रहस्त ने सीता-विषयक जो चित्रपट दिया, उसके विषय मे रावण के देखते समय बताता है—

सुत-विप्रयोगजरुजोज्झितस्तनु पितुरौर्ध्वदैहिक विधेरनन्तरम्।
गुरुशासनात् प्रतिगृहीतपादुको भरत प्रयाति किलैष नगर प्रतिष्ठते॥४ ३१

रगमच के एक ओर कोई पात्र कुछ अन्य प्रसग मे कह-सुन रहा है और दूसरे

भाग मे साथ ही कतिपय अन्य पात्र किसी दूसरे प्रसग मे बातचीत करते हैं।[1]

छायातत्त्व

सीताराघव मे छायातत्त्व का बाहुल्य है। इसमे मायावसु और करम्भक क्रमश दशरथ और सुमन्त्र बनकर मिथिला मे आते हैं। राम भी उनसे मिलकर उन्हे दशरथ ही समझते हैं। इसके पश्चात् अयोमुखी मन्थरा बनकर कैकेयी से राम का वनवास मँगवाती है।

छायात्मक प्रवृत्तियो का एक अन्य स्वरूप चतुर्थ अङ्क मे प्रहस्त के द्वारा रावण को सीता का चित्रपट अर्पित करने से आरम्भ होता है। यथा, चित्र देखकर रावण की उक्ति है—

द्वन्द्व सुन्दरि पुण्डरीकमुकुलस्पर्धालु वक्षोजयो—
र्गाढ वक्षसि निक्षिप स्मरकृतातङ्कस्य लङ्कापते।
किं चोदञ्चय चञ्चलाक्षि वदन चुम्बामि बिम्बाधर
किं वा नाभिदधासि कामितमितो यद्देवि दासोऽस्मि ते ॥४२५

यह देखकर प्रहस्त कहता है—

अहो प्रतिकृतावप्यस्या सत्यजानकीबुद्ध्येव प्रलपति देव।
रावण —हेमवति, कुत कारणादिय प्रतिवचनेनापि न सम्भावयति माम्।
प्रहस्त —महाराज, प्रणयकुपितयानया भवितव्यम्।
रावण चित्र-जानकी के पैर पर गिरना चाहता है।

एकोक्ति

चतुर्थ अक मे रगमच के एक ओर प्रवेश करता हुआ गन्धर्व अपनी एकोक्ति मे वीणा को दयिता बताता है और अपनी यात्रा की भूमिका देता है। पचम अक मे रगमच के एक ओर प्रवेश करता हुआ मायावसु एकोक्ति द्वारा अपनी योजना बताता है और वस्तुस्थिति का परिचय देता है।

आकाशवाणी

शास्त्रीय अर्थोपक्षेपको के बाहर है आकाशवाणी का प्रयोग। पचम अक मे आकाशे है—

मिहिरान्ववायजलराशिचन्द्रमा भरताग्रजो यदवधीन् मृधाङ्गणे।
तदिद चतुर्दशसहस्र-मस्मिन खरनेतृक बलमवेहि रक्षसाम्॥ ५.३

दूसरी आकाशवाणी है रावण के द्वारा सीताहरण और सीता को खोजने के लिए राम के पर्यटन के विषय मे। स्वभावत इतनी बडी राम-कथा अङ्को मे दृश्य नही हो सकती है। इस कथा के एक बडे भाग को कवि ने शास्त्रीय अर्थोपक्षेपको के द्वारा और अङ्कभाग मे कही चित्रपट की कथा द्वारा, कहीं गन्धर्वादि पात्रों के घटनात्मक

१ पचम अक में एक ओर मायावसु और दूसरी ओर रामादि ऐसा करते हैं।

आत्मपरिचय के द्वारा और कही आकाशवाणी से बताया है। इस उद्देश्य से स्वगत और एकोक्तियो का भी प्रयोग अङ्कभाग मे किया गया है।

चरित्र-कलना

जहाँ अन्य कवियो ने रामचरित के औदात्त्य को अक्षुण्ण रखने के लिए वालि-वध प्रकरण को छोड दिया या उसमे हेर-फेर किया, वहाँ प्रस्तुत नाटक मे राम ने स्पष्ट कहा है कि छद्मवृत्ति से बालि को मैंने मारा। यथा,

सोऽपि त्रैलोक्यहेलाविजयपटुमहाविक्रम शक्रसूनु—
नीतो धिक् छद्मवृत्त्या निधनमघरितस्फारवीरव्रतेन ॥ ५ १६

राम को सत्यवादी बनाये रखना कवि का व्रत है।

शैली

रामपाणिवाद की शैली वैदर्भी रीति-मण्डित सरल और सुबोध है। नीचे के पद्य को लें। यह गद्य की भाँति परिचेय है—

रविकुलभुवा राजन्याना विदेहमहीश्वरै सह।
समुचित सम्वन्धोऽय यदि प्रतिपत्स्यते॥
यदि च भगवान् विश्वामित्र स्वय प्रतिभूरपि।
प्रियतरमिद श्रेय कस्मै जनाय न रोचते ॥१ १६

लोकोक्ति

रामपाणिवाद ने कही-कही लोक्तियो का प्रयोग किया है। यथा—

१ न खलु माधवीलता उद्भिन्नमात्रे पल्लवानि दर्शयनि।
२ महानद्यो महोदधि वर्जयित्वा क्वान्यत्र विश्राम्यन्ति।
३ असदृशपुरुषाधिगम शल्य नु एकमामरणम्।

जीवन-दर्शन

रामपाणिवाद वक्रपथ से भी जीवन को उदात्त बनाने वाले ठोस तत्वो को बताते चलते हैं। प्रथम अक मे यह चर्चा आई है कि विश्वामित्र स्वय क्यो नही यज्ञ की रक्षा कर लेते ? उत्तर है—

शेषेण भारयनि चक्रधरो धरित्री मेघेन वर्षयति सोऽपि पतिर्नदीनाम्।
नैशतम शमयति ज्वलनेन भास्वान् नानन्तर स्वविभव प्रथयन्ति सत ॥१ ९

लीलावती वीथी

लीलावती वीथी सस्कृत मे दुर्लभ कोटि की रचना है। चन्द्रिका-वीथी मे इस कोटि की रचना का लक्षण मिलता है—

पात्रद्वय-प्रयोज्या भाणवदेकाङ्कसन्धिश्च।
आकाश-भाषितवती कृत्रिममितिवृत्तमाश्रिता वीथी॥

पहले के नाट्य-शास्त्रकारो ने प्रायश कहा है कि वीथी मे एक या दो पात्र

होते हैं। जब एक पात्र होगा तो आकाश-भाषित की विशेषता होगी, किन्तु राम की वीथी में दो ही पात्र होंगे—एक नहीं और आकाशभाषित भी विशेष रूप से होगा ही।

लीलावती का अभिनय महाराज देवनारायण के आश्रित विद्वानों के आज्ञानुसार हुआ।[1] उनका आदेश ही इस वीथी की विशेषताओं को बताता है। यथा,

अभिनवपदबन्ध-बन्धुरामभिनय कामपि वीथिकामुदाराम्।
सुचिरमधुराणि या बिभर्ति प्रचुरविचित्रतराणि चेष्टितानि॥ प्रस्तावना से

रामपाणिवाद ने वीथी लिखकर सूत्रधार को दी थी, जैसा सूत्रधार ने कहा है—

लीलावती वीथी मदधीनैव

प्राचीन काल में नृत्तोत्सव का आँखों देखा रूप सूत्रधार के मुख से परिचेय है।

गम्भीरनीरदमृदङ्गरवाभिराम भृङ्गाङ्गना मधुरगीतकलासनाथम्।
विद्युत्प्रदीपकलिते विपिनान्तरङ्गे नृत्तोत्सवं वितनुते ननु नीलकण्ठ॥ ६

अर्थात् नृत्तोत्सव में रात्रि के समय प्रकाश का प्रबन्ध किया जाता था।

रूपक की कथा की भूमिका नटी अपने परिवार विशेषतः अपनी कथा की समान-कथा की चर्चा करके प्रस्तुत करने की रीति मध्ययुग में विशेष प्रचलित हुई। इस वीथी में यही रीति सूत्रधार ने नियोजित की है। नटी की बहिन की कथा रङ्ग-लक्ष्मी चम्पा के संगीतमल्ल से प्रेम करती थी, पर संगीतमल्ल की पत्नी विरोध करती थी। बस, ऐसी ही कथा वीथी की है।

कथावस्तु

राजसभा में कामामात्य विदूषक लीलावती से वीरपाल राजा का विवाह करा देना चाहते थे, पर राजा की पहली पत्नी कलावती ऐसा नहीं होने देना चाहती थी। उसने सिद्धिमती नामक योगीश्वरी को इसमें सहायता करने के लिए तैयार कर लिया।

लीलावती वीरपाल के वियोग में सन्तप्त है। वीरपाल लीलावती के वियोग में जैसे-तैसे जी रहा है। लीलावती का परिचय है कि कर्णाट-राज ने शत्रुओं के द्वारा अपनी कन्या के अपहरण के भय से उसे राजमहिषी कलावती के संरक्षण में रख दिया है। कलावती ने जान लिया है कि उसके लाख प्रयास करने पर भी राजा का लीलावती के प्रति प्रेम बढ़ रहा है। वह अपने भाग्य पर रो रही है। राजा दक्षिण नायक है। वह नहीं चाहता है कि कलावती का हृदय टूटे। राजा चिन्तित है।

लीलावती ने अपने ताटङ्क पर राजा के लिए सन्देशपत्र लिखकर अपनी स्थिति बताने का उपक्रम विदूषक के माध्यम से किया, किन्तु वह ताटङ्क विदूषक ने गिरा दिया, जिसे महारानी की दासी कन्दलिका ने पाकर पढ़ा और फिर उसे विदूषक को दे दिया।

[1] विद्वानों की सभा को राजपरिषद् कहते थे।

योजनानुसार महारानी कलावती को साँप न काटा और वह मूर्छित हो गई। राजा भी मूर्छित हो गया। तभी इधर विदूषक सँपेरा बन कर आया, उधर रानी स्वस्थ हो गई। यह सब रङ्गपीठ के बाहर रहने वाली योगीश्वरी का इन्द्रजाल था।

राजा को अन्त पुर मे पहुँचने पर सँपेरा (विदूषक) मिलता है। राजा कृतज्ञ है। रानी सँपेरे को पारितोषिक देने के लिए बुलाती है। उसने कुछ लिया नही। वह साँपो को खिलाने-पिलाने के बहाने चलता बना।

रानी ने राजा को कन्दलिका द्वारा बताया हुआ ताटक-श्लोक सुनाया। अन्त मे रात मे सोते समय रानी ने राजा की खोज करवाई। रानी ने सपना सुनाया कि मुझे स्वप्न मे शिव का आदेश हुआ है—

वत्से कलावति सरीसृपदूषिता त्वमद्याहितुण्डिकमिषेण मयैव गुप्ता।
तत्पारितोषिकमतो वितराश्रुत मे येनायमृद्धिमुपयास्यति वीरपाल ॥५१

पारितोषिक था कि लीलावती को वीरपाल ग्रहण कर ले। रानी ने उसका विवाह राजा से कर दिया। जब नवदम्पती को मङ्गल देवताराधन के लिए जाना था, तभी लीलावती को ताम्राक्ष नामक असुर ने मायाकर्म से हर लिया। राजा ने उसे परास्त करके लीलावती को पुन प्राप्त किया। विदूषक ने राजा को बता दिया कि यह सब योगीश्वरी ने किया है।

नाट्यशिल्प

वीथी मे विष्कम्भक नही होना चाहिए। लीलावती मे इस नियम का उल्लघन किया गया है।

नायक की एकोक्ति विष्कम्भक के पश्चात पाँच पद्यो की है, जिसमे वह नायिका-विरह-सन्ताप की घोषणा कर रहा है। यथा—

वेणीलतादरतिरोहितमुद्वहन्ती वक्त्र पयोद परिवीतमिवेन्दुबिम्बम्।
आवेपमान-तनुरास्थितलज्जया मे लीलावती वलितलोलतरैरपाङ्गै ॥१६

आकाशभाषित से अधिक महत्त्व की हैं चूलिकायें, जिनके द्वारा कोई पात्र रगपीठ पर आये बिना ही रगपीठ के पात्र से बात करता है। ऐसा करने से रगपीठ पर पात्र सख्या तो नही बढती, किंतु वस्तुत एक अधिक पात्र का सयोजन तो हो ही जाता है।

रूपक साहित्य मे अर्थोपक्षेपक मे पत्र-सन्देश की गणना नही है, किन्तु उसका प्रयोग बहुश है। इस वीथी मे पात्रो की सख्या कम करने के लिए पत्र का उपयोग किया गया है। पत्र है राजा के नाम नायिका लीलावती का—

मम नयनयोरातिथ्य ते यदा मधुरस्मित
वदनकमल दैवादासीत् तदा प्रभृति स्मर।
कुसुमविशिखैर्दीन चेतो दुनोति दिने दिने
भुवनशरण भूत्वा श्रीमन् किमेवमुपेक्षसे ॥

पात्रों की सख्या कम रखने के लिए एक ही पात्र आवश्यकतानुसार अपने को बदल लेता है। विदूषक सँपेरा बनकर रानी को साँप काटने पर उपचार करता है। उसका नाम तब मद्रसिद्धि है।

पात्रों की सख्या दो से अधिक न हो—इसके लिए रानी कलावती की बातो को आकाशभाषित से सुनाना कुछ अडबड सा लगता है। ऐसा लगता है कि रगपीठ से थोडी दूर पर कोई दूसरा रगमच है, जहाँ पात्र बातें करते हैं, जिसे पहले रगमच के पात्र सुनते हैं। यथा कलावती का यह कहना—

कन्दलिके, त श्लोक श्रावय महाराजम्, यस्य चिरविचारितोऽप्यस्मा भिर्न ज्ञातोऽभिधेय ।

यहाँ कलावती रगमच पर नही है, पर राजा उसकी बात का उत्तर देता है—

देवि के वय भवदनाकलिते बुद्धि प्रवर्तयितुम् ।

सारा उपक्रम कुछ गर्भाङ्क के आदर्श पर निर्मित सा लगता है।

कपट-नाटक

विदूषक से केलिमाला इस नाटक के कपटात्मक सविधान की चर्चा करती है। यथा,

क पुनस्ते कपटनाटक न जानाति ।

इस कपट-नाटक के लिए अन्य इस कोटि की रचनाओ के समान ही इन्द्रजाल-विद्या का उपयोग किया गया है।

कन्दलिका भी विदूषक से कहती है—

सर्व मया ज्ञात युष्माक कपटनाटकम्

विदूषक स्वय सँपेरा बन कर रगमञ्च पर आता है। यह कपट है। ऐसी कापटिक प्रवृत्तियाँ नाटक मे छायातत्त्व का विस्तार करती हैं।

कवि ने इसके कपट-वृत्त को इन्द्रजाल-प्रबन्ध नाम दिया है।

लोकोक्ति

वीथी मे लोकोक्तियो का समीचीन प्रयोग हुआ है। यथा

१ अमथ्यमान दधि न नवनीत मुञ्चति ।
२ दुग्धसागरमुज्झित्वा कुतो लक्ष्मीरुद्गच्छति ।
३ क शुक्तिभजनभयेन मुक्तावलि मुञ्चति ।
४ को दुग्धस्नानपानसमये आरनाल चिन्तयति ।
५ तदेव बीज स एवाकुर ।
६ कुत पकजिनी विना राजहसस्य निर्वृत्ति ।
७ आमन्त्रित को मिष्टभोजन परित्यजति ।
८ गोष्ठी सा विरला न यत्र घटते सत्ता पुरोभागिना
नारी सा खलु दुर्लभा न कुसृतिश्लिष्ट यदीय मन ।
दुष्प्राप च तदम्बु तीरजरजोराजिर्न यद् दूषयेद्
दुस्साध च सुख तदाविलयते दु खानुवृत्तिर्न यत् ।।५८

शैली

रामपाणिवाद अन्यापदेशात्मक मनोरम पद्यों का उपयोग सन्देश देने के लिए करते हैं। यथा,

राजहंस मम पंकजिन्या दर्शयित्वा क्षणमात्मविलासम्।
साम्प्रतं पुनर्धनोत्कलिका मे केवलं करोषि युक्तमिदं ते ॥२७

व्यंग्य अर्थ की महिमा अविरल है। यथा,

तच्चेतो ननु कृतमश्मना विधात्रा ॥२८
पिब प्रियासन्देशपीयूषम्।

कहीं-कहीं रसपेशलता की दृष्टि से विशेष महत्त्व के गीत सन्निवेशित हैं। यथा, नायिका का सन्देश है—

सजलजलधरा वोज्ज्वला विद्युतो वा
सुरभिलमधुवाही केतकी मारुतो वा।
विरहिमथनक्रीडाकर्मठो मन्मथो वा
सुभग तव कृते मा नाम शेषं करोति ॥३६

पदयोजना रसानुकूल है। शृंगारित राजा को रसान्तरित वृत्ति देने के लिए नेपथ्य से सुनाया जाता है—

उत्तानीकृतभोगमण्डलचलज्जिह्वाकरालाकृति ॥३७

मदनकेतु-चरित

मदनकेतु-चरित की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक सूत्रधार था, कवि नहीं। सूत्रधार का कथन है—

रामपाणिवादेन विरचितं मदनकेतु चरितं नाम प्रहसनमस्मद्वशे वर्तते इति।

इसका अभिप्राय है कि सूत्रधार को रामपाणिवाद ने अभिनय के लिए इस प्रहसन की प्रति दी थी।

इसका प्रथम अभिनय भगवान् रङ्गनाथ के यात्रोत्सव में उपस्थित परिषद् के मनोविनोद के लिए हुआ था।

सूत्रधार ने इसकी प्रस्तावना में एक शाश्वत लोकधारणा की चर्चा की है कि समसामयिक साहित्य उत्कर्ष-विहीन होता है।

कथावस्तु

किसी भिक्षु की प्रेयसी अनङ्ग-लेखा नामक वाराङ्गना अभी तक उसे दुष्प्राप्य थी। उसे सिंहल के राजा मदनकेतु की पत्नी शृङ्गारमंजरी का सन्देश मिला कि आप से रानी जी को कुछ काम है। उसने कहा कि सवेरे का काम समाप्त करके रानी जी के पास पहुँचता ही हूँ।

कलिंग को जीतकर मदनकेतु ने वहाँ मदन वर्मा को युवराज बनाया था। मदन वर्मा को चिन्ता थी कि मेरे देश का राजा मदनकेतु और भिक्षु विष्णुत्रात गणिकाओं

के चक्कर में पड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति मे राज्य की जनता का चारित्रिक ह्रास होगा। इस स्थिति को रोकने के लिए मदनवर्मा ने शिवदास नामक कापालिक योगी को मदनकेतु के पास भेजा कि उनका मनोरजन इनकी अद्भुत सिद्धियो से होगा। महाभैरव-रूपधारी शिवदास महराज के सामने आया। राजा की इच्छा जानकर उसने कहा कि उस प्रेयसी गणिका को आपके लिए प्रस्तुत करता हूँ।

तभी भिक्षु महारानी से मिलने आ गया। वह राजा को छोडकर चलती बनी। राजा ने शिवदास से कहा कि द्रविड देश मे चन्द्रलेखा नामक गणिका है। उसके प्रत्यङ्ग-ध्यान मे विलीन मुझसे अब जिया नही जाता।

इधर कोई कुट्टिनी किसी योगी को घसीटते हुए राजद्वार पर लाई कि इसने बलात् मेरी कन्या का प्रघर्षण किया है। कुट्टिनी ने भिक्षु की हड्डी पसली तोड दी थी, फिर भी वह मन ही मन उत्फुल्ल था कि—

गाढ पीडितवान् हठादपि यतो वक्षोरुहौ वक्षसा।
सोऽहं मुग्धदृशो विवृत्तमपि तद्वक्त्राब्जमाघ्रातवान् ॥२८

उसने कुट्टिनी से कहा कि यह सब मैंने रानी की इच्छा से किया है। रानी ने कहा है कि राजा अनङ्गलेखा से प्रेम करता है। राजा को उससे सगमित कराना है। आप तो जैसे हो, उसे यहाँ लाइये।

राजा ने खडे होकर भिक्षु का अभिवादन किया। राजा और शिवदास ने भिक्षु को मुक्त कराया। कुट्टिनी ने कहा कि आज इन्होंने मेरी कन्या को उसके न चाहने पर भी अकेले मे ले जाकर बलात् नङ्गी करके ' अधिक क्या कहे। भिक्षु ने कहा—

धिक्कुट्टिनी यदियमेव हि ता निरुन्धे।

अर्थात् यह उसे रोक रही है।

राजा न कहा कि ये शिवदास महाभैरव अभी सब कुछ ठीक करते हैं। शिवदास ने ध्यान-शक्ति से चन्द्रलेखा को खीच कर सबके समक्ष वही प्रस्तुत कर दिया। वह आते ही राजा के प्रति सस्पृह हो गई। राजा ने उसे देखकर सौन्दर्याभिभूत होकर शिवदास से कहा कि तुम भी आँखें खोलो, इसे देख लो। शिवदास ने चन्द्रलेखा से कहा कि ये महाराज सपने मे ही तुम्हारे मुखकमल की गन्ध लेते हैं। चन्द्रलेखा ने कहा—महाराज, आपकी जय हो।

इस बीच शृङ्गारमजरी देवी आ गयी। वे खम्भे की आड मे खडी होकर उनकी बातें सुनने लगीं। राजा ने चन्द्रलेखा से कहा—

द्वन्द्व सुन्दरि पुण्डरीकमुकुलस्पर्धानु वक्षोजयो-
र्गाढं वक्षसि निक्षिप द्रुततरं कन्दर्पदग्धस्य मे।
किंचोदञ्चय चचलाक्षि वदन चुम्बामि बिम्बाधर
बिब्बोकद्रविणेन केवलमहं क्रीतोऽस्मि दासोऽस्मि ते ॥३०

चन्द्रलेखा ने कहा कि यह तो मेरे पति द्वारा आपका उपचार देवीजी के प्रति अन्याय होगा। राजा ने स्पष्ट कहा—

देवीविरोधमनुशक्य नवागसगसौख्य चिराभिलपित कथमुज्जिहामि।
व्यालीभयेन मलयाचलकन्दरस्थ को वा पटीरतरुसारमपाकरोति ॥३१

शिवदास ने राजा का समर्थन किया—

केतकीकुसुमगन्धसम्भृता माधुरीजितसुधा मधूलिकाम्।
कण्टकावनिपरिक्षतोऽपि सन् नैव मुञ्चति कृती मधुव्रत ॥३२

राजा ने चन्द्रलेखा की ठुड्डी पकड़ कर उठाई ही थी कि रानी सामने आ टपकी और बोली—बहुत ठीक! राजा झिझके तो उन्होंने कहा कि आप सर्पिणी के भय से चन्दनरस को या कण्टक के भय से केतकी मधूलिका को क्यों छोड़ें?

शिवदास ने रानी के कान में कहा कि मैं आप ही का काम कर रहा हूँ। आप देखते जायँ। महाराज को सदा के लिए आपकी मुट्ठी में करने के लिए आया हूँ। आप तो ऐसा करें और कान में कुछ कह दिया।

रानी ने चन्द्रलेखा को गले लगाया और राजा से कहा कि यह मेरी बहिन है। इससे ऐसा व्यवहार करें कि यह अपने बन्धुजनों का स्मरण करती हुई न भूले। मैं इसके लिए अलकार लाने जा रही हूँ। चन्द्रलेखा राजभोग के लिए सजने-धजने चली गई।

भिक्षु ने देखा कि शिवदास ने किस प्रकार राजा का काम बना दिया। उसने अपने लिए भी प्रस्ताव रखा कि कब तक मेरी कामना पूरी होगी। शिवदास ने काम के सम्बन्ध में मन ही मन कहा—

कुल वा शील वा विनयमथवा शौर्यमपि वा
प्रभुत्व वा न त्व गणयसि कदाचित्तनुभृताम् ॥३७

शिवदास ने भिक्षु से कहा—यह लो। यह कह कर मदिरा चषक को भरा। भिक्षु ने कहा—हम परिव्राजकों को इसे नहीं लेना चाहिए। शिवदास ने कहा कि अनगलेखा के पीये हुए मद्य को तो पी लेते हो और अब यहाँ बन रहे हो। भिक्षु ने पी ली।

राजा ने समग्र जनपद के लिए घोषणा कराई—

ये नाम केचन तपोनिधयो वसन्ति समारधर्ममपहाय मदीयराज्ये।
ते सर्व एव मदिरामनिश पिबन्तो मच्छासनेन गणिकासदन भजन्तु ॥४०

राजा के लिए चन्द्रलेखा की बुलाहट आई कि नीलागृह में पधारें।

शिवदास ने राजा को प्रोत्साहित किया—

यूथिका भजतु बालरसाल कौमुदी श्रयतु शीतमयूखम्
त्वामसौ सरसकेलिधुरीणा लोकनाथमधिगच्छतु तन्वी ॥४४

शिवदास को ध्यान था कि भिक्षु को भी अनगलेखा मिलनी चाहिए। उसने दूत

मे उसे बुलवाया। अनगलेखा ने इच्छा न होने पर भी शिवदास के कहने पर भिक्षु पर प्रेमदृष्टि मारी। भिक्षु ने कहा कि मैं तो तेरे पैर चाँपूँगा—

मन्द मन्दमिमौ करेण यदहं सवाहयेयं तव ॥५१

अनगलेखा ने कहा—दुष्ट वटुक, मुझे छूना मत। तब तो भिक्षु उसको गाली देने लगा। शिवदास ने गणिका से कहा कि इन्हे मनाओ। भिक्षु उसके ऐसा करने पर प्रसन्न हुआ। तभी राजा ने शिवदास को बुलवाया और वह अनगलेखा को चले जाने के लिए कह कर राजा के पास चलता बना। जाते-जाते भिक्षु को उपदेश देता गया—

क्वासौ ससारसिन्धोस्सुतरणतरणिर्योगिनामाश्रमस्ते
क्वामूर्निर्वाणचन्द्रोदयबहुलनिशा केवल वेशनार्य ।
कल्याण कामयेथा परिचिनु च सभामुज्ज्वला सज्जनाना
तीर्थस्नायी दुराशाकलुषितमधुना मानस वा पुनीहि ॥६०

भिक्षु ने मन ही मन कहा कि इस शिवदास ने तो मुझे धोखा दिया। वह अपने लिए अत्यावश्यक मध्याह्न स्नान करने के लिए चलता बना।

इस बीच साप ने अनगलेखा को काटा। भिक्षु बिचारा रोते हुए शिवदास की शरण मे आया कि उसे बचा लें, नहीं तो मैं मरा।

शिवदास दौड़ पड़े। थोडी देर मे अनङ्गलेखा के शव मे अपने को अभिनिविष्ट करके वे आ गये। उन्होने स्वगत कहा—मैंने अनगलेखा का प्राण किसी मरे जन्तु मे डाल दिया है। फिर माया सर्प से उसे कटवा कर, उसके शरीर को निष्प्राण करके, अपने शरीर को लताकुञ्ज मे रखकर, पर-पुरप्रवेश विद्या द्वारा अनगलेखा के शरीर मे प्रवेश करके अब इस भिक्षु को पाठ पढाऊँगा। इस प्रकार मदनवर्मा की इच्छा पूरी होगी। शिवदास के अनुसार मदनवर्मा अपने राज्य के विनाश की आशका से दुःखी है।[1]

शिवदासाभिनिविष्ट अनगलेखा ने कहा कि भिक्षुजी का एक बार अनादर करने से मैं गलती जा रही हूँ। अब मैंने उनका प्रेम पाने के लिए अभिसार किया है। उसने राजपरिवार के समक्ष भिक्षु से कहा—

प्रणयपराधीनाया मयि भगवन् किं त्वमुदासीन ।
करोषि न कण्ठाविष्ट मृणालमृदुलाभ्या बाहुभ्याम् ॥ ७८

भिक्षु कुछ घबराने सा लगा। तब कपट-अनगलेखा ने कहा—

प्रेक्षस्व भिक्षुक प्रशिथिलवस्त्र कुकुमच्छुरणवर्धितशोभम्।
मोहन केवल कामिजनाना सज्जित तव कृते कुचयुग्मम्।

देवी ने चन्द्रलेखा से फुसफुसाया 'पिता नहीं अब क्या सुनना बाकी रह गया है? मदनकेतु बिगड कर बोला कि मुलटे, भग जा। अनङ्गलेखा बोली कि जाने

१ यस्त्विदानी निजराज्यविनाश शङ्कमानो दु खमास्ते।

साथ इतना भोग सम्भाव्य है, उनसे क्या कोई कठोर वात कही जाती है। वह मानने वाली थोडे थी। उसन भिक्षु का हाथ पकड लिया। उसने हाथ झिडक कर अलग किया। उसने मुंह मोड लिया। अनगलेखा ने कहा—

दरशिथिलदुकूल मेखलाशिंजितं-
मदननिगमशाखा वाढमुद्घोषयन्तम्।
मम जघनमनघ प्रेक्षमाण समक्ष
न खलु विपहते कामी कोऽपि कालप्रतीक्षाम् ॥६०

रानी तो यह वेहयाई सुन कर चलती बनी। राजा ने अनगलेखा को डाँट लगाई—मैं तो तुम्हे तलवार के घाट उतारता हूँ। अनङ्गलेखा ने उत्तर दिया—

यस्मिन् खलु निपतन्ति मे घनस्नेहगाढादर
मृणालवलयोपमा उपपनीना बाहुलता।
तस्मिन् किल गलान्तरे परुपरोपयोपाविल
कृपाणलतिकापि ते पततु नाम का मे गति ॥

राजा और भिक्षु दोनो वाराङ्गना माग से कुछ विचलित से होने लगे। तब अनगलेखा ने कहा—

एकस्याङ्के निहितवपुरप्यन्यमालोकयन्ती
चित्तेलोवल्लीचलन-कलया चापर प्रीणयन्ती।
नम्रालापैर— मृनमधुरैरन्यमाह्लादयन्ती
नारीनाम्ना जयति हि जगन्मोहिनी कापि शक्ति ॥६७

भिक्षु ऊब गया इन बातो को सुन कर। उसने कहा कि मेरी वारागना मुझे निर्वाण प्रदान करायेगी। मदनकेतु भी वाराङ्गनाओ के बीभत्स रूप को देख चुका था। अनङ्गलेखा बने शिवदास न मन ही मन प्रसन्नता व्यक्त की। उसके स्वगत के अनुसार—

यस्य राज्ये प्रमाद्यन्ति विद्वासोऽपि कदाचन।
तस्य राज्ञो जनपदो विनश्यति पदे पदे ॥६६

अनगलेखा ने पूछा कि आप से परित्यक्त मैं अब कहाँ जाऊँ? भिक्षु ने कहा—

गच्छ, गच्छ। यथेच्छ गच्छ।

फिर तो अनगलेखा बना हुआ शिवदास चलता बना।

इसी समय शिवदास का शव लेकर जम्मक आ पहुँचा। उसे देख कर राजा तो बारबार मूर्छित होने लगा। भिक्षु भी आन था। अनगलेखा ने भिक्षु से पूछा कि शिवदास न तुम्हारा क्या उपकार किया था। भिक्षु ने कहा—

येन मे चपलकर्मकर्मठ मानम ममनुकृष्य कापथात्।
ग्रस्ततन्द्रमपुनर्निवर्तने वर्त्मनि द्रढयता न किंकृतम् ॥१०४

राजा ने कहा कि जब हमारा सबसे बडा अभ्युदयकर्ता ही नहीं रहा तो मैं भी नही रहूँगा। उसका निणय है—

तदेवभूनस्याप्यस्य परिष्वङ्गमहोत्सवमनुभूय पश्चादेनमनुनरामि।

यह कह कर वह शिवदास के शव का आलिंगन करने लगा। फिर तो शिवदास के शरीर में प्राण का सचार होने लगा। सभी चकित हुए। शिवदास ने कहा—आप सभी शान्त हो। मैं सारी बातें बताता हूँ।

इस समय मरी अनङ्गलेखा को लिए उसकी कुट्टिनी वहाँ आई। उसने कहा कि महाराज आपके महल से लौटती हुई ही यह कन्या मरी। अब इसे बचाइये। शिवदास ने इसे पुन वही प्राण दे दिया, जो किसी जन्तु में पहले रख दिया था। उसके पुनर्जीवित होने पर रानी ने उससे कहा कि तुम थोड़ी देर पहले स्त्रीजन के लिए अयोग्य क्या-क्या बक चुकी हो? उसने कहा कि आप क्या बेसिर-पैर की बातें कहती हैं? मैं तो इतना ही जानती हूँ कि शिवदास से मिलकर जो लौटी तो सो गई और अभी जगी हूँ।

अन्त में शिवदास ने बताया कि वैसे मैं ही अनगलेखा बना था। भिक्षु शिवदास के चरणों में गिर पड़ा। शिवदास ने फिर बताया कि यह सब मैंने मदनवर्मा की योजना के अनुसार किया है। राजा ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपनी नवीन जीवन-दिशा का सकेत किया—

आयुर्नाम क्षणा दिनानि कतिचित् सौदामिनीचचल
नामी मान्ति मनोरथास्त्रिभुवने सिद्धेष्वनास्थापरा।
धन्यस्तावदय क्षण महदयं नार्घे प्रसन्नोनरं
सलापामृतपाननिर्वृतधिया लोकेन यो नीयते ॥११३

भिक्षु ने व्रत लिया—

पुण्यानां पुलिनस्थलानि सरिता जुष्टानि वैखानसै
कान्ताराण्युपशान्तसत्त्वकलहप्रस्तावरम्याणि च।
नित्याविनिवेदशास्त्रमुखरब्रह्माणि देवालया—
न्यासेवेमहि जीवशेषनिगलच्छेदाय मोक्षाय च ॥ ११४

लोकविज्ञान

इस प्रहसन में लोकविज्ञान के अनेक तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया गया है। यथा,

स्त्रीमलस्योपनापस्य स्त्रिय एव प्रतिक्रिया।
वह्निदग्धं वह्निमन्त्र्येन्ताम्यनन्ति मनीषिणः ॥ ९५

दूसरा सत्य है—

अपि विज्ञन्ति कृशानुशिखावलीमपि निहन्ति महानिलतामुग्रम्।
अपि गर निगिरन्ति न वामिषु प्रसभमन्ति मनो वनिताजना ॥९६

तीसरा सत्य है—

अपत्यविपत्तिसम्भवशोको दुर्निवार समारिति।

नाट्यशिल्प

भावुकता का उद्रेक एकोक्ति मे विशेष होता है। यह तथ्य राम को ज्ञात है। उन्होने प्रहसन का आरम्भ भिक्षु की एकोक्ति से किया है कि नीद आ जाओ कि प्रेयसी का चुम्बन प्राप्त हो।

इस प्रहसन का आरम्भ विष्कम्भक से होता है। यह नियम विरुद्ध है। नियमानुसार तो नाटक, प्रकरण और नाटिका मे ही प्रवेशक और विष्कम्भ होने चाहिए।

चरितनायको का चारित्रिक विकास सस्कृत के विरल रूपको मे ही बन पडा है। मदनकेतु-चरित प्रहसन इस दृष्टि से एक अनूठी कृति है। इसमे राजा मदनकेतु और विष्णुमित्र भिक्षु के व्यक्तित्व का सवथा नवीन दिशा मे मोड बताया गया है।

इस कृति पर भगवदज्जुकीय-प्रहसन का प्रभाव परिलक्षित होता है। मदनकेतु-चरित केवल अभिनय की दृष्टि से प्रहसन है। काव्य की दृष्टि से इसका अनुपम महत्त्व मानव-चरित्र के विकास की दिशा मे है।[1] यह भर्तृहरि के शतको की भाँति शृङ्गारित जीवन-धारा से उबार कर पाठक को वैराग्य की निमल धारा मे अवगाहन कराते हुए उसे मोक्ष-प्रवण बनाता है। सस्कृत मे ऐसे प्रहसनो का अभाव-सा है। इस कृति का विशेष महत्त्व यह बताने मे है कि लकीर का फकीर बन कर ही कवि नाटक नही लिखते थे अपितु वे तो कलाकृति का निर्माण करते थे, भले उसके लिए आलोचको को किसी नई काव्यकोटि की कल्पना करनी पडे।

चन्द्रिका-वीथी

चन्द्रिका-वीथी का प्रथम अभिनय वीरराय महाराज की आज्ञा से परक्रोड नामक श्वेतारण्य क्षेत्र मे शिव के माधकृष्ण चतुर्दशी के महोत्सव मे महाब्राह्मणो की परिषद् मे हुआ था।[2] सूत्रधार ने इसकी विशेषतायें प्रस्तावना मे दी हैं—

पात्रद्वयप्रयोज्या भाणवदेकाङ्किका द्विसन्धिश्च।
आकाशभाषितवती कृत्रिममितिवृत्तमाश्रिता वीथी ॥

नायक को सोते समय कोई सु दरी अपना स्वरूप दिखाकर एक अगूठी देकर अन्तर्धान हो गई। विदूषक ने देखा कि उसकी हालत खराब है। उससे पूछने पर विदूषक को बताया—

कामप्यहं कमलपत्रविशालनेत्रां नेत्राभिरामरमणीयमुखेन्दुबिम्बाम्।
बिम्बाधरामधरिताप्सरसाङ्कलक्ष्म्या लक्ष्म्यासनाभिमिवलक्षितवान् कुमारीम्॥

१ स्वय राम पाणिवाद को सन्देह था कि इसे कैसे प्रहसन-कोटि मे रखा जाय। उन्होने पुस्तक के अत मे कहा है—

प्रहसन-लक्षणलेशैः स्पृष्टं चेन् प्रहसनाभिधा लभताम्।
नो चेन् पुनरन्यदिदं विनोदनं पाणिवादस्य ॥

२ इसका प्रकाशन Bulletin of the Ramavarma Research Institute NO 3, त्रिचूर से १९३८ ई० मे हुआ है।

नायक मदनातङ्क से विप्लुत था। वह विदूषक के साथ पुष्पाकर नामक बालोद्यान में जा पहुँचा। वहाँ वासन्तिक सौरभ के बीच सहकार वृक्ष से भूर्जपत्र पर लिखित एक सन्देश राजा को मिला, जिसमें बार बार कामो, कामो, कामो, कामो लिखा था। राजा ने समझ लिया कि पद्य के प्रत्येक चरण के आदि और अन्त के ही अक्षर लिखे गये हैं और तब तो पद्य है—

कामो तुज्झ कए वामो काम दहइ म इमो।
कालवह्निसमो सोमो का गई मम दे एमो॥

विदूषक ने समझ लिया कि वही वह कुमारी है, जिसने सोते समय नायक को अँगूठी दी थी और अब पत्र द्वारा प्रेम प्रकट कर रही है। वह कहीं पेड़ पर छिपी है। नायक ने कहा कि मानव कन्या पेड़ पर नहीं चढ़ती। अवश्य ही यह दिव्य कन्या है। तभी नपथ्य से सुनाई पड़ा—

अङ्गक्ष्मापालभूमीवलय— कुमुदिनीचन्द्रमाश्चन्द्रसेन
ब्रूते त्वाभीप्टमर्थं कमपि मणिरथो नाम विद्याधरस्त्वाम्।
मत्पुत्री त्वदगुणौघैरपहृतहृदया चन्द्रिका नाम कन्या
त्वत्पत्नी कल्पितेय मनुजवर मया त्वामनुप्रेपितेति ॥१७

दोनों सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। नायक के परितोष के लिए आकाशवाणी हुई—

इयमुपयाति चन्द्रिका त्वामसमशराशुगपीडितापि बाला।
अपरिचितमनुष्यलोकवृत्ता पथि पथि विन्दति विह्वला विलम्बम्॥

नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि चण्ड नामक राक्षसराज आती हुई नायिका चन्द्रिका को ले उड़ा।

नायक ने राक्षस से युद्ध करने के लिए धनुष लिया तो आकाशवाणी हुई—

विरम बाणविमोचनतो रिपुरस खलु बाणपथादनिवर्तते॥

नायक बेहोश होकर गिर पड़ा। 'मैं तो मरा' यह कह कर रोने लगा। विदूषक ने रोते-रोते समझाया कि लम्बोदर की स्तुति करें। वे सब काम बना देंगे। राजा ने हाथ जोड़कर बालगणेश की स्तुति की—

पितुरुगम्भोरङ्के वलिवसतिमौले शशभृत
कलामस्माहृत्य प्रसभमथ शुण्डारलतया।
द्वितीय वक्त्रे स्वे विरचयति यो दन्तमुकुल
स बालो हेरम्बो दिशतु मदभीप्टार्थमखिलम् ॥२६

गणेश ने अपने दाँत से राक्षस को विदीर्ण किया और नायिका नायक को दे दी। शुभ मुहूर्त की घोषणा हुई और उनका विवाह हो गया। अन्त में कवि लोक रुचि का ध्यान रखते हुए कामशास्त्रानुरूप प्रवचन करता है—

वृत्ते तत्र विवाहकर्मणि गुरुव्रीडावनम्राननाः—
माहूयाथ कथञ्चिदङ्कफलकमारोपयिष्यामि ताम्।
किं चाश्लिष्य बलाद् विवर्तितमपि व्याचुम्ब्य बिम्बाधर
भद्राञ्चाङ्गुलिमुद्रिका कररुहे तस्या निधास्याम्यहम्॥३२

वीथी के अन्त मे इसके शेष लक्षणो की चर्चा की गई है।

वीथीयं चन्द्रिका नाम रामपाणिप-निर्मिता।
एकाहचरितैकाङ्का नाट्येऽष्टमलक्षणा॥३४

प्रश्न है कि क्या यह वीथी आकाशभाषितवती है? आकाशभाषित पारिभाषिक शब्द है। उसकी परिभाषा के अनुसार इसमे एक भी आकाशभाषित नही है। ऐसा लगता है कि इसमे चूलिका या नेपथ्य-कोटि की उक्तियो को आकाशभाषित कहा गया है। लीलावतीवीथी मे भी यही दिखाई देता है।

अनादि मिश्र का नाट्यसाहित्य

अनादि मिश्र उत्कल के भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता शतञ्जीव और पितामह मुकुन्द थे। शतञ्जीव विरचित मुदितमाधव गीतकाव्य था। अनादि के पूर्वज दिवाकर कवि चन्द्रराय ने अनेक ग्रन्थो की रचना की थी, जिनमे से उनके नाटक प्रभावती की ख्याति थी। दिवाकर विजयनगर के राजाओ के द्वारा समादृत थे।

अनादि उत्कल मे खण्डपारा के राजा नारायण मगपार के द्वारा सम्मानित थे। नारायण का शासनकाल १७वी और १८वी शती मे था। इनकी इच्छापूर्ति के लिए मणिमाला नाटिका की रचना कवि ने की थी।

अनादि ने मणिमाला की रचना १७५० ई० के लगभग की होगी।[1] उनके शिष्य सदाशिव ने इसकी प्रतिलिपि १७७६ ई० मे की थी। कवि ने राससगोष्ठी नामक दूसरे रूपक का प्रणयन चन्द्रमण्डिका-चन्द्रिका-वशी राजा वनमाली जगद्देव के आदेशानुसार किया था।[2] इनके अतिरिक्त अनादिमिश्र ने केलि-कल्लोलिनी काव्य की रचना की, जिसमे राधा और कृष्ण के प्रेमाचार की काव्यात्मक चर्चा है। अनादि मिश्र शिष्यो का अध्यापन भी करते थे।

मणिमाला

मणिमाला नाटिका मे चार अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय उज्जयिनी नगरी की दुर्गा देवी के शरत् समय के दर्शनार्थियो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

उज्जयिनी मे दुर्गोत्सव देखने के लिए अद्भुतमूर्ति नाम का सर्वज्ञ वैतालिक योगीन्द्र आया हुआ था। उसकी मैत्री उज्जयिनी-नरेश शृङ्गार-शृङ्ग से हो गई। योगीन्द्र की योजना से पुष्करद्वीप की राजकन्या मणिमाला और शृङ्गारशृङ्ग ने परस्पर स्वप्न मे दर्शन किया। राजा ने भूर्जवल्कल पर अपना चित्र बनाया और विदूषक चित्रचरित्र के द्वारा उसे नायिका के पास भेजा। चित्रचरित्र ने जाने के पहिले दुर्गा की स्तुति की। दुर्गा ने उसे प्रसादरूप मे माला दी और कहा कि तुम्हारी सहायता करने के लिए मैं भी तुम्हारे आगे-आगे चलती हूँ।

नायक अपने विदूषक कदम्ब के साथ दुर्गामन्दिर के प्राङ्गण मे पहुँचा। वहाँ शरत की सुषमा का रूप दोनो ने अभिरुचि से अवलोकन किया। राजा इधर मणिमाला के ध्यान मे निमग्न था, तभी उधर से पतिप्रिया नामक महादेवी आ निकली।

---

१ इस अप्रकाशित नाटिका की हस्तलिखित प्रति उडीसा के राजकीय सग्रहालय मे है।

२ इस अप्रकाशित रचना की हस्तलिखित प्रति उडीसा के राजकीय सग्रहालय मे है।

उसने नायक से परिहास करते हुए कहा कि मणिमाला आ गई। नायक तो मदान्ध था ही। उसने महादेवी को मणिमाला सम्बोधित करके उसका आलिंगन किया। फिर तो महादेवी को प्रसन्न करने के लिए नायक को मणिमाला-विषयक अपना स्वप्न बताना पड़ा—

> स्वप्ने कामपि कामिनीमकलय सत्यैव साभदहो
> नाम्ना मा मणिमालिका गुणगणैर्भव्यैर्भवत्या स्वसा।
> तल्लाभेन भवेन्मम त्रिजगती-साम्राज्यलक्ष्मीरिति
> प्राप्तु ता प्रयते यतेन मनसा दुर्गाप्रसादादहम्॥

तब तो महादेवी ने कहा कि दुर्गा की पूजा सामग्री मैं ही सजाऊँगी। आप मणिमाला से विवाह करके सम्राट् बनें। नायक के दुर्गा पूजा करने के पहले दुर्गा का प्रसाद लेकर पुरोहित का भेजा हुआ तान्त्रिक-चूडामणि विशुद्धबुद्धि पारिजात-माला लेकर आया। राजा ने उसे धारण किया और फिर दुर्गा की पूजा की। पुरोहित ने दुर्गा का आशीर्वाद बताया कि नायक की कामना पूर्ण होगी।

सुसिद्धि-साधनी अपनी कनकनौका से पुष्करद्वीप जा पहुँची। वहाँ उसने देखा कि मणिमाला का विवाह गन्धवराज से करने की सज्जा हो रही है। सारे नगर में महोत्सवोचित कौतुको से लोगो का साश्चर्य मनोरञ्जन हो रहा है। मणिमाला नगर-देवता की पूजा करके लौट आई है। वह अकेले मे रत्नकुट्टिम के पास खडी हो जाती है। वह अपनी सखी को बताती है कि वात के कारण मेरे अङ्ग-अङ्ग मे चक्कर-सा उत्पन्न हो रहा है। सखी ने समझ लिया कि इसे पर-पुरुष-समागमजनित विकार है। स्वप्न मे परपुरुष-समागम की बात मणिमाला ने सखी से कही कि सपने म ही मदोत्कट पति ने मेरे साथ क्रीडा की। उसके पश्चात् प्रभात होने पर उसकी नींद टूट गई। तब तो सखी की इच्छानुसार मणिमाला न स्वप्न-दृष्ट प्रणयी का चित्र अपने अशुक से निकाल कर दिखाया। उसन चित्र को अपना प्राणरक्षक बताया।

सखी ने चित्र देखकर बताया कि ठीक ऐसा ही चित्र एक शिल्पिनी न मुझे *दिखाया है। उसे शिमिरद्वार में निवेशित कर दिया है। मणिमाला ने उस शिल्पिनी* से मिलने की इच्छा प्रकट की और थोड़ी देर मे सखी उसे लेकर आई। उसन चित्रगत नायक का परिचय दिया कि ये जम्बूद्वीप मे उज्जयिनी के राजा है। नायिका मणिमाला ने पहचाना कि ये ही मेरे हृदय-वल्लभ हैं। सखी ने सारी कथा बताई कि अद्भुतमूर्ति नामक योगीन्द्र की महिमा से नायक न भी आपको स्वप्न म देखा है। उसने अपनी पहचान के लिए यह चित्र भेजा है। वह शिल्पिनी वस्तुत चित्रचरित्र है। उस नायक का नर्म-सचिव, जिसे स्त्रीरूप मे छिपाकर आपके अन्त पुर म मिलन की सुविधा मैंने प्रस्तुत की है। इससे उत्साहित होकर चित्रचरित्र ने नायिका को नायक का वाचिक सन्देश सुनाया—

> सृजतु शिखिना सौम्य शम्पा सुरान् मदयेत् सुधा
> कुमुदविपिन मोहरफीन करोतु च कौमुदी।

मम पुनरसावासीत् स्वप्ने यदक्षिरसायन
त्रिभुवनमनःकारागारो तदेव जनुःफलम् ॥२७८

नायिका प्रसन्न तो हुई, पर दूसरे ही गन्धर्वराज से विवाह होने की सज्जा हो रही थी, फिर क्या हो? उसी समय सुसिद्धिसाधिनी ने आकर कहा—मेरी कनक-नौका से आप तत्काल उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करें। चित्रचरित्र के कहने पर वे सभी कनक-नौका से उड़ जाने का उपक्रम करते हैं।

नारद मुनि आकर सूचना देते हैं कि ब्रह्मा की इच्छा से शृङ्गारशृङ्ग द्वन्द्व-दष्ट्र राक्षस को मारने में समर्थ होंगे, जब मणिमाला उनकी सहचरी बनेगी।

नायक विदूषक के साथ अपने काम-सन्तप्त होने की गाथा गा रहा था। उस समय सुसिद्धि-साधिनी और घर्घरघण्टा नामक योगिनियाँ उनसे मिलकर शीघ्र ही मणिमाला के आने का सवाद देती हैं। शीघ्र ही कनकनौका से चित्रचरित्र के साथ मणिमाला और उसकी सखी वहीं आ जाती हैं। फिर तो मणिमाला वरण-माला शृंगारशृङ्ग को पहना देती है। सभी मणिमाला के प्रत्यङ्ग-सौन्दर्य की अलौकिकता का वर्णन प्रसन्न होकर पुनः पुनः करते हैं। फिर तो धम्मिल्ल, भाल, भ्रूद्वन्द्व, दृष्टिच्छाया, नेत्र, नासिका, अधर, दन्त, चिबुक, मुख कपोल, कणलतिका, कण्ठ, बाहु, हस्त, स्तन, लोमलता, त्रिवलि, कटि, नाभि, नितम्ब, जघन, चरणनाल, चरण, पादयुग्म, पादाङ्गुलि और चरणनख की शृङ्गारित वर्णना चाव से सभी लोग प्रत्येकशः करते हैं।

अभी मणिमाला का शृङ्गारशृङ्ग से विवाह भी नहीं हुआ था कि द्वन्द्वदष्ट्र नामक राक्षस ने अपनी बहिन से मणिमाला का अपहरण करा दिया। राजा के उसके लिए विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा की भाँति विलाप करते समय अद्भुतमूर्ति ने आकर बताया कि द्वन्द्वदष्ट्र की मृत्यु आपके ही हाथों होगी है। उसका प्राण क्रौञ्चाद्रि पर स्वर्ण-वृक्ष के मध्य मणिसम्पुट में निवास करने वाले कीटराज में रहता है। उसको मार डालने पर द्वन्द्वदष्ट्र की मृत्यु हो जायेगी। स्वर्णवृक्ष के नीचे इस समय उससे मुक्त हुई आपकी प्रेयसी मणिमाला है। नायक ने खेचरसिद्ध-साधन नामक चूर्ण खाया और आकाश में अन्य लोगों के साथ उड़ गया। वह क्रौञ्च पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ अद्भुत मूर्ति से भैरव का मण्डलाग्र लेकर इधर उसने कीटराज को मारा, उधर द्वन्द्वदष्ट्र मरकर गिर पड़ा। नेपथ्य से कुसुमवृष्टि के साथ यह गीत सुनाई पड़ा—

येनामोदमरावती सुरसुहृद् क्लेशाशुकाकर्पण-
प्रेक्षानिर्गतनेत्रनीरनिकरोद्यद्भर्तृलज्जाङ्कुरा।
सोऽसावद्भुतभूतियोगपरशुव्यालूनमायावनो
व्यापन्नो भवति त्वयेति शरणं शृङ्गारशृङ्गासिना ॥४७४

सभी उज्जयिनी लौट आये। मणिमाला महादेवी पतिप्रिया के चरणों पर गिर पड़ती है। फिर तो नायक-नायिका के विवाह की तैयारी होने लगी। भरतवाक्य है—

सदा गी सन्दर्भ स्फुरतु सुधिया सन्विगहन
सुधापारावार सपदि विदधद्गोष्पदमिव।
सता सान्द्रानन्द विदधतु कवेर्दुर्घटकथा
प्रबन्धप्रागल्भ्यप्रतिभणिनिर्वैदग्ध्यविधय ।।४.६१

नाट्यशिल्प

रगमच पर आलिंगन करन की रीति अपनाई गई है। प्रथम अक मे नायक महादेवी का आलिंगन करता है। तृतीय अक मे नायक नायिका का आलिंगन करता है।[1]

'दुर्गा की मूर्ति के चरण पर पडा एक कमल उडकर नायक के हाथ में गया'। ऐसा दृश्य दिखाने की योजना सम्भव थी। रगमच पर आकाशचारी—कोटि वायुयान से उडकर आई हुई दिखाई जाती थी। द्वितीय अङ्क के आरम्भ मे योगिनी गगन-गामिनी कनकनौका मे रगमच पर प्रवेश करती है।

'तत प्रविशति यथा निर्दिश्य गगनगामिन्या कनकनौकया सुसिद्धि-साधिनी नाम योगिनी।'

द्वितीय अङ्क के पूव विष्कम्भक मे २८ पद्य सन्ध्यादि के वर्णन के लिए प्रयुक्त हैं। विष्कम्भक मे भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्णन और वह भी इतना लम्बा नही होना चाहिए। चतुर्थ अङ्क के पहले के विष्कम्भक मे अद्भुत-सिद्धि ने भारत की नैसर्गिक विभति का काव्योचित वर्णन सविस्तर दिया है।

द्वितीय अक के आरम्भ मे कचुकी की एकोक्ति और पश्चात् कादम्बिका से उसकी बातचीत का विषय दोनो ही अर्थोपक्षेपक के योग्य हैं। इनमे भूतकालीन और भविष्य कथाश की चर्चा की गई है। चतुर्थ अक मे योगिनी मणिमाला के हरण की कथा बताती है। यह भी अर्थोपक्षेपक मे होना चाहिए था।

नाटिका मे छायातत्त्व की प्रचुरता है। चित्र और स्वप्न के माध्यम से नायक और नायिका का मिलना इस दिशा म कवि की अपनी निजी प्रतिभा है।

एक ही अक मे अनेक स्थानो की कथाये कही गई हैं। यथा चतुर्थ अक म उज्जयिनी मे आरम्भिक कथा घटित होती है, फिर राजा उडकर श्रौञ्चगिरि पहुँच जाता है और उसी रगमच पर उसी अक मे श्रौञ्चगिरि की घटनायें अभिनीत होती हैं।

सवाद-सौष्ठव

सवाद-सौष्ठव इस नाटिका मे उच्चस्तरीय है। सबकी वाणी से आभिजात्योचित वर्णमञ्जरी निर्झरित होती है। पूरी नाटिका ही इसका निदर्शन है। उदाहरण के लिए चित्रचरित्र की नायिका के प्रति नायक की मनुहार सुनिये—

१ कथ गुरुजनसमक्षमेव मामालिंगति आर्यपुत्र ।

भवदविरहदहनसन्तापसन्तान्तस्य पियवयस्यस्य हृदयालकारलतिका भत्वा भवती पीयूष—सरस्वनीभाव भावयिष्यति । द्वितीयाङ्क से नायिका का उत्तर है—

सर्वकुशललतिका फलमस्य महाभागस्य प्रसाद-दोहदसेकेन भविष्यति ।

वर्णना

अनादि मिश्र पद्यात्मक वर्णनो मे अधिक उलझते हैं। काव्योचित कल्पना का प्रकप सवप्रथम पहले अक के शरद्-वर्णन मे नायक और विदूषक के सवाद के माध्यम से प्रकटित हुआ है। इस वर्णन मे ३२ पद्य विविध छन्दो मे प्रणीत हैं। कवि की वणनायें नवीनता ली हुई हैं। यथा—

गङ्गावारिपरम्परामनिमुपादत्ते मरालावली
श्यामाम्भोरुहसान्द्रसारसरसि सूरात्मजा मध्यत ।
किं च ग्रीवभुव कटाक्षपदना प्राप्तग्य चेतोभुव
कीर्ति प्रच्छुरिता विभाति जगती काशव्रजव्याजत ॥

द्वितीय अक के पहले विष्कम्भक मे आरम्भ स २८ वें पद्य तक सूर्यास्त, सन्ध्या तथा चन्द्रोदय का वर्णन है। ऐसा तो महाकाव्यादि मे होना चाहिए था। वास्तव मे मणिमाला नाटिका के साथ ही महाकाव्य का आनन्द प्रायश देती है।

महोत्सव के अवसरो पर ऐश्वर्य को प्रकट करने के लिए विविध प्रकार के कौतुको से जनमानस को तरगित किया जाता था। यथा, अच्छहिण्डीरगुच्छ[1], नीलोत्पल-दीपिका[2], नक्षत्रावली[3], चलचम्पकवाण-वीथी[4], जातिवाणावली[5]। कवि की कल्पनायें नैषधकार हर्ष का स्मरण दिलाती हैं। यथा नीचे लिखे पद्य मे—

एतस्याननशोभया जिततया दोषाकरो लज्जया
मग्न कण्ठनले कलङ्कपटाद्धृत्वोपल खाम्बुधौ ।
कृच्छ्रं प्राप्य तथाप्यय लघुतया तस्मिल्लघून्मग्नता
गत्वा सततचिन्तया विनतया पूर्णो मुहु क्षीयते ॥२ ७७

शैली

अनादि ने अलकारो की प्रचुरच्छटा इस नाटक मे दिखलाई है। अर्थालकारो के साथ ही शब्दालङ्कारो की स्वाभाविक धारा उनकी विशेषता है। यथा,

सान्द्रेन्द्रनीलवहलस्थलमञ्जुलाभे व्योम्नि स्फुटस्फटिकनिर्मलमेघमघ ।
दत्तो तमालदलनीलकलिन्दकन्या नीरस्फुरत् सुरसरित्सलिलौघमुद्रिम् ॥१ २१

१ इससे उल्टा सगर सा दृश्य आकाश मे बनता था ।
२ इससे गगा-यमुना का सगम-दृश्य आकाश म बन जाता था ।
३ यह ज्योतिर्वाण था, जिसमे आकाश मे मल्लिका-मुकुलो का दृश्य उत्पन्न होता था ।
४ इसमे गगन-कानन म चम्पक-पुष्पो की वीथी बन जाती थी ।
५ इसम आकाश मे कनक-केतु-यष्टि बन जाती थी ।

उत्प्रेक्षा का वर्णसाम्यता से इतना मजुल सहचार विरल होता है। पूरी नाटिका मे कवि की यह विशेषता स्पष्ट झलकती है। इसमे भाव और ध्वनि-सावर्ण्य दोनो से साङ्गीतिक गरिमा सुमम्पन्न है।

इस नाटिका म पद्यो की अतिशयता इसी उद्देश्य से प्रतीत होती है कि रगमच पर पात्र उन्ह गाकर प्रेक्षकों का मनोरजन कर सकें। चार अको मे क्रमश ६०, ८८, ८८ और ६१ पद्य हैं। इतने अधिक पद्य रपको मे विरले ही मिलते हैं। शादूलविक्रीडित, वसततिलका, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, उपजाति, वशस्थ, स्रग्धरा, पृथ्वी आदि कवि के प्रिय छन्द हैं। चण्डी और लोला आदि कवि के द्वारा प्रयुक्त कम प्रचलित छन्द हैं। कवि ने मात्रिक छन्दो का प्रयोग नही किया है।

यह नाटिका अनक दृष्टियो से कपूरमजरी के समान पडती है। दोनो मे गीत-तत्त्व की प्रचुरता है।

प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार

सूत्रधार ने बताया है कि किस प्रकार मणिमाला को लिखकर लेखक ने मुझे दिया। उसका कहना है—

स च कवि श्रीमदुत्कलेश्वर-पादपकजोपजीविराजसमाजमौलिमाल्येन श्रीनारायणमगराजेन प्रयुज्यमानेन मया मणिमाला नाम नाटिका कृता। सा च भरतर्षभेण भवता नाटयितव्येति सौहार्दरसासारपरम्पराद्र्-हृदयनया तामस्माक कण्ठे समर्पितवान्।

ऐसी बातें अनादि ने नही लिखी, अपितु सूत्रधार ने लिखी हैं।

राससगोष्ठी

शारदातनय ने भावप्रकाशन मे और विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे गोष्ठी की जो परिभाषा दी है, वह अनादि मिश्र की रासगोष्ठी पर प्राय ठीक उतरती है। रासक की परिभाषा मे विश्वनाथ ने कहा है कि इसमे सूत्रधार है। अतएव इसे रास या रासक मे जोडने का कोई कारण नहीं दिखाई देना। रास-सगोष्ठी उपरूपक है और अन्य बहुविध उपरूपको की भाँति इसे परिभाषा की परिधि मे सीमित कर लेना सर नहीं है। सूत्रधार ने इसका नाम सगीतक भी दिया है।[1] शरत्काल मे इसका सर्वप्रथम अभिनय हुआ था। सूत्रधार न इसे विलास-रास चरित नाम दिया।

कथावस्तु

कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर राधा ललिता के साथ वृन्दावन की ओर चल पडी। उनकी बातचीत होती है कि यही माधव की लीला होती है। आगे चलकर उन्हें यमुना-तट के निकट निकुञ्ज मे कृष्ण सुबल के साथ दिखे। दोनो सखियाँ छिप

१ तदेहि यथातथ सगीतकमनुतिष्ठाव। प्रस्तावना से। सगीतक मे सगीत और वाद्य की विशेषता होती है। इसमे वस्तुत गीतात्मक हार्दिक्य प्रचुर मात्रा मे है।

कर इनकी बातें सुनने लगे। कृष्ण ने सुबल से कहा कि यमुना में चन्द्रबिम्ब राधा के मुख के समान मुझे लगता है। कृष्ण को राधा की स्मृति से ऐसा लगा कि वह मदनार्दित होंगे। राधा ने यह सुना तो फूली न समाई। उसने कहा—

मदयति हृदयं मदीयमेतत् प्रियतम-सूनृतमादृतप्रसादम्।
तृणयति च गुणायति दधानं घनघनसारतुषारसानुभानं ॥१४

कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में राधा के प्रति अपना घोर प्रणय व्यक्त किया। राधा ने यह सब सुन कर अपना मनोभाव प्रकट किया—

गुणप्रवीणा दयितस्य वाणी मा कांचिदेतादृभुतशक्तिशालिनी।
समुल्लसन्ती खलु धैर्यशैलं निर्भाति मे चित्तभुवं सरन्ध्रम् ॥१९

कृष्ण ने कहा कि मेरे हृदय में राधा के वियोग से विस्फोट हो रहा है। सुबल ने कहा कि राधा के आने के लिए वंशी की ध्वनि ने सूचना दी गई है। फिर तो राधा और ललिता उनके पास आ गईं। उन्हें देखकर कृष्ण को व्रजवनिताओं के साथ क्रीडा का अवसर देने के लिए सुबल चलते बने। कृष्ण ने राधा से कहा—

गात्रं प्रदाय मम चार्द्रय सर्वमङ्गम्।

ललिता ने कहा कि आप सभी गोपाङ्गनाओं को राधा के समान ही परितोष प्रदान करें। कृष्ण ने स्वीकार किया। फिर राधा ने उन्हें प्रेमोपादन दिया।

सभी व्रजवनितायें कृष्णोपचार के लिए आ पहुँची। कृष्ण ने उन सबके साथ रासक्रीडा करने के पहले उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा कि आप लोगों के पति देवता हैं। उन्हीं की सेवा करें। गोपियों ने कहा कि आप हमारे सर्वस्व हैं। यथा,

पयोऽन्तरेण क्व पयोरुहं भवेत् क्व वा सरो वारिजबान्धवादृते।
गृहस्थधर्मः क्व मनोभव क्व वा वियोगात्तव जीवनं च न ॥२६

कृष्ण ने उनका भावगाम्भीर्य परख लिया। उन्होंने रासक्रीडा से सबका मनोरथ पूर्ण किया। गोपियों ने इसे अपना महाभाग्य माना।

नाट्यशिल्प

अनादि मिश्र ने इसके प्रथम दृश्य का नाम विष्कम्भक दिया है जो उचित नहीं है। विष्कम्भक रास या गोष्ठी में नियमानुसार नहीं हो सकता। फिर इसमें तो सारी कथा दृश्य रूप में है। सूचना जैसी वस्तु बहुत कम है। तथाकथित विष्कम्भक के पात्र अङ्क भाग में भी रंगमंच पर रह जाते हैं। ऐसा भी विष्कम्भक में नहीं होता। रंगमंच पर रासक्रीडा का दृश्य अतिशय मनोहर है। रासक्रीडा का अभिधा से शृङ्गारित अनुशीलन चूलिका के द्वारा प्रस्तुत करके लेखक ने इस कृति में विशेष लावण्यिकता भर दी है।

०

अध्याय ५३

बालमार्तण्ड-विजय

बालमार्तण्ड-विजय के प्रणेता देवराज सूरि को अभिनव-कालिदास उपनाम सम्भवत उनके आश्रयदाता महाराज मार्तण्डवर्मा का ही दिया हुआ था।[1] देवराज मार्तण्ड और उनके भागिनेय रामवर्मा के प्रमुख सभापण्डित थे। मार्तण्ड ने १७२६ से १७५८ ई० तक और रामवर्मा ने १७५८ से १७९८ ई० तक शासन किए।

देवराज के पिता और पितामह दोनो का नाम शेषाद्रि था। देवराज मूलत मद्रास के तिन्नेवेल्ली जनपद मे पट्टमडाड ग्राम के रहने वाले थे। १७६५ ई० मे मार्तण्ड वर्मा के द्वारा शुचीन्द्र के समीप आश्रम गाँव मे जिन १२ ब्राह्मणो के लिए अग्रहार बनाया गया, उसमे देवराज प्रमुख थे। इस नाटक की रचना देवराज ने १७५० ई० मे की, जब महाराज मार्तण्ड ने अभीष्ट प्रदेशो पर विजय करके त्रिवेन्द्रम् के पद्मनाभ देव को अपना राज्य अर्पित किया था।

कथावस्तु

पाँच अङ्को के इस नाटक मे केरल के राजा बालमार्तण्ड का चरित-वर्णन है। उन्होने श्रीपद्मनाभ के शक्ततीर्थ मे माघस्नान नियमपूर्वक किया। उन्हे राज्य शासन से विरक्त राजा को समझाना था कि किस प्रकार राजतन्त्र के साथ आध्यात्मिक साधना करें। राजा सोचने लगा था—

राज्येन किं भवेत् पुसो महामोहप्रदायिना।
यस्मिन् निस्त्रिंशमानस्य हरिभक्तिर्दवीयसी ॥१.२०

तब तो उनके समक्ष पद्मनाभ प्रकट हुए—

विकस्वरेन्दीवरसुन्दराग पिशगवासा स्मितमजुलास्य।
चतुर्भुज श्रीवनमालहारी पुमान् पुर कोऽपि ममाविरासीत ॥

राजा ने मौलि पर हाथ जोड कर अस्फुट वाणी कही—

देव! प्रभो! नाथ जय।

विष्णु ने राजा का सिर स्पर्श करते हुए कहा—

वत्स,

इद राज्य ध्रुवस्येव न ते मोहाय कल्पते।१३३

और आज्ञा दी—

'स्यानन्दूरपुर मे मेरे जीर्ण मन्दिर का नवीकरण करो। इसके लिए अपेक्षित धन भारत के राजाओ को जीतकर प्राप्त करो। तुम्हे कोई हरा नही सकता। दिग्विजय के पश्चात् राजसूय विधि से मेरा अभिषेक करो। तब तो जगत्पालक मैं तुम्हारी राज्यधुरा को भी वहन करूँगा। तुम मेरे युवराज रहोगे।'

१ इस नाटक की प्रति वाराणसी-संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे प्राप्य है।

राजा ने इसके पश्चात् दिग्विजय प्रस्थान के पूर्व सहस्र-गोप्रदान-मङ्गल किया। फिर चतुरङ्गिणी सेना को कटाक्ष से अनुगृहीत किया। राजा प्रयाण के लिए तैयार हुए तो पुरजनवासियों ने कहा कि हम आपके वियोग में यहाँ कैसे रहेंगे? साथ चलेंगे। तभी कवि कालिदास (इस नाटक के प्रणेता) आ पहुँचे। उन्होंने अवसरोचित अपनी उत्साहवर्धक कविता सुनाई और एक नाटक राजा को दिया। फिर तो राजा ने

'नवीन-कालिदासाय ग्रामो दत्तो महोदय ॥"

इस शासन-पत्र को हार-सहित उपहार दिया। उन्हें कनकशिविका पर घर भेजा गया। राजा ने अपने भागिनेय रामवर्मा को बुला कर कहा कि सभावल्लभ नामक पाठक के पुत्र रंगरंजक पाठक से कहना कि पुरजनवासियों का मेरे विरह के दुःख को दूर करने के लिए इस मनोरंजक कृति को पाठन द्वारा प्रस्तुत करें। तृतीय अङ्क में पाठक ने इसको सुनाया है।

चतुर्थ अङ्क में दिग्विजय के पश्चात् राजा लौट कर पद्मनाभ मन्दिर के नवीकरण का आदेश देते हैं कि पाँच दिन में सारा काम सम्पन्न हो जाना चाहिए। इस बीच श्रीपादमन्दिर में नायक ने व्रत रखा। पञ्चम अंक में महाभिषेक से पद्मनाभ प्रसन्न हुए। उन्हें सभी चक्रवर्ती के चिह्न धारण कराये गये। राजा ने उन्हें अपना राज्य समर्पित कर दिया। मार्ताण्ड वर्मा युवराज रह कर राज्य का शासन करने लगे। सभी राजकीय शासन का कार्य पद्मनाभ की मुद्रा से होने लगा। अन्त में सभी महाकवियों और पण्डितों का बहुमान आदरपूर्वक सम्पन्न हुआ।

ऐतिहासिकता

बालमार्तण्ड-विजय में सत्य घटनायें भी बढ़ा-चढ़ाकर कही गई हैं। नायक ने कायकूर पर विजय की थी—यह ऐतिहासिक सत्य है। नायक ने कोलतर केरल पर विजय की—यह नाटकीय कल्पना सत्य से संपृक्त नहीं है। नाटक में अन्य ऐतिहासिक तथ्य हैं—पप्पुतम्पि और रामन् तम्पि को जीतना, डचों को परास्त करना और डीलन्नाय को बन्दी बनाना, तभी से राजा की उपाधि युवराज होना आदि।

नाट्यशिल्प

सूत्रधार ही प्रस्तावना का लेखक था—यह इस नाटक की प्रस्तावना से सुसिद्ध सूत्रधार ने कहा है—

अहं च नाट्यार्णवपारदर्शी कवेन्दु वाणी सरसा च मृद्वी।

उसने इस प्रस्तावना में यह भी बताया है कि नटी ने राजभवन में विविध लास्यों का प्रदर्शन करके मनोरञ्जन करने के अपने वचन को पूरा किया था। यथा,

झनज्झनितबन्धुरक्वणितनूपुराडम्बर
सुगीतिरसमञ्जुलललितलास्यभेदक्रमान्।
प्रकाश्य सकलाञ्जनान् सपदि तोषयिष्याम्यहं
यदीरितमिति त्वया निपुणमेव तत्साधितम् ॥

सूत्रधार ने यह भी प्रस्तावना मे बताया है कि नवरात्र पूजा-महोत्सव के अवसर पर नटी ने एक बार जो लास्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था, उससे प्रसन्न होकर महाराज ने अपनी ही नामाङ्कित अगूठी दी थी।

ऐसी चर्चा सूत्रधार को ही शोभा देती है, नाटककार को नही।

नायकोत्कर्ष

इस युग मे श्रेष्ठ राजाओ के चरित को लेकर अनेक जीवनवृत्तात्मक नाटको की रचना हुई। इन रचनाओ मे श्रेष्ठ नायक को आदर्श रूप मे प्रतिष्ठित करना था। सूत्रधार ने नाटक की भूमिका मे बताया है—

लोकोत्तरगुणावास पुनानो स्यान्न नायक।
कवितानाट्यकलयो कथ स्याच्चरितार्थता ॥१२

नाटक का नायक स्वय राजा बालमार्तण्ड है। लेखक की भी एक प्रमुख भूमिका है।

सगीत

नाट्याभिनय मे सगीत का कार्यक्रम अनुत्तम है। आरम्भ मे नटी के गान से प्रस्तावना का अन्त होता है। इसके पश्चात् नाट्याभिनय का आरम्भ वैणिक की वीणातन्त्री-वाद्य के साथ नायक की प्रशसा से होता है।

अभिनय-शिक्षण

सूत्रधार, नटी और अन्य पात्र नाट्य-विद्या का चिरकाल तक अभ्यास करते थे।[1] पात्रो की वेष-भूषा की कल्पना तृतीय अङ्क मे नट-पाठक के वेष की युवराज द्वारा वर्णना से ज्ञात होता है। यथा,

व्यालोलोर्मिमदुज्ज्वलाञ्चलपय फेनालिशुभ्राशुक
सर्वा गीणपटीरपककलिता विच्छित्ति-शोभा वहन्।
बाहुद्वन्द्वलसत्सुवर्णवलय कोटीरवान् कुण्डली
वेपोऽय बत पाठकस्य कुरुते नो कस्य वा विस्मयम् ॥३४

और भी—

अल्पेन तालवृन्तेन स्वल्पमावीजयन् मुखम्।
तदन्त स्थितभारत्या घर्ममुत्सारयन्निव ॥

सवादाधिक्य

रगमञ्च पर पात्र प्राय गत वृत्तान्तो को अन्य पात्रो को सुनाते हैं। चतुर्थ अक तक कोई काम (action) रङ्गमञ्च पर होना विरल है। इसके पात्र पाठक हैं—अभिनेता नही। पञ्चम अङ्क म साम्राज्य चिह्नो का समपण, पद्मनाम को उन्हे धारण कराना, उनकी अर्चना, भोग लगाना आदि काय रगमच पर दिखाये गये हैं, जो पर्याप्त रमणीय हैं।

१ नटी—'चिर अम्हाण णट्टविज्जापरिस्समो फलिओ' इत्यादि।

पाठन

१८वीं शती मे चरितगाथाओ को विशेष अभ्यास और दक्षता प्राप्त पाठक कहानी और नाटक विधानो को मिश्रित करके बिना किसी अभिनय के रंगमंच पर प्रस्तुत करते थे। इस नाटक के तृतीय अङ्क में इसी प्रकार का पाठन दिया गया है।

पुरजनवासियो ने इसकी समीक्षा करते हुए प्रयोक्ता से कहा है—भवता निबन्धनपठनाख्यानेन परितोषिता स्म।

इसका नाम निबन्धन-पठनाख्यान है। इस आयोजन का सम्पादक युवराज के द्वारा पाठक-कुलभूषण कहा गया है। पाठक नट से भिन्न होता था, जैसा इस नाटक मे सारिका की नीचे लिखी उक्ति से स्पष्ट है—

निबन्धनमुपजीव्य पाठको वा नटो वा सभ्यजन कथं रसमनुभावयति।

चतुर्थ अंक से

बाल्मार्ताण्ड विजय जीवनवृत्तात्मक (biographical) नाटक है। इस प्रकार के नाटक संस्कृत मे बहुत अधिक नही है, किन्तु इनकी परम्परा का प्राचीन काल में आरम्भ भास के बालचरित से ही दृष्टिगोचर होता है।



नवमालिका-नाटिका

नवमालिका नाटिका के लेखक विश्वेश्वर पाण्डेय उत्तरप्रदेश मे हिमालय की अधित्यका मे अल्मोडा जिले मे पटिया ग्राम के निवासी थे। उनके पिता लक्ष्मीधर उच्च कोटि के विद्वान् थे, जिनके विषय मे सूत्रधार ने इस नाटिका की प्रस्तावना में कहा है—

> बभार यो महारत्नभारती भारतीभृताम्।
> स सुप्रसिद्धनामेह बुधो लक्ष्मीधराभिध ॥

लक्ष्मी ने वृद्धावस्था मे काशी मे मणिकर्णिका-तट पर कोटि-पार्थिव की पूजा करके शिव के प्रसाद से विश्वेश्वर को पुत्र रूप मे प्राप्त किया था। इन्हे पर्वत प्रदेश का वासी होने के कारण पर्वतीय भी कहते हैं।

विश्वेश्वर का जन्म १८ वी शती के प्रथम चरण मे हुआ था। पिता के चरणो मे शिक्षा पाकर वे १५ वर्ष की अवस्था से अच्छी कविता करने लगे थे। कवि को दीर्घायु नही मिली थी। उनकी सारस्वत साधना का पूरा समय २० वर्ष से अधिक नही है, जिसमे उन्होने २० से अधिक ग्रन्थ लिखे। वे ४० वर्ष से कम की अवस्था मे ही दिवगत हो गये। उनके प्राप्य ग्रन्थो के नाम हैं—(१) अलकारमुक्तावली, (२) अलकार-कौस्तुभ, (३) आर्यासप्तशती, (४) कवीन्द्रकर्णाभरण, (५) नवमालिका-नाटिका, (६) नैषधीय टीका, (७) मन्दारमजरी कथा, (८) रस-चन्द्रिका, (९) रस-मजरी टीका, (१०) रोमावलीशतक, (११) लक्ष्मीविलास, (१२) वक्षोजशतक, (१३) शृङ्गार-मजरी सट्टक, (१४) व्याकरण-सिद्धान्तसुधानिधि, (१५) होलिका-शतक और (१६) काव्यरत्न।

विश्वेश्वर के अप्राप्त ग्रन्थ हैं—

(१) काव्यतिलक, (२) काव्यरत्न, (३) तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रवेश, (४) तर्ककुतूहल, (५) तारासहस्रनाम व्याख्या, (६) षड्ऋतु वर्णन[1]।

विश्वेश्वर अध्यापक थे, जैसा उन्होने कवीन्द्रकर्णाभरण की टीका के आरम्भ मे लिखा है—शिष्यशिक्षार्थं विवृणुत्नेव प्रतिजानीते। वे पार्वती के विशेष उपासक थे।

विश्वेश्वर को शृङ्गार मे विशेष अभिरुचि थी। उनके कवीन्द्रकर्णाभरण की टीका मे उदाहरण के स्वोपज्ञ पद्य प्रायश शृङ्गारित हैं। उनकी शृङ्गार-मजरी, षड्ऋतु वर्णन, होलिकाशतक, वक्षोजशतक, आर्यासप्तशती, नवमालिका आदि रचनायें शृङ्गारित प्रवृत्ति का परिचय देती हैं। मन्दारमञ्जरी की कथा शृङ्गार निर्भर है।

१ सुशील कुमार डे ने उनके अलकार-कुलप्रदीप का उल्लेख किया है।

कवीन्द्रकरणाभरण की रचना करके कवि ने प्रमाणित किया है कि उसे कविता लिखने की सहज सिद्धि थी। विविध बन्धो, प्रहेलिकाओ, गूढजाति आदि के लिए स्वरचित उदाहरण बनाना कवि की अपनी निजी उपलब्धि है।

कथावस्तु

अवन्ति के राजा विजयसेन के मन्त्री नीतिनिधि को अरण्य मे दो सखियो के साथ नायिका मिली। नायिका और उसकी सखियो का अपहरण करके कोई राक्षस ले जा रहा था। जब वह दण्डकारण्य मे था तो प्रभाकर नामक तपस्वी न अपने दिव्य रत्न के प्रभाव से राक्षस के शक्ति-हीन हो जाने पर कन्याओ को विमुक्त पाया। नीतिनिधि ने उन कन्याओ को विजयसेन के अन्त पुर मे रख दिया, जहाँ महादेवी चन्द्रलेखा नवमालिका की रमणीयता के कारण विजयसेन के प्रणय-पाश मे उसके आबद्ध होने की शका से दोनो का परस्पर साक्षात्कार तक न होन देती थी। एक दिन जब नवमालिका महारानी के साथ थी, उधर पास ही से राजा सहसा महारानी से मिलने के लिए निकला तो महारानी ने कुछ देर पीछे रखकर नवमालिका को उसकी सखी के साथ दूर हटवाया, पर इसी बीच महारानी के नासिकारत्न मे पतिबिम्बित नवमालिका को राजा ने देख लिया और उसको पाने के लिए अधीर हो उठा।

नवमालिका ने अपना एक चित्र बनाकर महादेवी चन्द्रलेखा को दिया था। उसे महादेवी ने पुष्पावचय करते समय किसी वृक्ष के नीचे रख दिया था और लाना भूल गई। उसे ढूँढ लाने के लिए नवमालिका और चन्द्रिका उसी उपवन मे पहुँची। वहाँ राजा पहले से ही विराजमान था। राजा को विरह मे उद्विग्न देखकर विदूषक ने नवमालिका का चित्र उसे दिखाया। तब तो नवमालिका के विषय मे विदूषक से राजा को कुछ अधिक ज्ञात हुआ।

नवमालिका से राजा की भेंट हुई। उनका परस्पर प्रशसात्मक प्रेमालाप चल ही रहा था कि महादेवी चन्द्रलेखा आ पहुँची। महारानी क्या करती? क्रोध करके चलती बनी। उसने नवमालिका को उसकी सखी चन्द्रिका के साथ कारागार मे डाल दिया।

कुछ दिनो के पश्चात् अङ्गराज हिरण्य वर्मा का मन्त्री सुमति नवमालिका को ढूँढते हुए वहाँ अवन्ति मे आ पहुँचा। उसने बताया कि किस प्रकार हमारे राजा की कन्या मन्दाकिनी-तट पर विहार करती हुई अपनी दो सखियो के साथ अदृश्य हो गई। उसी समय प्रभाकर नामक तपस्वी न राजा को एक दिव्य रत्न देकर उसका अनुमान प्रभाव बताया कि इसके बल पर तीन कन्यायें हमे किसी राक्षस से विमुक्त होने पर प्राप्त हुई हैं।

नवमालिका सुमति को पहचान लेती है। सुमति भी उसे देखकर पहचान जाता है। सुमति ने बताया कि नवमालिका हिरण्यवर्मा की पुत्री है। नवमालिका

का पति सार्वभौम सम्राट् होगा यह जानकर नीतिनिधि ने नवमालिका को लाकर अन्तःपुर में रखा था। तब महादेवी नवमालिका का विवाह राजा से कर देती है, क्योंकि वह स्वयं भी हिरण्यवर्मा से सम्बद्ध थी। वस्तुतः वह हिरण्यवर्मा की बहिन थी।[1]

मालविकाग्निमित्र, रत्नावली और प्रियदर्शिका की कथाओं के प्रायः समान ही नवमालिका नाटिका की कथा है।[2] नायिका की छाया नासिका-रत्न में देखकर उसके प्रति नायक का आसक्त होना यह छायातत्त्व है, जो मदनकवि की पारिजातमंजरी के तोटक अंक में वर्तमान है।

चतुर्थ अंक में राजा की एकोक्ति द्वारा उसके नवमालिका-विषयक भाव व्यक्त किये गये हैं।

---

१ विजयसेन अपनी महारानी चन्द्रलेखा से कहता है—देवि, दिष्ट्या वर्धसे भ्रातुरपत्यलाभेन। सपत्नी के रूप में भाई की कन्या कैसे ग्रहणीय हुई—यह प्रश्न लोकरीति-प्रवर्तन से समाधेय है।

२ विश्वेश्वर के शृङ्गारमंजरी-सट्टक का प्रकाशन श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री ने वाराणसी से किया है।

अध्याय ५५

प्रद्युम्नविजय

प्रद्युम्नविजय के लेखक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण शङ्कर दीक्षित के पिता बालकृष्ण आनन्दवन (काशी) के निवासी थे।[1] बालकृष्ण के पिता ढुण्ढिराज सम्भवतः वही हैं, जिनकी १७५० ई० मे लिखी मुद्राराक्षस की टीका मिलती है। इनकी एक अन्य रचना शाहविलासगीत मिलती है। इस ग्रन्थ से प्रसन्न होकर महाराज शाहजी ने इन्हें अभिनव-जयदेव की उपाधि से समलंकृत किया था। ऐसा लगता है कि अपने जीवन के अन्तिम दिन ढुण्ढिराज ने काशी मे बिताये और तबसे उनकी वश-परम्परा इसी नगरी मे प्रतिष्ठित रही। शकर के पिता बालकृष्ण ने भी सस्कृत की कुछ उत्कृष्ट रचनायें की थी।

सूत्रधार ने प्रद्युम्नविजय की प्रस्तावना मे बताया है कि इस नाटक को मुझे बालकृष्ण ने अर्पित किया है। बालकृष्ण सूत्रधार की परिचर्या से सन्तुष्ट थे।[2] इससे तो ऐसा लगता है कि इस नाटक की रचना बालकृष्ण ने की थी, क्योकि साधारणतः लेखक स्वयं ही अपनी कृति अभिनय करने के लिए सूत्रधार को समर्पित करते थे।[3]

नाटक के अन्त मे कवि शकर ने कहा है—

श्री तातवक्त्राम्बुजभूसमुद्गति प्रबन्धकल्पद्रुसौधिशाखं।
तं गद्यपद्याच्छदबाणशाखिकाधिकं व्यधाच्छंकरदीक्षितो यम्॥

इससे प्रतीत होता है कि पिता और पुत्र दोनों का कृतित्व इस नाटक मे है। कवि की अन्य रचनायें—गंगावतारचम्पू, शकरचेतोविलासचम्पू आदि हैं।

प्रद्युम्नविजय का अभिनय छत्रसाल के पौत्र और हृदयशाह के पुत्र समासिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर हुआ था। स्वयं समासिंह ने सूत्रधार से कहा था कि मधुसूदन के चरित-विषयक नाटक का अभिनय करें। समासिंह के तीन पुत्रो मे अमान सिंह श्रेष्ठ था। उन्होंने सूत्रधार से कहा था कि किसी ऐसे नाटक का प्रयोग करें कि राजसमाज को अन्य नाटको के प्रति विराग हो जाय।

इस नाटक का अभिनय प्रातःकाल के समय हुआ था।

कथावस्तु

कश्यप और दिति का पुत्र वज्रपुर का राजा वज्रनाभ नामक असुर ब्रह्मा से वरदान पाकर अतिशय शक्तिशाली बन गया था। वह देवताओ को सताता था।

१ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति काशी के सरस्वती-भवन मे है।

२ अधिगत-समस्त-विद्या-विनोदानन्दित-सकलविद्वज्जनेनानन्दवनवास्तव्येन मत्परिचर्यागुणसन्तोषजनितप्रसादेन श्रीमद्दीक्षितबालकृष्णेन नाटकमेकं समर्पितमस्ति। तदभिनेतव्यम्।

३. उपर्युक्त वृत्त से प्रतीत होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है।

उसने इन्द्र से कहा कि त्रैलोक्य-शासन मुझे करना है। घबड़ाकर इन्द्र ने द्वारका मे कृष्ण से परामर्श किया और तदनुसार अपनी माता अदिति से बताया कि वज्रनाभ क्या चाहता है। अन्त मे एक दिन परस्पर विवाद करते हुए इन्द्र और वज्रनाभ कश्यप के पास न्याय के लिए पहुँचते हैं। कश्यप इन्द्र का पिता है। वे अपनी पत्नियो अदिति और दिति के साथ यज्ञ कर रहे थे। कश्यप ने वज्रनाभ के अत्याचारो को सुना और उसे ऐसा करने से रोका। वज्रनाभ ने कहा कि त्रिलोकी का शासन हम दोनो मे बराबर-बराबर बाँट दें। कश्यप ने उन दोनो को समझाकर शान्त कर दिया।

श्रीकृष्ण अपने पुत्र प्रद्युम्न का विवाह करना चाहते हैं। वे इस विषय मे रुक्मिणी और भद्रनट से परामर्श करते हैं। भद्रनट बताता है कि वज्रनाभ की कन्या प्रभावती ही प्रद्युम्न के योग्य रूपवती है। रुक्मिणी कृष्ण से कहती है कि प्रभावती को लायें।

इन्द्र ने प्रभावती को प्रद्युम्न के लिए प्राप्त करने के उद्देश्य से हंस तथा हंसियो को उसके पास भेजा। उन्हे वज्रनाभ ने बहुत सी सुविधायें प्रदान की। वह अपनी कन्या प्रभावती के लिए अपने से बढ़कर शक्तिशाली वर चाहता था। उसने उसे इस कार्य के लिए नियोजित किया। हंस ने बताया कि द्वारका मे एक ऐसा अष्टसिद्धि-युक्त पुरुष है। वज्रनाभ ने कहा कि उसे ले आयें।

प्रद्युम्न की प्रशंसा हंसियो के मुख से सुन कर प्रभावती उन्हे आदेश देती है कि मेरी प्राणरक्षा के लिए प्रद्युम्न को यहाँ लाकर उनसे मुझे मिलाओ। कृष्ण ने हंसी को बताया कि मैंने पहले ही प्रद्युम्न, गद और साम्ब को नटरूप धारण कराकर वज्रपुर मे भेज दिया है। प्रभावती का गान्धर्व विवाह हो गया। सबके प्रयास से गद और साम्ब का विवाह उसकी बहनो से हो गया।

नारद की बन आई। उन्होंने वज्रनाभ को बताया कि प्रभावती तो प्रद्युम्न के प्रणयपाश मे निमग्न है। उसे प्रद्युम्न से गर्भ है। वज्रनाभ ने आदेश दिया कि प्रद्युम्नादि की हत्या कर दी जाय। इधर नारद ने द्वारका आकर कृष्ण से बताया कि प्रद्युम्न का अन्त ही करना चाहता है वज्रनाभ। कृष्ण ने वज्रपुर पर आक्रमण करके वज्रनाभ को मार डाला। प्रभावती उनकी बहू बनी।

प्रद्युम्न विजय सात अङ्को मे निष्पन्न है।

समीक्षा

इस नाटक मे मानवेतर भूमिका सुरुचिपूर्ण है। हंस और हंसिनियो की रंगमंच पर पात्र रूप मे अवतारणा छायातत्त्व है। इसके विषय मे विलसन ने कहा है—

The introduction of such performers on the stage must have had rather an extraordinary effect, although not more so than the Birds and Wasps of Aristophanes or the Lo of Aeschylus, who as the dialogue sufficiently proves, were dressed in character[1]

१ The Theatre of the Hindus P 147 Ed 1955

पचम अक मे प्रद्युम्न भ्रमर बनकर प्रभावती के कान मे पिरोये हुए कमल मे बैठ जाते हैं और हसिनी तथा प्रभावती का अपने विषय मे सवाद सुनते हैं। पक्षी तो शास्त्र विचक्षण हैं। इन्द्र, कश्यप, श्रीकृष्ण आदि की भूमिका से नाटक का औदात्त्य सवर्धित है। आरभटी-वृत्ति की प्रचुरता के कारण यह नाटक छल-छद्यो से परिपूर्ण है।

शकर ने इस नाटक को महाकाव्योचित लम्बे वर्णनो से परिव्याप्त किया है। नाट्यकला के साथ काव्यकला का सामजस्य यद्यपि सस्कृत की परम्परा रही है, किन्तु कला की दृष्टि से यह उपादेय नही है।

शिल्प

अभिनय मे किन-किन तत्त्वो की प्रधानता होती थी—इसकी चर्चा सूत्रधार ने प्रस्तावना मे की है—

गायन्ति यच्च विवदन्ति वदन्ति यान्ति नृत्यन्ति यत्किल पतन्ति तथोत्पतन्ति।
सन्ताडयन्ति लडयन्ति विडम्बयन्ति तत्सर्वमेव ललित ललनाजनस्य॥

सवाद मे इन्द्र और वज्रनाभ का कलह पाठको को अतिशय रोचक प्रतीत होता है। रगमच पर ऐसे सवादो से प्रेक्षको की अभिरुचि बढ़ती है। वज्रनाभ का अपने पिता से इन्द्र के विरोध मे कहना है—

हन्तु मामेष वैरी प्रतिपदमधिक देवता सयुनक्ति।
व्यक्त त्यक्तास्मदादीन् सपदि मखविधौ यज्ञभागान् भुनक्ति।
स्वाराज्ये रज्यमान किमपि न हि पुनर्दातुमेषोऽभिवक्ति॥१४

सयुक्ताक्षरो के आनुप्रासिक प्रयोग से कवि भावोचित वातावरण उत्पन्न करता है। यथा,

हे सौविदल्ल कृतमल्लपरिश्रम त्व प्रद्युम्नमानय हतप्रतिमल्लवीर्यम्।
प्रोक्षिप्तमल्लशतसहृतशत्रुवर्गमारात् करोमि किल वल्लभया समेतम्॥२६

कवि प्रवेशको और विष्कम्भको को कही-कही अतिशय लम्बायमान करते हैं। द्वितीय अङ्क और इसके पहले का विष्कम्भक प्राय बराबर आयाम के हैं।

लम्बे-लम्बे वर्णन भले ही काव्य की दृष्टि से चारुतर हैं, किन्तु रगमच पर एक ही पात्र का लम्बे वर्णनो को अनेक पृष्ठो तक सुनाते जाना नाट्योचित नही है। तीसरे अक में हसी की वर्णना कुछ ऐसी ही है। शकर के वर्णनो की शैली से बाण का स्मरण होता है। पचम अक मे अन्धकार और चन्द्रोदय का वर्णन लम्बे समासो और अलकारो का जाल प्रस्तुत करता है। इस अक मे वर्णन या सूच्य ही आद्यन्त है, दृश्य नाम मात्र का है।

अठारहवी शती के प्रेक्षागृह मे राजा के लिए ऊँचा आसन होता था। मणिजाल-रचित तिरस्करिणी के भीतर से स्त्रियाँ नाटक देखती थी। नाटक के प्रयोग से आह्लादित होकर प्रेक्षक शरीर से वस्त्राभूषण उतार कर नट को देते थे।[1] नाटक की उत्तमता

१ राजा ने तो राज्य ही नट को देना चाहा।

समझी जाती थी कि प्रतीति हो—स एव राम, स एवाय दशरथ। स एव ऋष्यशृङ्ग। इद सर्व तात्कालिकमेव पश्याम।

चतुर्थ अक मे भद्रनट के अनुसार रामायण-काव्यार्थकथा-नाटक का प्रयोग चर्चित है।

कवि ने सभी शास्त्रीय विधानो और परम्परागत मर्यादाओ का अतिक्रमण करते हुए नाटक के पचम अक मे सम्भोग की आद्यन्त विधियो का रुचिपूर्वक वर्णन किया है।[1] आज के चलचित्र भी इसके सामने फीके पड जायेंगे। यह सारा उपक्रम नाटक को कामशास्त्रीय बना देता है।

शैली

अलकारो के प्रयोग मे कवि की रुचि विशेष है। अर्थालकारो को शब्दालकारो से कवि ने चमकाया है। उनका अनुप्रास कोर व्यञ्जनो का नही है, अपितु स्वरो का भी है। यथा,

इय हि नवयौवना कुसुमचापसग्रन्थना
निर्वर्तितविभूषणा प्रबलकाममन्तापना।
सदैव नमितानना श्वसितिनिर्लैव वा कामना-
महो वदति शुष्यते सततमम्बुजन्मानना॥

शकर ने विविध छन्दो का प्रयोग किया है। शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मालिनी, पृथ्वी, नर्दटक, आर्या, गीति, उपगीति, पुष्पिताग्रा, प्रबोधिता, दण्डक, स्वागता, शालिनी, दुर्मिल आदि प्रमुख छन्द प्रयुक्त हैं। शार्दूलविक्रीडित कवि का प्रियतम छन्द प्रतीत होता है।

नाटक का अपर नाम वज्रनाभ वध है।

सामाजिक मान्यताएँ

अभिनेताओ की प्रतिष्ठा न्यून थी। रुक्मिणी के शब्दो मे—

ये स्वीया दयिता स्नुषा दुहितर सन्नर्तयन्तो नरा
जीर्णा सद्मनि वर्तयन्ति समय गायन्त उच्चै स्वरम्।
मसत्स्वश्रु च तत्कटाक्षविशिखव्याक्षिप्तचित्रस्फुरत्-
प्रीतिप्रीतजनापिनात्र कवनैर्यज्जीवन धार्यते॥२.३६

किन्तु कुछ ऐसे विचारक थे, जो नटो के उस योगदान को समझते थे, जिससे राष्ट्र का चारित्रिक निर्माण होता है। यथा,

पुराणपुरुष पुरा समकरोन्मुदा जीविका
तयैव किल जीवना सुहृनर्महिकामुष्मिकम्।
नयन्ति खलु तत्र ये जनिमयाभिरामैर्गुणै-
प्रचार-विधिनर्तनैरपि च कि न धन्या भुवि॥४.२६

शारदातिलक-भाण

शारदातिलक-भाण शकर दीक्षित की दूसरी नाट्य कृति है। इसका नायक रसिकशेखर विट है। वह कोलाहलपुर मे वेशवाटादि मे परिभ्रमण करता हुआ अपनी शृगारित अनुभूतियो का वर्णन प्रस्तुत करता है।

---

[1] कवि शृगाररसिक है। इसने ५ १२ मे कन्दरान्तर का आलिंगन वर्णन किया है।

सान्द्रकुतूहल-प्रहसन

सान्द्रकुतूहल-प्रहसन[1] के रचयिता कृष्णदत्त सुविख्यात वाग्जड जनपद मे ग्रामठीय गाँव के निवासी थे। उनके पिता सदाराम और माता आनन्द देवी थी। कवि ने अपने वंशधरो का वर्णन इस प्रकार इस रूपक के अन्त मे प्रस्तुत किया है—

यस्यास्ते वाग्जटेति प्रथितजनपदे ग्रामठीयाख्यखेटो,
य मातानन्ददेवी तनयमजनयच्छ्रीसदारामभर्तु ॥
साहस्रौदीच्यजातिर्य इह सुविदितो डालवाणीय जोशी-
त्याविख्याताचटको जयति कृतिरियं कृष्णदत्तस्य तस्य ॥

इसी क्रम मे कवि ने बताया है कि उनके सुविख्यात पूर्वज रघुराम थे। उनकी सन्ततिपरम्परा मे पीताम्बर, अचलदास और सदाराम हुए। अन्तिम सदाराम इस कृति के प्रणेता कृष्णदत्त के पिता हुए। कृष्णदत्त का उपनाम गिरिवरधरदास था।

कृष्णदत्त का वाग्जड जनपद कहाँ था और उनका आश्रयदाता राजा धर्मवर्मा किस प्रदेश का प्रशासक था—यह अभी तक सुनिश्चित नही है। कवि ने व्रजप्रदेश की महिमा का जो निदर्शन इस रूपक मे किया है, उससे सम्भव प्रतीत होता है कि वे व्रजवासी थे और कृष्णभक्त वैष्णव कुल मे उनका प्रादुर्भाव हुआ था। कृष्णमाचार्य कृष्णदत्त को मिथिलावासी मानते है। वहाँ का वज्जड जनपद ही सम्भवत वाग्जड है।

कृष्णदत्त की अपर कृति राधारहस्यकाव्य मिलती है। इसके २२ सर्गों मे राधा और कृष्ण का प्रणयाख्यान वर्णित है।

कृष्णदत्त न इस रूपक का रचना-काल स्वय बताया है—

नवाम्बराष्टापदभूमिता समा मा माधवो निर्मलपक्षसयुत।
एका तिथि श्रेष्ठतमा सुमगला तेनेऽन्वहं स्वा कृतितामिमामिह ॥

इसके अनुसार १८०९ वि० स० के वैशाख मास मे इसकी रचना हुई। यह १७५२ ई० होगा।

कथावस्तु

प्रथम अङ्क मे पद्माकर पिता अपने पुत्र दिवाकर को कृष्णभक्ति की अद्वितीयता बताता है। कृष्ण की व्रजभूमि मोहिनी है। वे वहाँ रासक्रीडा करते थे। रासक्रीडा क्या है—यमुना नदी के तीर पर सामूहिक नर्तन। यथा,

व्रजाङ्गने व्रजाङ्गने तदन्तरे व्रजाधिपो
व्रजाधिपस्तदन्तरे व्रजाङ्गने व्रजाधिप
इति व्रजाधिपाष्टक व्रजाङ्गना द्विरष्टकम्
प्रकल्प्य रासमण्डले ननर्त नन्दनन्दन ॥

---

१ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति भण्डारकर इंस्टीट्यूट, पूना मे है।

इस विषय पर कवि ने मनोरम गीतात्मक नन्दनाष्टक का समावेश किया है। पद्माकर ने अपने को सौविदल्ल बनाकर कृष्ण की शरण पाई थी। वह अपने पुत्र को बताता है कि कैसे मैं ध्यान लगाता हूं और कृष्ण की विविध चरितावली का ध्यान स्तिमित लोचन से प्रत्यक्ष करता हूं। कृष्ण की बाललीलाओं का अनुत्तम प्रकर्ष है। यथा-गोपिकाङ्गनायें कृष्ण को लेकर उलाहना देती हैं। कृष्ण बांधे जाते हैं तो वे उन्हें छुडाने के लिए कहती हैं—

यशोदे-यशोदे ह्यद साम्प्रत नो वदामोदर त्वा सदामोदराशे।
कुदामोदरान्मुञ्च दामोदरस्य स दामोदरो वर्तते बालकोऽयम् ॥३४

फिर पद्माकर कृष्ण और राधा के सवादात्मक चरित्र का ध्यान करता है। पुत्र के पूछने पर पिता बताता है कि अतिदैन्य से भगवान् की प्रीति उत्पन्न की जा सकती है।

पुत्र की इच्छानुसार पद्माकर गोवर्धनगिरि, गोकुलग्राम और यमुना का भक्ति-भावाविष्ट वर्णन है। पिता बताता है कि भक्ति ज्ञान, कर्म और मुक्ति से दुर्बल नही पड़ती। उस भक्ति की प्राप्ति का साधन है वल्लभाचार्य-मार्गप्रवेश। इस मार्ग का स्पष्ट और मनोग्राही वर्णन किया गया है। इसके लिए हृदय मे तीव्र आकाक्षा होनी चाहिए। अन्य मार्ग उपयोगी नहीं हैं। पुत्र सुधाकर की समझ में बात आ गई कि—

वृथा मनुजजन्मता ननु वृथाद्विजत्व तथा
वृथा वचनचातुरी सकलशास्त्रविस्त्व वृथा।
वृथा फलमियत्तया गतमिह ममायुर्धन
कदाप्यगतवल्लभप्रकटिताध्वपूर्वस्थिते ॥१७८

फिर वल्लभ के पुत्र विट्ठल की महिमा का आकलन पिता ने किया है। यथा,

वल्लभराजकुमार मारमनोहररूपधर।
धरणीत्रिदशाधार धारय चेतसि मामनघ[1] ॥१८०

विट्ठल के सात पुत्रो का सक्षिप्त परिचय है।

द्वितीय अङ्क मे दो कविवर प्रभाकर और उनके पुत्र क्षपाकर हैं। रगमच पर पुत्र का पिता से प्रश्न है—हमारे मार्ग मे कौन देव पूज्य है? पिता बताता है—

पशुपते हिमपर्वत-कन्यके व्रजपते रहरे रघुनायक।
गणपते तपनाखिलदेवता प्रतिदिन शिरसा प्रणमामि व ॥२२

यह स्मार्त मार्ग है, जिसमे सभी देव समान रूप से पूज्य हैं। सबसे पहिले शिवचरित की वर्णना करते हुए पिता विविध प्रबन्धो के उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रबन्ध हैं—प्रतिलोमानुलोमपाद, द्व्यक्षर, चतुरक्षर, अन्तर्लापिका, सर्वतोभद्रप्रबन्ध,

१ यह पद्य सौराष्ट्रच्छन्द (सोरठा) मे है।

हारबन्ध, वक्रोक्ति, बहिर्लापिका, वर्णमोक्षविपर्यासचमत्कृति, प्रतिपदयमक, निरोष्ठ्य, प्रतिपादान्तयमक, पादान्तयमक, छत्रबन्ध, व्यजन-बन्ध, कर्तृ कर्म क्रिया गुप्त, पादाद्यन्त यमक, चतुःपादादि यमक, प्रतिपदयमक, अन्तर्लापिका, कमलबन्ध, कविदुराप, गुप्त-करण आदि। इनके उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पिता-पुत्र ने क्रमश गगा, गणपति, श्रीकृष्ण, प्रह्लाद, रामचन्द्र आदि के चरित और महिमा विषयक स्तुतियाँ अपने श्लोको मे दी हैं।

तृतीयाङ्क मे दिवाकर पिता और उसका पुत्र गुहाकर रगमच पर हैं। दिवाकर शरीर से वृद्ध पर मन से विट युवक है। उसका मत है कि स्मार्त, वैष्णव, पाशुपत आदि धर्मों की शिक्षा देते हुए मूर्ख पाषण्डी साधारण लोगो को ठगते हैं। इस ससार मे एकमात्र महत्त्व तो रमणियो का है। पुत्र के कारण पूछने पर दिवाकर ने बताया कि—

कामिन्या सुरत क्व तज्जपतपोमासोपवासा क्व ते।

उक्त च

अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव राशय।

दिवाकर हनुमान् की स्तुति करता है कि पति वियोग मे जैसे आपने सीता की रक्षा की, वैसे ही पत्नी-वियोग मे मेरी रक्षा करें।

दिवाकर से गुहाकर ने प्रश्न किया कि कान्ता को शास्त्रो ने दु ख का मूल बताया है। क्यो आप उसके पीछे पडे हैं? दिवाकर कान्ता का अर्थ बताता है—'क सुखमन्ते इति कान्ता' अर्थात् जो आद्यन्त सुख दे, वह कान्ता है। दिवाकर अपनी उपपत्नी की उत्सुकतावश उत्कण्ठित था। तब तक उपपत्नी कुसुमकलिका आ गई। उसका कामुक वर्णन कर लेने पर उसे शिष्य का प्रश्न सुनने को मिला—आसद समक्ष प्राकृतपुरुषेणाप्यवाच्यवादान् वदन् निर्लज्ज इव कुतो न वार्धके राजसे।

इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के कवि केशवदास की पद्धति पर दिवाकर ने दिया—

वृद्धत्वे यदकारि दैवरिपुणा कर्तुं न तच्छक्यते
काञ्चीनूपुरककणोत्कटरणत्काराद्विकारप्रदा।
श्यामाङ्गीमृगलोचना विधुमुखी सूक्ष्माञ्जना सुस्तनी
मा नातेनिपितामहेति वचसा सत्रीत्रयेदर्भगम्॥३ १३

कुसुमकलिका ने दिवाकर के वियोग मे निद्रा को उपालम्भ दिया—

निद्रे नायासि कस्मान् प्रियतमविरहे योऽपराध कृतस्ते
किं रुष्यसि भर्तुर्भ्रुजयुगनया नादृता प्राङ्‌मयान।
किं वा भीतासि बाष्पाकुलितनयनयोर्मज्जनाद्वा मयि त्वम्
श्रुत्वा सापत्न्यभाव व्रजसि यदि पति त्वद्यति त्वा प्रियोऽपि॥

एक बार वह प्रवास करने वाला था, पर अपनी उपपत्नी की सहचरी के समझाने पर विदेश नही गया।

चतुर्थ अङ्क मे दोषाकर अपने पुत्र सुधाकर के साथ रगमच पर आते हैं। पुत्र को पिता राजा के कोषाध्यक्ष के पास भेजता है कि अपने स्वरूप और विद्या का वर्णन करके मिद्धान्न माँग लाओ। पुत्र ने लौटकर बताया--

रीतयोऽन्या प्रदृश्यन्ते राजद्वारेऽत्र नूतना ।
नटा विटाश्च पूज्यन्ते न विद्वासो महाजना ॥

पिता ने कहा कि तब अन्य देश मे चले। पुत्र ने कहा कि सर्वत्र यही दशा है। जिस ओर से बयार बहे, उसी ओर पीठ कीजिये। जैसे लोग हो, वैसे ही अपने भी बन कर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। पिता ने कहा कि मैं गिरगिट-पन्थी नही हूँ। इस क्षणभगुर जीवन मे इस प्रकार की लम्पट-जीविका को अपनाना ठीक नही है। पर यदि कोई अन्य उपाय नही है तो तुम मेरे सूचीवक्त्र नामक उपपुत्र को बुलाओ। वही भँडैती और नाटक कर सकता है। साथ मे वह अपनी पत्नी कल्पमजरी को भी लाये। सूचीवक्त्र ने आकर अपनी सम्मति दी—

पाषण्डानृतभाण्डगायनपरस्त्रीवचने स्तेयता च
कौटिल्यौषधियन्त्रमन्त्रपरता द्यूतेन्द्रजालानि च ।
पाशाक्षेपगरप्रदानहननद्वैजिह्व्यधातुक्रिया-
नैनान्विन्दति हन्त य कलियुगे तज्जीविकाशा कुत ॥४७

दोषाकर ने उसे सिद्धान्न के लिए राजसभा मे भेजा। उसने राजा की प्रशसा की और उसे बताया कि कैसे कैसे व्यभिचारो को कुलधर्म बनाये हुए हम होलिकापुर-वासी है। राजा ने कहा कि यह ठीक नही। सूचीवक्त्र ने कहा कि शास्त्र आदेश देता है—

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सुखी भवेत् ॥

सूचीवक्त्र और कल्पमजरी के सवाद के बीच गणेश की विघ्नविघातिनी स्तुति है—

नमस्ते चण्डिकापुत्र मोदकामोदिने ॥

इसमे मोदक सुनकर तथाकथित ब्राह्मण-कुटुम्ब-कुठार और कुलकलक रगमच की ओर झपटे। तब सूचीवक्त्र सपत्नीक भाग खडे हुए। कुटुम्बकुठार ने देखा कि मोदक का यहाँ नाम भी नही रहा। उसका शोक दूर करने के लिए कुलकलक ने कहा कि यहाँ यजमान दुर्मुख भ्राता राजा श्याममुख रहता है। उसके रहते क्या कष्ट? उनके बुलाने पर राजा, रानी और राजकुमार रगमच पर आते है। श्याममुख ने कहा कि मैं अपने पुत्र नीलपाद का विवाह गोत्रघाती की पुत्री कर्कशा से करने के लिए उत्सुक हूँ। वर-वधू पक्ष की कुलशुद्धि का विश्लेषण है—

माता यस्या पुलिन्दी नट इति जनकः कथ्यते नाममात्रं
जाता या चर्मकारात् स्वजनविरहिता पालिता वेश्यया या ।।
क्रीता दुर्भिक्षकाले सदसि च जगृहे गोत्रघाती ततो याम्,

वर की कुलशुद्धि, का परिचय देते हुए उसका पिता राजा श्याममुख कहता है—

अहमपि वरुडोऽस्मि, स्त्री च चाण्डालपुत्री
यवनयभनजातो बालको नीलपाद ।
रजकसदनपुष्टो भिल्लकैवर्ततैते य ।। इत्यादि

राजा ने कुलकलव से कहा कि इस प्रकार की कन्या से विवाह होना है कि मेरे पुत्र के पाँच पुत्र हो। कुलकलक ने कहा कि इससे विवाह होने पर एक मास मे ही आपका पुत्र पचत्व प्राप्त करेगा। विवाह का समय निर्णीत हुआ आश्विन मास मे, कृष्णपक्ष, अमावस्या, शनिवार, ज्येष्ठा नक्षत्र, नामकरण, वैधृति-योगयुक्त। विवाह मे सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धियो को निमन्त्रण भेजा गया। साथ ही सूचना दी गई—

वस्त्राण्युत्तार्य गत्वा सरिदभिपुलिने वाचनीयान्यमूनि ।।

यह सब हो जाने के पश्चात् कन्या के पिता गोत्रघाती का कहना है—

हस्तौ पादौ दुर्बलौ सत्त्वहीनौ दृश्येते ते नीलपादस्य सूनो ।
तस्मादस्मै कन्यकाया प्रदाने चेनो दोलेवाग्रपश्चात्त्वमेति ।।४ ४५

श्याममुख ने कहा—

किं हस्तपादचिबुकाननगुल्फना सा पृष्टाङ्गुलीजठरलोचनदर्शनैस्ते ।
तात्पर्यमस्ति यभने तदुदीक्षणीय ह्यादर्शदर्शनमहो करकङ्कणे किम् ।।४ ४६

ऐसा ही किया गया। कर्कशा ने कहा कि इसमे दोष है। मैं नीलपाद को उपयुक्त नही समझती। नीलपाद को भी कन्या मे कुछ दोष अनुभूत हुए। पर अन्त मे उनके माता-पिता ने निणय लिया कि छोटे-मोटे दोष तो रहते ही हैं। बाकी सब ठीक है। विवाह हो जाना चाहिए। पुरोहित ने अश्लील कन्यादान सकल्प पढ दिया।

राजा श्याममुख का मत है—कामियो का सौभाग्य है कि कोई युवती विधवा हो जाय। यही रूपक समाप्त होता है।

शिल्प

सगीतक की चारुता की परम सफलता सान्द्रकुतूहल के प्रथम अक म मिलती है। इसमे कोई भी ऐसा पद्य कदाचित् ही मिले, जो पाठक को गुनगुनाने के लिए प्रवृत्त न कर दे। यथा कृष्ण का वणन है—

भ्रमाद्भ्रयध्वंसी भुवशुभशंसी करपुटे,
दधद्रम्या वशीमपरकलहंसीमिव पराम्।

सदा दुष्टभ्रू शी विलसदवतंसी श्रवणयो ,
स्वय साक्षादशी जयति यदुवशीयतरणि ।।

अनुप्रासिक ध्वनियो का समाहार करने की विशेष क्षमता कृष्णदत्त मे है ।

अभिनय के आरम्भ मे चार ब्राह्मण अपने-अपने पुत्र के साथ रगमच पर आते हैं। उनमे से पिता-पुत्र की द्वयी तो पूरे अङ्क भर सवादपरायण हैं। शेष छ क्या करते हैं—यह बताया तो नही गया, किन्तु चुपचाप पडे है—यह स्पष्ट है। ऐसी स्थिति अनाटकीय है। वैसे प्रत्येक अङ्क के आरम्भ मे पुत्र और पिता का रगमच पर आना और अक के अन्त मे पिता-पुत्र का जाना बताया गया है। ऐसी स्थिति मे प्रथम अक के आरम्भ मे–'नत प्रविशन्ति स्वस्ववाक्चानुरीचमत्का चत्वारो ब्राह्मणा ससूनवश्च'। यह निवेदन त्रुटिपूर्ण है।[1]

पात्र कैसी मुद्रा मे रगमच पर आये—यह कवि ने पद्यात्मक निवेदन के रूपमे प्रस्तुत किया है। यथा तृतीयाङ्क के आरम्भ मे—

दन्तान्निष्पीडयन् सन्निजकरयुगल पेषयन् रोषवेशात्
पादाघातान्नु कुर्वन्नहह शिवेत्याब्रुवन् खेदखिन्न ।
मूर्धान धुनयन् यो विकटकटितट भ्रामयन्नासमन्तात्
पश्यन् शोणाक्षिकोणात् कुटिलभ्रूकुटिका नर्तयन् वाचमूचे ।।

तृतीय अक के मध्य मे एक और निवेदन समाविष्ट है, जिसमे कुसुमकलिका पद्य द्वारा दिवाकर को प्रोषित होने से रोकती है। यथा,

भर्तुं प्रस्थानकाले करघृतवसना मुच मुचेति कान्ते ।
प्रोक्ता कान्तेन कान्ता शिथिलतरतनुर्गद्‌गदा वाचमूचे ॥३.१४

इसके पश्चात् निवेदन रूप मे कुसुमकलिका का विलाप है। आगे निवेदन द्वारा ही बताया गया है कि कैसे उसने एक सखी को दिवाकर के पास भेजा। उस सहचरी का सन्देश भी निवेदन द्वारा प्रेक्षको को ज्ञेय है। यथा,

रात्र्या हैमन्तिकायामपि बत वसन वेष्टयित्वार्द्रमङ्गे
धैर्यं व्यालम्ब्य शौर्यादतिरतिवशत साहस सविधाय।
तस्या पार्श्वे कथञ्चिच्चरति सहचरी त्वद्वियोगादमुष्या
दीनाया निर्दयत्व शिव शिव कुमते निर्दयत्व त्यजेथा ।।३ १६

रगमच पर एक ही अक मे अनेक स्थानो की घटनायें दिखाई गई हैं। यथा चतुर्थ अक के रगमच पर ब्राह्मण सुधाकर और दोषाकर का स्थान भी है और साथ ही राजसभा भी है।

कितने समय की कथा एक अक मे होनी चाहिए, यह विचार नहीं रखा गया है। चतुर्थ अक मे विवाह का लग्न शोधन, सम्बन्धियो को पत्र लिखना, उनका उपस्थित

१ ऐसी ही अन्य त्रुटियो से स्पष्ट होता है कि प्रस्तावना कृष्णदत्त की लिखी नही है।

होना, विवाह आदि सभी बातें समय की अपेक्षा की दृष्टि से अनेक अंकों में होनी चाहिए थी।

अन्तर्नाट्य

चतुर्थ अङ्क के मध्य में सूचीवक्त्र और कल्पमंजरी यद्यपि पात्र हैं, पर वे सूत्रधार और नटी के रूप से अपने कर्तव्यों और परिहासात्मक संवाद के द्वारा एक अन्तर्नाट्य की प्रस्तावना प्रस्तुत करते हैं। अन्तर्नाट्य के प्रमुख पात्र कुटुम्बकुठार और कुलकलङ्क हैं।

कुतूहल

कुतूहल कोटि की रचनाओं में इस प्रकार विभिन्न अंकों में विषय-वैभिन्न्य मिलता है। इसी शताब्दी के परवर्ती कवि भोलानाथ शुक्ल के कर्णकुतूहल में तीन कुतूहल—राजवर्णन, सम्भोग तथा मंगल क्रमशः हैं।

समीक्षा

कवि का एक सामाजिक दृष्टिकोण है, जिसे वह प्रेक्षकों को देना चाहता है। यथा,

स्त्रियो न निन्द्या न कदापि हेया स्त्रियोऽखिलं दातुमलं समर्था।

प्रायशः कृष्णदत्त सोत्साह अश्लील चर्चाओं से इस प्रहसन को बोझिल बनाये हुए हैं। ऐसा लगता है कि कवि को अश्लील में हास्य का स्रोत दिखाई देता है। यह सर्वथा अनुचित है। रंगमंच पर वमन का दृश्य और विस्तारपूर्वक वर्णन अश्लीलता की परा काष्ठा है, भले ही प्रहसन हो, ऐसे दृश्य वर्ज्य हैं।

यह प्रहसन भद्दी चर्चाओं का अद्वितीय पिटारा है। सान्द्रकुतूहल का केवल चतुर्थ अंक विशुद्ध प्रहसन है। पहले तीन अंकों में प्रहसन-तत्त्व नहीं हैं। कवि की यह रीति प्रतीत होती है कि एक ही रंगमंच पर विविध प्रकार की उच्चावच घटनाओं और चर्चाओं को अलग-अलग अंकों में रखने से बहुविध प्रेक्षकों का बहुविध मनोरंजन हो सकता है। कुछ दृष्टियों से यह रूपक सफल माना जा सकता है।

प्रधान-वेंकप्प का नाटचसाहित्य

सूत्रधार ने प्रधानवेङ्कप्प का परिचय इनकी रचनाओ की प्रस्तावना मे दिया है। कामविलासमाण मे बताया गया है कि वेङ्कप्प राम के परम भक्त थे। वे सर्वभाषा वैशारद्य तथा बहुविध कलाओ मे अपनी वैदग्धी हनुमद्भक्ति के कारण सम्भव हुई मानते थे। वेङ्कप्प को अपने जीवन-काल मे यश प्राप्त हुआ। उनको समकालिक कवियो ने सरस्वती का पुरुषावतार माना था। वीरराघव मे सूत्रधार ने उन्हे आञ्जनेय द्वितीयावतार कहा है। उन्हे मूर्तिमान् धर्म कहा जाता था। वे परम सुशील थे।

वेङ्कप्प का जन्म भागव वश मे हुआ था। उनकी माता बाबाम्बिका और पिता हम्पाय थे। पिता राजमन्त्री थे। कवि श्रीरामपुर का रहने वाला था।[1] वह अपनी दानवृत्ति के लिए विख्यात था। वेङ्कप्प के प्रधान गुरु आचार्य चिदानन्द थे।

वेङ्कप्प मूलत ब्रह्मविद्या मे पारगत थे। साथ ही वे षड्दर्शनीवल्लभ कहे जाते थे। उनके साम्राज्य-धुरधर होने की चर्चा लक्ष्मी-स्वयवरसमवकार मे की गई है। सूत्रधार ने कहा भी है—

यस्याङ्गणे श्रीमदनीकिनीना किरीटसघर्षणजातरेणु।
दिशत्युदारोत्सवभागिनीना दिगङ्गनाना पटवासलक्ष्मीम् ॥६

वीरराघव मे सूत्रधार ने कवि को अमात्य-शिरोमणि कहा है। वे १७६३ ई० से १७८० ई० तक मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय, नञ्जराज तथा चामराज के मन्त्री थे। कृष्णराज द्वितीय (१७३४–१७६६ ई०) ने उन्हे सर्वाधिकारी नञ्जराज के अधीन प्रधान बना दिया था। कृष्णराज ने आगे चलकर अनेक विभागो के अध्यक्ष पद पर वेङ्कप्प को नियुक्त किया था। वेङ्कप्प ने मराठा राजा राघोबा से कृष्णराज की सधि कराई थी।

१ सूत्रधार ने रुक्मिणी माधवाङ्क की प्रस्तावना मे कवि-परिचय देते हुए लिखा है—

य श्रीरामपुरीविलासवसति श्रीरामकारुण्यदृक्
प्राप्तैश्वर्यपदश्चतुर्दशकला-चौरन्धरीवन्धुर।
यस्मिन् विस्मयनीयपावनकृपोल्लासो वसत्यन्वह
य प्राप्यैव रमा समानमधिप पातिव्रत विन्दति ॥७

कवि के नाम के अनेक पर्याय मिलते हैं। वे वेङ्कसूरीचन्द्र भी कहे जाते थे, जैसा लक्ष्मीस्वयवर की प्रस्तावना मे सूत्रधार ने बताया है। वीरराघव मे सूत्रधार ने कवि को वेङ्कप्रभु कहा है।

वेङ्कप्प युद्धो म लडने के लिए भी जाते थे। जब हैदरअली ने मैसूर का शासन समाला तो उसने वेङ्कप्प को जवनत कर राजधानी से दूर भेज दिया।

वेङ्कप्प न अगणित ग्रथो की रचना की, जैसा सूत्रधार ने प्रस्तावना में कहा है—

कश्शक्तस्तत्प्रबन्धसख्याकरणेऽपि सख्यावताम्।

उनकी सर्वप्रथम रचना, जो लक्ष्मीस्वयवर के सूत्रधार को ज्ञात थी, कुक्षिम्भर भैक्षव है।

वेङ्कप्प ने कम से कम आठ रूपको की रचना की, जो सभी अप्रकाशित हैं, और मैसूर के हस्तलिखित ग्रन्थागार में उपलब्ध हैं। इनके रूपको के नाम है—

(१) कामकलाविलास (भाण), (२) कुक्षिम्भरभैक्षव (प्रहसन), (ॱ) महेन्द्र-विजय (डिम), (४) वीरराघव (व्यायोग), (५) लक्ष्मी-स्वयवर अथवा विबुधानन्द (समवकार), (६) सीताकल्याण (वीथी), (७) रुक्मिणीमाधव (अक), तथा (८) उर्वशीसार्वभौम (ईहामृग)।

सस्कृत मे रूपको के अतिरिक्त उनकी रचनायें हैं—

(१) अलकार-मणिदर्पण, (२) जगन्नाथविजय-काव्य (व्याकरणात्मक), (३) सुधाझरी (उपन्यास), (४) कुशलव-विजयचम्पू, (५) आजनेयशतक, (६) सूर्यशतक, (७) हनुमज्जय, (८) विदग्धतक।

कन्नड भाषा मे उनकी रचनायें हैं—

(१) कर्णाटरामायण, (२) इन्दिराभ्युदय अथवा रामाभ्युदय तथा (३) हनुमद्विलास।

उर्वशी-सार्वभौम

वेङ्कप्प का उर्वशी सार्वभौम नामक ईहामृग अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण कृति है। पहले तो ईहामृग कोटि की गिनी चुनी रचनाओ मे से यह एक है और वस्तुत अनुत्तम है। इसकी कथावस्तु नेता और रस आदि की परिकल्पना शास्त्रीय विधान के अनुरूप हैं। उर्वशीसार्वभौम वेङ्कप्प की प्रौढतम रचनाओ मे से है। इसके पहले वे कर्णाटी रामायण, कामविलास, विदग्धत, महेन्द्रविजय, रुक्मिणी माधव, आञ्जनेय-शतक, हनुमज्जय, कुक्षिम्भर-भैक्षव आदि कृतियो का प्रणयन कर चुके थे।

उर्वशीसार्वभौम का अभिनय वसन्त ऋतु मे श्रीरामपुर के श्रीनिवास राम के महोत्सव के अवसर पर किया गया था। ईहामृग कोटि के रूपक उस युग म भी विरल ही थे। इसके अभिनय म कुवलय-शेखर कचुकी बना था।

कथावस्तु

नारद ने पुरूरवा से उर्वशी के सौन्दर्य की चर्चा की। एक बार नारायण तप कर रहे थे। उस तप से डिगाने के लिए इन्द्र ने काम और अप्सरादि को नियुक्त किया। नारायण ने बदले मे अपनी जघा से अपूर्व सुन्दरी उर्वशी को रच कर देवताओं के

पीछे पलीता लगा दिया। उसी उर्वशी को पुरूरवा प्राप्त करे, यह नारद की कलह-प्रिय नीति का सारभूत है। उर्वशी को इन्द्र अपने प्रणयपाश में आबद्ध करना चाहता था।

विदूषक उर्वशी के लिये नायक की चिन्ता देखकर राजा की इच्छानुसार मदन-यज्ञ परायण बना। वह सम्प्रति इन्द्र के चगुल मे थी—यही बाधा दूर करनी थी। राजा उसके प्रेम मे उन्मत्त-सा हो चला था। उर्वशी की अनुपस्थिति मे वह उसे देखते हुए होने का आचरण करने लगा। विदूषक ने कहा—

'ननु मयापि कोपेनैकदिन गृहिणीमुज्झित्य गृहस्तम्भादिक संवेल्यालिंगितम्'

तभी इन्द्र का सारथि मातलि पुरूरवा के पास आया और सन्देश दिया कि असुरो ने आक्रमण कर दिया है। आप रक्षा करें। राजा ने प्रस्थान करने का उपक्रम किया।

असुरो को पुरूरवा ने पराजित किया। विजयी राजा का भरपूर सम्मान इन्द्र ने किया। वही कही नर्तन करती हुई उर्वशी और पुरूरवा ने परस्पर दर्शन किये तो उर्वशी की समझ मे बात आ गई कि अब मेरे लिए इन दो मित्रो—पुरूरवा और इन्द्र मे बिगाड होगा।

मुझे लेकर इन दोनो मे आग भडक सकती है। वह इस स्थिति को न आने देने के लिए दूर सुमेरु पर्वत पर अन्तर्धान विद्या द्वारा चली गई। अलकनन्दा नदी के तट पर वह मन्दार-वन मे बैठकर प्रिय का ध्यान कर रही थी। उसे मदन-ताप सता रहा था। उसने सखी को बतलाया—

स खलु दृष्टमात्र एव मम नेत्रयुगलस्यामृतसेचन कृत्वा मा स्वाधीन-हृदया कृतवान्—

उर्वशी जानती थी कि इन्द्र उसका अभिलाषुक है किन्तु मेरे पिता के भय से मेरा बलात् अपहरण नही करेगा। इसी समय वहाँ इन्द्र चित्ररथ के साथ आ पहुँचा। उन्होने सुना कि उर्वशी पुरूरवा के प्रेम मे निमग्न है। चित्ररथ का सोचना था कि वह इन्द्र के प्रति प्रेमासक्त है, पर बात विपरीत निकली। इन्द्र ने उर्वशी को यह कहते सुना—

अतएव त्रैलोक्यवल्लभमपि सुलभमुज्झित्य पुरूरवसमेवोद्दिश्य मम मनो धावति।

इन्द्र को कान मे चित्ररथ ने उपाय बताया कि कैसे उर्वशी अविलम्ब मिल कर रहे। छद्म के द्वारा पुरूरवा का रूप धारण करके उर्वशी को आत्मसात् करना था। वे पुरूरवा का रूप बनाकर उर्वशी के पास पहुँचे। इन्द्र ने निकट वृक्ष से अन्तरित होकर उर्वशी को कहते सुना—

स यद्यल मय्यनुरक्तचेता स्वप्नेऽपि वा भोगमुपैतुमीश।
अह किमेतादृशधन्यताया अस्वप्नता पातकिनी समर्था ॥३ १०

उवशी का मदनताप दूर करने के लिए उशीरलेपादि का प्रयोग हो रहा था। इन्द्र ने देखा—

तप्तायसीव परिशुष्यति गात्रसारो लिप्तोऽपि गाढतरमेष वपुष्यमुष्या ।
चित्रो पद वितनुते यदवेक्षितुर्मे यत्नोपसम्भृतकृतघ्नजनोपकार ॥ ३ १२

उर्वशी न सखी से कहा कि इससे काम नही चलेगा। पुरूरवा का चित्र लाओ। सखी चली तो उसे थोडी दूर पर इन्द्र (पुरूरवा वेपधारी) मिले। वे उर्वशी से मिले। इन्द्र अतिथि-सत्कार उर्वशी के हाथो से ही ग्रहण करना चाहते थे।

इस बीच मातलि के विमान पर बैठा पुरूरवा उधर से निकला। उसने मन्दार-वन मे कुछ देर विहार करने का कार्यक्रम बनाया। मातलि वही द्वार पर रुक गया। राजा ने वन मे प्रवेश करने पर अपनी प्रेयसी उवशी को देखा। उसने देखा कि मेरे ही समान अन्य पुरुष यहाँ पहले से ही विराजमान है।

इन्द्र को देखकर उर्वशी का मन चचल हो उठा था। वह सपर्यापण मे देर कर रही थी। इन्द्र ने उसका हाथ पकडना चाहा। पुरूरवा ने समझा कि कोई राक्षस मेरे वेश मे मेरी प्रेयसी से बलात्कार करना चाहता है। वह उसे बचाने के लिए सामने आया। अब उर्वशी के सामने दो पुरूरवा थे। दोनो अपने को असली और दूसरे को नकली बता रहे थे। उर्वशी किंकर्तव्यविमूढ थी। वे दोनो लडने के लिए उतारू थे। तभी नारायण का भेजा कोई तपस्वी आया। उसने उर्वशी को बताया कि जो पीछे आया है, वही असली पुरूरवा है। पहला तो इन्द्र है।

पुरूरवा ने इन्द्र को खोटीखरी सुनाई और सारा इतिहास बताया कि कैसे छद्मपरायण बन कर तुमने क्या कुकर्म किये हैं। दोनो वाग्युद्ध के पश्चात् शस्त्रयुद्ध करने के लिए समरभूमि की ओर चलते बने। चित्ररथ देवताओ के पास इन्द्र के लिए उनकी सहायता भेजने के लिए चलता बना। उवशी और उसकी सखी किसी ऊँचे स्थान से प्रेमियो की लडाई देखने के लिए चलती बनी।

इन्द्र और पुरूरवा मे घनघोर युद्ध हुआ। इन्द्र पुरूरवा का वेश त्याग कर पुन महेन्द्र हो गया था। पत्थरो को भी विगलित करा देने वाला भयकर युद्ध हुआ। दिक्पाल इन्द्र का साथ देने के लिए आ गये। उवशी को भय हो रहा था कि—

एक एव स मनोरथवल्लभ सर्वपा सुपर्वणा रणपात्रमिति वेपते मे हृदयम्।

इधर नारायण के भेजे हुए ऋभुगण पुरूरवा की सहायता के लिए आ पहुँचे। युद्ध का वणन है—

क्वचिद् भ्रमितपट्टिश क्वचिदुदिर्तसिंहस्वन
क्वचिद् हृदयभेदनप्रथमवीरवादोल्वणम्।
क्वचिच्छरधनुष्करप्रसभपानिसादिव्रज—
प्रचारनयनोत्सव जयति जन्यभूमीतलम् ॥ ४ १३

तब तक नारद बीच मे आ टपके ।, उन्होने बताया कि युद्ध बन्द हो । उर्वशी जिसे चाहे, वही उसका अधिकारी हो । यथा,

, मन्दारकुसुममालामादायाभ्येति सा वरारोहा ।
य कामयेत मनसा त कुर्यान्नाम तत्परिष्कारम् ॥ ४ १६

गन्धर्वों ने देखा कि उर्वशी ने कामुक इन्द्र को छोडकर पुरूरवा का वरण किया है । उर्वशी तो साधारण स्त्री थी ही । नेपथ्य से उसके विषय मे सुनाया गया—

अये सक्रन्दन किमिति चिन्तयसि ।
अनुभूय भोगपूगानभिलपतु त्वामत पर सैषा ॥

नारद ने इस प्रकार इन्द को आश्वासन दिया । नारद ने पुरूरवा से कहा कि आपका पुत्र आयु होगा । आप सार्वभौमत्व प्राप्त करेंगे । पुरूरवा मातलि के विमान पर लौट आया ।

शिल्प

चार अङ्को के इस ईहामृग मे प्रस्तावना के पश्चात् और प्रथम अक के पूर्व तथा अयत्र भी विष्कम्भक है । इस भारतीय विधान का परिपालन प्राचीन रूपको मे कहीं-कही ही मिलता है । नाट्शास्त्राचार्यों ने नियम बना दिया है कि नाटक, प्रकरण, नाटिका और प्रकरणिका मे ही प्रवेशक और विष्कम्भक का समावेश हो सकता है, अन्य रूपको और उपरूपको मे नही । इस प्रतिबन्ध को परवर्ती रूपको मे मान्यता नही मिलती दिखाई पडती है ।

रगमच के दो भागो मे अलग-अलग पात्रगण सवाद करते हैं । पहले से उवशी और उसकी सखी एक ओर हैं । इसके पश्चात् आये हुए इन्द्र और चित्ररथ बातचीत करके और उर्वशी की बात सुनते हुए दूसरी ओर खडे हो जाते हैं ।

'पुरूरवा का वेष धारण करके इन्द्र उवशी से प्रेम बढा रहा है । छिपकर पुरूरवा उनकी बातें सुन रहा है ।' ऐसा सविधान सस्कृत नाट्य साहित्य मे विरल ही है । इन्द्र के द्वारा पुरूरवा का वेश धारण करना छायात्मक है ।

इस नाटक मे अको की श्रमसस्या और विष्कम्भक के अन्त मे 'विष्कम्भक' ऐसा दिया है । इस प्रकार अक के भीतर अक के अग रूप मे विष्कम्भक नहीं है ।

युद्ध का वर्णन चूलिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

समीक्षा

विदूषक की हास्योक्तियाँ अच्छी लगती है । प्रथम अङ्क मे वह उर्वशी को क्षण भर मे अपने उत्तरीय के अचल मे बाँधकर लाने को तैयार है । राजा ने भी उसकी बात का समर्थन किया 'तावानस्ति तव प्रताप ।' यह परिहास के लिए है ।

चित्ररथ की कतिपय उक्तियो के द्वारा वेङ्कप्प ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्वामी के विषय मे अनुचरो की उक्तियो और मनोभावो मे साम्य नहीं होता । चित्ररथ मन

मे सोचता है कि इन्द्र कितना कापुरुष है, किन्तु उसे प्रसन्न करने के लिए समर्थन करता है। यथा,

कथमस्य गर्हिता वृत्तिं जानतोऽपि तदेकायत्तचित्तता न खेदयत्यात्मानम्। तथाप्याश्वासयामि प्रकृतानुरोधेन। देव को वापकर्षश्चिन्त्यते। सर्वेऽपि मदनपरवशतामुपगता एव।

रूपकों मे केवल ईहामृग की कथा मिश्रकोटि की होनी चाहिए। इस कथा मे मिश्र कथानक का लक्षण विचारणीय है। वस्तुत नायक और नायिका का परिणय प्रख्यात है और शेष सारा सविधान कल्पित है। इसका कल्पित अश ही कलात्मक चूडात है।

वीरराघव

वीरराघव व्यायोग का अभिनय शरद् ऋतु मे श्रीरामपुरी मे भगवान् रघुपति के महोत्सव के दर्शन के लिए आये हुए विद्वानो के विनोद के लिए हुआ था।

कथावस्तु

दण्डकावन मे राम के आश्रम पर आये हुए मुनियो ने प्रार्थना की कि आप हमे राक्षसो से अभयदान दें। राम ने प्रतिज्ञा की—एवमस्तु। तब तो क्रुद्ध होकर राक्षसो ने विराध को भेजा। वह मारा गया।

एक दिन राम के सवाददाता जटायु ने समाचार दिया कि खर और दूषण राक्षसो की बडी सेना लेकर आक्रमण करने के लिए आ रहे है। राम की सहायता करने के लिए मातलि इन्द्र का रथ लेकर आ पहुँचा। राम के निर्देशानुसार जटायु किसी पर्वत पर जा बैठे, जहाँ से उन्हे राक्षसो की गतिविधि का निरीक्षण करना था। राक्षस-सेनापति घोर शोर करते हुए आ पहुँचे। मातलि ने राम को अपने रथ से समरोचित स्थान पर पहुँचा दिया।

रगमच पर चित्ररथ और चामरग्राही के सवाद के द्वारा युद्ध का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। चामरग्राही ही प्रश्न पूछता है और उनके उत्तर क्रमश चित्ररथ पद्यात्मक देता है। खर का भाई त्रिशिरा युद्ध करने के लिए आया। युद्ध मे वह मारा गया। फिर दूषण लडने के लिए आया। उसने कहा—

नायं सुबाहुर्न च ताटकापि न जामदग्न्यो न च वा विराध।
सरोष-कालान्तक-भीषणोऽत्र सपत्न-हन्ता ननु दूषणोऽयम्॥५६

राम और दूषण मे वीरैषणा-परायण उक्ति-प्रत्युक्ति हुई, जो नेपथ्य से सुनाई जाती है—

तब तक भूत के समान दूषण का सिर राम के बाण से कटा हुआ आकाश मे उडता दिखाई पडा।

अन्त मे युद्ध करने के लिए खर आया। उसने राम को ललकारा कि बुड्ढो और दुबलों को मार कर तुम बडे बने हो। राम ने बाणवर्षा से उत्तर दिया—

पतदुत्पतदम्बकावलीनामुपघातेन परस्परोदितानाम् ।
न पलैरुपसादित तदा चेत् किमसावन्तकजिह्वका विकास ॥

राम ने स्वपन-जृम्भण-मोहनादि बाणो को चलाया। उन्होने अत्यन्त कौशल के प्रयोग से खर को धराशायी किया। युद्ध समाप्त हुआ। ऋषि राम को बधाई देने के लिए आते हुए कहते हैं—

जित्वा सयति लोककण्टकमय रक्षस्त्रय सैनिकै-
रक्षम्य स्वयमेकमेव तरसा तीर्णं प्रतिज्ञार्णव ।
ग्रद्यायाति सुखी स राघव इति द्रष्टु समुत्कण्ठिता
दृष्टिरसम्प्रति चेतसोऽपि पुरत स्वातन्त्र्यमालम्बते ॥

शिल्प

वीरराघवव्यायोग के आरम्भ मे मिश्र विष्कम्भक है। यह नवीन प्रयोग है। परम्परानुयायी नाट्यशास्त्रियो के अनुसार व्यायोग मे प्रवेशक और विष्कम्भक का समावेश नही होना चाहिए।

वेङ्कप्प की सगीतमयी शैली अनुप्रास-गुणोत्तरा कही जा सकती है। उदाहरण के लिए अधोलिखित पद्य है—

कण्ठीरवार्कापिकरा करीन्द्रा कलापि सस्नेहकला फणीन्द्रा ।
नरक्षुवक्षश्शयिता कपीन्द्रा सुखेन सर्वेऽत्र महामुनीन्द्रा ॥

ऐसी सुसरला भाषा सवथा नाट्योचित है।

लक्ष्मी-स्वयवर-समवकार

लक्ष्मी स्वयवर-समवकार का सर्वप्रथम अभिनय श्रीरामपुरी मे तिरुवेङ्गलनाथ नामक रघुनाथ के महोत्सव के अवसर पर उपस्थित रसिकमण्डली के मनोरञ्जन के लिए हुआ था। इस रूपक के अभिनय मे रङ्गभूषण और रङ्गतिलक पात्र थे।

कथावस्तु

वरुण ने समुद्र की कन्या लक्ष्मी का विवाह करने के लिए स्वयवर कराया, जिसमे बहुत से देवादि आये। बात यह हुई थी कि प्रणय-कलह के कारण माधव की प्रेयसी लक्ष्मी ने समुद्र की कन्या के रूप मे पुनर्जन्म लिया था। वैनतेय न माधव की प्रणयोन्मत्त स्थिति देखी तो निवेदन किया कि अनुमति दें तो अकेले ही समुद्र को जीतकर लक्ष्मी को आपके लिए ले आऊँ। माधव ने कहा कि यह उपाय ठीक नही। अभी समय आने दें। वैनतेय का कहना है—

कृत्वा वासुकि–साहाय्य जित्वा चासुर–मण्डलम् ।
स्वयवरमहो नून स्वय लक्ष्मीमुपेष्यसि ॥३०॥

विष्णु पर कामदेव-हतक का प्रभाव देखकर वैनतेय व्याकुल हो उठा।

तभी नारद आये। उन्होने विष्णु से बताया कि समुद्र अपनी सुन्दरी कन्या लक्ष्मी को लोकैकवीर पति को देने लिए स्वयवर कर रहा है। दानव जानते हैं कि लोकैकवीर तो माधव ही हैं। हम सभी माधव का रूप धारण करके स्वयवर मे पहुँचें, फिर देखा जायेगा। वैनतेय ने कहा कि यह तो हुआ गदहे का शार्दूल का चमडा ओढ कर छलने का प्रयास करना। नारद ने सुझाया कि लक्ष्मी आप पर लट्टू हैं। आप तो जाकर उसे ले आयें। वैनतेय की सवारी से कृष्ण स्वयवर-प्रदेश मे आ पहुँचे।

स्वयवर मे सखियो के साथ लक्ष्मी आई। वैतालिक सबसे पहले दानवो का वर्णन करता है। लक्ष्मी की प्रतिक्रिया है—इन्हें छोडकर आगे बढें। विद्याधरो को इसलिए लक्ष्मी न ठुकरा दिया कि वे इन्द्र के अनुचर हैं। आगे वैतालिक ने इन्द्र को सामने आने पर उसका प्रशसात्मक वर्णन किया। विदूषक ने निन्दात्मक चित्रण किया। लक्ष्मी आगे बढी। सामने अग्नि आये। वैतालिक ने उनकी प्रशसा और विदूषक ने निन्दा की। इसी प्रकार आगे क्रमश यम, निर्ऋति, वायु, कुबेर, आदि को लक्ष्मी ने अस्वीकार किया। अन्त मे माधव समक्ष आये। उनके साथ शिव, अगस्त्य, मय, इन्द्र, चन्द्र आदि थे। रमा ने उन्हें देखते ही सद्य वरण किया। माधव ने विवाह के लिए सज्जा का आदेश दिया। सागर और वरुण ने आकर इस उपक्रम का अनुमोदन किया। वरुण ने समुद्र को उन सभी देवो का परिचय दिया, जो विष्णु के साथ थे। यथा,

> अय चेद् विघ्नेशम्पुरपतिरय नारदमुनि-
> स्त्वय चागस्त्योऽय रविरयमय कुण्डलिविभु।
> मयश्चाय चन्द्रस्स्वयमयमय चापि धनद
> सुराणामाचार्योऽप्ययमुपगतो माधव-कृपाम्॥२३७

वैनतेय ने सागर और वरुण का परिचय कराया। फिर वैवाहिक महोत्सव प्रारम्भ हुआ। वैवाहिकी यात्रा का अलकरण हुआ।

तृतीय अङ्क मे विष्णु विवाह के अवसर पर अन्य देवों को पारितोषिक दते हैं। इन्द्र को साम्राज्य-पद, नारद को गायक-धौरेय-पद, शेष को शयनीय पद, अगस्त्य को अखिलर्षि-उपदेश-पद, शिव को समस्तभजनीय-पद आदि दिये गये। गणेश पिचण्डिल और बृहस्पति आचार्य बना दिये गये। सबने सन्तोष व्यक्त किया और युगल-जोडी को अमरता का आशीर्वाद दिया। सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये।

शिल्प

समवकार की परिभाषा इस कृति की प्रस्तावना म इस प्रकार सूत्रधार ने दी है—

> 'विबुधदानवमुख्यरयाद्भुत—
> प्रकटसर्वरसप्रसवाकर।
> समवकार इति प्रथितस्समा' इत्यादि।

लक्ष्मीस्वयवर मे छद्म और माया की प्रचुरता है। माया प्राय छायातत्त्व का पर्याय है। कचुकी के अनुसार दानव और विष्णु दोनो ही माया का आचरण करेंगे। यथा,

वितत्य वैष्णवी माया वीरश्रीमाधव स्वयम्।
अशेषमायासम्मोहमाशु सगोपयिष्यति ॥२५

समवकार मे नियमानुसार विष्कम्भक और प्रवेशक नही होना चाहिए[1], किन्तु इसमे प्रत्येक अक के पहले विष्कम्भक है ही।

समीक्षा

विदूषक के आकार का परिचय उसके नाम से मिलता है। विदूषक का नाम है कीशमुख।

समवकार कोटि के इस रूपक के अभिनय के प्रसग मे प्रस्तावना मे नटी ने कहा है—

अपूर्व खलु समवकारप्रयोग।

सूत्रधार ने नटी का समर्थन करते हुए कहा है—

सत्य विरल एव तादृशरूपकाविर्भाव।

इस समवकार मे तीन अङ्क हैं।

महेन्द्रविजय-डिम

महेन्द्रविजय डिम का सर्वप्रथम अभिनय श्रीरामपुरी के रघुनाथ-तिरुवेंगलनाथ के महोत्सव के अवलोकन के लिए आये हुए रसिको के मनोरजन के लिए हुआ था। सूत्रधार ने इसे मारिषादि पात्रो को पढाया था[2]।

कथावस्तु

देवताओ के राज्य पर दैत्यबल की सहायता से बलि ने आक्रमण किया। ऐसा होने का कारण था दुर्वासा का शाप, जो उन्होने उस समय दिया, जब उनके द्वारा प्रदत्त हार को ऐरावत ने तोड फोड दिया था। उन्होने मनाने पर शाप मार्जन किया कि विष्णु के द्वारा इसका परिमार्जन होगा।

प्रथम अक मे इन्द्र मातलि से असुरो के द्वारा किया हुआ उपद्रव सुनता है। वह उनका विनाश करने की प्रतिज्ञा करता है। बृहस्पति उन्हें ब्रह्मा का परामर्श बताते हैं कि अमृत प्राप्त करने के उपक्रम मे असुरो को परास्त किया जाय। इन्द्र ने ब्रह्मा की बात न चाहते हुए भी मान ली।

द्वितीय अक मे देवताओ के परास्त होने पर एक दिन बृहस्पति शुक्र के घर पहुँचे और उनसे बोले कि मैं आपका छोटा भाई आया हूँ। बृहस्पति ने उन्हे योजना बताई कि कश्यप के वशज देव और दानव मिलकर समुद्र से अमृत प्राप्त करें।

---

१ नात्र विन्दुप्रवेशकौ। दशरूपक ३ ६१

२ नन्वध्यापित महेन्द्रसाहसनिरातङ्क श्रीवेङ्कयार्यस्य महेन्द्रविजय नाम तादृशगुणगणनाभाजनम्। प्रस्तावना से।

शुक्र ने बलि के पास जाकर उनसे बताया कि देव प्रायः उन्मूलित हो चुके हैं, पर उनसे कब तक वैर रख कर अपने भी भय से पीडित बने रहें? बलि ने पूछा कि क्या करना है? शुक्र ने उनसे बृहस्पति की योजना बताई कि दुर्वासा के शाप से बचने के लिए आवश्यक है कि हम सब सुधा प्राप्त करें और इसके लिए समुद्र-मन्थन करें। बलि ने कहा कि इस सारी योजना के भीतर इन्द्र की कोई चाल है कि वह हम लोगों पर विजय प्राप्त करे। शुक्र ने कहा कि ठीक है। फिर बलि के कान में बताया कि हम लोग तो इस (आसुरी) नीति के अनुसार काम करें। बलि की समझ में बात आ गई कि देवों को छल कर पूरी सुधा प्राप्त कर लेंगे। निर्णय हुआ कि गुपचुप विधि से सब काम बनाया जाय। बलि के उद्यत हो जाने पर बृहस्पति को उनसे मिलाया गया। बृहस्पति के शिष्टाचारवशात् बलि उनके चरणों पर गिर पड़ा। तब तो शुक्र ने उनसे कहा—

अनुगृह्यतामेष भवदन्तेवासी सार्वभौम।

बृहस्पति ने बलि के द्वारा इन्द्र के विषय में पूछने पर कहा कि हमने तो उनकी पराजय के पश्चात् उनकी उपेक्षाकर दी है। बलि ने कहा कि हम और इन्द्र भाई-भाई हैं। वैर नहीं रहना चाहिए। शुक्र ने कहा—

चिरविरोधिसुरासुरमण्डली विहितमैत्रितया यदवाप्यते।
विषयभोगविरागतया तव तदनवाप्यमितीव मतिर्मम॥

अन्त में बृहस्पति बलि से यह वचन लेकर लौटे—

तद्गम्यतामुभयकुलकुशलाय।

शुक्र ने बलि से कहा कि हम सबको प्रयत्न तो यही करना है कि अमृत हमें ही मिले, देवताओं को नहीं।

बृहस्पति के प्रयास से देव और असुर मिलकर बलि की अध्यक्षता में एकमुख हो चले। दोनों पक्षों को अमृत पाने की गूढ़ इच्छा थी। समुद्र मन्थन के लिए विष्णु मन्दराचल को उठा लाये।

बृहस्पति ने बातों-बात इन्द्र को बताया कि छल से शत्रुओं की सम्पत्ति को जीतना है। इन्द्र इसे अपना गौरव मानते थे। वे तत्काल युद्ध करना चाहते थे। बृहस्पति ने कहा कि अमृतकलश निकलने दीजिये, फिर सब ठीक हो जायेगा।

अमृतकलश की प्राप्ति के लिए जब मन्थन आरम्भ हुआ तो इन्द्र बृहस्पति के साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ शुक्र के साथ बलि था। वहाँ बलि को शुक्र बता रहे थे—

अमृत भावित नूनमसुरारेर्निदेशित।
बलित्वाद् भवनामेनद् भविष्यति वश पदम्॥१५

सभी मिले तो शुक्र और बृहस्पति ने साथ कहा—

इयमपि सद्बुक्ता भ्रातरार्येति वाणी
श्रवणपुलकपेय दोग्धृपीयूषमेषाम्।

अलमलमनुकूलभ्रातृसौहार्दवाचा—
ममृतमिति कियत् स्यादग्रतो वा न विघ्न ॥१६

किं च-

यत्काश्यपस्य यमिनस्तपसोऽनुरूप यच्चावयोरपि मनोरथसिद्धिसाध्यम् ।
यद्देवदैत्यकुशलानुभवैकमूल तत् सौहृद समजनीति जित विधात्रा ॥१७

बलि और महेन्द्र दोनो ने साथ मिलकर कहा—
सर्वमपि युष्मत् कृपाकल्पतरुपरिपाक ।

उन सबकी मित्रता ऊपरी थी, पर बाहर से सप्रेम उन्होंने समुद्रमन्थन घूम-फिर कर देखा। तब तक अमृत-कलश निकलने के पहले कालकूट निकला, जिसे शिव ने पिया। क्रम से कल्पवृक्ष, अश्व, ऐरावत, लक्ष्मी, वारुणी चिन्तामणि, आदि निकले। इन्द्र ने कहा कि यह सब हम लें। बलि न कहा—ठीक है। केवल लक्ष्मी और वारुणी मे से कोई एक हमारी हो।

अन्त मे धन्वन्तरि अमृत-कलश लेकर निकले। उसे छीनकर दैत्य-दानव इधर-उधर भागन लगे। बलि स्थिति सुलझाने के लिए उनके बीच गये और तभी इन्द्र को सूझा कि बल प्रयोग से सुधा-कलश हथियालें। बृहस्पति ने कहा कि जल्दी न करें। विष्णु से पूछा जाय कि ऐसी स्थिति म अब आगे क्या किया जाय।

विष्णु ने अमृत-कलश की प्राप्ति के लिए मोहिनी का रूप धारण किया। नारद उनके इस उपक्रम के विषय मे कहते हैं।

गुणो गृहीत कतमोऽङ्गनानामणोरणीयानपि वा भवद्भि ।
क्य जन प्रत्ययभाजन स्याद् विकारवेदी विषवल्लिकासु ॥

दैत्यो ने अमृत-कलश बाँटने के लिए मोहिनी को दे दिया। उसने सारा अमृत देवो को पकडाया। तब भी असुर—

कटाक्षैरेव मोहिन्या कामसाहित्यमाययु ॥४४

केवल राहु-केतु ने अमृत पिया असुरो मे से, पर उसका सिर विष्णु द्वारा चक्र से तत्काल काट दिया गया। विष्णु अपने लोक चले गये। देव-दानवो मे युद्ध छिड गया। रङ्गमच पर रथारूढ होकर इन्द्र और बलि युद्ध के लिए आ पहुँचे। महेन्द्र ने कहा—

भो भो वैरोचने, यदेवमभियुक्तो बलवद्भिरस्माभि ।

बलि ने उत्तर दिया—

कुतो वा मम वीरता भवादृशाना पुरत
अप्रमेयधैर्यशालित्वादय जानाति मन्दर ।
न वा तव वचोभगी न गीर्वाणशिरोमणि ॥४२२

रगमच छोडकर दोनो पक्ष लडने के लिए समरोचित भूमि की ओर चलते बने। बलि ने मायाजाल के द्वारा असख्य सैनिको को उत्पन्न किया। बलिवर्ग ने कहा—

कृत्वा शक्रस्य वध पीत्वा रुधिर नवम्।
नृत्यामो, रणशीर्षे नित्य निर्वृत्तमानसा ॥३७

इन्द्र ने सबको मार गिराया। महेन्द्रविजय सम्पन्न हुआ। फिर महेन्द्र का पट्टाभिषेक ऋषियो ने विधिवत् किया।

शिल्प

भारतीय नियमानुसार डिम मे विष्कम्भक या प्रवेशक नही होने चाहिए। इसके विपरीत प्रस्तावना के पश्चात् इसमे नारद और उनके शिष्य का सवाद विष्कम्भक मे है।

एक ही अक मे विविध स्थलो के वृत्त का अभिनय थोडी परिक्रमा मात्र से अन्यत्र पहुँचना दिखाकर किया गया है। तृतीय अङ्क मे बृहस्पति और इन्द्र कही बात कर रहे हैं। इस प्रकरण मे—

महेन्द्र—(सहर्षम्) कथमुपक्रान्त एव कलशाब्धिमथनप्रयत्न। तदिदानी यत्र भार्गवसखायो बलिप्रमुखा तत्रैव भवितव्यमस्माभि।

आगिर—तथेति। (उभौपरिक्रामत) (तत प्रविशति भार्गवेण सह वलि)।

समीक्षा

प्रस्तावना मे डिम के लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं—

यत्रैवास्ति समस्त-सम्तुतिपदप्रोद्भासिनो षड्रसा
यत्र प्रद्युम्नकेतिवृत्तघटना धीरोद्धतो यत्र राट्।
यद्देवासुरयक्षराक्षसचमूसघर्षाद्यद्भुत
तद्भूयादधिदृक्पद डिमपदप्रख्यातक रूपकम् ॥४

छायातत्त्व

विष्णु का मोहिनी रूप धारण करके दैत्यो को छलना छायानाट्य-तत्त्वानुसारी है।

रुक्मिणी-माधवाक

कथावस्तु

विदर्भ से आकर ब्राह्मणदूत ने रुक्मिणी का पत्र कृष्ण को दिया, जिसमे लिखा था कि आप आकर मुझे ले जायें, इसके पहले कि शिशुपाल रुक्मी की सहायता से कुछ गड़बडी करे। कृष्ण ने उससे कहा कि एवमस्तु। दूत चलता बना। बलराम की अध्यक्षता मे सेना के साथ कृष्ण रथ पर विदर्भ की ओर चले। वे दारुक को सारथि बनाकर शीघ्र ही विदर्भ मे भीष्मकपुरी पहुँचे। वे नगर-वाटिका मे प्रविष्ट हुए। दारुक ने वहाँ के वृक्षो को देखा—

माकन्दमजुलमरन्दसरप्रसार — सामोदसवहनशीतलशीकरोऽयम्।
प्रागत्य गन्धवह एप विशेषवन्धु रालिगतीव शुभवन्तमसौ भवन्तम् ॥२२

उसी वन मे रुक्मिणी चण्डिका-दर्शन के लिए आ गई। कृष्ण दारुक के साथ चण्डिका-मन्दिर मे छिपे हुए थे। सभी को बाहर ही रोककर अकेले मे चण्डिका से प्रार्थना करने के लिए रुक्मिणी भीतर घुसी। कृष्ण ने उसके सौन्दर्य को निहारा—

शुचेराघातत्वान्मदनपुनरुज्जीवनकृते
रसस्याविर्भावं किमिह मयता भूयमयत।
अनङ्गस्याज्ञामप्यवनितलमानेतुमुदिता-
ज्जगज्जेत्री शक्तिर्जयति नवचूताङ्कुरमयी॥२७

कृष्ण ने देखा कि उसके पास कटि तो मानो है ही नही—

नभ इव तनुमध्यं ॥२६

रुक्मिणी ने स्त्रीत्व की अस्वतन्त्रता पर झख मारा। वह कहती है—

हा हतास्मि अस्वतन्त्रत्वप्रतिपादकेन स्त्रीत्वेन।

इधर शिशुपाल के विवाह के लिए कौतुक-मगल की प्रक्रिया सम्पन्न हो गई थी। इसे सुनकर रुक्मिणी मूर्छित हो गई। तब तो कृष्ण ने दारुक से कहा कि रथ लाओ। रथ पर रुक्मिणी को सखी के साथ बैठाया गया। रथ चल पडा। इस घटना की सूचना प्रसारित की गई कि कन्या का अपहरण करने वाले को सेना पकड कर दण्ड दे। मूर्छित रुक्मिणी को तभी चेत आया, जब कृष्ण ने अपने हाथ से देखा कि उसकी हृदयगति बन्द तो नही हो गई। रुक्मिणी और उसकी सखी समझती थी कि यह शिशुपाल का रथ है। अब हमे मर जाना चाहिए। उन्होंने वेणियो से फाँसी लगाने की सोची। दारुक ने उन्हे बताया कि ये शिशुपाल नही, कृष्ण है।

अन्त मे लडने के लिए शिशुपाल आ पहुँचा। रुक्मिणी सोचती है कि शिशुपाल जीतेगा तो पहले ही मैं क्यो न मर जाऊँ। इधर जरासन्ध, शिशुपाल और साल्व लडने के लिए आ पहुँचे। रगमच पर शिशुपाल रथ से आया। उसने कृष्ण को अपहरण के लिए खोटी-खरी सुनाई। कृष्ण का भयकर उत्तर सुनकर वह रण-छोड बना। फिर कृष्ण को बच निकलने का अवसर मिला। बलराम की सेना ने जरासन्ध को परास्त किया।

रुक्मिणी का पिता बलराम का मित्र बन कर कन्यादान करने के लिए द्वारका आया। कन्यादान-महोत्सव सज-धज के साथ सम्पन्न हुआ। ब्राह्मण दूत को रुक्मिणी ने मुक्ताहार और कृष्ण ने सम्मान दिया। भरतवाक्य शोभन है—

भवत्वदुर्भिक्षपदं धरित्री भजन्तु नाथ विबुधा रसज्ञम्।
अचचला नित्यकलासमृद्धिर्जयत्वपारोत्सवसम्प्रसार ॥४६

शिल्प

रुक्मिणी माधवाङ्क की प्रस्तावना मे नटी ध्रुवागान करती है, किन्तु उसका गीत नहीं मिलता। प्रस्तावना मे माधव और दारक की भूमिका मे पात्र बनने वाले ये

मणिशेखर और चम्पकशेखर। रूपक का आरम्भ बीज रूप मे संक्षिप्त कथानक से होता है। यथा—

वैदर्भात् समजनि रुक्मिणीति कन्या धन्या या गुणगणवर्णनीयताया।
सा च त्वय्यनुदिनमेधमानभावा सातक हृदयमधत्त चैद्यभीता ॥११

नेपथ्य से रगमच से बाहर होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित कोलाहल सुनाई पडता है।

समीक्षा

एक अक के रुक्मिणी-माधव मे द्वारका और भीष्मकपुरी की घटनाओ का अभिनय मिलता है। यह अस्वाभाविक है। कृष्ण रुक्मिणी को लेकर भागे तो जगल पार कर लेने पर भी वही रगमच उसी अक मे रह गया।

सीताकल्याण-वीथी

सीताकल्याण-वीथी मे सीता के राम से विवाह की कथा है। उसके स्वयवर के अवसर पर प्रत्याशियो की सेना से मिथिला घिरी थी। राम शिव का धनुष देखने गये थे।

विश्वामित्र का आना सुनकर पुरोहित के साथ जनक उनका स्वागत करने आये। शतानन्द ने उनके साथ आये राम और लक्ष्मण का परिचय पूछा। जनक ने उनको सीता और उर्मिला के योग्य समझा।

धनुरारोपण करने मे असमर्थ अनेक प्रत्यर्थी भाग खडे हुए। दशरथ को जनक ने पहले से ही बुला रखा था। वे भरत और शत्रुघ्न को लेकर आये थे।

विवाह हो गया। परशुराम आये। उन्हे राम ने शान्त किया। वे चलते बने। राम और विश्वामित्र परस्पर साधुवाद देते हैं। सन्ध्या हुई। सभी अलग-अलग सन्ध्या का वर्णन करते हैं। चन्द्रोदय होता है। उसका वर्णन राम और लक्ष्मणादि करते हैं। विश्वामित्र ने राम के पराक्रमो की प्रशसा की—

मारीचमुख्यमखवैरिगणं प्रहृत्य मौनीन्द्र दारगुरुशापभर निवार्य।
सीताकरग्रहणमप्यविजित्य राम क्षेम करोपि भुवनस्य तत कृतार्थ ॥६८

शिल्प

वेङ्कप्प ने वीथी की परिभाषा दी है—

अलमलमन्यालापैरसमानधीरावृत्तरसलोपं।
नवरसचक्रमवीथी नववीथो सम्प्रयुज्यता भवनाम् ॥

प्रस्तावना मे रूपक का नाम पहेली के द्वारा बताने की रीति का इस वीथी में पालन हुआ है। सूत्रधार नटो से कहता है—

पर्यायनामधेयस्स्यात् किं वा लागलपद्धते।
याचनस्यापि वेङ्कार्यकृतिश्च का ॥८

इस पहेली को नटी बूझती है और वीथी का नाम सीताकल्याण बता देती है।

इस वीथी का आरम्भ शुद्ध-विष्कम्भक से होता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार विष्कम्भक वीथी मे नही रखे जा सकते हैं। किसी घटना की सभी साथ आशसा करें—इसके लिए एक ही पद्य के विभिन्न पात्रो का एक एक व्यक्ति द्वारा कथन साकेतिक है। यथा, राम के धनुष को उठाते समय—

लक्ष्मण—आर्येण सम्भृतमहो हरचापमेतत्
विश्वामित्र—आनम्य त च सुतरा करकौशलेन।
जनक—आरोपिता च तरसाप्यमुनैवमुर्वी
शतानन्द—अत्रान्तरे झटिति भग्नमभूद्विचित्रम ॥

रगमच पर कोई काम होता नही दिखता। राम का धनुरारोपण भी रगमच पर नही दिखाया जाता।

समीक्षा

अठारहवी शताब्दी मे वीथी का प्रचलन नगण्य था। प्रस्तावना मे नटी कहती है—
अपूर्वं खलु कुलपालिकाया इव वीथी सचारस्सरस्वत्या।

सीताकल्याण वीथी के प्रथम अभिनय के दो पात्रो के नाम कुवलय शेखर और पल्लवशेखर हैं।

रगमच पर एक ही अक मे अनेक दिनो की कहानी न हो इसके लिए कवि ने कथा मे कुछ परिवतन किया है। राम के द्वारा धनुर्भङ्ग और दशरथ का उनके विवाह मे आना—यह एक ही दिन मे नही होना चाहिए और न एक ही अक मे। वेङ्कप्प ने इसका परिमार्जन करते हुए बताया है कि दशरथ तो पहले से ही जनक के द्वारा आहूत होकर वहाँ उपस्थित थे। यथा,

चिरादायात त दशरथमुपागम्य जनक
समानीयावास सह भरत-शत्रुघ्नमुखरं।
शतानन्दादेशात् सतु सकुशल दीक्षितवरो
विधातु कल्याण सपदि तनयाया प्रयनते ॥४७

कुक्षिम्भर-प्रहसन

कुक्षिम्भर नाटक का अभिनय वसतऋतु मे हुआ, जब किंशुक फूल रहे थे। इस प्रहसन का नायक कुक्षिभर बौद्धाचार्य भ्रष्टचरित ढोगी था। एक दिन उसने कामलिका नामक वाराङ्गना को देखा और उसकी वियोगाग्नि मे जलने लगा। यथा,

आमील्याक्षियुग क्षण न चलति ध्यानावधानादिव
आयस्वेति वदत्यथाश्रुविसृजन्नुन्मादमोहादिव।
आहारादि यथापुर न तनुते वैराग्यभावादिव
प्रायेणाञ्चति चैत्यवन्दनविधिव्याजेन वीथीमपि ॥

उसने अपने शिष्य वक्रदन्त से कहा कि जैसे भी हो, कामकलिका से मिलाओ मुझे। वक्रदन्त गुरु के काम की चिन्ता में था, जब उसे कुक्षिम्भर की रमेलिन भगवती कुर्कुरी का परिचारक पिचण्डिल मिला। उसे स्वामिनी ने भेजा था कि कुक्षिम्भर किसी के प्रेमपाश में ग्रस्त है क्या? वक्रदन्त ने उसे बताया कि गुरु कामकलिका के चक्कर में हैं। पिचण्डिल ने कहा कि कामकलिका तो एक हूए किलकिल-हुक्टक के प्रणयपाश में आबद्ध है। वह उसे चौबीस घंटे में कभी नहीं छोड़ता। यदि उसने जान लिया कि कुक्षिम्भर काम-कलिका पर डोरा डाल रहा है तो गुरु की नाक-कान कटवा लेगा।

कुक्षिम्भर का एक अन्य शिष्य जम्बूक था। एक दिन कुक्षिम्भर भल्लूक नामक विदूषक से मिला। गुरु की वियोगावस्था में विषण्ण गति सुनी-सुनाई। तभी गुरु मूर्छित हो गया। उन्हें सचेत करने के लिए भल्लूक ने कान में मन्त्र पढ़ा—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कर्मन्दिन्नुपश्रुत्य भवद्दशाम्
समेत्य जीर्णशर्पेण सन्ताडयति कुर्कुरी ॥१६

कुर्कुरी का नाम सुनते ही कुक्षिम्भर के कान खड़े हुए। उसने पूछा—वह योगिनी कहाँ है? थोड़ी देर में वह कामकलिका का स्मरण करने लगा कि वह मिलकर मेरा मदनताप दूर करे।

वृद्धाचार्य कुक्षिम्भर का मनोविनोद करने के लिए वे सभी उसे लेकर बुद्धायतन-वन की ओर चले। मार्ग में जो सङ्केत-गृह की ओर जाती हुई वारवनितायें मिलीं, उन्हें गुरु शिष्यों को दृष्टि-द्वारा पी लेने के लिए कहता है। आगे उन्हें कुक्षिम्भर के शिष्य धर्मगुप्त की कन्या बालविधवा दिखी, जिसे कुक्षिम्भर ने अनेक बार अपने प्रणयभोग द्वारा पवित्र किया था। वीथिका-मुख पर गडुकाक्ष मिला। उसने गुरु से आत्मकथा बताई कि मैं जनगुप्ताचार्य की कन्या को फँसाकर निष्कुट में उससे सम्भोग करने ही वाला था कि उसके बाप ने मेरे ऊपर प्रहार का भय प्रकट किया। गुरु कुक्षिम्भर ने उपदेश दिया कि तुम तो अपना काम जारी रखो, बुढियों की अथवा कन्याओं की भी सम्भोग-कामना पूरी करो।

आगे उन्हें जंगम और दास कुत्तों की भाँति लड़ते मिले। कुक्षिम्भर ने उनके लड़ने का कारण बताया कि तुम लोग स्वयं पीते हो, जानते ही हो कि मदिरा पी लेने पर कलह में जोर आता है। परस्परारोप में जंगम ने कहा कि मैं उरुभिक्षा शैवसम्प्रदायानुकूल ही लेता हूँ। कुक्षिम्भर ने उन्हें समझाया कि विधि-निषेध साधुओं के लिए थोड़े ही होते हैं।

आगे उन्हें कपाल-कुण्डल नामक कापालिक मिला। वह अपने विषय में बताता है कि अभी-अभी मैंने बलि दिये हुए मनुष्य का रक्त पिया है। भल्लूक ने कहा कि क्या बड़ी सिद्धि तुमने कर ली। मैंने तो—

परिपीय कलजधूमसारं पिदधानस्तनुमायतस्तनाभ्याम्।
उरसि स्फुटपंजरे जरत्या शयितः सौख्यभरीपरिप्लुतोऽस्मि ॥

कुक्षिम्भर ने कापालिक से कहा कि मदिरा और परदार-सेवन तो हम लोगो मे भी खूब चलता है। तुम लोग हिंसारत हो। बस, यही एक हमारी कमी है। कापालिक ने कहा कि हम महान् भगवान् भैरव के लिए बलि देते हैं। वह बुरा कैसे है ? मल्लूक ने कहा कि तुम्हारा भगवान प्रकट क्यो नही होता ? उसने कहा कि अभी भगवान को ध्यान से प्रकट करके तुम्हारी बलि उन्हे अर्पित करता हूँ। तब तो उसके आखे बन्द करते ही कुक्षिम्भर के योजनानुसार मल्लूक ने अपने को विवस्त्र करके राख पोतकर भैरव बनकर अपने को बचाया।

कापालिक के जाने के पश्चात क्षपणक (जैनमुनि) रगमच पर आता है। उसने कहा कि परदार-ससर्ग भी कर ले या घोर पापाचार कर ले, पर अमर्ष न करे। मल्लूक उन पर पिल पडा। उसने कहा कि अब मैं आप पर दण्ड प्रहार करता हूँ। अमर्ष न करना। डरकर क्षपणक ने कुक्षिम्भर का आलिंगन करना चाहा तो वह बोल उठा कि मत छूओ। मैंने अपने शरीर को रण्डाकृतालिंगन के मागलिक सस्कार से पवित्र किया है। उस जैन मुनि को मल्लूक ने गरदनिया कर बाहर निकाला।

आगे उनको चण्डिकायतन का योगी मिला। वह आत्मकथा बताता है कि योगिनियो को मैंने वश मे किया है, छक कर पीता हूँ और पिलाता हूँ। जम्बूक उससे आचार और तदनुरूप फल-सम्बन्धी प्रश्न पूछता है। विदूषक मल्लूक उसकी नाक के पास छुरी घुमाता हुआ कहता है कि यदि ठीक उत्तर न दिया तो नाक-कान काट लूँगा। योगी ने बताया—

पूजापात्रमभाणि यत्र सुभग तद्बालरण्डाभग ॥४५ इत्यादि।

कुक्षिम्भर ने कहा कि हमारा सम्प्रदाय भी आपके ही जैसा है, केवल हम मास नही खाते।

चार्वाक मिला। उसने पूछने पर अपने सम्प्रदाय की मान्यतायें बताई —

न पुण्यपापप्रसक्तिर्न चात्मा कुत प्रसक्ता परलोकचिन्ता।

चार्वाक ने पुन स्पष्टीकरण किया—

यभतु काममपि कश्चन कामिनी पिबतु नित्य-सुधाभमधुर मधु।
अपि च खादतु मासमल मुदा अपि च मूर्खमतोदितसम्भ्रमैं ॥४८

विदूषक ने सीधा प्रश्न किया कि यदि मैं तुम्हारी गृहिणी से ही कामचार स्थापित करूँ तो ? चार्वाक क्रोध से दाँत कटकटाने लगा।

आगे झगडते हुए दो दिगम्बर मिले। इनमे से एक अयोध्यावासी कुष्माण्डदास और दूसरा काशीवासी मुण्डी था। उनका परस्परारोप था कि तुम मास खाते हो तो तुम मदिरा पीते हो। कुक्षिम्भर ने उनको समझाया कि मास और मदिरा मे कोई दोष नही। जीते रहो।

आगे दो वैदेशिक विट मिले। उनका विवाद था कि अधिक आनन्द परस्त्री-क्रीडा में है या वारस्त्री-विलास मे। दोनों एक दूसरे की गृहीति की निन्दा करते थे। कुक्षिम्भर ने उनको समझाया—

पण्यस्त्री परस्त्रीति पन्था एव पर द्विधा।
परमार्थविदा तत्र परानन्दप्रयोजनम् ॥५७

गुरु कुक्षिम्भर से बढ़कर जमाने वाले विदूषक ने मत दिया—न वारवनिता और न परस्त्री—केवल दासी से ही कामक्रीडा स्वस्थ और निर्विघ्न है।

दुपहरी मे कुक्षिम्भरादि शृगारित भजन से प्रकृति मे कामक्रीडात्मक प्रवृत्ति देख रहे हैं। वे दुपहरी की धूप से बचने के लिए बुद्धायतन मे प्रवेश कर गये। कुक्षिम्भर कामकलिका से समागम करने के लिए पागल-सा होकर आचरण करता है। उसके शिष्य कहते हैं कि इसे कुकुंरी ही ठीक कर सकती है। इस बीच कुक्षिम्भर लता का आलिंगन, हा प्रिये, कह कर, करता है। तब तक कुकुंरी जा पहुँची। उसने कुक्षिम्भर को कहते सुना—

हा सुन्दरि लग्नासि भुजपजरे।

मदयति तथा न मदिरा न कलज दलनि सहितमूलेऽद्य माम्।
मदयति हि कामकलिका मदनग्रहस्मरणमाधुरीलहरी ॥६८

कुकुंरी ने कहा कि इसने मुझ बालविधवा का सब कुछ ले लिया। अब मुझे छोड़ेगा तो मैं कहीं की न रहूँगी। इसे सूप से मारूँगी। कुकुंरी ने कामकलिका के अगरेज प्रेमी हूणहतक का रूप धारण किया। पिचडिल उसके नौकर बिडालक का रूप धारण करके आया। कृत्रिम हूणहतक को देखकर कुक्षिम्भर ने समाधि लगा ली। बिडालक ने मल्लूक का केश पकड़कर उससे पूछा कि हमारे महाराज की प्रेयसी पर दृष्टि डालने वाला धूर्त कहाँ है? मल्लूक ने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता। सब कुछ यह जम्बूक जानता है। बिडालक ने जम्बूक को बेंतों से मारा।

कुकुंरी (हूणवेश मे) कुक्षिम्भर से बोली—'मम प्राणवल्लभा कामकलिका चिन्तयसि' यह कहकर चरण प्रहार किया। कुक्षिम्भर ने कहा—हम तापसो के कानों में स्त्री की बात यह पहली ही बार आ रही है। कुकुंरी ने कहा कि बकदन्त क्या करने गया था? कुक्षिम्भर न कहा कि वह तो हमारे मठ को उजाड़ने मे लगा है। इधर बिडालक ने जम्बूक और मल्लूक को खूब पीटा। कुकुंरी ने कुक्षिम्भर को कोड़े से मारा। उसके स्पर्श से कुक्षिम्भर को लगा कि उसका पाद-प्रहार तो कुकुंरी जैसा है। वह उसका आलिंगन करने लगता है।

इसी बीच असली हूणराज और उसका नौकर बिडालक आ पहुँचे। जम्बूक ने उन्हें बताया कि ये नकली हूणराज और बिडालक बने थे। मल्लूक डरकर पेड़ पर चढ़ गया।

नकली विडालक और नकली हूणराज की आफत आई। उनको दण्ड देने के लिए असली विडालक और हूणराज रंगमंच से उन्हें लेकर चले जाते हैं। हूणराज ने कुर्कुरी से बलात्कार किया। विडालक ने पिचण्डिल से मैथुन किया। कुक्षिम्भर कुर्कुरी की रक्षा करने के लिए गया। हूणराज के आज्ञानुसार विडालक ने उसके साथ भी मैथुन किया। उन सबको छोड़कर विडालक और हूणराज चलते बने।

कुक्षिम्भर को चिन्ता हुई कि हूण के सम्पर्क में आई कुर्कुरी की शुद्धि कैसे होगी। इस प्रश्न का समाधान जम्बूक और मल्लूक ने बताया, जिससे प्रसन्न होकर कुक्षिम्भर ने उन्हें आशीर्वाद दिया—

जम्भारिसुलभारभाद्र भासम्भोगसम्भ्रमाम् ।
रमणीयमनीव त्वं रण्डागमनमवाप्नुहि ॥८१

सन्ध्या हुई, चन्द्रोदय हुआ। तभी कामकलिका के साथ वक्रदन्त वहाँ आ पहुँचा। कामकलिका ने कुक्षिम्भर के चरण पर पड़कर प्रणाम किया। कुक्षिम्भर ने कहा—

विरहाम्बुधि-निधानमप्यपारं विपुनो यत्लघुवीचिकानिदानम् ।
कमलाक्षि तवावलम्बितेन स्तनकुम्भोयुगलेन सतरेयम् ॥६१

मल्लूक (विदूषक) ने कहा कि यह कुक्षिम्भर मठ की सारी सम्पत्ति अब कामकलिका को दे डालेगा। वक्रदन्त उसे लाने के लिए मठाधिपति बना दिया गया।

समीक्षा

हास्य की परिधि क्वचित् लघुतर है। ऐसे स्थलों पर प्रायश बातें शृङ्गारित हैं और अनेकश: शृङ्गाराभास नितान्त अश्लील है। अटूट शृङ्गार कवि की दृष्टि-मात्र का परिचायक है। अन्य परिहास की प्रवृत्तियाँ भी हैं। रंगपीठ पर संवादों की परिहासात्मकता तो सविशेष है ही, साथ ही जो काम किये जाते हैं, वे कुछ कम मजेदार नहीं है। यथा, जंगम हरिदास को दाँत कटकटाकर दण्ड से मारता है। हरिदास उसे चप्पल से मारता है। क्षपणक गरदनिया कर निकाला जाता है।

पात्रों की वेशभूषा भी हँसा देती है। यथा क्षपणक (जैनमुनि) है—
मलपकंपिच्छिकशरीरच्छवि पिच्छिकहस्त शरीरवानिव प्रतिबन्ध ।

शिल्प

प्रस्तावना में सामाजिकों का आदेश आकाशभाषित द्वारा सूत्रधार प्रकट करता है कि हास्यरस का कोई रूपक अभिनीत करें।

इस प्रहसन में प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक का प्रयोग है। प्राचीन शास्त्रीय नियमानुसार प्रहसन में विष्कम्भक नहीं होना चाहिए था। प्रहसन में विदूषक का होना भी अशास्त्रीय है।

पात्रों के नाम हास्यास्पद है—यथा कुक्षिम्भर, जम्बूक, विडालक, मल्लूक (विदूषक), वक्रदन्त, कुर्कुरी। सम्भवत ये सभी रूप और आचार से यथानाम थे।

छायातत्त्व

भल्लूक (विदूषक) का वस्त्र फेंककर भभूत शरीर पर पोतकर भैरव बनना छायातत्त्वानुसारी है। कापालिक ने उसे भैरव समझा और उसके लिए बलि अर्पित करने के लिए विदूषक को ढूँढता गया।

कुर्कुरी का हूणराज की भूमिका मे और विशाल्क का उसके भृत्य के रूप मे रंगमंच पर आना इस नाटक मे छायातत्त्व का मनोरंजक सन्निवेश है।

प्रयोग-शिक्षा

पात्रो को अभिनेय रूपको को पढाया जाता था। कुक्षिम्भर-प्रहसन की प्रस्तावना मे सूत्रधार नटी से कहता है—

यन्नवीनमध्यापितासि कुक्षिंभरभंक्षवं नाम।

कामविलास-भाण

कामविलास-भाण का प्रणयन कवि ने अपनी प्रौढावस्था मे की, जब वे पहले से ही अनेक काव्यो का सर्जन कर चुके थे। इस भाण का प्रथम अभिनय वसन्त ऋतु मे हुआ था।

कथ-वस्तु

कामविलास मे रंगपुर नगरी मे पल्लवशेखर नामक नायक अपनी प्रेयसी चम्पकलता से प्रात के थोडा पहले वियुक्त होकर दुःखी है कि अब फिर उससे मिलना कब होगा? कष्ट का विशेष कारण था कि चम्पकलता परोढा थी और उसका देवर पिता के घर से उसे उसी दिन पति के घर ले जाने वाला था। चिन्ता-निमग्न नायक को उसका मित्र नूपुरक दिखाई पडा, जो वीरसेन के भय से भाग रहा था। पल्लवशेखर ने कहा कि अब मेरे साथ हो, डर किस बात का? नूपुरक ने बताया कि रात मे वीरसेन की पत्नी लवंगिका से प्रणय प्रवृत्त करने ही वाला था कि वह अपने घर मे राजभवन से आया और मुझे देखकर तलवार से मारने के लिए द्वार पर खडा हो गया, पर मैंने चोरद्वार से भागकर प्राण बचाया। पूछने पर पल्लवशेखर ने उसे बताया कि रात मे चम्पकलता के साथ सानन्द रहा, पर आज वह पतिगृह देवर के साथ चली जायेगी। नूपुरक ने कहा कि आज सन्ध्या के समय तक मेरे प्रयास से आपको अपनी प्रेयसी फिर मिलेगी। वे दोनो एक ही गली से आगे बढे।

पल्लवशेखर को गुजर पौराणिक रामभट्ट स्वर्णकुम्भ के घर से गजेन्द्रमोक्ष की कथा सुनाकर लौटता मिला। वह कथा सुनने वाली रमणियो से प्रेमानुबन्ध आनन्द प्राप्त करता था। आगे पल्लवशेखर को कामगुप्त की पत्नी कल्याणी मिली, जो कमलाक्ष की वशवर्तिनी बन चुकी थी।

फिर उनको वेदवाटी का पुरोहित तल्लुभट्ट मिला। वह शशिप्रभा के घर से निकल रहा था। आगे पल्लवशेखर को उसका मित्र कमलाक्ष मिला, जिसने बताया

कि आज शशिप्रभा के द्वार पर ऐन्द्रजालिक अपने करतब दिखायेगा। मैं अभी कावेरी-तट पर मुखमार्जन करके वहाँ आऊंगा। आप भी वही चलें।

वेशवाटी के मार्ग मे पल्लवशेखर को कामपालक की कनीयसी पत्नी स्नान के लिए बाहर जाती मिली। वह माग मे अपने गूढवल्लभ नारायणभट्ट की प्रतीक्षा कर रही थी। उन दोनों का शृङ्गार अधोलिखित है—

आकृष्यान्तिकमादरेण रभसादारोप्य पर्यङ्किका-
मासज्याननमानने रदपुटीमास्वादयन्त्या रह।
गाढप्रेमविवर्धमानपुलका प्रस्वेदवक्षोजया
यस्त्वेव परिरभ्यते कुलटया सोऽय कृतार्थो युवा ॥४८

वसन्तोत्सव मे अलङ्कृत वेशवाट को पल्लवशेखर देखता है। वह वाराङ्गनाओ की रीति-नीति और काय-पद्धति को बताता है, जिससे वे विटो को दूहती हैं और निर्धनो को दूर रखती है। वे अनेक विटो को साथ ही समाकृष्ट करती हैं। यथा,

एक भ्रूवलनं स्मितैस्तदितर दृष्ट्यापर दीर्घया
वाचान्य कुचयोस्तटेन न मनाक् सन्दर्शनेनापरम्।
किंचित्किंचिदुदञ्चिनांशुकरुचि प्रत्यचितोरुश्रिया
सम्प्राप्तान् गृहमेकदैवगणिका सम्मोहयन्ते विटान् ॥५७

फिर विट किस प्रकार अहर्निश वाराङ्गनाओ के फेर या प्रणयपाश मे आबद्ध होकर दिन काटते हैं—यह पल्लवशेखर ने बताया है।

आगे उस विट को नवमजरी मिलती है। उस पर मुग्ध होकर उसने कहा—
उरसगसीम्नि विनिवेश्य द्रुत कराभ्यामुत्तुङ्गपीनकुचमर्दिनबाहुमूलम्।
म पारयन् करतल जघनोरुमूले वाछत्यसौ तव रतोत्सवमेव भय ॥६४

उसे कल मिलने की बात कहकर विट आगे चला तो उसे कलवाणी मिली। भूत और वर्तमान के प्रेमाचार की चर्चा करने पर उसे आगे बढने पर कनकलतिका मिली। आगे विद्युरेखा मिली। उसका वर्णन विट के शब्दो मे है—

पादौ पल्लवदेशिकौ हृदयतूणीरदण्डोद्यमौ
जघायुग्ममनगकुजरकरप्रस्पर्धि चोरुद्वया ।
मध्य व्योममहीधरेन्द्रशिखरक्षोदक्षमौ च स्तनौ
बिभ्रत्यद्विधुबिम्बडम्बरकलावैदग्ध्यमस्या मुखम ॥

आगे भुक्तपूर्व मणिमजरी मिलती है। उसने पूर्वभोग की आनन्दलहरी का समाकलन किया। पल्लवशेखर उसके शरीर मे त्रिदेवो का दर्शन करता है। यथा,

पादौ पद्मभवश्रिया परिणतौ वक्षोरुहावच्युत
स्थेमानौ शशिशेखरत्वकलया सर्वातिशय्याननम्।
तस्मात्त्वं तरुणीजनं परिचितस्पष्टश्च तत्त्व ब्रुवे
त्वय्येतत् स्फुटतामुपैति दयिते मूर्तित्रयाडम्बरम् ॥ ७८

उससे कल मिलने की बात कहकर पल्लवशेखर को आगे बढने पर उसे गाती हुई काञ्चनलता मिली। मुग्ध होकर उससे प्रार्थना की—कुचद्वये स्वप्तुम् ॥८३

उसे कर्पूरमजरी मिली। विट ने उसका कृपापात्र बनने की कामना प्रकट की। आगे उसे शिवमन्दिर का डिण्डिम गान सुनाई पडा। उसे पास ही मेषयुद्ध, मल्लयुद्ध आदि देखने को मिला। शशिप्रभा का घर मिला, जहाँ इन्द्रजाल-विद्या का प्रदर्शन था। वहाँ दिखाया गया—बीज डालते ही वृक्ष उग आये, उसमे पुष्प-फल लगे।

पल्लवशेखर ने कुमुद्वती के द्वारा आयोजित उसकी कन्या का प्रथम ऋतूत्सव देखा। कादम्बरी के हाथ से काञ्चनलता को वीटिका विट ने भेजी। दोपहर मे रमणियाँ विहार के लिए निकल रही हैं। महीशूर नगर की राजरानियाँ मन्दिर मे चतुर्दशगौरी महोत्सव मे दर्शन के लिए जा रही थी। पल्लवशेखर सोचता है कि इस उत्सव को देखने के लिए आज की प्राणप्रिया चम्पकलता भी आई होगी। कुछ देर मे वहाँ विट को चम्पकलता मधुश्री की भाँति दिखाई पडी। उसका वर्णन है—

अस्याश्चेदलकप्रभाहरिमणेराडम्बरस्पर्धिनी
चाम्पेय प्रसवे मुहु कृतपरीहासा च नासा पुन।
लीलाचङ्क्रमण चलदिभविजयोल्लेख करीन्द्रादिद
सल्लाप पिकसुन्दरी कलरवस्वादुत्वविद्यागुरु ॥११५

चम्पकलता की विरहाग्नि को ठडा करने के लिए कमलाक्ष पहुँचता है। उसने कमलाक्ष को बताया कि कल उसके पिता चित्रवर्मा के घर के पास चम्पकलता को देखा। चम्पकलता अपना मन देकर मेरा आशय लेकर घर के भीतर चली गई। मैं आधी रात तक उसकी प्रतीक्षा मे वही आसपास मँडराता रहा। निशीथ मे मेरा भाग्य जागा और कपाट खोल कर उसे अपनी गोद मे उठाकर निष्कुट मे लेकर उसके समागम से यथेच्छ आनन्द भोगते हुए क्षणभर मे त्रियामा बिताई। सवेरा होते ही वह फिर घर मे घुस गई। तब से उसे स्मरण कर रहा हूँ।

नूपुरक इस बीच आ पहुँचा। उसने कहा कि आपके सौभाग्य से चाचा के पुत्रोत्सव मे भाग लेने के लिए चम्पकलता ने पतिगृह-प्रस्थान स्थगित कर दिया। आपसे मिलने के लिए चम्पकलता ने पत्र दिया है। उसे देखें और उद्यान मे आज चन्द्रोदय होने पर उसे नदित करें।

समीक्षा

कामविलास-भाण परम्परानुसार मनचले लोगो के द्वारा स्त्रियो के चरित्र विनाश की गाथा प्रस्तुत करता है। ऐसे विटो ने भारत को चारित्रिक प्रश के गड्ढे मे गिराया। आश्चर्य है कि समाज मे वे तथाकथित उच्च नागरिक सम्मानित थे।

शिल्प

नान्दी के अन्त मे सूत्रधार सामाजिको के सुख की कामना प्रकट करते हुए रगमच पर पुष्पाञ्जलि बिखेरता है।

सूत्रधार प्रस्तावना लिखता था, जैसा नीचे लिखे पद्य से स्पष्ट है—

सम्मर्देन रसस्य सौख्यलहरीमुद्वेलमातन्वत
रयात कामविलास इत्यभिनवो भाणो धुरीणो गुणै ।
माद्यन्ते प्रधियोऽपि यत्र च रसास्वादाय सोऽधीयते
मञ्जर्यामिव मजुतायुतमधुस्यन्दान मिलिन्दा इव ।।८

सूत्रधार के इस पद्य से ज्ञात होता है कि प्रस्तावना-रहित रूपक को विद्वान् पढकर रसास्वाद ग्रहण करते थे ।

वर्णनो को काव्यात्मक बनाकर कवि ने भले ही प्रेक्षको का ध्यान विटो की दुनिया से पृथक् करने का प्रयास किया है, किन्तु विट के मुख से ऐसे किसी वर्णन का शृङ्गारित होना स्वाभाविक है ।[1] सूर्योदय के वर्णन मे कवि ने वाराङ्गनाओ का निर्गमन प्रधान दृश्य प्रस्तुत किया है । अन्यत्र बताया है—

वक्षोजेषु नखक्षतानि सुदृशा लाक्षारस पादयो
सीमन्तेपु च कुकुमद्रवभरस्ताम्बूलरागोऽधरे ।
लग्नश्चम्पकमालिका कुचतटे रक्तोत्पल कर्णयो
बन्धूकद्युतिरेक एव बहुधा बालातपो दृश्यते ।।४३

अन्य वर्णन सूर्यास्त और चन्द्रोदय के हैं ।

कवि के एक पद्य से ज्ञात होता है कि तारण नामक वर्ष मे इस भाण की रचना हुई । अन्यत्र मैसूर मे इसके प्रणायन की चर्चा है ।

---

१ कवि ने १०६ वें पद्य के आगे उद्यान का भी कामदेवोपपन्न वर्णन लम्बायमान किया है ।



अध्याय ५८

चण्डीनाटक

चण्डीनाटक के प्रणेता अपने युग के धुरन्धर भाषाविद् भारतचन्द्र राय हैं।[1] इनके पिता नरेन्द्रचन्द्र राय राजा की उपाधि से विभूषित थे। इनको गुणाकर की उपाधि इनके प्रशासक नदिया के राजा कृष्णचन्द्र राय (१७२८-१७८२) ने दी थी। भारतचन्द्र कृष्णचन्द्र की सभा को समलङ्कृत करते थे।

भारतचन्द्र का जन्म बगाल मे १७१२ ई० हुगली जिले के वसन्तपुर गाँव मे हुआ था और मृत्यु १८६० मे हुई। इन्होने सस्कृत के अतिरिक्त फारसी भाषा का पाण्डित्य अर्जित किया था। बङ्गला मे तो प्रवीण थे ही।

भारतचन्द्र राय की जमीनदारी बर्दवान के राजा ने छीन ली। ऐसी स्थिति मे वे दरिद्र हो गये और मामा के घर रहने लगे। इसी समय उन्होंने व्याकरण की शिक्षा ली। कई वर्ष पश्चात् जब उन्होने जमीन्दारी माँगी तो उन्हे कारागार मे डाल दिया गया। कारागार के अधिकारियों की सहायता से वे जेल से भाग कर जगन्नाथपुरी मे आकर रहने लगे। शकराचार्य के मठ मे गैरिक वस्त्रावृत सन्यासी भारतचन्द्र को कुछ समय के पश्चात अपने सम्बन्धियो के आग्रह पर गृहस्थ बनना पडा। पर वे दरिद्र रहकर घर नही जाना चाहते थे।

भारतचन्द्र ने विवाह के पश्चात् पुन अपनी पत्नी से भेंट तो की, पर अपनी आर्थिक हीनता के कारण उसे ससुर के घर पर ही रहने के लिए छोड दिया। इस बीच वे फ्रान्सीसी शासकों के दीवान इन्द्रनारायण चौधुरी के सम्पर्क मे आये। उन्होंने भारतचन्द्र को नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र के आश्रय मे रहने की व्यवस्था करा दी। नवद्वीप मे वे अपनी कविता से राजा का मनोरजन करते थे।

राजा कृष्णचन्द्र ने भारतचन्द्र के लिए सपत्नीक रहने की व्यवस्था अपने दिये गाँव मूलाजोड मे कर दी। कुछ दिनो के पश्चात् परिस्थितिवशात् उन्हे मूलाजोड से हटाकर अन्यत्र १०५ बीघे भूमि मे वे बसाना चाहते थे। मूलाजोड के निवासियो को भारतचन्द्र से इतना प्रेम था कि वे इन्हें छोडना नही चाहते थे और इस प्रेम के अनुबन्ध मे उन्हें मूलाजोड के नये स्वामी रामदेव नाग के अत्याचार सहन पडे।

चण्डीनाटक की रचना १८ वी शती के मध्यकाल मे हुई। इसके अतिरिक्त राय ने आनन्दमगल, विद्यासुन्दर, मानसिंह, चोरपचाशत, रसमजरी, सत्यपीड, ऋतुवर्णना, राधाकृष्णेर प्रेमालाप, कवितावली, नागाष्टक, धेडे वेडेर कौतुक, फरदरफत, हिन्दी कवितावली, नानाभाषेर कवितावली, गोपाल उडेर आदि पुस्तकों का प्रणयन किया।

---

१ इसका प्रकाशन कलकत्ते से भारतचन्द्र ग्रन्थावली म बङ्ग सवत् १३०६ मे हुआ था। पुस्तक की प्रति वाराणसी के विश्वनाथ पुस्तकालय मे है।

भारतचन्द्र का चण्डीनाटक अनेक दृष्टियो से विशिष्ट रूपक कहा जा सकता है। इसमे अनेक नई भाषाओ का प्रयोग हुआ है। यथा, हिन्दी, बगला, ब्रजभाषा। बगला और हिन्दी प्राकृत के स्थान पर हैं। भूमिका मे तीन पात्र—चण्डी, महिषासुर और प्रजा को रखना एक नई रीति है। बगला गीतो क माधुर्यपूर्ण विन्यास से काव्य की रोचकता स्पृहणीय बन पडी है। ये गीत विविध ताल और राग मे लिखे गये हैं।

मैथिली के किरतनिया या आसाम के अकियानाट के समान ही क्रिया-कलापो की ध्वन्यात्मक वर्णना से नाटक ओत-प्रोत है। यथा, प्रावेशिकी मे महिषासुर के आगमन का वर्णन है—

खटमट-खटमट-खुरत्थध्वनिकृत-जगति कर्णपुटावरोध
फो फो फो फेति नासानीलचलदनलात्यन्तविभ्रान्तलोक।
सप-सप-सप—पुच्छघातोच्छलदुदधिजलप्लावितस्वर्गमर्त्य
घर-घर-घर-घोर-नादे प्रविशति महिष कामरूपो विरूप।
धो-धो-धो-धो नागारा गड-गड-गड-गड चौघडीघोरगर्जे
भो भो भोरग-शब्दर्घन-घन-घन-घन बाजे च।
मन्दिरनादर्भेरीतुरीदमामा-दगड-मसा-शब्दविस्तब्धदेवं
दैत्यो ह्यसौ घोरदैत्यो प्रविशति महिष सार्वभौमो बभूव॥

प्रजा के साथ महिषासुर की उक्ति है—

सुनो रे ग्वार लोग, छोड दे उपास-जोग
मानहुँ आनन्द-भोग भैसराजजोग मे।
आग मे लगाओ घीउ काहे को जलाओ जीउ
पक्करोज प्यार पिउ भोग यही लोक मे।
आपको लगाओ भोग कामको जगाओ जोग
छोड दे जाग-जोग मोक्ष एई लोक मे॥

अध्याय ५६

जगन्नाथ का नाट्यसाहित्य

तंजोर के राजाओ के आश्रित कवियो मे दो जगन्नाथ हो चुके हैं। दोनो के पिता राजमन्त्री थे। प्रासंगिक जगन्नाथ विश्वामित्र गोत्रोद्भव थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। जगन्नाथ के गुरु कामेश्वर थे।

जगन्नाथ के आश्रयदाता तंजौर के महाराज प्रतापसिंह (१७३९-१७६३ ई०) वास्तव मे अतिशय प्रतापशाली थे। उनकी अनुज्ञा मे जगन्नाथ ने काशी की यात्रा की और वहाँ से लौटते समय पूना में बालाजी राव पेशवा के सम्पर्क मे आये। जगन्नाथ ने बालाजी के व्यक्तित्व के अनुरुप उनके कहने से वसुमतीपरिणय नाटक की रचना की।[1] बालाजी राव ने स्वय इस नाटक का प्रथम अभिनय देखा भी था। नाटक-मण्डली को बालाजी की कृपा प्राप्त थी। उन्होंने सूत्रधार से कहा—

भो कलाधर भवता भगवत श्रीमहागणपतेरेतस्मिन् महोत्सवे वार्षिके समवेता। इमे रसिका विपश्चितः। वय केनचिदभिनवेन नयगुणश्रृंगारितेन शृंगार-रसशृंगाटकेन नाटकेन विनोदयितव्या।

नाटक की प्रतिलिपि सूत्रधार को सौंपते हुए जगन्नाथ ने सूत्रधार से कहा था कि इसका प्रचार करें। सूत्रधार की एक विशेषता का उल्लेख इस नाटक मे किया गया है कि वह विविधदेशसचार-सजात-सौहृद है।

जगन्नाथ ने नाटकीय कथावस्तु के लिए एक नई दिशा अपनाई है। वे नाटक मे राजाओ के लिए हेय और उपादेय गुणो की वर्णना करके उन्हे सत्पथ पर लाना चाहते थे। लेखक ने इसे अखिलगुणशृङ्गाटक नाटक विशेषण दिया है।

पूना मराठे शासन की राजधानी १७५० ई० मे हुई। इसके पश्चात् ही यह नाटक लिखा गया। १७५८ ई० तक मराठो का अखिल भारत मे सर्वोच्च प्रभाव था। कलकत्ते से राजस्थान तक और लाहौर से कर्नाटक तक अपनी सत्ता का विस्तार करने वाला बालाजी इस नाटक का नायक गुणभूषण है। १७६१ ई० मे उनकी मृत्यु हुई। यह नाटक ऐसी स्थिति मे १७५६ ई० के लगभग रचा गया।

पाच अकों के इस नाटक म गुणभूषण नामक राजा के वसुमती से विवाह का वर्णन है।

---

१ वसुमतीपरिणय की हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरियण्टल इस्टीट्यूट, पूना मे है। जगन्नाथ की अन्य रचनायें अश्वधाटी-काव्य और भास्करविलास काव्य हैं। इनकी दो रचनायें हृदयामृत और नित्योत्सवनिबन्ध तान्त्रिक हैं। नित्योत्सव बडौदा से प्रकाशित है और भास्करविलास निर्णय सागर प्रेस से ललितासहस्र नाम से प्रकाशित है।

वसुमतीपरिणय

कथावस्तु

राजा गुणभूषण ने स्वप्न में क्षणभर के लिए बिजली की भाँति एक सुन्दरी देखी। उसके प्रेमपाश में उसका मन निगडित हो गया। उसी समय अर्थपर नामक सचिव पहले तो प्रशासनिक गडबडियो से राजा को अवगत कराता है और फिर मनोरजन के लिए मृगया, द्यूत, नृत्य आदि आयोजनो मे जाने की प्रार्थना करता है। राजा ने 'देखा जायगा' कहकर उसे अलग किया और विवेकनिधि नामक मन्त्री को परामर्श के लिए बुलाया।

राजा ने विवेकनिधि से अर्थपर की बातें राजकमचारियो के घूस लेने के विषय मे कही तो मन्त्री ने कहा कि अपवाद-रूप से भले ऐसा होता हो, साधारणत कर्मचारी कुलीन होने के कारण सात्त्विक हैं। उसी समय चरो ने सूचना दी कि दुजय नामक यवनाधिपति आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। दौवारिक ने बताया कि देशान्तर से आये नट-नटी मृदङ्ग और तालध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। मन्त्री ने मृगया के गुणावगुण की चर्चा करते हुए बताया कि राजा को मृगया से दूर रहना चाहिए। द्यूत-क्रीडा का विज्ञान तो ठीक है, किन्तु राजा इससे बचे। वाराङ्गनाओ मे आसक्ति सर्वनाशक होती है।

राजा मन्त्री के कथनानुसार राजकाज मे चौकसी वर्तता है। वह मृगया मे आसक्त है। विविध प्रकार के मनोरजन करता हुआ आधी रात तक जागता है। उसने रात्रि मे भोजन करते समय सौधजाल मे स्वप्न मे देखी हुई सुन्दरी का दर्शन किया। सुन्दरी ने भी खिडकी से राजा को देर तक देखा।

एक दिन जब किसी बालक के साथ राजा प्रमदवन मे था तो वसुमती दो सखियो के साथ वहाँ आई। राजा ने उसे देखकर पहचान लिया कि इसे ही स्वप्न मे देखा था। राजा ने मन ही मन उसका नखशिख वर्णन किया। बालक के हाथ से धनुष और गोली लेकर राजा ने एक आम के फल को तीर से मारकर नायिका के अञ्चल मे गिरा दिया। वसुमती ने उस फल को देखकर समझ लिया कि किसी ने गोली मारकर आम को गिरा दिया है। राजा फल लेने के लिए उसके पास पहुँचा। राजा ने उनसे प्रेमभरी वाणी मे उनका परिचय पूछा। सखियो ने बताया कि आपकी महारानी सुनीति के पोषक पिता पृथु की कन्या वसुमती हैं। सुनीति इन्हें पिता की मृत्यु के पश्चात् लाई हैं। गौरी की अर्चना के लिए पुष्पादि सामग्री सग्रह करने के लिए इन्हे प्रमदवन मे भेजा है। फिर सुनीति के बुलाने पर वसुमती वहाँ से चलती बनी।

राजा सुमेरु सौध पर जा पहुँचा। वहाँ सर्वदर्शी नामक चाराधिकारी को बुला कर मिला। उसने सडक पर जाते हुए दपध्मात, अस्थान क्रोध, दुष्टपरिग्रह विप्र, वेश्यालम्पट वणिक्-पुत्र, जाल्म, जुआरी ब्राह्मण-युवा, मृगयु, असभ्य हुक्काडी, लोक-

वचक धार्मिक आदि की दुष्प्रवृत्तियों का वर्णन राजा को सुनाया। फिर चिरप्रवासी की जारजपुत्र से प्रसन्नता, असत्यवादी का तथ्याहरण, कुट्टिनी का सती स्त्रियों और साधु पुरुषों को व्यभिचारी बनाने का व्यापार, ज्योतिषी का पतिताओं को जाति से बाहर न करने के लिए तर्कणा आदि लोगों की प्रवृत्तियाँ बताईं। उसने शत्रु राजा के गुप्तचर को दिखाया और बताया कि इसने इस राज्य के एक सचिव से मैत्री कर ली है। अन्त में उसने एक मान्त्रिक को दिखाया—

द्वीपान्तरस्थमपि वस्तु ददाति हस्ते दन्तीन्द्रवाजिबहला सृजति स्म सेनाम्।
देशान्तरादपि च कर्षति कजनेत्रा दृष्ट्वेदमत्र जनता विदधाति भक्तिम्॥२४५

सर्वदर्शी ने बताया कि अवन्ति देश पर यवनों के आक्रमण करने पर ऐसे गडबड चरित्र के लोग हमारे राज्य में भागकर आ गये हैं। राजा ने आदेश दिया—

ब्रूहि राष्ट्रियमस्मत्पुरे जनपदे वं तादृशा असमजसवृत्तयो यथोचित दण्ड्या इति।

विवेकनिधि ने महारानी सुमति को तैयार कर लिया कि वह अपनी छोटी बहिन वसुमती का राजा से विवाह करने की अनुमति देकर उन्हें सम्राट् बनने का अवसर प्रदान करें। साथ ही यवनाक्रान्त मिथिला देश के राजा की सहायता करके उसे अपनी ओर कर लें।

धारागृह में सखियों के द्वारा सेवित नायिका रंगमंच पर आ जाती है। मनोरम तल्प शयनीय पल्लवों से सज्जीकृत था। उस पर नायिका सोई। उसके ऊपर चन्दन-रस का लेप किया गया, जिससे उसका मदन-सन्ताप दूर हो। उन्मत्त होकर वह कहती है कि मेरे प्रियतम राजा को वज्रासन पर बैठाइये, जब राजा वहाँ था ही नहीं। वसुमती की सान्त्वना के लिए चित्रालेखन की सामग्री लाई गई, जिससे वह नायक का चित्र बनाकर उससे समागम का सुख अनुभव करे। वसुमती ने चित्र बनाया और राजा को सम्बोधित करके कहा—

अयि हृदयपाटच्चर ननु गृहीतो भवान्।

चित्र का उपगूहन कर वह प्रमुदित होती है।

भगवती कात्यायनी आई और उस चित्र को लेकर नायक के समीप गई, जिससे नायिका को उसके भाव बता सकें। नायक चित्र फलक पर नायिका द्वारा लिखित गीत से विशेष क्षुब्ध हुआ। उसने नायिका के प्रीत्यर्थ प्रतिगीत इस प्रकार लिखा—

वासन्ति सौरभमिव विवशीभूतोऽपि सुचिरसौहार्दाम्।
अनुनीय कुन्दलतिकामथ भवतीमनुभुनक्ति मिलिन्द ॥३४२

पत्र को कात्यायनी ने वसुमती को दिया, जिससे वह प्रसन्न हुई।

इसके पश्चात् महारानी सुनीति वसुमती के सन्ताप-विषयक वृत्तान्त को जानने के लिए आई।

चतुर्थ अङ्क के अङ्कास्य मे रगमच पर राजा, विवेकनिधि मन्त्री तथा सचिव अर्थपर विराजमान हैं। मिथिला से राजा मित्रवर्मा का पत्र लेकर सुमति नामक दूत आता है। पत्रानुसार मालवा का सूबेदार दुमद इन्द्रप्रस्थ के यवन राजा दुर्जय की सहायता से मिथिला पर आक्रमण करना चाहता है। मित्रवर्मा राजा गुणनिधि की सहायता की याचना कराता है। अर्थपर नामक सचिव ने कहा कि मिथिलेश्वर की सहायता के लिए थोडी सेना भेज दे। विवेकनिधि ने कहा कि पूरी सेना भेजकर मिथिलेश्वर को विजयी बनायें। अन्यथा शत्रु उस जीत कर आप पर आक्रमण करेगा। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को मिथिलेश्वर की सहायता के लिए नियुक्त किया। सेनापति विकलवर्मा युवराज की सेना का नेतृत्व करने के लिए गया। वसिष्ठ मुनि ने प्रयाण के पहले उन्हे आशीर्वाद दिया। राजा ने अपने भाई विजयवर्मा को किम्पुरुषखण्ड से सिद्ध के द्वारा लाये हुए फल को खिलाया, जिससे उसे भूख प्यास आदि से मुक्ति मिल जाय। सेना के व्यय के लिए राजकोश साथ चला। मनोरजन प्रस्तुत करने वाले लोग भी साथ गये।

सर्वदर्शी नामक चाराध्यक्ष ने बताया कि यह वन्दी आधी रात मे भालू का वेश बनाकर नगर मे उछल-उछल कर दौड रहा था। इसे गुल्माधिकारी ने पकडा है। उसके पास जो पत्र निकला, उसमे लिखा था—'स्वस्ति। यह किसी का किसी के लिए लेख है। इस कार्य के घटक व्यक्ति को सपरिवार कैद कर लिया गया है। कन्या से विवाह का यह ठीक समय है। बन्धुओ के साथ शीघ्र आयें।'

राजा ने इसका अर्थ लगाया—'हमारा मन्त्री शत्रु के राज्य का एक अश पाने पर वश मे हो जायेगा। राजसेना प्रवास पर है। राजधानी पर आक्रमण करने का ठीक समय है।' विवेकशील और राजा ने समझ लिया कि यह अर्थपर नामक सचिव का रचा हुआ खेल है। उसे कारागार मे डाल दिया गया।

मिथिला से समाचार चरो ने दिया कि युद्ध मे हमारे पक्ष के लोग कुशलतापूर्वक काम कर रहे हैं। फिर तो आकाशयान से नारद शिष्य के साथ रगमच पर आते हैं। वे मिथिला मे प्रवर्तित युद्ध का वर्णन करते हैं। अन्त में विजयवर्मा विजयी हुआ। मिथिला के राजा ने विजयवर्मा को आगे करके मालवराज दुर्मद नामक यवन को पकड लिया। मिथिला से आर्यदूतो ने विजय का समाचार दिया कि दुर्मद परास्त कर दिया गया है। वहाँ से विजय दिल्ली चला गया, राजा गुणनिधि ने विजयवर्मा को पत्र भेजा कि इन्द्रप्रस्थ मे शासन करते रहे। नगर मे विजय महोत्सव सम्पन्न होता है।

एक दिन राजा गुणभूषण वसुमती का चित्र अपनी नई चित्रशाला मे बनाकर उससे मनोविनोद कर रहा था। वही विदूषक आ पहुँचा। राजा वसुमती को पाने के लिए उत्सुक था। उसी समय महादेवी वहाँ आई। उन्हे विदित हुआ कि वसुमती के मानसिक सन्ताप का कारण उसका राजा के प्रति अतृप्त प्रेम है।

महारानी के डर से विदूषक पेड पर चढ गया। वहाँ महारानी ने राजा के साथ वसुमती के चार चित्र देखे—(१) वासगृह मे प्रसुप्त महाराज के समीप, (२) अन्त पुर मे, (३) प्रमदवन मे और (४) धारागृह मे। महारानी की सखी ने बताया कि धानायन के समीप राजा आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। महादेवी राजा के पास पहुँचने पर केवल मधुर उलाहना ही दे सकी कि आप अब मेरे लिए सपत्नी प्राप्त करने की योजना कार्यान्वित करने मे पर्याप्त सफल हो चुके हैं। राजा ने हाथ जोड कर उनसे विनती की कि हे देवि, मेरा यह एक अपराध क्षमा करें। राजा ने कहा कि आपकी अनुमति से आज मैं पुण्यक व्रत करना चाहती हूँ, जिससे आपका अभ्युदय हो। राजा ने स्वीकृति दे दी। तब तो स्वस्तिवाचन करने के लिए विदूषक पेड से उतरा। महारानी ने उसे देखकर कहा कि मैंने तो समझा था कि इस वृक्ष पर वानर चढा है।

कुछ समय पश्चात विवेकनिधि से राजा आस्थानी मे मिलता है। विवेकनिधि ने बताया कि विक्रमवर्मा ने चारो समुद्रो तक चारो दिशाओ मे विजय प्राप्त कर ली है। इन्द्रप्रस्थ मे प्रतिष्ठित विजयवर्मा ने यह सब कराया है। जीते हुए देशो से प्राप्त वस्तुओ की गणना करने के सम्बन्ध मे चित्रलेख नामक कायस्थ का काय-विवरण दिया गया है।

अन्त मे राजा महारानी के पुण्यक-व्रत का समापन करने के लिए अन्त पुर मे जा पहुँचते हैं। निकट ही खडी वसुमती कनखियो से देखती हुई राजा के विषय मे कहती है—

नीलोत्पल-श्यामलाङ्कश्चन्द्रोपमितेन वदनलावण्येन।
नन्दयति लोचन मम ननु ददात्यय मनसश्च विकारम्॥

गुणभूषण दक्षिण नायकत्व की मानसी वृत्ति को प्रमाणित करता है—

सहैनाम्या रात्रावपि कुसुमतल्प श्रितवतो
भवेत् स्वैर पार्श्वद्वितयपरिवृत्तिश्च सफला॥५ ३१

पश्चात् महादेवी राजा के चरणो मे प्रणाम पूर्वक कहती है—आप मेरी बहिन वसुमती का पाणिग्रहण करें।

राजा के द्वारा बुलाया हुआ विजयवर्मा भी इन्द्रप्रस्थ से आ पहुँचा। राजा ने भाई का सम्मादर-पूर्वक आलिंगन करते हुए उसका सम्मान किया। वसिष्ठ की अध्यक्षता मे रगमच पर वैवाहिक विधियाँ सम्पन्न होती हैं।

राजा गुणभूषण की इस विजय से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसके लिए पारितोषिक भेजे। उसे लेकर दिव्य पुरुष रगमच पर अवतरित हुआ था।

अन्त मे विवेकनिधि राजा से पूछता है कि देव, अब महादेवी आपका कौन-सा प्रिय काय करें। राजा ने उत्तर दिया—अब क्या शेष रहा—

जितोऽसौ दुर्वृत्तः समिति यवनानामधिपति-
र्वशे जज्ञे पृथ्वी चतुरुदधिवेला-वलयिता।
जयत्येकच्छत्रं जगति मम साम्राज्यमधुना
प्रिया चेयं लब्धा प्रथितकुलजाता वसुमती॥५ ३९

कवि ने भरतवाक्य में कहा है—

आचन्द्रार्कमयं सुखी विजयतां बालाजिराव प्रभुः।

नाटक के पाँच अंकों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) प्रस्तुत-नीति
(२) दोष-निरास
(३) तरंगित-विरहताप
(४) राज्ञश्चन्द्रवनितालाभ
(५) परितुष्ट-नायक।

सांस्कृतिक वर्णना

वसुमतीपरिणय की सांस्कृतिक चर्चायें महत्त्वपूर्ण हैं। राजकीय कर्मचारी घूस लेते थे। लोग घूस देकर उनसे काम बनाते थे। पर्वत, मैदान, जल और मरुभूमि के दुर्गों में पाषाण, लौह, और काष्ठ की बनी हुई सामरिक सामग्री इकट्ठी रखी जाती थी। उसमें संगृहीत खाद्य वस्तुओं की रक्षा की जाती थी। परराष्ट्रों में दूत नियुक्त होते थे। बहुत से दूत दोनों ओर से वेतन लेकर उलटी-सीधी बातें चलाते थे। जुआघरों से आय होती थी। कर्मचारी कोश की चोरी करते थे।

हास्य

नाटकाभिनय में हास्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो इस नाटक में विदूषक है, किन्तु अन्यत्र भी कवि ने हास्य-सर्जन में सफलता पाई है। यथा नारद और उनके शिष्य का संवाद है। शिष्य पूछता है कि जब युद्ध देखने को नहीं मिलता तो आप कैसे मनोरंजन करते हैं। नारद कहते हैं—

दम्पत्योरनुरक्तयोरपि मिथानिष्पादिता वाक्कलिः
प्रक्रान्तं सहसा नियुद्धमथवा भक्ष्योत्सुकं वालकैः॥४ ३०

इसी अंक में भल्लूक-वेषधारी चर के उछल उछल कर रात में दौड़ने का वर्णन हास्योत्पादक है।

नाटक में कहीं-कहीं भाण, प्रहसन आदि रूपकों का आनन्द तो आता ही है, साथ ही इसमें नीतिशास्त्र का उपदेश एक निराली योजना है।

समीक्षा

छायातत्त्व की विशेषता भल्लूक-प्रकरण तथा नायिका द्वारा स्वरचित नायक के चित्र के उपगूहनादि से आनन्द प्राप्त करने के दृश्य में है। तृतीय अंक में एक ही

रंगमंच पर नायक का सौध, धारागृह आदि के विभिन्न दृश्य अलग अलग भागों में बनाये गये हैं।[1] एक ही रंगमंच पर चतुर्थ अंक में मिथिला और गुणभूषण की राजधानी के दृश्य हैं।

कवि की कला का वैशिष्ट्य है कि उपर्युक्त सांस्कृतिक वर्णनाओं के साथ वह शृङ्गारित कथांशों को सफलतापूर्वक समंजसित करता है। जिन अंशों में राजनीति विषयक कथा की प्रचुरता है, वे कम सरस हैं, किंतु जहां शृङ्गारित प्रवृत्तियां की चर्चा है, वहाँ कवि सरसता की सृष्टि करने में बहुत पीछे नहीं कहा जा सकता है।

प्रस्तुत नाटक में चतुर्थ अंक के पूर्व अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक है। अर्थोपक्षेपक में सूचनामात्र देने के लिए केवल मध्यम और अधम कोटि के पात्र होने चाहिए थे, किंतु इस अंकास्य में स्वयं राजा नायक की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

लोकोक्ति

कवि की भाषा में लोकोक्तियों का अभिनिवेश है। यथा—

किमरण्यचन्द्रिका मम भारती।

दर्पणप्रतिबिम्बितमपि वस्तु किं नूपभोगक्षमं भवति।

अनुराग एव वस्तुन सौन्दर्यमुत्पादयति।

यत्र सिंहस्तत्र पुच्छं।

जगन्नाथ की भाषा सर्वथा नाट्योचित है। सरसता और सरलता का सामञ्जस्य प्रायशः परिपूर्ण है।

अभिनव प्रवृत्तियाँ

वसुमतीपरिणय-नाटक की कतिपय प्रवृत्तियाँ नाटककारों के लिए सदा उपादेय रहेंगी। इसमें राजा को सत्पथ पर चलाने के लिए सत्साहित्य की संवर्धना का व्यावहारिक सन्देश मिलता है। बालाजि राव को पूरे नाटक में और विशेषतः भरत-वाक्य में सुनीति के द्वारा विजयी होने का सन्देश प्रवर्तित है। राजनीति की ऐसी अनूठी संरचना परवर्ती युग में दुष्प्राप्य है। अनेक भागों में इस नाटक में मुद्राराक्षस और अर्थशास्त्र से भी बढ़कर उत्तम योजनायें प्रस्तुत की गई हैं। यवन-राजाओं से राष्ट्र की रक्षा करने के लिए हिन्दू राजाओं को अपनी एकता-संघटन करके सफल प्रयास करना चाहिए—यह कवि का अन्तर्भूत मन्तव्य राजाओं के जागरण के लिए था। जैसा पहले लिख चुके हैं, गुणभूषण साक्षात् बालाजि था, जो अपने समय में भारत का सर्वोच्च शासक और राजसंघविनायक था। उसने राजसंघ बनाकर १७६१ ई० में अहमद शाह अब्दाली पर प्रत्याक्रमण किया था।

रतिमन्मथ

जगन्नाथ ने रतिमन्मथ नाटक की रचना तंजौर में प्रतापसिंह के आश्रय में रहते

१ इस अंक में अनेक दिनों की घटनायें भी दिखलाई गई हैं। यह प्राक्कलित नियम के अनुसार नहीं है।

हुए की थी। प्रतापसिंह बालाजि राव के प्राय समकक्ष १७३९ से १७६३ ई० तक शासक रहे। कवि ने रतिमन्मथ की रचना १७५० ई० के लगभग की होगी।

तंजौर में लोकमाता आनन्दवल्ली के वसन्तोत्सव के अवसर पर इस नाटक का अभिनय हुआ था।

कथावस्तु

पाच अक के इस नाटक में पुराण-प्रसिद्ध रति और कामदेव के परिणय की कथा है। नायक और नायिका ने एक दूसरे को देखा और परस्परासक्त हो गये। मन्मथ ने अपने नर्मसचिव विदूषक से कहा कि उससे फिर कहाँ भेंट हो? उसने बताया कि नन्दन-वन में। मन्मथ वहाँ पहुँचा और अपने हाथ में लिए हुए शुक को भोजन देने के लिए गुलिका-प्रक्षेपण से एक आम का फल गिराया, जो रति के आँचल में गिरा। फल ढूँढते हुए नायक वहाँ आया और नायिका से बातचीत होने लगी। माता के बुलाने पर नायिका चलती बनी।

धीरललित नायक न मन्त्री वसन्त पर राज्य का शासन भार डाल दिया और नायिका की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो गया। रति भी उनके लिए सन्तप्त हो रही थी। धारागृह में नायिका का शिशिरोपचार हो रहा था। सखियो ने मन्मथ का चित्र बनाकर रति को दिया। रति न नायक को उसकी चन्द्रशाला के वातायन पर विदूषक के द्वारा धैर्य धारण कराया जाता हुआ देखा। मन्मथ ने रति के द्वारा निर्मित चित्र वाले फलक पर अपने पार्श्व में नायिका का चित्र विदूषक के देखने के लिए बना दिया। मन्मथ चित्र को वास्तविक रति समझकर उसे देखते ही उन्मत्त हो गया।[1]

रति को प्राप्त कराने के लिए मन्मथ ने वसन्त को दूत बना कर सर्वार्थसाधिका के पास भेजा था। सर्वार्थसाधिका ने वशिनी को मन्मथ के पास यह कहने के लिए भेजा कि आपका काम सिद्ध होगा। वशिनी को मन्मथ-रति का वही चित्र विदूषक के हाथ से गिरा मिला, जिसे उसने रति को ले जाकर दिया। रति उसे हृदय से लगा लेती है।

स्वय विष्णु ने बृहस्पति को रति के माता-पिता के पास भेजा कि आप लोग रति को मन्मथ के लिए विवाह में दे दें। इधर शुक्राचार्य के शिष्य वाष्कल ने रति को शम्बरासुर के लिए रति को देने का सदेश दिया। रति के माता-पिता ने बताया कि कन्या की इच्छानुसार हम उसे वर को देंगे। वह शम्बरासुर को नहीं चाहती। इस प्रकार असुरो से ठन गई।

इधर मन्मथ को अनासक्त शिव और पार्वती का परिणय कराने के लिए अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका पूरी करने के लिए हिमालय पर चल देना पडा। वसन्त उसके साथ गया। शिव ने मन्मथ के द्वारा उत्पन्न की हुई गडबडी को देखकर उसे जलाने के लिए जो अग्नि उत्पन्न की, उसे इन्द्र ने स्वर्ग से ही देखा। सर्वार्थ-साधिका ने

१ यह छायातत्त्वात्मक कथांश है।

मन्मथ को बचा लिया और मन्मथ पर आंच आने के पहले ही अग्नि को शिव के नेत्र में पुन स्थापित कर दिया। मन्मथ को सफलता मिलती है। शिव पार्वती का विवाह हो जाता है। कार्तिकेय का जन्म होता है।[1]

इस बीच राग की कन्या रति का अपहरण शम्बरासुर ने करा दिया। मन्मथ शम्बर को मारने चला। उसके पीछे सेना मे थे इन्द्र आदि।

इन्द्र की सेना को दानवो ने पकड लिया। देवासुर सग्राम मे इन्द्र ने शम्बर को मार डाला। कवि ने इसके बीच एक नया कथाश प्रकल्पित किया है कि जब शम्बरासुर रति का अपहरण करवा रहा था तो सर्वार्थसाधिका ने उसी के समान मायावती को उसका स्थानापन्न करके रति को बचा लिया था।[2] इस युद्ध मे मन्मथ भी देवकार्य से लौटने के पश्चात् सम्मिलित हुआ। उसे शम्बर मायावती के साथ रथ मे मिलता है। मन्मथ युद्ध मे शम्बर को मोहित करके मार डालता है। वह मायावती को रति समझकर अपने रथ पर बिठाकर लौटता है।

मायावती ने भी मन्मथ को पति बनाने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। इधर मन्मथ को कुछ-कुछ सदेह होने लगा कि यह रति नही है क्या? वह मायावती को उसके घर पर छोड देता है।

रगमच पर रति तो है ही, उसका प्रतिरूप मायावती भी मन्मथ के साथ है। सभी विस्मय मे हैं। अन्त मे सर्वार्थसाधिका मायावती की उत्पत्ति की कहानी बताकर सबका सशय और विस्मय दूर करती है। मन्मथ को उन दोनो के प्रति प्रेम था। दोनों नायिकाओ से एक ही मण्डप मे उसका विवाह हो गया।

रति-मन्मथ और वसुमती परिणय के कथाश और सविधानो मे अनेक स्थलो पर समानता है। समान कथाशो मे दोनो मे एकही पद्य मिलते हैं। दो-दो कथाओ का ग्रन्थन दोनों नाटको मे है। दोनो नाटको मे छायातत्त्व की बहुलता है।

१ तृतीय अक मे शिव का विवाह और पुत्र-प्राप्ति दोनो होना कालात्यय के सिद्धात के अनुसार उचित नही है।

२ यह कथाश छाया तत्त्वात्मक है।



विवेकचन्द्रोदय

विवेकचन्द्रोदय के रचयिता उत्तरप्रदेशीय शिव यमुना-तटवासी थे।[1] इसकी प्रस्तावना में सूत्रधार के साथी स्थपति ने कहा है—

> वाणी यस्य मुखे च कर्णसुखदा देवीप्रसादोद्गता
> रानेर नगर दिनेशतनयातीर्थे यथा जाह्नवी।
> तेनैवाद्य शिवेन साधुकविना काव्यप्रियाणां कृते
> किं जानासि न राजनीतिनिपुणज्ञान कृत नाटकम् ॥

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि शिव कवि रानेर नामक नगर के निवासी थे, जो व्रजप्रदेश में रहा होगा। जैसा सूत्रधार ने बताया है कि, व्रजभाषा के कवियों का सम्मान विशेष है।[2] इस नाटक का रचनाकाल कवि ने १७६३ ई० बताया है।

कथावस्तु

ब्रह्माण्डभाण्डोदर नामक विमान में सिद्धिदेव और चारुकण्ठ रंगमंच पर प्रकट होते हैं। चारुकण्ठ की इच्छानुसार सिद्धिदेव उसे रुक्मिणी-विवाह का अभिनय दिखाते हैं। वृद्धश्रवा ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र लेकर द्वारका में आता है। उसे कृष्ण के ढूँढते हुए उद्धव से भेंट होती है। उद्धव को कृष्ण ने अपने योग्य कन्या ढूँढने के लिए विदेशों में भ्रमण करने के लिए भेजा था। उद्धव ने रुक्मिणी को कृष्ण योग्य पाया था। वे रुक्मिणी का विरह-सन्देश कृष्ण को देने के लिए उत्सुक थे। कृष्ण चित्रशाला में थे। उद्धव ने अपनी परिभ्रमण की चर्चा कृष्ण से मिलने पर की—

> आ जगन्नाथमा सेतुबन्धमा हिमपर्वतम्।
> आ सिंहलद्वीपमगा गामिमा पुरुषोत्तम ॥ २६

कृष्ण के पूछने पर आश्चर्यकरी घटना उद्धव ने बताई की मैं जब विन्ध्यवासिनी देवी का दर्शन कर चुका तो वहाँ के राजा ने अपनी कुसुमवाटिका में कृष्णामात्य के रूप में मुझे स्वर्ग सुख प्राप्त कराया। वहीं विन्ध्यवासिनी की उपासना करने के लिए इन्द्र दल-बल के साथ आये। जब देवीदर्शन करके वे सब लौट रहे थे तो इन्द्र-सभा के समक्ष मूर्तिमान् दुर्विनय धर्म से बोला कि अधर्म की ओर से मैं कुछ प्रश्न लेकर आया हूँ। इन्द्रसभा में विराजमान धर्म ने अपने मन्त्री विवेक से कहा कि देखो यह कौन है? उसके पूछने पर दुर्विनय ने कहा कि मैं आपके भाई का पुत्र

१ विवेकचन्द्रोदय का प्रकाशन विश्वेश्वरानन्द इंस्टिट्यूट, होशियारपुर से १९६६ ई० में हो चुका है।

२. सूत्रधार—वत्स! एवमेतत् खलु चरमयुगोत्पन्न-भूपालमण्डलीपु यदि कश्चिद् व्रजभाषादिवाग्विलासकुशल स्वात्मानं कृतार्थमनुजानीते।

हूँ। तुम्हारे भाई अविवेक ने कुत्सिता से मुझे उत्पन्न किया है। स्वामी अधर्म का पत्र पढ़ें। विवेक ने पत्र पढ़ा, जिसमें लिखा था कि धर्मचर्या मिथ्या कल्पना है। सभी तथाकथित धर्मधुरधर पापलिप्त हैं। यथा,

जघान गुरुमर्जुन शशधरोऽहरत् सुन्दरी
गुरोर्भृगुसुत पपौ मधुसुवर्णहारी कवि ।
मयापकृतमस्ति किं त्वदुपजापजल्पैर्जनै
शठ ! प्रतिमठ कथा किमिति निन्द्यते मामकी ॥

कामादि ने जगत् को जीत लिया है। अब धर्म सीधे से हमे राज्य देकर भाग जायँ।

विवेक ने अपने पुत्र विनय से कहा कि वत्स, तुम राजनीति का आश्रय लेकर इस दुरात्मा दुर्विनय को समझाओ। विनय ने उसे समझाया कि राजा गुण से होता है। यथा,

सदा देशकालोचित्त यस्य शौर्य विनैवापराध न शत्रोर्वधोऽपि ।
फलेच्छा रिपुध्वसतो यस्य नित्य रति स्वस्त्रिया राजराज स राजा ॥३ २

विनय ने अपने पक्ष के मन्त्री, न्यायाधिकारी दुर्गाधिपति, सेनापति देशाधिपति, लेखक, महिषी आदि के आदर्श चरित और चरित्र का विश्लेषण किया है। उसने राज्योपघात प्रवृत्तियों का भी विशद विवेचन किया है। उसन अन्त मे दुर्विनय को बताया—

राजा धर्मो यत्र मन्त्री विवेक श्रद्धा राज्ञी निर्णयो राजपुत्र ।
कोशस्तोप सैनिका सयमाद्या कामध्वसान्मोक्ष-साम्राज्यलब्धि ॥३ २७

विनय की इन बातों को सुनकर दुर्विनय-पक्ष के सभी लोग भाग चले।

चतुर्थ अङ्क मे उद्धव ने समझाया कि रुक्मिणी तो आपको पति-रूप मे चुन चुकी है, किन्तु उसका भाई रुक्मी उसको शिशुपाल को देना चाहता है। वृद्धश्रवा रुक्मिणी का पत्र लेकर आपके पास आया है। पत्र मे एक पद्य था—

सर्वज्ञ यज्ञपुरुषज्ञ जनाशयज्ञ
विज्ञापनीयमिदमेव न देव चान्यत् ।
त्वा मत्कृते त्रिजगतामपि राज्यलक्ष्मी-
र्लक्ष्मीरिवाश्रयतु वैरिकुलान्यलक्ष्मी ॥ ४ १५

कृष्ण ने कहा—दारुक ! रथ लाओ। अभी चैद्यमदव को मारकर रुक्मिणी को लाता हूँ। वृद्धश्रवा को लेकर कृष्ण कुण्डिनपुर मे पहुँचे। वहाँ वृद्धश्रवा ने उन्हें वरदा के तट पर रोक रखा कि यही देवीपूजा के लिए नायिका आयेगी।

पूजा करके राजमार्ग पर जाती हुई रुक्मिणी को कृष्ण ने अपने रथ पर बिठा लिया। कोलाहल मचा कि रुक्मिणी का कोई अपहरण कर ले गया। जरासन्धादि

ने कृष्ण को रोकना चाहा। गाली-गलौज का वातावरण बना। वहाँ बलभद्र आ पहुँचे। उन्होंने सभी शत्रुओं को मार भगाया। रुक्मी को ध्वजस्तम्भ से बाँधा गया। फिर रुक्मिणी की प्रार्थना पर वह छूटा। विजयी कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका लौट आये। वहाँ मण्डपशाला में विधिवत् पाणिग्रहण हुआ। अन्त में सिद्धिदेव और चारुकण्ठ अन्तर्हित हो जाते हैं।

शिल्प

विवेकचन्द्रोदय मे बिना किसी सूचना के ही द्वितीय अङ्क मे एक गर्भनाटक की भी सामग्री सन्निविष्ट है, जिसमे दुर्विनय और विवेक का सवाद प्रमुख रूप से प्रस्तुत है। यह दृश्य पूरे तृतीयाङ्क में भी चलता है। यह सारी गर्भाङ्क जैसी सामग्री ऊटपटाँग-सी लगती है। पूरा विवेकचन्द्रोदय ऐसी नवीन उद्भावनाओ से ओत-प्रोत है। शिल्प की दृष्टि से एक विचित्र प्रकार का रूपक है विवेकचन्द्रोदय। इसमें चतुर्थ अंक मे कुण्डिनपुर और द्वारका दोनो के दृश्य अभिनीत हैं। प्रस्तावना के पश्चात् आने वाला विष्कम्भक ही प्रथम अंक बन गया है। कवि ने उसके अन्त मे लिखा है—

इति कथामुखप्रस्तावशाली प्रथमोऽङ्कः।

अर्थात् प्रथम अङ्क मे कथामुख का प्रस्ताव है।

इस विष्कम्भक या प्रथम अङ्क में नायिका की कोई प्रधान भूमिका नही है। केवल विमान पर बैठे हुए सिद्धिदेव और चारुकण्ठ का सवाद है। यह विष्कम्भक तत्त्वत नही है, क्योंकि इसमे विमान का उतरना दृश्य है। विमान को उतारने का काम इन्द्रजालिक के द्वारा सम्पन्न होता है। सिद्धिदेव और चारुकण्ठ आदि से अन्त तक रगमच पर बने रहते हैं।

रगपीठ का कई भागो मे विभक्त होना सम्भावित है। चतुर्थ अङ्क मे एक ओर कृष्ण, वृद्धश्रवादि हैं और दूसरी ओर रुक्मिणी और उसकी सखी मल्लिका बातें करती हैं। वृद्धश्रवा एक ओर से दूसरी ओर आता है। तीसरी ओर स्वयवर-मच पर विराजमान राजा हैं।

विवेकचन्द्रोदय प्रतीक नाटक अशत है। इसमें मूल कथा कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह है। बीच मे विवेक के द्वारा अभ्युदय होता है—इस विषय की कहानी जोड दी गई है। इस कहानी के पात्र प्रायश प्रतीक हैं। अर्थोपक्षेपक-रूप मे पत्र तथा स्वप्न का उपयोग विशेष प्रवृत्ति है।

समीक्षा

विवेकचन्द्रोदय की विशेषता उसका राजाओ के प्रशिक्षण मे है। यथा,

प्रजा पितृवत् पाति पुष्णाति शिष्टान।
प्रमुष्णानि दुष्टाननिष्टान् जहाति॥
मदान्ध्यानि यस्तथ्यमश्नानि पथ्य।
गतारातिराज्य क्व तस्य प्रयाति॥३८

ऐसी रचनायें संस्कृत मे विरल ही हैं, जो साक्षात् ही राष्ट्रिय निर्माण मे शासन की आदर्श प्रवृत्तियो की चर्चा करती हैं।

शिव की कवितायें और अभिनयात्मक योजनाये पर्याप्त मनोरजक हैं। नई नाट्यधारा के समीक्षको के लिए उनकी कृति विशिष्ट योग्यताओ से निर्भर है।

विवेकचन्द्रोदय-नाटिका की भूमिका मे स्पष्ट है कि नटमण्डलियाँ गावो और नगरो मे देश-विदेश मे परिभ्रमण करती हुई लोगो का मनोरञ्जन करती थी और उनसे प्राप्त धन से उनकी जीविका चलती थी।[1] सूत्रधार नाटक की साधारण प्रस्तावना लिख लेता था और जिस राजा के आश्रय मे उसका अभिनय होता था, उसका नामादि प्रस्तावना मे समाविष्ट कर देता था। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना मे राजा का नाम रिक्त है। यथा,

सूत्रधार —भो भो विदग्धा, शृणुत सावधाना। अद्य खलु महाराजाधिराजेन समाहूय समादिष्टोऽस्मि।

श्रीमता भूपालेन इत्यादि।

नाटक शब्द रूपक का पर्याय हो चला है। वस्तुत विवेकचन्द्रोदय नाटिका है, जैसा इसके अन्त मे कहा गया है—

श्रीविवेकचन्द्रोदयनाटिका समाप्ता।

अन्यत्र इसे नाटक कहा गया है।

नटो का जीवन समृद्ध नहीं था। रूपलकु ने इस वर्ग की दरिद्रता की ओर सकेत करते हुए सूत्रधार से कहा है—

इहापि त्वयाभरणैर्नालङ्कृतोऽस्मि। कदापि गोधूम-मुद्ग-शालि-माषान्न सुबहुघृत मयापि न भुक्तम्। इत्यादि।

सूत्रधार ने बताया कि ब्रजभाषा का राजसमाज म अधिक आदर है, सस्कृत का महत्त्व उतना नही है, क्योकि यह चतुथ युग जो है।

१ विवेक चन्द्रोदय की प्रस्तावना मे रूपलकु नामक नट सूत्रधार से कहता है—

आर्य, ततो यथा ग्रामीराजन सन्तोषयसि, तथा तमेव महाराज कथ न प्रसादयसि शिवकविरचितेन नाटकेन। आर्य, दूरदेशवर्तिन कुटुम्बस्य कि जात तन्न ज्ञायते।

अध्याय ६१

सदाशिव दीक्षित का नाट्यसाहित्य

सूत्रधार ने लक्ष्मीकल्याण नाटक की प्रस्तावना मे सदाशिव का परिचय देते हुए कहा है कि वे भारद्वाज कुलोत्पन्न चोक्कनाथ के पुत्र हैं, उनकी माता का नाम मीनाक्षी है। वे स्वय यज्वा है। वसुलक्ष्मीकल्याण की प्रस्तावना के अनुसार कवि सदाशिव सर्वविद्याविशारद था।

सदाशिव दीक्षित केरल के राजा कार्तिक तिरनाल रामवर्मा (१७५८-१७९६ ई०) की राजसभा के कविराज थे। सदाशिव ने अपने आश्रयदाता को अमर करने के लिए रामवर्मयशोभूषण को प्रतापरुद्रयशोभूषण (प्रतापरुद्रीय) के आदर्श पर प्रणीत किया, जिसके एक अध्याय में नाटक के लक्षणो को उदाहृत करने के लिए पाच अको का वसुलक्ष्मीकल्याण नामक नाटक समाविष्ट है। परवर्ती काल मे १७६६ ई० के पश्चात् जब बालरामवर्मा ने पद्मनाभ देव को अपने राज्य का अश समर्पित कर दिया, तो कवि ने लक्ष्मीकल्याण नामक नाटक का प्रणयन किया। इसमे वे पद्मनाभदास हैं।[1]

वसुलक्ष्मी-कल्याण

इस नाटक का प्रथम अभिनय पद्मनाभदेव के वसन्त-महोत्सव मे उपस्थित सामाजिको के प्रीत्यर्थ हुआ था। अभिनय मे सूत्रधार भरतराज था। भरतराज का शिष्य कलकण्ठ सदाशिव की परवर्ती कृति लक्ष्मीकल्याण के अभिनय का सूत्रधार था।

कथानक

नायिका वसुलक्ष्मी के पिता ने उसके विवाह के योग्य हो जाने पर सभी सुन्दर वरेण्य राजाओ की प्रतिकृतियाँ उसके समक्ष रखवाई। उसने बालवर्मा को चुना। इसके पश्चात् उसने एक निवेदन बोधिका के द्वारा बालवर्मा को भेजा कि आप वसुलक्ष्मी से विवाह कर लें। इस बीच महारानी ने अपने भाई सिंहल के राजकुमार से वसुलक्ष्मी का विवाह करने के लिए उसको नौका पर सिंहल के लिए प्रस्थान करा दिया और राजा से बहाना बनाया कि मेरी कन्या कुलदेवता का दर्शन करने के लिए गई है। इधर बोधिका ने बालवर्मा के पास वसुलक्ष्मी का सौन्दर्य-वर्णन करके उसे आकृष्ट कर लिया, उधर नौका से प्राप्त एव सुन्दरी कुमारी वसुमद्र नामक सामन्त के द्वारा महारानी के अन्त पुर मे पहुँचा दी गई।

बोधिका योगिनी थी। उसने एक दिन बालवर्मा के करतल पर सिद्धान्जन मल

१ वसुलक्ष्मीकल्याण तथा लक्ष्मीकल्याण की प्रतियाँ अप्रकाशित त्रिवेन्द्रम् वि० वि० की हस्तलिखित लाइब्रेरी मे हैं। इनकी प्रतिलिपि सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है।

दिया, जिसके प्रभाव से नायिका का प्रतिरूप समक्ष प्रकट हो गया। राजा उसे देखकर मोहित हो गया। बोधिका न बताया कि यह आपकी होकर रहेगी।

इधर काचनमाला नामक चेटी से महारानी वसुमती को ज्ञात हो गया था कि नायक किसी सुन्दरी के चक्कर मे पड चुका है। वह आस्थानी मे काचनमाला के साथ आई, जहाँ बोधिका राजा को नायिका का वृत्त बता रही थी। नायिका के प्रति राजा के प्रेमोद्‌गार सुनकर भी उसके दाक्षिण्य से प्रभावित होकर रानी वसुमती कुपित न हुई।

रानी राजा के सामने आ गई। उसने कहा, 'जयतु आर्यपुत्रोऽभिमतसिद्ध्या। उसने बोधिका को कुटिल नेत्रों से देखा तो उसने स्पष्ट कह दिया कि आपके हाथ मे सपत्नी रेखा जो है।

मन्मथ पूजा के अवसर पर प्रियाल वृक्ष को दोहद प्रदान करती हुई वसुलक्ष्मी को वालवर्मा और विदूषक को दिखाने का उपक्रम सफल हुआ। नायक ने उसे देखा और कहा—

प्रागेवैषा नयनपथगा व्याततोन्मे रिरसा।
ज्योत्स्नैवाग्रे विहितवसतिर्द्दिक् चकोरीन्धिनोति॥
हस्तग्राह्या कथमपि भवेदित्यपास्तातिशङ्क।
चेतो मज्जत्यवधिरहितानन्दवाराशिमध्ये॥२२

नायिका चन्द्रलेखा के साथ माधवी-लता-मण्डप मे छिपकर माकन्दोद्यान मे होने वाले राजा और रानी के द्वारा सम्पादित मन्मथ-पूजा को देखने लगी। वह नायक को देखकर अतिशय प्रसन्न होती है।

नायक से मिलने के लिए वनज्योत्स्ना-मण्डप से वसुलक्ष्मी अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ जा पहुँची। वही कामाग्नि से परितप्त नायक और नायिका का मिलन होता है। नायक ने नायिका की प्रशसा की और उसका कर स्पर्श किया। दोनो की प्रेम-प्रवृत्ति मे प्रगमन हुआ।

वसुमती ने अपनी सखी काचनमाला से कहा कि वसुलक्ष्मी मेरे भाई की कन्या है। उसे मैं अपने मामा के पुत्र पाण्ड्याधिपति के साथ प्रणयपाश मे बाँधना चाहती हूँ। रात्रि के समय राजहितकारिणी काचनमाला और नीतिसागर मंत्री ने पाण्ड्याधिपति के वेश मे बालराम वर्मा को अन्त पुर मे प्रवेश कराकर वसुलक्ष्मी से उसका विवाह वसुमती की इच्छा से करा दिया। इसके लिए काचनमाला की योजना के अनुसार वसुमती स्वय वसुलक्ष्मी को लेकर राजा बालराम वर्मा से भीत सी होकर पाण्ड्याधिप से नायिका का विवाह कराने के लिए आस्थानी मे आ पहुँची थी, बालराम वर्मा को पाण्ड्याधिप-वेश मे देखकर वसुमती ने उसे सचमुच अपने मामा का पुत्र ही समझा। इस अवसर पर नायिका के पिता और वसुमद्राज भी वहाँ उपस्थित होकर विवाह-महोत्सव मे सम्मिलित हुए।

छद्म

इस नाटक से तथा ऐतिहासिक राजाओ के विवाह-सम्बन्धी नाटकों से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस किसी सुन्दरी से राजा विवाह कर लेते थे और उसकी सभा के कवि उसकी नई प्रेयसी को किसी राजा की कन्या होने की कल्पना करके नाटक बना देते थे। इस प्रकार राजा का उच्चकुलीन कन्या से सम्बन्ध प्रमाणीभूत होता था।

शिल्प

प्रस्तावना मे आकाश-भाषित के द्वारा सूत्रधार सामाजिको के निवेदन सुनने का अभिनय करते हुए पारिपाश्वक से उनकी पत्रिका ग्रहण करता है, जिसमे लिखा रहता है कि हम कैसे नाटक का प्रयोग चाहते हैं।

लक्ष्मीकल्याण मे सभी अको का सकेत केवल अङ्कान्त मे दिया गया है, प्रारम्भ मे नही। इस प्रकार अङ्क के भीतर प्रवेशक और विष्कम्भक को स्थान नही मिलता। अङ्क और विष्कम्भक दोनो एक दूसरे से समान रूप से पृथक्-पृथक् हैं।

प्रवेशक और विष्कम्भक मे सूचना-मात्र होनी चाहिए। इनमे सन्ध्यङ्ग नही होने चाहिए, किन्तु सदाशिव ने इसके विपरीत वसुलक्ष्मीकल्याण के चतुर्थ अङ्क के पहले के प्रवेशक मे द्रव, विरोध, अपवाद, सम्फेट, आदि सन्ध्यङ्गों का सन्निवेश किया है। विष्कम्भकादि मे वस्तुत सूचना-मात्र होनी चाहिए, पर लक्ष्मीकल्याण के द्वितीयाङ्क के पहले के विष्कम्भक मे सूर्यास्त का वर्णन १० पद्यो मे किया गया है। ऐसा लगता है कि कवि अपनी वर्णना-चातुरी का प्रदर्शन करते हुए नाटकीय अपेक्षाओं की अवहेलना करता है।

नान्दीपाठ कुशीलव करते है, सूत्रधार नही, जैसा वसुलक्ष्मी-कल्याण मे कवि ने कहा है—

एषा कुशीलवकर्तृका पूर्वरङ्गाख्या द्वाविंशतिपदा नान्दी।

द्वितीय अङ्क मे नायिका अपनी आत्मकथा चन्द्रलेखा को सुनाती है। यह प्रकरण सुच्य है। अङ्क भाग मे इसका औचित्य नही है।

रगमच पर नायिका द्वारा वीणावादन द्वितीय अङ्क मे मनोरजक विशेषता स्पृहणीय है।

प्रणयात्मक नाटक वसुलक्ष्मी-कल्याण के चतुर्थ अङ्क मे विदूषक और कचुकी का दण्डादण्डि-समुद्यम मनोरजक है।[1]

बालवर्मा का पाण्ड्याधिप के रूप मे वसुलक्ष्मी से चतुर्थ अङ्क मे विवाह करना छायातत्त्व है। इसी प्रकार छायातत्त्व है गरुड पक्षी का द्वितीय अङ्क मे रगपीठ पर विष्णु से सवाद करना। पक्षी का बोलना मनोरजक दृश्य है। चतुर्थ अक मे विष्णु का अस्सी वर्ष का वृद्ध मुनि बनना भी छायातत्त्वानुसारी है।

१ गाली देने के पश्चात् 'परस्पर-प्रहार नाटयत' इत्यादि।

समीक्षा

वसुलक्ष्मी-कल्याण नाटक की कथावस्तु कृत्रिम है। यह नाटक की प्रमुख विशेषता है। कथावस्तु नाममात्र के लिए ऐतिहासिक है। इसके नायक बालराम वर्मा के अतिरिक्त कोई पात्र ऐतिहासिक नहीं है और न कोई घटना ऐतिहासिक है।

द्वितीय अंक मे नायिका-सौन्दय-वर्णन अतिविस्तृत है। प्रयास नखशिख वण्न का है।

अनेक नाटक वसुमती, वसुलक्ष्मी आदि को नायिका बना र लिखे गये हैं। इन सबमें नायिकायें कल्पित है, किन्तु वे सभी जयश्री का प्रतीक प्रतीत होती हैं।

लक्ष्मीकल्याण नाटक मे श्रीपुरी का वणन डेढ पृष्ठो मे, चन्द्रोदय का वर्णन २० पद्यो मे, १० पद्यो मे विष्णु के अवतारो का वर्णन, २० पद्यो मे सूर्योदय और प्रात-वर्णन, १५ पद्यो मे वसन्त का वर्णन, २० पद्यो मे लक्ष्मी का वर्णन, २० पद्यो मे ऋतु वणन हैं। ऐसे लम्बे वर्णन नाटकोचित नहीं हैं। लम्बे वर्णनो मे उपमेय भी काव्योचित नहीं हैं। यथा श्रीपुरी के वर्णन मे—शारीरकमीमांसेव वाधिकरण-क्रमविज्ञेय-साराप्रकाशितात्मस्वरूपा च। कर्ममीमांसेव पूर्वत्रिल्याफलविधि-प्रपञ्चनपरा चातुर्वर्ण्य-धर्मव्यवस्थाश्रया च। इत्यादि।

इसमे अन्य वर्णनो की प्रचुरता भी अनपेक्षित ही है। लक्ष्मी का नखशिख-वर्णन स्वय नारद के मुँह से प्रथम अङ्क मे बहुत बडा है।

वस्तुत सदाशिव के नाटक काव्यात्मक वर्णना की निधि हैं। उसकी उत्प्रेक्षायें त्रिलोक-व्यापिनी और प्रगुणोत्कलिका हैं।

कवि ने इस नाटक की प्रकृति मे महत्तम देवो को रगमच पर लाकर इसको औदात्त्य निर्भर किया है। पचम अङ्क मे लक्ष्मी और पद्मनाभ के विवाह म ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता रगमच पर आते हैं।[1]

एकोक्ति

चतुर्थ अङ्क मे नायक पद्मनाभ की लम्बी एकोक्ति आरम्भ मे है। वे लक्ष्मी के विरह मे अपनी मानसिक दशा का स्वय वणन करते हैं।

लक्ष्मी-कल्याण

यस्मै वचिक्षितिपमरणये पद्मनाभ प्रसीद।
जामातृत्व स्वयमभिनयत्यैच्छिक लोकनाथ ॥

लक्ष्मीकल्याण नाटक मे लक्ष्मी का पृथ्वी पर कन्या रूप मे अवतार लेकर विष्णु पद्मनाभ से विवाह का कथानक प्रपञ्चित है।

कथावस्तु

एक बार लक्ष्मी ने वैकुण्ठ मे क्रीडा करते हुए विष्णु की आँखो को अपने हाथो मे

१ तत प्रविशन्ति विधिहरिमुखा गीर्वाणा।

मूँद दिया। तब तो विष्णु (पद्मनाभ) क्रुद्ध हुए कि जितनी देर तक मेरी आँख मुँदी रही, उतनी देर तक जगत् भ्रान्त रहा। उन्होंने शाप दिया कि पृथ्वी पर प्रकट होकर तुम मुझे फिर से प्राप्त करो। तत्क्षण अन्तर्हित वह पृथ्वी पर कमल-कलिका के पत्तों के बीच आविर्भूत होकर वञ्चिभूपाल रामवर्मा की पालित कन्या हुई और पद्मनाभ का प्राप्त करने के लिए माकन्दोद्यान में तपस्या करने लगी। नारद पुनः दम्पती को प्रणयसूत्र में आबद्ध करने के लिए प्रयत्नशील बने। वे तुम्बरु के साथ पद्मनाभ के पास पहुँचते हैं। पद्मनाभ की प्रतिष्ठा श्रीपुरी (त्रिवेन्द्रम्) के मन्दिर में है। वे गरुड पर आरूढ पद्मनाभ से मिलते हैं। तुम्बरु और नारद पुनः पुनः पद्मनाभ की स्तुति करते हैं। यथा,

ज्योतिर्मय सदपि यन्नयनातिपाति निस्साधन मदपि यद्भुवनप्रणेता।
यत् सर्वभासकमणोरपि वस्तुतोऽणु तत्त्व भवस्यखिलवेदित पद्मनाभ ॥२५८

नारद की अभीष्ट योजना पद्मनाभ जान गये कि यह मेरा विवाह कराना चाहते हैं। उन्होंने नारद से कहा कि इस ओर मेरी प्रवृत्ति प्रपचित है। लक्ष्मी उत्पन्न हो चुकी हैं। मैंने यहाँ अवतार ग्रहण किया है।

तृतीय अक में अस्सी वर्ष का वृद्ध मुनि बनकर पद्मनाभ अपनी प्रणयिनी लक्ष्मी से मिलने के लिए माकन्दोद्यान में गये, जहाँ वह उनके लिए तपस्या कर रही थी। उनके साथ वटुवेशधारी जय और विजय हैं। लक्ष्मी उनके आगमन के समय पुष्पादि से उनका स्वागत करती हैं। लक्ष्मी की सखियों से वृद्ध मुनि पूछते हैं कि क्योंकर यह तपस्या कर रही हैं—

शिरीषकुसुमकोमलाकृतिरियं किमर्थं
तपस्यतीव कृशता गता कमलिनीव चन्द्रातपे।
इनेन समुपोषिता विकृतिमेति दोषागमे
प्रसीदति च तच्छमे प्रियकरग्रहेणैव सा ॥३५९

सखियों ने बताया कि पद्मनाभ की प्राप्ति के लिए। मुनि ने कहा कि इन्हें तो मैं चाहता हूँ—

गोभिस्त्वामिव पद्मिनी इन इव प्रोत्फुल्लपद्मानना-
मभ्यर्णालिकुलोपगीतविभवा कर्तुं समभ्यागमम् ॥३६०

मुनि की इस कामप्रवृत्ति से लक्ष्मी झुनझुनाई, पर शिष्टाचारवश अतिथि से उन्हें बात करना पड़ा। उसने अपना मन्तव्य बताया तो मुनि ने कहा कि क्या ही अयोग्य वर है। लक्ष्मी ने कहा कि तुम मुनि नहीं, ब्रह्मराक्षस हो कि पद्मनाभ की निन्दा करते हो। भगो यहाँ से।

सखियों ने अनुमान कर लिया कि यह मुनिवेशधारी पद्मनाभ ही हैं, क्योंकि लक्ष्मी के द्वारा डाँटे जाने पर भी प्रसन्न ही हैं। प्रेमपरीक्षा के लिए आये हैं। तब

तो मुनि ने पद्मनाभ की निन्दा में कहा—

> निद्रालु सदसत्परोऽतिमलिनाकारो गुणैरुज्झित ।
> किं चानेकमुखाक्षिपादविकृतस्त्रैलोक्यबीजाङ्कुरो
> वापक्षे क्रमशेषकल्पविमुखो चक्रीति लोके स्मृत ॥३६६

लक्ष्मी ने कहा कि ऐसे दुर्मुख की दुर्गति की जानी चाहिए, पर ब्राह्मण है। हम स्वयं इससे दूर हो जायें। वह ज्योंही दूर जाने को हुई कि पद्मनाभ ने अपना योगेश्वर रूप धारण कर लिया। तब तो लक्ष्मी को भय हुआ कि मैंने अपने पति को बुरा-भला कहा है। उसने मन ही मन कहा—

> हृदय इदानीं विस्रब्ध भव, यतो लब्धव्यं लब्धम्।

पद्मनाभ ने लक्ष्मी से कहा कि आप तो मेरे साथ पूर्ववत् विहार करें। लक्ष्मी ने कहा कि मेरे पाणिग्रहण का अधिकार कुलशेखर बालराम वर्मा को है।

चतुर्थ अङ्क के पहले विष्कम्भक के अनुसार लक्ष्मी और पद्मनाभ विरहाग्नि में सतप्त हैं। पद्मनाभ कालिदास के पुरूरवा की भाँति लक्ष्मी के चक्कर में परिभ्रान्त हैं। अन्त में उन्हें उपवन में अपनी सखियों से बातचीत करती हुई लक्ष्मी दिखी। लक्ष्मी भी विरहाग्नि में सन्तप्त थी और उसकी सखियाँ उसका शीतोपचार कर रही थीं। छिपकर पद्मनाभ उसकी बातें सुनने लगे। लक्ष्मी स्वयं अपनी मन्मथ-व्यथा का वर्णन करती है। वस्तुत कामदेव पद्मनाभ का पुत्र है। पद्मनाभ को आश्चर्य है कि पुत्र होते हुए भी वह मुझे इतना कष्ट दे रहा है।

चतुर्थ अङ्क के अन्त में धात्री आकर लक्ष्मी से कहती है कि आप स्वयंवर के लिए सज्जित हो जायें।

विवाह के उत्सव में सभी देवता, देवियाँ और अप्सरायें आईं। लक्ष्मी का प्रसाधन अप्सराओं ने स्वयं किया। वे सभी उसके प्रसाधन मण्डित सौन्दर्य का बखान करती हैं।

स्वयंवर-मण्डप में पद्मनाभदास बालराम वर्मा आये। लक्ष्मी उनके पास कन्यादान करने के लिए आने वाली हैं। इन्द्र ने बालराम की प्रशंसा की। ब्रह्मा ने कहा कि आपकी अनुपम योग्यता है कि आप लक्ष्मी के पिता बनें और स्यानन्दपुरी (त्रिवेन्द्रपुरी) में पद्मनाभ आपका जामाता बनने के लिए पद्मनाभ होकर अवतरित हुए। शिव ने भी ऐसी ही प्रशंसा की। अगस्त्य ने लक्ष्मी का आभ्युदयिक कर्म किया। वे स्वयं स्वयंवर में आये। नारद पद्मनाभ को स्वयंवर में ले आये। गरुड पर बैठकर पद्मनाभ आ पहुँचे। उन्हें भद्रासन पर बिठा कर वचिराज ने लक्ष्मी का पाणिग्रहण करा दिया। चारों ओर प्रसन्नता छा गई। सभी देवता उनकी प्रशंसा करते हैं।

कथावस्तु पर कुमारसम्भव के शिव-पार्वती के विवाह-प्रकरण का भूरिश प्रभाव प्रत्यक्ष है।

वर्णना

लक्ष्मी-कल्याण मे सदाशिव ने महाकाव्योचित वर्णना का सम्प्रसार किया है। निस्सन्देह कवि अपनी असाधारण कल्पना-शक्ति को इन वर्णनो मे विच्छुरित करने मे सर्वथा सफल है। उदाहरण के लिए चन्द्रोदय-वर्णन के प्रसंग मे चन्द्र को गोपरूप मे उत्प्रेक्षित किया गया है। यथा,

> स्वकीयं गोवृन्दं तिमिरतृणजग्धिप्रमुदितं।
> नयन् रोदोगोष्ठं हिमकिरणगोपः प्रतिनिशम्॥
> चकोरीवत्साभ्यां तदनुसृतया स्निग्धशशिमं।
> प्रयुद्धो भूस्थाल्यामनिरवधिपयो दोग्धि नियतम्॥२३१

चन्द्र के वर्णन मे कहीं-कहीं कवि नैषधकार की कल्पनाओ का स्तर प्राप्त कर लेता है।



अध्याय ६२

कलानन्दक नाटक

कलानन्दक नाटक के प्रणेता रामचन्द्रशेखर के आश्रयदाता महाराज प्रतापसिंह (१७ १-१७८४ ई०) थे।[1] प्रतापसिंह तंजौर पर शासन करते थे। प्रताप के पश्चात् तुलज द्वितीय (१७६४-१७८७ ई०) के शासन-काल मे कलानन्दक की रचना हुई। पौण्डरीक यज्ञ करने के कारण रामचन्द्र को पौण्डरीकयाजी उपाधि मिली थी। कवि के विषय मे प्रस्तावना मे बताया गया है कि वे रसमर्मज्ञ और उच्च-कोटि के वैयाकरण थे।

ऐन्द्रव नाटक के लेखक रामचन्द्र कवि की पौण्डरीकयाजी से एकता अनेक अनुसन्धाताओ ने प्रमाणित करने का प्रयास किया है, किन्तु अभी तक यह मत सुपुष्ट नही है।

कथावस्तु

कलानन्दक नाटक के सात अको मे नन्दक और कलावती के विवाह मे परिणत होने वाले प्रणय की कथा है। भद्राचल पर तप करने वाले राजदम्पती का नन्दक खड्ग के आदेशानुसार उनके पुत्र-रूप मे नन्दक उत्पन्न हुआ। नन्दक अतिशय प्रतापशाली हुआ। उसने अपने पराक्रम से म्लेच्छो को परास्त किया।

उस समय दिल्लीश्वर महाराज इन्द्रसखा था। उसकी कन्या कलावती अतिशय रूपवती थी। वह इस नाटक की नायिका है। उसने सखी से नन्दक की गुणचर्चा सुनी और उसे स्वप्न मे देखा तो वैसे ही मोहित हुई, जैसे गुप्तचर से नन्दक उसकी चर्चा सुनकर। उनके भेजे हुए चित्रो के माध्यम से इन दोनो का प्रथम मिलन होने पर प्रणयासक्ति प्रगाढ हुई। गुप्तवेश मे नायिका के निर्देशानुसार नायक नायिका से साहचर्य प्राप्त कर लेता है। गौरीपूजा के मिस वह नन्दक से मिलने जाती है।

नायक का सहज सहायक त्रिकालवेदी नामक योगीश्वर था। उसकी तपस्या नन्दक वन मे किसी सिंह के द्वारा विघ्नित हो रही थी। नायक ने सिंह को मारकर उसकी सहायता की। कृतज्ञ योगी आद्यन्त उनकी सहायता करता है।

नायक और नायिका का मिलन उद्यान मे होता है। यह चर्चा नायिका के पिता इन्द्रसखा तक पहुँचती है। पर वह अपनी कन्या नन्दक को नही देना चाहता। अन्त में उससे युद्ध करके नायक नायिका को प्राप्त कर लेता है। वे दोनों त्रिकाल-वेदी के आश्रय मे आतिथ्य ग्रहण करते हैं। वह उन्हे एक फल देता है, जिसके प्रभाव से भूलने-भटकने पर वियोगियो का परस्पर मिलन पुनः हो जाता है।

---

१. इस अप्रकाशित नाटक की प्रति तंजौर के हस्तलिखित ग्रन्थागार मे है।

एक दिन रत्नकूट पर वासन्तिक सौरभ देखते समय नायिका भटक कर किसी सिद्ध योगी के तपोवन मे जा पहुँचती है। वहाँ से उसे लौट आने का मार्ग नहीं मिलता। इधर नायक उसे वन, पर्वत और नदियो के तट पर खोजता-फिरता है। अन्त मे त्रिकालवेदी-प्रदत्त फल से नायक-नायिका का पुनर्मिलन सम्भव होता है।

समीक्षा

सूक्तियो के द्वारा सवादो की रोचकता बढी-चढी है। कतिपय सूक्तियाँ हैं—

(१) न शत्रुत्व न मित्रत्व जानियस्याहितश्च य ।
यस्य यश्च हितस्तौ तौ शत्रुमित्रे परस्परम् ॥
(२) शम्भु पश्यति य सदा स तु महान् जात्या पिशाचोऽपि सन् ।
(३) भवितव्यतैव लोके तनुते जन्तो शुभाशुभे नियतम् ।

कलानन्दक नाटक सस्कृत की उन विरल कृतियो मे से है, जिनमे शास्त्रीय विधानो का स्पष्ट अतिक्रमण मिलता है। नाटक होते हुए भी इसकी कथावस्तु सर्वथा कल्पित है। इसमे चित्र के माध्यम से प्रेमानुबन्ध का प्रदर्शन छायानाट्यानुसारी है। इसी प्रकार गुप्तवेश मे नायक का नायिका से मिलना भी छायातत्त्व है। नायिका वास्तविक नायक को उसका चित्र समझती है। वह कामदेव की पूजा करती हुई नायक की ही पूजा करती है।

कलानन्दक नाटक पर कालिदास के विक्रमोर्वशीय का स्पष्ट प्रभाव प्राय उत्तरार्ध मे दिखाई देता है। नायक भटकी हुई नायिका का पता वृक्षो और पशु-पक्षियो से पूछता है।

रस-सौष्ठव

विप्रलम्भ-शृङ्गार का पूर्वराग वर्णित है—

कदा वा तत्ताद्दङ्नवतरुणिमाम्युन्नतिवशा-
द्दुदश्वद्वक्षोजस्तवकमतिमात्रोरुजघनम् ॥
स्मरस्मेराननकमललोलालकभर ।
वपुस्तस्या मुग्ध पुनरपि पुरा स्थास्यति मम ॥२ १२१

प्रथम और द्वितीय अक मे नायक और नायिका का लम्बा सौदर्य-वर्णन शृङ्गार को उद्दीपित करने के लिए हैं।

वीररस का परिपाक नन्दक और इन्द्रसखा के युद्ध प्रकरण मे मिलता है। यथा,

सैन्याभरणासहनत्वादम्बराङ्गणमवाप्य चरन्ती ।
मेदिनीव पृतना जनिताना भाति हन्त रजसा ततिरेषा ॥४ ३८

शान्तरस का प्रकरण है, रत्नकूट पर्वत पर त्रिकालवेदी के आश्रय मे निर्विकल्पक समाधि लगाये हुए मुनियो के शरीर से हरिणो का उनको शिला समझ कर अपनी सींग का सघर्षण करना।

भयानक रस का प्रकरण सिंह की प्रवृत्तियो से हस्ति-शावको के डरने मे है। सिंह का वर्णन है—

नखाग्रपरिघट्टनत्रुटितगण्डशैलावलि
कठोरतर-सीत्कृति श्रुति-वितीर्ण-कर्ण ज्वर ।
जटा-पटल-वीक्षण-क्षुभित-दूरधावत्करी ।।
दरीगृहमुखादभीर्निरक्टमेति न केसरी ।।३ ३५

छन्दोवैचित्र्य

इस नाटक मे सब मिलाकर लगभग ४०० पद्य हैं । इनमे से सबसे अधिक शार्दूलविक्रीडित और अनुष्टुप् प्रत्येक ६८ पद्यो मे हैं। इसम गीति ३६ और वसन्त तिलका ३३ पद्यो मे है। कवि ने अन्य छन्द मालिनी और पुष्पिताग्रा प्रत्येक २७ पद्यो मे, स्रग्धरा २२ मे, उपगीति १८ मे, पृथ्वी १६ मे, शिखरिणी १३ मे, उपजाति १२ मे और प्रहर्षिणी ११ पद्यो मे प्रयुक्त है। बहुविध छन्दो के द्वारा अतिशय पद्यात्मकता इस नाटक की विशेषता है।

अलकार

रामचन्द्रशेखर की शब्दनिधि का परिचय उनके शब्दालकारो के प्रयोग मे मिलता है। युगो के नामो पर श्लेष का निदर्शन नीचे लिखे पद्य मे है—

कृतत्रेतानमस्कारो निर्द्वापरमतिस्सदा ।
निष्कलि कल्पतामेष भूयसे श्रेयसे मुनि ।।७ ५५

कवि की उपमायें नई दिशायें इङ्गित करती हैं। यथा,

निर्विकल्प श्रुतवत सविकल्पा श्रुतिर्यदि।
मत्तस्येव स्वत पूर्वं मदिरा समुपस्थिता ।।१ ४५

अपनी उत्प्रेक्षाओ के द्वारा कवि कही-कही सास्कृतिक निधियो का परिचित्रण करते चलता है। यथा,

वरेण सहितो भाति वध्वा च मुनिशेखर ।
वेदेन साक स्मृत्या च वेदान्त इव मूर्तिमान् ।।५ १५

रीति

कलानन्दक की भाषा साधरणत सरल होने के कारण नाट्योचित है। कही-कही रसोचित रीतियो को अपनाते हुए कठोर शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यथा,

प्रचण्डभटमण्डलीकरपुटीकृपाणीलता
विपाटितमदावलाधिपतिमस्तकान्तस्तलात्
अनर्गलविनिर्गलद्रुधिरघोरणीशुष्मणा
स्तनोति दिवि गृध्रसन्ततिरिय हि धूमभ्रमम् ।।४ ४६

रामवर्मा का नाट्यसाहित्य

अश्वति तिरुनाल रामवर्मा की दो नाट्यकृतियाँ रुक्मिणी-परिणय और शृङ्गार-सुधाकर मात्र मिलती हैं।[1] उनके पिता रविवर्मा कोयिल ताम्पूरान किल्लिमानूर के निवासी थे। वे मलयालम मे कथाकली कोटि की रचना कसवधम् के लिये विख्यात हैं। रामवर्मा की प्रथम शिक्षा कार्तिक तिरुनाल महाराज के अधीन हुई। उनके दूसरे अध्यापक आचार्य शंकर नारायण तथा रघुनाथ तीर्थ थे। वे १७८३ ई० मे अपने चाचा के साथ रामेश्वर गये थे। १७८५ ई० में उनकी नियुक्ति युवराज पद पर हुई। १७६९ ई० मे वे ३८ वर्ष की अवस्था मे दिवंगत हुए।[2]

रामवर्मा की कृतियाँ संस्कृत मे विरचित रूपकों के अतिरिक्त हैं—

(१) कार्तवीर्य-विजय-प्रबन्धचम्पू
(२) वञ्चिमहाराजस्तव
(३) सन्तान-गोपाल-प्रबन्ध
(४) दशावतार-दण्डक

मलयालम में रामवर्मा ने रुक्मिणी-स्वयवर, पूतना-मोक्ष, अम्बरीष-चरित, पौण्ड्रक-वध, नरकासुर-वध आदि कथाकली कोटि की रचनायें की। मलयालम् मे पद्मनाभ-कीर्तन उनकी रचना बताई जाती है।

उपर्युक्त कृतियो से प्रतीत होता है कि नाट्य, संगीत और कलात्मक प्रवृत्तियो मे रामवर्मा अपने युग के अद्वितीय मनीषी थे। उनकी रचनाओ मे रुक्मिणी-परिणय का स्थान सर्वोपरि है।

रुक्मिणी-परिणय

कथावस्तु

रुक्मिणी परिणय की कथावस्तु यथानाम वृन्दावनवासी कृष्ण का रुक्मिणी से विवाह है। उद्धव ने कृष्ण को एक पत्र भेजा कि मैंने रुक्मिणी से आपके विवाह का पथ प्रशस्त किया है, पर इधर उसे शिशुपाल को देने की तैयारी उसके भाई ने की है। दोनो को चकमा देने की योजना भी मैंने बना ली है। आप शीघ्र यहाँ विदर्भ देश मे आ जायें। कृष्ण रथ से वहाँ पहुँच गये। वहीं वे कात्यायनी-मन्दिर में छिप कर रहने लगे। उद्धव ने छिपकर मदनातङ्कित रुक्मिणी को कृष्ण से वहाँ

१ रुक्मिणी परिणय का प्रकाशन काव्यमाला ४० मे हो चुका है। शृङ्गारसुधाकर यूनि० मैनु० लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् से १९४५ मे प्रकाशित हो चुका है।

२ इससे उनका जन्म १७५७ होना चाहिए, किन्तु कतिपय ग्रन्थो मे उनका जन्म-काल १७५५ बताया जाता है, जो प्रत्यक्ष ही अशुद्ध है। कीथ और कोनो उनका जीवनकाल १७३५-१७८७ बताते हैं, जो अशुद्ध है।

मिलने का उपाय रच दिया। कृष्ण को स्वप्न मे कोई परम रमणीय कन्या दर्शन दे गई। वे जब विदूषक से इसकी चर्चा कर रहे थे, तभी कात्यायनी-पूजा के लिए आई हुई रुक्मिणी की बातचीत सुनाई पडी कि मैं तो रुक्मी के प्रयासो से घबराकर एक बार कृष्ण का दर्शनमात्र करके मर जाना चाहती हूँ। वहाँ कात्यायनी की पूजा के निमित्त पुष्पावचय करती हुई रुक्मिणी और उसकी सखी नवमालिका की अपने विषय मे बातें कृष्ण ने विदूषक के साथ सुनी। तभी किसी विमानचर ने रुक्मिणी का अपहरण कर लिया। सुदर्शन ने रुक्मिणी को बचा कर कृष्ण से मिला दिया। दोनो का प्रेमाचार स्निग्ध था। मध्याह्न के समय सभी यथास्थान चलते बने।

तृतीयाङ्क मे रुक्मिणी मदनातङ्कित है। उसे कृष्ण का उपहार-स्वरूप मौक्तिक हार मिला। रुक्मिणी ने चित्रफलक पर कृष्ण का चित्र बनाया। नेपथ्य से सुनाई पडा कि रुक्मिणी से शिशुपाल का विवाह करने के लिए नगर का अलकरण किया जाय। इसे सुनकर रुक्मिणी अधमरी सी होकर विलाप करने लगी। सन्ध्या हुई और वह सखी के साथ अपनी माँ के पास चली गई।

चतुर्थ अङ्क मे रुक्मिणी-सहित रमणियो की स्वयवर-यात्रा प्रवर्तित हुई। इधर योजना यह बनी थी कि कृष्ण कात्यायनी-मन्दिर मे गौरी-विलास नामक प्रासाद के गर्भगृह मे जा पहुँचें, जहाँ रुक्मिणी नेपथ्य ग्रहण के बहाने आने वाली थी। चलते-चलते रुक्मिणी कात्यायनी-मन्दिर मे घुस गई। वह देवी की पूजा करने लगी। फिर नेपथ्य-विधान के लिए रुक्मिणी गर्भगृह मे पहुँची। वहाँ मणिस्तम्भ मे उसे कृष्ण की छाया दिखाई पडी। फिर तो कृष्ण मिले। नवमालिका ने दोनो का पाणिग्रहण करा दिया। अनङ्गसेना नामक सुन्दरी को रुक्मिणी का अलङ्कारादि पहनाकर यात्रा मे लौटा दिया गया। अनङ्गसेना का शिशुपाल से विवाह हो गया। इस प्रकार वचित होने से शिशुपाल ने कृष्ण से बदला लेने की ठानी। उसे युद्ध मे मुँह की खानी पडी।

पचम अङ्क मे कृष्ण उद्धवादि के साथ रथ पर रुक्मिणी को लेकर लौटे। मार्ग मे गोदावरी मिली, जिसे देखकर उद्धव ने रामकथा का स्मरण किया। फिर नर्मदा मिली, जिसकी चारुता की चर्चा कृष्ण ने की—

तटविटपि - सहस्रस्यन्दमानैर्मरन्दैर्द्विगुणितजलवेणीचारुवेणीकलापे ।
विपुल-पुलिन-पाली मजुगुञ्जन्मराली बहलहृदयसौख्य नर्मदा निर्मिमीते ॥५.४

उद्धव ने कहा—

रेवाम्भोगर्भशिला निधाय हृदि गाढभक्तिगुणबद्धा ।
दुस्तरमपि विद्वांसस्तरन्ति ससारसागर चित्रम् ॥५५

फिर वे उज्जयिनी पहुँचे, जहाँ महाकाल हैं—

जगत्त्रय - प्रतीतेऽस्मिन् महाकालनिकेतने ।
निर्मूलोप्यसिलाधार स्थाणुर्विजयतेतराम् ॥

विदूषक ने कहा—एषा उज्जयिनी कामिजनानां कारागृहम्।

आगे चलने पर उन्हे गङ्गा मिली। वही वाराणसी है—

मुक्तिक्षेत्रमिति प्रशान्तमतिभिव्युत्पत्सुभिर्वालिकै
विद्याभूरिति चाप्सरपुरमिति व्याप्ता विटश्रेणिभि।[1]
लीलाताण्डवसाक्षिणी भगवत खण्डेन्दुचूडामणे-
रेणाक्षि द्रुतमादरेण शिरसा वन्दस्व वाराणसीम्॥५ ११

वहाँ के कालभैरव ने सबके हृदय मे त्रास उत्पन्न कर दिया। फिर तो सभी वृन्दावन पहुचे। वहाँ यमुना, कालियह्रद, गोवर्धन आदि की शोभा निराली है।

नाट्यशिल्प

अर्थोपक्षेपक-रूप मे विदर्भ की घटनाओ को आरम्भ मे सूचित करने के लिए पत्र का उपयोग किया गया है।

वासुभद्र की एकोक्ति प्रथम अक के आरम्भ मे उनके रुक्मिणी के प्रति मनोभावो को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त है। यथा,

याने हसमयीव सारसमयीवात्यायते लोचने
वर्णे स्वर्णमयीव कर्णमधुरे वीणा मयीव स्वरे।
मध्ये शून्यमयीव मुग्धहसिते जातीमयीव श्रुता
कण्ठे कम्बुमयीव सा प्रियतमा चित्ते वरीवर्ति मे॥१ ६

नाट्यशिल्प की दृष्टि से यह उचित नही कि एक ही अक मे पाठक को द्वारका से विदर्भ तक का दृश्य दिखाया जाय। रगमच की परिधि इतनी विस्तारित नही की जानी चाहिए थी।

रगपीठ पर नायिकादि का आलिगन नही होना चाहिए—ऐसा कोई नियम रामवर्मा को मान्य नही है। वे द्वितीयाक मे रुक्मिणी और कृष्ण के विषय मे कहते हैं—

'तत प्रविशति सन्भ्रामनरलया रुक्मिण्या सरभसमालिंग्य वासुभद्र' इत्यादि।

नाटक के विष्कम्भकादि म प्रतिनायक की भूमिका नही होनी चाहिए। इसमें चतुर्थ अक के पहले विष्कम्भक मे शिशुपाल की भूमिका है।

नाट्यकथा चतुर्थ अङ्क मे समाप्त हो जाती है। विवाह हो जाता है। पचम अङ्क मे कृष्ण का विदर्भ से वृदावन लौटने का वर्णन है। नाटकीय कथाश का यह उपबृहण रोचक भले हो, कलात्मक नहीं है।

शैली

कवि आनुप्रासिक सगीत का विशेष प्रेमी प्रतीत होता है। यथा,

---

१. इस विशेषण से तत्कालीन वाराणसी की नागरक सस्कृति का विटाभिमुखी होना सुप्रतीत है।

मलयमहीधरमन्थरमारुतगन्धेभकन्धरारूढ़ः।
परभृतपटहाटोपप्रकटितविभवो मनोभवो जयति ॥१ २-

रामवर्मा की उत्प्रेक्षा आस्वादनीय है—

प्रालेयवारिघनसारकरम्बितेन मान्द्रेण लिप्त इव चन्दनकर्दमेन।
आपादचूडमभिषिक्त इवामृतौघैः सोऽहं मुखेन विवशत्वमुपैमि गाढम् ॥२ १५

रामवर्मा के रूपक अपने विशेषणों के द्वारा चित्र सा उपस्थित करके भावुकता की चरम सीमा अङ्कित कर देते हैं। रुक्मिणी के लिए कहा गया है—

इयं मम मनः शिखण्डिताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मी (प्रकाशम्), सखे पश्य—

पृथुतरकुचशैलोपत्यकोत्पन्नवल्लो-
विटपयुगललक्ष्मीं बिभ्रती बाहुनाले।
नह मम हृदयेन स्वैरमालोकयन्ती
ज्वलयति मदनाग्निं नेत्रमिन्दीवराक्षी ॥ २ १०

कतिपय अभिनव उद्भावनाओं की प्ररोचना मनोहर है। यथा कृष्ण का कहना है—

अग्रे तन्वी नुदति सुदति स्थूलवक्षोजभारः।
पश्चादेना तव तनुलता कर्षति श्रोणिभारः॥
इत्थं मा भूदिह कलह इत्येव सम्भिन्नयोर्वा।
मध्यस्थेयं वदति रशना शिंजितस्यच्छलेन ॥

लोकोक्तियों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने को उद्यत हैं। कंचुकी इसे लक्ष्य करके कहता है—

पिबतु दुग्धमिति जीर्णमार्जारस्मितम्।

शृङ्गारसुधाकर भाण

शृङ्गार-सुधाकर भाण का प्रथम अभिनय पद्मनाभ के चैत्रोत्सव के अवसर पर समागत विद्वानों के मनोरंजन के लिए हुआ था। सूत्रधार के कथनानुसार इसकी रचना लेखक ने मित्रों के आग्रह पर की थी। भाण का कथानायक माधव नामक विट है। वह प्रकृति में भी वाराङ्गना-व्यापार देखता है। यथा,

त्रियामा सङ्कोचामृदुलदलनम्रा कमलिनी।
हसन्तीमद्योद्यद्द्युमणिकरपादाहतिनताम् ॥
नमुद्वीक्ष्याभीक्ष्णं परिहसति सामोदभरिता।

माधव की प्रथम भेंट शृङ्गारशेखर से होती है, जो रतिरत्नमालिका नामक वाराङ्गना के चक्कर में है। रत्नमालिका एक दिन काञ्चन वेदिका पर बैठी थी, जिसकी मणिशिला पर शृङ्गारशेखर का प्रतिबिम्ब देखकर और फिर शृङ्गारशेखर को ही देखकर रोमाञ्चित हो गई। शृङ्गारशेखर ने माधव को बताया कि उस रूपसी के रूपामृत-पान का यह परिणाम मैं भोग रहा हूँ।

माधव ने कहा कि तुमको नाट्य-शिक्षा गृह में उससे मिला दूँगा। आगे माधव को सेठ पटीरदास का पुरोहित विशाखशर्मा मिला। उसका परिचय है—

नाम्रश्मश्रुमुख प्रकामगडुल कन्था दधद् धूसरा।
पाणौ पाण्डिमघूर्वहे परिवहन् दण्ड विलालेक्षण ॥
खल्वाटो ननानासिक कलकल किंचित् प्रजल्पन् स्वय।
काण कोऽयमलिञ्जरोदरभरो मत्समुख धावति ॥

उसने मन्दारवल्लरी नामक वेश्या से एक बार समागम यह कहकर किया था कि पौरोहित्य से मुझे १०,००० मुद्रायें पटीरदास पाँच छ दिनो मे देगा। उसे मैं तुम्हे दूँगा। उसने मुद्रायें नही दी तो एक दिन मन्दारवल्लरी की माता पलाण्डुखादिनी हाथ में झाडू लेकर उसे मारने को उद्यत मिली। भागते हुए वह माधव भट्ट की चपेट मे आया था। यह सब जानकर माधव ने अपनी शोक्बुद्धि प्रकट की कि पैसे के लिए मन्दारवल्लरी ऐसे निर्घृण को अपना शरीर दे रही है। उसने वेश्याओ की दुर्वृत्ति का वर्णन किया—

एड मनोभवकलासु जड विरूप वृद्ध विनष्टनयन व्रणपूर्णदेहम्।
सख्यानहीन-धनसचयिन पुमास वेश्याङ्गना द्रविणलोलतया भजन्ते॥

मन्दारवल्लरी के द्वार पर शुक वेश्या-गवेषको को उसका स्थान बताता था। वह किसी नायक के साथ क्रीडासक्त थी। माधव ने छेद से झाँककर उसकी रति-क्रीडा की परिणति का आँखो देखा चित्रण किया। उसके खटखटाने पर द्वार खुला। माधव ने उससे कहलवा ही लिया कि मैं कामक्रीडा से अभी ही निवृत्त हुई हूँ। उसका प्रणयी अपने को चारपाई के नीचे छिपाये हुए था। माधव ने कहा कि कभी तुम मेरी प्रणयिनी थी। ऐसे बेशर्म शर्माओ से बचो।

माधव ने चम्पकलता नामक गणिका का घर आगे देखा। उसके प्रासाद-शिखर पर व्यभिचारियो के भित्ति चित्र थे—अहल्या और इन्द्र, बृहस्पति और स्वाहा। चम्पकलता के उलाहन सुनकर माधव को बात बनानी पडती है कि तुम्हारी विलास-शृङ्खला से बँधा हुआ पूर्ववत् मेरा मन किसी दूसरे स्थान पर नही भ्रमण करता। चम्पकलता ने पूछा कि फिर आते क्यो नही? माधव ने कहा कि तुम्हारे पति मणिचूड ने आने वालो के पीछे कलहोमुखी नामक कुतिया जो लगा रखी है। यथा,

प्रथितापि सुखप्रदायिनी स्वगुणैर्दिक्षु विदिक्षु सन्ततम्।
भुजगी परिवेष्टितान्तरा सुलभा किन्तु पटीरवल्लरी॥

दुपहरी वह निष्कुट वन मे बिताता है। निष्कुट-वन का विस्तृत वर्णन है। वही पश्चिम मे कोई मजुल निकुञ्ज था—

निचुलितनिदाघकिरण शाखाश्रेण्या रथोपमश्रोण्या।
अभिनवनिधुवन-साक्षी प्रदृश्यते मजु कुञ्जमिदम्॥

उपवन के दक्षिण मे वेश्याओ की श्रेणी दिखाई पडी। झुरमुट की आड से वह वैजयन्ती, वल्लकी सल्लापा, चन्द्रलेखा, कर्पूर-शलाकिका, केतकीशिखा, कस्तूरिकामोदा, लीलावती आदि वेश्याओ का कामुक दृष्टि से वर्णन करता है और बताता है कि वे सभी जलक्रीडा के लिए कमल-सरोवर की ओर जा रही थी। सरोवर मे कमल काँप रहा था। कवि की उत्प्रेक्षा है —

अहमहमिकया वगाढमस्मिन् पयसि पनस्यनिलेन लोलिताया।
वदनसमुदयात् भयादमुष्या स्वविजयिन किमु वेपते सरोजम्॥

जलतरगो ने वेश्याओ के साथ मनोरम क्रीडा की। यथा,

आलिगन्ति सलीलमगलतिका चुम्बन्ति गण्डस्थली।
नीवी विश्लथयन्ति कुन्तलमिह व्यामिश्रयन्ति स्फुटम्॥
सीत्कार रचयन्ति पल्लवकवत् मृद्नन्ति वक्षोरुहा—
वुल्लोला ललनाजनस्य सलिले व्यातन्वत खेलनम्॥

स्वय सरोवर भी कवि को कामी प्रतीत होता है। इस काम-क्रीडात्मक व्यापार मे रीछ ने आकर बाधा डाली और वेश्याये जलक्रीडा छोडकर भाग चली। उसके भय से माधव भी भागा और वेदपाठी, ब्रह्मचारियो के बीच पहुँचा। वह उन्हे सीख देता है कि अपने को बचाओ। कामदेव का आक्रमण हो रहा है। यथा,

अयाणा लोकाना प्रभुरपि यमिन्दीवरशर
त्वनाराध्य स्यातु प्रभवति न गौरी-सहचर॥
विधुर्वा वेधा वा क्षणमपि तथा तौ भगवते
प्रपञ्चे कस्तस्मै सुरभिसुहृदे द्रुह्यति जन॥

वह उन्हे उपदेश देता है—

स्वाध्यायमन्त्रजपवेद-विमर्शदेव-पूजादिसर्वमनिदु खविधायि मुक्त्वा।
सद्य सुख विदधतीरधुनानुघस्र त्रस्तैककहायनचमूरदृश श्रयध्वम्॥

ब्रह्मचारी उसकी बेतुकी बाते सुनकर भाग खडे हुए। आगे माधव को सुमनोवती की अपार सौन्दर्य-राशि देखने को मिली। वह कामदेवायतन जा रही थी। वहाँ उसे नाट्यकला का प्रदर्शन करना था। माधव ने कहा कि अधरात्र के समय मैं तुमसे मिलूँगा। आगे चलने पर वह शिरीष सीमन्तिनी के प्रासाद मे देखता है कि जुआ चल रहा है। जीत हुई सीमन्तिनी की ओर हारे हुए प्रणयी को उसका आलिगन मिला। उनके आगे के कार्यक्रम मे बिना बाधा डाले वह नाट्यशिक्षागृह मे जा पहुँचता है। नाट्यशिक्षा गृह का वर्णन है—

मञ्जिष्ठोत्कृष्टपट्टस्फुटघटितवितानोच्चयोच्चावचश्री-
र्नेदिष्ठा सदयतेऽसौ चटुलमृगदृशा नाट्यशिक्षा खलूरी॥

वहाँ उसने वकुलमजरी का नृत्य देखा। तब तक सन्ध्या का समय आया। विट के मुख से कवि ने सन्ध्या का सागोपाग शृङ्गारित वर्णन प्रस्तुत किया है। अन्त मे वह शृङ्गारशेखर का काम करने के लिए रतिरत्नमालिका के भवन मे प्रवेश करता है। वह उसे देखकर उसका वर्णन करता है—

निकाम क्षामाङ्गी मृदुलनलिनी पत्रशयने।
शयाना दोर्वल्लीकलितविसनीकाण्डवलया ॥
उशीरव्यासक्त-स्तनतट - मिलद्वाष्पसलिला।
श्वसन्ती सोत्कम्प चटुलनयना प्राणिति परम् ॥

उसने पूछने पर माघव से बताया कि जब से शृङ्गारशेखर को देखा, तब से यही स्थिति है। माघव शृङ्गारशेखर को लाकर उससे मिला देता है। अन्त मे कहता है—

चन्द्रो यथा चन्द्रिकया यथा चन्द्रेण चन्द्रिका।
तथा युवा हि भूयास्त सम्पृक्तो सन्तत मिथ ॥६६

माणो की परम्परा मे शृङ्गारसुधाकर का उच्च स्थान है।



कृष्णदत्त का नाट्यसाहित्य

कृष्णदत्त मैथिल ब्राह्मण बिहार मे दरभगा के निकट उझान् (उद्यान) ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम भवेश और माता का नाम भगवती था। इनक तीन भाई पुरन्दर, कुलपति और श्रीमालिक थे। कवि परम्परया शैव या शाक्त सम्प्रदाय के थे। शक्ति की महिमा व्यक्त करने के लिए उन्होने चण्डिका-चरित-चन्द्रिका नामक महाकाव्य ११ सर्गों मे रचा। इन्होंने अपनी शाक्त प्रवृत्तियो का परिचय गीतगोविन्द की गगा नामक व्याख्या मे भी दी है। गीतगोविन्द की इसमे ऐसी व्याख्या है कि वह राधा और कृष्ण पर तो ठीक उतरती ही है, साथ ही उसके प्रत्येक गीत शिव और पार्वती के प्रसङ्ग मे कहे हुए प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त कृष्णदत्त ने गीतगोपीपति काव्य की रचना की थी।

कृष्णदत्त का 'रचना-काल प्राय' निश्चित सा है। इनके पुरजन-चरित की एक प्रति पर शक १६९९ सवत्सर लिखा है, जो १७७७ ई० है।[1] इस तिथि के विषय मे यह निश्चित है कि इसमे नाटक की प्रतिलिपि का समय इगित है। प्र स्तावना के अनुसार कृष्णदत्त के आश्रयदाता देवाजीपन्त को इसकी रचना के समय सर्वोच्च समुच्छ्रय प्राप्त था। देवाजी की ऐसी प्रतिष्ठा १७५५ ई० के पहले नही थी। पुरजन-चरित के सम्पादक सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे के मतानुसार इसकी रचना लेखक ने १७७५ ई० मे की होगी, जब वे नागपुर मे रहते होगे।[2] कवि के कुल मे सस्कृत-विद्या का पाण्डित्य परम्परागत है। इस समय उनके वशज ऋद्धिनाथ झा दरभगा के निकट लोहना मे सस्कृत-विद्यापीठ मे प्राचार्य हैं।

सदाशिव कात्रे का अनुमान है कि लेखक ने इसका प्रथम अभिनय अपने निर्देशन मे नागपुर मे आयोजित किया था।[3] इसके पीछे हाथ था दिवाकर पुरुषोत्तम चोरघोडे का। इन्हें देवाजीपन्त भी कहते हैं। इनके समय मे मराठो मे साढे तीन महान् राजनीतिज्ञो की गणना थी, जिनमे पूना के नानाफडनवीस आधे कहे जाते हैं, पेशवा दरबार के सखाराम बापू नागपुर दरबार के देवाजी पन्त और निजाम दरबार के

१ पुरजन-चरित-नाटक का प्रकाशन विदर्भ सशोधन-मण्डल-ग्रथमाला क्रमाङ्क १६ मे १९६१ ई० मे नागपुर से हो चुका है।

२ यह रचनाकाल सुप्रमाणित नही है। निश्चयपूर्वक यही कहा जा सकता है कि १७७५ ई० तक यह नव्य नाटक सुप्रसिद्ध हो चुका था।

3 Probably the auther himself directed and, with the help of his companions from Mithila and some local students and artists arranged the first staging of the drama at the festival Introduction p. 30 कात्रे का यह मत कल्पनामात्र है।

विट्ठल-सुन्दर पूरे एक-एक मिलाकर तीन हैं। कात्रे के अनुसार—his political wisdom at times challenging or baffling the unique brains even of Peshwa Mahdhavarao I, Nana Phadnis, Clive, Warren Hastings and several other British Statesmen and diplomats of the East India Company

राजनीति के कुचक्र मे देवाजी पन्त जैसे योग्य मनीषी को कुछ दिनो तक जेल म बन्द रहना पडा था। उनकी सारी सम्पति राजा ने हडप ली थी। उनका यह दुर्विलसित १७६६ से १७७२ ई० तक था।

देवाजी पन्त निस्सन्तान मरे। उनका एक अमान्य पुत्र कोका बापू उनकी वारस्त्री से था। देवाजी का एकमात्र स्मारक आज यही नाटक है।

जिस समय मिथिला मे कृष्णदत्त सारे भारत के लिए सस्कृत और प्राकृत भाषाओ के सम्मिश्रण से पुरजन-चरित और कुवलयाश्वीय-नाटक लिख रहे थे, उसके पहले और पीछे सस्कृत-नाटको मे प्राकृत के स्थान पर मैथिली का समावेश मिथिला के कवियो ने विशेषत मिथिला के दर्शको के लिए सफलता-पूर्वक किया था।[1]

पुरञ्जन-चरित

पुरजन-चरित का प्रथम अभिनय नागपुर के भोसला राजाओ के प्रधान मन्त्री देवाजी पन्त के प्रासाद से लगे वेङ्कटेश-मन्दिर के द्वार पर हुआ था। उसे देखने के लिए देवाजीपन्त के अतिरिक्त नगर के महान् विद्वान्, राजकर्मचारी और व्यापारी उपस्थित थे। अभिनय आरम्भ होने के पहले वहाँ कीर्तनकार हरिदास का भजन हुआ, जिसका परिचय सूत्रधार के शब्दो मे है—

विशद - पदकदम्बडम्बरसवलित-सस्कृत-प्राकृतमय - निरवद्यहृद्यगद्यपद्य प्रबन्धसमुदायेन वेदानसिद्धान्तसारसम्बन्धप्रायेण भार्गववासरीय हरिदास-वितन्यमान लक्ष्मीनिवास-कीर्तनामृतम्' इत्यादि।

उच्चकोटिक दर्शको के सुखपूर्वक बैठने के लिए गद्दे और मसनद लगे हुए थे। वेङ्कट-केशवदेव के उपचार-रूप मे कई दिनो तक मनोरजन-पूर्ण उत्सव के कार्यक्रम चलते थे। वेङ्कट देवाजी के कुल देवता थे। यह कार्यक्रम नवरात्र भर चलता था और विजयादशमी को समाप्त होता था।

इस नाटक की प्रस्तावना का लेखक सूत्रधार है, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से स्पष्ट है—

"यत्किल कृष्णदत्तकविना मैथिलेन पुरजन-चरित नाम नाटकमस्मामु-समर्पित तदभिनेयाराधनमस्य सभविष्यति।"

१ कृष्णदत्त के प्राय समकालीन रमापति उपाध्याय ने रुक्मिणी-परिणय नामक कीर्तनिया नाटक मे मैथिली का आद्यन्त रोचक समावेश किया है।

कथावस्तु

राजा पुरजन नायक अपने सचिव के साथ भ्रमण करते हुए एक नगर ऐसा चुनना चाहता था, जिसमें वह बस सके। उसे एक ऐसा नगर मिला, जिसमें नवद्वार थे और उसका गोप्ता रक्षक प्रजागर नागराज था। पुरजन वहाँ बस कर अपन मित्र अविज्ञात-लक्षण नामक महायोगी को ढूँढने लगा। वह उसकी शरण में आत्मसमर्पण करना चाहता था।

उस नगर मे एक पुरजनी नामक सुन्दरी रहती थी। वही नगर-स्वामिनी थी। दोनों मे प्रथम दृष्टि से ही प्रणयारम्भ हुआ, जो उनके निकट सगम में परिणत हुआ। पुरजन मृगया के चक्कर मे पुरजनी को नगर में छोडकर पचप्रस्थवन में घूमा करता था। उसके वियोग मे सन्तप्त पुरजनी को नायक ने इस शर्त पर मनाया कि अब उसे अकेली नहीं रहना पड़ेगा।

जहाँ पुरजन वहीं पुरजनी। वे घूमते घामते ऐन्द्रियक विलासों मे सरोवार होकर जलक्रीडा मे निमग्न थे। इस प्रकार पुरजनी के साथ परासक्ति देखकर और नायक की मृगया और विनोद-परायणता से उसे दुर्बल हुआ समझ कर चण्डवेग नामक शत्रु ने उस पर आक्रमण कर दिया। शत्रु के साथ जरा और भय भी थे। प्रजागर नगर को कहाँ तक बचाता? उसके घोर प्रयास करने पर भी नगर पर चण्डवेग का अधिकार हो गया। पुरजनी ने भी पुरजन को छोड दिया और अन्त मे निराश होकर नगर छोडकर वह भाग चला।

रणछोड पुरजन वैदर्भी नामक स्त्री-रूप मे परिणत हो गया। उसने विदर्भ के राजकुमार मलयध्वज से विवाह कर लिया। इसी अवसर पर अविज्ञात-लक्षण पुन उसके सम्पर्क में अनायास आया। मित्र पुरजन की इस दुर्दशा से उसे बचाने के लिए उसने नवलक्षणा नामक कामधेनु की सहायता ली।

वैदर्भी का मलयध्वज से संयोगवश वियोग हुआ तो वह उसके वियोग में आत्मदाह करने के लिए उद्यत हुई, क्योंकि वह अपने प्रियतम को ढूँढ निकालने में असमर्थ सी हो चुकी थी। उसे बचाया कामधेनु नवलक्षणा ने। उसने कहा कि इस नदी के उस पार तैर चलो और उस पार तुम्हें प्रियतम मिलेंगे। वैदर्भी नवलक्षणा की पूँछ पकड कर उस पार पहुँची।

अन्तिम अक मे वैदर्भी के पूछने पर कामधेनु नवलक्षणा न बताया कि मुझे आपको पार लगाने की शक्ति अविज्ञान-लक्षण नामक महायोगी से प्राप्त हुई है। वैदर्भी न उनकी सहायता से मलयध्वज से मिलने का कार्यक्रम ठाना। तब तो नवलक्षणा उसे दीपाचल पर्वत पर ले गई, जहाँ महायोगी विष्णु के मूर्तरूप वैकुण्ठेश वन कर रहते थे। वैदर्भी न विष्णु के दशावतार-परक दस पद्यों मे उनकी स्तुति की। विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने वैदर्भी को बताया कि तुम पुरजन हो और अब पुन मेरे सहचर बनकर तादात्म्य प्राप्त करो। उन्होंने उपदेश दिया कि माया और

उसके त्रिगुण के चक्कर मे पडकर तुमने अपनी यह दुर्गति कर ली है। न तो तुम पुरजनी के पति हो और न मलयध्वज की पत्नी हो। सदा पुरजनी नामक स्त्री का ध्यान करने से तुम वैदर्भी नामक स्त्री मे परिणत हो गये। अब सदा मेरा ध्यान करके मुझसे तादात्म्य प्राप्त करो। उसे योगावेश से विष्णु के कथन की सत्यता प्रतीत हो जाती है और अद्वैत का सम्यक् दर्शन होता है।

समीक्षा

पुरजन-चरित का प्रधान उपजीव्य भागवत पुराण है। कवि ने इसमे थोडा बहुत परिवर्तन आवश्यकतानुसार किया है। इसमे सितपक्ष, विचक्षण, अमितलक्षणा नवलक्षणा और उसके दो पुत्र सुरोचन और विरोचन नयी प्रकृति हैं। इनके काम कवि-कल्पित है। भागवत के अनुसार पुरजन को वे ही जगली पशु पुनर्जन्म मे कुल्हाडी से काटकर खा जाते हैं, जिनको उसने यज्ञ मे बलि दी थी। वे ही नरक मे असख्य वर्ष तक रहकर पुनर्जन्म मे वैदर्भी हुए।

भागवत मे मलयध्वज के मरने पर विधवा वैदर्भी उनके शव की गोद मे विलाप करती है। तभी अविज्ञात-लक्षण आकर उसे ज्ञान देते हैं। नाटक मे मलयध्वज से नायिका का वियोग थोडी देर के लिए होता है।

भागवत मे केवल अविज्ञात-लक्षण वैदर्भी को आध्यात्मिक ज्ञान कराने का प्रयास करते हैं, किन्तु नाटक मे उत्पाद्य कथा जोडी गई है कि अविज्ञात लक्षण ने नवलक्षणा आदि का प्रयोग किया और नवलक्षणा ने वैदर्भी को नदी पार कराकर शेषाचल पर्वत पर पहुँचाया और नायक ने वहाँ वेंकटेश केशव की स्तुति की।' वास्तव मे नाट्य-कला की दृष्टि से नाटक मे इस उत्पाद्य कथाश को जोडना आवश्यक नही है। इसके विना ही मूल पौराणिक कथा का प्रयोगात्मक रूप पर्याप्त रमणीय बन गया होता।

पुरजनचरित प्रतीक नाटक है। इसका विषय अध्यात्म-परक है। नटी तथा सूत्रधार ने भूमिका मे सकेत दिया है कि ऐसे नाटको के प्रेक्षक विशेष प्रकार के लोग होते थे, जैसा नटी कहती है—

नटी —विविधविमलविद्याविलासविश्वविदितपवित्रकीर्तीना।
ब्रह्ममूर्तीनामेतेषामिह कथ श्रवणसमुत्सुक हृदय भविष्यति॥

सूत्रधार—हरिभक्तकथयात्र शुश्रूषामुत्पादयिष्यनि। उक्त च तेन कविना—

हरिपदभजनाप्तशुद्धिमेता लघुमपि मद्गिरमाद्रियेन सम्य।

पुरजन-चरित का प्रतीक तत्त्व गौण है। इसकी भूमिका मे पुरजन आदि प्रत्यक्षत मानव प्रतीत होते हैं और उन्हे गौणत पहचनवाना पडता है कि वे आत्मा आदि हैं। इस प्रकार भूमिका की भावात्मकता या प्रतीकता या अमानवता नाटक के रसास्वाद मे क्षीणता का कारण नहीं बनती है।

शैली

सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे के अनुसार कृष्णदत्त ने पर्याप्त स्थलों पर कालिदास, शूद्रक, भवभूति, भर्तृहरि, हर्ष, जयदेव, शङ्कराचार्य आदि का अनुहरण किया है।[1] इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि साङ्गीतिक माधुर्य के साथ वैदर्भी का सारल्य कृष्णदत्त की उच्चकोटिक विशेषता है। यथा,

युवा कुलीन स्पृहणीयरूपो राजाहमस्मीति ममाभिमान।
न मे पुरी क्वापि नवालकान्ता न बालकान्ता न च भृत्यवर्ग ॥१ १०

कहीं-कहीं स्वरों का साम्य विशेष रोचक है। यथा—

रामा प्रविश्य हृदय नयनाभिरामा वामाशयानपि हरन्ति नरान् सकामा।
किं चिन्तनीयमिह किं तु वरेऽत्र कान्तालीय एव यदि तादृश कामभाव ॥१ १७

इस पद्य मे प्रथम दो पंक्तियों मे 'आ' का अनुप्रास विशेष सांगीतिक है।

सूक्ति-सौरभ

कृष्णदत्त का सूक्ति-सौरभ नाटक को प्रायश सुवासित करता है। यथा,

१ सौख्य कृतघ्ने कुत ।
२ योग्यस्योपरि सर्वो भर ।
३ पुण्यैर्यशो लभ्यते।
४ एक कोऽपि गुणो विलक्षणतर स्यात् सर्वदोषापह ।
५ प्राणेभ्योऽपि प्रतिष्ठा गरिष्ठा।
६ गतमप्यन्धाना न पश्यति।
७ कोपमचयाधीना हि प्रभुशक्ति ।

चौबे गये छब्बे बनने आदि हिन्दी कहावत का संस्कृत-रूप उन्होंने दिया है।

षड्वेदी भवितु गतस्य हि पर देश चतुर्वेदिन—
स्तत्रत्यैर्विहितं द्विवेदिपदवीमापादितस्योपमाम्

कुवलयाश्वीय नाटक

सात अंकों के कुवलयाश्वीय नाटक की रचना कृष्णदत्त ने अपनी बाल्यावस्था में १७५० ई० के लगभग की थी। इसका प्रथम अभिनव चन्द्रोदय के समय रात्रि में उद्यान ग्राम में महिषमर्दिनी देवी के चैत्रावली-पूजन महोत्सव के अवसर पर समागत शिष्ट सभ्यों के प्रीत्यर्थ किया गया था। इसकी प्रस्तावना में बताया गया है कि इस प्रकरण में नाटक के कवि का गुणागुणतारतम्य-विवेचन होना ही चाहिए।[2]

---

1 Introduction P. 20

२ कवयितुरभिधानमनधिगम्य गुणागुणतारतम्य-विवेचनाय न पारयाम ।

कृष्णदत्त ने कुवलयाश्वीय नाटक में राजकुमार कुवलयाश्व की मदालसा से विवाह की कथा ग्रहण की है।[१] कुवलयाश्व का वास्तविक नाम ऋतध्वज था। वह वाराणसी के महाराज शत्रुजित् का पुत्र था। महर्षि गालव ने अपने यज्ञ की दानवों से रक्षा करने के लिए सूर्य के द्वारा प्रदत्त अश्व को लेकर उनसे ऋतध्वज को माँगा। राजा ने ऋतध्वज को उन्हें दे दिया। मुनि ने कुवलय नामक वह अश्व ऋतध्वज को दिया, जो मध्याह्न के समय मुनि के सूर्योपस्थान करते समय सूर्य-मण्डल से उतरा था। कुवलय नामक अश्व पर आरोहण करने के कारण ऋतध्वज को कुवलयाश्व कहते थे।

पातालकेतु ने अपने योद्धाओं कंकालक और करालक को भेजा कि गालव मुनि के आश्रम से कुवलयाश्व का अपहरण कर लाओ। नायक के पराक्रम को प्रत्यक्ष देख कर करालक भग गया और कंकालक साधु वेष में वहीं रहकर अपनी योजना कार्यान्वित करने लगा।[२] एक दिन गालव ने नायक को आश्रम की शोभा देखने के लिए भेजना चाहा। आश्रम दिखाने के लिए उस समय कंकालक मुनि शिष्य शालंकायन का रूप धारण करके मुनि के आदेशानुसार नायक के साथ चला। वह नायक को वन दिखाते हुए बहुत दूर ले गया। इस बीच पातालकेतु नामक दानव ने मुनि के आश्रम पर धावा बोल दिया। मुनियों ने कुवलयाश्व को पुकारा और उसके आते ही पातालकेतु भाग चला। नायक उसका पीछा करते हुए पाताल में प्रवेश करता है। वहाँ उसे पातालकेतु द्वारा अपहृत नायिका गन्धर्व विश्वावसु की कन्या मदालसा का दर्शन होता है। उसकी सखी आर्या कुण्डला मदालसा को उसके प्रति आसक्त बताती है नायक भी उसे पत्नी रूप में अपनाना चाहता है। विवाह के पहले माता पिता की अनुमति के लिये दोनों रुक जाते हैं। तुम्बरु ने विश्वावसु और गालव की अनुमति प्राप्त करके उन दोनों का विवाह गान्धर्व विधि से करा दिया।

नायक मदालसा के साथ विश्वावसु की सहायता से पाताल से बाहर आ जाता है। गालव मुनि ने नायक के पिता को सारा युद्ध और विवाह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक अपने शिष्य पुण्यशील से कहलवा दिया। महाराज ने उसके पराक्रम की परीक्षा करके उसे युवराज पद पर नियुक्त किया।

काशी में एक दिन सपत्नीक नायक विश्वनाथ मन्दिर का दर्शन करके घर लौटा और चित्रशाला देखकर विश्राम कर रहा था, जब राजाज्ञा हुई कि प्रतिदिन पूर्वाह्न में मुनि के आश्रम की रक्षा करें। दूसरे दिन राजकुमार नायक को दानव कंकालक (नकली मुनि) का आश्रम मिला। उसने नायक से कहा कि

१ इस नाटक की पंचम अंक तक हस्तलिखित खंडित प्रति कामेश्वरसिंह-संस्कृत-विश्वविद्यालय, दरभंगा में है।

२ साधुवेष-धारण छायातत्त्व है। आगे कंकालक का शालंकायन बनना छायातत्त्व है।

मुझे अपने अनुष्ठान के लिए धन चाहिए। नायक ने उसे अपना मौक्तिक हार दिया। कंकालक नायक को आश्रम की रक्षा के लिए नियोजित कर स्वयं नायक के पिता काशीराज शत्रुजित् के पास पहुँचा। इधर राजा उसके लिए अपराह्न में विशेष चिन्तित था।

कुवलयाश्वीय नाटक की मूलकथा विस्तार सहित मार्कण्डेय पुराण में मिलती है।[1] कृष्ण ने इस कथा मे पर्याप्त परिवर्तन किया है और नये नये कथा पुरुषों को नये नये संविधानों मे नियोजित किया है।

कुवलयाश्वीय पर कतिपय महाकवियों का प्रभाव स्पष्ट है। यथा पंचम अङ्क मे

कुसुमादपि सुकुमारं कुलिशादपि निर्भरप्रौढिमा।
न विवेक्तुमर्हति जनः प्रकृतिगभीरं मनो महताम्॥

इस पर भवभूति की छाया है।

कवि ने अपनी कृषिप्रियता का परिचय इस प्रकार दिया है—

सुक्षेत्रोप्त-सुबीज इव कैदारिकः सुविनीततनयोपहितविनयो जनकः कोपपूरणं करोतीति। पंचम अङ्क से।

प्रथम अंक मे उत्प्रेक्षा का उदाहरण है—

हरिहयहरिदङ्के क्रीडमानस्य शङ्के शिशुशिशिरहरीशं कुक्कुटा हासनाय।
विधुरमधुरचञ्चत्कन्धराबन्धमेते विदधति कुहूरूकू काकुमाहूतवाचः॥

छायातत्त्व

कंकालक का मुनिशिष्य शालङ्कायन का रूप धारण करना छायातत्त्वानुसारी है। पंचम अंक मे वह मायावी पुनः ऋषि का वेश धारण करके तपस्वी बन जाता है। यह छद्मात्मक संविधान छायातत्त्व है।

समीक्षा

नाटक की प्रमुख कथा तीसरे अङ्क मे नायक के विवाह से समाप्त हो जाती है। उसके आगे क्रमशः नायक का युद्ध-वर्णन तथा युवराज-पद पर अभिषेक चतुर्थ अंक मे तथा विश्वनाथ-दर्शन और कंकालक-दानव से मुठभेड पंचम अंक मे अनावश्यक कलेवर वृद्धि करते हैं। कवि ने अपने आराध्य देव विश्वनाथ के दर्शन का प्रकरण नाटक की आवश्यकता के लिए नहीं, अपितु स्वान्तःसुखाय समाविष्ट किया है।

कृष्ण ने सूक्तियों और लोकोक्तियों के विन्यास से इस नाटक की भाषा को पर्याप्त रोचक बना दिया है। यथा,

---

१ मार्कण्डेय पुराण १८. ३८, १९ ८८

सूक्तियाँ

(१) स्वस्थे चित्ते बुद्धय सचरन्ति ।
(२) आकृतिविशेष एव पुरुषविशेष गमयति पुरुषस्य ।
(३) दुर्बलाना राजैव बलमित्यामनन्ति महान्त ।
(४) अनात्मवेदिना हि परमापदाम् ।
(५) कृतप्रतिकारिता हि महता शैली ।
(६) धुरन्धरेऽपि पुत्रे पिता गर्भस्थ इवोपदिशति ।

लोकोक्तियाँ

(१) धीवरा एव कच्छपोच्छ्वसित जानन्ति ।
(२) भास्वतानुगृहीताना न दिशा तिमिराद् भयम् ।
(३) पिपीलिकापि चरणस्पृष्टा दशति तत्क्षणम् ।

वाराणसी की वर्णना से यह नाटक प्रेक्षको को पावन बनाता है ।



श्रीकृष्णशृंगार-तरंगिणी

श्रीकृष्ण-शृङ्गार-तरंगिणी-नाटक के प्रणेता वेङ्कटाचार्य का प्रादुर्भाव मैसूर में हुआ था।[1] इनके पिता अण्णयाचार्य तथा चाचा श्रीनिवास ताताचार्य थे। इनकी प्रतिभा का विकास सुरपुरम् के राजा वेङ्कट नायक १७७३–१८०२ ई० के आश्रय में हुआ था। वेङ्कट परकाल के महादेशिक के उपासक थे। कवि की कौलिक परम्परा उच्चकोटिक विद्वानों से सुमण्डित रही है। वेङ्कट ने बहुविध ग्रन्थों का निर्माण किया था। यथा—

(१) गजसूत्रार्थ—व्याकरण-विषयक, (२) कृष्णभावशतक-स्तोत्र, (३) अलंकार-कौस्तुभ, (४) शृङ्गार-लहरी गीतकाव्य, (५) दशावतार-स्तोत्र, (६) हयग्रीवदण्डक-स्तोत्र (७) यतिराजदण्डक—रामानुजाचार्य-विषयक स्तोत्र और (८) ब्रह्मास्त्र-दर्शन उनका लिखा अचलात्मजा-परिणयमु तेलुगु भाषा में शिव-पार्वती परिणय की कथा है।

प्रस्तावनानुसार इस नाटक के विषय में वेङ्कट का पूर्वाग्रह है—

कृतिनामपोह यतिना रसश्रुतेर्भविता तथैव भवितानुगामति ।
द्विपता दुदूषयिपतामपि स्वय वचन गुण-प्रवचन भविष्यति ॥

इसके नाम को सार्थक करने के लिए कवि ने बहुविध योजनाओं के द्वारा आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और सचारिभावों की अविरल मनोज्ञता प्रस्तुत की है। पचम अक में मणिमाला के मुख से नायिका सत्यभामा का नखशिख-वर्णन शृङ्गारित है।

कथावस्तु

शठमर्षण ऋषि के कौतुकपूर्ण पारिजात-पुष्प को इन्द्र ने चुरा मँगवाया और मुनि के भय से उसे नारद को दे दिया। नारद ने उसे द्वारका में कृष्ण को दिया। कृष्ण ने उसे रुक्मिणी को दिया। यह जानकर सत्यभामा प्रकुपित हुई कि मुझे वह पुष्प क्यों नहीं मिला? बस, कलह कराने की नारद की योजना-लता पनपने लगी। कृष्ण सत्यभामा के भवन में पहुँचे। वहाँ सत्यभामा ने बताया कि पारिजात देने के लिए रुक्मिणी है तो प्रेम करने के लिए भी वही रहे। कृष्ण ने कहा—

गत्वा सत्वरमाहरामि ललने मन्दारमिन्द्रालय ।
जित्वा श्वो भवदीयकेऽप्युपवने न्यस्यामि दास्यामि च ॥३ ६४

भ्रमरों की बातचीत से विश्वावसु को ज्ञात हुआ कि इन्द्र पर आक्रमण करके कृष्ण पारिजात-हरण करने वाले हैं। वह इन्द्र से ऐसा बता, आया। चतुर्थ अक में

1 इस नाटक की अप्रकाशित प्रतियाँ मद्रास, मैसूर आदि में मिलती हैं।

नारद ने इन्द्र का समाचार कृष्ण को दिया कि चार से इन्द्र को ज्ञात हो चुका है कि पारिजात को इन्द्र यदि सीधे से नहीं दे देता तो आप उसे बलात् हर लेंगे। अतः इन्द्र आप पर बिगड़ा है। कृष्ण ने उत्तर दिया कि कल ही उसे ठीक कर दूँगा।

इन्द्र ने युद्ध के लिए लक्ष्मी की आराधना करके उससे एक कमलदल प्राप्त किया, जिससे यथेच्छ चतुरंगिणी सेना निःसृत होने को थी, पर वह स्त्री के स्पर्श से व्यर्थ हो जाने को थी। ऐसा ही हुआ। सत्यभामा के साहचर्य से कमलदल से उत्पन्न सारी सेना विलुप्त हुई। अन्त में कृष्ण जीते।

पंचम अंक में त्वष्टा की कन्या मणिमालिका एक विशिष्ट मणिपर्यङ्क का उपहार सत्यभामा को देती है। रात्रि की चन्द्रिका में रुक्मिणी से खिन्न होकर वृक्ष के मूल में बैठी सत्या कृष्ण की प्रतीक्षा करती है। वह मन्मथ ज्वर-सन्तप्ता है। वह कृष्ण-विषयक अपने प्रेम-भरे मनोभाव गा-गाकर प्रकट करती है। कृष्ण आये तो सत्या उनके चरणों में लिपट गई। पर्यङ्क पर दोनों बैठे। सखियाँ निकुंजों में छिप गई।

शिल्प

नाटक वर्णन-परक है। अर्थोपक्षेपक विशेषतः वर्णन-पूरित हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। वर्णनों के द्वारा कवि अपनी काव्योत्कृष्टता प्रदर्शित करना चाहता है। नाट्यकला की दृष्टि से यह स्पृहणीय नहीं है। इनसे कवि की सुकविता भले प्रमाणित होती है, नाट्यमर्मज्ञता नहीं प्रतीत होती। वर्णनों में पद्यों का बाहुल्य है।[1] वर्णनों में कथासूत्र इतना शिथिल और आच्छन्न है कि उसे देख पाना सरल नहीं है।

रंगमंच पर किम्पुरुष-दम्पती चुम्बन-परायण है। यह शास्त्रीय मर्यादा से भले विरुद्ध हो, पर नाट्य-जगत् में त्याज्य नहीं रहा है।[2]

विमानावतरण रंगमंच पर दिखाया गया है। किम्पुरुष-दम्पती विमान से आकाश में रह कर ही अपने संवाद से प्रेक्षकों को चमत्कृत करता है। विमान ऊपर-नीचे भी किया जाता है। अन्त में विमान रंगमंच पर उतरता है।[3]

विष्कम्भक या प्रवेशक के पात्रों को अङ्क आरम्भ होने के पहले रंगपीठ से चल देना चाहिए। यह संस्कृत रूपकों में निरपवाद रूप से देखा जाता है। ये तो अंक के समान ही स्वतन्त्र अपने-आप में पूरे नाट्यांश हैं। वेंकट ने ऐसा नहीं किया है। प्रथम अङ्क के पूर्व के विष्कम्भक के पात्रों को अङ्कभाग में अनुज्ञात किया गया है।

---

१ प्रथम अङ्क के पहले का विष्कम्भक इस प्रवृत्ति का अनूठा उदाहरण है।

२ द्वितीय अंक में कृष्ण सत्यभामा को 'बलादङ्के निवेशयति' कहा गया है। पंचम अंक में भी कृष्ण सत्यभामा का परिष्वजन करते हैं।

३ 'इति विमानमवतारयन्।'

अनुप्रासित ध्वनि-निनाद से श्रोता का सागीतिक अनुरजन करने मे कवि विशेष सफल है। यथा,

वनशवरी-वनक्वरी-भरनिवरी-प्रसूनपरिमिलित ।
उपवन-पवन पवनान्मम वपुषि श्रममपाकुरुते ॥१३६

चाहे गद्य हो या पद्य, वेङ्कट सानुप्रासित ध्वनियो को जोडने मे बेजोड हैं। एक अन्य उदाहरण है—

अभङ्गभृङ्गभङ्गिकोत्तरङ्गमङ्गलस्वर—
प्रसगसगत लतानिकुञ्जपुञ्जमास्थिता ।
प्रफुल्लपल्लवोल्ललत्तमालमेघमालिका
स्वयचलासु चञ्चलेव चारु सचचार सा ॥१४४

वेङ्कट की दृष्टि मे प्रथम अङ्क मे यह विचार नही आया हुआ प्रतीत होता कि अङ्क भाग मे केवल दृश्य होना चाहिए। सूच्य तो अपवाद रूप से अङ्क मे हो हो सकता है, किन्तु वेङ्कट ने पूरे प्रथम अङ्क में एकमात्र सूच्य वृत्त दिया है कि शठमर्षण का पुष्प कैसे इन्द्र ने चुराया और उसे नारद को दिया। नारद ने उसे द्वारका मे कृष्ण को दिया।

सवाद

सवादो की औचिती की ओर वेङ्कट का ध्यान नही गया है। चतुर्थ अक के पूर्व विष्कम्भक मे चित्राङ्गद और विश्वावसु वर्णनात्मक सवाद करते हैं। इनमे से विश्वावसु का एक भाषण सीधे ५० पक्तियो का लगातार है।

अध्याय ६६

वसुलक्ष्मी-कल्याण-नाटक

वसुलक्ष्मीकल्याण के रचयिता वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी वेङ्कटेश्वर मखी के पुत्र महान् वैयाकरण अप्पय दीक्षित के वंशज हैं।[1] सूत्रधार ने वसुलक्ष्मीकल्याण की प्रस्तावना मे अप्पय दीक्षित से आरम्भ करके वेङ्कटसुब्रह्मण्य तक वंशवृक्ष का उल्लेख किया है। यथा,

अप्पयदीक्षित
|
नीलकण्ठदीक्षित
|
सिंहमप्पाध्वरी या चिन्नमप्पाध्वरी
|
भवानीशंकर मखी
|
वेङ्कटेश्वरमखी
|
वेङ्कटसुब्रह्मण्याध्वरी

कवि की वंश परम्परा मनीषियो की खनि रही है।

वेङ्कटसुब्रह्मण्य व्याकरण, मीमांसा, तर्क, साहित्य-विद्या आदि ज्ञान-विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओ के पण्डित-प्रकाण्ड थे। इनकी अन्य रचनाओ का अभी तक परिचय नहीं मिला है।

वेङ्कटसुब्रह्मण्य त्रावणकोर के राजा बालरामवर्मा (१७५८-१७९८ ई०) की राजसभा को समलङ्कृत करते थे। उन्होने इस नाटक का प्रणयन १७८५ ई० में किया। कवि स्वय शिष्यो के अध्यापन मे निरत थे।

कथावस्तु

वसुलक्ष्मी सिन्धुराज वसुनिधि की पुत्री थी। सपने मे रानी ने देखा कि राजा उससे प्रेम कर रहा है। उसका चित्र मन्त्री ने विदूषक के द्वारा बालरामवर्मा के पास भेजा। उसे देखकर वह मोहित हो गया। नायिका भी नायक के चित्र को देखकर मोहित थी। उसके मन्त्री बुद्धिसागर को अपने राजा का प्रभाव बढाने के लिए उसके विवाह मे विशेष रुचि थी। वसुनिधि अपनी कन्या को बालराम को विवाह मे देना चाहता था, किन्तु उसकी माता उसका विवाह सिंहलराज से करना चाहती थी। माता ने वसुलक्ष्मी को सिंहल-देश भेजा, पर बीच ही मे वह केरल के सामुद्रिक तट पर मन्त्री बुद्धिसागर के द्वारा रोकी जाकर त्रावणकोर लाई गई।

---

१ इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम्-संस्कृत-सीरीज मे हुआ है।

रामवर्मा और वसुलक्ष्मी ने एक-दूसरे को पहले चित्र मे देखा था। तभी से वे प्रेम करने लगे। कालान्तर मे राजप्रासाद के उपवन मे परस्पर दर्शन के पश्चात् मनसा एक-दूसरे के हो गये और विवाह के पहले तक मदनाग्नि से सतप्त ही रहे।

रामवर्मा की रानी वसुमती यह नही चाहती थी कि मेरी सपत्नी वसुलक्ष्मी बने। वह उसका विवाह चेरदेश के राजकुमार वसुवर्मा से करना चाहती थी। रामवर्मा को यह ज्ञात हुआ तो उसने वसुवर्मा का वेष धारण करके वसुलक्ष्मी से अपनी राजधानी मे ही विवाह कर लिया। इस उपक्रम मे जब महारानी वसुमती ने स्वय वसुलक्ष्मी का पाणिग्रहण रामवर्मा से करा दिया, तब उसे ज्ञात हुआ कि वसुवर्मा ही रामवर्मा है। पहले तो रानी न वसुलक्ष्मी को बन्दिनी बनाया, पर शीघ्र ही अपनी भूल समझ कर उससे क्षमा मॉगी। झख मारकर उसने खुशी खुशी वसुलक्ष्मी को रामवर्मा को अर्पित कर दिया। इस अवसर पर वसुलक्ष्मी के भाई भी उपस्थित हो गये थे। उन्होंने यौतक दिया।

इस नाटक को कवि ने सदाशिव की भाँति नाट्यशास्त्रीय उदाहरणो की मजूषा-रूप मे निर्मित किया है। सदाशिव और वेङ्कट सुब्रह्मण्य—इन दोनो के वसुलक्ष्मी-कल्याण का कथानक प्रायश समान है।

समसामयिक दो कवियो ने वसुलक्ष्मी का बालराम वर्मा से विवाह की कथा लिखी है। क्या यह कथा सर्वथा कल्पित है? इस प्रश्न का समाधान उन अनेक नाटको की कथावस्तु का साथ ही विवेचन करके सम्भाव्य है, जिसमे वसुलक्ष्मी या वसुमती आदि के किसी ऐतिहासिक राजा से परिणय का वृत्त है।[1] वेङ्कटसुब्रह्मण्य के नाटक मे वसु से समस्त नाम वाली अनेक प्रकृतियो से स्पष्ट है कि वे सभी काल्पनिक हैं।[2]

---

१ अप्पय दीक्षित का वसुमती चित्रसेनीय, जगन्नाथकृत वसुमती-परिणय, रामानुज कृत वसुलक्ष्मीकल्याण ऐसे नाटक हैं। इनमे से वसुमती-चित्रसेनीय की प्रस्तावना मे तो स्पष्ट ही लिखा है कि नाटक की कथा कल्पित है। जगन्नाथ के वसुमती-परिणय मे वसुमती नायिका ही काल्पनिक है। वह राजश्री का पर्यायवाची है। इसका नायक प्रतीक द्वार से सवथा ऐतिहासिक है। अन्य नाटको मे भी वसुमती काल्पनिक ही है।

२ राजा की महिषी वसुलक्ष्मी का पिता वसुनिधि उसका भाई वसुराशि, वसुमती का भाई वसुमान्, चेरदेश का राजकुमार वसुमान्, सिन्धुराज का पुत्र वसुराशि, इतने नामो को वसु से आरम्भ करके कवि सम्भवत प्रेक्षक को बता देना चाहता है कि इनमे ऐतिहासिकता ढूँढने का प्रयास व्यर्थ है।

प्रस्तावना में सूत्रधार ने बताया है कि इस नाटक को कवि ने मुझे अर्पित किया है। यथा,

> शृङ्गारैकरसोर्मिल प्रतिदिन यच्छिद्दयमाए मया।
> पात्रेष्वादरतोऽर्पित च कविना मय्यद्भुत नाटकम् ॥

नाट्यशिल्प

रगमच पर आलिंगन का दृश्य नहीं होना चाहिए। इस नाटक मे अन्य कई सस्कृत नाटकों की भाँति इस नियम का पालन नहीं हुआ है। इसके तृतीय अङ्क मे नायिका नायक का आलिंगन करती है। नायक भी नायिका का दुष्परिष्वग करता है।

एकोक्ति

वसुलक्ष्मीकल्याण मे एकोक्ति को कही-कही स्वगत कहा गया है। एकोक्ति का प्रयोग प्रथम अङ्क के आरम्भ में मिलता है। नायक हर्म्यतल पर बैठा हुआ है। वहाँ पीछे से विदूषक आता है और राजा की एकोक्ति अदृष्ट रहकर सुनता है। इस एकोक्ति का प्रयोजन अर्थोपक्षेपक के समान है। इसमे बताया गया है कि राजा ने रानी का उत्स्वप्नायित उपालम्भ सुना कि तुम्हें जिस चुडैल से प्रेम हो चला है, उसे मैंने देख लिया है। यह कह कर रानी क्रुद्ध होकर चलती बनी तो राजा पीछे-पीछे चला और उसके चरण पर प्रणति करते हुए अनुनय की कि यह सब वितथ कह रही हैं। वह मानी नहीं और चली ही गई।

राजा की एकोक्ति सुनकर विदूषक अपने विचार प्रकट करता चलता है। उसका बोलना स्वगत-रूप मे प्रस्तुत है। तृतीय अङ्क के आरम्भ मे २२ पद्यो की लम्बी एकोक्ति राजा नायिका के विषय मे करते हैं। यह एकोक्ति कला की दृष्टि से उच्च कोटिक है। चतुर्थ अक के आरम्भ म नायक की १६ पद्यो की नायिका-विषयक एकोक्ति है।

सगीत

द्वितीय अक मे नायिका के द्वारा वीणागान प्रस्तुत किया गया है। सगीत का सामञ्जस्य नाट्याभिनय को सरस बना देता है।

छायातत्त्व

नायिका के चित्र वाले फलक को देखकर नायक का शृङ्गाराभिभूत होना छायातत्त्वानुसारी है। वह कहता है—

> शृ गारामृतवर्तिकेव नयने सत्कुर्वती कुर्वती
> दर्प दर्पकसौनिकस्य मुनिहृत्पापाणविद्राविणी।
> नैषा दृष्टचरी न वा श्रुतिचरी हन्तैयताप्यायुषा
> कैषा कामवधूरिवात्र लिखिता योषा न विज्ञायते ॥

चित्रदर्शन मात्र से वह सानुराग होकर उन्मत्त हो जाता है।

रंगपीठ के अनेक भाग

रंगपीठ पर एक ओर राजा विदूषक से बात करता है और दूसरी ओर उनसे अदृष्ट रहकर रानी और उसकी सखी बातें करती हैं। वे राजा और विदूषक की बातें सुनती हैं। इस प्रकार के दो भागों के बीच में कवाट होता था।[1]

अंकास्य

पंचम अंक के पूर्व अङ्कास्य रखा गया है। इसमें केवल एक पुरुष कंचुकी अपनी गाथा के पश्चात् उन घटनाओं की सूचना देता है, जो साधारणतः प्रवेशक और विष्कम्भक के द्वारा दी जाती हैं। कोई विशेषता इस अंकास्य में नहीं है।

चूलिका

चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक के पात्र नेपथ्य से ही नहीं, अपितु रंगपीठ पर आकर अर्थ की सूचना द्वितीय अंक के पूर्व देते हैं। यह कमारतीय तीर्थ है।

अभिनय-शिक्षण

सूत्रधार के द्वारा नटों को नाटक की शिक्षा देने का उल्लेख इस रूपक में मिलता है। सूत्रधार ने कहा है—

शृङ्गारैकरसोर्मिलं प्रतिदिनं यच्छिक्ष्यमाणं मया
पात्रेष्वादरतोऽपि न च कविना मय्यद्भुतं नाटकम्॥

स्वयं नट ने भी सूत्रधार के द्वारा नटों को नाटक पढ़ाने का उल्लेख इस प्रकार किया है—

भावेन मादरमध्यापिता स्ववर्ग्या ह्य सायन्तने भरतवाक्यपाठिनो मया श्रुता।

कुलक्रम से जैसे नाटकों के प्रणेता आनुवंशिक होते थे, वैसे ही उनका अभिनय करने वाले सूत्रधारादि नटों की भी वंश-परम्परा होती थी। सूत्रधार ने प्रस्तावना में बताया है।

मम हि पूर्वेषामपि रंगदेवाभिनवगुप्त-रसमल्ल-नटकुलशेखरप्रभृतीनां नाट्यविद्याचार्याणामीदृशानि रसाधारणविख्यातिमूलगुरवोऽस्य कवेः पूर्विका श्रीमदप्पयाध्वरिवेङ्कटेश्वरमखि-प्रभाकरदीक्षितप्रभृतयः षड्दर्शनीवल्लभा अपि नलचरितोमापरिणयोपाहरण-हरिश्चन्द्रानन्दप्रभृतिभिरपरिमितैरद्भुत नाटकादिप्रबन्धैः कुलक्रमादेवाम्मज्जीविका-हेतव।

1. विदूषक के विषय में इस प्रसंग में कहा गया है—'ममन्भ कवाटमुद्घाट्य दृष्ट्वा सावेगम।'

कतिपय रानियाँ अभिनयशाला में आई हुई सहस्रों कन्याओं का स्वयं अलकरण करती थी।[1]

राजनीतिक नाटक

वसुलक्ष्मीकल्याण का राजनीतिक महत्त्व सविशेष है। प्रथम अङ्क के पहले कवि ने शुद्धविष्कम्भक में बताया है कि हिमालय के पश्चिम अनूप देश के रहने वाले हूणराज से नायक का मैत्रीभाव विशेष रूप से बढ़ेगा। यथा,

सिद्धार्थक—तदनेन तीर्थेन हिमवत्पश्चिमानूपवासिनोऽपि भारतवर्षमात्रव्यापिनो हूणराजस्य चिरप्रवृत्तमपि सख्यं देवेन बहुलीभविष्यतीति मन्ये।

पद्यात्मकता

वेङ्कटसुब्रह्मण्य को पद्य लिखने का विशेष चाव था। जहाँ भावादि की दृष्टि से पद्य की आवश्यकता नही प्रतीत होती, वहाँ भी पद्य के द्वारा बातें कही गई हैं। यथा,

अयं कुमारो वसुराशिवर्मा प्रियं सुतं सिन्धुपते प्रवीर।
स्वसुः प्रियत्वात् स्वयमागतोऽत्र नमत्यसौ न पितुर्निविशेषम् ॥५.५६

इस पद्य मे बुद्धिसागर मन्त्री ने वसुराशि का परिचयमात्र दिया है। वास्तव मे इस युग मे नाटको मे गद्य की अपेक्षा पद्य को अधिक अपनाया जा रहा था, जो अस्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस नाटक मे ऐसे पद्यों की सख्या प्रचुर है।

१ महाराज रामवर्मा की पत्नी वसुमती ने चतुर्थ अक में कहा है—अभिनयशालागताना कन्यकाना सहस्रमपि कौतुकिनी क्षणान्तरेणैव चतुरतरमलकरोमि।

विवेकमिहिर

विवेकमिहिर-नाटक के प्रणेता हरियज्वा का परिचय नाटक की अन्तिम पुष्पिका मे इस प्रकार मिलता है[1]—

इति लक्ष्मीनृसिंहसूनुना हरियज्वना प्रणीते विवेकमिहिराभिधे नाटके पचमोऽङ्कः ।

अर्थात् लक्ष्मीनृसिंह के पुत्र थे हरियज्वा । उन्होने नाटक के प्रणयन का समय बताया है । यथा,

शाके १७०६ क्रोधिसवत्सरे माघकृष्णप्रतिपदीद पुस्तक ममाप्तम् ।

इसके अनुसार नाटक की रचना १७८५ ई० मे हुई । विवेकमिहिर का प्रथम अभिनय नृसिंहमहोत्सव के अवसर पर इकट्ठे हुए विद्वानो के सगम के मनोरजन के लिए हुआ था।

कथावस्तु

मोह की राजसभा मे काम-क्रोधादि क्रमश आकर ससार मे अपने कृतित्व की चर्चा करते है । वे बताते हैं कि किस प्रकार तथाकथित विद्वान् भी हमारे प्रभाव के कारण अपनी उच्चता खोकर हीन स्वभाव वाले हो गये हैं । यथा काम का वक्तव्य है—

अधीतविद्या अपि केचिदत्र त्रपा विहायार्थपरा परेषाम् ।
मर्माण्युपोद्धाट्य निजप्रभाव सर्वाधिक ससदि वर्णयन्ति ।।१ ३

क्रोध कहता है कि वीतराग भी मेरे प्रभाव मे है । उसके वश मे आने पर

ओष्ठ प्रकोष्ठ च दशन्ति दन्तै दन्तान् विनिष्पिष्य कर करेण ।
श्मश्रूणि मृद्नन्ति शपन्ति मद्वशा किं किं न कुर्वन्ति हि कोपिनो जना ।।

मद ने कहा कि मैं विद्यावान्, धनवान और गुणियो मे नित्य रहता हूँ । मद ने मोहराज से कहा कि मेरा एक शत्रु दम है । उससे बडा भय लगता है । मोह ने उसे समझाया—

यस्यास्ति कामक्रोधाभ्या व्याक्षिप्त सहसा मन ।
न पद तत्र धत्ते वै दम पङ्के मरालवत् ।।१ १४

फिर लोभ ने अपना बखान किया—

परिग्रहपराङ्मुखा अपि विरागिणो मद्वशे भवन्ति धनलोभिनो निर्धनभीतिभाज ।

फिर दम्भ आया । उसने कहा—

---

१ यह नाटक अप्रकाशित है । इसकी प्रति सागर-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे है ।

येपा क्वापि गतिर्न चास्ति भुवने तेपा हि दम्भो गति ॥१ १८

फिर मत्सर आकर मोह के पूछने पर बोला—

भो स्वामिन्, जगति यावद्गुणिनो, विद्यावन्त, कलावन्त, सभाग्या, सुशीला, सुरूपिण, सुभूपिता आयुष्मन्त पुत्रवन्त इत्याद्या सन्ति तावत् कथमह सुखी भूयासम्। उक्तानामेपा मध्ये यदा कदाचिदन्यतमो मृत इति शृणोमि, तद्दिन एव मनाक् सुखी भवामि।

नेपथ्य से मोह को सुनाई पडा कि ऐ पापियो, चुप रहो। उसने समझ लिया था कि विवेकराज आ पहुँचे हैं। वह भाग खडा हुआ।

द्वितीय अक मे रगमच पर विवेक सपरिवार है। उसके पारिपद ने बताया कि विदूपक के समान कोई आ रहा है। उसने दो बार प्रणाम किया। विवेक ने पूछा कि यह दूसरा प्रणाम किसके लिए ? विदूपक ने बताया कि यह मोहराज के लिए है। विवेक ने पूछा कि वह कहाँ है ? विदूपक ने कहा कि वह तो अव्यक्त रूप से यही विराजमान है। विवेक ने कहा कि मेरे होते तुम्हे उससे क्यो डरना चाहिए ? विदूपक ने कहा कि वही मेरी शरण है। विवेक ने कहा कि मैं तेरी शरण हूँ। विदूपक ने उपहास करते हुए कहा कि जब विश्वामित्र ने वसिष्ठ के सौ दायादो को मारा, जब वीरभद्र ने यज्ञशाला मे दक्ष प्रजापति का सिर काटा, जब दारुवन मे शिव ने महर्पिपत्नियो से व्यभिचार किया इत्यादि अवसरो पर आप क्यो नही पीडित वर्ग की शरण बने ?

तभी आचार्य आये, जिनसे विवेक ने विदूपक के आरोप को बताया। आचार्य ने समझाया कि विदूपक की उत्तान बुद्धि है। सच तो यो है कि—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणा च साहसम्[1]।
तेजीयसा न दोपाय वह्ने सर्वभुजो यथेति ॥२ ५
सर्वं बलवता पथ्य सर्वं बलवता हितम्।
सर्वं बलवता धर्म सर्वं बलवता स्वकम् ॥[2]

आचार्य ने विवेक से कहा कि आप तो पूरी सेना के साथ मोहराज पर आक्रमण करके उसे परास्त करें। फिर सब ठीक हो जायेगा।

शमदमादि ने आकर अपना दुखडा आचार्य से रोया कि हमे तो दिनरात कामादि से लडना पड रहा है। यथा,

मूर्खाणा पण्डिता द्वेप्या कुरूपाणा सुरूपिण।
दुष्टाना साधवो द्वेप्या पासुलाना पतिव्रता ॥२ ६

आचार्य ने समझाया कि पहले तुम सभी भगवदुपासना करो। विवेक के नेतृत्व मे इस काम मे सफलता प्राप्त करो। श्रद्धा को अपनाओ।

---

१ यह पद्य भागवत से उद्धृत है।

२ यह पद्य महाभारत से उद्धृत है।

तृतीय अक मे भक्ति और श्रद्धा आचार्य से मिलते हैं। आचार्य ने उनसे कहा कि आप दोनो विवेकवत्स की रक्षा करें। आचार्य ने राम से कहा कि धृति से सगमित होकर आप काम-क्रोधादि को नष्ट करें।

वहाँ विदूषक आ पहुँचा। उसने आचार्य से बताया कि मुझे मोह ने बहुत सताया है। उसने मुझसे आपके पास सदेश भिजवाया है। मैं उसे आप लोगो की मन्त्रणा और योजनायें बताता हूँ। उसने कहा है कि मैं आप सबका सर्वनाश कर डालूँगा। वैदिक सस्कृति का मूलोच्छेद कर डालूँगा। विवेक ने विदूषक से सदेश भिजवाया कि वह दो कि वह मोहराज मरने के लिए तैयार रहे। चतुर्थ अक मे आचार्य ने प्रथम, उत्तम और मध्यम कोटि के जीवो को अपने अभ्युदय के लिए हरिभक्ति का उपदेश दिया है तथा वेदान्त की ब्रह्मात्मैक्य-योजना बतलाई है।

पचम अक मे वेदान्त का उपदेश दिया गया है। वसिष्ठ ने राम को सात भूमिकायें बताई थी, जिसकी अन्तिम भूमिका मे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जीवो के चले जाने के पश्चात् विवेकादि भक्ति, श्रद्धा आदि के साथ आचार्य को सामने करके चलते बने।

शिल्प

हरियज्वा ने भास का अनुकरण किया है, जहाँ तक प्रस्तावना का सम्बन्ध है। इसमे कवि-परिचय के नाम पर कुछ भी नही है। नटी सस्कृत बोलती है। सूत्रधार प्रस्तावना के अन्त मे जाता है और नाटक के अन्त मे एक बार और उपस्थित होकर अन्य पात्रो के साथ भरतवाक्य मे श्रीनृसिंह की वन्दना करता है वह नाटक के श्रोताओ को आशीर्वाद देता है।

हरियज्वा ने महाभारत, गीता, पचतन्त्र, शिशुपालवध, भागवत आदि अनेक लोकप्रिय ग्रन्थो से श्लोको को लेकर अपने वक्तव्यो को प्रमाणित करने के लिए पात्रो से कहलवाया है। यथा पचतन्त्र से—

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिता ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञान-फला हि बुद्धय ॥

विवेकमिहिर-नाटक मे प्रहसन का तत्त्व विशेष रूप से समुदित हुआ है।

सवादो के बीच मे सम्भवत नेपथ्य से या रगमच पर ही बैठा कोई व्यक्ति परिस्थितिया पर अपनी आलोचना कही कही करता है। विदूषक ने द्वितीय अक मे जब विवेक को बताया कि आपकी शरण अवास्तविक है और वे चुप हो गये तो एक ऐसी ही आलोचना सुनाई गई। यथा,

युक्तियुक्तमवधार्य सद्वच को न मौनमुपयाति सज्जन ।
सम्यगुक्तमिति योऽनुमोदते तस्य को न कुरुते प्रशसनम् ॥२३

विवेकमिहिर यद्यपि मुख्यत प्रतीक नाटक है, किन्तु इसमे कतिपय पात्र मानव कोटि के हैं और वे विवेकादि से वैसे ही सवाद करते हैं, मानो वे भी मानव ही हैं। कला की दृष्टि से विवेकादि मूर्तिमान् होते हैं और मानव पात्र ही उनकी भूमिका लेकर रगपीठ पर अवतरित होते हैं। ऐसे पुरुष हैं विवेक, आचाय और उनके शिष्य आदि। कतिपय जीवादि पात्र विशुद्ध दृष्टि से छायात्मक ह, जहाँ नाटककार कहता है—

'तत प्रविशन्ति विविधा जीवा' इत्यादि।

उपदेशात्मकता

प्रतीक नाटक का प्रमुख उद्देश्य है कलात्मकता के प्रसग मे चारित्रिक सदुपदेश देना। विवेकमिहिर इस उद्देश्य मे सफल है। यथा आचार्य का कहना है—

त्वरा न कार्या गुरुशास्त्रबोधे त्वरा न कार्या विहितेपु कर्मसु।
त्वरा न कार्याध्वसु दुर्गमेपु त्वरा न कार्या हरिसेवनादिपु॥

वेदान्त प्रतिपादित जीवन-दशन सरल पदावली मे इस नाटक मे समझाया गया है।



चित्रयज्ञ-नाटक

चित्रयज्ञ-नाटक के रचयिता वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य नवद्वीप के राजा ईश्वरचन्द्रराय के सभापण्डित थे।[1] ईश्वरचन्द्र राय का शासनकाल १७८८ से १८०२ ई० तक था।[2] इसकी रचना १८ वी शती के प्राय अन्त मे हुई। स्वय राजा ने कवि को इसका प्रणयन करने के लिए आज्ञा दी थी। चित्रयज्ञ का सर्वप्रथम अभिनय श्री गोविन्ददेव की यात्रा के अवसर पर हुआ था।

सस्कृत के नाटक प्राय सभी के सभी कुछ काम बनाते हुए दिखाये जाते है। इसमे कथावस्तु की एक अभिनव धारा है, जिसमे दक्षयज्ञ को भग करके विघटन दिखाया गया है।

कथावस्तु

प्रथम अक के अनुसार प्रजापति दक्ष ने यज्ञानुष्ठान किया। उसमे भाग लेने के लिए निमन्त्रित सभी देवता और ऋषि उपस्थित हुए। दक्ष के प्रणाम करने पर ऋषियो ने उसे आशीर्वाद दिया। द्वितीय अक मे सर्वप्रथम हाथ मे चावल लेकर ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करते हैं। समिधा-मन्थन करके अग्नि प्रज्वलित की जाती है। उसमे आहुति दी जाती है। इस समय दधीचि नामक ब्राह्मण आ पहुँचता है। वह शिव को वहाँ न देखकर दक्ष की मन्द बुद्धि की गर्हणा करता है कि इसने क्यो नही महादेव को बुलाया? दक्ष ने उसका समाधान किया कि ब्रह्मादि देवता तो विराजमान हैं। नामधारी शिव के बिना सब ठीक है। दधीच ने कहा कि शिव सवश्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा और विष्णु उनके उपासक हैं। दक्ष ने कहा—

रे ब्राह्मण, मम सभायामागमनयोग्य किं शिवो भवनि तथा हि—

वैश्वानरप्रभहिरण्यसुमण्डितानि। नानाविचित्र-मणिकम्पित-भूषणानि॥
स्रक्चन्दनार्चितवपुर्वमन विचिन्त। येषा त एव विबुधा सदसि स्फुरन्ति॥२ १३

तत्र किं शिवस्य वास सम्भवति। तथा हि,

यो वै वसद्गरलकालभुजङ्गभूषा।
धत्ते श्मशान—मलभस्म समस्तदेहे॥
चर्माम्बरास्थिभवमात्यवृषाधिरूढ।
किं तस्य वास उपवास इहैव न स्यात्॥२ १८

[1] इस अप्रकाशित नाटक की प्रति सस्कृत-कालेज, कलकत्ता मे मिलती है।

[2] कुमुदनाथ मल्लिक नदिया-कहानी, पृ० ३०४

दक्ष की दुर्मति है कि वैदिक यज्ञ मे शिव नही आ सकते। दक्ष को अज्ञानी, अधम, मदान्ध आदि सम्बोधन प्रस्तुत करके दधीच ने कहा—

मन्ये मृत्युमुपैति तीव्रमशिवव्यापार रे दुर्मते ॥२२३

दक्ष न आज्ञा दी कि इसे सभा से बाहर निकाल दो। दधीच क्रोधपूर्वक चलते बने। उन्होने जाते-जाते कहा कि महादेव तो यहाँ आयेंगे नही।

दधीच के जाने पर नारदादि ऋषि और देवता जाने को तैयार हुए। दक्ष ने द्वाररोध करा दिया। उसने जान वालो को समझाया कि श्मशानवासी अशिव शिव के न आने से यज्ञ मे कोई त्रुटि थोडे ही है। देवताओ और ऋषियो ने उसकी एक न सुनी। मार्गावरोधको को उन्होने उठा फेंका और चलते बन। नारद वीणा बजाते हुए शिव की नगरी कैलास की ओर चलते बने। उन्होने दक्ष मे कहा कि मुझे तो यह समाचार प्रसारित करना है।

तृतीय अक मे नारद उस स्थली मे पहुँचते हैं, जहाँ महादेव, भगवती और त्रिशूलधारी नन्दी थे। नारद ने शिवाष्टक द्वारा महादेव की स्तुति की। उन्होंने दधीच-प्रकरण पूरा सुना दिया और चलते बन।

चतुथ अक मे पिता दक्ष के यज्ञ का समाचार सुनकर सती ने वहाँ जाने की अनुमति शिव से माँगी। शिव ने कहा कि निमन्त्रण के विना जाना ठीक नही है। बडा विवाद हुआ। सती का दार्शनिक तत्त्वानुशीलन शिव ने प्रस्तुत किया। शिव ने कहा—आपका अपमान होगा। सती ने रट लगाई कि मुझे तो पिता के घर जाना ही है। यदि आपके कथनानुसार मैं स्वतन्त्र हूँ तो मुझे कौन रोक सकता है? वे चलती बनी। शिव ने नन्दी से उनके पीछे रथ भेजा।

पचम अक मे दक्ष यज्ञकर्म मे व्याप्त है। सती उससे आकर मिली। दक्ष को उन्हे देखकर प्रसन्नता हुई। उसने कहा—

नानासुलक्षणयुता गुणराशियुक्ता।
पुत्रीमवाप्य भवती सुखसागरेषु॥
मग्नोऽभव किमु तथैव महाश्च शोक-
म्त्वा दनवानहियुते मनि निर्गुणाय॥५३

सती न शिव की प्रशसा और प्रभुता के पुल बाँधे और दक्ष ने शिवनिंदा की पोटली उँडेल दी। अन्त मे सती ने समझा कि शिव न ठीक कहा था। अब किस मुँह से उनके पास जाऊँ? शिवनिन्दक पिता के पास रहना ठीक नही। मरना है और वह मर गई—

सती ज्वलन्ती ज्वलदग्निवत् क्रुधा तानस्य वाक्यै: शिवनिन्दयान्वितै: ।
अत्युप्णतंले जलबिन्दुवत्तदा प्राणान् जहुर्दक्षसमीपभूमौ ॥

खलबली मच गई। नारद भी उसी समय आ पहुँचे। उन्होंने बताया कि सती

के मरने से शिव का क्रोध वीरभद्र रूप मे मूर्तिमान हुआ है। उसके काय है--

केषा निपत्य हृदये चरणान्निवेश्य।
दन्तान् बभञ्ज दृढमुष्टिविघातनेन॥
श्मश्रूणि चैव सहसा दधदुत्पपाट।
काश्चिच्चकार विनिपातपरान् सुराणाम्।

यज्ञ भङ्ग हो गया।

शिल्प

चित्रयज्ञ एक निराला ही नाटक है। इसकी प्रस्तावना मे ही नाटक का आरम्भ होता है और स्वल्प मात्रा मे कथा भी चलती है।

चित्रयज्ञ निवेदन-प्रधान नाटक है। इसमे निवेदनो की अतिशय प्रचुरता है। प्रायशः निवेदन पद्यात्मक हैं। कोई पात्र रगमच पर कुछ कर रहा है और निवेदक उस कार्य का वर्णन करता चलता है। यथा, प्रथम अङ्क मे चित्रसेन रगपीठ पर आता है तो निवेदक उसके कार्यों की वर्णना प्रस्तुत करता है—

आदौ भद्र सुदीर्घविस्तृतकटानास्तीर्य तस्योपरि
प्रस्तारेण विचित्रकम्बलकुलान्यास्तीर्य तस्योपरि।
वस्त्र विस्तृतसूक्ष्मशुक्लमसम तस्योपरि प्रज्वलत्
चित्राचित्रमहो नु राङ्कवपट चित्रासन कारितम्॥१६

अपि च,

अतिसुलभितमुपधान कनकनिबद्धनानाफणिपरिकिलितम्।
स्थाने-स्थाने विहित यथा यथा निवसन्ति देवा॥

'तत सर्वरञ्जक प्रणम्य' इत्यादि।

इसके आगे निवेदक देवताओ का आसन पर बैठना सूचित करता है। निवेदन के द्वारा विशुद्ध वर्णन भी प्रेक्षको को सुनाये जाते हैं। यथा,

गन्धै राज्यहुतिप्रयुक्तरचिरैर्दीप्ता दिश सर्वश
आ द्वीपात् परित समेत्य मिलिता धूमस्य पानार्थिन। इत्यादि

द्वितीय अङ्क के अन्त मे दधीच का जाना श्लोकबद्ध निवेदन के रूप मे प्रस्तुत है।

प्रथम अङ्क के आरम्भ मे देवता और ऋषि कोटि के लगभग २० पात्र एक साथ ही रगमच पर हैं। अङ्को के अन्त मे सभी पात्रों को लेकर पूर्वानुबद्ध कथा अगले अङ्क मे चलती रहती है।

रगमच पर कार्यदर्शन प्रचुर माता मे होता है। यथा, प्रथम अक मे आये हुए देवता और ऋषियो के लिए आसन लगाना, उनका दक्ष को प्रणाम करने पर आशीर्वाद देना, दक्ष का देवताओ का अभिनन्दन करना आदि। इस सम्बन्ध मे निवेदन है—

पाणिभ्या परिगृह्य कस्य चरणौ धूलिर्ददौ मस्तके
पादौ मूर्ध्नि निधाय कस्य विनति कृत्वावशिष्टास्तथा ।
देवान् लौकिकभापया वहुतर सतोष्य दक्ष स्वय
प्रागाद् यज्ञमही पठन् श्रुतिपद सार्धं द्विजैर्याज्ञिकैं ॥१ १५

द्वितीय अङ्क मे यज्ञ की पूरी प्रक्रिया दृश्य है।

शैली

श्लेपात्मक पदो के प्रयोग से पात्रो के दो अर्थो का अभिप्राय प्रकट किया गया है। श्रोता पात्र कौन सा अर्थ ग्रहण करें—यह समस्या पात्रो के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। इसमें अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति के लिये विवाद होता है, जिसमे प्रेक्षको का मनोरजन कवि की दृष्टि मे सम्भाव्य है। ऐसे श्लिष्ट पद हैं—(१) अदृष्टपूर्वा सभा (२) यागे शिवे (३) शिव (४) निर्गुणत्व आदि।

सवाद की चटुलता सरम्भात्मक वातावरण मे सविशेष है।

कीर्तनिया तत्त्व

तृतीय अङ्क मे नारद के द्वारा आठ पद्यो मे शिव की स्तुति करना कीर्तनिया नाट्य परम्परागत है। यथा,

शम्भो सदाशिव विभो भव दीननाथ
भूताधिनाथ करुणामय विश्वनाथ।
गगाधर स्मरहरामरमेरुपाद
दासोऽस्मि शान्त शमयान्तकृतान्ततापम् ॥

इसमे रगमच से बाहर भी गायन की व्यवस्था की गई है। स्त्रियो का ऐसा मगलगान प्रेक्षको को सुनाई पडता है।

जयरत्नाकर-नाटक

जयरत्नाकर नाटक नेपाल का है।[1] इसके रचयिता शक्तिवल्लभ अर्ज्याल हैं। सूत्रधार ने कवि के विषय में बताया है कि वे नेपाली कवियों में बृहस्पति हैं। शक्तिवल्लभ के नाम से लगता है कि वे शक्ति के उपासक हैं।

सूत्रधार की प्रस्तावना के अनुसार कवि आत्रेय गोत्र में उत्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। अर्ज्याल इनका उपनाम है। वे गोरखा नगर के निवासी थे। उन्होंने संगीतशास्त्र का अभ्यास किया था। वे नवरसों में निष्णात थे, कलाओं में कुशल थे, देशभाषाओं के ज्ञाता थे, राजनीति में निपुण थे और राजाओं के द्वारा सम्मानित थे। उनके पिता का नाम श्रीलक्ष्मीनारायण था।

कवि ने बहुत अधिक लिखा था, जैसा उसके नीचे लिखे वक्तव्य से प्रतीत होता है—

कस्मिश्चित् पद्यमध्ये मम नयकदूषणं पदग दीयते चेद्।
देय मे नापि हानिर्निः स्मरहरकृपया पद्यकोटीश्वरस्य ॥९

इस नाटक की रचना कवि ने १७१४ शक संवत् अर्थात् १७९२ ई० में की।[2] नाटक का प्रथम अभिनय नायक राजा रणबहादुर के समक्ष हुआ। उसने पात्रों को बहुमूल्य प्रसाद वितरित किया।

कथावस्तु

कवि ने इसमें श्रीरणबहादुर शाह के पराक्रम का वर्णन प्रधान रूप से किया है। वह राजा हुआ तो राजपुत्र (सेनापति) ने बताया कि आपके प्रतापोत्कर्ष के लिए क्या-क्या किया जा सकता है। बहादुरशाह ने कहा—

क्षुद्रा सन्त्यत्र भूपा मम निकटगता कार्यमुद्वेजयन्ति।
तस्माद् विध्वंसय द्राक् कुहृदयनृपतीन् तान् खलान् पृष्ठ-शुद्ध्यै॥

फिर तो देश विदेश में राजा के गुप्तचर भेजे गये। उन्होंने देश के सांस्कृतिक पतन का वर्णन राजा के समक्ष किया। राजा ने निश्चय किया कि श्रीनगर के पर्यन्त देश पर आक्रमण होना है। राजा सेना का अग्रणी बन कर चला। कई दिन तक प्रयाण करके सेना सन्ध्या के समय चम्पावती नदी के तट पर पहुँची। वहाँ बहुत से शत्रु राजा इकट्ठे थे। विदूषक ने उनको डराया कि जीवन चाहते हो तो नेपालेश्वर की शरण में आ जाओ। कुम्लेश्वर ने विदूषक से नेपाल की कुसंस्कृति की चर्चा की—

1. इसका प्रकाशन नेपाल-सांस्कृतिक परिषद् से संवत् २०१८ वि० में हुआ।
2. तस्यापत्येन माघे मुनिवसुमुनिनाब्धीन्दुसम्पेकशाके
नेपाले लोकसारेऽभिरनगरनमे नाटकं सव्यधायि॥

यदा युद्धारम्भ घटयति च नेपालनृपति-
स्तदामात्यादीनामुदरमतिसारो व्यथयति ।
यदि क्रोधाद् गच्छति च सह वराङ्गीभिरथवा
मया किं न ज्ञात किनव तव नेपालचरितम् ।।५२६

विविध देशो के विषय म काफी अपवादात्मक बातें विदूषक ने शत्रु-राजाओ का सुनाई और उन्हे सुननी पडी । यथा कूर्माचल के विषय मे विदूषक कहता है—

देशे यत्र महीभुजा जनपदा कृन्तन्ति शीर्षाणि ये
भूपालाश्च विपश्चिना सुनयनान्युत्पाटयन्ति प्रभो ।
दोलाया वहन द्विजा विदधते कन्या च विक्रीणते
राजन् भूपनयेऽविवेकमनये देशाय तस्मै नम ।।५३०

छठें कल्लोल के आरम्भ मे सूत्रधार और नटी फिर आते हैं । हरिद्वार से लेकर चम्पावती तक के सभी राजा एकीभूय नेपालेश्वर रणबहादुर की सेना से लड रहे हैं । उनकी सेनाओ और राजाओ का वर्णन सूत्रधार नटी की उत्सुकता मिटाने के लिए करता है । राजा हैं कूर्माचलेश, जुम्लेश्वर, डोटीश्वर आदि । वे सभी रणभूमि मे मनोरजन के लिए तौर्यत्रिक देखन मे व्यस्त हो गये । उनके लिए नाटक होने लगा । विदूषक ने उन्हे सलाह दी कि आप लोग नेपालनरेश की शरण मे आयें । राजाओ ने कहा कि भग जाओ, नही तो गदनिया कर बाहर किये जाओगे । वही युद्धभूमि मे कूर्माचलेश की महारानी थी । उसने अपने पति से कहा कि विदूषक का कहना मान लें । जुम्लेश्वर और डोटीश्वर की पत्नियो ने भी अपने पतियो को नेपालेश्वर की शरण मे जाने की सुबुद्धि दी । डोटीश्वर अपनी पत्नी की बात सुनकर असमजस मे था । तभी उनके पाले शुक सारिका मे एक सवाद हुआ । सूत्रधार ने पहले तो उनके पूर्व जन्म की कथा सुनाई । तोता-मैना ने मिलकर डोटीश्वर को रोका कि नेपाल-नरेश से युद्ध न करें । सामुद्रिक ने राजाओ को बताया कि आप लोगो की विजय होगी । शत्रु-राजाओ की पत्नियो ने अनगमजरी नामक सारिका को नेपाल की महारानी के पास अपना सन्देश भेजा कि हमे विधवा न होने दें । यथा,

शीर्षोपरि सिन्दूर करकण्ठगत काचश्चास्माक निष्ठरिवति ।

राजराजेश्वरी ने अनगमजरी से कहा कि उन शत्रु-राजाओ को नेपाल-नरेश की शरण की भिक्षा माँगनी ही पडेगी । शत्रु-राजाओ को सद्बुद्धि न हुई । वे लडने के लिए निकले । नेपाल की सेना को सेनापति ने व्यूह-रचना के द्वारा सज्जित किया । घोर युद्ध हुआ । शत्रु-राजाओ की सेना न शस्त्र प्रहार से व्यथित होकर पलायन किया । अन्त मे वे सभी परास्त हुए ।

कुछ दिन गढवाल मे बिताकर राजा नेपाल की ओर लौटा । अपने देश मे आये हुए राजा का प्रजा ने बहुत सम्मान किया । राजधानी मे आकर राजा ने बहुविध दान किये । नट-भट और गणिकाओ को भी प्रचुर प्रसाद मिला ।

दशम कल्लोल में कवि नायक रणबहादुर के प्रतापातिशय का कारण सूत्रधार और नटी के संवाद मे प्रस्तुत करता है। यथा, 'गोरखानगरी मे पृथ्वीनारायण राजा और उसकी पट्टमहिषी नरेन्द्र लक्ष्मी थी। एक दिन उसकी राजसभा में पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके एक दण्डी उपस्थित हुआ। राजा से बात करने पर दण्डी को विदित हुआ कि उसका राज्य लघु है और उसे कोई सतति नहीं है। उसने राजा से कहा कि आप तप के द्वारा यह सब प्राप्त कर सकते हैं। आप किसी नदी के तट पर शिवलिंग की स्थापना करके उसकी आराधना करें। राजा ने कहा कि यदि कुछ दिन जीना हो तो यह सब करूँ। तब तो दण्डी ने अतिशय लम्बा-चौडा व्याख्यान दिया कि किन शारीरिक लक्षणो और स्वप्नो से कितने दिनो की लघु आयु होती है। राजा में वे लक्षण नही थे। उसने उपदेशानुसार शिवाराधना की। कुछ दिनो बाद राजा की पत्नी पतन और सरटारोहण के शुभ-शकुन हुए।

नटी के पूछने पर सूत्रधार ने इन शकुनो के प्रसग मे उनके फल अपने लम्बे व्याख्यान मे बताये।

राजा ने स्वप्न म जटिल तपस्वी को देखा। उसने राजा को आदेश दिया कि वाराणसी जाकर अपन तप का फल प्राप्त करो। राजा ने मन्त्रियो को शासन-भार देकर वाराणसी के लिए यात्रा की। उसने वाराणसी में गगा की शुभ्र स्तुति की, विश्वनाथ का दर्शन और स्तुति की, कालभैरव, दण्डपाणि, ढुण्ढि आदि की पूजा की, और मध्याह्न के समय मणिकर्णिका मे स्नान और स्तुति की।

रात्रि का समय राजा ने मुक्तिमण्डप में बिताया। वही स्वप्न मे शिव ने उन्हे दर्शन दिया। उसे वर दिया कि तुम नेपाल के राजा बनो। तुम्ह योग्य सन्तान हो। नव राजा के दो पुत्र हुए—सिंहप्रताप वर्मा और बहादुर वर्मा।

एकादश कल्लोल मे बताया गया है कि स्वय राजा रणबहादुर ने इस नाटक ताण्डव (अभिनय) को देखा और उन्होने सामाजिको को बहुतर धन दिया। यथा,

मुक्ताहार हिमगिरिनिभ पङ्क्तिसाहस्रमौल्य
रम्य स्तम्बेरमदशयुग पट्टशतान्यर्वमुख्यान् ॥
मुद्राभाराञ्छिन्नपरिमितान् भूरिकौशेयवस्त्र
तेभ्यो भूयो नृपरणबहादूरवर्मा ददाद्वै ॥११२

विशेषतायें

जयरत्नाकर की नाट्य परम्परा अलग सी है। इसमे नाट्य-प्रयोग का नाम ताण्डव मिलता है और पात्रो को सामाजिक कहा गया है। सामाजिक का यह प्रयोग देशी भाषाओ मे मिलता है। सस्कृत मे सामाजिक का परम्परागत अर्थ नाटक देखने वाला है। इसके लिए शास्त्रोचित रगमच की भी आवश्यकता नहीं दिखाई देती। जैसे देहातो मे नृत्याभिनय के लिए विशेष रगमच नही होता, वैसे ही इसमे भी चारो ओर प्रेक्षक बैठ गये और उनके बीच मे नतक अभिनय करने के लिए आ गये। इसम नटी सूत्रधार को मेधाविन्, कुलनायक, आयनन्दन, दूरदर्शी, शरणद

आदि कहती है और सूत्रधार नटी को बालिके, सुन्दरि, दुष्ट, सुशीले, लावण्य-तरंगिणि आदि कहकर सम्बोधित करता है।

इस नाटक के दशम कल्लोल में सूत्रधार का एक नाम नटी ने वृत्तान्तसूचक बताया है। वास्तव में सूत्रधार ने अन्य घटनाओं की सूचना देकर प्रेक्षकों को बताया है, जहाँ साधारण नाटकों में अर्थोपक्षेपक का प्रयोग होता है।

नाटक के उपोद्घात में जयराजपन्त ने इस कृति की संरचना का वैचित्र्य बताते हुए कहा है—

"पछिल्लो मल्लकालमा नेपालखाल्डा मा एक प्रकार का गद्य, पद्य, गीतहरु को सग्रह गरी बीच-बीच मा सवाद देखाई तिनलाई नाटक भन्ने नाम दिने चलन चलेको थियो। ती नाटकहरु नेवारी, सस्कृत, हिन्दी, मैथिली भाषाहरु को मिश्रणमा प्राय पाइन्छन्।"

इसी परम्परा में जयरत्नाकर नाटक है। रत्नाकर में कल्लोल (लहरें) होते हैं। कवि ने इस नाटक को ११ कल्लोलों में वैसे ही विभक्त किया है, जैसे रत्नाकर (समुद्र) कल्लोलों में विभक्त होता है। इसका विभाजन अंकों में नहीं है।

किसी भी कल्लोल में सूत्रधार और नटी कुछ वर्णन करने के लिए अथवा अर्थोपक्षेपक की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए कल्लोल के आदि या बीच में आ जाते हैं। कहीं कहीं उनके सवाद को प्रस्तावना नाम दिया गया है। वे रंगमंच पर अन्य पात्रों के साथ अभिनय के आयत बैठे रहते थे और आवश्यकता पड़ने पर उठ खड़े होते थे।[1] वे रंगमंच पर तमाशा सा करते थे। जब देखो, नटी मदनमंजरी बेहोश हो जाती है। इनके अतिरिक्त भी निवेदक होते थे, जो बीच-बीच में रंग-मंच पर खड़े होकर सूचना देते थे। राजा की प्रशंसा उनका प्रधान कर्म था।

अभिनेताओं की शिक्षा के विषय में बताया गया है कि सूत्रधार ने नटी को १२ वर्ष तक शिक्षा दी थी और इसका आरम्भ उसकी ४ वर्ष की अवस्था से हुआ।

छठें अंक की तीन चौथाई में सूत्रधार स्वयं शुक, सारिका, चकोर-नयना, डोटीश्वर आदि के अतिशय लम्बे सवाद रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। सवाद समाप्त होने पर अर्थोपक्षेपक तत्त्व है—

'इति विहगमयोर्वाणिय श्रुत्वा नौ दम्पती मुमुदाते। तत सहस्रद्वय दत्त्वा, तौ जगृहतु। तत डोटीश्वरो राजा वंजुलनामानं शुकं चकोरनयना राज्ञी चानङ्गमंजरीसारिकां पालयामासतु। स्वर्न्योधोऽपि सहस्रद्वय-द्रव्य संगृह्य स्वभवन प्रचलित।

१ चतुर्थ कल्लोल प्राय पूरा ही सूत्रधार और नटी के सवाद के द्वारा सेना और विजयाभ्रो के वर्णन के लिए प्रयुक्त है। इसमें सेनापति या राजपुत्र बहादुर वर्मा, रघुवर्ग म बलभद्रशाह, श्रीकृष्ण शाह आदि, मंत्रियों में दामोदर, जगजीत, शिवनारायण आदि का व्यक्तिगत परिचय दिया गया है।

चम्पूतत्त्व

जयरत्नाकर कोरा नाटक नहीं है। इसमे चम्पू-तत्त्व विशेष रूप से समुदित हुआ है। यथा चतुर्थ कल्लोल मे नायक ने सेनानियो को सन्देश दिया कि श्रीनगर को जीतना है। फिर तो राजपुत्र, पुरोधा, आदि ने क्या-क्या किया—यह चम्पूशैली मे बताया गया है। इसी कल्लोल मे वर्णसकर-जाति पर अनेक पृष्ठो का व्याख्यान सूत्रधार नटी को देता है। छठें कल्लोल मे शुकसारिका वृत्तान्त और नेपाल विषयक सारिका की वर्णना वस्तुत चम्पूचित ही हैं।

सातवें कल्लोल मे अनगमजरी का उडकर नेपाल पहुँचने का वर्णन किसी भी चम्पू के योग्य है।

अशास्त्रीयता

नाट्यशास्त्रीय नियमो के तथाकथित उल्लघन नाटक मे भरे हैं। यथा, नटी रगमच पर सूत्रधार का आलिगन करती है। नाटक की कथावस्तु के प्रतान की सर्वथा उपेक्षा करके सूत्रधार, विदूषकादि इतर जनो का मनमाना सवाद प्रवर्तित करना जयरत्नाकर मे प्रायश वर्त्तमान है। यह सारा तत्त्व सर्वथा अनपेक्षित है। पचम कल्लोल मे सूत्रधार रणबहादुर की वैजयन्ती का लम्बा वर्णन नटी को सुनाता है। अन्त मे कहता है कि राजा की सेना नेपाल नगर से पश्चिम की ओर चली। छठें कल्लोल मे तोता-मैना की उत्पत्ति विषयक लम्बी कहानी सूत्रधार नटी को सुनाता है।

नाटक मे सूत्रधार और नटी का महत्त्व सभी पात्रो मे बढकर कहा जा सकता है। कथावस्तु का प्रपच प्रायश उन्ही के सवाद के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

जयरत्नाकर मे नटी आदि स्त्रीपात्र और विदूषक सस्कृत मे बोलते हैं। प्राकृत का प्रयोग ही नही है।

छायातत्त्व

जयरत्नाकर मे अनगमजरी सारिका और वजुल शुक रगमच पर पुरुषो और स्त्रियो से सवाद करते हैं। अनगमजरी शत्रु राजाओ की महिषियो का सन्देश लेकर उड जाती है और नेपाल-नरेश की महारानी को सुनाती है। सारिका ने शत्रु राजाओ को नीचे लिखा चित्रकाव्य सुनाया—

मर्दारस्तु पराट्मुख द्रवति यो युद्धे परेषा भया-
न्माता तस्य तु पुत्रिणी यदि भई वन्ध्या भवेत् कीदृशी।
माने कनकुण्डलैर्वचनम वर्म्नर्गजैर्यो नृपो
नित्य कापुरुषाधम भणति त भूप व्यनूप विदु ॥८२

ऐतिहासिक सामग्री के कारण नाटक का विशेष महत्त्व है। इसमे नायक राजा रणबहादुर के पूर्वपुरुषो की भी बातें बताई गई हैं। चतुर्थ कल्लोल मे विदूषक नटी को बताता है कि तिलग राक्षस हैं। सूत्रधार कहता है कि नहीं, वे भारतीय मनुष्य हैं। छठे कल्लोल के अतिम भाग मे फिरगियो की चर्चा है। यथा,

फिरङ्गी पूर्वस्या दिशि गलिमनायो यमदिशि
पुनस्तस्या सैन्यैर्वसुभिरजयट्टिप्पुयवन ।
धनाधीशाशाया प्रभुरएवबहादूरनृपति-
रिदानी नोकेऽस्मिन् खलु वलिन इत्येव पुरुषा ॥६ ४६

सास्कृतिक सामग्री से जयरत्नाकर ओतप्रोत है। पृथ्वीनारायण के विषय में कवि ने बताया है कि वे मरे तो उनके साथ ११ सहचरी, महारानी और दो उपभोगिनी भी जल मरी। राजा का कर्तव्य था कि दूसरी राजधानियो पर आक्रमण करके परद्रव्यापहरण करे। ब्राह्मण का वेश धारण करके गुप्तचर भ्रमण करते थे। यथा,

भूदेवा कतिचित् त्रिपुण्ड्र-सहिता शुद्धोर्ध्वपुण्ड्राङ्किता
केचिद्वै तुलसीदलावृतगला रुद्राक्षमालाधरा ।
गोपीचन्दनलिप्तगात्ररुचिरा माधोर्धनोद्वचका
नानावेशधरा कुशास्त्रनिरता सर्वेऽपि पाखण्डिन ॥३ १६

इससे ब्राह्मणो का पद क्षीण होने की पूरी सम्भावना थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा वधू सभी आचार-पथ से विभ्रष्ट थे।

कही-कही सास्कृतिक सन्दर्भ कोरे शास्त्रीय हैं। चतुर्थ कल्लोल मे अनुलोम और प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न वर्णसकर जातियो का विस्तृत वर्णन सूत्रधार और नटी अनेक पृष्ठो मे करते हैं।

नेपाल की रहन सहन की एक झाँकी है—

छ्याकवराकुरकोविदारै पिण्डालुशाकैर्लशुनप्रयुक्तै ।
पिण्याकपानै परिवर्धितानामहर्निश कोद्रवरोटिकाभि ॥

कुद्दालकै खुनकुरिभि कुठारै कन्द खनित्वा सुखजीविताना
श्मश्र्वार्द्यभावाच्छिशुलक्षिताना रे मूढ तेषा नतनासिकानाम् ।
सबीनखादीमगरीसुनाना हा स्वामिना मातुलकन्यकानाम्
जाने न किं रेऽहमनीकिनी ना कि वल्गसे मूढ विदूषक त्वम् ॥५·३१-३३

स्त्रियो की निन्दा करने मे कवि निपुण है। उसका वितण्डावाद है—

उत्तमा निजबुद्धिस्तु मित्रबुद्धिश्च मध्यमा ।
अधमा भृत्यबुद्धिश्च स्त्रीबुद्धि प्रलयकारी ॥६ ३९

कही-कही बेहूदी बातो का पिटारा इस नाट्य मे कवि ने बहुत रुचिपूर्वक सॅंजोया है। सप्तम कल्लोल के आरम्भ मे सामुद्रिक का राजवल्लभाओ से अङ्ग-लक्षण की अतिशय लम्बी-चौडी शुभाशुभ सम्बन्धी चर्चा कवि की तुच्छता का प्रमाण है। वह स्त्रियो के गुप्ताङ्गो की चर्चा करते हुए मानो अघाता नही है। उस सामुद्रिक को तमाचा जडकर रगमच से बाहर कराया गया है—यह सब सम्भवत हँसने-हँसाने के प्रयोजन से समाविष्ट है।

मलयजा-कल्याण-नाटिका

मलयजा-कल्याण-नाटिका के प्रणेता वीरराघव का स्वल्प परिचय सूत्रधार ने इस नाटिका की प्रस्तावना मे दिया है।[1] इसके अनुसार उनका प्रादुर्भाव दाशरथि वश मे हुआ था और इनके पिता नरसिंह सूरि थे। महावीर-चरित की टीका मे कवि ने अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार वे मैसूर के निवासी थे। वीरराघव का प्रादुर्भाव अठारहवी शती का अतिम भाग है।[2]

वीरराघव ने इस नाटिका के अतिरिक्त नीचे लिखी रचनायें की—

(१) उत्तररामचरित-टीका (२) महावीर चरित-टीका
(३) भक्तिसारोदयकाव्य (४) अन्य दार्शनिक ग्रन्थ।

मलयजा-कल्याण का अभिनय वसन्त ऋतु मे तेलगाना के सत्यव्रत क्षेत्र के भगवान् देवराज के फाल्गुन उत्सव पर समागत विद्वानो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

नायक देवराज विदूषक के साथ मलय पर्वत पर मृगया के प्रसग मे अपने कुटुम्बी जनो के साथ आये। वहाँ उनके दृष्टिपथ मे मलयराज की कन्या मलयजा आई और उसके लिए वे उत्सुक हो गये। उनकी दृष्टि मे ब्रह्मा की सृष्टि मे वह अनुत्तम रचना थी। नायक का कहना है—

अकिंकरेण मसृणेन विकासभाजा
कूणाञ्चलेन कलिताशुकणोदयेन।
निस्पन्दितेन समये प्रतिसहृतेन
तन्व्या जितोऽस्मि सरसेन कटाक्षितेन ॥१ २३

देवराज मलयजा के लिए उन्मत्त हो गया। विदूषक उसे मलय-वनलक्ष्मी का दर्शन कराने के लिए वृक्षवाटिका मे ले गया। वहाँ नायक ने नायिका की आङ्गिक उत्प्रेक्षा की—

तस्या कोमलगात्र्या नाभीसरस समुद्गमप्राप्ते।
एकस्मिन् रोमावलिनालाग्रे स्तनसरोजयुगम् ॥१ ३५

मृगया बन्द कर दी गई। नायिका का रूप सौष्ठव और भावोत्तस स्मरण करते हुए उससे मिलने की आशा मे नायक विदूषक के साथ चल पड़ा क्रीडापर्वत शृगकु ज सदन की ओर।

---

१ इसका प्रकाशन जबलपुर से डा० बाबूलाल शुक्ल के द्वारा किया गया है।

२ कृष्णमाचार्य ने वीरराघव के विषय मे लिखा है—

He was born at Terumalisai (Bhusurapuri) in Chingleput, District, Madras, about 1770 A D and lived for 48 years P. 624

विदूपक को चेटी से ज्ञात हुआ कि मलयजा नायिका प्रणयी के लिए भावाभिमुखी होकर प्रमदवन में जायेगी। विदूषक नायक को लेकर वहाँ पहुँचेगा। ऐसा हुआ भी। छिप कर नायक और विदूषक ने सुन लिया कि नायिका देवराज से मिलने के लिए उत्कण्ठित है। नायिका ने कहा—

विधुकर विशेषैर्मुह्याम्येव कियन्ति दिनान्यहं
किमिति कठिनो वाम कामोऽपि जीवयतेऽद्य माम्।
सखि कलयसे किं त्वं वा वामभूमिमिमां दशां
किमिह बहुना सर्वज्ञश्चेत् स एव हि भावयेत्॥ २११

नायिका ने अपनी माता के आदेशानुसार वसन्तदेवता के प्रीत्यर्थ प्रियाल को कुसुमित करने के लिए वीणागान किया। नायक सुन कर विमुग्ध हो गया। गीत है—

भद्दपियालतरो तुह पुप्फे हि विणा ण भाइ महु समओ।
ण क्खु सोहइ मज्जाए पुण्णो कामो ण कामदेअस्स॥ २११

ठाऊण सव्वभेद वालच्छअसाम मोभग।
उक्किट्ठिदो तुहक्खिदे नवम्सिरणी एत्थ महुअरिआ॥ २ ११

गीत के पश्चात् प्रियाल तो मंजरित हुआ। इधर नायक की मनोमंजरी खिल उठी। वह नायिका के समक्ष प्रकट हो गया। उसने नायिका से अपनी मानसी स्थिति बताई—

शृणु त्वं सर्वाङ्गप्रकृतिरमणीये मम मनो
रसज्ञ त्वद्दास्ये कथमपरतः स्निह्यति नमाम्।
यदि त्वाशङ्का ते मम विरहसर्वश्रमसखी
प्रमाणं प्रष्टव्या ननु कुसुमशय्या भगवती॥

इस प्रारम्भिक प्रणयरोचन के पश्चात् उन्हें विलग होना पड़ा।

नायिका ने नायक के लिए जो चिट्ठी भेजी, वह महादेवी की चेटी वल्लरिका के माध्यम से प्रवर्तित हुई। वल्लरिका ने उसे महादेवी को देखा को दे दिया। फिर तो आग लगी। महादेवी को उस पत्र से ज्ञात हुआ कि आज चन्द्रोदय से पहले केरलिका और मंजरिका के साथ मलयजा नायक से लतागृह में मिलेगी। महादेवी ने योजना बनाई—मैं मंजरिका का वेष धारण करूँगी और वल्लरिका मलयजा की चेटी बने। यथासमय दोनों लतागृह में पहुँची। वहीं मलयजा आई और उसके साथ केरलिका और मंजरिका वेषधारिणी महादेवी थी। महादेवी ने मलयजा को देखा तो उसके सौन्दर्य से चमत्कृत हो गई। मलयजा के नायक के पास आने पर लजाने पर उसने कहा—मलयजे, लजाओ मत। चिरकाङ्क्षित नायक का समादर करो। नायक ने भी अपने मन में चिर सँजोये भावों को नायिका के समक्ष पूरी तत्परता से उँडेल दिया और व्यक्त किया कि मैं तेरा दास हूँ और कहा—

तरणि तव चन्द्रवक्त्र तरुणत्वनितम्बनेन कुम्भधर।
रोमावलिपुष्करतो नाभीसरसो न सलिलमादत्ते॥ ३११

महादेवी अपने को बहुत देर तक छिपाये न रख सकी। जब नायक ने उसे पहचाना कि यह मंजरिका नहीं, महादेवी है तो वह भय से काँपने लगा और उसके पैरों पर गिर पड़ा। विदूषक डर के मारे पेड़ की आड़ में छिप गया। महादेवी नाटक करके चलती बनी। राजा और विदूषक इस विषम स्थिति से पार पाने के लिये जामदग्न्य-क्षेत्र की चर्चा करने लगे।

वहाँ जामदग्न्य आये। उन्होंने ध्यान लगा कर जान लिया था कि नायक कैसी विषम स्थिति में पड़ा है। उन्होंने कहा कि मुझे ज्ञात हुआ है कि दुष्ट यवन तेलङ्गाना पर आक्रमण पर आक्रमण कर रहे हैं। राजा ने बताया कि इधर हम मृगया-विनोद के लिए आये और यवनों ने आक्रमण कर दिया है। जामदग्न्य ने सपत्नियों के संरम्भ से उत्पन्न नायक के मानसिक क्षोभ को दूर करने के लिए महादेवी से सम्पर्क साध कर उन्हें समझा बुझाकर ठीक करने की बात बताई।

जामदग्न्य ने मलयाधिपति से कहा कि मलयजा के पति महाराज देवराज होंगे। वे नगर के प्रमदवन में आये हुए हैं। जामदग्न्य के समझाने से महादेवी मान गई।

विवाहोचित नेपथ्य धारण करके मलयजा अपनी सखियों सहित कल्याण-मण्डप में आई, जहाँ नायक अपनी पटरानी, भार्गव और मलयजा के माता-पिता के साथ बैठे थे। वहाँ यथाविधि विवाह हो गया।

तभी देवराज का अनुचर समाचारिक पत्र लेकर आया। उस पत्र में लिखा था कि शत्रु मार भगाये गये। राज्य में सर्वथा कुशल है। आप आयें।

रंगपीठ-व्यवस्था

द्वितीय अंक में रंगपीठ के दो भाग बन गये हैं। एक में विदूषक और नायक हैं और दूसरे में नायिका, उसकी सखी तथा चेटी, जिनके कार्यकलापों और भावानुबन्धों की प्रतिक्रिया नायक और विदूषक के संवादों में मिलती है।

नाट्यकला की दृष्टि से रंगपीठ पर नायिका का वीणागायन द्वितीय अंक में सुसमञ्जसित है।

नायक की काव्यमयी प्रतिभा को चारित्रिक विशेषता के रूप में दरसाने का प्रयास कवि ने प्रायशः किया है।

छायातत्त्व

मंजरिका का वेष धारण करके लतागृह में महादेवी का नायक के पास पहुँचना छायातत्त्वानुसारी है। इसका सर्वोपरि उपयोग है तृतीय अंक में महादेवी के दो व्यक्तित्वों को क्रमशः स्वगत और प्रकाश-विधि से अपने वक्तव्यों को प्रकट करके प्रेक्षकों का अपूर्वानुरंजन करने में। राजा उसको नायिका की सखी समझ कर कहता है—

तत्र भवती विमुच्यते वर्णननैपुण्यमिति। नन्वत्रभवत्या (मलयजाया) सौन्दर्याम्बुधेर्विप्रुषापि मूकोऽवलम्बते वागीशताम्

एकोक्ति

चतुर्थ अंक के आरम्भ में भार्गव की एकोक्ति अर्थोपक्षेपक रूप में प्रयुक्त है। इस एकोक्ति के पश्चात वे रंगपीठ से चले जाते हैं। उनकी एकोक्ति को उसके पूर्व आने वाले मिश्र विष्कम्भक के साथ रखकर अंकारम्भ इसके पश्चात् माना जा सकता है।

अठारहवीं शती का अन्य नाट्यसाहित्य

हास्यार्णव प्रहसन

हास्यार्णव-प्रहसन के प्रणेता महामहोपाध्याय जगदीश्वर भट्टाचार्य ने इसकी रचना १७०४ ई० में की।[1] इस प्रहसन के दो अंकों में राजा अनयसिन्धु, मन्त्री कुमति वर्मा, नायिकायें बन्धुरा और मृगाङ्कलेखा, आचार्य विश्वभण्ड और शिष्य कलहाङ्कुर—सभी के सभी चरित्रहीन और स्त्रीकामी हैं। धूर्तता के बल पर काम-सिद्धि इनका परम प्रयोजन है।

रसिकतिलक-भाण

रसतिलकभाण के रचयिता मुकुन्दराम के पिता रघुनाथाध्वरी और माता जानकी थी। वे तंजौर के निवासी थे। महाराज शाहजी (१६८४-१७११ ई०) के द्वारा वे सम्मानित थे।

रसिकतिलक भाण का अभिनय कमलापुरी (तंजौर) में त्यागराज के वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसमें विट रसिकशेखर है और नायिका कनकमंजरी है।[2]

वेङ्कटेश्वर की कृतियाँ

वेङ्कटेश्वर तंजौर के राजा शाहजी (१६८४-१७११ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। इनके द्वारा तीन प्रहसनों का प्रणयन हुआ—१ मानुप्रबन्ध २ वेङ्कटेश और ३ लम्बोदर। मानुप्रबन्ध प्रहसन का नायक वक्रनासयमी तथा नायिका गृध्री हैं।[3] राजा के द्वारा अपने दूषण अर्थात् गृध्री से कामुकता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दण्डित होकर वक्रनास राजपुरुषों के द्वारा अपनी पत्नी के पास पहुँचाया जाता है।

श्रीकृष्णलीला-नाटिका

वैद्यनाथ ने श्रीकृष्णलीला की रचना अठारहवीं शती के प्रथम चरण में की।[4] कवि का जन्म तत्सत् कुल में वाराणसी में १७ वीं शती के अंतिम चरण में हुआ था। इसका प्रथम अभिनय लक्ष्मीयात्रोत्सव में महाजनक देव के आदेशानुसार हुआ। इसमें राधा और कृष्ण तथा विजयनन्दन और चन्द्रप्रभा का परिणय वर्णित है।

उपाहरण-नाटक

उपाहरण नाटक के लेखक श्री देवनाथ उपाध्याय मैथिल ब्राह्मण थे। उनकी

१ हास्यार्णव-प्रहसन का अनेकशः प्रकाशन हुआ है।

२ इस अप्रकाशित भाण की प्रति त्रिवेन्द्रम् विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।

३ मानुप्रबन्ध प्रहसन का प्रकाशन मैसूर से १८६० ई० में हुआ है।

४ इसकी अप्रकाशित प्रति कलकत्ते के संस्कृत-कालेज के पुस्तकालय में है।

वसति पदनपुर मे थी। इनके पिता रघुनाथ और माता गुणवती थी। उपाहरण म सुप्रसिद्ध पौराणिक उषानिरुद्ध-परिणय की कथा है।[1] इसके छ अको मे मैथिली किरतनिया नाटको की परम्परानुसार गीतो का बाहुल्य है।

वसुमंगल नाटक

वसुमगल नाटक के प्रणेता पेरुसूरि के पिता वेङ्कटेश्वर और माता वेङ्कटाम्बा थी। उनका निवास सम्भवत काचीपुर मे था। पेरु के दो रूपको की चर्चा मिलती है। इनमे से वसुमगल पाच अको का नाटक है।[2] इसका नायक उपरिचरवसु है, जिसका विवाह कोलाहल पर्वत की कन्या गिरिका से होता है।

हास्यकौतूहल-प्रहसन

हास्यकौतहल प्रहसन के लेखक विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश बीकानेर के राजा सुजानसिंह के द्वारा सम्मानित थे। इसकी रचना अठारहवी शती के प्रथम चरण में हुई।[3]

आजनेय-विजय

भाष्यकार नामक कवि ने आञ्जनेय विजय नाटक मे हनुमान् के पराक्रम का विशेष वर्णन किया है।[4] उनके प्रथम गुरु भानु थे। वे वेणुपुर के राजा बसवभूपाल (१६६८-१७१५ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। इस नाटक का प्रथम अभिनय राम के अवतारोत्सव में किया गया था।

राधामाधव-नाटक

अठारहवी शती के पूर्वार्ध मे राघवेन्द्र कवि ने सात अको म राधामाधव नाटक का प्रणयन किया।[5] इसका हस्तलेख स० १७८४ वि० तदनुसार १७२७ ई० का है। इस नाटक मे यथानाम राधा और कृष्ण का क्रीडाविलास शृङ्गार-निर्भर है। इसका प्रथम अभिनय राधोल्लास महोत्सव म सम्पन्न हुआ था।

अनग-विजय भाण

अनङ्ग विजय भाण के लेखक श्रावलवशी जगन्नाथ तजौर-महाराज सरफोजी के मन्त्री श्रीनिवास के पुत्र थे।[6] सरफोजी का शासनकाल १७११-१७२८ ई० है। जगन्नाथ स्वय भी राजतन्त्र म नियुक्त थे। सूत्रधार ने परिचय देते हुए इनका निरूपण किया है—निखिलराजतन्त्रधुरन्धरामात्यप्रवरश्रीनिवासामात्यतनूजस्य। सम्भवत अपने पिता के पश्चात् जगन्नाथ स्वय राजमन्त्री पद पर विराजमान रहे हो।

---

१ इसका अभी तक प्रकाशन नही हुआ है।

२ अप्रकाशित वसुमगल की प्रति शासकीय ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट-लाइब्रेरी, मद्रास में है।

३ इसकी अप्रकाशित प्रति अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर मे है।

४ इस नाटक की हस्तलिखित प्रति प्राच्यविद्याशोध सस्थान मैसूर मे है।

५ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति भण्डारकर ओ० रि० इ० पूना मे है।

६ अनगविजय की हस्तलिखित प्रति तजौर मे सरस्वती-भवन म मिलती है।

जगन्नाथ काकरावदा के विद्याचरण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके चाचा रघुनाथ न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।

जगन्नाथ ने अनङ्गविजय के पहले शृङ्गारतरङ्गिणी नामक भाण की रचना की थी, जो अभी तक अप्राप्य है। उन्होंने शरभराज-विलास काव्य का प्रणयन १७२२ ई० में किया था।[1]

अनङ्गविजय का प्रथम अभिनय तंजौर में प्रसन्न वेङ्कट नायक के वसन्तमहोत्सव के उपलक्ष में हुआ था। प्रेक्षकों में अनेक देशों के सामाजिक थे। वे सभी अभिनव रूपक देखना चाहते थे।

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि इसका लेखक स्वयं सूत्रधार है। वह बताता है कि रतिशेखर नामक नायक विट की भूमिका में उसका भागिनेय कलकण्ठ रंगमंच पर आता है।

मधुरानिरुद्ध

मधुरानिरुद्ध के प्रणेता चन्द्रशेखर का प्रादुर्भाव उत्कल प्रदेश में हुआ।[2] इनके पिता गोपीनाथ थे। पिता और पुत्र दोनों यज्ञ सम्पादन में अभिरुचि रखते थे। पिता ने सप्तसोम और वाजपेय यज्ञ किये थे और पुत्र ने चयन यज्ञ किया था, जिसके कारण वह चयनी उपाधि से समलङ्कृत होकर चयनी-चन्द्रशेखर कहलाता था। पिता और पुत्र दोनों राजगुरु थे।

चन्द्रशेखर के आश्रयदाता उड़ीसा में खुर्द के राजा गजपति वीरकेसरीदेव प्रथम थे।[3] इनके पिता रामचन्द्र थे। वीरकेसरीदेव का शासनकाल ७३६-१७७३ ई० तक था। कवि के अपने विषय में लिखे दो पद्यों को सूत्रधार ने प्रस्तावना में उद्धृत किया है, जो निम्नलिखित है –

> श्रोतृश्रवान्ताध्वनीनध्वनि-बहुलतमा पद्धति निर्निमीया-
> श्छन्दः सन्दर्भगर्भश्रमपदरचना-व्यत्ययानिर्जनीया।
> नाराकारान् रीतीरपि न गुणगणं वोज्झितुं श्रद्दधीया
> यद्याविर्भाविनी स्यां स्वयमिति कविते देवि विज्ञापयामि॥

अपि च

> *यदम्भद्गुचसामवद्यमलनागोष्ठीमविष्टायसा*
> निर्व्रीडा कलयन्तु नाम न वयं तेनाद्य दूयामहे।

---

१ यह अप्रकाशित काव्य तंजौर के सरस्वती भवन में है।

२ इस अप्रकाशित नाटक की प्रतियाँ भुवनेश्वर के राजकीय संग्रहालय में मिलती हैं।

३ किसी ने वीरसिंह को बुंदेलखण्ड का १७ वीं शती का राजा बताया है, जो सुप्रमाणित नहीं है।

जानन्तोऽपि कवीनिमानभिदधुर्ये वा वधूवल्लभा-
स्तानालोच्य परं विपीदति मतिः कुर्मः किमत्रौषधम् ॥

सूत्रधार ने कविपरिचय देते हुए कहा है कि वह न्यायशास्त्र का परम पण्डित है।

मधुरानिरुद्ध की रचना सम्भवतः १७८६ ई० में वीर केसरीदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर हुई थी। इस नाटक का अभिनय शिव की यात्रा में उपस्थित महानुभावों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

मधुरानिरुद्ध की कथावस्तु हरिवंश, विष्णुपुराण और भागवत आदि से ली गई है। कवि ने अनेक स्थलों पर पूर्ववर्ती कथाओं में भिन्न कल्पित कथांश जोड़े हैं। उषा और अनिरुद्ध की कथा इस युग में सुप्रिय थी। रामपाणिवाद ने इसी शती में उषानिरुद्ध महाकाव्य प्राकृत में लिखा था।

कवि ने इस नाटक को आठ अङ्कों में निष्पन्न किया है। इसकी कथावस्तु के स्वरूप से कलात्मक काट-छाँट की अभिव्यक्ति कम होती है। वस्तुतः यह आख्यानात्मक प्ररोचना से निर्भर है।[1] अगणित घटनायें व्यर्थ ही समाविष्ट हैं। कवि को काव्यात्मक वर्णनों को पिरोने का भी चाव है।[2] लम्बे-लम्बे वर्णनों के कारण कथावस्तु की चारुता और नाटकीयता मानो पलायमान हो गई हैं। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं हैं।

नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि कहीं-कहीं सूत्रधार को प्रेक्षकों की भर्त्सना भी सुनने को मिलती थी। इस नाटक की प्रस्तावना में लेखक की निन्दा जब सूत्रधार ने की तो प्रेक्षकों ने कहा—इतो विरम्य गम्यताम्।

शृंगार-सर्वस्व

शृंगार-सर्वस्व यथानाम भाण कोटिक रूपक है।[3] इसके रचयिता अनन्त नारायण पाण्ड्य प्रदेश को समलङ्कृत करते थे। वे केरल के जमोरिन मानविक्रम तथा त्रिचूर के रामवर्मा नामक राजाओं के द्वारा सम्मानित थे। जमोरिन राजाओं का भाण-प्रेम सुविदित है। मानविक्रम ने शृंगार-सर्वस्व की रचना के लिए इच्छा प्रकट की थी। उसी की अध्यक्षता में इसका प्रथम अभिनय मायाङ्क महोत्सव में हुआ था। यह १७८३ ई० की घटना है।

इसमें नायिका सुन्दरी को वसन्ततिलक नामक विट के प्रभाव से हटाकर नायक विट के अधिकार में नायक के दो मित्र विटों ने प्रपन्न करा लिया है।

शृंगार-विलास भाण

शृंगारविलास भाण के प्रणेता साम्बशिव मद्रास में गोपालसमुद्र ग्राम के

---

१ यह वस्तुतः आकाशभाषित है।

२ कवि ने आकाशमार्ग से भारत-यात्रा-वर्णन विस्तारपूर्वक किया है।

३ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति गा० ओ० मैं० लाइब्रेरी, मद्रास में मिलती है।

निवासी थे। इस रूपक का सर्वाधिक महत्त्व यह सिद्ध कर देने में है कि रूपक की प्रस्तावना अभिनय के देशकालानुरूप प्रपचित की जाती थी। इसकी मैसूर की हस्तलिखित प्रति में महाराज कृष्ण आश्रयदाता हैं और मद्रास में प्राप्य प्रति में कालीकट के जमोरिन राजा मानविक्रम आश्रयदाता हैं। कृष्णराज १७१८ से १७२२ ई० तक शासक रहे।

कृष्णविजय-व्यायोग

कृष्णविजय व्यायोग के रचयिता रामचन्द्र केरलाल मैसूर-नरेश कृष्णराज द्वितीय (१७३४-१७६६ ई०) के सेनापति-मन्त्री देवराज के द्वारा सम्मानित थे।[1] रामचन्द्र का प्रणीत एक अन्य रूपक सरस कवि कुलानन्द भाण मिलता है।[2] इसका अभिनय श्रीरंगनायक के शारदोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसके अध्यक्ष देवराज थे। व्यायोग में कृष्ण के रुक्मिणी को युद्ध द्वारा प्राप्त करने की कथा है।[3]

सरसकविकुलानन्द भाण का अभिनय श्रीपुर-नायक के चैत्रयात्रा महोत्सव में हुआ था। इसमें अन्य भाणों के समान ही भुजगशेखर नामक विट की नायिका उसे प्राप्त हो जाती है।

श्रीकृष्ण-प्रयाण नाटक

आसाम के अंकिया नाट कोटि की एक महत्त्वपूर्ण रचना श्रीकृष्ण-प्रयाण नाटक के लेखक सुप्रसिद्ध विद्यावागीश हैं। वागीश के पिता आचार्य पचानन थे। कविवर वागीश आसाम के राजा प्रमत्त सिंह (१७४४-५१ ई०) के मन्त्री गंगाधर बडफूकन के द्वारा सम्मानित था।

श्रीकृष्ण-प्रयाण में महाभारत की प्रसिद्ध कृष्णदौत्य कथा विलसित है।[4] नाटक के गीत असमी भाषा में रागनिविष्ट हैं। अन्यत्र नायक संस्कृत में संवाद प्रस्तुत करते हैं।

जनकजानन्दन

जनकजानन्दन के रचयिता मल्य लक्ष्मीनरसिंह के पिता अहोवलसुधी कौशिक-गोत्री थे।[5] कवि का नाम अपने उपास्य देव अहोवल पर्वत पर प्रतिष्ठापित लक्ष्मी-नरसिंह के अभिधानानुरूप है। अहोवल पर्वत कुरनूल जिले में है। उनका प्रादुर्भाव १८वीं शती में हुआ था।

१ इस व्यायोग का प्रकाशन मैसूर में कन्नड और आन्ध्रलिपियों में हुआ है।

२ इस भाण का प्रकाशन मैसूर में आन्ध्र लिपि में हुआ है।

३ इस व्यायोग में शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार स्त्री के लिए संग्राम नहीं होना चाहिए—इस नियम का पालन नहीं हुआ है।

४ इस अप्रकाशित नाटक की हस्तलिखित प्रति वृन्दावन के वैष्णव इस्टीट्यूट में है।

५ नाटक की हस्तलिखित प्रति मैसूर के भाण्डागार में प्राप्तव्य है।

लक्ष्मीनरसिंह की अन्य प्रसिद्ध रचनायें कविकौमुदी और विश्वदेशिकविजय मिलती हैं। इनके पिता ने साहित्यमकरन्द तथा अलंकारचिन्तामणि का प्रणयन किया था। इनके पितामह नरसिंह ने प्रक्रिया कल्पवल्ली नामक व्याकरण का ग्रन्थ रचा था।

अनङ्गजानन्द के पाँच अङ्कों में रामकथा है। इसका प्रथम अभिनय अभिराम की राजसभा के प्रीत्यर्थ अहोबल के नरसिंह के वासन्तिकोत्सव के अवसर पर हुआ था। अभिराम ने अपने राज्य का कुछ भाग दो कलाकारों को दे दिया था, जब वे उनकी कृति से विशेष प्रसन्न हुए थे।

कैतवकला-चान्द्र भाण

नारायण स्वामी ने कैतवकला चान्द्रभाण का प्रणयन १७५० ई० के लगभग किया। इसका अभिनय श्रीरंगपत्तन में हुआ था। कवि के पिता मण्डोरु नारायण तथा गुरु नृसिंह सूरि थे।

शेषगिरि की नाट्य कृतियां

अठारहवीं शती के मध्य भाग में शेषगिरि ने दो रूपकों का प्रणयन किया—कल्पाकल्पक नाटक तथा शारदातिलक भाण।[१] कवि के पिता का नाम शेषगिरीन्द्र और माता का नाम भागीरथी था। वे आन्ध्र प्रदेश में रालपल्ली में रहते थे। शेषगिरि ने मैसूर-नरेश कृष्णराज द्वितीय (१७३४-१७६६ ई०) को पढ़ाया था। उपर्युक्त दोनों रूपकों का अभिनय श्रीरंगपत्तन में हुआ था। कल्पाकल्पक का अभिनय चैत्रयात्रोत्सव में हुआ था।

समृद्धमाधव नाटक

समृद्ध-माधव के रचयिता गोविन्द सामन्तराय अठारहवीं शती में उत्कल में थाकी राज्य में रहते थे। उनके पिता रामचन्द्र और पितामह विश्वनाथ थे। इन सबकी उपाधि सामन्तराय थी। गोविन्द को कविभूषण की उपाधि दी गई थी।

समृद्ध माधव में सात अङ्क हैं।[२] इसकी कथावस्तु कृष्ण और राधा की प्रणय-गाथा है। इसका प्रथम अभिनय जगन्नाथपुरी के जगन्नाथ मन्दिर में हुआ था।

कुहनाभैक्षव

तिरुमल-कवि ने कुहनाभैक्षव नामक प्रहसन का प्रणयन १७५० ई० के लगभग किया था। इनके अनेक नाम अय्यल नाथ, तिरमल नाथ और त्रिमलनाथ भी मिलते हैं। इनके पिता का नाम सोम्मकण्ठि गंगाधर था। तिरमल ने अपने प्रतिभा विलास से विशेषतः आन्ध्र प्रदेश को समलंकृत किया था।

कुहनाभैक्षव में यथानाम धूर्त भिक्षु नायक है। उसे अहमद खान की रमेनिन

१ इन दोनों रूपकों की हस्तलिखित प्रतियाँ मैसूर के ओ० रि० इ० के पुस्तकालय में मिलती हैं।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में है।

से उद्दाम प्रेम हो गया। उसने अपने शिष्य की सहायता से जिस प्रकार उसे प्राप्त किया—यही प्रहसन की कथावस्तु है।[1]

मुकुन्दानन्द भाण

मुकुन्दानन्द-भाण के रचयिता काशीपति का प्रतिभा-विलास १८वीं शती में मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय के प्रधान मन्त्री नन्जराज (१७३९-५९ ई०) के समाश्रय में हुआ।[2] सूत्रधार ने लेखक और उनकी रचना का परिचय देते हुए कहा है—

कौण्डिन्यवंशरत्नस्य कवेः काशीपतेः कृतिः।
मुकुन्दानन्दनामायं मिश्रभाणः प्रयुज्यते॥

काशीपति मूलतः न्यायशास्त्र के पण्डित-प्रकाण्ड थे। उनका कहना है कि तर्क में मेरी भाषा का निष्ठुर होना स्वाभाविक है, किन्तु काव्य-रचना में कोमल है। कवि संगीतशास्त्र का मर्मज्ञ था।

मुकुन्दानन्द-भाण का प्रथम अभिनय मैसूर के निकट नूतनपुर के परिसर में भद्रगिरि पर भगवान् शिव के वसन्तोत्सव के अवसर पर आये हुए सामाजिकों का लास्य-कला के विलोकन के लिए आयोजित किया गया था।

मुकुन्दानन्द मिश्रभाण कोटि की रचना है। १८वीं शती में मिश्रभाण का प्रचलन कम हो चला था।[3] काशीपति द्वारा विरचित एक अन्य ग्रन्थ श्रवणानन्दिनी व्याख्या मिलती है। यह नन्जराज के संगीत गंगाधर की टीका है।

कथावस्तु

नायक भुजंगशेखर अपनी नायिका को प्रेम के घेरे में बाँध ही रहा था कि उसका पति जग पड़ा और उसका चुम्बन लेना शेष ही रह गया। बस, इस समस्या को लेकर दिन भर वह वेश्याओं के चक्कर में चंक्रमण करता रहा। इस भाण में अन्य तद्युगीन भाणों की भाँति प्रत्यक्ष और गुप्त वेश्याओं की शृङ्गारित चरित-गाथा उपराई गई है। अन्य भाणों की भाँति इसमें भी अश्लीलता लोगों के मनोरंजन के लिए सबसे बढ़कर साधन मानी गई है।

श्रीकृष्णजन्म-रहस्य

श्रीकृष्ण-जन्म-रहस्य कीर्तनिया नाट्य-परम्परा में श्रीकान्तगणक के द्वारा लिखी गई है। इसके लेखक का प्रादुर्भाव १८वीं शती के मध्यकाल में मिथिला में हुआ था। इसमें दो अंकों में कृष्ण का प्रादुर्भाव गीतात्मक संवादों के द्वारा प्रस्तुत है।[4]

१ इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास, मैसूर तथा वाराणसी में प्राप्य है।
२ मुकुन्दानन्द-भाण का प्रकाशन काव्यमाला १६ में हो चुका है। इसका तृतीय संस्करण १९२६ ई० में छपा था।
३. 'अधुना विरलः खलु मिश्रभाणप्रचारः' यह सूत्रधार का कहना है।
४. इसका प्रकाशन प्रयाग से हो चुका है।

रुक्माङ्गद नाटक

अठारहवीं शती के अन्तिम चरण में मिथिला के कर्णजयानन्द ने रुक्माङ्गद नाटक का प्रणयन किया। यह नाटक कीर्तनिया नाट्य-परम्परानुसार गीतों से निर्भर है। इसमें संस्कृत-प्राकृत के साथ मैथिली गीतों की प्रचुरता है।[1] जयानन्द मिथिला-नरेश माधव सिंह (१७७६–१८०८ ई०) के समकालीन थे।

शृंगारसुन्दर भाण

शृङ्गारसुन्दर-भाण के प्रणेता ईश्वर शर्मा केरल प्रदेश में विम्वली ग्राम के निवासी थे।[2] इनका प्रादुर्भाव १८ वीं शती के मध्यकाल में हुआ था। अपने भाण में कवि ने गोश्री (कोचीन) नरेश की प्रशंसा की है। वे उसके द्वारा सम्मानित प्रतीत होते हैं। इनके विषय में कवि ने लिखा है—

वीराग्रेसर लोकेऽस्मिन् प्रतापे ते प्रसर्पति।
चित्र शिशिरकालेऽपि प्रजा शीत न बाधते॥

सूत्रधार ने ईश्वर शर्मा के विषय में कहा है—

व्याघ्रवेश्मनिवासस्य द्विजराजशिरोमणेः
सद्गुरोर्य कृपालेशात् साध्वी शक्तिमवाप्तवान्।
विम्वलीवासिनस्तस्य कृतिरीश्वरशर्मणः
भवता नाटनीयोऽद्य भाणः शृङ्गारसुन्दरः॥

भाण में कोचीन का विट अभिराम अपने मित्र भ्रमरक को उसकी नायिका केसरमालिका से संगम कराता है।

राजविजय नाटक

राजविजय नाटक ऐतिहासिक रचना है।[3] इसके रचयिता का नाम इस ग्रन्थ में या अन्यत्र भी अप्राप्य है।[4] इसका नायक राजवल्लभ ऐतिहासिक व्यक्ति है। इसका जन्म १७०७ ई० के लगभग बङ्गाल में बील्दा ओनिया गाँव में हुआ था, जिसे आगे चल कर नगर के रूप में विकसित करके नायक ने राजनगर नाम दे दिया।

संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य की विरलता है। ऐसी स्थिति में इस कृति का महत्त्व विशेष बढ़ जाता है कि नायक के जीवन काल में ही उसके आश्रित कवि ने इसकी रचना की। इस नाटक के अनुसार अम्बष्ठों का उपनयन का अधिकार

---

१ इसकी अप्रकाशित प्रति दरभंगा जिले के करान-निवासी अनन्तलाल पाठक के पास है।

२ इस भाण का प्रकाशन त्रिवन्द्रम् से हो चुका है।

३ इसका प्रकाशन १९४३ ई० में कलकत्ता से हो चुका है। नाटक अपूर्ण मिलता है। द्वितीय अङ्क के अन्तिम भाग से आगे नहीं है।

४ सूत्रधार ने 'केनापि नव्येन कविना प्रणीयापूर्ववस्तूदात्तकथा-गौरव राज-विजय नाम नाटक मयि समर्पितमास्ते।' इतना ही कहा है।

शाके सिन्धु-मुनि-रसैक-सस्य-माघे (१७५५ ई०) मे मिला। राजवल्लभ की मृत्यु १७६३ ई० मे हुई। ऐसी स्थिति मे इसकी रचना १७६० के लगभग हुई होगी। इस नाटक का प्रथम अभिनय राजनगर मे यज्ञ के सम्पादक पुरोहितो के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

दक्षिण भारत का ब्राह्मण पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) से राजनगर मे यज्ञ-सम्पादन कराने आया था। उसने राजनगर के भट्टाचार्यों के समक्ष याज्ञिक प्रक्रियाओ की सम्यक् व्याख्या की। याज्ञिक विधानो का क्रम, उनके उपादान, सामग्री और प्रक्रियाओ का व्याख्यान उस प्रधान पण्डित ने किया। राजवल्लभ के धार्मिक अनुष्ठानो, वैभव तथा ऐश्वर्य की सांगोपाङ्ग चर्चा के अनन्तर नाटक खण्डित है। ऐसा लगता है कि नाटक मे यज्ञ की समाप्ति तक की कथावस्तु थी। अम्बष्ठ या वैद्यो को यज्ञोपवीत धारण करना और वैदिक यज्ञ करना समीचीन है—यह नाटक मे प्रमाणित किया गया है।

नलविलास-नाटक

अहोबिल नृसिंह ने नलविलास की रचना १७६० ई० के लगभग की।[1] नृसिंह मैसूर के राजा वोडेयार द्वितीय (१७३२-१७६० ई०) तथा चामराज वोडेयार (१७६०-१७७६ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। इस नाटक के छ अङ्को मे नल-दमयन्ती की प्रणय-कथा प्रमुख इतिवृत्त है। इसका प्रयोग चामराज की अध्यक्षता मे नवरात्र महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

प्राभावत-नाटक

प्राभावत नाटक के लेखक मैसूर-निवासी रघुनाथ सूरि शैलनाथ सूरि के पुत्र थे। वे रामानुज महादेशिक की शिष्य-परम्परा मे थे। इस शृङ्गार-प्रधान नाटक मे सात अङ्क हैं। इसका प्रयोग रङ्गनाथ के यात्रोत्सव मे सम्पन्न हुआ था।[2] इस नाटक मे कथावस्तु का प्रपंच कवि ने शास्त्रीय लक्षणों के उदाहरण-रूप मे किया है।

वेंकटाचार्यो की नाट्यकृतियां

अमृतमन्थन के लेखक वेङ्कटाचार्य के पिता श्रीनिवास और माता वेङ्कटाम्बा थीं। वे आन्ध्र प्रदेश मे गुलवर्गा जनपद के निवासी थे। वेङ्कट ने वेङ्कटदेशिक से शिक्षा पाई थी।

अमृत-मन्थन की कथावस्तु पौराणिक है। कवि ने इसे पाँच अङ्को मे प्रपञ्चित किया है।[3] कवि का प्रादुर्भाव १८वी शती के उत्तरार्ध म हुआ था।

वेङ्कट के छोटे भाई अण्णयाचार्य ने रसोदार या सरसोदार नामक भाण का प्रणयन किया था।

---

१ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति ओ० रि० इ० मैसूर मे है।

२ इसकी अप्रकाशित नाटक की प्रति सरस्वती-भण्डार, मैसूर मे है।

३ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति ओ० रि० इ० मैसूर के पुस्तकालय मे है।

उपर्युक्त दोनों कवियों के छोटे भाई श्रीनिवासचार्य ने कल्याण-राघव-नाटक का प्रणयन किया था। इसके सात अङ्को में सीता और राम का विवाह वर्णित है।[1]

अण्णयाचार्य के पुत्र वृन्चि वेङ्कटाचार्य ने कल्याणपुरञ्जन नाटक का प्रणयन १८वीं शती के उत्तरार्ध में किया। इसके दो अङ्को म यथानाम पुरञ्जन के विवाह की कथावस्तु है। इसकी रचना राजा सोम के प्रीत्यर्थ हुई थी।

दमयन्ती-कल्याण नाटक

दमयन्ती-कल्याण नाटक के लेखक रगनाथ तामिल प्रदेश में ताम्रपर्णी तटीय अग्रहार के निवासी थे।[2] इस नाटक में यथानाम नल और दमयन्ती के विवाह की कथावस्तु है। इसकी अभी तक मिली प्रतियों में प्रथम अङ्क पूरा तथा द्वितीय अङ्क का कुछ अंश है। इसका अभिनय त्रावणकोर में शुचीन्द्रम् के मन्दिर में परमेश्वर के वसन्तोत्सव के कार्यक्रम में हुआ था।

धर्मोदय नाटक

धर्मोदय नाटक के प्रणेता धर्मदेव गोस्वामी आसाम प्रदेश में वैहेनी-सत्र के निवासी थे।[3] कवि ने तीन काव्यों की रचना की—धर्मोदय नाटक, नरकासुर-विजय काव्य और धर्मोदयकाव्य। धर्मोदय नाटक का प्रणयन १७७० ई० में हुआ और तभी इसका अभिनय अहोम-राजधानी, रगपुर में सम्पन्न हुआ।

धर्मोदय नाटक में अहोम राजा लक्ष्मी सिंह (१७६९–१७८० ई०) के द्वारा मडिया ग्राम की प्रजा के विद्रोह के शमन का इतिवृत कथावस्तु है। कवि की दृष्टि में इस प्रसग में लक्ष्मी सिंह धर्म और मडिया की प्रजा अधर्म है। धर्म ने अधर्म पर विजय पाई। वस्तुत यह ऐतिहासिक नाटक है। लक्ष्मी सिंह के द्वारा धर्मोदय का प्रणेता धर्मदेव सुसम्मानित था।

शिवनारायण-भञ्जमहोदय

मञ्जमहोहदय नाटक के प्रणेता नरसिंह मिश्र उत्कल-प्रदेश मयूरभञ्ज के सान्निध्य में केओझर के राजा बलभद्र भञ्ज (१७६४–१७९२ ई०) के द्वारा सम्मानित थे। यह नाटक केओझर के राजा शिवनारायण भञ्ज के उपदेशों का सम्पुट है। इसका आरम्भिक अभिनय पुरुषोत्तम-क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) में सम्पन्न हुआ था।

भञ्ज महोदय में अङ्क का नाम लोक मिलता है।[4] इसमें पाँच लोक हैं। पचम

---

१ इसकी हस्तलिखित प्रति ओ० रि० इ० मैसूर म मिलती है।

२ इस नाटक की हस्तलिखित प्रति ग० ओ० मै० लाइब्रेरी, मद्रास में मिलती है।

३ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति आसाम में संस्कृत सजीवनी-सभा, नालबाडी के पास है।

४ इस नाटक की हस्तलिखित प्रति उडीसा में दामोदरपुर-निवासी गोपीनाथ मिश्र के पास है।

अङ्क है जीवन्मुक्ति प्रतिपादन। इसका नाटिका नाम छोटे नाटक के अर्थ में ठीक है, अन्यथा नाटिका में तो केवल चार ही अंक होने चाहिए।

कृष्णकेलिमाला

मिथिला में पुगौली-निवासी नन्दीपति ने कृष्णकेलिमाला में श्रीकृष्ण के जन्म और बाललीलाओं का वर्णन चार अंकों में किया है। उनका प्रादुर्भाव १८ वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ था। कविवर ने इसके अतिरिक्त दो अन्य नाटकों का प्रणयन किया, जो अभी नहीं मिले हैं। अप्राप्त नाटक हैं—कदम्बकेलिमाला तथा रुक्मिणी-स्वयंवर।

इन नाटकों में नन्दीपति के गीत सरस और माधुर्य-गुण-निर्भर हैं। कृष्णकेलिमाला का प्रकाशन हो चुका है।

कलावती-कामरूप-नाटक

कलावती-कामरूप नाटक के रचयिता नव कृष्णदास यद्यपि सुदूर दक्षिण केरल के निवासी थे, पर उन्होंने अपने नाटक का चरितनायक काशी के राजा कामकेतु के पुत्र कामरूप को बनाया है।[1] कामरूप की नायिका कलावती का किसी राक्षस ने अपहरण किया और नायक ने उसे पराक्रमपूर्वक बचा लिया। इसका अभिनय विट्ठल भगवान् के यात्रोत्सव पर एकत्र समाज के प्रीत्यर्थ हुआ था। इस नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार ने बताया है कि केरल के ब्राह्मण षड्भाषावेत्ता होते थे।[2]

कविवर ने अपने नाटक को प्रयोगार्थ सूत्रधार को दिया था। सूत्रधार कहता है—

'तेन (कविना) आकस्मिकस्नेहनिघ्नेन विद्वत्परिषदा निर्दिष्टगुण-विशिष्ट-स्वसन्दर्भं कलावती-कामरूप नाम नाटकमस्माकमर्पितमभूत्।'

इससे प्रतीत होता है कि प्रस्तावना-लेखक सूत्रधार है। रचना का उद्देश्य सूत्रधार की दृष्टि में है लोगों का मोहान्धकार दूर करना।[3]

कौतुकसर्वस्व-प्रहसन

कौतुकसर्वस्व-प्रहसन के रचयिता गोपीनाथ चक्रवर्ती बङ्गाल के कवि हैं। इसके दो अंकों में धर्मनाश नगरी के राजा कलिवत्सल, उनके मन्त्री शिष्टान्तक, पुरोहित धर्मानल, सेवक अनतसर्वस्व, पण्डित पीडा-विशारद आदि की प्रहसनात्मक चरितावली यथावस्तु है।

---

१ इस नाटक की हस्तलिखित प्रति ग० ओ० मैं० लाइब्रेरी, मद्रास में तथा त्रिप्पुनीत्तूर में मिलती है।

२ इससे राष्ट्रिय एकता की परिपुष्टि होती है। भारत के विविध भागों से कौटुम्बिक सम्पर्क रखने के लिए आवश्यक रहा है कि लोग बहुभाषाविद् हों।

३. पुंसां मोहध्वान्तबाधं विधत्ते।

कौतुकसर्वस्व प्रहसन का अभिनय दुर्गापूजा के अवसर पर हुआ था। इसकी रचना अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में हुई थी।

रसिकजन-रसोल्लास भाण

रसिकजन-रसोल्लास भाण के प्रणेता कौण्डिन्य वेङ्कट १८ वीं शती ई० के अन्तिम चरण में हुए। इस भाण का अभिनय वेङ्कटाद्रि नगर के श्रीनिवास-मन्दिर के प्रांगण में हुआ था।[1]

उत्तरचरित

अठारहवीं शती में रामकृष्ण ने उत्तरचरित की रचना की। इनके पिता वत्सगोत्रीय तिरुमल थे। इन्होंने रमणेन्द्र सरस्वती से प्रधानतः शिक्षा पाई थी। उन्होंने इस नाटक की पुष्पिका में अपने विद्वत्कुल का परिचय इस प्रकार दिया है—

श्रीमन्महाकुलप्रसूतस्य श्रीवत्सगोत्रस्य, सकलविद्वज्जनमुकुटालङ्कार-हीरस्य जगन्नाथभट्टारकपौत्रस्य काव्यनाटकालङ्कारसर्वज्ञस्य, पदवाक्य-प्रमाणज्ञस्य, वेङ्कटाद्रिभट्टारकपुत्रस्य, श्रीरामेन्द्रसरस्वतीचरणारविन्द-सेवानत्परस्य, श्रीमदनगोपालमन्त्रचिन्तनापरस्य शब्दशास्त्रविशारदस्य सकलकला-प्रवीणस्य, आश्रितजनरक्षण-दक्षस्य तिरुमलभट्टारकस्य पुत्रेण भवभूतिना विरचितोत्तरचरितं नाम नाटकं समाप्तिमगमत्।

कवि उत्तररामचरित के सुप्रसिद्ध लेखक भवभूति के नाम को उपाधि रूप में अपनाये हुए हैं और अपनी उपाधि की सार्थकता प्रमाणित करने के लिए उत्तर-चरित में राम के उत्तरकालीन जीवनवृत्त को ग्रहण किया है।[2]

भाग्यमहोदय

भाग्यमहोदय नाटक निराला ही है।[3] इसके पात्र काव्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं। यथा, मगण, यगण, अपह्नुति आदि। इसकी रचना १७६५ ई० में हुई।

भाग्य महोदय के रचयिता जगन्नाथ का जन्म गुजरात में १७४८ ई० में म्हानी बोईरू गाँव में हुआ था। कहते हैं कि ४० दिन तक उपवास-पूर्वक देवी की आराधना से उन्हें आशुकवित्व की सिद्धि हुई थी। तब से उन्हें शीघ्रकवीश्वर की उपाधि मिली। वे विद्वत्ता से प्रसिद्ध होकर भावनगर के राजा वस्त सिंह की सभा में पहुँचे। राजा उनके भाग्यमहोदय नाटक से प्रसन्न हो गया और उन्हें राजकवि का पद मिला।[4] जगन्नाथ को पूना और बड़ोदा के नरेशों से भी पर्याप्त सम्मान मिला।

१ इस अप्रकाशित नाटक की प्रति सरस्वती भण्डार, मैसूर में प्राप्य है।

२ इस अप्रकाशितनाटक के लिए द्रष्टव्य है Reports on Sanskrit Manuscripts in South India by E. Hultzsch, Madras 1905

३ इसका प्रकाशन १९१२ ई० में भावनगर, गुजरात से हो चुका है।

४ भाग्यमहोदय में भाग्य वसंत का पर्याय है।

कहते हैं कि जगन्नाथ मूर्तिकला, चित्रकला, सगीत और नृत्यकला मे परम प्रवीण थे। इन क्षेत्रो मे उनकी उपलब्धियाँ असाधारण थी।

जगन्नाथ की बहुसख्यक प्राप्य कृतियों मे नीचे लिखी सुप्रसिद्ध हैं।

१ वृद्धवश-वर्णन—सेनापति दोमा दवे का युद्ध-वर्णन। इसका प्रकाशन १९१२ ई० मे भावनगर, गुजरात से हो चुका है।
२ नागरमहोदय—इसमे नागर जाति की विशेषताओ का वर्णन है।
३ श्रीगोविन्दरावविजय—इसमे बडौदा-नरेश गोविन्द की विजय का वर्णन है।
४ अमृतबीजस्तवन—यह २०० स्तोत्रो का सकलन है।
५ रमारमणाध्रिसरोजवर्णन—इसमे विष्णु की स्तुतियाँ हैं।

भाग्यमहोदय के प्रथमाङ्क मे मगणादि पात्र अपनी परिभाषा देते हैं और बखत सिंह के यशोगानात्मक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे नायक को आशीर्वाद कह कर और अपना परिचय देकर चल देते हैं। द्वितीय अक मे अर्थालङ्कार भी परिभाषा और उदाहरण प्रत्येकश देकर चलते बनते हैं। कही-कही नायक की सेना और मन्त्री की भी प्रशसा उदाहरणो मे दी गई है।

भजमहोदय नाटक

अठारहवी शती मे नीलकण्ठ ने भजमहोदय नामक एक नये प्रकार का १० अको का नाटक लिखा। इसकी कथावस्तु की विशेषता है कि इसमे केऔंझर के भजवशी राजाओ का आनुवश्िक विवरण है। प्रधान रूप से राजा बलभद्र (१७६४-१७९२ ई०) तथा जनार्दन भज (१७९२—१८३१ ई०) का परिचय दिया गया है। इन दोनो राजाओ के द्वारा कवि सम्मानित था। इस नाटक मे कतिपय ऐतिहासिक युद्धो का समसामयिक वर्णन महत्त्वपूर्ण है। कवि ने पार्श्ववर्ती प्राकृतिक विभूतियो-पर्वत, नदी और जलाशयों का मनोरम वर्णन सरसता-सयोजन के लिए सफलता-पूर्वक किया है।

नाटक की विचित्रता है कि इसमे रगमच पर केवल दो ही पात्र—प्रियवद तथा अनगकलेवर आद्यन्त अपने सरस सवादो के द्वारा सारे इतिवृत्त और वर्णनो को प्रस्तुत करते हैं। सवाद प्राय पद्यात्मक हैं।

विघ्नेशजन्मोदय

विघ्नेश जन्मोदय[1] के प्रणेता गौरीकान्त द्विज 'कविसूर्य' के पिता गोविन्द थे। वे आसाम-नरेश कमलेश्वर सिंह (१७९५-१८१० ई०) के द्वारा सम्मानित थे। गौरीकान्त ने इसका प्रणयन शक स० १७२१ तदनुसार १७९९ ई० मे किया। भीष्मा-चलेश्वर उमानन्द के आदेश से यह नाटक लिखा गया। गौरीकान्त शैव सम्प्रदाय के भक्त कवि हैं, जैसा उनकी इस कृति से पदे-पदे प्रतीत होता है।

---

१ इसका प्रकाशन १९६३ ई० मे आसाम-साहित्य-सभा, जोरहट (आसाम) से हो चुका है।

विघ्नेशजन्मोदय अङ्किया नाटक है। इसके तीन अंकों में कुमारोत्पत्ति की कथा है। देवताओं ने देखा कि शिव पार्वती के प्रणय में इतने आसक्त हैं कि उन्हें पुत्रोत्पत्ति का अवसर ही नहीं रहा। देवताओं के विघ्न डालने से शिव को जल्दी ही पुत्र उत्पन्न हुआ—षडानन या कार्तिकेय। पार्वती दूसरे पुत्र के लिए उत्सुक हुई। शिव के अतृप्त समागम के फल-स्वरूप पार्वती को दूसरा पुत्र हुआ गणेश। इनके जन्मोत्सव में शनि को छोड़ कर सभी देवों ने उपहारादि के साथ उनका दर्शन किया। अन्त में शनि ने आकर जब दम्पति को बधाई दी तो उन्होंने गणेश की ओर ताका भी नहीं। पार्वती ने पूछा कि ऐसी उपेक्षा क्यों? शनि ने कहा कि मेरी दृष्टि शिशु के के लिए अच्छी न रहेगी। पार्वती ने कहा—यह मिथ्या है। शनि ने आग्रह करने पर देखा और गणेश का सिर धड़ से अलग हो गया। तब तो नारायण बुलाये गये। उन्होंने हाथी का सिर लगा कर उन्हें जीवित कर दिया।

माहिष्मती का राजा कार्तवीर्यार्जुन ने कभी जमदग्नि के आश्रम में आकर उनके लिए स्वागत-द्रव्य प्रदान करने वाली गाय को माँगा। जब मुनि ने नहीं दी तो युद्ध करना पड़ा, जिसमें मुनि मारे गये। रेणुका उनकी चिता में जल मरी। पुत्र परशुराम ने बदला लेने की ठानी। वे शिव के पास पहुँचे कि मुझे बल प्रदान कीजिये। शिव ने उन्हें पाशुपतास्त्र दिया और रक्षार्थ कृष्ण कवच दिया, जिससे कार्तवीर्य को मार कर जब शिव के दर्शन के लिए आये तो कार्तिकेय और गणेश ने उन्हें द्वार पर यह कहकर रोक दिया कि उनसे पूछ कर प्रवेश दिया जायेगा। इनसे भी परशुराम ने युद्ध किया और परशु से गणेश के दाँत पर प्रहार किया। पुत्र की दन्त-क्षति देखकर पार्वती ने कहा कि इस परशुराम को मजा चखाती हूँ। तभी नारायण ने आकर सबको शान्त कर दिया।

विघ्नेशजन्मोदय में अङ्किया-नाटकीय पद्धति पर कतिपय संस्कृत और असमी के रमणीय गीतों का सचयन मिलता है। संस्कृत के पद्य असमी भाषा के दुलड़ि, छवि, लेछारी आदि छन्दों में निबद्ध हैं।

भैरवविलास

भैरव-विलास के प्रणेता ब्रह्मसूत्र वैद्यनाथ कब और कहाँ हुए—यह अभी तक अनिर्णीत सा है। इसकी प्रस्तावना से ऐसा लगता है कि अठारहवीं शती में यह लिखा गया होगा। अतएव इसे अठारहवीं शती में रखा गया है।

प्रस्तावना के अनुसार भैरव विलास शीर्षक से अनेक रूपक लेखक के समय में विद्यमान थे। इसका लेखक ब्रह्मण भैरव का उपासक है। उसने भैरव की प्रशंसा करने के उद्देश्य से रूपक की रचना की है।

भैरव-विलास का प्रथम अभिनय चैत्र-भरणी महोत्सव के अवसर पर लेखक की इच्छानुसार सामाजिकों के प्रीत्यर्थ हुआ था।

कथावस्तु

दम्भभक्त असत्य माहेश्वरों को नित्य भोजन देता था, किन्तु इधर उसे कोई माहेश्वर अतिथि नहीं मिल रहा था। एक दिन भैरव दीख पड़ा। उसने कहा कि

मेरी पारणा उसी के घर होगी जो पाँच-छ वर्ष के प्यारे बालक का आलमन करके परोसे।

नायक ने उसका निमन्त्रण करके अपनी पत्नी से कहा—अब लाओ घर की सारी सम्पत्ति, जिससे कोई आलमनार्थ बालक खरीद लाऊँ। पत्नी ने कहा कि कौन पैसे के लिए पुत्र को कटवायेगा। तुम तो अपने पुत्र श्रीलाल को ही काट-पीट कर भोजन-रूप मे भैरव को अर्पित करो।

श्रीलाल के उपाध्याय को पता चला कि उनके शिष्य को काटपीट कर भैरवाचार्य के लिए पका दिया गया। उपाध्याय शोकसागर में निमग्न हुआ। उपाध्याय ने भैरव की निन्दा की—

मधुमासपराधीनामसमजसवादिनीम्।
भैरवी भैरवीजानि विद्वान् को नाम विश्वसेत्॥२१

भैरव आया। उसने देखा कि पति-पत्नी पुत्र के मास से उसकी परितृप्ति करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक समुत्सुक हैं। भैरव ने उनके आने पर आशीर्वाद दिया—

वत्से जीववत्सा भव।

अर्थात् तुम जीवित पुत्र वाली बनो। भैरव को जो भोजन दिया गया, उसमे शिर तो था ही नही। उसने शिर माँगा। शिर के बालो से घृणा होती। अतएव नही दिया गया—इस उत्तर से भैरव ने अपनी माँग नही बन्द की। शिर भी दे दिया गया। भैरव ने उसके पिता को भी साथ खाने के लिए बैठाया। उसे पुत्र-मासयुक्त भात खाने को दिया। वह खाने ही वाला था कि उसे रोका और बोला कि कोई बच्चा इस घर मे क्यो नहीं ठुमक रहा है। यह भी कोई घर है बिना बच्चे का। मैं नही खाऊँगा यहाँ। झूठ ही कहा उस भक्त ने कि मेरा लड़का शाम को पाठशाला से लौटेगा। भैरव ने कहा कि घर के द्वार पर खडे होकर अपने लडके को पुकारो। भैरव को छोड़ कर सभी बाहर निकल कर लड़के को पुकारने गये। उनके पुकारने पर श्रीलाल आ गया।

श्री लालकश्चलकिंकिणीमुखरपदन्यासो यथापूर्वमिवाविशेषो दृश्यते।

सब भीतर आये तो भैरव अदृश्य था। सभी भैरव के लिए रोने लगे। बिना खाये क्यो चले गये—यह सबको मानसिक क्लेश था। भैरव जी न आये तो हम सभी प्राण छोड़ देंगे—यह विचार सबने किया।

स्वर्ग से शिव का परिवार उतरा। उनके विमान मे उनकी इच्छानुसार सभी शिवलोक चलते बने।

शिव ही भैरव बन कर परीक्षा ले रहे थे।[1]

शिल्प

भैरव विलास प्रेक्षणीयक या प्रेक्षणक कोटि की रचना है, जैसा नट ने प्रस्तावना मे बताया है। इसका लेखक ब्रह्मत्र नट का मित्र था। लेखक ने इसे सूत्रधार को अभिनय करने के लिए दिया था।

---

1 भैरव-विलास १९६५ ई० मे ११७५, प्रेमनगर जबलपुर से नरेन्द्रनाथ शर्मा के द्वारा सम्पादित और प्रकाशित है।

शब्दानुक्रमणिका

———